

लेख सूची

१ योग दर्शन—ले० श्रीयुत पं सुपलालजी	१
२ कुंरपाल सोणपाल प्रशस्ति—ले० प्रो बनारसी दासजी जैन एम्. ए	२६
३. सोमदेवसरिंहित नीतिग्रन्थामृत—ले० श्रीयुत पं. नाथरामजी प्रेमी	३६
४ कीरग्रामनो जैन शिलालेख-संपादकीय	७७
५. महाकवि पुष्पदेव और उनका महापुराण—ले० श्रीयुत पं. नाथरामजी प्रेमी	७७
६. प्रो० ह्युमन अने आचर्यकन्द—ले० मुनि जि० वि०; वसील के० प्रे० मोदी	८१
७. स्वाध्याय-समालोचन	९४

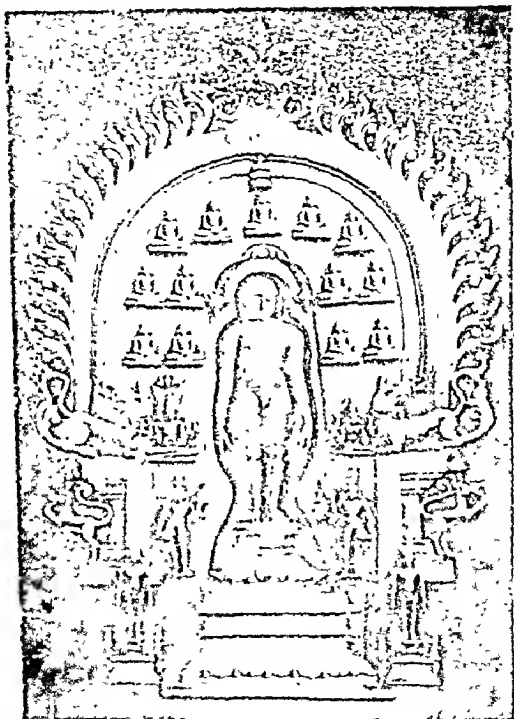
प्रकाशक—

जैन साहित्य संशोधक कार्यालय.

टि. भारत जैन विद्यालय—पूना शहर.

ज्येष्ठ, विक्रम सं. १९७९] महावीर नि. सं २४३९ [जुलाई १९२३.





॥ नमोऽस्तु भगवते महावीराय ॥

जै न सा हि त्य सं शो ध क

‘पुरिता! सच्चमेव समभिजिगिषां सच्चसाणाए उवठ्ठिए मेहावी भारं तरइ ।’

‘जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ ।’

‘दिट्ठं, सुयं, मयं, विण्णायं जं एत्थ परिकहिज्जइ ।’

—निर्ग्रन्थप्रवचन—आचारांगसूत्र ।’

खंड २]

हिंदी लेख विभाग.

[अंक १]

यो ग दर्शन

(लेखक:—पं. मुखलालजी न्यायाचार्य)

प्रत्येक मनुष्य व्यक्ति अपरिमित शक्तियोंके तेजका पुत्र है, जैसा कि सूर्य । अत एव राष्ट्र तो मानों अनेक सूर्योंका मण्डल है । फिर भी जब कोई व्यक्ति या राष्ट्र असफलता या नैराश्यके मैदान में पड़ता है तब यह प्रश्न होना सहज है कि इसका कारण क्या है ? बहुत विचार कर देखनेसे मालूम पड़ता है कि असफलता व नैराश्यका कारण योगका (स्थिरताका) अभाव है, क्योंकि योग न होनेसे बुद्धि संदेहशील बनी रहती है, और इससे प्रयत्नकी गति अनिश्चित हो जानेके कारण शक्तियां इधर उधर टकरा कर आदमीको बरबाद कर देती हैं । इस कारण सब शक्तियोंको एक केन्द्रगामी बनाने तथा साध्यतक पहुँचानेके लिये अनिवार्यरूपसे सभीको योगकी जरूरत है । यही कारण है कि प्रस्तुत व्याख्यानमाला में योगका विषय रक्खा गया है ।

• भूजपात पुरातत्त्व मंदिरकी ओरसे होनेवाली आर्यविद्याव्याख्यानमाला में यह व्याख्यान पढ़ा गया था ।

इस विषयकी शास्त्रीय मीमांसा करनेका उद्देश यह है कि हमें अपने पूर्वजोंकी तथा अपनी सभ्यताकी प्रकृतितक वाक माहूम हो, और तद्द्वारा आर्यसंस्कृतिके एक अंशका धोखा, पर निश्चित रहस्य विदित हो।

योगदर्शन यह सामासिक शब्द है। इसमें योग और दर्शन ये दो शब्द मौलिक हैं।

योग शब्दका अर्थ—योग शब्द युञ् धातु और घञ् प्रत्ययसे सिद्ध हुवा है। युञ् धातु दो है। एकका अर्थ है जोड़ना। और दूसरेका अर्थ है समाधि—मनःस्थिरता। सामान्य रीतिसे योगका अर्थ संयन्ध करना तथा मानसिक स्थिरता करना इतना ही है, परंतु प्रसंग व प्रकरणके अनुसार उसके अनेक अर्थ हो जानेसे यह बहुव्रीहि बन जाता है। इसी बहुव्रीहितके कारण लोकमान्यको अपने गीतारहस्यमें गीताका तात्पर्य दिवानेके लिये योगशब्दार्थनिर्णयकी विस्तृत भूमिका रचनी पड़ी है³। परंतु योगदर्शनमें योग शब्दका अर्थ क्या है यह बतलानेके लिये उतनी गहराईमें उतरनेकी कोई आवश्यकता नहीं है; क्योंकि योगदर्शनविषयक सभी ग्रन्थोंमें जहां कहीं योग शब्द आया है वहां उसका एक ही अर्थ है, और उस अर्थका स्पष्टीकरण उस उस ग्रन्थमें ग्रन्थकारने स्वयं ही कर दिया है। भगवान् पंडेजलिने अपने योगसूत्रमें⁴ चित्तशुक्ति निरोधको ही योग कहा है, और उस ग्रन्थमें सर्वत्र योग शब्दका वही एक मात्र अर्थ विवक्षित है। श्रीमद् हरिभद्र सूत्रिने अपने योग विषयक सभी ग्रन्थोंमें⁵ मोक्ष प्राप्त करने वाले धर्मव्यापारको ही योग कहा है; और उनके उक्त सभी ग्रन्थोंमें योग शब्दका वही एक मात्र अर्थ विवक्षित है। चित्तशुक्ति-निरोध और मोक्षप्राप्तक धर्मव्यापार इन दो बातोंके अर्थमें स्पष्ट दृष्टिसे देखने पर वही भिन्नता माहूम होती है, पर स्पष्ट दृष्टिसे देखने पर उनके अर्थकी अभिन्नता स्पष्ट माहूम हो जाती है। क्यों कि 'चित्तशुक्तिनिरोध' इस शब्दसे वही किया या व्यापार विवक्षित है जो मोक्षके लिये अग्र-कृत हो और जिससे चित्तकी संसारमिमग्न शक्तियां रुक जाती हैं। 'मोक्षप्राप्तक धर्मव्यापार' इस शब्दसे भी वही किया विवक्षित है। अत एव प्रस्तुत विषयमें योग शब्दका अर्थ सामासिक समस्त आत्मगतियोंका पूर्ण विकास करानेवाली क्रिया अर्थात् आत्मोन्मुक्त्यो के इतना ही समझना चाहिये⁶। योगविषयक वैदिक, जैन और बौद्ध ग्रन्थोंमें योग, ध्यान, समाधि ये शब्द बहुधा समानार्थक देखे जाते हैं।

द सं न शब्द का अर्थ—नेत्रजन्यज्ञान,⁷ निर्विकल्प (निराकार) बोध,⁸ धृष्टा,⁹ मत्¹⁰ आदि अनेक अर्थ दर्शन शब्दके देखे जाते हैं। पर प्रस्तुत विषयमें दर्शन शब्दका अर्थ मत वही एक विवक्षित है।

योगके आधिकारका धेय—जिनेने देहा और जितनी जातियोंके आध्यात्मिक महान् पुरुषोंकी जीवनकथा तथा उनका गार्हस्थ उपलब्ध है उसको देखनेवाला कोई भी यह नहीं कह सकता है कि आध्यात्मिक विकास अगुफ देहा और अगुफ जातिही हो सकती है, क्यों कि सभी देहा और सभी जातियोंमें न्यूनाधिक रूपसे आध्यात्मिक विकासवाले महत्माओंके पाये जानेके प्रमाण मिलते हैं¹¹। योगका संयन्ध आध्यात्मिक विकाससे है। अत एव यह स्पष्ट है कि

१ मुहूर्त्त योग,—३ गल हेमचंद्र धातुपाठ. २ मुजिध समाधी,—४ गल हेमचंद्र धातुपाठ.

३ देहो हृष्ट ५.५ से ६.०। ४ पा. १ सू. २—योगधित्तशुक्तिनिरोधः। ५ योगविन्दु श्लोक ३१—

अध्यात्म भाषनाऽऽप्तान् समता शृतिर्गन्धः। मोक्षेन योगनादीम एव भेष्टी वशोत्तरम् ॥ योगविशिष्टा गाथा ॥१॥

६ होट्ट एन्डरुनि की मित्राकी पूर्ण व्याख्या की है यह इसी प्रमाणों से— "Education is the

harmonious development of all our faculties." ७ हर्ष मेघने—१ गल हेमचंद्र धातुपाठ.

८ तन्मात्रे अन्तः २ सू. ६—देहोके पार्थिव. ९ तन्मात्रे अन्तः १ सू. २. १० यहदर्शन समुच्चय—श्लोक

२—"दर्शनानि पदेताय" इत्यादि. ११ उदाहरणार्थ श्रीयोग, इगु, महम्मद आदि.

योगका अस्तित्व सभी जगह और सभी जातियोंमें रहा है। तथापि कोई भी विचारशील मनुष्य इस बातका इनकार नहीं कर सकता है कि योगके आविष्कारका या योगको पराकाष्ठा तक पहुँचानेका श्रेय भारतवर्ष और आर्यजातिको ही है। इसके स्यूतमें मुख्यतया तीन बातें पेश की जा सकती हैं। १ योगी; ज्ञानी, तपस्वी आदि आध्यात्मिक महापुरुषोंकी बहुलता; २ साहित्यके आदर्शकी एकरूपता; और ३ लोकश्रद्धा।

१. योगी, ज्ञानी, तपस्वी आदि आध्यात्मिक महापुरुषोंकी संख्या भारतवर्षमें पहिलेसे आज तक इतनी बड़ी रही है कि उसके सामने अन्य सब देश और जातियोंके आध्यात्मिक व्यक्तियोंकी कुल संख्या इतनी अल्प जान पड़ती है जितनी कि गंगाके सामने एक छोटीसी नदी।

२. साहित्यके आदर्शकी एकरूपता—तत्त्वज्ञान, आचार, इतिहास, काल्य, नाटक आदि साहित्यका कोई भी भाग लीजिये उसका अन्तिम आदर्श बहुधा मोक्ष ही होगा। प्राकृतिक दृश्य और कर्मकाण्डके वर्णनने वेदका बहुत बड़ा भाग रोकता है सही, पर इसमें संदेह नहीं कि वह वर्णन वेदका शरीर मात्र है; उसकी आत्मा कुछ और ही है—और वह है परमात्मचित्तन या आध्यात्मिक भावोंका आविष्करण। उपनिषदोंका प्रासाद तो ब्रह्मचिन्तनकी बुनियाद पर ही खड़ा है। प्रमाणविषयक, प्रमेयविषयक कोई भी तत्त्वज्ञान सन्देहभी सूत्रग्रन्थ हो; उसमें भी तत्त्वज्ञानके साध्यरूपसे मोक्षका ही वर्णन मिलेगा। आचारविषयक सूत्र स्मृति आदि सभी ग्रन्थोंमें आचारपालनका मुख्य उद्देश मोक्ष ही माना गया^१ है। रामायण, महाभारत आदिके मुख्य पात्रोंकी महिमा सिर्फ इस लिये नहीं कि वे एक बड़े राज्यके स्वामी थे, पर वह इस लिये है कि अंतमें वे संन्यास या तपस्याके द्वारा मोक्षके अनुष्ठानमें ही लग जाते हैं। रामचन्द्रजी प्रथम ही अवस्थामें वनछिपे योग और मोक्षकी शिक्षा पा लेते^२ हैं। युधिष्ठिर भी गुह्य रस लेकर बाण शय्यापर सोये हुए भीमशितामहसे शान्तिका ही रात पढ़ते^३ हैं। गीता तो रणांगणमें भी मोक्षके एकतम साधन योगका ही उपदेश देती है। कालिदास जैसे शृंगारप्रिय कहलानेवाले कवि भी अपने मुख्य पात्रोंकी मदत्ता मोक्षकी और शुकनेमें ही देखते हैं^४। जैन आगम और बौद्ध पित्रक तो निवृत्तिप्रधान होनेसे मुख्यतया मोक्षके सिवाय अन्य विषयोंका वर्णन करनेमें बहुत ही संकुचित है। शब्दशास्त्रमें

—१ वैशेषिकदर्शन, अ० १ सू० ४ धर्मविशेषप्रयत्नाद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां 'साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानाभिः श्रेयसम्'। —न्यायदर्शन अ० १ सू० १ प्रमाणप्रमेयसंशयप्रमेयजनदृष्टान्तसिद्धि-
न्यायवदत्तकीर्णव्यावृत्तवित्तुष्टाहेत्वाभासच्छ्रुतजातिनिग्रहस्थानानां दृष्टजानाभिः श्रेयसम् ॥ सांख्यदर्शन, अ. १
अथ त्रिविधदुःखालयन्तानि त्रितयन्तपुरुषार्थः ॥ — वेदान्तदर्शन अ० ४, पा० ४, सू० २२ अनादृतिः
शब्दादनादृतिः शब्दात् ॥ — जैनदर्शन तत्त्वार्थ अ० १ सू० १ सत्यदर्शनज्ञानाचारिणां मोक्षमार्गः ॥
२ माण्डूक्यसूत्र अ. ३ गतिधर्मानिरूपणम्; मनुस्मृति अ. १२ श्लोक ८३. ३ देखो योगशास्त्र ४ देखो
महाभारत—शान्तिपर्व. ५ कुमारसंभव—सर्ग ३ तथा ५ तस्या वर्णनम्. शाकुन्तल नाटक दृंक ४ कण्वोक्ति.

भूत्वा विराय चतुरन्तमहीसपत्नी, दीप्यान्तिमप्रतिरथं तनयं निवेदय ।

मर्थां तदापितकुटुम्बभरणे सार्धं, ज्ञाने करिष्यति पदं पुनराश्रमेऽस्मिन् ॥

शेषोऽभ्यस्तविद्यानाम् यौवने विपरीपणाम् । बादके मुनिवृत्तीनाम् योगेनानो तनुत्यजाम् ॥ ८ ॥ सर्ग १

अथ स विपयवाञ्छिताया यथाविधि सूनवे, गृष्टात्तिककुदं दत्ता यूने सिततपधारणम् ।

मुनिवन्तदृष्ट्यायं देव्या तथा सट् त्रिशये, गन्धितवयसामिन्द्राकूणामिदं हि कुलधत्तम् ॥ ७० ॥ खयुवंग. ३

भी शब्दशुद्धिको तत्त्वज्ञानका द्वार मान कर उसका अन्तिम ध्येय परम भेद ही माना है । विशेष क्या ! कामशास्त्र तकका भी आखिरी उद्देश मोक्ष है । इस प्रकार भारतवर्षीय साहित्यका कोई भी स्रोत देखिये उसकी गति समुद्र जैसे अनन्तरिम एक चतुर्थ पुरुषार्थकी ओर ही होगी ।

१ लोकवाचि—आध्यात्मिक विषयकी चर्चावाला और खासकर योगविषयक कोई भी ग्रन्थ किसीने भी लिखा कि लोगोंने उसे अपनाया । बंगाल और दीन हीन अवस्थामें भी भारतवर्षीय लोगोंकी उक्त अभिरुचि यह सूचित करती है कि योगका सम्बन्ध उनके देश व उनकी जातिमें पहलेसे ही चला आता है । इसी कारणसे भारतवर्षकी सभ्यता अल्पमें उत्पन्न हुई कही जाती है । इस धैतिक स्वभावके कारण जब कभी भारतीय लोग तीर्थयात्रा या सफरके लिये पहाड़ों, जंगलों और अन्य तीर्थस्थानोंमें जाते हैं तब वे देखा तबू टालनेसे पहले ही योगियोंको, उनके मठोंको और उनके चिन्तकको भी ढूँढा करते हैं । योगकी श्रद्धाका उद्रेक यहाँ तक देखा जाता है कि किसी गंगे यातेकी गाँजेकी बिलम पूँकते या जड़ों बढ़ाते देखा कि उसके मुँहके धुँपमें या उसकी जड़ों व भस्मलेपमें योगका गन्ध आने लगता है । भारतवर्षके पहाड़, जंगल और तीर्थस्थान भी बिलकुल योगिगन्ध मिलना दुःसंभव है । ऐसी स्थिति अन्य देश और अन्य जातिमें दुर्लभ है । इससे यह अनुमान करना सहज है कि योगको आविष्कृत करनेका तथा पराकाष्ठा तक पहुँचानेका ध्येय बहुत्या भारतवर्षकी और आर्यजातिकी ही है । इस बातकी पुष्टि मेघमूल्दर जैसे विदेशीय और भिन्न संस्कारी विद्वान्को कथनसे भी अच्छी तरह होती है ।^१

आर्यसंस्कृतिकी जड़ और आर्यजातिका लक्षण—ऊपरके कथनसे आर्यसंस्कृतिका मूल आधार क्या है, यह स्पष्ट मालूम हो जाता है । शायद जीवनकी उपादेयता ही आर्यसंस्कृतिकी भित्ति है । इसी पर आर्यसंस्कृतिके चित्रोका चित्रण किया गया है । वर्णविभाग जैसा सामाजिक संगठन और आश्रमव्यवस्था जैसा वैयक्तिक जीवनविभाग उस चित्रणका अनुक्रम उदाहरण है । विद्या, रक्षण, विनिमय और सेवा ये चार जो वर्णविभागके उद्देश्य हैं, उनके प्रवाद गार्हस्थ्य जीवनरूप गेदानमें अलग अलग बह कर भी दानप्रस्थके मुरानेमें मिलकर अन्तिम संग्रामाश्रमके अपरिमेष समुद्रमें एकरूप हो जाते हैं । सारांश यह है कि सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि सभी संस्कृतियोंका निर्माण, स्थूलजीवनकी परिणामावस्था और आध्यात्मिक-जीवनकी परिणामावस्था ऊपर ही किया गया है । अतः एव जो विदेशीय विद्वान् आर्यजातिका लक्षण स्थूलशरीर, उसके जीवनोप, आधार-व्यापार, भाषा, आदिमें देखते हैं वे एकदेशीय भाव हैं । संतीनाग्री, पहाजोगना, पशुधर्मो चराना आदि जो जो ग्रंथ आर्यसंस्कृतिसे निकले गये हैं वे आर्यजातिके अस्माधारण लक्षण नहीं हैं । आर्यजातिका अस्माधारण लक्षण तो परलोकमात्रकी कल्पना भी नहीं है, बल्कि उसकी दृष्टिमें यह लोक भी स्थान है । उसका सत्त्वा और अन्तर्म लक्षण स्थूल जगत्के उसपर वर्तमान परमात्मत्वकी एकाग्रशुद्धि में उपातना करना यही है । इस सर्वव्यापक उद्देश्यके कारण आर्यजाति अपनेको अन्य सब जातियोंसे श्रेष्ठ समझती आई है ।

१. दे प्रहारी वैदित्ये शब्दब्रह्म पर च यत् । शब्दब्रह्माणि निजातः परं ब्रह्माभिगच्छति ॥

व्याकरणान्तरादिः पदार्थदेखनिर्णयो मयति । अर्थाच्चत्त्वज्ञान सत्त्वज्ञानात्तरं धेयः ॥

श्रीदामोदरानुमानम् अ. १ पा. १ पृ. २ लघुभाष्य.

२. " स्थातिरे धर्म मोक्षं च " कामयूय अ. २ पृ. ११ Bombay Edition.

१. देवो कविवर दामोदर कृत " भाषना " पृ. ४.

" Thus in India it was in the forests that our civilization had its birth.....etc "

२ This concentration of thought (एकग्रता) or one-pointedness as the Hindus called it, is something to us almost unknown.

इत्यादि देवो. पृ. २१-बौद्धम् १-संस्कृत द्वाप ओक वि ईस्ट, मेघमूल्दर-प्रस्तावना.

ज्ञान और योगका संबन्ध तथा योगका दर्जा—व्यवहार हो या परमार्थ, किसी भी विषयका ज्ञान तभी परिष्कृत समझा जा सकता है जब कि ज्ञानानुसार आचरण किया जाय। असलमें यह आचरण ही योग है। अत एव ज्ञान योगका कारण है। परन्तु योगके पूर्ववर्ति जो ज्ञान होता है वह अस्पष्ट होता है^१। और योगके बाद होनेवाला अनुभवात्मक ज्ञान स्पष्ट तथा परिष्कृत होता है। इसीसे यह समझ लेना चाहिये कि स्पष्ट तथा परिष्कृत ज्ञानकी एक मात्र कुंजी योग ही है। आधिमौक्तिक या आध्यात्मिक कोई भी योग हो, पर वह जिस देश या जिस जातिमें जितने प्रमाणमें पुष्ट पाया जाता है उस देश या उस जातिका विकास उतना ही अधिक प्रमाणमें होता है। तत्त्वा ज्ञानी यही है जो योगी है^२। जिसमें योग या एकाग्रता नहीं होती वह योगवाशिष्ठीकी परिभाषामें ज्ञानबन्धु है^३। योगके सिवाय किसी भी मनुष्यकी उत्कान्ति हो ही नहीं सकती, क्योंकि मानसिक चंचलताके कारण उसकी सब शक्तियाँ एक ओर न वह कर भिन्न भिन्न विषयोंमें टकराती हैं, और क्षीण हो कर यों ही नष्ट हो जाती हैं। इसलिये क्या किसान, क्या कारीगर, क्या लेखक, क्या शोधक, क्या त्यागी सभीको अपनी नाना शक्तियोंको केन्द्रस्थ करनेके लिये योग ही परम साधन है।

व्यावहारिक और पारमार्थिक योग—योगका कन्वेयर एकाग्रता है, उसकी आत्मा अहंत्वं ममत्त्वा त्याग है। जिसमें सिर्फ एकाग्रताका ही संबन्ध हो वह व्यावहारिक योग, और जिसमें एकाग्रताके साथ साथ अहंत्वं ममत्त्वके त्यागका भी संबन्ध हो वह पारमार्थिक योग है। यदि योगका उक्त आत्मा किसी भी प्रवृत्तिमें—चाहे वह दुनियाकी दृष्टिमें बाल्य ही क्यों न समझी जाती हो—वर्तमान हो तो पारमार्थिक योग ही समझना चाहिये। इसके विपरीत स्थूलदृष्टिवाले जिस प्रवृत्तिको आध्यात्मिक समझते हों, उसमें भी यदि योगका उक्त आत्मा न हो तो उसे व्यवहारिक योग ही कहना चाहिये। यही बात गीताके साम्यगर्भित कर्मयोगमें कही गई है^४।

योग की दो धारयाँ—व्यवहारमें किसी भी वस्तुको परिपूर्ण स्वरूपमें तैयार करनेके लिये पहले दो बातोंकी आवश्यकता होती है। जिनमें एक ज्ञान और दूसरी क्रिया है। चित्तको चित्र तैयार करनेसे पहले उसके स्वरूपका, उसके साधनोंका और साधनोंके उपयोगका ज्ञान होता है, और फिर वह ज्ञान के अनुसार क्रिया भी करवा है। तभी वह चित्र तैयार कर पाता है। वैसे ही आध्यात्मिक क्षेत्रमें भी मोक्षके जिज्ञासुके लिये बन्धमोक्ष, आत्मा और बन्धमोक्षके कारणोंका, तथा उनके परिहार, उपादानका ज्ञान होना जरूरी है। एवं ज्ञानानुसार प्रवृत्ति भी आवश्यक है। इसी से संक्षेपमें यह कहा गया है कि “ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः”। योग क्रियामार्गका नाम है। इस मार्गमें प्रवृत्त होनेसे पहले अधिकारी, आत्मा आदि आध्यात्मिक विषयोंका आरंभिक ज्ञान शास्त्रसे, सत्संगसे, या स्वयं प्रतिभा द्वारा कर लेता है। यह तत्त्वविषयक प्राथमिक ज्ञान प्रवर्तक ज्ञान कहलाता है। प्रवर्तक ज्ञान प्राथमिक दशाका ज्ञान होनेसे सबको एकाकार और एकसा नहीं हो सकता। इसीसे योगमार्गमें तथा उसके परिणामस्वरूप मोक्षस्वरूपमें तात्त्विक भिन्नता न होने पर भी योगमा-

१ इसी अभिप्रायसे गीता योगिको ज्ञानीसे अधिक कहती है। गीता अ. ६ श्लोक ४६—
तपस्विभ्योऽधिको योगी शान्तिभ्योऽपि ततोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद् योगी भवार्जुन ! ॥

२ गीता अ. ५ श्लोक ५—

यस्ताल्मैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते। एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥

३ योगवाशिष्ठ निर्वाण प्रकरण, उत्तरार्ध, सर्ग २१—

व्याचष्टे यः पठति च शास्त्रं भोगाय शिल्पिवत्। यतते न त्वनुष्ठाने ज्ञानबन्धुः स उच्यते ॥

आत्मज्ञानमनासाद्य ज्ञानान्तरालेन ये। सन्तुष्टाः कष्टं वेदन्ते ते स्मृता ज्ञानबन्धवः ॥ इत्यादि-।

४ अ. २ श्लोक ४—

योगस्थः कुरु कर्माणि सगं त्यक्त्वा धनञ्जय। सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

गंठे प्रवर्तक प्राथमिक ज्ञानमें कुछ भिन्नता अनिवार्य है। इस प्रवर्तक ज्ञानका मुख्य विषय आत्माका अस्तित्व है। आत्माका स्वतंत्र अस्तित्व माननेवालोंमें भी मुख्य दो मत हैं—पहला एकात्मवादी और दूसरा नानात्मवादी। नानात्मवादमें भी आत्माकी व्यापकता, अव्यापकता, परिणामिता, अपरिणामिता माननेवाले अनेक पक्ष हैं। पर इन चारोंको एकतरफ रख कर मुख्य जो आत्माकी एकता और अनेकताके दो पाद हैं उनके आधार पर योगमार्गीकी दो चारखें हो गई हैं। अत एव योगविषयक साहित्य भी दो मार्गोंमें विभक्त हो जाता है। कुछ उपनिषदों, योगवादिष्ट, हठयोगप्रदीपिका आदि ग्रन्थ एकात्मवादको लक्ष्यमें रख कर रचे गये हैं। मगधमार्गतक योग प्रकरण, योगवृक्ष तथा जैन और बौद्ध योगग्रन्थ नानात्मवादके आधार पर रचे गये हैं।

यो ग और उ स के सा हि त्य के वि का स का दि ग्द शं न—आर्यसाहित्यका माण्डार मुख्यतया तीन मार्गोंमें विभक्त है—वैदिक, जैन और बौद्ध। वैदिक साहित्यका प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद है। उसमें आधिभौतिक और आधिदैविक वर्णन ही मुख्य है। तथापि उसमें आध्यात्मिक भाव अर्थात् परमात्मचिन्तनका अभाव नहीं है^१। परमात्मचिन्तनका भाग उसमें थोड़ा है सही, पर वह इतना अधिक स्पष्ट, सुन्दर और भावपूर्ण है कि उसको ध्यानपूर्वक देखनेसे यह साफ मालूम पड़ जाता है कि तत्कालीन लोगोंकी दृष्टि केवल बाल्य नहीं थी

१ ब्रह्मविद्या, धुरिका, चूलिका, नादविन्दु, ब्रह्मविन्दु, अमृतविन्दु, ध्यानविन्दु, तेजोविन्दु, दिग्ज्ञा, योगतत्त्व, हंस, इत्यादि।

२ देव्यो “ भागवताच्च उपसंहार ” पृष्ठ २५२.

३ उदाहरणार्थ कुछ सूक्त दिये जाते हैं। ऋग्वेद मं. १ सू. १६४-४६-

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरयो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्याग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

भाषांतरः—योग उसे इन्द्र, मित्र, वरुण, या अग्नि कहते हैं। वह सुंदर पांखवाला दिव्य पक्षी है। एक। ही मनुष्य विद्वान् लोग अनेक प्रकारसे वर्णन करते हैं। कोई उसे अग्नि, यम या यायु भी कहते हैं।

ऋग्वेद मण्ड. ६ सू. १-

वि मे कर्णो पतयतो वि अधुर्वीद ज्योतिर्हृदय आहितं यत्।

वि मे मनश्चरति दूर आधीः किंस्विद् वक्ष्यामि किमु नु मन्यिष्ये ॥ ६ ॥

विश्वे देवा अनमस्यन् मिषानात्स्वामो ! तमसि ताव्यवांसम्। वैश्वानरोऽवतृतये नोऽमर्त्योऽवतृतये नः ॥ ७ ॥

भाषांतरः—मेरे कान विक्रिय प्रकारकी प्रशंसा करते हैं। मेरे नेत्र, मेरे हृदयमें शिव ज्योति और मेरा दूरगती मन [भी] शिक्क प्रशंसा कर रहा है। मैं क्या कहूँ और क्या विचार करूँ ? ६। अंधकार-रिपुता है अग्नि ! तुझको अंधकारसे भय पानेवाले देव नमस्कार करते हैं। वैश्वानर हमारा रक्षण करे। अमर्त्य हमारा रक्षण करे। ७।

ऋग्वेदः—पुरुषसूक्त, मण्डल १० सू. १०.

ब्रह्मजीयां पुरुषः सद्ब्रह्माऽऽत्माऽस्य सद्ब्रह्मात्। स भूमिं विश्वतो जृत्वात्सतिष्ठद्ब्रह्माद्गुलम् ॥ १ ॥

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यम भव्यम्। उतामृतत्वस्येगानो यदभ्रेनातिरोहति ॥ २ ॥

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पुरुषः। पादोत्तर विश्वा भूतानि त्रिषादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥

भाषांतरः—(जो) हजार सिरवाला, हजार आंखवाला, हजार पैरवाला पुरुष (है) यह भूमिको चारों ओरसे घेर कर (घिर भी) हम अंगुल बट कर रहा है। १। पुरुष ही यह सब कुछ है—जो भूत और जो भावि। (यह) अमृतत्वका ईश्वर अपने बटता है। २। इतनी इसकी महिमा—इससे भी यह पुरुष अधिकतर है। सारे भूत उसके एक पाद मात्र हैं—इसके अमर तीन पाद स्वर्गमें हैं। ३

इसके सिवा उसमें ज्ञान^१, श्रद्धा^२, उदारता^३, ब्रह्मचर्य^४, आदि आध्यात्मिक उच्च मानसिक भावोंके चित्र भी बड़ी सूचीवाले मिलते हैं। इससे यह अनुमान करना सहज है कि उस जमानेके लोगोंका शुकाव आध्यात्मिक अवस्था या। यद्यपि ऋग्वेदमें योगशब्द अनेक स्थानोंमें आया है^५, पर सर्वत्र उसका अर्थ प्रायः जोड़ना इतना ही है, ध्यान या समाधि अर्थ नहीं है। इतना ही नहीं बल्कि पिछले योग विषयक साहित्यमें ध्यान, वैराग्य, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि जो योगप्रक्रिया-प्रसिद्ध शब्द पाये जाते हैं वे ऋग्वेदमें मिलकूल नहीं हैं। ऐसा होनेका कारण जो कुछ हो, पर यह निश्चित है कि तत्कालीन लोगोंमें ध्यानकी भी रुचि थी। ऋग्वेदका ब्रह्मसुरण जैसे जैसे विकसित होता गया और उपनिषदके जमानेमें उसने जैसे ही विस्तृत रूप-धारण किया वैसे वैसे ध्यानमार्ग भी अधिक पुष्ट और साङ्गोपाङ्ग होता चला। यही कारण है कि प्राचीन उपनिषदोंमें भी समाधि अर्थमें योग ध्यान आदि शब्द पाये जाते हैं^६। श्वेताश्वतर उपनिषदमें तो स्पष्ट रूपसे योग तथा योगोचित स्थान, प्रत्याहार, धारणा आदि योगाङ्गोंका वर्णन है^७। मध्यकालीन और अर्वाचीन अनेक उपनिषदें तो सिर्फ योगविषयक ही

ऋग्वेदः— पु० सूक्त मं. १९ सू. १२१

हिरण्यगर्भः समवर्ततामे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

स दाधार पृथिवीं धामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।

यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥

भाषांतरः—पहले हिरण्यगर्भ था। यही एत भूत मात्रका पति बना था। उसने पृथ्वी और इष्ट आकाशको धारण किया। किस देवको हम हविसे पूजें ? १। जो आत्मा और बलको देनेवाला है। जिसका विश्व है। जिसके शासनकी देव उपासना करते हैं। अमृत और मृत्यु जिसकी छाया है। किस देवको हम हविसे पूजें ? २।

ऋग्वेद मं. १०—१२९—६ तथा ७—

को अद्वा वेद क इह प्रवोचत् कुत आ जाता कुत इयं विष्टुष्टिः। अर्वाभेदा अत्यविसर्जनेनाथाको वेद यत आ बभूव ॥

इयं विष्टुष्टिर्यत आ बभूव यदि वा दपे यदि वा न। यो अत्यप्यक्ष परमे व्योमन्तो अद्वा वेद यदि वा न वेद ॥

भाषांतरः—कोन जानता है—कोन कह सकता है कि यह किंचिष्टुष्टि कहाँसे उत्पन्न हुई ? देव इसके विविध सर्जनके बाद (हुवे) हैं। कोन जान सकता है कि यह कहाँसे आई ? यह विविध ऋष्टि कहाँसे आई और स्थितिमें है वा नहीं है ? यह बात परमव्योममें जो इसका अन्त्यक्ष है यही जाने—कदाचित् वह भीन जानता हो।

१ मं. १० सू. ७१ । २ मं. १० सू. १९१ । ३ मं. ११ सू. ११७ । ४ मं. १४ सू. १०

५ मंडल १ सूक्त ३४ मंत्र ९। मं. १० सू. १६६ मं. ५। मं. १ सू. १८ मं. ७। मं. १ सू. ५ मं. ३। मं. २ सू. ८ मं. १। मं. ९ सू. ५८ मं. ३।

६ (क) तैत्तिरिय २-४। कठ २-६-११। श्वेताश्वतर २-११, ६-३। (ख) छान्दोग्य ७-६-१, ७-६-२, ७-७-१, ७-२६-१। श्वेताश्वतर १-१४। कोशीतिक ३-२, ३-३, ३-४, ३-६।

७ श्वेताश्वतरोपनिषद् अध्याय २—

त्रिरुजतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिरूप्य ।

ब्रह्मोद्भूतेन प्रतरेत विद्वान्तोतांसि सर्वाणि भयावहानि ॥ ८ ॥

प्राणान्प्रणीक्येह सयुक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोद्गुसीत ।

दुष्टाश्वयुक्तमिव बाहमेनं विद्वान्मनो धारयेताप्रमत्तः ॥ ९ ॥

समे शुचौ शर्करावन्दिवाह्यकावियजिते शब्दजलाश्रयादिभिः ।

मनोनुकूले न तु चक्षुषोदने गुरानिवाताभयणे प्रयोजयेत् ॥ १० ॥ इत्यादि.

है, जिनमें योगशास्त्रकी तरह सांगोपांग योगप्रक्रियाका वर्णन है^४। अथवा यह कहना चाहिये कि ऋग्वेदमें जो परमात्मचिन्तन अंकुरायमाण था वही उपनिषदोंमें पल्लवित-पुष्पित हो कर नाना शाखा-प्रशाखाओंके साथ फल-अवस्थकों प्राप्त हुआ। इससे उपनिषदकालमें योगमार्गका पुष्टरूपमें पाया जाना स्वाभाविक ही है।

उपनिषदोंमें जगत, जीव और परमात्मसम्बन्धी जो तात्त्विक विचार हैं, उसको भिन्न भिन्न ऋषियोंने अपनी दृष्टिसे सूत्रोंमें प्रथित किया, और इस तरह उस विचारको दर्शनका रूप मिला। सभी दर्शनकारोंका आरिरी उद्देश मोक्ष ही रहा है, इससे उन्होंने अपनी अपनी दृष्टिसे तत्त्वविचार करनेके बाद भी संसारसे छुट कर मोक्ष पानेके साधनोंका निर्देश किया है। तत्त्वविचारणामें मतभेद हो सकता है, पर आचरण यानी चारित्र एक ऐसी वस्तु है जिससे सभी विचारशील एकमत हो जाते हैं। बिना चारित्रका तत्त्वज्ञान कीरी यात है। चारित्र यह योगका किंवा योगा-गोंका संक्षिप्त नाम है। अत एव सभी दर्शनकारोंने अपने अपने सूत्रग्रंथोंमें साधन रूपसे योगकी उपयोगिता अवश्य उल्लेख है। यहां तक कि-न्यायदर्शन, जिसमें प्रमाण पद्धतिका ही विचार मुख्य है, उसमें भी महर्षि गौतमने योगको स्थान दिया है^१। महर्षि कणादने तो अपने वैशेषिक दर्शनमें यम, नियम, शौच आदि योगांगोंका भी महत्त्व गाया है^२। सांख्यसूत्रमें योगप्रक्रियाके वर्णनवाले कई सूत्र हैं^३। ब्रह्मसूत्रमें महर्षि बादरायणने तो तीसरे अध्यायका नाम ही साधन अध्याय रक्खा है, और उसमें आसन ध्यान आदि योगांगोंका वर्णन किया है^४। योगदर्शन तो मुख्यत-या योगविचारका ही ग्रन्थ ठहरा, अत एव उसमें सांगोपांग योगप्रक्रियाकी भीमांसाका पाया जाना सहज ही है। योगके स्वरूपके सम्बन्धमें मतभेद न होनेके कारण और उसके प्रतिपादनका उत्तरदायित्व खासकर योगदर्शनके उपर होनेके कारण अन्य दर्शनकारोंने अपने अपने सूत्रग्रंथोंमें थोडासा योगविचार करके विशेष जानकारीके लिये जिज्ञासुओंको योगदर्शन देखनेकी सूचना दे दी है^५। पूर्वमीमांसामें महर्षि जैमिनिने योगका निर्देश तक नहीं किया है सो ठीक ही है, क्योंकि उसमें सकाम कर्मकाण्ड अर्थात् धूम-मार्गकी ही भीमांसा है। कर्मकाण्डकी पटुंच

४ ब्रह्मविशेषनिगद्, धुरिकोषनिगद्, चूलिकोषनिगद्, नादविन्दु, ब्रह्मविन्दु, अमृतविन्दु, ध्यानविन्दु, सेजोविन्दु, योगशिरसा, योगतत्त्व, हंस इत्यादि। देखो गुप्तेनपुत्र-Philosophy of the Upanishads

५-प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनद्वयान्तासिद्धान्तव्यवर्तननियमव्याख्याद्वयविवृत्यष्टाहेत्याभासच्छलजातिनिग्रहस्था-
नानां तत्त्वज्ञानाभिः श्रेयसाधिगमः। शौ० सू० १, १, १॥-धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां
पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानाभिः श्रेयसम् ॥ वै० सू० १, १, ४॥-अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिर्मुक्तितत्त्व-
शुद्ध्यर्थः। तां० द० १, १॥-पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति।
यो० सू० ४, ३३॥-अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्। ब्र. सू. ४, ४, २२।-साम्यदर्शनज्ञानचारित्र्याणि
मोक्षमार्गाः। तत्त्वार्थे सू० १-१ जैन० द० १-१।-बौद्ध दर्शनका तीसरा निरोध नामक आर्यसत्त्व ही मोक्ष है।

१ समाधिपदयोगाभ्यामात् ४-२-३८। अरुणगुहाशुलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशः ४-२-४२। तदंग
गमनियमाभ्यासात्मसंस्कारो योगाभ्यासात्मविष्णुपविः ४-२-४६॥

२ अभिरोचनोपासकब्रह्मचर्यगुरुकुलवासवानप्रस्थयशदानप्रोक्षणदिग्दर्शनश्रममन्त्रकालनियमाश्वास्त्राद्य। ६-२-
-२। अदतस्य शुचिभोजनादभ्युदयो न विद्यते, नियमाभावाद्, विद्यते वाऽध्यान्वत्ताद् यमस्य। ६-२-८।

३ रामोपरतिष्ठांनम् ३-३०। वृत्तिनिरोधात् तत्तिष्ठतिः ३-३१। भार्यामनस्वकर्मणा तत्तिष्ठतिः
३-३२। निरोपसृष्टिर्विधारणाभ्याम् ३-३३। तिष्ठन्गुणान्गमम् ३-३४।

४ आसीनः संभक्ता ४-१-७। ध्यानाथ ४-१-८। अचलस्य चापरेय ४-१-९। स्मरन्ति च
४-१-१०। मन्त्रैकाग्रता तत्राविशेषात् ४-१-११।

५ योगशास्त्राद्याप्यात्मविधिः प्रतिपत्तयः। न्यायदर्शन ४-२-४६ भाष्य।

वर्गतक ही है, मोक्ष उसका साध्य नहीं। और योगका उपयोग तो मोक्षके लिये ही होता है।

जो योग उपनिषदोंमें सूचित और सत्रोंमें सूत्रित है, उसीकी महिमा गीतामें अनेक रूपसे गाई गई है। उसमें योगकी तान कमी कर्मके साथ, कमी भक्तिके साथ और कमी ज्ञानके साथ सुनाई देती है^१। उसके छोटे और तेरहवें अध्यायमें तो योगके मौलिक सप्त सिद्धान्त और योगकी सारी प्रक्रिया आ जाती है^२। कृष्णके द्वारा अर्जुनको गीताके रूपमें योगशिक्षा दिला कर ही महाभारत सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसके अथक स्वरको देखते हुए कहना पड़ता है कि ऐसा होना संभव भी न था। अत एव शान्तिपर्व और अनुशासनपर्वमें योगविषयक अनेक सर्ग वर्तमान हैं, जिनमें योगकी अथेति प्रक्रियाका वर्णन पुनर्लक्षकी परवा न करके किया गया है^३। उसमें याण-शय्यापर लेटे हुए भीष्मसे बार बार पूछनेमें न तो युधिष्ठिरको ही कंटाला आता है, और न उस सुपात्र धार्मिक राजाको शिक्षा देनेमें भीष्मको ही थकावट मालूम होती है। -

योगवाशिष्ठका विस्तृत मद्दल तो योगकी ही भूमिकापर खड़ा किया गया है। उसके छह प्रकरण मानों उसके सुदीर्घ कमरे हैं, जिनमें योगसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी विषय रोचकतापूर्वक वर्णन किये गये हैं। योगकी जो जो बातें योगदर्शनमें संक्षेपमें कही गई हैं, उन्हींका विविधरूपमें विस्तार करके ग्रन्थकारने योगवाशिष्ठका कलेवर बहुत बढ़ा दिया है, जिससे यही कहना पड़ता है कि योगवाशिष्ठ योगका ग्रन्थराज है।

पुराणमें सिर्फ पुराणशिरोमणि भागवतको ही देखिये, उसमें योगका सुमधुर पद्योंमें पूरा वर्णन है^४।

योगविषयक विविध साहित्यसे लोगोंकी रुचि इतनी परिमार्जित हो गई थी कि तान्त्रिक संप्रदायवालोंने भी तन्त्रग्रन्थोंमें योगकी जगह दी, यहां तक कि योग तन्त्रका एक खासा अंग बन गया। अनेक तान्त्रिक ग्रन्थोंमें योगकी चर्चा है, पर उन सबसे-महानिर्वाणतन्त्र, पट्टचक्रनिरूपण आदि मुख्य हैं^५।

१ गीताके अठारह अध्यायोंमें पहले छह अध्याय कर्मयोग प्रधान, बीचके छह अध्याय भक्तियोग प्रधान और अंतिम छह अध्याय ज्ञानयोग प्रधान हैं।

२ योगी युजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः। एकाकी यतचित्तात्मा निरादीरपरिग्रहः ॥ १० ॥ - शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः। नात्युच्छ्रितं नातिनीचं बैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ ११ ॥ तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तोन्द्रियक्रियः। उपविश्यासने युञ्ज्याद् योगमात्मविशुद्धये ॥ १२ ॥ समं कायशितोऽग्नीं धारयन्चर्तुं स्थिरः। संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ १३ ॥ प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारीभ्रतः स्थितः। मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ १४ ॥ अ० ६

३ शान्तिपर्व १९३, २१७, २४६, २५४, इत्यादि। अनुशासनपर्व ३६, २४६ इत्यादि।

४ वैराग्य, मुमुक्षुत्वव्यवहार, उत्पत्ति, स्थिति, उपशम और निर्वाण। ५ स्कन्ध ३ अध्याय २८; स्कन्ध ११-अ० १५, १९, २० आदि। ६ देखो महानिर्वाणतन्त्र ३ अध्याय। देखो पट्टचक्रनिरूपण-

ऐक्यं जीवात्मनोराहुयोंं षोडशशरदाः। शिवात्मनोरभेदेन प्रतिपत्तिं परे विदुः ॥ पृष्ठ ८२

Tantrik Texts में छपा हुआ।

समत्वभावनां नित्यं जीवात्मपरमात्मनोः। सभाषिमाहुर्मुनयः प्रोक्तमष्टाङ्गलक्षणम् ॥ पृ० ९१,,

यदत्र नात्र निर्भासः स्तिमितोदाधिबलं स्मृतम्। स्वरूपशून्यं यद् ध्यानं तत्समाधिर्विधीयते ॥ पृ० ९०,,

त्रिकोणं तस्यान्तः स्फुरति च सततं विशुद्धाकाररूपं।

तदन्तः शून्यं तत् सकलमुरगणैः सेवितं चाविगुप्तम् ॥ पृ० ६०,,

“आहारनिर्हारविहारयोगाः सुसंयुता धर्मविदा तु कार्याः। पृ० ६१,,

चैव चिन्तायाम् स्मृतो धातुभिन्ता तत्त्वेन निश्चलः। एतद् ध्यानमिदं प्रोक्तं सगुणं निर्गुणं द्विधा।

सगुणं वर्णभेदेन निर्गुणं केवलं तथा ॥ पृ० १३४,,

जब नदीमें वाद आती है तब वह चारों ओरसे बहने लगती है। योगका यही हाल हुआ, और वह आसन, मुद्रा, प्राणायाम आदि बाह्य अंगोंमें प्रवाहित होने लगा। बाह्य अंगोंका भेद प्रभेद पूर्वक इतना अधिक वर्णन किया गया और उसपर इतना अधिक जोर दिया गया कि जिससे यह योगकी एक शाखा ही अलग बन गई, जो हठयोगके नामसे प्रसिद्ध है।

हठयोगके अनेक ग्रंथोंमें हठयोगप्रदीपिका, शिवसंहिता, घेरंडसंहिता, गोरक्षपद्धति, गोरक्षशतक आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, जिनमें आसन, बन्ध, मुद्रा, षट्कर्म, कुम्भक, रेचक, पूरक आदि बाह्य योगांगोंका पेट भर भरके वर्णन किया है; और घेरण्डने तो चौरासी आसनको चौरासी लाख तक पहुँचा दिया है।

उक्त हठयोगप्रधान ग्रन्थोंमें हठयोगप्रदीपिका ही मुख्य है, क्योंकि उसीका विषय अन्य ग्रन्थोंमें विस्तार रूपसे वर्णन किया गया है। योगविषयक साहित्यके जिज्ञासुओंको योगतारावली, विन्दुयोग, योगयीज और योगकल्प-द्रुमका नाम भी भूलना न चाहिये। विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दीमें मैथिल पण्डित भवदेवद्वारा रचित योगनिबन्ध नामक हस्तलिखित ग्रन्थ भी देखनेमें आया है, जिसमें विष्णुपुराण आदि अनेक ग्रन्थोंके हवाले देकर योगसम्बन्धी प्रत्येक विषय पर विस्तृत चर्चा की गई है।

संस्कृत भाषामें योगका वर्णन होनेसे सर्व साधारणकी जिज्ञासाको शान्त न देखकर लोकभाषाके योगियोंने भी अपनी जवानमें योगका आलाप करना शुरू कर दिया।

महाराष्ट्रीय भाषामें गीताकी शानदेवकृत शनेश्वरी टीका प्रसिद्ध है, जिसके छठे अध्यायका भाग बड़ा ही हृदयहारी है। निःसन्देह शनेश्वरी द्वारा शानदेवने अपने अनुभव और वाणीकी अवगम्य कर दिया है। सुहीनेना अंधिये रचित माधसगप्रदायानुसारी सिद्धान्तसंहिता भी योगके जिज्ञासुओंके लिये देखनेकी वस्तु है।

कबीरका खीजक ग्रन्थ योगसम्बन्धी भाषासाहित्यका एक सुन्दर मणका है।

अन्य योगी सन्तोंने भी भाषामें अपने अपने योगानुभवकी प्रसादी लोगोंको चम्पाई है, जिससे जनताका बहुत बड़ा भाग योगके नाम मात्रसे मुग्ध बन जाता है।

अत एव हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला आदि प्रसिद्ध प्रत्येक प्रान्तीय भाषामें पातञ्जल योगशास्त्रका अनुवाद तथा विवेचन आदि अनेक छोटे बड़े ग्रन्थ बन गये हैं। अंग्रेजी आदि विदेशीय भाषामें भी योगशास्त्रका अनुवाद आदि बहुत कुछ बन गया है^१, जिसमें बृहत्तम माध्यटीका सहित मूल पातञ्जल योगशास्त्रका अनुवाद विशेष उल्लेख योग्य है।

जैन सम्प्रदाय मिथुन-प्रधान है। उसके प्रवर्तक भगवान् महावीरने श्राव्ह सातसे अधिक समय तक मौन धारण करके सिर्फ आत्मचिन्तनद्वारा योगान्ध्यासमें ही मुग्नतया जीवन बिताया। उनके इत्तारों शिष्य^२ तो ऐसे थे जिन्होंने घरबार छोड़ कर योगान्ध्यासद्वारा साधुजीवन बिताना ही पसंद किया था।

जैन सम्प्रदायके मौलिक ग्रन्थ अगम कहलाते हैं। उनमें साधुचर्याका जो वर्णन है, उसको देखनेसे यह स्पष्ट ज्ञान पड़ता है कि पांच यम; तप, स्वाध्याय आदि नियम; इन्द्रिय-त्रय-रूप प्रत्याहार इत्यादि जो योगके शासक अहं हैं, उन्हींको साधुजीवनका एक मात्र प्राण माना^३ है।

१ प्रो० राजेन्द्रलाल मिश्र, स्वामी विवेकानन्द, भीषुत रामप्रसाद आदि कृत।

२ "चउहसहि समनसाहसीहि छत्तीसहि अजिआगहसीहि" उपयाहगूण।

३ देखो आचारादग, सूत्रहतादग, उतराध्वयन, दशवैकालिक, मुन्याचार, आदि।

जैनशास्त्रमें योगपर यहां तक भार दिया गया है कि पहले तो वह मुमुक्षुओंको आत्मचित्तनके सिवाय दूसरे कार्योंमें प्रवृत्ति करनेकी संमति ही नहीं देता, और अनिवार्य रूपसे प्रवृत्ति करनी आवश्यक हो तो वह निवृत्तिमय प्रवृत्ति करनेको कहता है। इसी निवृत्तिमय प्रवृत्तिका नाम उसमें अष्टप्रवचनमाता¹ है। साधुजीवनकी दैनिक और रात्रिक चर्यामें तीसरे ग्रहरके सिवाय अन्य तीनों ग्रहरोंमें मुख्यतया स्वाध्याय और ध्यान करनेको ही कहा गया है²।

यह बात भूलनी न चाहिये कि जैन आगमोंमें योगअर्थमें प्रधानतया ध्यानशब्द प्रयुक्त है। ध्यानके लक्षण, भेद प्रभेद, आलम्बन आदिका विस्तृत वर्णन अनेक जैन आगमोंमें है³। आगमके बाद निर्युक्तिका नंबर है⁴। उसमें भी आगमगत ध्यानका ही स्पष्टीकरण है। वाचक उमास्वाति कृत तत्त्वार्थसूत्रमें⁵ भी ध्यानका वर्णन है, पर उसमें आगम और निर्युक्तिकी अपेक्षा कोई अधिक बात नहीं है। जिनभद्रगणी धमाश्रमणका ध्यानशतक⁶ आगमादि उक्त ग्रन्थोंमें वर्णित ध्यानका स्पष्टीकरण मात्र है। यहां तकके योगविषयक जैन विचारोंमें आगमोक्त वर्णनकी शैली ही प्रधान रही है। पर इस शैलीको श्रीमान् हरिमद्रसूरिने एकदम बदलकर तत्कालिन परिस्थिति व लोकवृत्तिके अनुसार नवीन परिभाषा दे कर और वर्णनशैली अपूर्वसी बनाकर जैन योग-साहित्यमें नया युग उर्पायित किया। इसके सबूतमें उनके बनाये हुए योगचिन्दु, योगदृष्टिसमुच्चय, योगविशिका, योगशतक⁷, षोडशक ये ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इन ग्रन्थोंमें उन्होंने सिर्फ जैन-मार्गानुसार योगका वर्णन करके ही संतोष नहीं माना है, किन्तु पातञ्जल योगसूत्रमें वर्णित योगप्रक्रिया और उसकी खास परिभाषाओंके साथ जैन संकेतोंका मिलान भी किया है⁸। योगदृष्टिसमुच्चयमें योगकी आठ दृष्टियोंका⁹ जो वर्णन है, वह सारे योगसाहित्यमें एक नवीन दिशा है।

श्रीमान् हरिमद्रसूरिके योगविषयक ग्रन्थ उनकी योगाभिरुचि और योगविषयक व्यापक बुद्धिके खासे नमुने हैं।

इसके बाद श्रीमान् हेमचन्द्रद्विरकृत योगशास्त्रका नंबर आता है। उसमें पातञ्जल-योगशाला-निर्दिष्ट आठ योगांगोंके क्रमसे साधु और गृहस्थ जीवनकी आचार-प्रक्रियाका जैन शैलीके अनुसार वर्णन है, जिसमें आसन तथा

1 देखो उत्तराध्ययन अ० २४।

2 दिवसस्त चउरो भाए, कुजा भिक्षु विअक्खणो। तओ उत्तरगुणे कुजा, दिणभागेसु चउसु वि ॥ ११॥
पदमं पोरिसि सज्जायं, बिहअं छाणं सिआयइ। तइआए गोअरकालं, पुणो चउत्थिए सज्जायं ॥ १२॥
रत्तिं पि चउरो भाए, भिक्षु कुजा विअक्खणो। तओ उत्तरगुणे कुजा, राईभागेसु चउसु वि ॥ १७॥

पदमं पोरिसि सज्जायं, बिहअं छाणं सिआयइ।

तइआए निहमोक्खं तु, चउत्थिए भुजो वि सज्जायं ॥ १८॥—उत्तराध्ययन अ० २६।

3 देखो स्थानाङ्ग अ० ४ उद्देश १। समवायाङ्ग स० ४। भगवती शतक २५—उद्देश ७। उत्तराध्ययन अ० ३०, गा० ३५। 4 देखो आवश्यकनिर्युक्ति कायोत्सर्ग अध्ययन गा. १४६२—१४८६।

5 देखो अ० १ सू० २७ से आगे। 6 देखो हरिमद्रीय आवश्यक वृत्ति प्रतिक्रमणाध्ययन पृ० ५८१।

7 यह ग्रन्थ जैन ग्रन्थावल्लिमें उल्लिखित है, पृ० ११३।

8 समाधिरेष एवान्यैः संप्रशतोऽभिधीयते। सम्यक्प्रकटशूरूपेण वृत्त्यर्थज्ञानतस्तथा ॥ ४१८॥
असंप्रशत एपोऽपि समाधिर्गीयते परैः। निरुद्धाशेषवृत्त्यादितत्त्वरूपानुवेषतः ॥ ४२०॥ इत्यादि, योगचिन्दु।

9 मित्रा तारा बला दिग्ग्रा स्थिरा कान्ता प्रभा परा। नामानि योगदृष्टीनां लक्षणं च निबोधत ॥ १३॥

इन आठ दृष्टियोंका स्वरूप, दृष्टान्त आदि विषय, योगजिज्ञासुओंके लिये देखने योग्य है। इसी विषयपर यशोविजयजीने २१, २२, २३, २४ ये चार द्वात्रिंशिकायें लिखी हैं। साथ ही उन्होंने संस्कृत न जाननेवालोंके हितार्थ आठ दृष्टियोंकी सज्जाय भी गुजराती भाषामें बनाई है।

प्राणायामसे संबन्ध रखनेवाली अनेक बातोंका विस्तृत स्वरूप है; जिसको देखनेसे यह जान पड़ता है कि तत्कालीन लोगोंमें इष्टयोग-प्रक्रियाका कितना अधिक प्रचार था। हेमचन्द्राचार्यने अपने योगशास्त्रमें हरिमद्रसूरिके योगविषयक ग्रन्थोंकी नवीन परिभाषा और रोचक शैलीका कहीं भी उल्लेख नहीं किया है, पर शुभचन्द्राचार्यके ज्ञानार्णवगत पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ, और रूपातीत ध्यानका विस्तृत व स्पष्ट वर्णन किया है^१। अन्तमें उन्होंने स्वानुभवसे विधित, यातायात, शिष्ट और मुलीन ऐसे मन्त्रके चार भेदोंका वर्णन करके नवीनता देनेका भी ज्वाब कौशल दिलाया है^२। निस्तन्देह उनका योगशास्त्र जैन तत्त्वज्ञान और जैन आचारका एक पाठ्य ग्रन्थ है।

इसके बाद उपाध्याय-ध्रीयशोविजयकृत योगग्रन्थोंपर नजर ठहरती है। उपाध्यायजीका शास्त्रज्ञान, तर्क-कौशल और योगानुभव बहुत गम्भीर था। इससे उन्होंने अध्यात्मसार, अध्यात्मोपनिषद् तथा सटीक यत्तीस नत्तीसीयों योग संघन्धी विषयोंपर लिखी हैं, जिनमें जैन मन्त्रव्योक्तोंकी सूक्ष्म और रोचक मीमांसा करनेके उपरान्त अन्य दर्शन और जैनदर्शनका मिलान भी किया है^३। इसके सिवा उन्होंने हरिमद्रसूरिकृत योगविधिका तथा पांडुभक्तपर टीका लिख कर प्राचीन गूढ़ तत्त्वोंका स्पष्ट उद्घाटन भी किया है। इतना ही करके वे सन्तुष्ट नहीं हुए, उन्होंने महर्षि पतञ्जलिकृत योगसूत्रोंके उपर एक छोटीसी वृत्ति भी लिखी है। यह वृत्ति जैन प्रक्रियाके अनुसार लिखी हुई है, इसलिये उसमें यथासंभव योगदर्शनकी भित्ति-स्वरूप सांख्य-प्रक्रियाका जैन-प्रक्रियाके साथ मिलान भी किया है, और अनेक स्थलोंमें उसका सयुक्तिक प्रतिवाद भी किया है। उपाध्याय-वर्जने अपनी विवेचनामें जो मध्यस्थता, गुणग्राहकता, सूक्ष्म समन्वयशक्ति और स्पष्टभाषिता दिखाई है^४ ऐसी दूसरे आचार्योंमें बहुत कम नजर आती है^५।

एक योगसार नामक ग्रन्थ भी श्वेताम्बर साहित्यमें है। कर्ताका उल्लेख उसमें नहीं है, पर उसके दृष्टान्त आदि वर्णनसे जान पड़ता है कि हेमचन्द्राचार्यके योगशास्त्रके आधारपर किसी श्वेताम्बर आचार्यके द्वारा यह रचा गया है। दिगम्बर साहित्यमें ज्ञानार्णव तो प्रसिद्ध ही है, पर ध्यानसार और योगप्रदीप ये दो हस्तालिखित ग्रन्थ भी हमारे देखनेमें आये हैं, जो पद्यबन्ध और प्रमाणमें छोटे हैं। इसके सिवाय श्वेताम्बर दिगम्बर संप्रदायके योगविषयक ग्रन्थोंका कुछ विदेश परिचय जैन ग्रन्थावली पृ० १०६ में भी मिल सकता है। यद्यपि यहाँ तकहीं जैन योगसाहित्य समाप्त हो जाता है।

बौद्ध सम्प्रदाय भी जैन सम्प्रदायकी तरह निवृत्तिप्रधान है। भगवान् गौतम बुद्धने बुद्धत्व प्राप्त होनेसे पहले छह वर्षतक सुखतया ध्यानद्वारा योगान्वास ही किया। उनके दृष्टांतें शिष्य भी उसी मार्ग पर चले। मौलिक बौद्धग्रन्थोंमें जैन आगमोंके समान योग अर्थमें बहुधा ध्यान शब्द ही मिलता है, और उनमें ध्यानके

१ देवो प्रमाण ७-१० तक। २ १२ वीं प्रकाश-श्लोक २-३-४। ३ अध्यात्मसारके योगाधिकार और ध्यानधिकारमें प्रधानतया भगवद्गीता तथा पान्डुलव्यूथका उपयोग करके अनेक जैनप्रक्रियाप्रसिद्ध ध्यान-विषयोंका उक्त दोनों ग्रन्थोंके साथ समन्वय किया है, जो बहुत ध्यानपूर्ण देखने योग्य है। अध्यात्मोप-निषद्के शास्त्र, ज्ञान, क्रिया और साम्य इन चारों योगोंमें प्रधानतया योगसांशुध तथा तीर्त्तरीय उपनिषद्के वाक्योंका अवतरण दे कर तार्त्तव्य देख्य सतलया है। योगावतार यत्तीसीमें ग्रास कर पातञ्जल योगके पदांशोंका जैन प्रक्रियाके अनुसार स्तरीकरण किया है।

४ इसके लिये उनका ज्ञानसार ग्रन्थ जो उन्होंने अंतिम जीवनमें लिखा मादुम होता है यह ध्यानपूर्ण देगता चाहिए। शास्त्रवार्तासमुच्चयकी उनकी टीका (पृ० १००) भी देगनी आवश्यक है।

५ इसके लिये उनके शास्त्रवार्तासमुच्चयवादि ग्रन्थ ध्यानपूर्ण देखने चाहिए, और ग्रास कर उनकी पातञ्जल सम्प्रदाय मननपूर्ण देगनेमें हमारा कथन अवश्य विभक्तनीय मादुम पड़ेगा।

चार भेद नजर आते हैं। उक्त चार भेदके नाम तथा भाष प्रायः वही हैं, जो जैनदर्शन तथा योगदर्शनकी प्रक्रियायें हैं। बौद्ध संप्रदायमें समाधि राज नामक ग्रन्थ भी है। वैदिक, जैन और बौद्ध संप्रदायके योगविषयके साहित्यका हमने बहुत संक्षेपमें अल्पावश्यक परिचय कराया है, पर इसके विशेष परिचयके लिये—केंदुलोगम् केंदुलोगारम्², पृ० १ पृ० ४७७ से ४८१ पर जो योगविषयक ग्रन्थोंकी नामावलि है वह देखने योग्य है।

यहां एक बात खास ध्यान देनेके योग्य है, वह यह कि यद्यपि वैदिक साहित्यमें अनेक जगह हठयोगकी प्रथाको अमाह्य कहा है³, तथापि उसमें हठयोगकी प्रधानतावाले अनेक ग्रन्थोंका और मार्गोंका निर्माण हुआ है। इसके विपरीत जैन और बौद्ध साहित्यमें हठयोगने स्थान नहीं पाया है, इतना ही नहीं, बल्कि उसमें हठयोगका स्पष्ट निषेध भी किया है⁴।

1. सो खो अहं ब्राह्मण विविचेय कामेहि विविच अकुसलेहि धम्मेहि सवितकं सविचारं विवेकजं पीतिसुं खं पढमज्ज्ञानं उपसंपज्ज विहासिं; वितकविचारानं वृत्तसमा अज्झत्तं संपसादनं वेतसो एकोदिभावं अधितल्लं अविचारं समाधिजं पीतिसुलं दुतियज्ज्ञानं उपसंपज्ज विहासिं; पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहासिं; सत्तो' च संपजानो मुखं च कायेन पाटिसंवेदेसिं, यं तं अरिया आचिक्खन्ति—उपेक्खको सतिमा मुखविहारोऽति तति' यज्ज्ञानं उपसंपज्ज विहासिं; सुखस्स च पढाना दुक्खस्स च पढाना पुब्बेऽय सोमनस्स दोमनस्सानं अत्थंगमा' अदुक्खममुखं उपेक्खासति पारिसुद्धिं चतुत्थज्ज्ञानं उपसंपज्ज मज्झिमनिकाये भयभेखसुत्तं विहासिं।

इन्हीं चार ध्यानोंका वर्णन दीर्घनिकाय सामञ्जसकफलसुत्तमें है। देखो प्रो. सि. वि. राजवाड़े कृत मराठी अनुवाद पृ. ७२।

यही विचार प्रो. धर्मोत्तम कौशाम्बी लिखित बुद्धलीलासारसंग्रहमें है। देखो पृ १२८।

जैनसूत्रमें शुद्धध्यानके भेदोंका विचार है, उसमें उक्त सवितर्क आदि चार ध्यान जैसा ही वर्णन है। देखो तत्त्वार्थ अ० ९ सू० ४१—४४।

योगशास्त्रमें संप्रज्ञात समाधि तथा समापत्तिआका वर्णन है। उसमें भी उक्त सवितर्क निर्वितर्क आदि ध्यान जैसा ही विचार है। पा. सू. पा. १-१७, ४२, ४३, ४४।

2 थियरडोर आउप्रेट्ज़क, लिन्डिगर्स, प्रकाशित १८९१ की आवृत्ति १

3 उदाहरणार्थः—

सतीषु युक्तिष्वेतासु हठाश्रियमयन्ति ये। वेतस्ते दीपमुत्सृज्य विनिघ्नन्ति तमोऽङ्गनैः ॥ ३७ ॥

विमूढाः कर्तुमुद्युक्ता ये हठाचेतसो जयम्। ते निवर्णन्ति नागेन्द्रमुन्मत्तं विसतन्तनुभिः ॥ ३८ ॥

चित्तं चित्तस्य याऽदूरं संस्थितं स्वशरीरकम्। साधयन्ति समुत्सृज्य युक्तिं ये तान्हतान् विदुः ॥ ३९ ॥

योगवाशिष्ठ—उपशम प्र० सर्ग ९२,

4 इसके उदाहरणमें बौद्ध धर्ममें बुद्ध भगवान् ने तो शुरूमें कष्टप्रधान तपस्याका आरंभ करके अंतमें मध्यमप्रतिपदा मार्गका स्वीकार किया है—देखो बुद्धलीलासारसंग्रह।

जैनशास्त्रमें श्रीमद्वाहुस्वामिने आवश्यकनिर्णयितमें “ऊरासं ण पिक्कमइ” १५२० इत्यादि उक्तिसे हठयोगका ही निराकरण किया है। श्रीहेमचन्द्राचार्यने भी अपने योगशास्त्रमें

“तन्नामोति मनःस्वार्थं प्राणायामैः कथं चित्। प्राणस्यायमने पीडा तस्यां स्यात् चित्तविप्लवः ॥” इत्यादि उक्तिसे उसी बातको दोहराया है। श्रीयशोधरजीने भी पातञ्जलयोगसूत्रकी अपनी वृत्तिमें (१-३४) प्राणायामको योगका अनिवार्य साधन कह कर हठयोगका ही निरसन किया है।

योगशास्त्र—ऊपरके वर्णनसे मालूम हो जाता है कि—योगप्राप्तिपाका वर्णन करनेवाले छोटे बड़े अनेक ग्रन्थ हैं। इन सब उपलब्ध ग्रन्थोंमें महर्षि-पतञ्जलिकृत योगशास्त्रका आसन ऊँचा है। इसके तीन कारण हैं—१ ग्रन्थकी संक्षिप्तता तथा सरलता, २ विषयकी स्पष्टता तथा पूर्णता, ३ और मध्यस्थभाव तथा अनुभवसिद्धता यही कारण है कि योगदर्शन यह नाम मुनते ही सदसा पातञ्जल योगसूत्रका स्मरण हो आता है। श्रीशंकराचार्यने अपने ब्रह्मसूत्रभाष्यमें योगदर्शनका प्रतिपाद करते हुए जो “अथ सम्यग्दर्शनाभ्युपायो योगः” ऐसा उल्लेख किया है^१, उससे इस बातमें कोई संदेह नहीं रहता कि उनके सामने पातञ्जल योगशास्त्रसे भिन्न दूसरा कोई योगशास्त्र रहा है। क्यों कि पातञ्जल योगशास्त्रका आरम्भ “अथ योगानुशासनम्” इस सूत्रसे होता है, और उक्त भाष्योल्लिखित वाक्यमें भी ग्रन्थारम्भसूचक अथ शब्द है, यद्यपि उक्त भाष्यमें अन्यत्र और भी योगसम्बन्धी दो उल्लेख हैं^२ जिनमें एक तो पातञ्जल योगशास्त्रका संपूर्ण सूत्र ही है^३ और दूसरा उसका अविकल सूत्र नहीं, किन्तु उसके सूत्रसे मिलता जुलता है^४। तथापि “अथ सम्यग्दर्शनाभ्युपायो योगः” इस उल्लेखकी शब्दरचना और स्वतन्त्रताकी और ध्यान देनेसे यही कहना पड़ता है कि पिछले दो उल्लेख भी उसी भिन्न योगशास्त्रके होने चाहिये, जिसका अंश “अथ सम्यग्दर्शनाभ्युपायो योगः” यह वाक्य माना जाय। अतः, जो कुछ हो, आज हमारे सामने तो पतञ्जलिका ही योगशास्त्र उपरिधत्त है, और वह सर्वप्रिय है; इसलिये बहुत संक्षेपमें भी उसका शास्त्र तथा आन्तरिक परिचय कराना अनुपयुक्त न होगा।

इस योगशास्त्रके चार पद और कुल १९५ सूत्र हैं। पहले पादका नाम समाधि, दूसरेका साधन, तीसरेका विभूति, और चौथेका कैवल्यपाद है। प्रथमपादमें मुख्यतया योगका स्वरूप, उसके उपाय और चित्तस्थिरताके उपायोंका वर्णन है। दूसरे पादमें क्रियायोग, आठ योगाङ्ग, उनके फल तथा चतुर्व्यूहका मुख्य वर्णन है ॥

तीसरे पादमें योगजन्य विभूतियोंके वर्णनकी प्रधानता है। और चौथे पादमें परिणामवादके स्थापन, विशानवादके निराकरण तथा कैवल्य अवस्थाके स्वरूपका वर्णन मुख्य है। महर्षि पतञ्जलिनने अपने योगशास्त्रकी नींव सांख्यसिद्धान्तपर डाली है। इसलिये उसके प्रत्येक पादके अन्तमें “योगशास्त्रे सांख्यप्रवचने” इत्यादि उल्लेख मिलता है। “सांख्यप्रवचने” इस विशेषणसे यह स्पष्ट ध्वनित होता है कि सांख्यके सिवाय अन्यदर्शनके सिद्धांतोंके आधारपर भी रचे हुए योगशास्त्र उस समय

१ ब्रह्मसूत्र २-१-३ भाष्यगत।

२ “स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः” ब्रह्मसूत्र १-३-३३ भाष्यगत। योगशास्त्रप्रसिद्धाः मनसः पञ्च वृत्तयः परिगृह्यन्ते, “प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रासमृतयः नाम” २-४-१२ भाष्यगत।

३ वासुदेव शास्त्री अभ्यंकरने अपने ब्रह्मसूत्रके मराठी अनुवादके परिशिष्टमें उक्त दो उल्लेखोंका योगसूत्र-रूपसे निर्देश किया है, पर “अथ सम्यग्दर्शनाभ्युपायो योगः” इस उल्लेखके संबंधमें कहीं भी जहापोह नहीं किया है।

४ मिलाओ पा. २ सू. ४४। ४ मिलाओ पा. १ सू. ६।

५ हेय, हेयहेतु, हान, हानोपाय ये चतुर्व्यूह कहलाते हैं। इनका वर्णन सूत्र १६-२६ तकमें है।

मौजुद थे या रचे जाते थे। इस योगशास्त्रके ऊपर अनेक छोटे बड़े टीका ग्रन्थ¹ हैं, पर व्यासकृत भाष्य और वाचस्पतिकृत टीकासे उसकी उपादेयता बहुत बढ़ गई है।

सत्र दर्शनोंके अन्तिम साध्यके सम्बन्धमें विचार किया जाय तो उसके दो पक्ष दृष्टिगोचर होते हैं प्रथम पक्षका अन्तिम साध्य शाश्वत सुख नहीं है। उसका मानना है कि सुक्तिमें शाश्वत सुख नामक कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है, उसमें जो कुछ है वह दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति ही। दूसरा पक्ष शाश्वतिक सुखत्याभको ही मोक्ष कहता है। ऐसा मोक्ष हो जानेपर दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति आप ही आप हो जाती है। वैशेषिक नैयायिक², सांख्य³, योग⁴, और शैवदर्शन⁵ प्रथम पक्षके अनुगामी हैं। वेदान्त⁶ और जैनदर्शन⁷, दूसरे पक्षके अनुगामी हैं।

योगशास्त्रका विषय-विभाग उसके अन्तिमसाध्यानुसार ही है। उसमें गौण मुख्य रूपसे अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित हैं, पर उन सबका संक्षेपमें वर्गीकरण किया जाय तो उसके चार विभाग हो जाते हैं। १ हेय, २ हेय-हेतु, ३ हान, ४ हानोपाय। यह वर्गीकरण स्वयं सूत्रकारने किया है; और इसीसे भाष्यकारने योगशास्त्र-को चतुर्व्यूहात्मक कहा है⁸। सांख्यसूत्रमें भी यही वर्गीकरण है। बुद्ध भगवान्ने इसी चतुर्व्यूहको आर्य-सत्य नामसे प्रसिद्ध किया है; और योगशास्त्रके आठ योगाङ्गोंकी तरह उन्होंने चौथे आर्य-सत्यके साधनरूपसे आर्य अष्टाङ्गमार्गका⁹ उपदेश किया है।

दुःख हेय¹⁰, अविद्या हेयका कारण है¹¹, दुःखका आत्यन्तिक नाश हान है¹², और विवेक-स्थिति हानका उपाय है¹³।

उक्त वर्गीकरणकी अपेक्षा दूसरी रीतिसे भी योगशास्त्रका विषय-विभाग किया जा सकता है। जिससे कि उसके मन्तव्योंका शान विशेष स्पष्ट हो। यह विभाग इस प्रकार है-१ हाता, २ ईश्वर, ३ जगत्, ४ संसार-मोक्षका स्वरूप, और उसके कारण।

१. हाता दुःखसे छुटकारा पानेवाले द्रष्टा अर्थात् चेतनका नाम है। योग-शास्त्रमें सांख्य¹⁴

1 व्यास कृत भाष्य, वाचस्पतिकृत तत्त्ववैशारदी टीका, भोजदेवकृत राजमार्तंड, नागोजीभट्ट कृत वृत्ति, विज्ञानाभिधु कृत यार्तिक, योगचन्द्रिका, मणिप्रभा, भावागणेशीय वृत्ति, बालरामोदासीन कृत टिप्पण आदि।

2 "तदलन्तविमोक्षोऽपवर्गः" न्यायदर्शन १-१-२२। 3 ईश्वरकृष्णकारिका १। 4 उसमें हान्तत्व मान कर दुःखके आत्यन्तिक नाशको ही हान कहा है। 5 बुद्ध भगवान्के तीक्ष्ण निरोध नामक आर्यसत्यका मतत्व दुःख नाशसे है। 6 वेदान्त दर्शनमें ब्रह्मको सच्चिदानन्दस्वरूप माना है, इसीलिये उसमें नित्यसुखकी अभिव्यक्तिका नाम हि मोक्ष है। 7 जैन दर्शनमें भी आत्माको सुखस्वरूप माना है, इसलिये मोक्षमें स्वाभाविक सुखकी अभिव्यक्ति ही उस दर्शनको मान्य है।

8 यथा चिकित्साशास्त्रं चतुर्व्यूहम्-रोगो रोगहेतुरारोग्यं भैषज्यमिति, एवमिदमपि शास्त्रं चतुर्व्यूहमेव। तद्यथा-संसारः संसारहेतुर्गोष्ठो मोक्षोपाय इति। तत्र दुःखबहुलः संसारो हेयः। प्रधानपुरुषयोः संयोगो हेयहेतुः। संयोगस्यात्यन्तिकी निवृत्तिर्हानम्। हानोपायः सम्यग्दर्शनम्। पा० २ सू० १५ भाष्य।

9 सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि। बुद्धलीलासार संग्रह. पृ. १६०। 10 "दुःखं हेयमानागतम्" २-१६ यो. सू। 11 "द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः २-१७। "तस्य हेतुरविद्या" २-२४ यो. सू.।

12 "तदभावात् संयोगाभावो हानं तद् दूरोः कैवल्यम्" २०-२६ यो. सू। 13 "विवेकख्यातिरवि-
प्लवा हानोपायः" २-२६. यो. सू। 14 "पुरुषबहुत्वं सिद्धं" ईश्वरकृष्णकारिका-१८।

वैशेषिक^१ नैयायिक, बौद्ध, जैन^२ और पूर्णप्रश्न (मध्य^३) दर्शनके समान द्वैतवाद अर्थात् अनेक चेतन माने गये हैं^४।

योगशास्त्र चेतनको जैन दर्शनकी तरह^५ देहप्रमाण अर्थात् मध्यमपरिमाणवाला नहीं मानता, और मध्यसम्प्रदायकी तरह अणुप्रमाण भी नहीं मानता^६ किन्तु सांख्य^७ वैशेषिक^८, नैयायिक और शांकरवेदान्तकी^९ तरह वह उसको व्यापक मानता है^{१०}।

इसी प्रकार वह चेतनको जैनदर्शनकी तरह^{११} परिणामि-नित्य नहीं मानता, और न बौद्ध दर्शनकी तरह उसको क्षणिक-अनित्य ही मानता है, किन्तु सांख्य आदि उक्त शेष दर्शनोंकी तरह^{१२} वह उसे कूटस्थ-नित्य मानता^{१३} है।

२. ईश्वरके सम्बन्धमें योगशास्त्रका मत सांख्य-दर्शनसे भिन्न है। सांख्य दर्शन नाना चैतनोंके अतिरिक्त ईश्वरको नहीं मानता^{१४}, पर योगशास्त्र-सम्मत ईश्वरका स्वरूप नैयायिक-वैशेषिक आदि दर्शनोंमें माने गये ईश्वरस्वरूपसे कुछ भिन्न है। योगशास्त्रने ईश्वरको एक अलग व्यक्ति तथा शास्त्रोपदेशक माना है सही, पर उसने नैयायिक आदिकी तरह ईश्वरमें नित्यज्ञान, नित्यईच्छा और नित्यकृतिका सम्बन्धन मान कर इसके स्थानमें

१ “व्यवस्थातो नाना” ३-२-२०. वैशेषिकदर्शन। २ “पुद्गलजीवास्तनेकद्रव्याणि” ५-५. तत्त्वार्थसूत्र-भाष्य।

३ जीवेश्वरभिदा चैव जडेश्वरभिदा तथा। जीवभेदो मिथश्चैव जडजीवभिदा तथा॥

मिथश्च जडभेदो यः प्रपञ्चो भेदपञ्चकः। सोऽयं सत्योऽप्यनादिश्च सादिश्चेन्नाशमाप्नुयात्॥

—सर्वदर्शनसंग्रह पूर्णप्रश्नदर्शन।

४ “कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात्” २-२२ यो. सू.। ५ असंख्येयभागादिषु जीवानाम्”। १५। “प्रदेशसंहारविचर्गाभ्यां प्रदीपवत्” १६-तत्त्वार्थसूत्र अ० ५।

६ देखो “उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम्”। ब्रह्मसूत्र २-३-१८ पूर्णप्रश्न भाष्य। तथा मिलान कर्त्ता अम्यं-करशास्त्री कृत मराठी शांकरभाष्य अनुवाद भा. ४ पृ. १५३ टिप्पण ४६।

७ “निष्क्रियस्य तदसम्भवात्” सां. सू. १-४९, निष्क्रियस्य-विभोः पुरुषस्य गत्यसम्भवात्-भाष्य विज्ञानमिश्र।

८ विभवान्महानाकाशस्तथा चात्मा।” ७-१-२२-वै. द.। ९ देखो ब्र. सू. २-३-२९० भाष्य।

१० इसलिये कि योगशास्त्र आत्मस्वरूपके विषयमें सांख्यसिद्धान्तानुसारी है।

११ “नित्यावस्थितान्यरूपाणि” ३। “उत्पादव्ययप्रौढ्ययुक्तं सत्”। २९। “तद्भावाव्ययं नित्यम् ३०। तत्त्वार्थसूत्र अ० ५ भाष्य सहित।

१२ देखो ई० क० कारिका ६३ सांख्यतत्त्वकौमुदी। देखो न्यायदर्शन ४-१-१०। देखो ब्रह्मसूत्र २-१-१४। २-१-२७; शांकरभाष्य सहित।

१३ देखो योगसूत्र. “सदाज्ञाताश्चिच्चवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्य अपरिणामित्वात्” ४-१८। “चितेर-प्रतिसंक्रमायास्तदाऽकारापत्तौ स्वबुद्धिसेवेदनम्” ४-२२। तथा “द्वयी चैवं नित्यता, कूटस्थनित्यता, परिणामिनित्यता च। तत्र कूटस्थनित्यता पुरुषस्य, परिणामिनित्यता गुणानाम्” इत्यादि ४-३३ भाष्य।

१४ देखो सांख्यसूत्र १-९२ आदि।

सत्त्वगुणका परमप्रकर्ष मान कर तद्द्वारा जगत्तुल्यतादि की सब व्यवस्था घटा दी है ।

३ योगशास्त्र हृदय जगत्को न तो जैन, वैशेषिक, नैयायिक दर्शनों की तरह परमाणुका परिणाम मानता है, न शांकरवेदान्त दर्शन की तरह ब्रह्मका विवर्त या ब्रह्मका परिणाम ही मानता है, और न बौद्धदर्शन की तरह शून्य या विशान्वयम्बक ही मानता है; किन्तु सांख्य दर्शन की तरह यह उसको प्रकृतिका परिणाम तथा अनादि—अनन्त—प्रवाहस्वरूप मानता है ।

४ योगशास्त्रमें वासना क्लेश और कर्मका नाम ही संसार है, तथा वासनादिका अभाव अर्थात् चेतनके स्वरूपावस्थानका नाम मोक्ष^१ है । उसमें संसारका मूल कारण अविद्या और मोक्षका मुख्य हेतु सम्यग्दर्शन अर्थात् योगजन्य विवेकख्याति माना गया है ।

महर्षि पतञ्जलि की दृष्टिविशालता—यह पढ़ते कदा जा चुका है कि सांख्य सिद्धान्त और उसकी प्रक्रियाको ले कर पतञ्जलिने अपना योगशास्त्र रचा है, तथापि उनमें एक ऐसी विशेषता अर्थात् दृष्टिविशालता नजर आती है जो अन्य दार्शनिक विद्वानोंमें बहुत कम पाई जाती है । इसी विशेषताके कारण उनका योगशास्त्र मानों सर्वदर्शनसमन्वय बन गया है । उदाहरणार्थ सांख्यका निरीश्वरवाद जब वैशेषिक, नैयायिक आदि दर्शनोंके द्वारा अच्छी तरह निरस्त हो गया और साधारण लोक-स्वभावका झुकाव भी ईश्वरोपासना की ओर विशेष मालूम पड़ा, तब अधिकारभेद तथा रूचिविविचित्रताका विचार करके पतञ्जलिने अपने योगमार्गमें ईश्वरोपासनाको भी स्थान^२ दिया, और ईश्वरके स्वरूपका उन्होंने निम्न भावसे ऐसा निरूपण^३ किया है जो सबकी मान्य हो सके ।

पतञ्जलिने सोचा कि उपासना करनेवाले सभी लोगोंका साध्य एक ही है, फिर भी वे उपासना की भिन्नता और उपासनामें उपयोगी होनेवाली प्रतीकों की भिन्नताके व्यामोहमें अज्ञानवश आपस आपसमें लड़ मत्ते हैं, और इस धार्मिक कलहमें अपने साध्यको लोक भूल जाते हैं । लोगोंको इस अज्ञानसे हटा कर सत्-पथपर खानेके लिये उन्होंने कह दिया कि तुम्हारा मन जिसमें लगे उसीका ध्यान करो । जैसी प्रतीक तुम्हें पसंद आवे वैसी प्रतीक^४ ही उपासना करो, पर किसी भी तरह अपना मन एकाग्र व स्थिर करो, और तद्द्वारा परमात्म-चिन्तनके सच्चे पात्र बनो । इस उदारता की मूर्तिस्वरूप मतभेदसहिष्णु आदेशके द्वारा पतञ्जलिने सभी उपासकोंको योग-मार्गमें स्थान दिया, और ऐसा करके धर्मके नामसे होनेवाले कलहको कम कर-

१ यद्यपि यह व्यवस्था मूल योगसूत्रमें नहीं है, परन्तु भाष्यकार तथा टीकाकारने इसका उपादान किया है । देखो पातञ्जल यो. पा. १ सू. २४ भाष्य तथा टीका ।

२ तदा द्रष्टुः स्वरूपावस्थानम् । १-३ योगसूत्र ।

३ “ ईश्वरप्रणिधानाद्वा ” १-३३ ।

४ “ क्लेशकर्मविपाकाद्यैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ” “ तत्र निरक्षितयं सर्वशरीरजम् ” । “ पूर्व-पामपि गुरुः कालेनाऽनवच्छेदात् ” । (१-२४, २५, २६)

५ “ यथाऽभिमतध्यानाद्वा ” १-३९ इसी भाष्य की सूचक महाभारतमें—

ध्यानमुत्पादयत्यत्र, संहितावलसंभवात् । यथाभिमतमन्त्रेण, प्रणवाद्यं जपेच्छ्रुती ॥

(शान्तिपर्व प्र० १९४ श्लो. २०) यह उक्ति है । और योगवाशिष्ठमें—

यथाभिवाञ्छितध्यानाच्चिरमेकतथोदितान् । एकतत्त्वधुनाभ्यासात्प्राणस्पन्दो निरुप्यते ॥

(उपशम प्रकरण सर्ग ७८ श्लो. १६ ।) यह उक्ति है ।

नेका उन्होंने सच्चा मार्ग लोगोंको बतलाया । उनकी इस दृष्टिविशालताका असर अन्य गुण-माही आचार्यों-पर भी पड़ा¹, और वे उस मतभेदसहिष्णुताके तत्त्वका मर्म समझ गये ।

वैशेषिक, नैयायिक आदिकी ईश्वरविषयक मान्यताका तथा साधारण लोगोंकी ईश्वरविषयक भ्रष्टाका योगमार्गमें उपयोग करके ही पतञ्जलि चुप न रहे, पर उन्होंने वैदिकेतर दर्शनोंके सिद्धान्त तथा प्रक्रिया जो योगमार्गके लिये सर्वथा उपयोगी जान पड़ी उसका भी अपने योगशास्त्रमें बड़ी उदारतासे संग्रह किया । यद्यपि बौद्ध विद्वान् नागार्जुनके विशानवाद तथा आत्मपरिणामित्ववादको युक्तिहीन समझ कर या योगमार्गमें अनुपयोगी समझ कर उसका निरसन चौथें पादमें किया² है, तथापि उन्होंने बुद्धभगवान्‌के परमप्रिय चार आर्यसत्त्वोंका³ हेय, हेयहेतु, हान और हानोपाय रूपसे स्वीकार निःसंकोच भावसे अपने योगशास्त्रमें किया है ।

1 पुष्पैश्च बलिना चैव शस्त्रैः स्तोत्रैश्च शोभनैः । देवानां पूजनं श्रेयं शीघ्रश्रद्धासमन्वितम् ॥
अविशेषेण सर्वेषामधिमुक्तिवशेन या । यद्दिणां माननीया यत्सर्वं देवा महात्मनाम् ॥
सर्वान्देवाभ्रमस्पन्ति नैकं देवं समाभिताः । जितेन्द्रिया जितक्रोधा दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥
चारिसंजीवनीचारन्याय एव सतां मतः । नान्यथाप्रेष्टसिद्धिः स्याद्विशेषैरादिकर्मणाम् ॥
गुणाधिक्यपरिशानाद्विशेषेऽप्येतद्विष्यते । अद्वेषेण तदन्येषां वृत्ताधिक्ये तथात्मनः ॥

योगविन्दु श्लो. १६-२०

जो विशेषदर्शी होते हैं, वे तो किसी प्रतीक विशेष या उपासना विशेषको स्वीकार करते हुए भी अन्य प्रकारकी प्रतीक माननेवालों या अन्य प्रकारकी उपासना करनेवालोंके द्वेष नहीं रखते, पर जो धर्मीभिमानी प्रथमाधिकारी होते हैं वे प्रतीकभेद या उपासनाभेदके व्यामोहसे ही आपसमें लड़ मरते हैं । इस अनिष्ट तत्त्वको दूर करनेके लिये ही श्रीमान् हरिभद्रचरिते उक्त पद्यांमें प्रथमाधिकारीके लिये सब देवोंकी उपासनाको व्यामोहपूर्ण बतलानेका उदार प्रयत्न किया है । इस प्रयत्नका अनुकरण श्रीयशोविजयजीने भी अपनी “पूर्व सेवाद्विविधिका ” “आठदृष्टियोंकी सज्जाय ” आदि ग्रन्थोंमें किया है । एकदेशीय सम्प्रदायाभिनिवेशी लोगोंको समझानेके लिये ‘चारिसंजीवनीचार ’ न्यायका उपयोग उक्त दोनों आचार्योंने किया है । यह न्याय बड़ा मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद है ।

इस समभावसूचक दृष्टान्तका उपनय श्रीमान्विमलने आठदृष्टिकी सज्जाय पर किये हुए अपने गूजर-राती टपेमें बहुत अच्छी तरह षट्पाया है, जो देखने योग्य है । इसका भाव संक्षेपमें इस प्रकार है । किसी स्त्रीने अपनी सखीसे कहा कि मेरा पति मेरे अधीन न होनेसे मुझे बड़ा कष्ट है । यह सुन कर उस आगन्तुक सखीने कोई जड़ी खिला कर उस पुरुषकी बेल बना दिया, और वह अपने स्थानको चली गई । पतिके बेल बन जानेसे उसकी पत्नी दुःखित हुई, पर फिर वह पुरुषरूप बनानेका उपाय न जाननेके कारण उस बेलरूप पतिको चराया करती थी, और उसकी सेवा किया करती थी । किसी समय अचानक एक विद्याधरके मुखसे ऐसा सुना कि अगर बेलरूप पुरुषको सजीवनी नामक जड़ी चराई जाय तो वह फिर असली रूप धारण कर सकता है । विद्याधरसे यह भी सुना कि वह जड़ी अमुक वृक्षके नीचे है । पर उस वृक्षके नीचे अनेक प्रकारकी वनस्पति होनेके कारण वह स्त्री सजीवनीको पहचाननेमें असमर्थ थी । इससे उस दुःखित स्त्रीने अपने बेलरूप-धारि पतिको सब वनस्पतियों चरा दीं । जिनमें सजीवनीको भी वह बेल भर गया । जैसे विशेष परीक्षा न होनेके कारण उस स्त्रीने सब वनस्पतियोंके साथ सजीवनी खिला कर अपने पतिका कृत्रिम बेलरूप लुटाया, और असली मनुष्यत्वको प्राप्त कराया, वैसे ही विशेष परीक्षाधिकल प्रथमाधिकारी भी सब देवोंकी समभावसे उपासना करते करते योगमार्गमें विकास करके इष्ट लाभ कर सकता है ।

2 देखो सू० १५, १८ ।

उदुःख, संशुद्ध, निरोध और मार्ग ।

जैन दर्शनके साथ योगशास्त्रका सादृश्य तो अन्य सब दर्शनोंकी अपेक्षा अधिक ही देखनेमें आता है । यह बात स्पष्ट होनेपर भी बहुतोंको विदित ही नहीं है । इसका सبब यह है कि जैनदर्शनके खास अभ्यासी ऐसे बहुत कम हैं जो उदारता पूर्वक योगशास्त्रका अवलोकन करनेवाले हों, और योगशास्त्रके खास अभ्यासी भी ऐसे बहुत कम हैं जिन्होंने जैनदर्शनका बारीकीसे ठीक ठीक अवलोकन किया हो । इसलिये इस विषयका विशेष खूलासा करना यहाँ अप्राप्तदिशक न होगा ।

योगशास्त्र और जैनदर्शनका सादृश्य मुख्यतया तीन प्रकारका है । १ शब्दका, २ विषयका और ३ प्रक्रियाका ।

१ मूल योगसूत्रमें ही नहीं किन्तु उसके भाष्यतकमें ऐसे अनेक शब्द हैं जो जैनतर दर्शनोंमें प्रसिद्ध नहीं हैं, या बहुत कम प्रसिद्ध हैं, किन्तु जैन शास्त्रमें खास प्रसिद्ध हैं । जैसे—भवप्रत्यय, १ सवितर्क—सविचार-निर्विचार^२, महाप्रत^३, कृत-कारित-अनुमोदित^४, प्रकाशावरण^५, सोपक्रम-निरूपक्रम^६, वज्रसंहनन^७, केवली^८, कुशल^९, ज्ञानावरणीयकर्म^{१०}, सम्यग्ज्ञान, ११ सम्यग्दर्शन, १२ सर्वज्ञ, १३ क्षीणक्लेश, १५ चरमदेह^{१६} आदि ।

१ “ भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ” योगसू. १-१९ । “ भवप्रत्ययो नारकदेवानाम् ” तत्त्वार्थ अ. १-२२ ।

२ ध्यानविशेषरूप अर्थमें ही जैनशास्त्रमें ये शब्द इस प्रकार हैं “ एकाग्रये सवितर्के पूर्वे ” (तत्त्वार्थ अ. ९-४३) “ तत्र सविचारं प्रथमम् ” भाष्य “ अविचारं द्वितीयम् ” तत्त्वा० अ० ९-४४ । योगसूत्रमें ये शब्द इस प्रकार आये हैं—“ तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पेः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः ” “ स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपान्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ” “ एतदेव सविचारं निर्विचारा न दृग्धामविषया व्याख्याता ” १-४२, ४३, ४४ ।

३ जैनशास्त्रमें मुनिसम्बन्धी पाँच यमोंके लिये यह शब्द बहुत ही प्रसिद्ध है । “ सर्वतो विरतिर्महाप्रतमिति तत्त्वार्थ ” अ० ७-२ भाष्य । यही शब्द उसी अर्थमें योगसूत्र २-३१ में है ।

४ ये शब्द जिस भावके लिये योगसूत्र २-३१ में प्रयुक्त हैं, उसी भावमें जैनशास्त्रमें भी आते हैं, अन्तर सिर्फ इतना है कि जैनग्रन्थोंमें अनुमोदितके स्थानमें बहुधा अनुमतशब्द प्रयुक्त होता है । देखो—तत्त्वार्थ, अ. ६-९ ।

५ यह शब्द योगसूत्र २-५२ तथा ३-४३ में है । इसके स्थानमें जैनशास्त्रमें ‘ ज्ञानावरण ’ शब्द प्रसिद्ध है । देखो तत्त्वार्थ, ६-११ आदि ।

६ ये शब्द योगसूत्र ३-२२ में हैं । जैन कर्मविषयक साहित्यमें ये शब्द बहुत प्रसिद्ध हैं । तत्त्वार्थमें भी इनका प्रयोग हुआ है, देखो—अ. २-५२ भाष्य ।

७ यह शब्द योगसूत्र ३-४६ में प्रयुक्त है । इसके स्थानमें जैन ग्रन्थोंमें ‘ वज्रकणभनाराचसंहनन ’ ऐसा शब्द मिलता है । देखो तत्त्वार्थ अ० ८-१२ भाष्य ।

८ योगसूत्र २-२७ भाष्य, तत्त्वार्थ अ० ६-१४ ।

९ देखो योगसूत्र २-२७ भाष्य, तथा दशवैकालिकनिर्युक्ति गाथा १८६ ।

१० देखो योगसूत्र २-१६ भाष्य, तथा आवश्यकनिर्युक्ति गाथा ८९३ ।

११ योगसूत्र २-२८ भाष्य, तत्त्वार्थ अ० १-३ ।

१२ योगसूत्र ४-१५ भाष्य, तत्त्वार्थ अ० १-२ ।

१३ योगसूत्र ३-४९ भाष्य, तत्त्वार्थ ३-४९ ।

१४ योगसूत्र १-४ भाष्य । जैन शास्त्रमें बहुधा ‘ क्षीणमोह ’ ‘ क्षीणकषाय ’ शब्द मिलते हैं । देखो तत्त्वार्थ अ० ९-३८ ।

१५ योगसूत्र २-४ भाष्य, तत्त्वार्थ अ० २-५२

२ प्रसुप्त, तनु आदिद्वैशावस्था^१, पंच यम,^२ योगजन्य विभूति,^३ सोपक्रम निरुपक्रमः^४ कर्मका स्तम्भ, तथा उसके दृष्टान्त, अनेक कार्योंका^५ निर्माण आदि ।

१ प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार इन चार अवस्थाओंका योगसूत्र २-४ में वर्णन है । जैन-शास्त्रमें वही भाव मोहनीयकर्मकी सत्ता, उपशमस्योपशम, विरोधिप्रकृतिके उदयादिकृत व्यवधान और उदयावस्थाके वर्णनरूपसे वर्तमान है । देखो योगसूत्र २-४ की गणोविजयकृत वृत्ति ।

२ पंच यमोंका वर्णन महाभारत आदि ग्रन्थोंमें है सही, पर उसकी परिपूर्णता “जातिदेशकाल-समयाऽनवच्छिन्नाः सर्वभौमा महाव्रतम्” योगसूत्र २-३१ में तथा दशवैकालिक अध्ययन ४ आदि जैनशास्त्रपतिपादित महाव्रतांमें देखनेमें आती है ।

३ योगसूत्रके तीसरे पादमें विभूतियोंका वर्णन है, वे विभूतियाँ दो प्रकारकी हैं । १ वैशानिक २ शारीरिक । अतीताऽनागतज्ञान, सर्वभूतदृष्टज्ञान, पूर्वजातिज्ञान, परचित्तज्ञान, भुवनज्ञान, ताराव्यूहज्ञान, आदि ज्ञान-विभूतियाँ हैं । अन्तर्धान, इस्तिदल, परकायप्रवेग, आणमादि ऐश्वर्य तथा रूपलावण्यादि कायसंपत् । इत्यादि शारीरिक विभूतियाँ हैं । जैनशास्त्रमें भी अवधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान, जातिस्मरणज्ञान, पूर्वज्ञान आदि ज्ञानलब्धियाँ हैं, और आमौषधि, विपुडौषधि, स्त्रेष्मौषधि, सर्वौषधि, जंघाचारण-विद्याचारण, वैक्रिय, आहारक आदि शारीरिक लब्धियाँ हैं । देखो गा० ६९, ७० आवश्यकनियुक्ति लब्धि यह विभूतिका नामान्तर है ।

४ योगभाष्य और जैनग्रन्थोंमें सोपक्रम निरुपक्रम आयुक्रमका स्वरूप विस्तृत एकसा है, इतना ही नहीं बल्कि उस स्वरूपको दिखाने हुए भाष्यकारने यो. सू. ३-२२ के भाष्यमें आर्द्र बल और तृणराशिके जो दो दृष्टान्त लिखे हैं, वे आवश्यकनियुक्ति (गाथा-१५६) तथा विशेषावश्यक भाष्य (गाथा-३० ६१) आदि जैनशास्त्रमें सर्वत्र प्रसिद्ध हैं. पर तत्त्वार्थ (अ० -२५२) के भाष्यमें उक्त दो दृष्टान्तोंके उपरान्त एक तीसरा गणितविषयक दृष्टान्त भी लिखा है । इस विषयमें उक्त व्यासभाष्य और तत्त्वार्थभाष्यका शाब्दिक सादृश्य भी बहुत अधिक और अर्थसूचक है ।

“यथाऽऽर्द्रबल वितानितं लघ्वीयत्वा कालेन शुभ्यन् तथा सोपक्रमम् । यथा च तदेव सर्वाणिहृतं चिरेण संशुष्येद् एवं निरुपक्रमम् । यथा चाग्निः शुष्के कक्षे मुक्तो वातेन वा समन्ततो युक्तः शेषीयसा कालेन दहेत् तथा सोपक्रमम् । यथा वा स एवाऽग्निस्तृणराशौ क्रमशोऽव्ययवैपु न्यस्तश्चिरेण दहेत् तथा निरुपक्रमम् ” योग ३-२२ भाष्य । यथाहि संहतस्य शुष्कस्यापि तृणराशेरव्यवशः क्रमेण दह्यमानस्य चिरेण दाहो भवति, तस्यैव त्रिगुणप्रकीर्णोपचितस्य सर्वतो युगपदादीपितस्य पवनोपक्रममभिहतस्याग्नौ दाहो भवति, तद्वत् । यथा वा संख्यानाचार्यः करणलाघवार्थं गुणकारभागहाराभ्यां राशिं छेदादेवापवर्तयति न च संख्येयस्यार्थस्याभावो भवति, तद्वदुपक्रममभिहतो भरणसमुद्घातदुःखार्तः कर्मप्रत्ययमनाभोगयोगपूर्वकं करणविशेषमुत्पाद्य फलोपभोगलाघवार्थं कर्मापवर्तयति न चास्य फलाभाव इति ॥ किं चान्यत् । यथा वा धौतपटो जलार्द्र एव स्रष्टश्चिरेण गोपमुपयाति । स एव च वितानितः सूर्यरश्मिवाय्वभिहतः क्षिप्रं शोषमुपयाति । ” तत्त्वा० अ० २-५२ भाष्य ।

५ योगदलसे योगी जो अनेक शरीरोंका निर्माण करता है, उन्हींका वर्णन योगसूत्र ४-४ में है, यही विषय वैक्रिय-आहारक-लब्धिरूपसे जैनग्रन्थोंमें वर्णित है ।

३ परिणामि-नित्यता अर्थात् उत्पाद, व्यय, प्रौढ्यरूपसे त्रिरूप चतु मान कर तदनुसार धर्मधर्मीका विवेचन। इत्यादि।

इसी विचारसमताके कारण श्रीमान् हरिभद्र जैसे जैनाचार्योंने महर्षि पतञ्जलिके प्रति अपना हार्दिक आदर प्रकट करके अपने योगविषयक ग्रन्थोंमें गुणग्राहकताका निर्भीक परिचय पूरे तौरसे दिया है^२, और जगह जगह पतञ्जलिके योगशास्त्रगत खास साङ्केतिक शब्दोंका जैन सङ्केतोंके साथ मिलान करके सङ्कीर्ण-दृष्टियाँके लिये एकताका मार्ग खोल दिया है^३। जैन विद्वाद् यशोविजयवाचकने हरिभद्रसरिचित एकताके मार्गको विशेष विशाल बनाकर पतञ्जलिके योगसूत्रको जैन प्रक्रियाके अनुसार समझनेका थोड़ा किन्तु मार्मिक प्रयास किया है^४। इतना ही नहीं बल्कि अपनी वृत्तिसियोंमें उन्होंने पतञ्जलिके योगसूत्रगत कुछ विषयोंपर खास वृत्तिसियों भी रची हैं^५। इन सब बातोंको संक्षेपमें बतलानेका उद्देश्य यही है कि महर्षि पतञ्जलिकी दृष्टिविशालता इतनी अधिक थी कि सभी दार्शनिक व साम्प्रदायिक विद्वाद् योगशास्त्रके पास आते ही अपना साम्प्रदायिक अभिनिवेश भूल गये और एकरूपताका अनुभव करने लगे। इसमें कोई संदेह नहीं कि महर्षि पतञ्जलिकी दृष्टि-विशालता उनके विशिष्ट योगानुभवका ही फल है, क्योंकि-जब कोई भी मनुष्य शब्द शानकी प्राथमिक भूमिकासे आगे बढ़ता है तब वह शब्दकी पृष्ठ न खींचकर चिन्ताज्ञान तथा भावनाज्ञानके उच्चोत्तर अधिकाधिक एकतायुक्त प्रदेशमें अभेद आनंदका अनुभव करता है।

आचार्य हरिभद्रकी योगमार्गमें नवीन दिशा-श्रीहरिभद्र प्रसिद्ध जैनाचार्योंमें एक हुए। उनकी बहुश्रुता, सर्वतोमुखी प्रतिभा, मध्यस्थता और समन्वयशीलताका पूरा परिचय करानेका यहाँ प्रसंग नहीं है। इसके लिए

१ जैनशास्त्रमें वस्तुको द्रव्यपर्यायस्वरूप माना है। इसीलिये उसका लक्षण तत्त्वार्थ (अ० ५-२९) में “उत्पादव्ययप्रौढ्ययुक्तं सत्” ऐसा किया है। योगसूत्र (३-१३, १४) में जो धर्मधर्मीका विचार है वह उक्त द्रव्यपर्यायउभयरूपता किंवा उत्पाद, व्यय, प्रौढ्य इस त्रिरूपताका ही चित्रण है। भिन्नता सिर्फ दोनोंमें इतनी ही है कि-योगसूत्र सांख्यसिद्धान्तानुसारी होनेसे “ऋते चितिशक्तेः परिणामिनो भावाः” यह सिद्धान्त मानकर परिणामवादका अर्थात् धर्मलक्षणभावला परिणामका उपयोग सिर्फ जड़भागमें अर्थात् प्रकृतिमें करता है, चेतनमें नहीं। और जैनदर्शन तो “सर्वे भावाः परिणामिनः” ऐसा सिद्धान्त मानकर परिणामवाद अर्थात् उत्पादव्ययरूप पर्यायका उपयोग जड़ चेतन दोनोंमें करता है। इसनी भिन्नता होनेपर भी परिणामवादकी प्रक्रिया दोनोंमें एक सी है।

२ उक्तं च योगमार्गश्चेत्तपोनिर्धूतकल्मषैः। भावियोगद्वितीयोद्येर्मोहदीपसमं वचः॥

(योगविं. श्लो. ६६) टीका ‘उक्तं च निरूपितं पुनः योगमार्गसैरन्यात्मविद्भिः पतञ्जलग्रभृतिभिः॥

“एतत्प्रधानः सम्बुद्धः शीलवाद् योगतत्परः। जानात्यतीन्द्रियानर्थस्तथा चाह महामतिः”॥ (योगदृष्टिसमुच्चय श्लो. १००) टीका ‘तथा चाह महामतिः पतञ्जलिः’। ऐसा ही भाव गुणग्राही श्रीयशोविजयजीने अपनी योगवतारद्वात्रिशिकामें प्रकाशित किया है। देखो-श्लो० २० टीका।

३ देखो योगचिन्दु श्लोक ४१८, ४२०। ४ देखो उनकी बनाई हुई पातञ्जलसूत्रवृत्ति।

५ देखो पातञ्जलयोगलक्षणविचार, ईशानुग्रहविचार, योगवतार, हेतुहानोपाय और योगमाहात्म्य दार्शिनिका।

६ शब्द, चिन्ता तथा भावनाज्ञानका स्वरूप श्रीयशोविजयजीने अध्यात्मोपनिषद्में लिखा है, जो आप्यात्मिक लोगोंको देखने योग्य है। अध्यात्मोपनिषद् श्लो. ६५, ७४।

जिज्ञासु महाशय उनकी कृतियोंको देख लेंगे। हरिभद्रवरिणी दातमुखी प्रतिभाके स्रोत उनके बनाये हुए चार अनुयोगविषयक १ ग्रंथोंमें ही नहीं बल्कि जैन न्याय तथा भातवर्षाथ तत्कालीन समग्र दार्शनिक सिद्धांतोंकी चर्चाबाले २ ग्रंथोंमें भी बड़े हुए हैं। इतना करके ही उनकी प्रतिभा मौन न हुई; उसने योगमार्गमें एक ऐसी दिशा दिखाई जो केवल जैन योगसाहित्यमें ही नहीं बल्कि आर्यजातीय संपूर्ण योगविषयक साहित्यमें एक नई वस्तु है। जैनशास्त्रमें आध्यात्मिक विकासके क्रमका प्राचीन वर्णन चौदह गुणस्थानरूपसे, चार ध्यान रूपसे और बहिरात्म आदि तीन अवस्थाओंके रूपसे मिलता है। हरिभद्रवरिने उसी आध्यात्मिक विकासके क्रमका योगरूपसे वर्णन किया है। पर उसमें उन्होंने जो शैली रखी है वह अभीतक उपलब्ध योगविषयक साहित्यमें किसी भी ग्रंथमें कमसे कम हमारे देखनेमें तो नहीं आई है। हरिभद्रवरि अपने ग्रंथोंमें अनेक योगियोंका नामनिर्देश करते हैं ३, एवं योगविषयक ४ ग्रंथोंका उल्लेख करते हैं जो अभी प्राप्त भी नहीं हैं। संभव है उन अप्राप्य ग्रंथोंमें उनके वर्णनकीसी शैली रही हो, पर हमारे लिये तो यह वर्णनशैली और योग विषयक वस्तु विल्कुल अपूर्व है। इस समय हरिभद्रवरिके योगविषयक चार ग्रंथ प्रसिद्ध हैं जो हमारे देखनेमें आये हैं। उनमेंसे षोडशक और योगविशिक्षाके योगवर्णनकी शैली और योगवस्तु एक ही है। योगविंदुकी विचारसरणी और वस्तु योगविशिक्षासे जुदा है। योगदृष्टिसमुच्चयकी विचारधारा और वस्तु योगविंदुसे भी जुदा है। इस प्रकार देखनेसे यह कहना पड़ता है कि हरिभद्रवरिने एक ही आध्यात्मिक विकासके क्रमका चित्र भिन्न भिन्न ग्रंथोंमें भिन्न भिन्न वस्तुका उपयोग करके तीन प्रकारसे खींचा है।

कालकी अपरिमित लंबी नदीमें वासनारूप संसारका गहरा प्रवाह बहता है, जिसका पहला छोर [मूल] तो अनादि है, पर दूसरा [उत्तर] छोर सान्त है। इसलिये मुमुक्षुओंके वास्ते सबसे पहले यह प्रश्न बड़े महत्त्वका है कि उक्त अनादि प्रवाहमें आध्यात्मिक विकासका आरंभ कबसे होता है? और उस आरंभके समय आत्माके लक्षण कैसे हो जाते हैं? जिनसे कि आरंभिक आध्यात्मिक विकास जाना जा सके। इस प्रश्नका उत्तर आचार्यने योगविंदुमें दिया है। वे कहते हैं कि—“जब आत्माके ऊपर मोहका प्रभाव घटनेका आरंभ होता है तभीसे आध्यात्मिक विकासका सूत्रपात हो जाता है। इस सूत्रपातका पूर्ववर्ती समय जो आध्यात्मिकविकासरहित होता है, वह जैनशास्त्रमें अचरमपुद्गलपरावर्तके नामसे प्रसिद्ध है। और उत्तरवर्ती समय जो आध्यात्मिक विकासके क्रमवाला होता है, वह चरमपुद्गलपरावर्तके नामसे प्रसिद्ध है; अचरमपुद्गलपरावर्तन और चरमपुद्गलपरावर्तनकालके परिमाणके बीच सिंधु ५ और विंदुका सा अंतर होता है। जिस आत्माका संसारप्रवाह चरमपुद्गलपरावर्तपरिमाण शेष रहता है, उसको जैन परिभाषाओंमें ‘अपुनर्वचक’ और सांख्यपरिभाषाओंमें ‘निवृत्ताधिकार प्रकृति’ कहते हैं ६। अपुनर्वचक या निवृत्ताधिकारप्रकृति आत्माका आंतरिक परिचय इतना ही है कि उसके ऊपर मोहका दबाव कम होकर उल्टे मोहके ऊपर उस आत्माका दबाव शुरू होता है। यही आध्यात्मिक विकास-

१ द्रव्यानुयोगविषयक—धर्मसंग्रहणी आदि २, गणितानुयोगविषयक—क्षेत्रसमाप्त टीका आदि २, चरणकरणानुयोगविषयक—पद्मवस्तु, धर्मेविंदु आदि ३, धर्मकथानुयोगविषयक—समराश्चकहा आदि ४ ग्रंथ मुख्य हैं।

२ अनेकान्तजयपताका, पद्धर्शनसमुच्चय, शास्त्रयार्तासमुच्चय आदि।

३ गोपेन्द्र (योगविन्दु श्लोक २००) काल्याणी (योगविन्दु श्लोक ३००)। पतञ्जलि, भदन्तभास्करबन्धु, भगवदन्त (त) वादी (योगदृष्टि० श्लोक १६ टीका)।

४ योग—निर्णय आदि (योगदृष्टि० श्लोक १ टीका)

५ देखो मुक्त्यद्वेपद्माविशिक्षा २८। ६ देखो योगविंदु १७८, २०१।

सका बीजारोपण है । यहाँसे योगमार्गका आरंभ हो जानेके कारण उस आत्माकी प्रत्येक प्रवृत्तिमें सरलता, नम्रता, उदारता, परोपकारपरायणता आदि सदाचार वास्तविक रूपमें दिखाई देते हैं; जो उस विकासोन्मुख आत्माका नाश परिचय है । इतना उत्तर देकर आचार्यने योगके आरंभसे लेकर योगकी पराकाष्ठा तकके आध्यात्मिक विकासकी क्रमिक वृद्धिको स्पष्ट समझानेके लिये उसको पाँच भूमिकाओंमें विभक्त करके हर एक भूमिकाके लक्षण बहुत स्पष्ट दिखाये हैं^१, और जगद् जगद् जैन परिभाषाके साथ बौद्ध तथा योगदर्शनकी परिभाषाका मिलान करके^२ परिभाषामेदकी दिवारको तोड़कर उसकी ओटमें छिपी हुई योगवस्तुकी भिन्निभन्न-दर्शनसम्मत एकरूपताका स्फुट प्रदर्शन कराया है । अध्यात्म, भावना, ध्यान, समता और वृत्तिसंश्रय ये योगमार्गकी पाँच भूमिकायें हैं । इनमेंसे पहली चारको पतंजलि संप्रज्ञात, और अन्तिम भूमिकाको असंप्रज्ञात कहते हैं^३ । यही संक्षेपमें योगविन्दुकी वस्तु है ।

योगदृष्टिसमुच्चयमें आध्यात्मिक विकासके क्रमका वर्णन योगविन्दुकी अपेक्षा दूसरे ढंगसे है । उसमें आध्यात्मिक विकासके प्रारंभके पहलेकी स्थितिको अर्थात् अचरमपुद्गलपरावर्त्तपरिमाण संसारकालीन आत्माकी स्थितिको ओषट्टि फ़हकर उसके तरतम भावको अनेक दृष्टांत द्वारा समझाया है^४, और पीछे आध्यात्मिक विकासके आरंभसे लेकर उसके अंततकमें पाई जानेवाली योगावस्थाको योगदृष्टि कहा है । इस योगावस्थाकी क्रमिक वृद्धिको समझानेके लिये संक्षेपमें उसे आठ भूमिकाओंमें बाँट दिया है । ये आठ भूमिकायें उस ग्रन्थमें आठ योगदृष्टिके नामसे प्रसिद्ध हैं^५ । इन आठ दृष्टियोंका विभाग पतंजलयोगदर्शन-प्रसिद्ध यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि आठ योगांगोंके आधार पर किया गया है, अर्थात् एक एक दृष्टिमें एक एक योगांगका श्रमन्ध मुख्यतया बतलाया है । पहली चार दृष्टियाँ योगकी प्रारंभिक अवस्थारूप होनेसे उनमें अविद्याका अल्प अंश रहता है । जिसको प्रस्तुत ग्रंथमें अवेद्यसंवेद्यपद कहा है^६ । अगली चार दृष्टियोंमें अविद्याका अंश बिल्कुल नहीं रहता । इस भावको आचार्यने वेद्यसंवेद्यपद शब्दसे जनाया है^७ । इसके सिवाय प्रस्तुत ग्रंथमें पिछली चार दृष्टियोंके समय पाये जानेवाले विशिष्ट आध्यात्मिक विकासको इच्छायोग, शास्त्रयोग और सामर्थ्ययोग ऐसी तीन योग भूमिकाओंमें विभाजित करके उक्त तीनों योगभूमिकाओंका बहुत रोचक वर्णन किया है^८ ।

आचार्यने अन्तमें चार प्रकारके योगियोंका वर्णन करके योगशास्त्रके अधिकारी कौन हो सकते हैं, यह भी बतला दिया है । यही योगदृष्टिसमुच्चयकी बहुत संक्षिप्त वस्तु है ।

योगविदित्कामें आध्यात्मिक विकासकी प्रारंभिक अवस्थाका वर्णन नहीं है, किन्तु उसकी पुष्ट अवस्थाओंका ही वर्णन है । इसीसे उसमें मुख्यतया योगके अधिकारी त्यागी ही माने गये हैं । प्रस्तुत ग्रन्थमें त्यागी गृहस्थ और साधुकी आवश्यक-क्रियाकी ही योगरूप बतलाकर उसके द्वारा आध्यात्मिक विकासकी क्रमिक वृद्धिका वर्णन किया है । और उस आवश्यक-क्रियाके द्वारा योगको पाँच भूमिकाओंमें विभाजित किया है । ये पाँच भूमिकायें उसमें स्थान, शब्द, अर्थ, सालंबन और निरालंबन नामसे प्रसिद्ध हैं । इन पाँच भूमिकाओंमें कर्मयोग और ज्ञानयोगकी घटना करते हुए आचार्यने पहली दो भूमिकाओंको कर्मयोग और पिछली तीन भूमिकाओंको ज्ञानयोग कहा है । इसके सिवाय प्रत्येक भूमिकामें इच्छा, प्रवृत्ति, स्वैर्य और सिद्धिरूपसे आध्यात्मिक विकासके तरतम भावका प्रदर्शन कराया है : और उस प्रत्येक भूमिका तथा

१ योगविंदु, ३१, ३५७, ३५६, ३६१, ३६३, ३९६ ।

२ "यत्सम्प्रादर्शनं बोधिस्तत्त्वधानो महोदयः । सत्त्वोऽस्तु बोधिसत्त्वस्तदन्तैरोऽन्वर्थतोऽपि हि ॥ २७३ ॥ चरबोधिसत्त्वो वा तीर्थंरुयो भविष्यति । तथाभ्यस्तत्त्वतोऽसौ वा बोधिसत्त्वः सत्तां मतः" ॥ २७४ ॥ योगविन्दु ।

३ देखो योगविंदु ४१८, ४२० ।

४ देखो, योगदृष्टिसमुच्चय १४ । ५ १३ । ६ ७५ । ७ ७३ । ८ २-१२ ।

इच्छा, प्रवृत्ति आदि अवान्तर स्थितिका लक्षण बहुत स्पष्टतया वर्णन किया है^१। इस प्रकार उक्त पाँच भूमिकाओंकी अन्तर्गत निम्न निम्न स्थितियोंका वर्णन करके योगके अस्सी भेद किये हैं, और उन सबके लक्षण बतलाये हैं, जिनको ध्यानपूर्वक देखनेवाला यह जान सकता है कि मैं विकासकी किस सीढ़ीपर खड़ा हूँ। यही योगविशिकाकी संक्षिप्त वस्तु है।

उपसंहार—विषयकी गहराई और अपनी अपूर्णताका खयाल होते हुए भी यह प्रयास इस लिये किया गया है कि अवतकका अवलोकन और स्मरण संक्षेपमें भी लिपिवद्ध हो जाय, जिससे भविष्यत्में विशेष प्रगति करना हो तो इस विषयका प्रथम सोपान तैयार रहे। इस प्रवृत्तिमें कई मित्र मेरे सहायक हुए हैं जिनके नामोल्लेख मात्रसे मैं कृतज्ञता-प्रकाशित करना नहीं चाहता। उनकी आदरणीय स्मृति मेरे हृदयमें अखंड रहेगी।

पाठकोंके प्रति एक मेरी सूचना है। वह यह कि इस निबंधमें अनेक शास्त्रीय पारिभाषिक शब्द आये हैं। खासकर अन्तिम भागमें जैन-पारिभाषिक शब्द अधिक हैं, जो बहुतोंको कम विदित होंगे; उनका मैंने विशेष खुलासा नहीं किया है, पर खुलासावाले उस उस ग्रन्थके उपयोगी स्थलोंका निर्देश कर दिया है जिससे विशेष जिज्ञासु मूलग्रन्थद्वारा ही ऐसे कठिन शब्दोंका खुलासा कर सकेंगे। अगर यह संक्षिप्त निबंध न हो कर खास पुस्तक होती तो इसमें विशेष खुलासाफ़ भी अवकाश रहता।

इस प्रवृत्तिके लिये मुझको उत्साहित करनेवाले गुजरात पुरातत्त्व संशोधन मंदिरके मंत्री परीख रसिक-लाल छोटालाल हैं जिनके विश्वाप्रेमको मैं नहीं मूल सकता।

संवत् १९७८ पौष
वदि ५
भावनगर.

लेखक—

सुखलाल संघजी.

कुरूपाल सोणपाल प्रशस्ति

(लेखक—वनारसी दास जैन, एम० ए०, ओरियंटल कालेज, लाहोर.)

१. सन १९२० में एम० एम० जैन कॉन्फ्रेंस की तरफ से इन्दौर वासी सेठ केसरी चन्द मण्डारी ने मुझे लिखा कि उक्त कॉन्फ्रेंस का जो प्राकृत कोश बन रहा है आप उसे देख-कर उस के विषय में अपनी तथा अन्य प्राकृत विद्वानों की सम्मति लेकर लिखें। इस सम्बन्ध में मुझे उस साल कई नगरों में जाना पड़ा। जब मैं आगरे में था तो मेरा समागम पं० सुखलालजी से हुआ, उन्होंने ने मुझे बतलाया कि यहां के मन्दिर में एक नया शिला लेख निकला है^१ जिसको अभी किसी ने नहीं देखा। मैं मुनि प्रतापविजयजी को साथ लेकर उसे देखने गया। परन्तु उस समय छाप उतारने की सामग्री विद्यमान न थी इस लिये उस समय मैं वहां अधिक ठहरा भी नहीं क्योंकि लेख को देखने के दो तीन घंटे पीछे मैं वहां से चल पड़ा था।

२. फिर अप्रैल सन १९२१ में मैं पंजाब यूनिवर्सिटी के एम. ए. तथा बी. ए. क्लासों के संस्कृत विद्यार्थियों को लेकर कलकत्ता, पटना, लखनऊ आदि बड़े बड़े नगरों के अनायव घर (Museums) देखने जा रहा था, तब आगरे में भी ठहरा और उपरोक्त शिलालेख की छाप तय्यार की, परन्तु अब वहां न तो पं० सुखलालजी थे न ही मुनि प्रतापविजयजी थे। वानू दयालचन्दजी भी कारण वश बाहिर गए हुए थे। इन के अतिरिक्त और कोई श्रावक मुझ से परिचित न थे इसलिये उस वक्त वह छाप मुझ को न मिल सकी। अब कलकत्ता निवासी श्रीयुत वानू पूरणचन्द नाहर द्वारा मैं ने वह छाप प्राप्त की है और उसी के आधारपर पाठकों को इस शिलालेख का परिचय दे रहा हूं।

३. यह लेख लाल पत्थर की शिला पर खुदा हुआ है जो लग भग दो फुट लम्बी और दो फुट चौड़ी है। लेख खोदने से पहिले शिला के चारों ओर दो दो इंच का हाशिया (margin) छोड़ कर रेखा डाल दी गई है। रेखा के बाहिर ऊपर की तरफ “पातसाहि श्री जहांगीर” उभरे हुए अक्षरों में खुदा हुआ है। बाकी का सारा लेख गहिरें अक्षरों में खुदा हुआ है। रेखाओं के अन्दर लेख की ३३ पंक्तियां हैं मगर उन में लेख समाप्त न हो सका इस लिये रेखाओं के बाहिर नीचे दो पंक्तियां (नं० ३४ और ३८) दाईं ओर एक पंक्ति (नं० ३९) और बाईं ओर दो पंक्तियां [नं० ३६-३७] और खोदी गई हैं। शिला के दाईं ओर नीचे का कुछ भाग टूट गया है जिस से लेख की पंक्ति २८-३४ और ३८ के अन्त के आठ नौ अक्षर और पंक्ति ३९ के आदि के १४, १५ अक्षर टूट गए हैं। इस से कुरूपाल सोनपाल के उस समय वर्तमान परिवार के प्रायः सब नाम नष्ट हो गए हैं। पंक्ति ३६-३७ के भी कुछ अक्षर टूट नहीं गए।

१ मन्दिर की एक कोठड़ी में बहुत से पत्थर पड़े थे। जब अप्रैल माई सन् १९२० में उन पत्थरों को निकालने लगे तो उन में से यह लेख भी निकला। अब यह शिला लेख मन्दिर में ही पड़ा है ॥

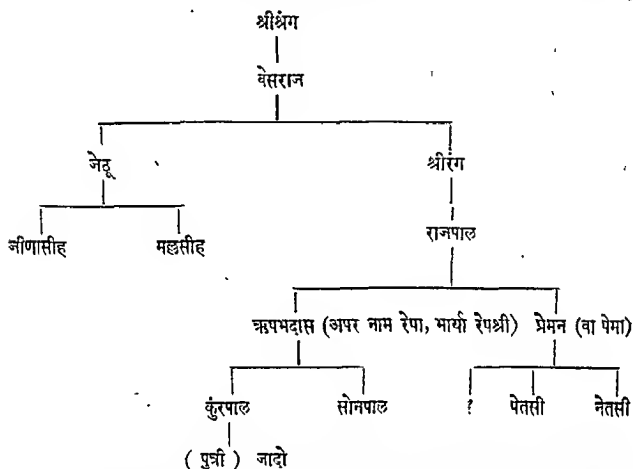
४. लेख के अक्षर शुद्ध जैन लिपि के हैं जो कि हस्त लिखित पुस्तकों (Mss.) में पाए जाते हैं। पुस्तकों की भांति लेख की आदि में 'द्द०' यह चिन्ह है जो शायद 'ओम्' शब्द का द्योतक है, क्योंकि प्राचीन शिलालेख तथा ताम्रशासनों में 'ओम्' के लिये कुछ ऐसा ही चिन्ह हुआ करता था। 'च' और 'व' की आकृति बहुत कुछ मिलती जुलती है। पंक्ति ६ और ८ में मार्ग और वर्ग शब्दों में 'ग्ग' के लिये 'ग्र' १ चिन्ह आया है जो जैन लिपि का खास चिन्ह है।

५. वर्णविन्यास (Spelling) में विशेषता यह है कि " परसवर्ण " कहीं नहीं किया गया अर्थात् स्पर्शीय अक्षरों के पूर्व नासिक्य के स्थान में सर्वदा अनुस्वार लिखा गया है जैसे पंक्ति २ में पङ्कज, बिम्ब, चन्द्र के स्थान में पंकज, बिंब, चंद्र लिखे हैं। इसी प्रकार श्लोकार्ध वा श्लोक के अन्त में मू के स्थान में अनुस्वार ही लिखा है जैसे पंक्ति १६ में अठारहवें अर्धश्लोक के अन्त में ' श्रुत्वा कल्याणदेशानां । ' पंक्ति २० अर्धश्लोक २१ ' वितर्जामनुत्तरं । ' पंक्ति २२ श्लोकान्त २३ ' चित्तरंजकं । ' पंक्ति २६ श्लोकान्त २८ ' कारितं । ' इत्यादि। पंक्ति ५ में पट्विंशत् के स्थान में पड्विंशत् लिखा है। विराम का चिन्ह '।' श्लोकपादों के अन्त में भी लगाया है, कहीं कहीं पंक्ति के अन्त में अक्षर के लिये पूरा स्थान न होने से विराम लिख दिया है जैसे पंक्ति ७, ९, १२, १५ आदि में।

६. पट्टावलि को छोड़ कर बाकी तमाम लेख श्लोकबद्ध है। इसकी भाषा शुद्ध संस्कृत है परन्तु पंक्ति १५ में पति शब्द का सप्तमी एक वचन ' पती ' लिखा है जो व्याकरण की रीति से ' पत्यौ ' होना चाहिये था। यद्यपि पंक्ति १६ में ' कारिता ' और पंक्ति २६ में ' कारितं ' शब्द आए हैं तथापि पंक्ति ३२ में कारिता के लिये ' कारापिता ' लिखा है। यह शब्द जैन लेखकों के संस्कृत ग्रन्थों में बहुधा पाया जाता है और प्राकृत से संस्कृत प्रयोग बना है। पंक्ति १७ में प्राकृत शैली से आनन्द श्रावक का नाम ' आणंद ' लिखा है और पंक्ति ११ में ' उत्सुकौ ' के स्थान में ' उच्छुकौ ' शब्द प्रतीत होता है।

७. यह प्रशस्ति जहांगीर बादशाह के समय की है। विक्रम सं० १६७१ में आगरा निवासी कुरपाल सोनपाल नाम के दो भाइयों ने वहाँ श्री श्रेयांस नाथ जी का मन्दिर बनवाया था जिस की प्रतिष्ठा अंचल गच्छ के आचार्य श्री कल्याणसागर जी ने कराई थी। उस समय यह प्रशस्ति लिखी गई। मन्दिर की प्रतिष्ठा के साथ ४५० अन्य प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा भी हुई थी जिन में से ६, ७ प्रतिमाओं के लेख बाबू पूर्णचन्द नाहर ने अपने " जैन लेख संग्रह " में दिये हैं। (देखिये उक्त पुस्तक, लेख नं० ३०७-३१२, ४३३)। इन लेखों से कुरपाल सोनपाल के पूर्वजों का कुछ हाल मालूम नहीं होता लेकिन प्रशस्ति में उन की वंशावलि इस प्रकार दी है।

1 डाक्टर वेबर (Weber.) इसको ग्र (ग्रंथ) पदते हैं जैसा कि बर्लिन नगर के जैन पुस्तकों की सूचि के पृष्ठ ५७६ पर आए *pograha*. शब्द से स्पष्ट प्रतीत होता है, वास्तव में यह शब्द पोग्गल (*Poggla*.) है। इसी प्रकार पृष्ठ ५२५ पर मियग्राम को *miyagrama*. (मियग्राम) लिखा है। *Weber's datalogue of Crakrit Mss in the Royal Lidrary at Berlin*.



कुरपाल सोनपाल ओसवाल जाति के छोटा गोत्रीय थे। इन को जहांगीर बादशाह का अमात्य (मंत्री) करके लिखा है। जहांगीर के राज्य सम्बन्धी एक दो फारसी किताबें देखीं परन्तु उन में इन का नाम उपलब्ध नहीं हुआ।

८. मूर्तियों के लेखों^१ से मालूम होता है कि कुरपाल सोनपाल के वंश को गाणी वंश कहते थे और इन लेखों से उन के परिवार के कुछ नामों का भी पता चलता है जो प्रशस्ति में पढ़े नहीं जाते जैसे कि:— ऋषभदास के कुरपाल सोनपाल के सिवाय रूपचंद, चतुर्भुज, धनपाल, दुनीचंद आदि और भी पुत्र थे।

प्रेमन की भार्या का नाम शक्ता देवी था।

पेतसी की भार्या का नाम भक्ता देवी था उन का पुत्र सांग था।

९. इस के अतिरिक्त “ जैनसाहित्य संशोधक ” खण्ड १ अंक ४ में जो सं. १६६७ का “ आगरा संघनो सचित्र सांस्वरिक पत्र ” प्रकाशित हुआ है, उस में कुछ नाम प्रशस्ति के नामों से मिलते हैं परन्तु यह मत निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सकती कि दोनों लेखों में एक ही व्यक्ति का उल्लेख है या भिन्न २ का:—

१ यह लेख पैरेग्राफ १३ में उद्धृत किये गए हैं।

सांवत्सरिक	पत्र	पंक्ति	३०	साः	पेमन, संः	नेतसी
"	"	"	३३	साः	पेतसी	
"	"	"	३४	साः	नेतसी, संः	रीपभदास
"	"	"	३५	"	रीपभदास	सेनी

१०. प्रशस्ति के समय के संबंध में यह बात बड़ी ध्यान देने योग्य है कि प्रशस्ति में तो साफ़ तौर पर वैशाख शुदि ३, विक्रम सं० १६७१ गुरुवासर (वृहस्पतिवार) लिखा है परंतु मूर्तियों के लेखों में वैशाख शुदि ३ विक्रम सं. १६७१ शनि (सनीचर वार) लिखा है ¹। यह ऐसा विरोध है कि इस के लिये कोई हेतु नहीं दिया जा सका; क्योंकि एक ही स्थान पर एक ही तिथि में वारभेद कैसे हो सका है। यदि तृतीया वृद्धि तिथि होती तो भी कह सकते कि वृहस्पति वार की रात्रि के पिछले पहर में और शनि को दिन के पहिले पहर में तृतीया थी। मगर तृतीया वृद्धि तिथि न थी जैसा कि इंडियन कैलेंडर ² में दी हुई सारिणी (Tables) के अनुसार गणित करने पर गत संवत् (Expired) १६७१ वैशाख सुदि ३ शनिवार २ अप्रैल सन् १६१४ (Old Style) को आती है और उस दिन वह तिथि १७ घड़ी के अनुमान वाली थी। रोहिणी नक्षत्र सूर्योदय से १३ घड़ी पीछे लगा। वैशाख वदि १३ (अमान्त मासों से चैत्र वदि १३) वृद्धि तिथि आती है।

११. प्रशस्ति में दी हुई अंचल गच्छ की पट्टावालि से ज्ञात होता है कि उस गच्छ के प्रवर्तक आचार्य, श्री आर्यरक्षित सूरि, भगवान महावीर स्वामी से ४८ वें पट्ट पर बैठे थे और श्री कल्याण सागर सूरि गच्छ के १८ वें आचार्य थे। अंचल गच्छ की पट्टावालि डा. भांडारकर और डा. व्यूलर ने भी छापी है। इन में डा. भांडारकर तो पांचवें आचार्य श्री सिंहप्रभ सूरि का नाम छोड़ गए हैं ³ और डा. व्यूलर छठे आचार्य श्री अजितसिंहसूरि अपरनाम श्री जिनसिंह सूरि का नाम छोड़ गए हैं ⁴। हालांकि जिन आचार्यों परसे उन्होंने ने यह पट्टावालि छापी है उन में साफ़ तौर पर उक्त दोनों आचार्यों के नाम यथास्थान दिये हुए हैं। ⁵

1 जैन लेख संग्रह, लेख नं. ३०८-११ “ श्री मत्संवत् १६७१ वर्षे वैशाख सुदि ३ शनी ”

2 The Indian Calendar by Sewel and Balkrishna Dikshit, 1896.

3 Report on the Search for Sanskrit manuscripts for the year 1883-84 Bomday 1887 p. 130

4 Epigraphia Indica p.39

5 भांडारकर-उक्त पुस्तक पृष्ठ ३२१

४८ श्रीआर्यरक्षितसूरिः चंद्रगच्छे श्रीअंचलगच्छस्थापना शुद्धविधिप्रकाशनात् सं. ११५९

४९ श्रीविजयसिंह सूरिः ५० श्रीधर्मघोष सूरिः

५१ श्रीमहेंद्रसिंह सूरिः ५२ श्रीसिंहप्रभ सूरिः

५३ श्रीअजितसिंहसूरिः पारके चित्रावालगच्छतो निर्गता सं. १२८५ तपगच्छमतं. वस्तुपालतः

गच्छस्थापना

१२. अंत में मैं यह निवेदन करना चाहता हूँ कि इस प्रशस्ति के संबंध में दो बातों की अधिक खोज आवश्यक है एक तो यह कि मुगल बादशाहों के इतिहास में कुं[व]रपाल और सोनपाल या उन के पिता का नाम ढूंढना चाहिये, और दूसरी यह कि वैसाख सुदि ३ को बहस्पति और शनि क्योंकर हो सके हैं; इस का समाधान करना चाहिये ॥

[—१३. मूर्तियों के लेख: जैन लेख संग्रह: पृष्ठ ७८, ७९, १०९

नं० ३०७. सम्वत् १६७१ आगरावास्तव्य ओसवाल ज्ञातीय लोढा गोत्रे गाणी वंसे सं० ऋषभदास भार्या सु: रेप श्री तत्पुत्र संवरान सं० रूपचन्द चतुर्भुज सं० धनपालादि युते श्री मदंचलगच्छे पूज्य श्री ९ धर्ममूर्ति सूरि तत् पट्टे पूज्य श्री कल्याणसागर सूरिणामुपदेशेन विद्यमान श्री विसाल जिनविं व प्रति....

नं० ३०८. संवत् १६७१ वर्षे ओसवाल ज्ञातीय लोढा गोत्रे गाणी वंसे साह कुंरपाल^१ सं० सोनपाल प्रति० अंचलगच्छे श्री कल्याणसागर सूरिणामुपदेशेन वासुपूज्यविं प्रतिष्ठापितं ॥

नं० ३०९. ॥ श्रीमत्संवत् १६७१ वर्षे वैशाख सुदि ३ शनी आगरा वास्तव्योसवाल ज्ञातीय लोढा गोत्रे गावंसे संघपति ऋषभदास भा० रेपश्री पुत्र सं० कुंरपाल सं० सोनपाल प्रवरौ स्वपितु ऋषभदास पुन्यार्थी श्रीमदंचलगच्छे पूज्य श्री ९ कल्याणसागरसूरिणामुपदेशेन श्री पदम-प्रभु जिनविं प्रतिष्ठापितं सं० चागाकृतं ॥

नं० ३१०. श्रीमत्संवत् १६७१ वर्षे वैशाख सुदि ३ शनी श्री आगरावास्तव्य उपकेस ज्ञातीय लोढा गोत्र सा० प्रेमन भार्या शक्तदे पुत्र सा० पेतसी लवुभ्राता सा० नेतसी^२ सुतेन श्री-मदंचलगच्छे पूज्य श्री ९ कल्याणसागरसूरिणामुपदेशेन श्री वासुपूज्यविं प्रतिष्ठापितं सं० कुंरपाल सं० सोनपाल प्रतिष्ठितं ।

लर—उक्त (Epig. Ind.) Jaina inscriptions from Satrunjaya, Nos. XXI, XXVII, और CV.

XXI यह लेख सं० १६७५ का है—

श्रीसिंहप्रभसूरीदा: सूर्योऽजितसिंहका: । श्रीमदेवेन्द्रसूरीदा: श्रीधर्मप्रभसूरय: ॥ ८ ॥

श्रीसिंहतिलकाब्दाश्च श्रीमहेन्द्रप्रभामिथा: । श्रीमन्तो मेरुतुङ्गाख्या बभूवु: सूरयस्तत: ॥ ९ ॥

XXVII यह लेख सं० १६८३ का है—

तेम्य: क्रमेण गुरवो जिनसिंहगोत्रा: बभूवुरय पूज्यतमा गणेशा: ॥

देवेन्द्रसिंहगुरवोऽखिललोकमान्या: धर्मप्रभा मुनिवरा विधिपक्षनाया: ॥ ९ ॥

पूल्याश्च सिंहतिलकास्तदनु प्रभूत-भाग्या महेन्द्रविमवा गुरवो यभूवु: ॥

चक्रेश्वरी भगवती विहितप्रसादा: श्रीमेरुतुङ्गाक्ष्ये नरदेववन्या: ॥ १० ॥

CV यह लेख सं १९२१ का है । इस में आचार्य कल्याणसागर तक लेख नं XXVII के ही श्लोक उद्धृत किये हैं । इन लेखों की माया जैन संस्कृत है ।

१ चियाय लेख ४३३ के और सब जगह कुंर को कुंर या कुर पढा है ।

२ प्रशस्ति में तथा मूर्ति के अन्य लेखों में नेतसी ।

नं० ३११. श्रीमत्संवत् १६७१ वैशाख सुदि ३ शनौ श्री आगरानगरे ओसवाल ज्ञाती लोढा गोत्रे—गावंसे सा० पेमने भार्या श्री शक्तादे पुत्र सा० पेतसी भा० भक्तादे पुत्र सा०—सांग—
श्री अंचलगच्छे पूज्य श्री ५ कल्याणसागरसूरीणामुपदेशेन श्री विमलनाथ विंवं प्रतिष्ठापितं
सा० कुरपाल.... ।

नं० ३१२. [सं० १६७१] ॥ संघपति श्री कुरपाल सं० सोनपालैः स्वमातृपुन्यार्थ श्री
अंचलगच्छे पूज्य श्री ५ श्री धर्ममूर्तिसूरि पट्टाभुजहंस श्री ५ श्री कल्याणसागरसूरीणामुपदेशेन
श्रीपाश्वर्नान्यविंवं प्रतिष्ठापितं पूज्यमानं चिरं नंदतु ॥

नं० ४३३. श्रीमत्संवत् १६७१ वर्षे वैशाख सुदि ३ शनौ श्री आगरावास्तव्यासवाल
ज्ञातीय लोढा गोत्रे गावं—जा स० ऋषभदास भार्या रेपश्री तत्पुत्र श्री कुरपाल सोनपाल संघाधिपे
स्वानुजवर दुनीचंदस्य पुण्यार्थ उपकाराय श्री अंचलगच्छे पूज्य श्री ५ कल्याणसागरसूरीणामुपदेशेन
श्री आदिनाथविंवं प्रतिष्ठापितं ॥]

प्रशस्ति की नकल

(नोटः— [] इन चिन्हों में दिये अक्षर टूट गए हैं या साफ नहीं पढ़े जाते)

॥ पातसाहि श्री जहांगी[र] ॥

१. ॥ ॐ ॥ श्री सिद्धेभ्यो नमः ॥ स्वस्ति श्री विष्णुपुत्रो निखिलगुणयुतः पारगो वीत-
रागः । पायाद् वः क्षणिकर्मा सुरशिवरिसमः क [१५]—
२. तीर्थप्रदाने ॥ श्री श्रेयान् धर्ममूर्तिर्भक्तिजनमनःपंकजे विन्व^१भानुः । कल्याणाम्भोधिचन्द्रः
सुरनरानिकरैः सेव्य [मा]—
३. नः कृपालुः ॥ १ ॥ ऋषभप्रमुखाः सार्व^२ । गौतमाद्या मुनीश्वराः । पापकर्मविनिर्मुक्ताः
क्षेमं कुर्वन्तु सर्वदा ॥ २ ॥ कुर—
४. पालस्वर्णपालौ । धर्मकृत्यपरायणौ । स्ववंशकुजमार्चण्डौ । प्रशस्तिर्लिख्यते तयोः ॥ ३ ॥
श्रीमति हायने रम्ये चन्द्राविरस—
५. भूमिते १६७१ । पद्^३त्रिंशत्तिथिशाके १५३६ विक्रमादित्यभूपतेः ॥ ४ ॥ राधमासे वस-
न्तर्त्तौ शुक्लायां तृतीयातिथौ । युक्ते वु
६. रोहिणीमेन निर्दोषे गुरुवासरे ॥ ५ ॥ श्री मदच्चल^४गच्छाख्ये । सर्वगच्छावतंसके ।
सिद्धान्ताख्यातमार्गेण । राजिते विश्वविस्तृते । ६ । उग्रसे—

१ लेख में विं

२ विसर्ग खोदकर काटी गई है जिस से विराम सा प्रतीत होता है ।

३ घट्ठ चाहिये ।

४ “ ल ” खोदने से रह गया था । पीछे व ग के नीचे खोदा गया है ।

५ ग के लिये प्र चिन्ह लिखा गया है ।

७. नपुंरे रम्ये निरातङ्करसाश्रये । प्रासादमन्दिराकीर्णं । सद्ज्ञातौ ह्युपदेशवे । ७ । लोढा गोत्रे विवस्वाँस्त्रिजगति सुयशा ब्रह्मच-
 ८. र्यादियुक्तः । श्रीश्रङ्गख्यातनामा गुरुवचनयुतः कामदेवादितुल्यः । जीवाजीवादितत्वे पर-
 रुचिरमतिर्लेकवर्गेषु याव- । जीया-
 ९. श्रन्द्रार्कविम्बं परिकरभृतकैः सेवितस्त्वं मुदा हि । ८ । लोढा सन्तानविज्ञातौ । धनराजो गुणान्वितः । द्वादशव्रतधारी च । शुभ-
 १०. कर्मणि तत्परः । ९ । तत्पुत्रो वेत्तराजश्च । दयावान् मुजनप्रियः । तूर्यव्रतधरः श्रीमान् चातुर्यादिगुणैर्युतः । १० । तत्पुत्रो द्वा-
 ११. वभूतां च । सुरागावर्धितो सदा । जेदू श्रीरङ्गगोत्रौ च । जिनाज्ञापालानोच्छ्रुतौ^१ । ११ । तौ जीणासीहमल्लार्यौ जेदवात्मजौ वभूवतु-
 १२. : । धर्मविदौ च दक्षौ च । महाभुज्यौ यशोधनौ । १२ । आसीच्छ्रीश्रङ्गजौ नूनं जिन-
 पादार्चने रतः । मनीषी सुमना भव्यो राजपा-
 १३. ल उदारधीः । १३ । आर्या । धनदौ चर्पमदास । पेमार्यौ विविधसांख्यधनयुक्तौ । आस्तां प्राज्ञौ दौ च तत्त्वज्ञौ तौ तु तत्पु-
 १४. त्रौ । १४ । रेपाभिधस्तयोर्येष्ठः । कल्पद्वारिव सर्वदः । राजमान्यः कुलाधारो । दयालुर्धर्मकर्मठः । १५ । रेपश्रीस्तत्प्रिया
 १५. भन्या । शीलालङ्कारधारिणी । पतिव्रता पतौ^३ रक्ता । सुलशारेवतीनिमा । १६ । श्री पद्मप्रभवविम्बस्य नवीनस्य जिनाल-
 १६. ये । प्रतिष्ठा कारिता येन सत्श्राद्धगुणशालिना^४ । १७ । ललौ तूर्यव्रतं यस्तु । श्रुत्वा कल्याणदेशानां । राजश्रीनन्दनः
 १७. श्रेष्ठ । आनन्द^५श्रावकोपमः । १८ । तत्पुत्रः कुरपालः । किल विमलमतिः स्वर्णपालो द्वितीय- । आतुर्यादायैर्धैर्यप्रभु-
 १८. खगुणनिधिर्मग्नसौभाग्यशाली । तौ द्वौ रूपाभिरामौ । विविधजिनवृषध्यानकृत्यैकनिष्ठौ । त्यागैः कर्णावतारौ निज-
 १९. कुलतिलकौ वक्षुपालोपमार्हौ । १९ । श्री जहांगीरभूपालमात्यौ धर्मधुरन्धरौ । धनिनौ पुण्यकर्तारौ । विख्यातौ आ-
 २०. तारौ भुवि । २० । याम्यामुष्टं नवक्षेत्रे । वितवीजमनुत्तरम् । तौ धन्यौ कामदौ लोके । लोढागोत्रावतंसकौ । २१ । अवा-

१ छ के लिये जैन लिपि का चिन्ह ।

२ लेख में आसीछीरंग० लिखा है ।

३ पत्नी होना चाहिये या ।

४ सत्श्राद्ध० या सन्श्राद्ध० होना चाहिये या ।

५ लेख में आनन्द० लिखा है ।

२१. प्य शासनं चारु । जहांगीरपतेर्ननु । कारयामासतुर्धर्म । क्रियासर्वं सहोदरौ । २२ ।
शाला पोषधपूर्वा वै यकाम्यां सा^१
२२. विनिर्मिता । अधित्यकात्रिकं यत्र राजते चित्तरञ्जकम् । २३ । समेतशिखरे भव्ये
शत्रुञ्जयेर्बुदाचले । अन्येष्वपि च तीर्थेषु गि—
२३. रिनारिगिरौ^२ तथा । २४ । सुद्धाधिपत्यमासाय । ताम्यां यात्रा कृता मुदा । महध्वर्चा
सर्वसामग्र्या । शुद्धसम्यक्त्वहेतवे । २५ । तुरङ्गा—
२४. णां शतं कान्तं । पञ्चविंशतिपूर्वकम् । दत्तं तु तीर्थयात्रायै । गजानां पञ्चविंशतिः
। २६ । अन्यदपि धनं वित्तं । प्रत्तं संख्यातिगं खलु
२५. अर्जयामासतुः कीर्ति- मित्थं तौ वसुधातले । २७ । उत्तुङ्गं गगनालम्बि । सच्चित्रं
सध्वजं परम् । नेत्रासेचनकं ताम्यां । युग्मं चैत्य—
२६. स्व^३ कारितम् । २८ । अथ गद्यम् । श्री अञ्जलमच्छे । श्री वीरादष्टचत्वारिंशत्तमे पट्टे ।
श्रीपावकागिरौ श्रीसीमन्धरजिनवचसा श्रीचक्रे [श्वरीद]—
२७. त्वराः । सिद्धान्तोक्तमार्गप्ररूपकाः । श्रीविधिपसगच्छसंस्थापकाः । श्रीआर्यरक्षितः
सूर्य-१ । स्तूपदे श्रीजयसिंहसूरि [२ श्री धर्म शो]—
२८. पसूरि ३ श्रीमहेन्द्रसूरि ४ श्रीसिंहप्रभसूरि ५ श्री जिनसिंहसूरि ६ श्रीदेवेन्द्रसिंहसूरि
७ श्रीधर्मप्रभसूरि ८ श्री[सिंहतिलकसू]—
२९. रि ९ श्रीमहेन्द्रप्रभसूरि १० श्रीमेरुतुङ्गसूरि ११ श्रीजयकीर्तिसूरि १२ । श्रीजय-
केशरिसूरि १३ श्रीसिद्धान्तसागर [सूरि १४ श्री भावसा]
३०. गरसूरि १५ श्रीगुणनिधानसूरि १६ श्रीधर्ममूर्तिसूर्य १७ स्तूपट्टे सम्प्रति विराज-
मानाः । श्रीमहाराजक पुरवराः [—————]^४
३१. णयः श्रीयुगप्रधानाः । पूज्य भट्टारक श्री ५ श्री कल्याणसागर सूर्य १८ स्तेपामुप-
देशेन श्रीश्रेयांसजिनबिम्बा [दीना —————]^५
३२. कुरपालसोनपालाम्यां प्रतिष्ठा कारापिता । पुनः श्लोकाः । श्रीश्रेयांसजिनेशस्य बिम्बं
स्थापितमुत्तमं प्रति [ि —————]
३३. णामुपदेशतः । २९ । चत्वारि शतमानानि । सार्धान्युपरि^६ तत्क्षणे । प्रतिष्ठितानि
बिम्बानि जिनानां सौख्यकारि [णाम् । ३० । —————]

१ सा शब्द का I चिन्ह २२ वीं पंक्ति में है ।

२ गिरिनार० चाहिये या क्यों कि यह शब्द गिरिनगर का अपभ्रंश है ।

३ चैत्ययोः चाहिये था ।

४ यहाँ से सात आठ अक्षर हट गए हैं ।

५ यहाँ से पांच अक्षर हट गए हैं ।

६ सार्द्धा० लिखा है ।

३४. तु लेभाते । प्राज्यपुण्यप्रभावतः देवगुणैः सदा भक्तौ । शश्वती नन्दता चिरम् । ३१ ।
अथ तयोः परिवारः । सङ्घराज [----] -1
३५. ---- । ---- । ---- । ३२ । सूनयः
स्वर्णपाल - । ---- [चतुर्भुज] ---- [पुत्री] युगलमुत्तमम्
। ४३ । प्रेमनस्म त्रयः पु [शाः ----]
३६. पेतसी तथा । नेतसी विद्यमानस्तु सच्छीलेन सुदर्शनः । ३४ । धीमतः सङ्घराजस्य ।
तेजस्विनो यशस्विनः । चत्वारस्तनुजन्मान ---- मताः । ३५ कुरपालस्य स—
३७. द्वार्या । ---- । ---- । ---- पातिमिया
। ३६ । तदङ्गजास्ति गम्भीरा जादो नाम्नि [स] ---- । ----
ज्येष्ठमल्लो गुणाश्रयः । ३७ ।
३८. सङ्घश्रीसुलसर्थादी । दुर्गाश्रीप्रमुखैर्निजैः । वधूजनैर्धुती भाता । रेवश्री नन्दनौ सदा
। ३८ । भूपण्डलसमारङ्ग । सिन्धुवर्कयुक्त [----] ----
---- । ३८] २



लेख का सारांश

(लेख की भाषा सरल होने के कारण पूरा अनुवाद नहीं दिया)

- पंक्ति १-३ मंगलाचरण ।
" ४-५ प्रशस्ति का रचना काल । विक्रम संवत् चन्द्र अषि रत भू अर्थात् १६७१, शक संवत् १५३६, राध (वैशाख) मास, वसंत ऋतु, शुष्ठ पक्ष, वृतीया तिथी, शुक्रवार रोहिणी नक्षत्र ।
" ६ अंचल गच्छ की प्रशंसा ।
" ७ उपसेनपुर (आगरा नगर) की शोभा का वर्णन ।
" ८-९ उपकेश (जोसवाल) हातीय, लोढा गोत्रीय, श्रीरंग की स्तुति ।
" १० उस के पुत्र वेत्रराज के गुणों का वर्णन ।
" ११ वेत्रराज के पुत्र जेहू और श्रीरंग का वर्णन ।
" ११-१२ जेहू के पुत्र जीणामाह और मछ[सीह] का वर्णन ।
" १२ श्रीरंग का पुत्र राजपाल, तिल का वर्णन ।
" १३ राजपाल की राज दरबार में बड़ी प्रतिष्ठा थी, और उस के अग्रभदास और प्रेमन दो पुत्र थे ।
" १४ उन में अग्रभदास (अपरनाम रेपा) पड़ा था । इस का भार्या रेवश्री ।
" १५-१६ अग्रभदास ने मंदिर में श्रीवृद्धप्रभ के नये विंश की प्रतिष्ठा कराई थी । और

१ यह निधय पूर्वक नहीं कहा जा सक्ता कि पंक्ति १४ के अंत और पंक्ति १५ के आदि में कितने अक्षर हटे हैं ।

२ प्रतीत होता है कि प्रशस्ति पढ़ा समाप्त हो गई ।

- ११ किसी आचार्य की कल्याणकारी देशना को सुनकर राजश्री के पुत्रने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया ।
- १२ १७-१८ ऋषभदास के पुत्र कुंरपाल स्वर्णपाल (सोनपाल) । तिन के गुणों का वर्णन । दान देने में उन की कर्ण से उपमा ।
- १३ १९-२० ये जहांगीर यादशहा के अमात्य (मंत्री) थे; धड़े धनवान थे; सदा शुभकाम करते और पुण्य श्रेष्ठों में धन लगाते थे ।
- १४ २१ जहांगीर की आज्ञा से दोनों भाई धर्म का काम करते थे ।
- १५ २२-२३ उन्होंने तीन भवन वाली एक पौषघशाला बनवाई । संवाधिपति बनकर समेत-शिवर, शत्रुंजय, आयू, गिरनार तथा अन्य तीर्थों की यात्रा की ।
- १६ २४ १२५ घोड़े, २५ हाथी यात्रा के लिये जुड़ा कर छोड़े थे ।
- १७ २५ उन्होंने दो चैत्य बनवाए जो बहुत ही ऊँचे, चित्रों और झंडों से सजे हुये थे ।
- १८ २६ अंचल गच्छ की उत्पत्ति । भगवान महावीर से ४८ वें पट्ट पर श्री आर्य रक्षित स्मरि हुए । उन्होंने श्री सीमंघर^१ स्वामी की आज्ञा पूर्वक चक्रेश्वरी देवी से वर प्राप्त करके विधिपश्च अर्थात् अंचलगच्छ चलाया^२ ।
- १९ २७-३० पट्टावलि ।
- २० ३१-३२ कुंरपाल सोनपालने श्री कल्याणसागरके उपदेश से श्रेयांस नाथजी का मंदिर बनवाया ।
- २१ ३३-३४ और उसी समय ४५० अन्य प्रतिमाओं^३ की प्रतिष्ठा हुई । इस से उन की बड़ी कीर्ति हुई ।
- २२ ३५ संपराजें...घटे सोनपाल...चतुर्भुज...दो बेटियां । प्रेमान के तीन पुत्र...
- २३ ३६ येतली और नेतसी जो शीलबालने से नानो लुद्धान हो विद्यमान था । बुद्धिमान, तेजस्वी और यशस्वी संपराज के पार बेटे थे ।
- २४ ३७ कुंरपाल की भायां.....उस की पुत्रों का नाम जादो था । जेष्ठमल गुणों का घाम
- २५ ३८ रेषश्री के दोनो पुत्र (कुंरपाल सोनपाल) अपनी पुत्रवधुओं संपश्री, सुलसश्री, दुर्गश्री आदि के गुणों से शोभा पावै रहें । आशीर्वाद (जिस के बहुत से अक्षर टूट गए हैं) ॥

१ कल्याणदेशना से शायद श्रीकल्याणसागर जी के उपदेश का आशय हो ।

२ शायद ऋषभदास की माता का नाम राजश्री था ।

३ महाविदेह क्षेत्र में वर्तमान तीर्थकर ।

४ इन प्रतिमाओं का पता लगाना चाहिये ।

५ यहां से लेख का सम्बंध ठीक नहीं बैठता ।

[टिप्पणी—कुरपाल सोनपालकी प्रशंसामें किसीएक कविने हिन्दी भाषामें एक कविता लिखी है जो पाठकके किसीएक मंडारमें हमारे देखनेमें आई थी और जिसकी नकल हमने अपनी नोटबुकमें कर ली थी । उसका संबंध इस लेखके साथ होनेसे हम यहाँ उसे प्रकट किये देने हैं ।—संपादक ।]

कोरपाल सोनपाल लोढा गुणप्रशंसा

कवित्त

सगर भरथ जगि, जगहु जावड भये । पेमराय सारंग, सुजश नाम धरणी ॥ १
 सेतुंजे संघ चलायो, सुधन सुखेत वायो । संघपतिपद पायो, कत्रि कोटि किति बरणी ॥ २
 लंहनि कडाहि ठांम, ठांम द्रुग भांन कहि । आनंद मंगल घरि घरि गावे घरणी ॥ ३
 वस्तपाल तेजपाल, हुये रेखचंद नंद । कोरपाल सोनपाल, कीर्ती भली करणी ॥ ४
 कहि लखमण लोढा, दूनीकुं दिखाइ देख । ललिको प्रमान जोषे, एसो लाहू लीजिये ॥ ५
 जान संघपति ढोड, संघ जोषे कीयो चाहै । कोरपाल सोनपाल,—को सो संघ कीजिये ॥ ६
 सत्रल राय विभार, निवल थापना चार । बाधा गइ बंदि छोर, अरि वर साजको ॥ ७
 अडेराय अवठंभ, खितीपती रायखंभ । मंत्रीराय आरंभ, भगट सुभ साजको ॥ ८
 कवि कहि रूप भूप, राइन मुकटमनि । त्यागो राई तिलक, विरद गज पाजको ॥ ९
 हय गय हेमदान्त, मान नंदकी समांत । हिंदु सुरताण, सोनपाल रेखराजको ॥ १०
 सैन बर आसनके, पैजपर पासनके । निजदल रंजन, भंजन पर दलको ॥ ११
 मदमतवारे, विकरारे, जति भारे भारे । कारे कारे बादरसे, पासव मुजलके ॥ १२
 कवि कहि रूप, नृप भुपतिनेके सिंगार । जति बहवार ऐरापति समबलके ॥ १३
 रेखराजमंदकोर पाल सोनपालचंद । हेतवानि देत ऐसे हाथिनेके हलके ॥ १४

सोमदेवसूरिकृत नीतिवाक्यामृत ।

(अ न्थ प रि च य)

[लेखक—श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमी.]

[श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमीकी देखरेखमें धर्मरस जो माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैनग्रन्थ-माला प्रकट होती है, उसमें अभी हाल ही सोमदेवसूरिकृत नीतिवाक्यामृत नामका एक अमूल्य ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थके कर्ता और विषय आदिका विस्तृत परिचय करानेके लिए प्रेषाजिने ग्रन्थके प्रारम्भमें एक पाण्डित्यपूर्ण और अनेक ज्ञातव्य बातोंसे भरपूर सुन्दर प्रस्तावना लिखी है जो प्रत्येक साहित्य और इतिहास प्रेमीके लिए अवश्य पठनीय और मननीय है। इस लिए हम लेखक सहायकी अनुपति लेकर, जैनसाहित्यसंशोधकके पाठकोंके ज्ञानार्थ, उस प्रस्तावनाको अविकलतया यहाँ पर प्रकट करते हैं—संपादक ।]

श्रीमत्सोमदेवसूरिका यह 'नीतिवाक्यामृत' संस्कृत साहित्य-सागरका एक अमूल्य और अनुपम रत्न है। इसका प्रधान विषय राजनीति है। राजा और उसके राज्यशासनसे सम्बन्ध रखनेवाली प्रायः सभी आवश्यक बातोंका इसमें विवेचन किया गया है। यह सारा ग्रन्थ गद्यमें है और सुस्पष्टतरे लिखा गया है। इसकी प्रतिपादनशैली बहुत ही सुन्दर, प्रभावशालिनी और गंभीरतापूर्ण है। बहुत बड़ी बातको एक छोटेसे वाक्यमें कह देनेकी कलामें इसके कर्ता सिद्धहस्त हैं। जैसा कि ग्रन्थके नामसे ही प्रकट होता है, इसमें विशाल नीतिसमुद्रका मन्थन करके सारभूत अमृत संप्रदा किया गया है और इसका प्रत्येक वाक्य इस बातकी साक्ष्य देता है। नीतिशास्त्रके विद्यार्थी इस अमृतका पान करके अवश्य ही सन्तुष्ट होंगे।

यह ग्रन्थ ३२ समुद्देशोंमें × विभक्त है और प्रत्येक समुद्देशमें उसके नामके अनुसार विषय प्रतिपादित है।

प्राचीन राजनीतिक साहित्य ।

राजनीति, चार पुरुषार्थोंमेंसे दूसरे अर्थपुरुषार्थके अन्तर्गत है। जो लोग यह समझते हैं कि प्राचीन भारत-वासियोंने 'धर्म' और 'मोक्ष' को छोड़कर अन्य पुरुषार्थोंकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया, वे इस देशके प्राचीन साहित्यसे अपरिचित हैं। यह सच है कि पिछले समयमें इन विषयोंकी ओरसे लोग उदासीन होते गये, इनका पठन पाठन बन्द होता गया और इस कारण इनके सम्बन्धका जो साहित्य था, वह धीरे धीरे नष्टप्राय होता गया। फिर भी इस बातके प्रमाण मिलते हैं कि राजनीति आदि विद्याओंकी भी यहाँ खूब उन्नति हुई थी और इनपर अनेकानेक ग्रन्थ लिखे गये थे।

वात्स्यायनके कामसूत्रमें लिखा है कि प्रजापतिने प्रजाके स्थितिप्रबन्धके लिए त्रिवर्गशासन—(धर्म—अर्थ—काम) विषयक महाशास्त्र बनाया जिसमें एक लाख अध्याय थे। उसमेंसे एक एक भागको लेकर मनुने धर्माधिकार, बृहस्पतिने अर्थधिकार, और नन्दीने कामसूत्र, इस प्रकार तीन अधिकार बनाये *। इसके बाद इन तीनों विषयोंपर उत्तरीतर

× "समुद्देशश्च संक्षेपमिधानम्"—कामसूत्रटीका, अ० ३।

* "प्रजापतिर्हि प्रजाः सृष्ट्वा तासां स्थितिनिबन्धनं त्रिवर्गस्य साधनमध्यायानां सप्तसहस्रेणाग्रे प्रोवाच। तत्स्यैकदेशिकं मनुः स्वायंभुवो धर्माधिकारकं पृथक् चकार। बृहस्पतिरर्थीधिकारम्। नन्दी सहस्रेणाध्यायानां प्रयत्नामसूत्रं चकार।"—कामसूत्र अ० १।

संक्षिप्त ग्रन्थोंका निर्माण हुआ। पुराणोंमें भी लिखा है कि प्रजापतिके उक्त एक लाख अध्यायवाले, त्रिपर्व-शासनके नारद, इन्द्र, बृहस्पति, शुक्र, भारद्वाज, विशालाक्ष, भीष्म, पराशर, मनु, अन्यान्य महर्षि और विष्णुगुप्त (चाणक्य) ने संक्षिप्त करके धृक् पृथक् ग्रन्थोंकी रचना की। परन्तु इस समय उक्त सब साहित्य प्रायः नष्ट हो गया है। कामपुरुषार्थ पर वात्स्यायनका कामसूत्र, अर्थपुरुषार्थ पर विष्णुगुप्त या चाणक्यका अर्थशास्त्र और धर्मपुरुषार्थ पर मनुके धर्मशास्त्रका संक्षिप्तसार 'मानवं धर्मशास्त्र'—जो कि भृगु नामक आचार्यका संग्रह किया हुआ है और मनुस्मृतिके नामसे प्रसिद्ध है—उपलब्ध है।

उक्त ग्रन्थोंमेंसे राजनीतिक मष्टत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'कौटिलीय अर्थशास्त्र' अर्थात् १३-१४ वर्ष पहले ही उपलब्ध हुआ है और उसे मैसूरकी यूनीवर्सिटीने प्रकाशित किया है। यह अवरो लगभग २२०० वर्ष पहले लिखा गया था। सुप्रसिद्ध मौर्यवंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्तके लिए—जो कि हमारे कथाग्रन्थोंके अनुसार जैनधर्मके उपासक थे और जिन्होंने अन्तमें जिनदीक्षा धारण की थी—आर्य चाणक्यने इस ग्रन्थको निर्माण किया था। नन्दवंशका समूल उच्छेद करके उसके सिंहासन पर चन्द्रगुप्तको आसीन करानेवाले चाणक्य कितने बड़े राजनीतिज्ञ होंगे, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है। उनकी राजनीतिज्ञताका सबसे अधिक उज्ज्वल प्रमाण यह अर्थशास्त्र है। यह बड़ा ही अद्भुत ग्रन्थ है और उस समयकी शासनव्यवस्था पर ऐसा प्रकाश डालता है जिसकी पहले किराने कल्पना भी न की थी। इसे पढ़नेसे मात्स्य होता है कि उस प्राचीन कालमें भी इस देशने राजनीतिमें आध्यक्षजनक उन्नति कर ली थी। इस ग्रन्थमें मनु, भारद्वाज, उशाना (शुक्र), बृहस्पति, विशालाक्ष, पिशुन, पराशर, वात्स्यायि, कौणपदन्त और बाहुदन्तीपुत्र नामक प्राचीन आचार्योंके राजनीतिसम्बन्धी मतोंका जगह जगह उल्लेख मिलता है। आर्य चाणक्य प्रारंभमें ही कहते हैं कि शुचीर्वाके लाभ और पालनके लिए पूर्वाचार्योंने जितने अर्थशास्त्र प्रस्थापित किये हैं, प्रायः उन सबका संग्रह करके यह अर्थशास्त्र लिखा जाता है। इससे मात्स्य होता है कि चाणक्यसे भी पहले इस विषयके अनेकानेक ग्रन्थ मौजूद थे और चाणक्यने उन सबका अध्ययन किया था। परन्तु इस समय उन ग्रन्थोंका कोई पता नहीं है।

चाणक्यके बादका एक और प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध है जिसका नाम 'नीतिसार' है और जिसे संभवतः चाणक्यके ही शिष्य कामन्दक नामक विद्वानेने अर्थशास्त्रको संक्षिप्त करके लिखा है। अर्थशास्त्र प्रायः गद्यमें है; परन्तु नीतिसार श्लोकबद्ध है। यह भी अपने ढंगका अपूर्व और प्रामाणिक ग्रन्थ है और अर्थशास्त्रको समझनेमें इससे बहुत सहायता मिलती है। इसमें भी विशालाक्ष, पुलोमा, यम आदि प्राचीन नीतिग्रन्थकर्त्ताओंके मतोंका उल्लेख है।

+ ग्रहाध्यायसहस्राणां शतं चक्रे स्वबुद्धिजम् । तन्नास्तेन शक्रेण गुरुणा भार्गवेण च ॥
भारद्वाजयिशाशास्त्रमीमपपाराशरैस्तथा । संक्षिप्तं मनुना चैव तथा चान्यैर्महर्षिभिः ॥
प्रजानामायुषो ह्रासं विशाय च महात्मना । संक्षिप्तं मनुना चैव तथा चान्यैर्महर्षिभिः ॥
प्रजानामायुषो ह्रासं विशाय च महात्मना । संक्षिप्तं विष्णुगुप्तेन नृपाणामर्थसिद्धये ॥
ये श्लोक हमने गुजरातीटीकासाहित कामन्दकीय नीतिसारकी भूमिका परसे उद्धृत किये हैं; परन्तु उससे यह नहीं मात्स्य हो सता कि ये किस पुराणके हैं।

* सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ मि० विन्सेण्ट स्मिथ आदि विद्वान् भी इस बातको संभव समझते हैं कि चन्द्रगुप्त मौर्य जैनधर्मके उपासक थे। 'त्रिलोकप्रशस्ति' नामक प्राकृत ग्रन्थमें—जो विक्रमकी पाँचवीं शताब्दिके लगभगका है—लिखा है कि मुद्गधारी राजाओंने सबसे अन्तिम राजा चन्द्रगुप्त या जिसने जिनदीक्षा ली।—देखो जैनहितोपी वर्ष १३, अंक १३।

× सर्वदास्त्रानुपक्रम्य प्रयोगानुपलभ्य च । कौटिल्येन नरेन्द्रायै शासनस्य विधिः कृतः ॥

येन शास्त्रं च शास्त्रं च नन्दराजगता च भूः । अमर्षेणोद्धृतान्याश्रुतेन शास्त्रमिदं कृतम् ॥

+ शृष्ट्या लाभे पालने च याचन्ययंशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्थापितानि प्रायश्स्तानि संश्लेषकमिदमर्थशास्त्रं कृतम् ।

÷ देखो गुजराती प्रेस बम्बईके 'कामन्दकीय नीतिसार' की भूमिका।

कामन्दकके नीतिसारके बाद जहाँ तक हम जानते हैं, यह नीतिवाक्यामृत ग्रन्थ ही ऐसा बना है, जो उक्त दोनों ग्रन्थोंकी श्रेणीमें रक्खा जा सकता है और जिसमें शुद्ध राजनीतिकी चर्चा की गई है। इसका अध्ययन भी कोटिल्यो अथवाशास्त्रके समझनेमें बड़ी भारी सहायता देता है।

नीतिवाक्यामृतके कर्ताने भी अपनेद्वितीय ग्रन्थ (यशस्तिलक) में गुरु, शुक्र, विशालाक्ष, भारद्वाजके नीतिशास्त्रोंका उल्लेख किया है*। मनुके भी बांसे श्लोकोंका उद्धृत किया है†। नीतिवाक्यामृतमें विष्णुगुप्त या चाणक्यका और उनके अर्थशास्त्रका उल्लेख है॥ गृहस्थति, शुक्र, भारद्वाज, आदिके अभिप्रायोंको भी उन्होंने नीतिवाक्यामृतमें संग्रह किया है जिसका स्पष्टीकरण नीतिवाक्यामृतकी इस संस्कृत टीकासे होता है। स्तुतिपारसे भी वे अच्छी तरह परिचित मालूम होते हैं†। इससे हम कह सकते हैं कि नीतिवाक्यामृतके कर्ता पूर्वांच राजनीतिक साहित्यसे यथेष्ट परिचित थे। बहुत संभव है कि उनके समयमें उक्त सबका सच साहित्य नहीं तो उसका अधिकांश उपलब्ध होगा। कमसे कम पूर्वांच आचार्योंके ग्रन्थोंके सार या संग्रह आदि अवश्य मिलते होंगे।

इन सब बातोंसे और नीतिवाक्यामृतको अच्छी तरह पढ़नेसे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि नीतिवाक्यामृत प्राचीन नीतिशास्त्रका सारभूत अमृत है। दूसरे शब्दोंमें यह उन सबके आधारसे और कवियों विलक्षण प्रतिभासे प्रसूत हुआ संग्रह ग्रन्थ है। जिस तरह कामन्दकने चाणक्यके अर्थशास्त्रके आधारसे संक्षेपमें अपने नीतिसारका निर्माण किया है, उसी प्रकार सोमदेवसूरने उनके समयमें जितना नीतिशास्त्र प्राप्त था उसके आधारसे यह नीतिवाक्यामृत निर्माण किया है। दोनोमें अन्तर यह है कि नीतिसार श्लोकबद्ध है और केवल अर्थशास्त्रके आधारसे लिखा गया है, परन्तु नीतिवाक्यामृत गद्यमें है और अनेकानेक ग्रन्थोंके आधारसे निर्माण हुआ है, यद्यपि अर्थशास्त्रकी भी इसमें यथेष्ट सहायता ली गई है।

कोटिल्यो अर्थशास्त्रकी भूमिकामें श्रोगुत शमशास्त्रने लिखा है कि, “यद्य यशोधरमहाराजसमकालेन सोमदेव-सूरिणा नीतिवाक्यामृतं नाम नीतिशास्त्रं विरचितं तदपि कामन्दकायमिव कोटिल्योपदेशास्त्रोदयं साक्षिष्य संग्रहतामिति। इदं ग्रन्थपदवाक्यशैलीपरीक्षायां निस्संशयं ज्ञायते।” अर्थात् यशोधर महाराजके समकालिक सोमदेवसूरने जो ‘नीतिवाक्यामृत’ नामका ग्रन्थ लिखा है उसके पद और वाक्योंकी शैलीकी परीक्षासे यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि वह भी कामन्दकके नीतिसारके समान कोटिल्यो अर्थशास्त्रसे ही साक्षित करके लिखा गया है*। परन्तु हमारी समझमें

“न्यायादवसरमलभमानस्य विरसेवकसमाजस्य विश्रम्य इव नमसचिवाचयः प्रतिपन्नकामचारव्यवहारोप-
वैरविहारेषु मम गुरुशुक्रविशालाक्षपरोक्षतपराशरभोमभीष्मभारद्वाजदिप्रणीतनीतिशास्त्रध्वनसनाथ धृतपथमभजन्त।”—
यशस्तिलकचम्पू, आरवास ३, पृ० २३६।

+ “दृषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः। समं सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥
इति कथमिदमाह वैवस्वतो मनुः।”—यशस्तिलक आ० ४, पृष्ठ १००। यह श्लोक मनुस्मृति अ० ६ का ६६ वाँ श्लोक है। इसके सिवाय यशस्तिलक आरवास ४, पृ० ९०—९१—११६ (प्राक्षितं भक्षयेत्), ११७ (क्रीत्वा स्वयं), १२७ (समी श्लोक), १४९ (समी श्लोक), २८७ (अधीत्य) के श्लोक भी मनुस्मृतिमें ज्योंके त्यों मिलते हैं। यद्यपि वहाँ यह नहीं लिखा है कि ये मनुके हैं। ‘उक्तं च’ रूपमें ही दिये हैं।

× नीतिवाक्यामृत पृष्ठ० ३६ सूत्र ९, पृ० १०७ सूत्र ४, पृ० १७१ सूत्र १४ आदि।

† “विप्रक्रीतावृषापि पुनर्विवाहदीक्षामहतीति स्मृतिकाराः”—नी०वा० पृ० ३७७, सू० २७; “धृतेः स्मृतेर्वाहवाह्यतरः”, यशस्तिलक आ० ४, पृ० १०५; “धृतिस्मृतीभ्यामतीव बाधे”—यशस्तिलक आ० ४, पृ० १११; “तथा च स्मृतिः” पृ० ११६; और “इति स्मृतिकारकीर्तिमप्रमाणीकृत्य” पृ० २८७।

÷ यशस्तिलक आ० ४ पृ० १०० में नीतिशास्त्रके पाण्डुगुण्य प्रस्तावके दो श्लोक और विशालाक्षके कुछ वाक्य दिये हैं। ये विशालाक्ष संभवतः वे ही नीतिशास्त्र हैं जिनका उल्लेख अर्थशास्त्र और नीतिसारमें किया गया है।

* शास्त्रीजीका यह बड़ा भारी ग्रन्थ है, जो सोमदेवसूरिको वे यशोधर महाराजके समकालिक समझते हैं। यशोधर जैनोके एक पुराणपुरष हैं। इनका चरित सोमदेवसे भी पहले पुण्यदन्त, बच्छराय आदि कवियोंने लिखा है। पुण्यदन्तका समय शकसंवत् ६०६ के लगभग है। और बच्छराय पुण्यदन्तसे भी पहले हुए हैं।

शास्त्रीजीने उक्त परीक्षा बारीकीसे या अच्छी तरह विचार करके नहीं की है। यह हम मानते हैं कि नीतिवाक्यामृतकी रचनाने अर्थशास्त्रकी सहायता अवश्य ली गई है, जैसा कि आगे दिये हुए दोनोंके अवतरणोंसे मात्स्य होगा। पाठक देखेंगे कि दोनोंमें विलक्षण समता है, कहीं कहीं तो दोनोंके पाठ विस्तृत एकसे मिल गये हैं। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि नीतिवाक्यामृत अर्थशास्त्रका ही संप्रति सार है। अर्थशास्त्रका अनुधावन करनेवाला होकर भी वह अनेक अंशोंमें बहुत कुछ स्वतंत्र है। अर्थशास्त्रके अतिरिक्त अन्यान्य नीतिशास्त्रोंके अभिप्राय भी उसमें अपने ढंगसे समावेशित किये गये हैं। इसके सिवाय ग्रन्थकर्ताने अपने देश-काल पर दृष्टि रखते हुए बहुत सी पुरानी बातोंको—जिनकी उस समय ज़रूरत नहीं रही थी या जो उनकी समझमें अनुचित थी—छोड़ दिया है या परिवर्तित कर दिया है। साथ ही बहुतसी सम्योपयोगी बातें शामिल भी कर दी हैं।

- यहाँ हम अर्थशास्त्र और नीतिवाक्यामृतके ऐसे अवतरण देते हैं जिनसे दोनोंकी समानता प्रकट होती है:—

१—दुष्प्रणीतः कामक्रोधाभ्यामज्ञानाद्वातनप्रस्थपरिवाजकानपि कोपयति, किमङ्ग पुनर्गृहस्थान् ।
अप्रणीतो हि मात्स्यन्यायमुद्गाधयति । बलीयानवलं प्रसते वण्डधराभावे । —अर्थशास्त्र पृ० ९ ।

दुष्प्रणीतो हि दण्डः कामक्रोधाभ्यामज्ञानाद्वा सर्वजनविद्वेषं करोति । अप्रणीतो हि दण्डो मात्स्यन्यायमुद्गाधयति ।
बलीयानवलं प्रसते (इति मात्स्यन्यायः) । —नीतिवा० पृ० १०४-५ ।

२—ब्रह्मचर्यं चापोडशाद्वर्षान् । अतो गोदानं दारकर्म च । —अर्थ० पृ० १० ।
ब्रह्मचर्यमापोडशाद्वर्षांततो गोदानपूर्वकं दारकर्म चास्य । —नी० १९७ ।

३—पुरोहितमुदितोदितकुलशीलं पण्डितं वेदे वैवे निमित्ते वण्डनीत्यां च अभिविनीतमा-
पदां दैवमानुषीणां अर्थधर्मरुपायैश्च प्रतिकर्तारं कुर्वीत । —अर्थ० पृ० १५-१६ ।
पुरोहितमुदितकुलशीलं पण्डितं वेदे वैवे निमित्ते वण्डनीत्यामभिविनीतमापदां दैवीनां मानुषीणां च प्रतिकर्तारं कुर्वीत ।
—नीति० पृ० १५९ ।

४ परमर्मेज्ञः प्रगल्भः छात्रः कापटिकः । —अर्थ पृ० १८ ।

परमर्मेज्ञः प्रगल्भः छात्रः कापटिकः । — नी० पृ० १७३ ।

५—श्रूयते हि शुक्रसारिकाभिः मन्त्रो भिन्नः द्यभिरन्यैश्च तिर्यग्योनिभिः । तस्मान्मन्त्रोद्देश-
मनायुक्तो नोपगच्छेत् । —अर्थ० पृ० २६ ।

अनायुक्तो न मन्त्रकाले तिष्ठेत् । श्रूयते हि शुक्रसारिकाभ्यामन्यैश्च तिर्यग्भिर्मन्त्रभेदः कृतः । —नीति० पृ० ११८ ।

६—द्वादशवर्षा स्त्री प्राप्तव्यवहारा भवति । पौडशवर्षः पुमान् । —अर्थ० १५४ ।
द्वादशवर्षा स्त्री पौडशवर्षः पुमान् प्राप्तव्यवहारी भवतः । —नीति० ३७३ ।

इस तरहके और भी अनेक अवतरण दिये जा सकते हैं ।

यहाँपर पाठकोंको यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि व्यागव्यने भी तो अपने पूर्ववर्ती विशालाशु, भारद्वाज, बृहस्पति आदिके ग्रन्थोंका संग्रह करके अपना ग्रन्थ लिखा है* । ऐसी दशामें यदि सोमदेवकी रचना अर्थशास्त्रसे भिन्नती जुलुसी हो, तो क्या आश्चर्य है । क्योंकि उन्होंने भी उन्हीं ग्रन्थोंका मन्थन करके अपना नीतिवाक्यामृत लिखा है । यह दूसरी बात है कि नीतिवाक्यामृतकी रचनाके समय ग्रन्थकर्ताके सामने अर्थशास्त्र भी उपस्थित था ।

परन्तु पाठक इससे नीतिवाक्यामृतके महत्त्वको कम न समझ लें । ऐसे विषयोंके ग्रन्थोंका अधिकांश भाग संग्रह रूप ही होता है । क्योंकि उसमें उन सब तत्त्वोंका समावेश तो नितान्त आवश्यक ही होता है जो ग्रन्थकर्ताके पूर्वलेखकों द्वारा उस शास्त्रके सम्बन्धमें निश्चित हो चुके हैं । उनके सिवाय जो नये अनुभव और नये तर्क उपलब्ध होते हैं उन्हें ही वह विशेषरूपसे अपने ग्रन्थमें निविष्ट करता है । और हमारी समझमें नीतिवाक्यामृत ऐसी बातोंसे खाकी नहीं है । ग्रन्थकर्ताकी स्वतंत्र प्रतिभा और मौलिकता उसमें जगह जगह प्रकटित हो रही है ।

ग्रन्थकर्ताका परिचय ।

गुरुपरम्परा ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है नीतिवाक्यामृतके कर्ता श्रीसोमदेवसूरि हैं । ये देवसंघके आचार्य थे । दिगम्बर-सम्प्रदायके सुप्रसिद्ध चार संघोंमेंसे यह एक है । भंगराज कविके कथनानुसार यह संघ सुप्रसिद्ध तार्किक महाफलक-देवके बाद स्थापित हुआ था । अकलंकदेवका समय विक्रमकी ९ वीं शताब्दिका प्रथम पाद है । *

सोमदेवके गुरुका नाम नेमिदेव और दादागुरुका नाम यशोदेव था । यथा:—

श्रीमानसित इ स देवसंघतिलको देवो यशःपूर्वकः,

शिष्यस्तस्य यभूव सद्गुणानधिः श्रीनेमिदेवाहयः ।

तस्याश्चर्यतपः स्थितेस्त्रिनयतेर्जुतुर्भद्रावादिनां,

शिष्योऽभूद्विद् सोमदेव इति यस्तस्यैव ध्याव्यक्रमः ॥ —यशस्तिलकचम्पू ।

नीतिवाक्यामृतकी गद्यप्रशस्तिसे भी यह मालूम होता है कि वे नेमिदेवके शिष्य थे । साथ ही उसमें यह भी लिखा है कि वे महेन्द्रदेव भट्टारकके अनुज थे । इन तीनों महात्माओं—यशोदेव, नेमिदेव और महेन्द्रदेवके सम्बन्धमें हमें और कोई भी बात मालूम नहीं है । न तो इनकी कोई रचना ही उपलब्ध है और न अन्य किसी ग्रन्थादिमें इनका कोई उल्लेख ही मिला है । इनके पूर्वके आचार्योंके विषयमें भी कुछ शान्त नहीं है । सोमदेवसूरिकी शिष्यपरम्परा भी अज्ञात है । यशस्तिलकके टीकाकार श्रीभूतसागरसूरिने एक जगह लिखा है कि वादिराज और वादीभसिंह, दोनों ही सोमदेवके शिष्य थे X; परन्तु इसके लिए उन्होंने जो प्रमाण दिया है वह किस ग्रन्थका है, इसके जाननेका कोई साधन नहीं है । यशस्तिलककी रचना शकसंवत् ८८१ (विक्रम १०१९) में समाप्त हुई है और वादिराजने अपना पार्ष्वनाथचरित शकसंवत् ९४७ (वि० १०८२) में पूर्ण किया है; अर्थात् दोनोंके बीचमें ६६ वर्षका अन्तर है । ऐसी दशामें उनका गुरु शिष्यका नाता होना दुर्घट है । इसके सिवाय वादिराजके गुरुका नाम मत्तिसागर या और ये द्रविड संघके आचार्य थे । भुव रहे वादीभसिंह, तो उनके गुरुका नाम पुण्यपेग या और पुण्यपेग अकलंकदेवके गुरुमार्ग थे, इसलिए उनका समय सोमदेवसे बहुत पहले जा पड़ता है । ऐसी अवस्थामें वादिराज और वादीभसिंहको सोमदेवका शिष्य नहीं माना जा सकता । ग्रन्थकर्ताके गुरु बड़े भारी तार्किक थे । उन्होंने ९३ वादियोंको पराजित करके विजयकीर्ति प्राप्त की थी +।

इसी तरह महेन्द्रदेव भट्टारक भी दिग्विजयी विद्वान् थे । उनका 'वादीन्द्रकालानल' उपपद ही इस बातकी घोषणा करता है ।

तार्किक सोमदेव ।

श्रीसोमदेवसूरि भी अपने गुरु और अनुजके सदृश बड़े भारी तार्किक विद्वान् थे । वे इस ग्रन्थकी प्रशस्तिमें कहते हैं:—

अल्पेऽनुग्रहधीः समे सुजनता मान्ये महानादरः, सिद्धान्तोऽयमुदात्ताचित्राचरिते श्रीसोमदेवे मायि ।
यः स्पर्धेत तयापि दर्पदृढताम्रौढिप्रगाढाग्रह—स्तस्यास्पर्धितगवेषर्पतपविर्भद्राफुल्लतान्तायते ॥

सारंश यह कि मैं छोटीके साथ अनुग्रह, बराबरीबाँझोंके साथ सुजनता और बड़ोंके साथ महान् आदरका यत्नाव करता हूँ । इस विषयमें मेरा चरित्र बहुत ही उदार है । परन्तु जो मुझे ऐंड दिक्कता है, उसके लिए, गर्वहारी पर्वतको विध्वंस करनेवाले मेरे वज्र-वचन कालस्वरूप हो जाते हैं ।

* देखो जैनहितैषी भाग ११, अंक ७—८ ।

X “उक्तं च वादिराजेन महाकविना—.....स वादिराजोऽपि श्रीसोमदेवाचार्यस्य शिष्यः—
वादीभसिंहोऽपि मदीयाशिष्यः श्रीवादिराजोऽपि मदीयाशिष्यः” इत्युक्तवाच्य ।”

—यशस्तिलकटीका भा० २, पृ० २६५ ।

+ यशस्तिलकके ऊपर उद्धृत हुए श्लोकमें उन महावादियोंकी संख्या—जिनको श्रीनेमिदेवने पराजित किया था—तिरानेसे बतलाई है; परन्तु नीतिवाक्यामृतकी गद्यप्रशस्तिमें पचपन है । मालूम नहीं, इसका क्या कारण है ।

दर्पान्धयोधधुधसिन्धुरसिंहनादे , वादिद्विषोद्वलनदुर्धरवाग्विवादे ।

श्रीसोमदेवमुनिपे घचनारसाले, चागीद्वरोऽपि पुरतोऽस्ति न वादकाले ॥

भाव यह कि अभिमानी पण्डित गजोंके लिए सिंहके समान ललकारनेवाले और वादिगजोंको दलित करनेवाला दुर्धर विवाद करनेवाले श्रीसोमदेव मुनिके सामने, वादके समय वागीद्वर या देवगुरु ५३१५ति भी नहीं टहर सकते हैं !

इसी तरहके और भी कई पद्य हैं जिनसे उनका प्रखर और प्रचण्ड तर्कपाण्डित्य प्रकट होता है ।

यशस्तिलक चम्पूकी उदाहरणिकांमें कहा है:—

आजन्मकृदभ्यासाच्छुष्कात्कर्त्तात्तृणादिव ममास्याः ।

मत्तिसुरभेरभवदिदं सूक्ष्मपयः सुरतिनां पुण्यैः ॥ १७

अर्थात् मेरी जिस बुद्धिरूपी गोने जीवन भर तर्करूपी सूया पास खाया, उसीसे अब यह काव्यरूपी दुग्ध उत्पन्न हो रहा है । इस उक्तिसे अच्छी तरह प्रकट होता है कि श्रीसोमदेवसूरिने अपने जीवनका बहुत बड़ा भाग तर्कशास्त्रके अभ्यासमें ही व्यतीत किया था । उनके स्याद्वादचलसिंह, वादीमर्षचानन और तार्किकचक्रवर्ती पद भी इसी बातके पोटक हैं ।

परन्तु ये केवल तार्किक ही नहीं थे—काव्य, व्याकरण, धर्मशास्त्र और राजनीति आदिके भी धुरंधर विद्वान् थे ।

महाकवि सोमदेव ।

उनका यशस्तिलकचम्पू महाकाव्य—जो निर्णयसागरकी काव्यमालामें प्रकाशित हो चुका है—इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वे महाकवि थे और काव्यकला पर भी उनका असाधारण अधिकार था । रूमने संस्कृत साहित्यमें यशस्तिलक एक अद्भुत काव्य है और कविराजके साथ उसमें ज्ञानका विशाल खजाना संश्रुत है । उसका गद्य भी कादम्बरी तिलकमधुरी आदिकी टक्करका है । सुभाषितोंका तो उसे आकर ही कहना चाहिए । उसकी प्रशंसामें रवय प्रम्यकर्त्तानि यशतत्र जो सुन्दर पद्य कहे हैं, वे सुनने योग्य हैं:—

असहायमनादर्शं रत्नं रत्नाकरादिव ।

मत्तः काव्यामिदं जातं सतां हृदयमण्डनम् ॥ १४ —प्रथम आदवाच ।

समुद्रसे निकले हुए असहाय, अनादर्श और सज्जनोंके हृदयकी शोभा बढ़ानेवाले रत्नकी तरह मुझसे भी यह असहाय (मौलिक), अनादर्श (बेजोड़) और हृदयमण्डन काव्यरत्न उत्पन्न हुआ ।

कर्णाञ्जलिपुटैः पातुं चेतः सूकामृते यदि ।

श्रूयतां सोमदेवस्य नव्याः काव्योक्तियुक्तयः ॥ २४६ ॥ —द्वितीय आ० ।

यदि आपका चित्त कानोंकी अंजुलीसे सूकामृतका पान करना चाहता है, तो सोमदेवकी नई नई काव्योक्तियों सुनिए ।

लोकावित्ते कवित्वे वा यदि चातुर्यचञ्चयः ।

सोमदेवकवेः सूक्तिं समभ्यस्यन्तु साधयः ॥ ५१३ ॥ —तृतीय आ० ।

यदि सज्जनोंकी यह इच्छा हो कि वे लोकव्यवहार और कवित्वमें चातुर्य प्राप्त करें तो उन्हें सोमदेव कविकी सूक्तियोंका अभ्यास करना चाहिए ।

मया वागर्थसंभारे भुक्ते सारस्वते रसे ।

कचयोऽन्वे भविष्यन्ति नूनमुच्छिष्टभोजनाः ॥ —चतुर्थ आ०, पृ० ११५ ।

मैं शब्द और अर्थपूर्ण सारे सारस्वत रस (साहित्य रस) का स्वाद ले चुका हूँ, अतएव अब जितने दूसरे कवि होंगे, वे निश्चयसे उच्छिष्टभोजी या जूठा खानेवाले होंगे—वे कोई नई बात न कह सकेंगे ।

अरालकालव्यालेन ये लीढा साम्प्रतं तु ते ।

शाव्याः श्रीसोमदेवेन प्रोत्थाप्यन्ते किमद्भुतम् ॥ —पंचम आ०, पृ० २६६ ।

समयरूपी विकट रत्नने जिन शब्दोंको निगल लिया था, अतएव जो उठें हो गये थे, यदि उन्हें श्रीसोमदेवने उठा दिया, मिला दिया—तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए । (इसमें 'सोमदेव' शब्द अिष्ट है । सोम चन्द्रवाची है और चन्द्रकी अमृत-किरणोंसे विप्लवपूर्ण जीव सचेत हो जाते हैं ।)

उद्धृत्य शास्त्रजलधोर्नितले निम्ननैः

पर्यागतैरिच चिरादभिधानरत्नैः ।

या सोमदेवविदुषा विद्विता विभूषा

वादेयता घटतु सम्प्रति तामनर्घाम् ॥ —पं० आ०, पृ० २६६ ।

चिरकालसे शास्त्रसमुद्रके विलुप्त नीचे हूये हुए शब्द-रत्नोंका उद्धार करके सोमदेव पण्डितने जो यह बहुमूल्य आभूषण (काव्य) बनाया है, उसे श्रीसरस्वती देवी धारण करें ।

इन उक्तियोंसे इस बातका आभास मिलता है कि आचार्य सोमदेव किस श्रेणीके कवि थे और उनका उक्त महाकाव्य कितना महत्वपूर्ण है । पूर्वोक्त उक्तियोंमें अभिमानकी मात्रा विशेष रहने पर भी वे अनेक अंशोंमें सत्य जान पड़ती हैं । सचमुच ही यशस्तिलक शब्दरत्नोंका बड़ा भारी खजाना है और यदि माघकाव्यके समान कहा जाय कि इस काव्यको पढ़ लेने पर फिर कोई नया शब्द नहीं रह जाता, तो कुछ अत्युक्ति न होगी । इसी तरह इसके द्वारा सभी विषयोंकी व्युत्पत्ति हो सकती है । व्यवहारदक्षता बढ़ानेकी तो इसमें ढेर सामग्री है ।

महाकवि सोमदेवके वाक्कण्डोलयनिधि, कविराजकुंजर और गद्यपद्यविधापरचक्रवर्ती विशेषण, उनके श्रेष्ठकवित्वके ही परिचायक हैं ।

धर्माचार्य सोमदेव ।

यद्यपि अभीतक सोमदेवसूरिका कोई स्वतंत्र धार्मिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है; परन्तु यशस्तिलकके अन्तिम दो आशवास—जिनमें उपासकाध्ययन या ध्यातृकोके आचारका निरूपण किया गया है—इस बातके साक्षी हैं कि वे धर्मके कैसे मार्गदर्शक विद्वान् थे । स्वामी समन्तभद्रके रत्नकरण्डके बाद ध्यातृकोका आचारशास्त्र ऐसी उत्तमता, स्वाधीनता और मार्मिकताके साथ इतने विस्तृत रूपमें आजतक किसी भी विद्वानकी कलमसे नहीं लिखा गया है । जो लोग यह समझते हैं कि धर्मग्रन्थ तो परम्परासे चले आये हुए ग्रन्थोंके अनुवादमात्र होते हैं—उनमें ग्रन्थकर्ता विशेष क्या कहेगा, उन्हें यह उपासकाध्ययन अवश्य पढ़ना चाहिए और देखना चाहिए कि धर्मशास्त्रोंमें भी मौलिकता और प्रतिभाके लिए कितना विस्तृत क्षेत्र है । खेद है कि जैनसमाजमें इस महत्वपूर्ण ग्रन्थके पठन पाठनका प्रचार बहुत ही कम है और अब तक इसका कोई हिन्दी अनुवाद भी नहीं हुआ है । नीतिवाक्यामृतकी प्रशस्तिमें लिखा है:—

सफलसमयतर्कं नाकलंकोऽसि वादिन् न भ्रवांसि समयोक्तौ हंससिद्धान्तदेवः ।

न च वचनविलासे पूज्यपादोऽसि तत्त्वं यदसि कथमिदानीं सोमदेवेन सार्धम् ॥

अर्थात् हे वादी, न तो तू समस्तदर्शन शास्त्रों पर तर्क करनेके लिए अकलंकदेवके तुल्य है, न जैनसिद्धान्तके कहनेके लिए हंससिद्धान्तदेव है और न व्याकरणमें पूज्यपाद है, फिर इस समय सोमदेवके साथ किस विरते पर बात करने चला है ? *

इस उक्तिसे स्पष्ट है कि सोमदेवसूरि तर्क और सिद्धान्तके समान व्याकरणशास्त्रके भी पण्डित थे ।

राजनीतिज्ञ सोमदेव ।

सोमदेवके राजनीतिज्ञ होनेका प्रमाण यह नीतिवाक्यामृत तो है ही, इसके सिवाय उनके यशस्तिलकमें भी यशोधर महाराजका चरित्रचित्रण करते समय राजनीतिकी बहुत ही विरसद और विस्तृत चर्चा की गई है । पाठकोंको-चाहिए कि वे इसके लिए यशस्तिलकका तृतीय आशवास अवश्य पढ़ें ।

यह आशवास राजनीतिके तत्त्वोंसे भरा हुआ है । इस विषयमें वह अद्वितीय है । वर्णन करनेकी शैली बड़ी ही सुन्दर है । कवित्वकी कमनीयता और सरसतासे राजनीतिकी नीरसता साझम नहीं कहाँ चली गई है । नीतिवाक्यामृतके

* अकलंकदेव—अष्टासी, राजवार्तिक आदि ग्रन्थोंके रचयिता । हंससिद्धान्तदेव—ये कोई सैद्धांतिक आचार्य जान पड़ते हैं । इनका अब तक और कहीं कोई उल्लेख देखनेमें नहीं आया । पूज्यपाद—देवनाग्नि, जेनेन्द्र व्याकरणके कर्ता ।

अनेक अंशोंका अभिप्राय 'उसमें किसी न किसी रूपमें अन्तर्निहित ज्ञान पड़ता है + ।

जहाँ तक हम जानते हैं जैनविद्वानों और आचार्योंमें—दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनोंमें—एक सोमदेवने ही 'राजनीतिशास्त्र' पर कलम उठाई है । अतएव जैनसाहित्यमें उनका नीतिवाक्यामृत अद्वितीय है । कदासे कम भव तब तो इस विषयका कोई दूसरा जैनग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है ।

ग्रन्थ-रचना ।

• इस समय सोमदेवसूरिके केवल दो ही ग्रन्थ उपलब्ध हैं—नीतिवाक्यामृत और यशस्तिलकचम्पू । इनके सिवाय—जैसा कि नीतिवाक्यामृतकी प्रशस्तिते मादून होता है—हीन ग्रन्थ और भी हैं—१ युक्तिचिन्तामणि, २ त्रिवर्गमहोदयमातलिसंजल्प और ३ पण्ययतिप्रकरण । परन्तु अभी तक ये कहीं प्राप्त नहीं हुए हैं । उक्त ग्रन्थोंमेंसे युक्तिचिन्तामणि तो अपने नामसे ही तर्कग्रन्थ मान्य होता है और दूसरा शायद नीतिविषयक होगा । महोदय और उसके सारथी मातलिके संवादरूपमें उसमें त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और कामकी चर्चा की गई होगी । तीसरेके नामसे सिवाय इसके कि उसमें १६ प्रकरण या अध्याय हैं, विषयका कुछ भी अनुमान नहीं हो सकता है ।

इन सब ग्रन्थोंमें नीतिवाक्यामृत ही सबसे पिछला ग्रन्थ है । यशोधरमहाराजचरित या यशस्तिलक इसके पहलेका है । क्योंकि नीतिवाक्यामृतमें उसका उल्लेख है । बहुत संभव है कि नीतिवाक्यामृतके बाद भी उन्होंने ग्रन्थरचना की हो और उक्त हीन ग्रन्थोंके ममान वे भी किसी जगह दीमक या चूहोंके साथ पन रहे हों, या सर्वथा नष्ट ही हो चुके हों ।

विशाल अध्ययन ।

यशस्तिलक और नीतिवाक्यामृतके पढ़नेसे मालूम होता है कि सोमदेवसूरिका अध्ययन बहुत ही विशाल था । ऐसा ज्ञान पड़ता है कि उनके समयमें जितना साहित्य—न्याय, व्याकरण, काव्य, नीति, दर्शन आदि सम्बन्धी—उपलब्ध था, उस सबसे उनका परिचय था । केवल जैन ही नहीं, जैनोतर साहित्यसे भी वे अच्छी तरह परिचित थे । यशस्तिलकके चौथे अध्यासमें (पृ० ११३ में) उन्होंने लिखा है कि इन महाकवियोंके काव्योंमें नम क्षणिक या दिगम्बर साधुओंका उल्लेख क्यों आता है ? उनका इतनी अधिक प्रसिद्ध क्यों है ?—उर्ध्व, भारधि, भवभूति, भर्तृहरि, भर्तृमण्ड, कण्ठ, गुणाटय, व्यास, भास, घोस, फालिदास, घाण, मयूर, नारायण, कुमार, माघ और राजशेखर ।

इससे मालूम होता है कि वे पूर्वांक कवियोंके काव्योंसे अवश्य परिचित होंगे । प्रथम आश्वासके १० वें पृष्ठमें उन्होंने इन्द्र, चन्द्र, जैनेन्द्र, आपिशाल आर पाणिनिके व्याकरणोंका जिकिर किया है । पूज्यपाद

+ नीतिवाक्यामृत और यशस्तिलकके कुछ समानार्थक वचनोंका मिलान कीजिए—

१—सुमुशकाले भोजनकालः—नी० वा०, पृ० २५३ ।

चारायणो निशि तिमिः पुनरस्तकाले, मध्ये दिनस्य धिपणश्चरकः प्रभाते ।

भुक्तिं जगाद् नृपते मम चैप सर्गस्तस्याः स पय समयः क्षुधितो यदैव ॥ ३२८ ॥ —यशस्तिलक, भा० ३ । (पूर्वांक पद्यमें चारायण, तिमि, धिपण और चरक इन चार आचार्योंके मतोंका उल्लेख किया गया है ।)

२—कौकवादिवाक्यामः निशि भुञ्जीत । चकोरवशक्तकामः दिवापक्वम् ।—नी० वा० पृ० २५७ ।

अन्ये दिवदमाहुः—

यः कौकवादिवाक्यामः स नक्तं भोक्तुमर्हति ।

स भोक्ता चास्तरे यथ रात्रौ रन्ता चकोरवत् ॥ ३३० ॥ —यशस्तिलक, भा० २

* भास महाकवि 'पेया सुरा प्रियतमामुखमोक्षणयै' आदि पद्य भी पाँचवें आश्वसमें (पृ० २५०) उद्धृत है । ✕ रघुवंशका भी एक जगह (आश्वास ४, पृ० ११४) उल्लेख है । + वाण महाकवि एक जगह भी (भा० ४, पृ० १०१) उल्लेख है और लिखा है कि उन्होंने शिक्षारकी निन्दा की है ।

(जैनेन्द्रके कर्त्ता) और पाणिनिका उल्लेख और भी एक दो जगह हुआ है । 'गुरु, शूद्र, विशालाक्ष, परीक्षित, पराशर, भीम, भीष्म, भारद्वाज आदि नीतिशास्त्रप्रणेताओंका भी वे कई जगह स्मरण करते हैं । कौटिलीय अर्थशास्त्रसे तो वे अच्छी तरह परिचित हैं ही । हमारे एक पण्डित मिश्रके कथनानुसार नीतिवाक्यामृतमें सौ सवा सौ के लगभग ऐसे शब्द हैं जिनका अर्थ वर्तमान कोशोंमें नहीं मिलता । अर्थशास्त्रका अध्ययन ही उन्हें समझ सकता है । अर्धवाचिद्या, गजोचिद्या, रत्नपरीक्षा, कामशास्त्र, वैद्यक आदि विद्याओंके आचार्योंका भी उन्होंने कई प्रसंगोंमें जिक्र किया है । प्रजापतिप्रोक्त चित्रकर्म, बराहमिहिरकृत प्रतिष्ठांकाण्ड, आदित्यमंत, निमित्ताध्याय, महाभारत, रत्नपरीक्षा, पतंजलिका योगशास्त्र और घर्गरचि, व्यास, हरप्रबोध, कुमारीलकी उक्तिोंके उद्धरण दिये हैं । सैद्धान्त्यवैशेषिक, तार्किक वैशेषिक, पाशुपत, गुल्फाचार्य, सांख्य, दशवल्लभासन, जैमिनीय, बौद्धपरम, वेदान्तवादि, कणाद, तायगमत, कपिल, ब्रह्मदेवतादि, अवधूत आदि दर्शनोंके सिद्धान्तोंपर विचार किया है । इनके सिवाय मतझूंग, भृगु, भृगु, भरत, गौतम, गंग, पिंगल, पुलह, पुलोम, पुलस्ति, पराशर, मरीचि, विरोचन, धर्मध्वज, नीलपट्ट, ग्रहिल, आदि अनेक प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध आचार्योंका नामोल्लेख किया है । बहुतसे ऐतिहासिक दृष्टान्तोंका भी उल्लेख किया गया है । जैसे यवनदेश (यूनान) में मणिकुण्डला रानीने अपने पुत्रके राज्यके लिए विपदग्रस्त शरावके पुरसेसे बाजराजाको, सूरसेन (मधुरा) में वसन्तमतिने विषमय आलतेसे रंगे हुए अथरोंसे सुरतविलास नामक राजाको, दशार्ण (मिला) में घुणोदरीने विपलित करधनीसे मदनार्णव राजाको, मगध देशमें मदिराक्षीने तीसे दर्शनसे मन्मथविन्दोको, पाण्ड्य देशमें चण्डरसा रानीने कश्यपसे छुरी हुई छुरीसे मुण्डोर नामक राजाको मार डाला * । इत्यादि । पौराणिक आख्यान भी बहुतसे आये हैं । जैसे प्रजापति ब्रह्माका चित्त अपनी लड़की पर चलायमान हो गया, बरदाचि या कालायनने एक दासीपर रीझकर उसके कहनेसे नयका थड़ा उठाया, आदि x । इन सब बातोंसे पाठक जान सकते हैं कि आचार्य सोमदेवका ज्ञान कितना विस्तृत और व्यापक था ।

उद्धार विचारशीलता ।

यशस्तिलकके प्रारम्भके २० वे श्लोकमें सोमदेवसूरी कहते हैं:—

लोको युक्तिः कलादलन्दोऽलंकाराः समयागमाः ।

सर्वसाधारणाः सद्भिस्तीर्थमार्ग इव स्मृताः ॥

अर्थात् सज्जनोंका कथन है कि व्याकरण, प्रमाणशास्त्र (न्याय), कलायें, छन्दःशास्त्र, अलंकारशास्त्र और (आदृत, जैमिनि, कपिल, बार्वाक, कणाद, बौद्धादिके) दर्शनशास्त्र तीर्थमार्गोंके समान सर्वसाधारण हैं । अर्थात् जिस तरह गंगादिके मार्ग पर ब्राह्मण भी चल सकते हैं और चान्दाल भी, उसी तरह इनपर भी सबका अधिकार है । +

१—“पृथपाद इव शब्देतिहासु...पणिपुत्र इव पदप्रयोगेषु” यश० आ० २, पृ० २३६ । —२, ३, ४, ५, ६—“रामपाद इव गजविद्यासु रैवत इव हयनयेषु शुक्रनाश इव रत्नपरीक्षासु, दत्तक इव कन्तुसिद्धान्तेषु” —आ० ४, पृ० २३६-२३७ । ‘दत्तक’ कामशास्त्रके प्राचीन आचार्य हैं । वास्तव्यनने इनका उल्लेख किया है । ‘चारायण’ भी कामशास्त्रके आचार्य हैं । इनका मत यशस्तिलकके तीसरे आश्वासके ५०९ पृष्ठमें चरकके साथ प्रवृत्त किया गया है ।

१, २, ३, ४, ५—उक्त पाँचों ग्रन्थोंके उद्धरण यश० के चौथे आश्वासके पृ० ११२-१३ और १११ में उद्धृत हैं । महाभारतका नाम नहीं है, परन्तु—पुराण मानवो धर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम्’ आदि श्लोक महाभारतसे ही उद्धृत किया गया है ।

६—तदुक्तं रत्नपरीक्षायाम्—‘न केवलं’ आदि; आश्वास ५, पृ० २५६ ।

७—यशस्तिलक आ० ६, पृ० २७६-७७ । ८—९—आ० ४, पृ० ९९ । १०, ११—आ० ५, पृ० २५१-५४ ।

१२—इन सब दर्शनोका विचार पाँचवें आश्वासके पृ० २६९ से २७७ तक किया गया है ।

१३—देखो आश्वास ५, पृ० २५२-५५ और २९९ ।

* यशस्तिलक आ० ४, पृ० १५३ । इन्होंने आख्यानोका उल्लेख नीतिवाक्यामृत (पृ० २३२) में भी किया गया है । आश्वास ३- पृ० ४३१ और ५५० में भी ऐसे ही कई ऐतिहासिक दृष्टान्त दिये गये हैं ।

x यश० आ० ४, पृ० १३८-३९ ।

+ “लोको व्याकरणशास्त्रम्, युक्तिः प्रमाणशास्त्रम्, ... समयागमाः जिनजैमिनिकपिलकणचरचार्योकाशकानां सिद्धान्ताः । सर्वसाधारणाः सद्भिः कथिताः प्रतिपादिताः । क इव तीर्थ मार्ग इव । यथा तीर्थमार्गे ब्राह्मणाश्चलन्ति, चाण्डाला अपि गच्छन्ति, नास्ति तत्र दोषः । ”—धृतसाम्बरी टीका ।

इस उक्तिसे पाठक जान सकते हैं कि उनके विचार ज्ञानके सम्बन्धमें किन्ने उदार थे। उम्मे वे सर्वसाधारणकी चीज समझते थे और यही कारण है जो उन्होंने धर्मोचार्थ होकर भी अपने धर्मसे इतर धर्मके माननेवालोंके साहित्यका भी अच्छी तरहसे अध्ययन किया था, यही कारण है जो वे पूज्यपाद और भट्ट अकालंकदेवके साथ पाणिनि आदिका भी आदरके साथ उल्लेख करते हैं और यही कारण है जो उन्होंने अपना यह राजनीतिशास्त्र धीरो जेनेतर आचार्योंके विचारोंका सार सौंचकर बनाया है। यह सच है कि उनका जैन सिद्धान्तों पर अचल विश्वास है और इसीलिए यशस्तिलकमें उन्होंने अन्य सिद्धान्तोंका खण्डन करके जैनसिद्धान्तकी उपदेयता प्रतिपादन की है; परन्तु इसके साथ ही वे इस सिद्धान्तके पक्के अनुयायी हैं कि 'युक्तिमद्ग्रन्थं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः।' उनकी यह नीति नहीं थी कि ज्ञानका मार्ग भी संकीर्ण कर दिया जाय और संसारके विशाल ज्ञान-भाण्डारका उपयोग करना छोड़ दिया जाय।

समय और स्थान ।

नीतिवाक्यामृतके अन्तर्की प्रशस्तिमें इस बातका कोई जिक्र नहीं है कि वह कब और किस स्थानमें रचा गया था; परन्तु यशस्तिलक चम्पूके अन्तमें इन दोनों बातोंका उल्लेख है:—

“शकनृपकालातीतसंयत्सरशतेष्वष्टस्वेकाशीत्यधिकेषु गतेषु अङ्कतः (८८१) सिद्धार्थ-संयत्तरान्तर्गतचैलमासमदनत्रयोदश्यां पाण्ड्य-सिंहल-चोल-चैरमप्रभृतीन्महीपतीन्प्रसाध्य मेल-पाट्टीप्रवर्धमानराज्यप्रभाये श्रीकृष्णराजदेवे सति तत्पादपक्षोपजीविनः समधिगतपञ्चमहाशब्दमहा-सामन्ताधिपतेश्चालुक्यकुलजन्मनः सामन्तसूडामणेः श्रीमदरिकेसरिणः प्रथमपुत्रस्य श्रीमद्वधंगेरा-जस्य लक्ष्मीप्रवर्धमानवज्रधारायां गङ्गाधारायां विनिर्मापितमितं काव्यमिति ।”

अर्थात् चैल सुदी १३, शकसंवत् ८८१ (विक्रम संवत् १०३६) को जिस समय श्रीकृष्णराजदेव पाण्ड्य सिंहल, चोल, चैर आदि राजाओं पर विजय प्राप्त करके मेलपाट्टी नामक राजधानीमें राज्य करते थे और उनके चरणकमलोपजीवी सामन्त घाटिग—जो चालुक्यवंशीय अरिकेसरिके प्रथम पुत्र थे—गंगाधाराका शासन करते थे, यह काव्य समाप्त हुआ।

दक्षिणके इतिहाससे पता चलता है कि ये कृष्णराजदेव राष्ट्रकूट या राठौर वंशके महाराजा थे और इनका दूसरा नाम अकालचर्प था। यह वही वंश है जिसमें भगवन्निमसेनके परममहान् महाराज अमोघचर्प (प्रथम) उत्पन्न हुए थे। अमोघचर्पके पुत्र अकालचर्प (द्वितीय कृष्ण) और अकालचर्पके जगत्तुंग हुए *। इन जगत्तुंगके दो पुत्रों—इन्द्र या नित्यवर्प और घटिग या अमोघचर्प (तृतीय) भेसे—अमोघचर्प तृतीयके पुत्र कृष्णराजदेव या तृतीय कृष्ण थे। इनके समयके शक संवत् ८६७, ८७३, ८७६, और ८८१ के चार शिलालेख मिले हैं, इससे इनका राज्यकाल कमसे कम ८६७ से ८८१ तक सुनिश्चित है। ये दक्षिणके सार्वभौमराजा थे और बड़े प्रतापी थे। इनके अधीन अनेक माण्डलिक या करद राज्य थे। कृष्णराजने—जैसा कि सोमदेवसूरिने लिखा है—सिंहल, चोल, पाण्ड्य और चैर राजाओंको युद्धमें पराजित किया था। इनके समयमें कन्नड़ी भाषाका सुप्रसिद्ध कवि पौण्ड्र हुआ है जो जैन था और जिसने

१ पाण्ड्य=वर्तमानमें मद्रासका 'तिनेवली'। सिंहल=सिलोन या लंका। चोल=मद्रासका कारोमण्डल। चैर=चेरल, वर्तमान त्रावणकोर। २ सुदित ग्रन्थमें 'मेल्याट्टी' पाठ है। ३ सुदित पुस्तकमें 'श्रीमद्भगवत्प्रवर्धमान'— पाठ है।

* जगत्तुंग गद्दीपर नहीं बैठे। अकालचर्पके बाद जगत्तुंगके पुत्र तृतीय इन्द्रको गद्दी मिली। इन्द्रके दो पुत्र थे—अमोघचर्प (द्वितीय) और गोविन्द (चतुर्थ)। इनमेंसे द्वितीय अमोघचर्प पहले सिंहासनावृत्त हुए; परन्तु कुछ ही समयके बाद गोविन्द चतुर्थने उन्हें गद्दीमें उतार दिया और आप राजा बन बैठे। गोविन्दके बाद उनके काका अर्थात् जगत्तुंगके दूसरे पुत्र अमोघचर्प (तृतीय) गद्दीपर बैठे। अमोघचर्पके बाद ही कृष्णराजदेव सिंहासनासीन हुए। इन सबके पिपयमें विस्तारसे जाननेके लिए 'दा-भाण्डारकरकृत 'हिस्ट्री आफ दी डेक्कन' या उसका मराठी अनुवाद पढ़िए।

शान्तिपुराण नामक श्रेष्ठ ग्रन्थकी रचना की है। महाराज कृष्णराज देवके दरबारसे इसे 'उभयभाषाकविचक्रवर्ती' की उपाधि मिली थी।

निजामके राज्यमें मलयेट नामका एक ग्राम है जिसका प्राचीन नाम 'मान्यरोट' है। यह मान्यरोट ही अमोघ-वर्ष आदि राष्ट्रकूट राजाओंकी राजधानी थी और उस समय बहुत ही समृद्ध थी। संभव है कि सोमदेवने इसीको मेलपाटी या मिलपाटी लिखा हो। 'हिस्ट्री आफ कनारी लिटरेचर' के लेखकने लिखा है कि पोष कविको उभयभाषाकविचक्रवर्तीकी उपाधि देनेवाले राष्ट्रकूट राजा कृष्णराजने मान्यरोटमें सन् ९३९ से ९९८ तक राज्य किया है। इससे भी मान्य होता है कि मान्यरोटका ही नाम मेलपाटी होगा; परंतु यदि यह मेलपाटी कोई दूसरा स्थान है तो मगजना होगा कि कृष्णराज देवके समयमें मान्यरोटसे राजधानी उठकर उक्त दूसरे स्थानमें चली गई थी। इस बातका पता नहीं लगता कि मान्यरोटमें राष्ट्रकूटोंकी राजधानी कब तक रही।

राष्ट्रकूटोंके समयमें दक्षिणका चालुक्यवंश (सोलंकी) हस्तप्रभ हो गया था। क्योंकि इस वंशका सार्वभौमत्व राष्ट्रकूटोंने ही छीन लिया था। अतएव जब तक राष्ट्रकूट सार्वभौम रहे तब तक चालुक्य उनके आज्ञाकारी सामन्त या माण्डलिक राजा बनकर ही रहे। जान पड़ता है कि अरिफेसरिका पुत्र यद्विग ऐसा ही एक आमन्तराजा या जिसकी गंगाधारा नामक राजधानीमें यशस्तिलककी रचना समाप्त हुई है।

चालुक्योंकी एक शाखा 'जोल' नामक प्रान्तपर राज्य करती थी जिसका एक भाग इस समयके धारवाड़ जिलेमें आता है और श्रीयुक्त भार. नरसिंहाचार्यके मतसे चालुक्य अरिफेसरिकी राजधानी 'पुलगेरी'में थी जो कि इस समय 'लक्ष्मेश्वर'के नामसे प्रसिद्ध है।

इस अरिफेसरिकी ही समयमें कन्नड़ी भाषाका सर्वश्रेष्ठ कवि पम्प हो गया है जिसकी रचना 'पर मुग्ध होकर अरिफेसरिने धर्मपुर नामका एक ग्राम पारितोषिकमें दिया था। पम्प जैन था। उसके बनाये हुए दो ग्रन्थ ही इस समय उपलब्ध हैं—एक आदिपुराण चम्पू और दूसरा भारत या विष्णुमार्जुनविजय। पिछले ग्रन्थमें उसने अरिफेसरिकी वंशावली इस प्रकार दी है—युद्धमल्ल - अरिफेसरि - नारसिंह - युद्धमल्ल - यद्विग - युद्धमल्ल - नारसिंह और अरिफेसरि। उक्त ग्रन्थ शक संवत् ८६१ (वि० ९९८ में) समाप्त हुआ है, अर्थात् वह यशस्तिलकसे कोई १८ वर्ष पहले बन चुका था। इनकी रचनाके समय अरिफेसरि राज्य करता था, तब उसके १८ वर्ष-याद—यशस्तिलककी रचनाके समय—उसका पुत्र राज्य करता होगा, यह सदेखा ठीक जैचता है।

काव्यमाला द्वारा प्रकाशित यशस्तिलकमें अरिफेसरिकी पुत्रका नाम 'श्रीमद्भागराज' मुद्रित हुआ है; परन्तु हमारी समझमें वह अशुद्ध है। उसकी जगह 'श्रीमद्विगराज' पाठ होना चाहिए। दानवीर सेठ याणिकचंद्जीके सरस्वतीमंडारकी वि० सं० १४९४ की लिपि हुई प्रतिमें 'श्रीमद्विगराजस्य' पाठ है और इससे हमें अपने कल्पना किये हुए पाठकी शुद्धतामें और भी अधिक विश्वास होता है। ऊपर जो हमने पम्पकवि-लिखित अरिफेसरिकी वंशावली दी है, उस पर पाठकोंको जरा बारीकीसे विचार करना चाहिए। उसमें युद्धमल्ल नामके तीन, अरिफेसरि नामके दो और नारसिंह नामके दो राजा हैं। अनेक राजवंशोंमें प्रायः यही परिपाटी देखी जाती है कि पितामह और पौत्र या प्रपितामह और प्रपोषके नाम एकसे रखे जाते थे, जैसा कि उक्त वंशावलीसे प्रकट होता है*। अतएव हमारा अनुमान है कि इस वंशावलीके अन्तिम राजा अरिफेसरि (पम्पके आध्यदाता) के पुत्रका नाम यद्विग × ही होगा जो कि लेखकोंके प्रमादसे 'यद्विग' या 'वाग' बन गया है।

× महाराजा अमोघवर्ष (प्रथम) के पहले शायद राष्ट्रकूटोंकी राजधानी मयूरखण्डी थी जो इस समय नासिक जिलेमें मोरखण्ड किलेके नामसे प्रसिद्ध है।

* दक्षिणके राष्ट्रकूटोंकी वंशावलीमें भी देखिए कि अमोघवर्ष नामके चार, कृष्ण या अकालवर्ष नामके तीन, गोविन्द नामके चार, इन्द्र नामके तीन और कर्क नामके तीन राजा लगभग २५० वर्षके बीचमें ही हुए हैं।

× अश्वमेध पं० गोरीशंकर हीराचन्द्र ओझा ने अपने 'मोलिकियोंके इतिहास' (प्रथम भाग) में लिखा है कि सोमदेवसूरिने अरिफेसरिकी प्रथम पुत्रका नाम नहीं दिया है; परन्तु ऐसा उन्होंने यशस्तिलककी प्रस्ताविके अशुद्ध पाठके कारण समझ लिया है; वास्तवमें नाम दिया है और वह 'वागि' ही है।

‘गंगाधारा’ स्थान के विषयमें हम कुछ पता न लगा सके जो कि बहिरांगी राजधानी थी और जहाँ यश-स्तिलक की रचना समाप्त हुई है । संभवतः यह स्थान धारवाड़ के ही आसपास कहीं होगा ।

श्रीसोमदेवसूरिने नीतिवाक्यामृतकी रचना कब और कहाँ पर की थी, इस बातका विचार करते हुए हमारी दृष्टि उन्नती संस्कृत टीकाके निम्नलिखित वाक्यों पर जाती है ।

“अत्र तावदस्तिलभूपालमौलिलालितचरणयुगलेन रघुवंशावस्थाधिपराक्रमपालितकस्य (वृत्तम्) कर्णयुग्मेन महाराजश्रीमहेन्द्रदेवेन पूर्वाशायकृताध्यात्मदुरवबोधग्रन्थगौरवविस्मयानयेन मुनेष्वललितलघुनीतिवाक्यामृतरचनासु प्रवर्तितः समलारिपदवाग्विप्रिग्रन्थस्य नानादर्शनप्रतिपदधोनुषां तत्तदभाष्टश्रीकण्ठाच्युतविरच्यहंता दाचनिकमनस्कृतिसूचनं तथा स्वगुरोः सोमदेवस्य च प्रणामपूर्वकं शास्त्रस्य सत्कर्तृत्वं ख्यापयितुं सकलसत्त्वकृताभयप्रदानं मुनिचन्द्राभिधानः क्षणकजतवर्षा नीतिवाक्यामृतकर्ता निर्विप्रसिद्धिकरं... श्लोकनेकं जगद्-” पृष्ठ २.

इसका अभिप्राय यह है कि कान्यकुब्जनरेश्वर महाराजा महेन्द्रदेवके पूर्वावाधकृत अर्थशास्त्र (कौटिलीय अर्थशास्त्र ?) की बुर्वाधता और गुरुताके विप्र होकर ग्रन्थकर्ताको इस सुघोष, सुन्दर और लघु नीतिवाक्यामृतकी रचना करनेमें प्रवृत्त किया ।

कदाजके राजा महेन्द्रपालदेवका समय वि० संवत् १६० से १६४ तक निश्चित हुआ है । कर्पूरमंजरी और काव्यमीमांसा आदिके कर्ता गुप्तसिद्ध कवि राजशेखर इन्हीं महेन्द्रपालदेवके उपाध्याय थे * । परन्तु हम देखते हैं कि यशस्तिलक वि० संवत् १०१६ में समाप्त हुआ है और नीतिवाक्यामृत उससे भी पीछे बना है । क्योंकि नीतिवाक्यामृतकी प्रशस्तिमें ग्रन्थकर्ताने अपनेको यशोधरमहाराजचरित या यशस्तिलक महाकाव्यका कर्ता प्रकट किया है और इससे प्रकट होता है कि उक्त प्रशस्ति लिखते समय ये यशस्तिलकको समाप्त कर चुके थे । ऐसी अवस्थामें महेन्द्रपालदेवसे कमसे कम ५०-५१ वर्ष बाद नीतिवाक्यामृतका रचनाकाल ठहरता है । तब समझमें नहीं आता कि टीकाकारने सोमदेवकी महेन्द्रपालदेवका सामाधिक कैसे ठहराया है । आश्चर्य नहीं जो उन्होंने किसी सुनी सुनाई किंवदन्तीके आधारसे पूर्वोक्त बात लिख दी हो ।

नीतिवाक्यामृतके टीकाकारका समय अज्ञात है; परंतु यह निश्चित है कि वे मूल ग्रन्थकर्तासे बहुत पीछे हुए हैं, क्योंकि और तो क्या वे उनके नामसे भी अच्छी तरह परिचित नहीं हैं । यदि ऐसा न होता तो बंगला-करणके श्लोककी टीकामें जो ऊपर उद्धृत हो चुकी है, वे ग्रन्थकर्ताका नाम ‘मुनिचन्द्र’ और उनके गुरुका नाम ‘सोमदेव’ न लिखते । इससे भी मालूम होता है कि उन्होंने ग्रन्थकर्ता और महेन्द्रदेवका समकालिकत्व किंवदन्तीके आधारसे ही लिखा है ।

सोमदेवसूरिने यशस्तिलकमें एक जगह जो प्राचीन महाकवियोंकी नामावली दी है, उसमें सबसे अन्तिम नाम राजशेखरका है × । इससे मालूम होता है कि राजशेखरका नाम सोमदेवके समयमें प्रसिद्ध हो चुका था, अत एव राजशेखर उनसे अधिक नहीं तो ५० वर्ष पहले अवश्य हुए होंगे और महेन्द्रदेवके वे उपाध्याय थे । इससे भी नीतिवाक्यामृतका उनके समयमें या उनके कहनेसे बनना कम संभव जान पड़ता है ।

और यदि कान्यकुब्जनरेशके कहनेसे सचमुच ही नीतिवाक्यामृत बनाया गया होता, तो इस बातका उल्लेख ग्रन्थकर्ता अवश्य करते; बल्कि महाराजा महेन्द्रपालदेव इसका उल्लेख करनेके लिए स्वयं उनसे आग्रह करने ।

पहले बतलाया जा चुका है कि सोमदेवसूरि देवसंघके आचार्य थे और जहाँ तक हम जानते हैं यह संघ दक्षिणमें ही रहा है । अब भी उत्तरमें जो भयंकरोंकी गहियाँ हैं, उनमेंसे कोई भी देवसंघकी नहीं है । यशस्तिलक भी दक्षिणमें ही बना है और उसकी रचनासे भी अनुमान होता है कि उसके कर्ता दाक्षिणात्य हैं । ऐसी अवस्थामें उनका

* देखो नागरप्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण), भाग २, अंक १ में स्वर्गीय पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरीका ‘अविनोमुन्दरी’ पत्रिक नोट ।

× तथा—उर्व-भारवि-भयभूति-भरहूरि-भरुमेष्ट-गुणलब्ध-व्यास-भास-बास-कालिदास-वाण-गयूर-नारायण-कुमार-भाष-राजशेखरसदिमहाकविकाव्येषु तल तदावसरे भरतप्रणीने काव्याभ्याये सर्वजनप्रसिद्धेषु तेषु तेषूपाल्यानेषु च कथं तद्विरसा महती प्रसिद्धिः । ”

—यशस्तिलक आ० ४, पृ० १११ ।

निर्ग्रन्थ होकर भी कान्यकुब्जके राजाकी सभामें रहना और उसके कहनेसे नीतिवाक्यामृतकी रचना करना असंभव नहीं तो बिलक्षण अवसर जान पड़ता है।

मूलग्रन्थ और उसके कसौके विषयमें जितनी बातें मालूम हो सवहीं उन्हें लिखकर अब हम टीका और टीकाकारका परिचय देनेकी ओर प्रवृत्त होते हैं:—

टीकाकार ।

जिस एक प्रतिके आधारसे यह टीका मुद्रित हुई है, उसमें कहीं भी टीकाकारका नाम नहीं दिया है। संभव है कि टीकाकारकी भी कोई प्रशस्ति रही हो और वह लेखकोंके प्रसादसे छूट गई हो। परन्तु टीकाकारने ग्रन्थके आरंभमें जो मंगलाचरणका श्लोक लिखा है, उससे अनुमान होता है कि उनका नाम बहुत करके 'हरियल' होगा।

हरिं हरियलं नत्वा हरिवर्णं हरिप्रभम् ।

हरीज्यं च ध्रुवे टीका नीतिवाक्यामृतोपरि ॥

यह श्लोक मूल नीतिवाक्यामृतके निम्नलिखित मंगलाचरणका विलुप्त अनुकरण है:—

सोमं सोमसमाकारं सोमामं सोमसंभवम् ।

सोमदेवं मुनिं नत्वा नीतिवाक्यामृतं ध्रुवे ॥

जब टीकाकारका मंगलाचरण मूलका अनुकरण है और मूलकारने अपने मंगलाचरणमें अपना नाम भी पर्यायांतरसे व्यक्त किया है, तब बहुत संभव है कि टीकाकारने भी अपने मंगलाचरणमें अपना नाम व्यक्त करनेका प्रयत्न किया हो और ऐसा नाम उसमें 'हरियल' ही हो सकता है जिसके आगे मूलके 'सोमदेव'के मुमान 'नत्वा' पद पड़ा हुआ है। यह भी संभव है कि हरियल टीकाकारके गुरुका नाम हो और यह इसलिए कि सोमदेवको उन्होंने मूलग्रन्थ कर्ताके गुरुका नाम समझा है। यद्यपि यह केवल अनुमान ही है, परन्तु यदि उनका या उनके गुरुका नाम 'हरियल' हो, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

टीकाकारने मंगलाचरणमें हरि या वामुदेवको नमस्कार किया है। इससे मालूम होता है कि वे वैष्णव धर्मके उपासक होंगे।

वे कहींके रहनेवाले थे और किस समयमें उन्होंने यह टीका लिखी है, इसके जाननेका कोई साधन नहीं है। परन्तु यह बात निःसंशय होकर कही जा सकती है कि वे बहुश्रुत विद्वान् थे और एक राजनीतिके ग्रन्थपर टीका लिखनेकी उनमें यथेष्ट योग्यता थी। इस विषयके उपलब्ध साहित्यका उनके पास काफी संग्रह था और टीकामें उसका पूरा पूरा उपयोग किया गया है। नीतिवाक्यामृतके अधिकांश वाक्योंकी टीकामें उस वाक्यसे मिलते जुलते अभिप्रायवाले उद्धरण देकर उन्होंने मूल अभिप्रायको स्पष्ट करनेका भरसक प्रयत्न किया है। विद्वान् पाठक समझ सकते हैं कि यह काम कितना कठिन है और इनके लिए उन्हें कितने ग्रन्थोंका अध्ययन करना पड़ा होगा; स्मरणशक्ति भी उनकी कितनी प्रसर होगी।

यह टीका पचासों ग्रन्थकारोंके उद्धरणोंसे भरी हुई है। इसमें किन किन कवियों, आचार्यों या ऋषियोंके श्लोक उद्धृत किये गये हैं, यह जाननेके लिए ग्रन्थके अन्तमें उनके नामोंकी और उनके पद्योंकी एक सूची वर्णानुक्रमसे लगा दी गई है, इसलिए यहाँ पर उन नामोंका पृथक् उल्लेख करनेकी आवश्यकता नहीं है। पाठक देखेंगे कि उसमें अनेक नाम विलुप्त अपरिचित हैं और अनेक ऐसे हैं जिनके नाम तो प्रसिद्ध हैं; परन्तु रचनायें इस समय अनुपलब्ध हैं। इस दृष्टिसे यह टीका और भी बड़े महत्त्वकी है कि इससे राजनीति या सामान्यनीतिसम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थकारोंकी रचनाके सम्बन्धमें अनेक नई नई बातें मालूम होंगी।

संशोधकके आक्षेप ।

इस ग्रन्थकी प्रेसकापी और प्रुफ संशोधनका काम श्रुत पं० पद्मालालजी सोनीने किया है। आपने केवल अपने उत्तरदायित्व पर, मेरी अनुपस्थितिमें, कई टिप्पणियाँ ऐसी लगा दी हैं जिनसे टीकाकारके और उसकी टीकाके विषयमें एक बड़ा भारी त्रम फैल सकता है अतएव यहाँ पर यह आवश्यक प्रतीत होता है कि उन टिप्पणियों पर भी एक नजर डाल ली जाय। सोनीजीकी टिप्पणियोंके आक्षेप दो प्रकारके हैं:—

१—टीकाकारने जो मनु, शुक्र और याज्ञवल्क्यके श्लोक उद्धृत किये हैं, वे मनुस्मृति, शुक्रनीति और याज्ञवल्क्यस्मृतिमें नहीं हैं। यथा पृष्ठ १६५ की टिप्पणी—“श्लोकोऽयं मनुस्मृतौ तु नास्ति। टीकाकर्ता स्वदोषघ्नेन ग्रन्थकर्तृपरामर्शमिच्छति यद्यपि श्लोकाः स्वयं विरच्य तत्र तत्र स्थलेषु विनिवेशिताः।” अर्थात् यह श्लोक मनुस्मृतिमें तो नहीं है, टीकाकारने अपनी दुष्टतावश मूलकर्ताको नीचा दिखानेके अभिप्रायसे स्वयं ही बहुतसे श्लोक बनाकर जगह जगह घुसेड़ दिये हैं।

२—इस टीकाकारने—जो कि निधयपूर्वक जैन हैं—बहुतसे सूत्र अपने मतके अनुसार स्वयं बनाकर जोड़ दिये हैं। यथा पृष्ठ ४९ की टिप्पणी—“अस्य ग्रन्थस्य कर्त्ता कश्चिद्वैजैनविद्वान्स्तीति निश्चितं। अतस्तेन स्वमतानुसारेण बहूनि सूत्राणि विरच्य संयोजितानि। तानि च तत्र तत्र निवेदयिष्यामः।”

पहले आक्षेपके सम्बन्धमें हमारा निवेदन है कि सोनीजी वैदिक धर्मके साहित्य और उसके इतिहाससे सर्वथा अनभिज्ञ हैं; फिर भी उनके साहसकी प्रशंसा करनी चाहिए कि उन्होंने मनु या शुक्रके नामके किसी ग्रन्थके किसी एक संस्करणकी देखकर ही अपनी अद्भुत राय दे डाली है। खेद है कि उन्हें एक प्राचीन विद्वानके विषयमें—केवल इतने कारणसे कि वह जैन नहीं है इतनी बड़ी एकतरफा झिंझाव कर देनेमें जरा भी शिक्षक नहीं हुई।

सोनीजीने सारी टीकामें मनुके नामके पाँच श्लोकोंपर, याज्ञवल्क्यके एक श्लोकपर, और शुक्रके दो श्लोकोंपर अपने नोट दिये हैं कि ये श्लोक उक्त आचार्योंके ग्रन्थमें नहीं हैं। सचमुच ही उपलब्ध मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति और शुक्रनीतिमें उद्धृत श्लोकोंका पता नहीं चलता। परन्तु जैसा कि सोनीजी समझते हैं, इसका कारण टीकाकारकी दुष्टता या मूलकर्ताको नीचा दिखानेकी प्रवृत्ति नहीं है।

सोनीजीको जानना चाहिए कि हिन्दुओंके धर्मशास्त्रोंमें समय समय पर बहुत कुछ परिवर्तन होते रहे हैं। अपने निर्माणसमयमें वे जिस रूपमें थे, इस समय उस रूपमें नहीं मिलते हैं। उनके संश्लिष्ट संस्करण भी हुए हैं और प्राचीन ग्रन्थोंके नष्ट हो जानेसे उनके नामसे दूसरोंने भी उसी नामके ग्रन्थ बना दिये हैं। इसके सिवाय एक स्थानकी प्रतिके पाठोंसे दूसरे स्थानोंकी प्रतिकोंके पाठ नहीं मिलते। इस विषयमें प्राचीन साहित्यके खोजियोंने बहुत कुछ छानबीन की है और इस विषय पर बहुत कुछ प्रकाश डाला है। कौटिलीय अर्थशास्त्रकी भूमिकामें उसके सुप्रसिद्ध सम्पादक पं० आर. शामशास्त्री लिखते हैं:—

“अतथ चाणक्यकालिकं धर्मशास्त्रमधुनातत्प्राज्ञवल्क्यधर्मशास्त्रादन्यदेवासीदिति प्रतिभाति। एवमेव ये पुनर्मानव-बाह्यस्वतंत्राणसा भिन्नाभिप्रायास्तत्र कौटिल्येन परामृष्टाः न तैऽअधुनोपलभ्यमानेषु तत्तद्वर्तमानेषु दृश्यन्त इति कौटिल्यपरामृष्टानि तानि शास्त्राण्यन्यान्वेवेति बाण्ड सुवचम्।”

अर्थात् इससे माहूम होता है कि चाणक्यके समयका याज्ञवल्क्य धर्मशास्त्र वर्तमान याज्ञवल्क्य शास्त्र (स्मृति) से कोई जुड़ा ही था। इसी तरह कौटिल्यने अपने अर्थशास्त्रमें जगह जगह बाह्यस्वतंत्र, औशनस आदिसे जो अपने भिन्न अभिप्राय प्रकट किये हैं वे अभिप्राय इस समय मिलनेवाले उन धर्मशास्त्रोंमें नहीं दिखलाई देते। वतएव यह अच्छी तरह सिद्ध होता है कि कौटिल्यने जिन शास्त्रोंका उल्लेख किया है, वे इनके सिवाय दूसरे ही थे।

स्वर्गीय बापू रमेशचन्द्र दत्तने अपने ‘प्राचीन सभ्यताके इतिहास’ में लिखा है कि प्राचीन धर्मसूत्रोंको सुधार कर उत्तरकालमें स्मृतियों बनाई गईं हैं—जैसे कि मनु और याज्ञवल्क्यकी स्मृतियाँ। जो धर्मसूत्र खोये गये हैं उनमें एक मनुका सूत्र भी है जिससे कि पीछेके समयमें मनुस्मृति बनाई गई है। ५

याज्ञवल्क्य स्मृतिके सुप्रसिद्ध टीकाकार विश्वनाथ लिखते हैं:—“याज्ञवल्क्यशिष्यः कश्चन प्रश्नोत्तररूपं याज्ञवल्क्यप्रणीतं धर्मशास्त्रं संक्षिप्य कथयामास, यथा मनुप्रोक्तं श्रुतुः।” अर्थात् याज्ञवल्क्यके किसी शिष्यने याज्ञवल्क्यप्रणीत धर्मशास्त्रको संक्षिप्त करके कथा-विशेस तरह कि श्रुतने मनुप्रणीत धर्मशास्त्रको संक्षिप्त करके मनुस्मृति लिखी है। इससे माहूम होता है कि उक्त दोनों स्मृतियाँ, मनु और याज्ञवल्क्यके प्राचीन शास्त्रोंके उनके

५ रमेशचन्द्रने अपने इतिहासके चौथे भागमें इस समय मिलनेवाली पृथक् पृथक् धीसों स्मृतियों पर अपने विचार प्रकट किये हैं और उसमें बतलाया है कि अधिकांश स्मृतियाँ बहुत पीछेकी यनी हुई हैं और बहुतोंमें—जो प्राचीन भी हैं—बहुत पीछे तक नई नई बातें शामिल की जाती रही हैं।

शिष्यो या परम्पराशिष्यो द्वारा निर्मित किये हुए सार हैं और इस बातको तो सभी जानते हैं कि उपलब्ध मनुस्मृति भूगुप्णीत है—स्वयं मनुगुप्णीत नहीं।

बम्बईके गुजराती प्रेसके मालिकोंने कुल्लूकभट्टकी टीकाके सहित मनुस्मृतिका एक सुन्दर संस्करण प्रकाशित किया है। उसके परिशिष्टमें ३५५ श्लोक ऐसे दिये हैं जो वर्तमान मनुस्मृतिमें तो नहीं मिलते हैं; परन्तु हेमाद्रि, मिताक्षरा, पराशरमाधवीय, स्मृतिरत्नाकर, निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थोंमें मनु, पृथमनु और बृहन्मनुके नामसे 'उक्तं च' रूपमें उद्धृत किये हैं। इसके सिवाय सैकड़ों श्लोक शेषरूपमें भी दिये हैं, जिनकी कुल्लूक भट्टने भी टीका नहीं की है।

हमारे जैनग्रन्थोंमें भी मनुके नामसे अनेक श्लोक उद्धृत किये गये हैं जो इस मनुस्मृतिमें नहीं हैं। उदाहरणार्थ स्वनामधन्य पं० टोडरमल्लजीने अपने मोक्षमार्गप्रकाशके पाँचवें अधिधारेमें मनुस्मृतिके तीन श्लोक दिये हैं, जो वर्तमान मनुस्मृतिमें नहीं हैं X। इसी तरह 'द्विजवदनचपेट' नामक दिगम्बर जैनग्रन्थमें भी मनुके नामसे ७ श्लोक उद्धृत हैं जिनमेंसे वर्तमान मनुस्मृतिमें केवल २ मिलते हैं, दोष ५ नहीं है।*

शुकनीति जो इस समय मिलती है उसके विषयमें तो विद्वानोंकी यह राय है कि वह बहुत पीछेकी बनी हुई है—'पाँच छः सौ वर्षसे पहलेकी तो वह किसी तरह हो ही नहीं सकती। शुकका प्राचीन ग्रन्थ इससे कोई श्रृङ्खला ही था +। वैदिकीय अध्याख्यान लिखा है कि शुकके मतसे दण्डनीति एक ही राजविद्या है, इसमें सभ विद्यायें गर्भित हैं; परन्तु वर्तमान शुकनीतिका कर्ता आर्य विद्याओंको राजविद्या मानता है—'विद्याधत्तस्य पद्मिताः' आदि (अ० १ श्लो० ५१)। अतएव इस शुकनीतिको शुककी मानना भ्रम है।

इन सब बातों पर विचार करनेसे हम टीकाकार पर यह दोष नहीं लगा सकते कि उसने स्वयं ही श्लोक गढ़कर मनु आदिके नाम पर मड़ दिये हैं। हम यह नहीं कहते कि वर्तमान मनुस्मृति उक्त टीकाकारके बादकी है, इस लिए उस समय यह न उपलब्ध होगी। क्योंकि टीकाकारसे भी पहले मूलकर्ता श्रीसोमदेवसूरिने भी मनुके बीसों श्लोक उद्धृत किये हैं और वे वर्तमान मनुस्मृतिमें मिलते हैं; अतएव टीकाकारके समयमें भी यह मनुस्मृति अवश्य होगी; परन्तु इसकी जो प्रति उन्हें उपलब्ध होगी, उसमें टीकोद्धृत श्लोकोंका रहना असंभव नहीं माना जा सकता। यह भी संभव है कि किसी दूसरे ग्रन्थकर्ताने इन श्लोकोंको मनुके नामसे उद्धृत किया हो और उस ग्रन्थके आधारसे टीकाकारने भी उद्धृत कर लिया हो। जैसे कि अभी मोक्षमार्गप्रकाशके या द्विजवदनचपेटके आधारसे उनमें उद्धृत किये हुए मनुस्मृतिके श्लोकोंको, कोई नया लेखक अपने ग्रन्थमें भी लिख दे।

याज्ञवल्क्यस्मृतिके श्लोकके विषयमें भी यही बात कही जा सकती है। अब रही शुकनीति, सो उसकी प्राचीनतामें तो बहुत ही संदेह है। वह तो इस टीकाकारसे भी पीछेकी रचना जान पड़ती है। इसके सिवाय शुकके नामसे तो टीकाकारने दो चार नहीं १०० के लगभग श्लोक उद्धृत किये हैं। तो क्या टीकाकारने वे सबके सब ही मूलकर्ताको नीचा दिखानेकी गरजसे गड़ लिखे होंगे? और मूलकर्ता तो इसमें अपनी कोई तौहीन ही नहीं समझते हैं। उन्होंने तो अपने यशस्विलकमें न जाने कितने विद्वानोंके वाक्य और पद्य जगह जगह उद्धृत करके अपने विषयका प्रतिपादन किया है।

सोनीजीका दूसरा आक्षेप यह है कि टीकाकारने स्वयं ही बहुतसे सूत्र (वाक्य) गड़कर मूलमें शामिल कर दिये हैं। विद्यावृद्धसमुद्देशके नीचे लीखे २१ वें, २३ वें और २५ वें सूत्रोंको आप टीकाकारताका बतलाते हैं:—

१—'वैवाहिकः शांतीनो जायावतोऽघोरो गृहस्थाः ॥" २१

२—'वालाखिल्य औदुम्बरी वैश्वानराः सद्यःप्रक्षल्यकश्चेति चानमस्याः" ॥ २३

X देखो मोक्षमार्गप्रकाशका बम्बईका संस्करण, पृष्ठ० २०१।

छ 'द्विजवदनचपेट' संस्कृत ग्रन्थ है, कोल्हापुरके प्रीतुत पं० कलाप्पा भरमाप्पा निटवेने 'जैनबोधक' में और स्वतंत्र पुस्तकाकार भी, अबसे कोई १२-१४ वर्ष पहले, मराठी टीकासहित प्रकाशित किया था।

१. गुजराती प्रेसकी शुकनीतिकी भूमिका।

३—“कुटीरप्रवहोदक-हंस-परमहंसा यतयः” ॥ २५

इसका कारण आपने यह बतलाया है कि मुद्रित पुस्तकमें और हस्तलिखित मूलपुस्तकमें ये सूत्र नहीं हैं । परन्तु इस कारणमें कोई तथ्य नहीं दिखलाई देता । क्योंकि—

१—जब तक दश पाँच हस्तलिखित प्रतियों प्रमाणमें पंथन की जायके, तब तक यह नहीं माना जा सकता कि मुद्रित और मूलपुस्तकमें जो पाठ नहीं है वे मूलकर्ताके नहीं हैं—ऊपरसे जोड़ दिये गये हैं । इस तरहके होन अधिक पाठ जुदी जुदी प्रतियोंमें अक्सर मिलते हैं ।

२—मूलकर्ताने पहले वर्षोंके भेद बतलाकर फिर आश्रमोंके भेद बतलाये हैं—ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और यति । फिर ब्रह्मचारियोंके उपकुवाण, नेष्टिक, और क्रतुप्रद ये तीन भेद बतलाकर उनके लक्षण दिये हैं । इसके आगे गृहस्थ, वानप्रस्थ और यतियोंके लक्षण क्रमसे दिये हैं; तब यह स्वाभाविक और क्रमप्राप्त है कि ब्रह्मचारियोंके समान गृहस्थों, वानप्रस्थों और यतियोंके भी भेद बतलाये जाय और वे हो उक्त तीन सूत्रोंमें बतलाये गये हैं । तब यह निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि प्रकरणके अनुसार उक्त तीनों सूत्र अवश्य रहने चाहिए और मूलकर्ताने ही उन्हें रचा होगा । जिन प्रतियोंमें उक्त सूत्र नहीं हैं; उनमें उन्हें भूलसे ही छूटे हुए समझना चाहिए ।

३—यदि इस कारणसे ये मूलकर्ताके नहीं हैं कि इनमें बतलाये हुए भेद जैनमतसम्मत नहीं हैं, तो हमारा प्रश्न है कि उपकुवाण, क्रतुप्रद आदि ब्रह्मचारियोंके भेद भी किसी जैनग्रन्थमें नहीं लिखे हैं, तब उनके सम्बन्धके जितने सूत्र हैं, उन्हें भी मूलकर्ताके नहीं मानने चाहिए । यदि सूत्रोंके मूलकर्ताकृत होनेकी यही कसौटी सोलीजी ठहरा दें, तब तो इस ग्रन्थका अधिसे भी अधिक भाग टीकाकारकृत ठहर जायगा । क्योंकि इसमें संकड़ों ही सूत्र ऐसे हैं जिनका जैनधर्मके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है और कोई भी विद्वान् उन्हें जैनसम्मत सिद्ध नहीं कर सकता ।

४—जिसतरह टीकापुस्तकमें अनेक सूत्र अधिक हैं और जिन्हें सोनांजी टीकाकर्ताकी गदन्त समझते हैं, उसी प्रकार मुद्रित और मूलपुस्तकमें भी कुछ सूत्र अधिक हैं (जो टीकापुस्तकमें नहीं हैं), तब उन्हें किसकी गदन्त समझना चाहिए ? विद्याहंससमुद्देशके ५९ वे सूत्रके आगे निम्नलिखित पाठ छूटा हुआ है जो मुद्रित और मूलपुस्तकमें मौजूद है—

“सांख्य योगो लोकायतं चान्वाशेका । योज्याहंताः श्रुतः प्रतिपक्षत्यान् (नान्वाशिकांश्च), प्रकृतिपुरयशो हि राजा सच्चमचलम्वते । रजः फलं चाफलं च परिहराते, तमोभिनोमिभूयते ।”

भला इन सूत्रोंकी टीकाकारने क्यों छोड़ दिया ? इसमें कहीं हुई बात तो उसके प्रतिबल नहीं थी ? और मुद्रित तथा मूलपुस्तक दोनों ही यदि जनोंके लिए विशेष प्रामाणिक माना जावे तो उनमें यह अधिक पाठ नहीं होना चाहिए था । क्योंकि इसमें वेदविराधी होनेके कारण जैन और बौद्धदर्शनकी आन्वाशिकासे बाहर कर दिया है । और मुद्रित पुस्तकमें तो मूलकर्ताके संग्रहाचरण तकका अभाव है । वास्तविक बात यह है कि न इसमें टीकाकारका दोष है और न मुद्रित करानेवालाका । जिस जैसा प्रति मिली है उसने उसके अनुसार टीका लिखी है और पाठ छपाया है । एक प्रतिसे दूसरी और दूसरीसे तीसरी इस तरह प्रतियां होते होते लेखकोंके प्रमादसे अक्सर पाठ छूट जाते हैं और टिप्पण आदि मूलमें शामिल हो जाते हैं ।

हम समझते हैं कि इन बातोंसे पाठकोंका यह भ्रम दूर हो जायगा कि टीकाकारने कुछ सूत्र स्वयं रचकर मूलमें जोड़ दिये हैं । यह केवल सोनांजीके भ्रमक्यों उपज है और निस्तार है । खेद है कि हमें उनकी भ्रमपूर्ण टिप्पणियोंके कारण भूमिकाका इतना अधिक स्थान रोकना पड़ा ।

एक विचारणीय प्रश्न ।

इस आशयसे अधिक बढ़ी हुई भूमिकाको समाप्त करनेके पहले हम अपने पाठकोंका ध्यान इस और विशेषरूपसे आकर्षित करना चाहते हैं कि ये इस ग्रन्थका जरा गहराईके साथ अध्ययन करें और देखें कि इसका जैनधर्मके साथ क्या सम्बन्ध है । हमारी समझमें तो इसका जैनधर्मसे बहुत ही कम मेल खाता है । राजनीति यदि धर्मनिरपेक्ष है, अर्थात् वह किसी विशेष धर्मका पक्ष नहीं करती, तो फिर इसका जिस प्रकार जैनधर्मसे कोई, विशेष सम्बन्ध नहीं है

उसी प्रकार और धर्मोंसे भी नहीं रहना चाहिए था । परंतु हम देखते हैं कि इसका वर्णोच्चार और आश्रमाचारकी व्यवस्थाके लिए वैदिक साहित्यकी ओर बहुत अधिक झुकाव है । इस ग्रन्थके विद्यावृद्ध, आन्वीक्षिकी और त्रयी समुद्देशोक्तो अच्छी तरह पढ़नेसे पाठक हमारे अभिप्रायको अच्छे तरह समझ जावेंगे । जैनधर्मके मंगल विद्वानोंको चाहिए कि वे इस प्रश्नका विचारपूर्वक समाधान करें कि एक जैनोच्चारकी कृतिमें आन्वीक्षिकी और त्रयीका इतनी अधिक प्रधानता क्यों दी गई है ।

यथास्तिलकके नीचे लिखे पद्योंको भी इस प्रश्नका उत्तर सोचने समय सामने रख लेना चाहिए:—

द्वौ हि धर्मौ गृहस्थानां लौकिकः पारलौकिकः ।

लोकाधयो भवेदाद्यः परस्यादागमाधयः ॥

जातयोऽनादयः सर्वोस्तत्क्रियापि तथाविधा ।

श्रुतिः शास्त्रान्तरं वास्तु प्रमाणं फात्र न शक्तिः ॥

स्वजात्यैव विमुद्धानां वर्णानामिह रत्नवत् ।

तत्क्रियाविनियोगाय जैनागमाविधिः परम् ॥

पद्मवध्रान्तिनिर्मुक्तिहेतुधोस्तत्र दुर्लभा ।

संसारव्यवहारे तु स्यतःसिद्धे वृथागमः ॥

तथा च— सर्वे एव हि जैनाणां प्रमाणं लौकिको विधिः ।

यत्न सम्यक्त्वद्वानिने यत्न न व्रतदूषणम् ॥

कहीं भीसोमदेवसूरी वर्णोध्यमव्यवस्था और तत्सम्बन्धी वैदिक साहित्यको लौकिक धर्म तो नहीं समझते हैं ? और इसी लिए तो यह नहीं कहते हैं कि यदि इस विषय में श्रुति (वेद) और शास्त्रान्तर (स्मृतियां) प्रमाण माने जायें तो हमारी क्या हानि है ? राजनीति भी तो लौकिक शास्त्र ही है ।

हमको आशा है कि विद्वज्जन इस प्रश्नको ऐसा ही न पड़ा रहने देंगे ।

मुद्रण-परिचय ।

अबसे कोई २५ वर्ष पहले बम्बईकी मेसर्स गोपाल नारायण कम्पनीने इस ग्रन्थको एक संक्षिप्त व्याख्याके साथ प्रकाशित किया था और लगभग उसी समय विद्याविलासों बड़ोदानरेशान इसके मराठी और गुजराती अनुवाद प्रकाशित कराये थे । उक्त तीनों संस्करणोंको देखकर—जिन दिनों मैं स्वर्गाय स्वादाद्वाराधि पं० गोपालदासजीका अध्यानतामें जैनमिश्रका सम्पादन करता था—मेरी इच्छा इसका हिन्दी अनुवाद करनेकी हुई और तदनुसार मैंने इसके कई समुद्देशोक्तो अनुवाद जैनमित्रमें प्रकाशित भी किया; परन्तु इसके आन्वीक्षिकी और त्रयी आदि समुद्देशोक्तो जैनधर्मके साथ कोई सामंजस्य न कर सकनेके कारण मैं अनुवादकार्यको अधूरा ही छोड़ कर इसकी सस्कृत टीकाको खोज करने लगा ।

तबसे, इतने दिनोंके बाद, यह टीका प्राप्त हुई और अब यह माणिकचन्द्रग्रन्थमालाके द्वारा प्रकाशित की जा रही है । खेद है कि इसके मध्यके २५-२६ पत्र गायब है और वे खोज करनेपर भी नहीं मिले । इसके सिवाय इसकी कोई दूसरी प्रति भी न मिल सकी और इस कारण इसका संशोधन जैसा चाहिए वैसा न कराया जा सका । दृष्टिदोष और अनवधानतासे भी बहुतसी अशुद्धियाँ रह गई हैं । फिर भी हमें आशा है कि मूलग्रन्थके रमहानेमें इस टीकासे काफी सहायता मिलेगी और इस दृष्टिसे इस अपूर्ण और अशुद्धरूपमें भी इसका प्रकाशित करना साध्य होगा ।

हस्तलिखित प्रतिका इतिहास ।

पहले जैनसमाजमें शास्त्रदान करनेकी प्रथा विशेषतासे प्रचलित थी । अनेक धनी मानी गृहस्थ ग्रन्थ लिखा लिखाकर जैनवाधुओं और विद्वानोंको दान किया करते थे और इस पुण्यकृत्यसे अपने ज्ञानावरणिय कर्मका निवारण करते थे । बहुतोंने तो इस कार्यके लिए लेखनशालायें ही खोल रखी थीं जिनमें निरन्तर प्राचीन अवार्चीन ग्रन्थोंकी प्रतियाँ होती रहती थीं । यही कारण है जो उस समय मुद्रणकला न रहने पर भी ग्रन्थोंका यथेष्ट प्रचार रहता था और ज्ञानका प्रकाश मन्द नहीं होने पाता था । स्त्रियोंका इस ओर और भी अधिक लक्ष्य था । हमने ऐसे पचासो हस्तलिखित ग्रन्थ देखे हैं जो धर्मप्राणा स्त्रियोंके द्वारा ही दान किये गये हैं ।

इस शास्त्रदान प्रथाको उत्तेजित करनेके लिए उस समयके विद्वान् प्रायः प्रत्येक दान किये हुए ग्रन्थके अन्तमें दाताकी प्रशस्ति लिख दिया करते थे जिसमें उसका और उसके कुटुम्बका गुणकांतन रहा करता था। हमारे प्राचीन पुस्तक-भंडारोंके ग्रन्थोंमेंसे इस तरहकी हजारों प्रशस्तियाँ संग्रह की जा सकती हैं जिनसे इतिहास-सम्पादनके कार्यमें बहुत कुछ सहायता मिल सकती है।

नातिवाक्यामृतटीकाकी यह प्रति भी जिसके आधारसे यह ग्रन्थ मुद्रित हुआ है इसी प्रकार एक धनी गृहस्थकी धर्मप्राणा छोके द्वारा दान की गई थी। ग्रन्थके अन्तमें जो प्रशस्ति दी हुई है, उससे मालूम होता है कि कार्तिक सुदी ५ विक्रमसंवत् १५४१ को, हिसार नगरके चन्द्रप्रभचिन्त्यालयमें, सुलतान बहलोल (लोदी) के राज्यकालमें, यह प्रति दान की गई थी।

नागपुर या नागौरके रहनेवाले खण्डेलवालवंशीय क्षेत्रपालगोत्राग्र्य संघपति कामाकी भार्या साध्वी कमलधारीने हिसार निवासी पं० मेधा या मोहाको इस भक्तिभावपूर्ण भेंट किया था।

कलहू नामक संघपतिकी भार्याका नाम राणी था। उसके चार पुत्र थे—हंवा, घोरा, कामा और सुर-पति। इनमेंसे तीसरे पुत्र संघपति कामाकी भार्या उक्त साध्वी कमलधारी थीं जिनसे ग्रन्थ दान किया था। कमल-धारीसे भर्मा और चन्द्रक नामके दो पुत्र थे। इनमेंसे भार्याकी भार्या भिउसरिके गुरुदास नामक पुत्र था जिसकी गुणधारी भार्याके गर्भसे रणमल्ल और जट्ट नामके दो पुत्र थे। दूसरे चन्द्रककी भार्या घउसरिके राघवदास पुत्र था जिसकी स्त्रीका नाम सरस्वती था। पाठक देखें कि यह परिवार कितना बड़ा और कितना दार्ढ्यर्जाकी था। कमलधारीके सामने उसके प्रपौत्र तक मौजूद थे।

पण्डित मेधा या मोहाका दूसरा नाम पं० मेधावी था। ये वही मेधावी है जिन्होंने धर्मसंग्रहप्रावचकाचार नामक ग्रन्थ बनाया है और जो मुद्रित हो चुका है। पं० मोहा अपनी गुरुपरम्पराके विषयमें कहते हैं कि नन्दिचंघ, बलारकारगण और सरस्वतीगच्छके भटारक पद्मनन्दिके शिष्य भ० शुभचन्द्र और उनके शिष्य भ० जिनचन्द्र मेरे गुरु थे। जिनचन्द्रके दो शिष्य और थे—एक रतननन्द और दूसरे विमलकांति।

यह पुस्तकदाताकी प्रशस्ति पं० मेधावीकी ही लिखी हुई मालूम होता है। उन्होंने त्रैलोक्यप्रशस्ति, मूलाचारकी वसुनान्दिधृति आदि ग्रन्थोंमें और भी कई बड़ी बड़ी प्रशस्तियाँ लिखी हैं। वसुनान्दि धृति की प्रशस्ति वि० सं० १५१६ की और त्रैलोक्यप्रशस्ति की १५१९ की लिखी हुई है। धर्मसंग्रहप्रावचकाचार उन्होंने कार्तिक वदी १३ सं० १५४१ को समाप्त किया है। नातिवाक्यामृतटीकाकी यह प्रशस्ति धर्मसंग्रहके समाप्त होनेके कोई आठ दिन बाद ही लिखी गई है।

धर्मसंग्रहमें पं० मेधावीने अपने पिताका नाम उद्धरण, माताका भीपुहो और पुत्रका जिनदास लिखा है। वे अग्रवाल जातिके थे और अपने समयके एक प्रसिद्ध विद्वान् थे। उन्होंने दक्षिणके पुस्तकगच्छके आचार्य श्रुतमुनिसे अन्य कई विद्वानोंके साथ अष्टसहस्री (वियानन्दस्वामीकृत) पढ़ी थी। जान पड़ता है कि उस समय हिसारमें जैन विद्वानोंका अच्छा समूह था। भटारकोंकी गद्दी भी शायद वही पर थी।

यह टीकापुस्तक हिसारसे आमेरके पुस्तक भंडारमें फल और कैसे पहुँची, इसका कोई पता नहीं है। आमेरके भंडारमेंसे सं० १९६४ में भटारक महेन्द्रकांति द्वारा यह बाहर निकाली गई और उसके बाद जयपुर निवासी पं० इन्द्र-लालजी शालीके प्रयत्नसे हमको इसकी प्राप्ति हुई। इसके लिए हम भटारकजी और शालीजी दोनोंके कृतज्ञ हैं।

इस प्रतिमें १३३ पत्र हैं और प्रत्येक पृष्ठमें प्रायः २० पंक्तियाँ हैं। प्रत्येक पत्रकी लम्बाई ११॥ इंच और चौड़ाई ५॥ इंचसे कुछ कम है। ५१ से ७५ तकके पृष्ठ मौजूद नहीं हैं।

धर्म्यई।
पौषशुक्ला तृतीया १९७९ वि०।

निवेदक—
नाथूराम प्रेमी।

[नोट:— ' भारतीय वाक्य ' का जर्मन भाषामें विस्तृत और परिपूर्ण इतिहास लिखनेवाले प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् डॉ० विष्टरनिस्, जो वर्तमानमें बर्गीय साहित्य सभाद् फरीन्द रवीन्द्रनाथ ठाकुर संस्थापित शान्तिनिकेतनकी विध्व-भारती संस्थाको अपने ज्ञानका दान कर रहे हैं; उनके पास ' नीतिवाक्यामृत ' की १ प्रति अभिप्रायार्थ भेट की गई थी। इस भेटके स्वीकाररूपमें डॉ० महाशयने ग्रन्थमाळाके मंत्रा और इस प्रस्तावनाके लेखक श्रायुत प्रेमीजीके पास जो एक पत्र भेजा है वह यहापर मुद्रित किया जाता है। इससे, सोमदेवसूरिके नीतिवाक्यामृतके बारेमें डॉ० महाशयका कैसा अभिप्राय है वह थोड़ेमें ज्ञात हो जाता है। इस ग्रन्थके बारेमें, जिसे कि डॉ० महाशयने अपने इस पत्रमें सूचित किया है, विशेष उल्लेख, उन्होंने अपने भारतीय वाक्यके इतिहासके तीसरे भाग, (जो हालहीमें प्रकाशित हुआ है) पृ० ५०२७-५३० में किया है। —संपादक।

(Santiniketana, Birhhum, Bengal)

Srinagar (Kashmir) 25-4-23,

To Nathurama Premi, Mantri,

Manikachanda-Jaina Granthamala,

Bombay.

Dear Sir,

I beg to acknowledge the receipt of one copy of Nitivakyamritam Satikam, published in the Jaina Granthamala. As I have pointed out in the third volume of my 'History of Indian Literature,' the work is of the greatest importance both on account of its contents and especially as the date of its author is well known. Though quoting largely from the Kantilya Arthashastra, Somadeva is yet quite an original writer and treats his subject from a different point of view. The late Jainacharya Vijaya Dharma Suri had lent me a copy of the old edition of the book which is very rare. I often urged upon him the necessity of a new edition of this important work. I am very glad that the work is now accessible in such a handy and excellent edition, and I am very much obliged to you for sending me a copy.

It is a pity that the introduction is not in English or in Sanskrit, as few Europeans read the Vernacular.

Yours truly,

M. WINTERNITZ.

(शान्तिनिकेतन, चीरभूम बंगाल)

श्रीनगर (काश्मीर) ता. २५-४-२३

नाथूराम प्रेमी, मंत्री

माणिकचन्द्र जैन ग्रंथमाला मुंबई.

प्रिय महाशय,

आपकी जैन ग्रंथमाळामें प्रकाशितक सटीक नीतिवाक्यामृतकी पुस्तक मुझे मिली। जिसे कि मैंने अपने ' भारतीय वाक्यका इतिहास ' नामक ग्रन्थके तीसरे भागमें लिखा है, यह ग्रन्थ, अब्दरेके विषय और इसके कर्ताके समयकी दृष्टिसे बहुत महत्वका है। यद्यपि कौटिल्यके ग्रन्थका इसमें अनुसरण किया गया है तथापि सोमदेवसूरि स्वतंत्र लेखक हो कर विषय प्रतिपादनका, शैली उनकी निराली ही है। जेनाचार्य विजयधर्मसूरिने इस ग्रन्थकी अत्यंत दुर्लभ्य ऐसी एक प्रति मुझे दी थी और इस महत्वके ग्रन्थकी दूसरी आवृत्ति प्रकट करनी चाहिए ऐसा मैंने आप्रह भी उनसे किया था। अब इस ग्रन्थकी सुन्दर आकारमें उत्तम रीतिसे प्रकट की हुई इस आवृत्तिको देख कर मुझे आनंद होता है और आपने जो इसकी एक प्रति मुझे भेजी इस लिए मैं आपका बहुत ही उपकृत हूँ।

इसकी प्रस्तावना इंग्रेजी या संस्कृतमें नहीं लिखी गई इस लिए मुझे खेद होता है, क्योंकि देशभाषा जानने वाला युरोपियन कचित् ही होता है।

आपका,

एम. विंटरनिट्स

કીર ગ્રામનો જૈન શિલાલેખ.

[પંજાબ પ્રાંતના કાંગડા જિલ્લામાં કીરગ્રામ કરીને એક સ્થાન છે અને ત્યાં શિવ-વૈષ્ણનાથનું પ્રાચીન અને પ્રખ્યાત ધામ છે. એ વૈષ્ણનાથના મંદિરમાં કોઈ જૈન પ્રતિમાનું પાપાણનું સિંહાસન ક્યાંયથી આવી ગયેલું છે એના ઉપર નીચે આપેલો લેખ કોતરેલો છે. ' એ લેખ અપિપ્રાફિઆ ઇન્ડિકાના, ૧ લા ભાગના, ૧૧૮ પાન ઉપર ૬૦૦ જી. બુલ્હરે સંક્ષિપ્ત વિવેચન સાથે પ્રકટ કરેલો છે. એ વિવેચન અને લેખ આ પ્રમાણે છે.— સંપાદક]

નીચે આપેલો લેખ કાંગડાના કીરગ્રામમાં આવેલા શિવ-વૈષ્ણનાથના દેવાલયનાંથી મઝી આવેલો છે. એ લેખ જૈન નાગરી અક્ષરોમાં બે લીટિઓમાં લખેલો છે. આ લીટિઓ નહાવીરની પ્રતિમાની બેઠકની ઘ્રણ ઘાઝુએ ચાર મોટા અને બે નાના ભાગમાં વહેંચાણી છે. લેખ લગભગ સારી સ્થિતિમાં છે. આં દોલ્હણ અને આલ્હણ નામના બે વ્યાપારિઓએ આ પ્રતિમા બનાવ્યા વિધે તથા દેવમદ્રસુરિએ એની પ્રતિષ્ઠા કર્યાં વિધે ઉદ્દેશ કરેલો છે. વઝી કીરગ્રામમાં આ બંને માઈઓએ સહાયીનું એક મંદિર બંધાવ્યાની નોંધ પણ આમાં કરેલી છે. 'વર્તમાનમાં, કીરગ્રામમાં કોઈ પણ જૂના જૈન મંદિરની હયાતી જણાતી નથી તેથી એમ લાગે છે કે એ મંદિર નષ્ટ થઈ ગયું છે અને આ વેસળી કોઈએ ત્યાંથી ઉપાડી લાધી શિવના દેવાલયમાં મૂકી દીધી છે. એ દેવાલયના અધિકારિ-ઓની અજાણતાને લીધે આ લેખ સહી સલામત રહેવા પામ્યો હોય એમ લાગે છે.

સૂત્રિ અને મંદિર યનાવનારા ગુજરાતી હોવા જોઈએ; પંજાબી નહીં. પ્રતિષ્ઠા કરનાર સુરિ પણ ગુજરાતના હતા. કારણ કે દોલ્હણ અને આલ્હણ બ્રહ્મક્ષત્ર ગોત્ર અગર જ્ઞાતિના હતા કે જે જ્ઞાતિ ગુજરાતમાં વધારે છે. ૧૮૮૧ ના સેન્સસ રીપોર્ટ પ્રમાણે પંજાબમાં તે જ્ઞાતિ જણાતી નથી. સૂરી દેવમદ્રનો ગુજરાત સાથે સંબંધ તેમના ગુરુ અમયદેવના લીધે છે. આ અમયદેવને 'રુદ્ર પહીય' કહેવામાં આવે છે; અને તે જિનવલ્લભ સૂરિની શિષ્યસંતતિમાંના હતા. આ જિનવલ્લભ તે સ્વરત્તર ગચ્છની પટ્ટાવલીમાં કહેલા જે ૪૩ માં પટ્ટધર અને યુગપ્રધાન પદધારી છે તે જ છે. તેઓ એક નવો સંપ્રદાય જેને અહીં 'સંતાન' ના વિશેષણથી ઉલ્લેખેલો છે તે ચલાવ્યા પછી વિ. સં. ૧૧૬૭ માં સ્વાસ્થ થયા હતા. તેમના પછી યણ્ણ આચાર્ય જિનદત્તના ચલતમાં સ્વરત્તર ગચ્છની રુદ્રપહીય શાલાની સ્થાપના જિનશેષરાચાર્યે વિ. સં. ૧૨૦૪ માં કરી હતી. તેથી આ લેખમાં જણાવેલા દેવમદ્રસુરિ ચેતારવર મતના સ્વરત્તર ગચ્છની એક શાલાના હતા. જૂની પરંપરા પ્રમાણે સ્વરત્તર ગચ્છની સ્થાપના ગુજરાતના અળહિલવાડ પાટણમાં થઈ હતી. લેખની મિતિ 'સંવત્ ૬૮૯ વિ. સં. ૧૨૯૬ ફાલ્ગુણ વદિ ૫; રવિવાર' તે ડૉક્ટર સ્કેમ (Dr. Sobram) ની ગણના પ્રમાણે ઇ. સ. ૧૨૪૦ ની ૧૫ જાન્યુઆરી ધરાવર થાય છે. જનરલ સર ફર્નિંગહામ જેમે આ લેખ પ્રથમ શોધી કાઢ્યો હતો તેમણે પોતાના આર્કિઓલોજિકલ રીપોર્ટ્સ (પૃ. ૫ પાન ૧૮૩) માં એ લેખની જે નકલ આપી છે, તે અધૂરી છે. કારણ કે તેમાં 'સેત્રગોત્રો' થી 'પુત્રાશ્યા' અને 'પ્રતિ-

૧ અહીં આપેલી લેખની નકલ-પંજાબ આર્કિઓલોજિકલ સૂચકે તરફથી મહેલી એક સારી છાપ ઉપરથી પાડેલી છે.
૨ ક્લો-ક્લેટ (klata) ઇ. પૃ. ૫, પા. ૧૧, પા. ૨૪૬ અને ૨૫૪.

ધિતં' થી 'સંતાનીય' સૂધીની વે લીટિઓ મૂકી દીધેલી છે. અને લીધે તેમાં જ કેટલાક લોઢા-પાઠોને લીધે તેમની નકલ ઉપરથી ભાષાંતર કરવું કેવળ અશક્ય છે'.

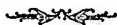
મૂલ લે સ્વ

૧. ઓ સંવત્ ૧૨૯૬ વર્ષે ફાલ્ગુણ વદિ ૫ રવિ કીપ્રાપ્તે વ્રહ્મશસ્ત્ર ગોત્રોત્પન્ન વ્યવ૦ માનુ પુત્રાભ્યાં વ્ય૦ દોલ્હણ આલ્હણાભ્યાં સ્વકારિત શ્રીમન્મહાવીર દેવ ચૈત્યે ॥

૨. શ્રીમહાવીર જિન મૂલ વિંધં આત્મશ્રેયો [ધં] કારિતં । પ્રતિધિતં ચ શ્રીજિનવહ્નમ સૂરિ-સંતાનીય રુદ્રપદ્મીય શ્રીમદ્ભયદેવસૂરિ શિષ્યેઃ શ્રીદેવભદ્ર સૂરિભિઃ ॥

ભાષાંતર

ૐ. (લૌકિક) વર્ષ ૧૨૯૬ ના ફાલ્ગુણ વદિ પંચમીને [દિવસે]—કીરપ્રાપ્તમાં વ્રહ્મશસ્ત્ર જ્ઞાતિના વ્યાપારી માનૂના વે પુત્રી વ્યાપારી દોલ્હણ અને આલ્હણે પોતે વંધાવેલા શ્રીમન્મહાવીર દેવના મન્દિરમાં શ્રી નદાર્ધાર જિનની મુખ્ય પ્રતિમા, પોતાના કલ્યાણમાટે કરાવી. તેની પ્રતિષ્ઠા શ્રીજિનવહ્નમ સૂરિના 'સંતાનીય' રુદ્રપદ્મીય શ્રીમત્સૂરિ અભયદેવના શિષ્ય શ્રીસૂરિ દેવભદ્રે કરી'.



૧. જનરલ કનિગહામ કહે છે કે શિવદેવનાથના દેવાલયના ઇતિહાસ સાથે આ લેખનો કોઈ સંબંધ નથી.

૨. વંકિત ૧ લી—ઓ વાંચકું; કીરપ્રાપ્તે નાર તથા પ્ર જોડેલા છે તે મૂલ છે; વ્રહ્મ વાંચકું; જ્ઞા ના ઉપર એક મૂલથી કરેલ માત્ર કાઢી નોંધેલ છે; કદાચ 'માનુપુત્રાભ્યાં' સ્વરોપાઠ હોય. કારણ કે ત તથા ન ઓઢાયાય તેવા નથી. [પણ તે બરાબર નથી; 'માનુ' શબ્દ જ બરાબર છે. કારણ કે તેની પહેલાં વ્ય૦=વ્યવહારી શબ્દ પડેલો છે જે માનુપુત્રા પાઠ હેતાં નિરપેક્ષ અને અસંશ્ચય થઈ જાય છે—સંપાદક.]

૩. વંકિત ૨ જી—શ્રેયોર્થ નો ય જતો રહ્યો છે; સંતાનીય નો તા સ્પષ્ટ નથી.

૪. વર્ષેનું માપાંતર લૌકિક વર્ષે કહ્યું છે, કારણ કે વિક્રમ સંવત્ પછી વર્ષેને વદલે ઘણાંવાર લૌકિક વર્ષે વાપરવામાં આવે છે. પશ્ચિમ તથા ઉત્તર પશ્ચિમ હિંદુસ્થાનમાં વિક્રમ સંવત્નાં વર્ષોને લૌકિક વર્ષો કહે છે. અને શક સંવત્ને શાસ્ત્રીય વર્ષો કહે છે. કારણ કે તે ય્યોતિષ વિગેરે નિયોમોમાં આવે છે.

૫. લેખમાં જે ફાલ્ગુણ લખ્યું છે તે અર્થ પ્રાકૃત અને અર્થ સંસ્કૃત રૂપ છે.

૬. મૂલ વિંધં શબ્દને ભાષાંતર કર્યા શિવાય જ હું રહેવા દુર્લભ છું. તેનો જાણ અર્થ શો છે તેની જાણ નથી. હું ધારું છું કે બીજી નાની મોટી પ્રતિમાઓથી તેને જાણ ઓઢાયાવા માટે તેણે નામ આપ્યું પાડ્યું હશે. એનો અર્થ કદાચ મુહ્ય પ્રતિમા' થઈ શકે. [૧ જ અર્થ ધાય છે. ધં.]

૭. પ્રતિધિતં ચ ૧ સંસ્કૃતના નિયમ પ્રમાણે શુદ્ધ નથી. પણ જૈન પુસ્તકોમાં ૧ ધનાં ઠેકાણે જોવામાં આવે છે. સરી રીતે પ્રતિષ્ઠાપિતં ચ અગર પ્રતિષ્ઠા કૃતા ચ એવો પાઠ જોઈએ.

महाकवि पुष्पदन्त और उनका महापुराण ।

[अपभ्रंश भाषा का एक महाकवि और महान् ग्रन्थ ।]

(लेखक—श्रीयुत पं. नाथरामजी प्रेमी ।)

भारत में अनेक शताब्दियों तक जो आर्य भाषायें प्रचलित रही हैं, वे सब प्राकृत कहलाती हैं। प्राकृत शब्द का अर्थ है स्वाभाविक—कृत्रिमता के दोष से रहित और संस्कृत का अर्थ है संस्कार की हुई मार्जित भाषा। वैदिक सूक्त जिस सरल और प्रचलित भाषा में लिखे गये थे, उस भाषा को प्राकृत ही कहना चाहिए। इस आदि प्राकृत भाषा से जिन सब आर्य भाषाओं का विकास हुआ है, उनकी गणना दूसरी श्रेणी की प्राकृत में होती है। यह द्वितीय श्रेणी की प्राकृत अशोक के शिलालेखों में मिलती है। बौद्धशास्त्रों की प्रधान भाषा पाली भी इसी दूसरी श्रेणी की प्राकृतों में से है। इस समय प्राकृत कहने से पाली की अपेक्षा उन्नत भाषा का बोध होता है।

अशोक के समय की आर्य भाषा की दो प्रधान शाखायें थीं, एक पश्चिमी प्राकृत और दूसरी पूर्वी प्राकृत। पश्चिमी प्राकृत को सौरसेनी या सूरसेन (मगधा) की भाषा कहते थे और पूर्वीय को मागधी या मगध की भाषा। इन दोनों पूर्वीय और पश्चिमी भाषाओं के बीचों बीच एक और भाषा बोलती जाती थी जो अर्थ मागधी के नाम से प्रसिद्ध थी। कहा जाता है कि भगवान् महावीर ने इसी भाषा के द्वारा अपने सिद्धांतों का प्रचार किया था। प्राचीन जैन ग्रन्थ इसी भाषा में लिखे गये थे। प्राचीन मराठी के साथ इस भाषा का बहुत ही निकट सम्बन्ध है। प्राचीन प्राकृत काव्य इसी प्राचीन मराठी में लिखे गये हैं।

उक्त दूसरी श्रेणी की प्राकृत भाषाओं के बाद की भाषा अपभ्रंश कहलाती है। जो दूसरी श्रेणी की प्राकृत का पिछला और विशेष विकसित रूप है। यों अपभ्रंश का साधारण अर्थ दुषित या विकृत होता है, परन्तु भाषा के सम्बन्ध में प्रयुक्त होने पर इस का अर्थ उन्नत या विकसित होता है। वर्तमान प्रचलित आर्य भाषायें जिन भाषाओं से निकली हैं, उनकी गणना अपभ्रंश में होती है। इन अपभ्रंश भाषाओं में भी एक समय अनेकानेक ग्रन्थ लिखे गये थे जिनमें से बहुत से इस समय भी मिलते हैं। जान पड़ता है, इन भाषाओं का साहित्य बहुत प्रौढ़ हो गया था और सर्वसाधारण में बहुत ही आदर की दृष्टि से देखा जाता था। इस साहित्य में हम उस समय की बोलचाल की भाषाओं की अस्पष्ट छाया पा सकते हैं। विक्रम की सातवीं शताब्दि तक के अपभ्रंश साहित्य का पता लगा है। इसके बाद जान पड़ता है कि इस भाषा का प्रचार नहीं रहा। अपभ्रंश के पहले की प्राकृत भाषाओं का प्रचार दसवीं शताब्दि के बाद नहीं रहा।

उक्त अपभ्रंश भाषाओं की गणना दूसरी श्रेणी की ही प्राकृत में की जाती है। उनके बाद आधुनिक भाषाओं का काल आता है जिन्हें हम तीसरी श्रेणी की प्राकृत में गिनते हैं। इन भाषाओं का निर्दशन हम तेरहवीं शताब्दि के लगभग पाते हैं। अतएव मौटे हिसाब से कहा जा सकता है कि दशवीं शताब्दि से आधुनिक आर्य भाषाओं का प्रचलन आरम्भ हुआ है और अपभ्रंश से ही इन सब का विकास हुआ है। संक्षेप में प्राकृत भाषाओं का यही इतिहास है।

इस लेख में हम जिस महाकवि का परिचय देना चाहते हैं, उसकी रचना इन्हीं अपभ्रंश भाषाओं में की एक भाषा में हुई है जिसे हम दक्षिण महागुरु की अपभ्रंश कह सकते हैं। दक्षिण की होने पर भी पाठक देखेंगे कि इसकी प्रकृति हमारी हिन्दी, गुजराती और राजस्थानी भाषाओं से कितनी मिलती जुलती हुई है।

हमें पुष्पदन्त से भी पहले के अपभ्रंश साहित्य के कुछ ग्रन्थ मिले हैं जिन का परिचय हम आगे के किसी अंक में देना चाहते हैं।

महाकवि पुष्पदन्त कदा के रहनेवाले थे, इसका पता नहीं लगता। उनके ग्रन्थों में जो कुछ लिखा है उसके अनुसार हम उन्हें सब से पहले मेवाड़ नगर में जो संभवतः मान्यखेट का ही दूसरा नाम है, पाते हैं। वहाँ वे पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए आ पहुँचते हैं और वहाँ से उनके कवि-जीवन का प्रारम्भ होता है।

वे काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम केशव और माता का मुष्णदेवी या। एक जगह उन्होंने अपने पिता का नाम कन्ह लिखा है जो केशव के ही पर्यायवाची शब्द कृष्ण का अपभ्रंश रूप है। 'खण्ड' यह शायद उनका प्रचलित नाम था जो उनके ग्रन्थों में जगह २ व्यवहृत हुआ है। अभिमानमेक, काट्यरत्नाकर, कट्योपसखल (काट्योपेशाच) या काट्यराक्षस, कविकुलतिलक, सरस्वतीनिलय आदि उनके उपनाम थे।

वे शरीर से कृश थे, कृष्णवर्ण थे, कुरूप थे परन्तु सदा प्रसन्नमुख रहते थे। उन्होंने आपकी स्त्रीपुत्र हीन लिखा है; परन्तु संभव है यह उस समय की ही अवस्था का चोटक हो जब वे मान्यखेटपुर में थे और अपने (उपलब्ध) ग्रन्थों की रचना कर रहे थे। इसके पहले जहाँ के वे रहनेवाले थे वहाँ शायद वे गृहस्थ रहें हों और विवाह आदि भी हुआ हो। यद्यपि अपने ग्रन्थों में उन्होंने अपना बहुत कुछ परिचय दिया है; परन्तु उससे यह नहीं मालूम होता है कि मान्यखेट में आने के पहले उनकी क्या अवस्था थी और न यही स्पष्ट होता है कि वास्तव में उन्होंने अपनी जन्मभूमि क्यों छोड़ी थी। केवल यही मालूम होता है कि दुष्टों ने उनको अपमानित किया था और उन्हीं से संव्रस्त होकर वे भटकते भटकते बड़े ही दुर्गम और लम्बे रास्ते को तय करके मान्यखेट तक आये थे। उनके हृदय पर कोई बड़ी ही गहरी ठँस लगी थी और इस से उन्हें सारी पृथ्वी दुर्जनो से ही भरी हुई दिखलाई देती थी। लोगों की इस दुर्जनता का और संसार की नीरसता का उन्होंने अपने ग्रन्थों की उत्यागिकाओं में बार बार और बहुत अधिक वर्णन किया है। अपने समय की भी उन्होंने खूब ही फोसा है, उसे कलिमलमलिन, निर्दय, निर्गुण, दुर्नीतिपूर्ण और विपरीत विशेषण दिये हैं और कहा है कि "जो जो दीसई सो सो दुजणु, रिण्फलु नीरसु णं सुकड धणु।" अर्थात् जो जो दिखते हैं वे सब दुर्जन हैं, सूखे हुए वन के समान निष्फल और नीरस हैं।

ऐसा जान पड़ता है कि वे किसी राजा के द्वारा सताये हुए थे और उसी के कारण उन्हें अपनी जन्मभूमि छोड़नी पड़ी थी। इसी कारण उन्होंने कई जगह राजाओं पर गहरे कटाक्ष किये हैं। उनके अकुटित नेत्रों और प्रभुवर्चनों को देखने सुनने की अपेक्षा मर जाना अच्छा बतलाया है। वे भरत मंत्री से कहते हैं कि—"वह लक्ष्मी किस काम की जिसने दुरते हुए चँवरों की हवा से सारे गुणों को उड़ा दिया है, अभिप्रेत के जल से सुजनता को धो डाला है, और जो विद्वानों से विरक्त रहती है। × × इस समय लोग नीरस और निर्विशेष हो गये हैं, वे गुणीजनों से द्वेष करते हैं, इसी लिए मुझे इस वन की शरण लेनी पड़ी है।"

जिस राजासे संव्रत होकर पुष्पदन्तकवि मान्यखेट में आये वह शायद वीरराव था। आदिपुराण के प्रभावच्छन्न टिप्पण में इस शब्द पर 'शुद्धक' और 'काचीपति' टिप्पण दिया है और हमारी समझ में 'काची' को जगह कायी लिपिकर्त्ता के दोष से लिख गया है x। इस से मालूम होता है कि वीरराव कांची (काञ्चीवरम्) का राजा होगा और शुद्धक उसका नामान्तर होगा। यह सम्भवतः पञ्चवंशका था। आदिपुराणकी उत्पत्तिका के 'णिय सिरि चिसेस' और 'पद्मण्णइ' आदि दो पद्यों का अग्रिप्राय अच्छी तरह स्पष्ट नहीं होता है, फिर भी ऐसा भास होता है कि पुष्पदन्त का उक्त वीरराव से पहले सम्बन्ध था और उस के सम्बन्ध में उस ने कुछ काव्य रचना भी की थी। शायद इसी कारण भरतमन्त्री ने पुष्पदन्त से कहा है कि वीरराव का वर्णन करने से जो मिथ्यात्व भाव उत्पन्न हुआ है, उस के प्रायश्चित्तस्वरूप यदि तुम आदिनाथ के चरित की रचना करो तो तुम्हारा परलोक सुधर जाय *। जान पड़ता है कि वीरराव कोई दुष्ट और जैनधर्म का द्वेषी राजा था।

पुष्पदन्त भ्रमण करते करते मान्यखेट के बाहर किसी उद्यान में पड़े हुए थे। वहाँ भग्गइया और भद्राज नामक दो पुरुषों ने आकर उनसे कहा कि आप इस निर्जन स्थान में क्यों पड़े हुए हैं, पास ही यह बड़ा नगर है वहाँ चलिए। वहाँ शुभतुंगराज के महामात्य भरत बड़े विद्याप्रेमी और कवियों के लिए कामधेनु हैं। भरत की लोकोत्तर प्रशंसा सुन कर पुष्पदन्त नगर में गये। वहाँ भरतमन्त्री ने उनका बहुत ही सत्कार किया और उन्हें अपने पास रक्खा। कुछ दिनों के बाद भरत ने उन से काव्यरचना करने के लिए कहा। इस पर कवि ने कहा कि यह समय बहुत बुरा है। संसार दुर्जनों से भरा हुआ है। जहाँ तहाँ छिद्रान्धेषो ही दिखलाई देते हैं। भ्रमरसेन के सत्सुबन्ध जैसे उत्कृष्ट काव्य को भी जब लोग निन्दा करते हैं, तब मुझे इस कार्य में कीर्ति कैसे मिलेगी? इस पर भरत ने कहा कि दुर्जनों का तो यह स्वभाव ही है, उल्लू को सूर्य भी अच्छा नहीं लगता। उनकी आप को परवा न करनी चाहिए। इस के उत्तर में कवि ने अपनी लघुता प्रकट की और कहा कि मैं दर्शन, व्याकरण, काव्य, छन्दशास्त्र आदि के ज्ञान से कोरा हूँ, ऐसी दशा में मुझ से महापुराण की रचना कैसे होगी, यह तो समुद्र को एक कूड़े में भरने जैसा अशक्य कार्य है, फिर भी आप के आग्रह से और जित भक्ति यश मैं इस की रचना में प्रवृत्त होता हूँ, मधुकर जैसा छद्म प्राणी भी विशाल आकाश में भ्रमण कर सकता है।

उक्त सब बातें आदिपुराण की उत्पत्तिका से ली गई हैं। इस के बाद उत्तरपुराण का प्रारंभ होता है। उस समय काविराज का चित्त उद्विग्न हो उठा। रचना से उन का जो उचट गया। तब एक दिन सरस्वती देवी ने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिया और कहा कि अरिहंत भगवान् को नमस्कार करो। यह सुनते ही काविराज जाग उठे। उन्होंने ने चारों ओर देखा; परन्तु कहीं कोई भी दिखलाई न दिया। बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके बाद भरतमन्त्री उन से मिले। उन्होंने ने कहा कि, क्या आप सचमुच ही पागल हो गये हैं? आप का मुख उतरा हुआ है, चित्त ठिकाने नहीं है। ग्रन्थरचना क्यों नहीं करते? क्या मुझसे आप का कोई अपराध बन पड़ा? क्या बात है। मैं हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता हूँ। मैं आपका चाहा हुआ सब कुछ देने के लिए तैयार हूँ। यह जोचन आसियर और असार है। जब आप को सरस्वती कामधेनु सिद्ध है, तब आप उसका नवरसरूप दूध क्यों नहीं दोहते? इस पर काविराज ने फिर वही समय

x पुरानी लिपि में 'व' और 'च' लगभग एक से लिखे जाते हैं और इस कारण पीछे के लेखकों ने इन दोनों के भेद को अच्छी तरह न समझने के कारण अक्षर 'च' को 'व' लिखा है।

* पदं मण्डितं वणिजं वीर राउ, उष्णजं जो मिच्छत भाउ । .

पच्छिषु तामु जइ करहि अज्ज, ता घडं तुज्ज परलोयकज्ज ॥

की और दुर्जनों की शिकायत की और कहा कि इस कारण मुझ से एक पद भी नहीं लिखा जाता है। अन्त में उन्होंने ने कहा कि फिर भी मैं तुम्हारी प्रार्थना को नहीं टाल सकता। तुम मेरे मित्र हो और शालिवाहन तथा श्रीहर्ष से भी बढ़कर विद्वानों का आदर करनेवाले हो। तुमने मुझे सदा प्रसन्न रखा है। परन्तु जो यह कहा कि मैं सब कुछ देने के लिए तैयार हूँ, सो मैं तुम से अक्रात्रेम धर्मानुराग के सिवाय और कुछ भी नहीं चाहता हूँ। धन को मैं तिनके के समान गिनता हूँ। मेरा कवित्व केवल जिनचरणाँ की भक्ति से ही प्रस्फुटित होता है—जीविका की मुझे जरा भी परवा नहीं है। ये सब बातें कविने उत्तरपुराणकी उत्पत्तिका में प्रकट की हैं।

पुष्पदन्त दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के अनुयायी थे; परन्तु वे अपने किसी गुरु का कहीं कोई उल्लेख नहीं करते हैं। इसका कारण यही हो सकता है कि वे गृहत्यागी साधु नहीं थे। यह भी संभव है कि पहले वे वेदानुयायी रहे हों और पीछे किसी कारण से जैनधर्म पर उनकी श्रद्धा हो गई हो, अथवा भरतमंथी के संसर्गसे ही वे जैनधर्म के उपासक बन गये हों, किसी जैन साधु या मुनिसे उनका परिचय न हुआ हो। उन्होंने अपने को जगद् जगद् जिनपद्मक, धर्मासक्त, व्रतसंयुक्त (व्रतीआसक्त) और विगलितशंक (शंका रहित सम्यग्दृष्टी) आदि विशेषण दिये हैं, इस लिए उनके दृढ़ जैन होने में कोई सन्देह नहीं हो सकता। अपने ग्रन्थों में जैनधर्म के तत्त्वों का भी उन्होंने बड़ी योग्यतासे प्रतिपादन किया है।

पुष्पदन्त का स्वभाव एक विचित्र ही प्रकार का मालूम होता है। उनका 'अभिमानमेरु' नाम उनके स्वभाव को और भी विशेषता से स्पष्ट करता है। 'मान' के सिवाय वे और किसी चीज के भूले नहीं जान पड़ते। एक बड़े भारी राजा के वैभवशाली मन्त्री का आश्रय पाकर भी वे धन वैभव से आलस हो रहे जान पड़ते हैं। महापुराण के अन्त में उन्होंने अपने लिये जो विशेषण दिये हैं, वे ध्यान देने योग्य हैं—शून्यमयन और देवकुलिकाश्रों में रहनेवाले, बिना घर-द्वार के, खी-पुत्र रहित, नदी घापी और तालाबों में स्नान करनेवाले, फटे कपड़े और वस्त्र पहिनेवाले, भूलिभूसरित, जमीन पर सोनेवाले तथा अपने हाथों को ही ओढ़ा बनानेवाले, और समाधि मरण की आकांक्षा रखनेवाले। ये विशेषण इस आकिञ्चन महाकवि के चित्र को आँखों के सामने खड़ा कर देते हैं।

सचमुच ही पुष्पदन्त अद्भुत कवि थे। वे अपने हृदय के आवेगों को रोक नहीं सकते हैं। वे जिसे हृदय से चाहते हैं उसकी प्रशंसा के पुल बांध देते हैं और जिससे घृणा करते हैं उस की निन्दा करने में भी कुछ उठा नहीं रखते। अपनी प्रशंसा करने में भी उनकी कविता क, प्रवाह स्वल्भ गति से प्रवाहित हुआ है। इस प्रशंसा के औचित्य अनौचित्य का विचार भी उनका स्वेच्छाचारी कविहृदय नहीं कर सका है। जो खोलकर उन्होंने अपनी प्रशंसा की है। संभव है, इस समय की दृष्टि से वह ठीक मालूम न हो; परन्तु उन की सरस और सुन्दर रचना को देखते हुए तो उस में कोई अत्युक्ति नहीं जान पड़ती।

पुष्पदन्तने अपना आदिपुराण सिद्धार्थसंबन्धर में लिखना शुरू किया था जिस समय तुडिगु नाम के राजा राज्य करते थे और उन्होंने किसी चोल राजा का मस्तक काटा था। इस 'तुडिगु' शब्द पर इस ग्रन्थ की प्रायः सभी प्रतियों में 'कृष्णराजः' टिप्पणी दी हुई है। इसी ग्रन्थ में उक्त राजा का एक जगह 'शुभतुंगदेव' और दूसरी जगह 'मैरवनरेन्द्र' नाम से उल्लेख किया गया है और दोनों जगह उक्त नामों पर टिप्पणी दे कर 'कृष्णराजः' लिखा है। इसी तरह यशोधर चरित्र में 'वल्लभनरेन्द्र' नाम से उल्लेख किया है और वहाँ भी टिप्पणी में 'कृष्णराजः' लिखा है। अर्थात् तुडिगु, शुभतुंगदेव, मैरवनरेन्द्र, वल्लभनरेन्द्र और कृष्णराज ये पाँचों एक ही

राजा के नाम हैं और इन्हीं के समय में पुष्पदन्तने अपने ग्रन्थों की रचना की है। एक जगह तुङ्गि को 'भुवनैकराम' विशेषण दिया है, जो कि उसकी एक विरुद्ध थी। इसके सिवाय उसे 'राजाधिराज' लिखा है। आदिपुराण के २७ वें परिच्छेद के प्रारंभ में भरतमन्त्री की प्रशंसा करते हुए उसे 'भारत' (महाभारत) की उपमा दी है:—“गुरु धर्माद्भ्यवाचनमभिनन्दित-
कृष्णार्जुनगुणोपेतं। भीमपराक्रमसारं भारतमिव भरत तव चरितम्॥” इसका 'अभिनन्दित-
कृष्णार्जुनगुणोपेतम्' विशेषण निश्चय से कृष्णराज को लक्ष्य करके ही लिखा गया है।

उत्तरपुराण के अन्त में ग्रन्थ के समाप्त होने का समय संवत् ६०६, आसाढ़ सुदी १०, क्रोधनसंवत्सर लिखा है। क्रोधनसंवत्सर से ६ वर्ष पहले सिद्धार्थसंवत्सर आता है, अतः आदिपुराण की रचना का समय संवत् ६०० होना चाहिए। दक्षिण में शक संवत् का ही प्रचार अधिक रहा है, अतएव उक्त ६०० और ६०६ को शक संवत् ही मानना चाहिए।

उत्तरपुराण की प्रशस्ति से मालूम होता है कि उक्त ग्रन्थ मान्यखेट नगर में बनाया गया था, जो इस समय मालखेट नाम से प्रसिद्ध है और निजाम के राज्य में है। उत्तरपुराण के ५० वें परिच्छेद के प्रारंभ में लिखा है:—

दीनानायधनं सदावहुजनं प्राप्नुज्यस्योवनम्,

मान्याखेटपुरं पुंदरपुरोलीलाहरं सुन्दरम्।

धारानायनरेन्द्रकोपशिखिना दग्धं विदग्धप्रियम्,

केदार्नीं वसतिं करिष्यति पुनः श्री पुष्पदन्तः कविः ॥

इससे मालूम होता है, शक संवत् ६०० और ६०६ के बीच में किसी समय धारानगरी के किसी राजा ने इस बड़े भारी धैर्यशाली नगर को बरबाद किया था।

पुष्पदन्तने अपना महापुराण पूर्वोक्त शुभतुंग या कृष्णराज के महामात्य भरत के आग्रह से और यशोधर चरित भरतमन्त्री के पुत्र गुण या गुणराज के लिए कर्णभरणस्वरूप बनाया है। गुण भी अपने पिता के सहस्र यक्ष्मनरेन्द्र या कृष्णराज का महामात्य हो गया था। भरत और गुण की पुष्पदन्तने बहुत ही प्रशंसा की है और उन के लोकोत्तर गुणों का वर्णन किया है। महापुराण के सब मिलाकर १०२ परिच्छेद हैं, जिन में से कोई ४० परिच्छेदों के प्रारंभ में पुष्पदन्त ने भरतमन्त्री की प्रशंसा के सूचक सुन्दर संस्कृत पद्य दिये हैं जिन्हें हमने इस लेख के अन्त में उद्धृत कर दिया है। उन्हें पढ़ने से पाठकों को भरत की महिमा का बहुत कुछ परिचय हो जायगा। इसी तरह यशोधर चरित के चार परिच्छेदों में गुणराज की प्रशंसा के जो पद्य हैं, वे भी उद्धृत कर दिये गये हैं।

उक्त प्रशस्ति-पद्यों के सिवाय पुष्पदन्तने आदि और उत्तरपुराण की उग्यानिकाओं में भरत-मन्त्री को निःशेष कलाविद्वानकुशल, प्राकृतकविकाव्यरसावलम्ब, अमत्सर, सत्यप्रतिज्ञ, योद्धा परश्वीपराजमुख, त्यागभोगभावोद्भूतशक्तियुक्त, कविकल्पवृत्त आदि अनेक विशेषण दिये हैं।

यशोधरचरित में भरत के पुत्र नम्र का गोत्र कौण्डिण्य बतलाया है। अतः संभवतः ये ब्राह्मण ही होंगे, परन्तु जैनधर्म के प्रगाढ़ भक्त थे। भरत के पिता का नाम गुण या गुणराज और माता का भीदेशी या। उन के सात पुत्र थे—१ देव, २ योग, ३ गुण, ४ योग, ५ गुणवर्म, ६ दंगदया, और ७ संतया। इन में तीसरा पुत्र गुण या, और भरत के बाद, इसी ने महामात्य या प्रधान-मन्त्री के पद को सुशोभित किया था। आदिपुराण के ३४ वें परिच्छेद के प्रारंभ में नीचे लिखा हुआ एक संस्कृत पद्य दिया है:—

तीव्रापदिवसेषु वन्धुरहितेनैकेन तेजस्विना
सन्तानक्रमतो गतापि हि रमाऽऽकृष्टा प्रभोः सेवया ।
यस्याचारपदं वदन्ति कथयः सौजन्यसत्यास्पदं
सोऽयं श्रीभरतो जयत्यनुपमः काले कालौ साम्प्रतम् ॥

अर्थात् बड़ी ही विपत्ति के दिनों में जिस अकेले और वन्धुरहित तेजस्वी ने सन्तानक्रम से चली गई हुई भी लक्ष्मी को अपने प्रभु की सेवा से फिर आकृष्ट कर ली और कविगण जिस के चरित्र को सौजन्य और सत्य का स्थान बतलाते हैं, वह भरत इस कालिकाल में अपनी जोड़ नहीं रखता ।

इससे जान पड़ता है कि भरत के पूर्वजों के दाय से उक्त मंत्रीपद चला गया था और उसे भरत ने ही अपनी योग्यता से फिर से प्राप्त किया था । अपनी पूर्ववस्था में उन्होंने बड़ी विपत्ति भोगी थी और उस समय उन का कोई वन्धु या सहायक नहीं था ।

यशोधरचरित की रचना महापुराण के कितने समय बाद हुई, इस के जानने का कोई साधन नहीं है । यशोधरचरित में समय सम्बन्धी कोई उल्लेख नहीं है; परन्तु यह निश्चय है कि उस समय राजसिंहासन को यल्लभनरन्द या शुण्डराज ही सुशोभित करते थे । हाँ, मंत्री का पद भरत के पुत्र एरण के मिल गया था । एरण के उस समय कई पुत्र भी मौजूद थे जिन को यशोधरचरित्र के दूसरे परिच्छेद के प्रारंभ में आशीर्वाद दिया गया है । मालूम नहीं उस समय भरत जीते थे या नहीं । महापुराण जिस समय बनाया गया है उस समय पुण्यदन्त—भरत के ही घर रहते थे—“देवीसुत्र सुदण्डिहि तेण हउं णिलण तुहारण अचुद्धमि ।” ६७ वें परिच्छेद के प्रारंभ में कहा है:—

इह पठितमुदारं वाचकैर्गीयमानं इह लिखितमजग्नं लेखकैश्चासकाव्यम् ।

गतवति कविमित्रे मित्रतां पुण्यदन्ते भरत तत्र गृहेऽस्मिन्भाति विद्याविनोदः ॥

इस से भी आभास मिलता है कि कविराज भरत के ही गृह में रहते थे और उन का काव्य वहीं पढ़ा, गाया और लिखा जाता था ।

इस के बाद यशोधरचरित जब लिखा गया है, तब वे एरण के ही घर रहते थे—“एरणइ मंदिरणिषसंतु संतु, आहिमाणमेव कविपुष्पयंतु ।” परन्तु इसी ग्रन्थ के अन्त में लिखा है कि गन्धर्व (गण ?) में कण्ड (केशव) के पुत्र से प्रार्थनों का वर्णन किए गए हैं और कहा कि—“गन्धर्वे कण्डइण्डणेण” इत्यादि । तब क्या यह गन्धर्व नगर कोई दूसरा स्थान है ? संभव है, यह मान्यखेटका ही दूसरा नाम हो अथवा कोई दूसरा स्थान हो जहाँ कुछ समय टिककर कविने ग्रन्थ का उक्त अंश लिखा हो । यह भी संभव है कि एरण के महल का ही नाम गन्धर्व या गन्धर्वमवन हो ।

यशोधरचरित जिस समय समाप्त हुआ है उस समय कोई बड़ा भारी दुर्भित पड़ा था जिस का वर्णन कविने इन शब्दों में किया है—‘जगह जगह मनुष्यों को खोपाड़ियाँ और ठठरियाँ पड़ी थीं, रंक ही रंक दिखलाई पड़ते थे । बड़ा भारी दुष्काल था । ऐसे समय में भी एरणने मुझे रहने को अच्छा स्थान, खाने को सरस आहार, पहिने को स्वच्छ वस्त्र देकर उपकृत किया ।’ जान पड़ता है यह घटना उस समय की होगी; जब धारानरेशने मान्यखेट को लूट कर बरबाद कर दिया था । ऐसी सैनिक लूटों के बाद अक्सर दुर्भित पड़ा करते हैं ।

महापुराण में कविने नीचे लिखे ग्रन्थकारों और ग्रन्थों का उल्लेख किया है । कवि के समय निरूपण में इन नामों से बहुत सहायता मिल सकती है—

१ अकलंक, २ कपिल, ३ कण्व, ४ कण्व, ५ द्विज (ब्राह्मण), ६ सुगत (बौद्ध), ७ पुरन्दर (चार्याक), ८ दन्तिल, ९ विशाख, १० लुद्धाचार्य, १० भरत (नाट्यशास्त्रकर्त्ता), ११ पतञ्जलि (व्याकरणभाष्यकार), १२ शतिहासपुराण, १३ व्यास, १४ कालिदास, १५ चैतन्य स्वयम्भू, १६ श्रीचर्य, १७ द्रोण, १८ कवि ईशान वाण, १९ धवल जयधवल सिद्धान्त, २० रुद्र, २१ न्यासकार, और २२ जसचन्द्र (प्राकृत लक्षणकर्त्ता), २३ जिनसेन, २४ वीरसेन।

यशोधर चरित के अन्त में केवल एक ही ग्रन्थकार कवि 'यच्छराय' (यत्सराज) का उल्लेख किया गया है जिस के कथासूत्र के आधार पर उक्त चरित की रचना की गई है—
"महो दोसुण दिज्झइ पुत्ते कइइ कइयच्छराय तं सुत्तु लइइ।" यह तो कहने की आवश्यकता नहीं कि ये यच्छराय कोई जैनकवि ही थे। क्योंकि यशोधर की कथा जैनसाहित्य की ही चीज है।

उत्तरपुराण के अन्त में महावीर भगवान् के निर्वाण के बाद की गुरुपरम्परा दी गई है। उसमें लोहाचार्य तक की परम्परा त्रिलोकप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, गुणभद्रकृत उत्तरपुराण, इन्द्र-नन्दिकृत श्रुताचतार के ही समान है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में जहां जसबाहु नाम है, वहां इसमें भद्रबाहु है। एक बड़ा भारी अन्तर यह है कि इसमें गोवर्धन के बाद भद्रबाहु का नाम ही नहीं है, साथ उसके बदले कोई दूसरा नाम भी नहीं दिया है। शतिहासों के लिए यह बात खास ध्यान देने योग्य है। सब के बाद इसमें जिनसेन और वीरसेन का नाम दिया हुआ है, जो आचार्यग के एकदेश के शाता थे। जान पड़ता है ये जिनसेन संस्कृत आदिपुराण के कर्त्ता से भिन्न हैं।

आदिपुराण (पुष्पदन्तकृत) के पाँचवे परिच्छेद में नीचे लिखे देशों के नाम दिये हैं जिन्हें भगवान् अप्रमदेव ने बसाया था—

पल्लव, सैन्यय (सिन्ध), कौकण, कौशल, उड्ड, आभीर, कीर, खस, केरल, अंग, कालिंग, बंग, जालंधर, वत्स, यवन, कुुरु, गुज्जर, वर्धर, द्रविड, गौड, कर्णाट, घराडिव (चैराट?), पारस, पारियात्र, पुत्राट, खर, सोरठ, विदेह, लाड, कौंग, व्रैंगि, मालव, पांचाल, मगध, भट्ट, मोट (भूटान), नेपाल, आण्ड्र, पौण्ड्र, हरि, कुुरु, मंगाल।

पुष्पदन्त के बनाये हुए दो ग्रन्थ हमें प्राप्त हुए हैं, एक तिसष्ठिमहापुरिस्सुणालंकार जिस का दूसरा नाम महापुराण है और जिसके आदिपुराण और उत्तरपुराण ये दो भाग हैं। इसकी श्लोकसंख्या १३ हजार के लगभग है और इसमें सब मिलाकर १०२ परिच्छेद हैं। आदिपुराण में प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ का और उत्तरपुराण में शेष २३ तीर्थंकरों का और अन्य शलाका-पुरुषों का चरित्र है। उत्तरपुराण में पद्मपुराण और हरिवंशपुराण भी शामिल हैं और ये पुष्पक रूप में भी अनेक पुस्तकभण्डारों में मिलते हैं। पुष्पदन्त का दूसरा ग्रन्थ यशोधर चरित है जिस के चार परिच्छेद हैं और छोटा है। इसमें यशोधर नामक राजा का चरित्र वर्णित है जो कोई पुराण पुरुष था।

उक्त दो ग्रन्थों के सिवाय नागकुमार चरित नाम का एक ग्रन्थ है जो कारंजा (वराह) के पुस्तकभण्डार में है और जिस के प्राप्त करने के लिए हम प्रयत्न कर रहे हैं।

१ यह एक जैन कवि है। इस के बनाये हुए दो ग्रन्थ हमें प्राप्त हुए हैं—'पद्मचरिय' या रामायण जिसके विच्छेद कुछ सगे उस के पुत्र निभुत स्वयंभुदेवने पूरे किए हैं और दूसरा हरिवंशपुराण जिस का उद्धार विक्रम की १६ वीं शताब्दि के एक दूसरे विद्वान्ने किया है। शायद इच्छा अधिकांश नष्ट हो गया था। ये दोनों ग्रन्थ अपभ्रंश भाषा में ही हैं। इनका विस्तृत पटिविष शीघ्र ही दिया जायगा।

हमें सब से पहले बंबई के सुप्रसिद्ध सठे सुखानन्दजी की कृपा से पुष्पदन्त/का आदिपुराण देखने को मिला और उसी को देखकर हमें इस कवि का परिचय लिखने का उत्साह हुआ। सैठजी इस ग्रन्थ को फतेहपुर (जयपुर) के सरस्वतीभण्डार से लाये थे। उक्त सरस्वतीभण्डार का यह ८६ वें नम्बर का ग्रन्थ है और बहुत ही शुद्ध है। उसमें कहीं कहीं टिप्पणी भी दी है, वि० संवत् १५२८ का लिखा हुआ है उसमें प्रति करानेवाले की एक चिह्नित प्रशस्ति दी हुई है जो उपयोगी समझ कर इस लेख के परिशिष्ट में दे दी गई है।

इस ग्रन्थ की दो प्रतियां हमें पूने के भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट में मिलीं जिनमें से एक वि० सं० १९२५ की लिखी हुई है* और दूसरी वि० सं० १८८३ की लिखी हुई है×। इस ग्रन्थ का एक टिप्पण भी हमें उक्त संस्था में मिला जो प्रभाचन्द्र कृत है और जिसकी श्लोकसंख्या १९५० है*। इसमें प्रति लिखने का और टिप्पणकार का समय आदि नहीं दिया है।

इसके बाद उक्त इन्स्टिट्यूट में हमें उत्तरपुराण की भी एक शुद्धप्रति मिल गई जो बहुत ही शुद्ध है और सं० १६३० की लिखी हुई है। इस पर यत्र तत्र टिप्पणियां भी दी हुई हैं×।

यशोधर चरित की एक प्रति हमें बंबई के तेरहपणी मन्दिर के पुस्तकभण्डार से प्राप्त हुई जो बहुत ही पुरानी है अर्थात् १३१० की लिखी हुई है और प्रायः शुद्ध है, और दूसरी भाण्डारकर इन्स्टिट्यूट से, जो वि० संवत् १६१५ की लिखी हुई है।

इस इन्स्टिट्यूट में हरिवंशपुराण की भी एक बहुत ही शुद्ध, टिप्पणयुक्त, और प्राचीन प्रति है, मिलान करने से मालूम हुआ कि यह उत्तरपुराण का ही एक अंश है।†

पुष्पदन्त के ग्रन्थ पूर्वकाल में बहुत प्रसिद्ध रहे हैं और इस कारण उनकी प्रतियां अनेक मण्डारों में मिलती हैं। उन पर टिप्पणपंजिकायें और टिप्पणग्रन्थ भी लिखे गये हैं और तल्लास करने से अब भी प्राप्त हो सकते हैं। जयपुर के पाटोदी के मन्दिर में उत्तरपुराण का एक टिप्पण ग्रन्थ है जिसके कर्ता धीचन्द्र (?) मुनि मालूम होते हैं और जो विक्रम संवत् १००० में भोजदेव के राज्य में बनाया गया है। १० जयपुर के बाबा दुल्लोचन्दजी के भण्डार में पुष्पदन्त के प्रायः सभी ग्रन्थों की पंजिकायें हैं; आगरे के मोतीकटरे के मन्दिर में उत्तरपुराण की पंजिका है। प्रयत्न करने पर भी हम इन्हें प्राप्त नहीं कर सके।

इस समय हम पुष्पदन्त के नागकुमार चरित और उनके ग्रन्थों की पंजिकाओं को प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनके मिल जाने पर आगामी अंक में पुष्पदन्त का समय निर्णय किया जायगा और उनके ग्रन्थों में जिन जिन व्यक्तियों का उल्लेख हुआ है उन सब के समय पर विचार करके निश्चित किया जायगा कि वास्तव में पुष्पदन्त के ग्रन्थ कब बने हैं।

आगामी अंक में पुष्पदन्त का भाषा और उनके कवित्व को भी आलोचना करने का विचार है।

परिशिष्ट में पुष्पदन्त के ग्रन्थों के वे सब अंश दे दिये गये हैं जो महत्वपूर्ण हैं और जिनके आधार से यह लेख लिखा गया है। अधिक प्रयोजनीय अंशों का अनुवाद भी टिप्पणी में दे दिया है।

इस लेख के तैयार करने में श्रीमान् मुनिमहोदय जिनावजयजी से बहुत अधिक सहायता मिली है। इसकी बहुत कुछ सामग्री भी उन्हीं की कृपा से प्राप्त हुई है, अतएव मैं उनका बहुत ही कृतज्ञ हूँ।

* सं. ११३९ आफ १८९१-९५। × सं. १०५० आफ १८८७-९१।

* सं. ५६३ आफ १८७५-७६। × सं. ११०६ आफ १८८४-८७। † सं. ११६३ आफ १८९१-९५।

÷ ११३५ आफ १८८४-८७। ० देखा जैनमित्र, गुल्लार, भाषित सुदी ५ वीर सं. २४४४ में श्रुत पं. पद्मालालजी बाकलोवाल का "सं. वि. १०८० के प्रभाचन्द्र" दीर्घक लेख।

परिशिष्ट नं० १

(आदिपुराण के प्रारंभ का कुछ अंश ।)

ओं नमो वीतरागाय ।

सिद्धिचक्षुमणुरंजण परमनिरंजण भुवणकमलसरणेश्वर ।
पणवेवि विग्धविद्यासण निरुयमसासण रिस्त्रणाक्षपरमेश्वर ॥ ध्रुवकम् ॥

× × ×
तं कहमि पुराण पसिद्धणामु, सिद्धत्वचरिते भुवणाक्षिरामु ।
उवदज्जुहु भूमंगमीसु, तौडेपिणु चोडहो तणउं सीसु ॥ १ ॥
भुवणेश्वरामु रायाक्षिराउ, जाहि अचल्लह तुडिगु महाणुमाउ ।
तं (वं?) क्षीण दिण्ण घणकणयपयक, मदिपरिभमंत मेवाडिणयक ॥ २ ॥
अवहेरिय खलयणु गुणमहंतु, दियहेहि पराउ पुप्फयंतु ।
दुगमदीहरपण्णरीणु, णय इंदु जेम देहेण खीणु ॥ ३ ॥
तरुसुसुमरेणुरंजियसमीर, मायंदगुंछु गुंदलियकीर ।
संदणवणे किर वासमइ जाम, तदि विणिण पुरिस संपत्त ताम ॥ ४ ॥
पणवेपिणु तेहि पवुत्त पध, भो खण्डं गलिय पावाधलेध ।
परिभमिरभमरवगुमुगुमंत, किं किर णिवसदि णिज्जणवणंत ॥ ५ ॥
करिसरवहिरिय दिक्कवाले, परसरदि ण किं पुरयरविसाले ।
तं सुणेवि मणुं अदिमाणमेर, परि खज्जउ गिरकंदरकसेर ॥ ६ ॥
णउ दुज्जणभउंहा धंकिपाइ, दीसंतु कलसभायंकिपाइ ॥

यत्ता ।

वरु एरवक धवलच्छिद, होउ मकुच्छिद, मरउ सोणिमुदणियगमे ।
खलकुच्छियपद्मवयणइ, भिउडियणयणइ, म णिदालउ सूरुगमे ॥ ७ ॥
चमराणिलउट्टावियगुणापं, अदिसेयधोयसुयणत्तणापं ।

भावार्थ—इस प्रसिद्ध पुराणको मैं सिद्धार्थ संवत्सर में कहता हूं जब राजाधिराज भुवनैकराम तुडिगुने चोह राजा का सुन्दर जटायुक और भुकुटी भंगिसे भीषण मस्तक बाटा ॥ १ ॥ उन्होंने दीन दुखियों को प्रचुर धन दिया । इसी समय धृत्वी पर भ्रमण करते हुए और खलजनों द्वारा अपमानित हुए पुष्पदन्त कवि मेवाटि या मेलाटी नगरी में आये । दुर्गम और लम्बा रास्ता तय करते करते उनका शरीर नवीन वस्त्रों के समान क्षीण हो गया था । २-३ ॥ वे नन्दन वन नामक उद्यान में विभ्राम ले रहे थे जहाँ का वायु पुष्पों के पराग से मद्यक रहा था और आनन्दक्षों पर झुकों के झुण्ड क्रीड़ा कर रहे थे । इतने में ही वहाँ दो पुरुष पहुँचे ॥ ४ ॥ उन्होंने प्रणाम करके कहा कि हे निष्पाप खेलकवि, क्या इस निर्जन वन में जो भ्रमरों के गुंजार से गुंज रहा है क्यों ठहरे हैं ? हाथियों के शब्दों से दिशाओं की बधिर करनेवाले इस विशाल नगर में क्यों नहीं चलते ? यह सुन कर आभिमानमेरु पुष्पदन्तने कहा कि गिरिकन्दराओं के जंगली फल खा लेना अच्छा, परन्तु दुर्जनों की बलवित टेढ़ी भौहें देखना अच्छा नहीं ॥ ५-६ ॥ उज्ज्वल नेत्रोंवाली माता की वृक्ष से जन्म लेने ही मर जाना अच्छा परन्तु प्रभु के दुष्ट वचन और भ्रुकुटित नयन सँवरे सँवरे देखना अच्छा नहीं ॥ ७ ॥ यह लक्ष्मी किस मतलब की जिसने दुलहे हुए चैवरों की हवा से सारे गुणों को उड़ा दिया हो, अभिवेक के जल

१ सिद्धार्थ संवत्सरे । २ विद्वदः । ३ कृष्णराजः । ४ दुर्गमदीर्घतराकाशमार्गेणागतः । ५ मन्दतेजः । ६ मिलित पुष्पदन्तः । ७ हस्तिशब्दात् । ९ दिनचक्रवलये ।

अविवेक्यं दण्डुत्तालियापं, मोहंध्यापं मारणसीलयापं ॥ ८ ॥
 सत्तंगरज्जमरमारियापं, पिउपुत्तरमणरसयारियापं ।
 विससहजम्मपं जडरत्तियापं, किं लच्छिप विउसविरत्तियापं ॥ ९ ॥
 संपइ जणु खीरसु णिविंसेसु, गुणवंतउ जहिं सुरगुणवि देसु ।
 ताहिं अम्महं लइ काणणु जे सरणु, अहिमाणं सहं वरि छोउ मरणु ॥ १० ॥
 अम्मइय इंदरापहिं तेहिं, आयरिणय तं पइसिय मुहेहिं ।
 गुरुविणयपणयपणवियसिरोहिं, पडिबयणु दिणुणु णायरणरोहिं ॥ ११ ॥
 यत्ता ।

जणमणुतिमिरोसारण, मयतरुचारण, णियकुलगयणुदिवायर ।
 भो भो केसवतणुरुह, णयसररुहमुह, कव्वरयणयणायर ॥ १२ ॥
 बंभंडंमडवारुढकित्ति, अणवरय रइय जिणणाहमत्ति ।
 सुहत्तुंगेदवकमकमलमसल, णीसेसकलाविण्णणकुसल ॥ १३ ॥
 पाययकइकव रसावलुधु, संपीय सरासइसुरहिदुधु ।
 कमलच्छु अमच्छु सशसंधु, रणभरधुरधरणुतिघट्ठंधु ॥ १४ ॥
 सविलासविलासिणिहिपय येणु, सुपसिद्ध महाकइकामधेणु ।
 काणीणदीणपरिपूरियासु, जसपसरपसाहियदसदिसासु ॥ १५ ॥
 पररमणिपरम्मुह सुद्धसीलु, उणयमइ सुयणुद्धरणीलु ।
 गुरुयणपयपणवियउत्तमंणु, सिरिदेविअंवगम्भुम्मवंणु ॥ १६ ॥
 अणणइयत्तणउं तणुरुहु पसत्तु, हत्तिवदाणीलियदीहत्तु ।
 महमत्तवं सधयवडु गहीरु, लक्खणुलभयंकिय घरसरंस ॥ १७ ॥

से सुजनता को घो डाला हो, अविवेक से दर्प को धुँवाया हो, जो मोहसे अन्धी हो, मारणशील हो, यत्तांगि राज्य के भार से लदी हुई हो, पिता और पुत्र-दोनों में रमण करनेवाली (धूणितव्याभिवारिणी) हो, विषके साथ जिसका जन्म हुआ हो, जो जड़ (या जल) में रक्त हो, और जो विद्वानों से विरक्त रहती हो ॥ ८-९ ॥

इस समय लोग नीरस और विशेषतारहित हो गये हैं । अब तो गुणवन्त बृहस्पति का भी द्वेष किया जाता है । इसी लिए मैंने इस वन का शरण लिया है । मैंने सोचा है कि इस तरह अभिमान के साथ मर जाना भी अच्छा है ॥ १० ॥

कवि के ये वचन सुनकर उन दो आगत नागरिकोंने—अम्मइय (?) और इन्द्रराजने—प्रसन्न मुख से और बड़े विनय से मस्तक झुकाकर कहा—“ हे मनुष्यों के हृदयान्धकार को दूर करनेवाले, नवीन कमलसदृश मुखवाले, मद-रहित, अपने कुलक्ष्मी आकाश के चन्द्रमा, काव्यरत्नरत्नाकर, और वेशव के पुत्र पुण्यदन्तजी, क्या आपने मरत (मंत्री) का नाम नहीं सुना ? जिस की कीर्ति ब्रम्हाण्डरूपमण्डपपर आरुढ़ हो रही है, जो निरन्तर जिन भगवान की भक्ति में अतुरक्त रहता है, शुभतुंगदेव (राजा और इस नाम का मन्दिर) के चरणकमलों का भ्रमर है, सारी कला और विद्याओं में कुशल है, श्राकृत कवियों के काव्यरसपर लुब्ध-रहेता है और जिसने सारल्यतीक्ष्ण सुराभि का खूब दूध पिया है, लक्ष्मी जिसे चाहती है, जो मत्सर रहित है, सत्यप्रतिष्ठ है, सुदो के बोझ को ढोते ढोते जिस के कन्धे पिस गये हैं, जो विलासवती सुन्दरियों के हृदय का चुरानेवाला है, बड़े बड़े प्रतिष्ठ महाकवियों के लिए कामपेत्तु है, दोन दुखियाओं की आवाओं को पूरा करनेवाला है, जिस के यश ने दशों दिशाओं को जीत लिया है, जो पराश्रियों की ओर कभी नजर नहीं उठाता, शुद्ध शीलयुक्त है, जिस की मति उन्नत है, स्त्रीला मात्र से जो सुजनों का उद्धार कर देता है, गुरुजनों के चरणोंपर जिस का मस्तक सदैव झुका रहता है, जो श्रीदेवी माता और अण्णय पिता का पुत्र है, जिस के हाथ हाथी के समान दान (या मदजल) से आर्द्र रहते हैं, जो महामाल्यवंशका भोजपट है, गंभीर है, जिस का शरीर शुभ लक्षणों से युक्त है और जो दुर्घ्येसनरूपी सिंहों के लिए जो अद्यपद के समान है ॥ ११-१७ ॥ आइए, उसके नेत्रों

दुखेसण सीदसंघायसरहु, एवियाणहि किं खामेण भरहु ।

घत्ता ।

आउ जाहुंतहो मंदिर गणगणदिग सुकइकइत्तण जाणई ।

सो गुणगणतत्तिल्लउ तिहुअणिभल्लउ णिच्छउ परं सम्माणई ॥ १८ ॥

जो विदिणा णिम्मिउं कव्वपिंडु, तं णिसुणेवि सो संचलिउ खंडु ।

आयंतु दिहु भरहेण केम, वारिसरिसरिकल्लोलु जेम ॥ १९ ॥

पुण तासु तेण विरइउ पद्दाण, घर आयहो अम्मागयविद्दाण ।

संमासण पियवयणेहि रम्मु, णिम्मुकडंभु यं परमधम्मु ॥ २० ॥

तुहुं आयउ यं गुणमणि पिद्दाण, तुहुं आयउ यं पंकयहो भाण ।

पुण पम भणेप्पिणु मणहराई, पद्वीणरीणतण सुदयराई ॥ २१ ॥

घर एद्दाणविलेवणभूस्तणाई, दिरणई देवंगहणिवसणाई ।

अच्चंत रसालई भोयणाई, गलियाई जाम कइय दिणाई ॥ २२ ॥

देवीसुपण कइ भाणिउं ताम, भो पुष्पयंत ससिलिहियणाम ।

णियसिरिविसेसणिजियसुरिंदु, गिरिधीर वीर भरव णारिंदु ॥ २३ ॥

पर मणिणउं वरिणउं वीरराउ, उप्पणणउं जो मिच्छत्तभाउ ।

पच्छित्तु तासु जइ करहि अज्ज, ता घडइ तुज्जु परलोककज्जु ॥ २४ ॥

तुहुं देउ कोवि भव्यणवंधु, पुसपवचरियभारस्त खंधु ।

अप्पत्थिओसि देदेहि तेम, णिव्विग्घं लद्धु णिव्वइ जेम ॥ २५ ॥

घत्ता ।

अइललियणं गंभीरयं सालंकारणं चायणं ता किं किज्जइ ।

जइ कुसुमसरवियाराउ अरुहु मडाराउ सम्मायें ण णुणिज्जइ ॥ २६ ॥

को आनन्द देनेवाले मन्दिर में बालिए । वह सुकविओं के कवित्वका मनेह है, गुणगणों से तृप्त है और तानों भुवनों के लिए भला है, वह निश्चय से आप का सम्मान करेगा ॥ १८ ॥

यह सुन कर वह खण्ट कवि—जिस के शरीर को मानों विधाताने काव्य का मूर्तिमान पिण्ड ही बनाया है—उस ओर को चल दिया । उस समय भरत मंत्रीने उस को इस तरह आते देखा जिस तरह सरस्वतीरूपी सरिता की एक तरंग ही आ रही है ॥ १९ ॥ तब उस ने अभ्यागत विधान के अनुसार उस का सब प्रकार से अतिशिसत्कार किया और बहुत ही प्रिय, दमरहित धर्मवचनों से संभाषण किया ॥ २० ॥ कहा—हे गुणमणिनिधान, आप भले पधारि, कमल के लिए जैसे सूर्य प्रसन्नताका कारण है, उन्हीं तरह आप मेरे लिए हैं । ऐसा कहकर उस के मार्ग धम से ह्रीण हुए शरीर को सुख देनेवाले मनोहर ज्ञान, विलेपन और आभूषणों से उस का सत्कार किया और देवों के निवास करने योग्य स्थान में ठहराया । इसके बाद अत्यन्त रसाल भोजन से उसे तृप्त किया । इस तरह कुछ दिन बीत गये ॥ २१-२२ ॥ देवी सुत (भरत) ने कहा—हे श्लाघनीय नामधारी पुष्पदन्त, भैरव नरेन्द्र (कृष्णराज) अपने वैभव से सुरेन्द्र को भी जीतनेवाले और पर्वत के समान धीर वीर हैं ॥ २३ ॥ तुमने कौनों नरेश वीरराज शत्रुक (?) का वर्णन किया है, और उसे माना है अतः इस से जो मिथ्यात्वभाव उत्पन्न हुआ है उस का यदि तुम आज प्रायश्चित्त कर डालो तो इस से तुम्हारा परलोक का कार्य बन जाय ॥ २४ ॥ भव्यजनों के लिए बन्धुतुल्य तुम्हें पुरंदर (आदिनाथ) चरित्र को रचना करनी चाहिए । मैं तुम्हारी अभ्यर्थना करता हूँ । इस काव्यरचना से तुम निर्दिष्टता पूर्वक निरुति प्राप्त करोगे ॥ २५ ॥ वह अतिशय ललित, गंभीर और अलंकारयुक्त रचना भी किस काम की जिस में कामवाणों को व्यर्थ करनेवाले अर्हत भटारक की सद्भावपूर्वक स्तुति न की गई हो ? ॥ २६ ॥

सियवंतपंतिधवलीकयासु, ता जंपइ परवायाविलासु ।
 मो देवीणंदण जयसिरोह, किं किजइ कवु सुपुरिससीह ॥ २७ ॥
 गोषजिपहिं एं घणदिणेहिं, सुखरचोयोहिं घणिगुणोहिं ।
 मइलियचित्तिहिं एं जरघरहिं, छिइण्णेतिसिंहिं एं विसहरेहिं ॥ २८ ॥
 जडवाइपहिं एं गयरसेहिं, दोसायेरहिं एं रफखसेहिं ।
 आचविय परपुंहीपलेहिं, घर कर णिदिज्जइ हयखलेहिं ॥ २९ ॥
 जो धाल बुद्ध संतोसहेउ, रामाहिरामु लफणसमेउ ।
 जो सुम्मइं करवइ विरियसेउ, तासु वि दुज्जणु किं परे म होउ ॥ ३० ॥
 यत्ता ।

एउ मइ बुद्धिपरिग्गहु, एउ सुयसंगहु, एउ कासुधि केरउ बलु ।
 भणु किह करमि कइत्तणु, ए लहमि कित्तणु, जगु जे पिसुणसयसंकुलु ॥ ३१ ॥
 तं पिसुणेवि भरहं वुत्तु ताय, मो करकुलतिलय विमुक्ताय ।
 सिमिसिमिसिमंतकिमि भरियरंधु, मेहेवि कलेवर कुणिमगंधु ॥ ३२ ॥
 ववगयविघेउ मसिकसणकाउ, सुंदरपणसे किं रमइं काउ ।
 णिकारणु वारुणु वदरोसु, वुज्जणु ससदायें सार दोसु ॥ ३३ ॥
 हयतिमिरणियरु घरकरणिहाणु, ए सुहाइ उलयसो उइउ भाणु ।
 जइ ता किं सो मंडियसराहं, एउ रुखइ वियसियसिरिद्धराहं ॥ ३४ ॥
 को गणइं पिसुणु अविसहियतेउ, भुक्कउ छुएयंदहो सारमेउ ।
 जिण चलणकमल भत्तिहणण, ता जंपिउ कवपिसहणण ॥ ३५ ॥
 यत्ता ।

एउ हउं होमि वियक्खणु, ए मुणमि लपणण, छंडु देसि एवि याणमि ।

तब उस बाणी विलास कवि ने अपनी रचित रत्नावली से दिशाओं को उज्ज्वल करते कहा—हे देवीनन्दन (भरत) हे सुपुरुषसिंह, मैं काव्य क्या कहूँ ? अथ कवियों की खलजन निन्दा करते हैं । वे मेघों से घिरे हुए दिन के समान गोवर्जित (प्रकाशरहित और बाणीरहित), इन्द्रधनुष के समान निर्गुण, जीमूँ गृह के समान मलिनचित्त (वित्र), सर्प के समान छिद्रान्वेषी, गत रस के समान जडवादी, राक्षसों के समान दोषाचर (दोषाचर और दोषाचर) और पीठ पीछे निन्दा करनेवाले होते हैं । कविपति प्रवरसेन के सेतुबन्ध (काव्य) की भी जब इन दुर्जनों ने निन्दा की तब फिर ओरों की तो बातही क्या है ? ॥ २९-३० ॥

फिर न तो मुझ में बुद्धि है, न शास्त्रज्ञान है और न और किसी का बल है, तब बतलाइए कि मैं कैसे काव्य-रचना करूँ ? मुझे इस कार्य में यश कैसे मिलेगा ? यह संसार दुर्जनों से भरा हुआ है ॥ ३१ ॥

यह सुनकर भरत ने कहा—हे कविकुलतिलक और हे विमुक्ताय, जिस में कोई बिलबिला रहे हैं और बहुत ही घृणित दुर्गन्ध निकल रही है, ऐसी लाशको छोड़ कर विवेकरहित काले कीए क्या और किसी सुन्दर स्थान में क्रीड़ा कर सकते हैं । अकारण ही आतिशय रक्त रहनेवाले दुर्जन समाव से ही दोषों को ग्रहण करते हैं ॥ ३२-३३ ॥ उल्लू-ओं को यदि अण्डकार का नाश करनेवाला और तेजस्वी किरणोंवाला जगा हुआ सूर्य नहीं सुहाता तो क्या सरोवरों की शोभा बढ़ानेवाले विकसित वनलों की भी न सुहायेगा ? ॥ ३४ ॥ इन खलजनों की परवा कौन करता है ? हाथी के पीछे कुत्ते भौंकते ही रहते हैं ।

यह सुनकर जिन भगवान के चरणकमलों की भक्ति में लीन रहनेवाले काव्यराक्षस (पुण्यदन्त) ने कहा ॥ ३५ ॥ आप का यह कथन ठीक है, परन्तु न तो मैं विवक्षण हूँ और न व्याकरण, छन्द आदि जानता

१ परवृष्टिमांसैः परोक्षवादेभ्यः । २ बाला अंगदादयः; बृद्धा जांबवदादयः अन्यत्र श्रुतहीनाः धृताक्याध । ३ हनुमान । ४ कृतसमुद्रवधः अन्यत्र कृतसेतुवध नाम काव्यं । ५ पद्मानां । ६ काव्यराक्षसेन । ७ कुक्कुरः ।

जो विरह जयवंदहिं आसिमुनिदहिं सा कह केम समाणमि ॥ ३६ ॥
 अकलंक कविर्न कण्यर मयाहं, दिय सुगय पुंरंदर राय सयाहं ।
 दन्तिलविसाहि लुद्धारियाहं, एउ रायहं भरह वियारियाहं ॥ ३७ ॥
 एउ पीयइ पायंजलिजलाहं, अइहोस पुराणहं शिम्मलाहं ।
 भावाहिउ भारह-भासि घासु, कोहल कोमलगिरु कालिदासु ॥ ३८ ॥
 चउमुहुं सयंभु सिरिहंरिसु दोणु, गालोइउ कर रसोणु वाणु ।
 एउ धाउ ए लिंगु ए गुणसमासु, एउ कम्म करणु किरिया विसेसु ॥ ३९ ॥
 एउ संधि ए कारउ पयसमत्ति, एउ जाणिय मं एकवि विहत्ति ।
 एउ बुजिऊउ आयम सहधामु, सिद्धंत धवल जयधवल णामु ॥ ४० ॥
 पडुरुइहु जडु एणणासयारु, परियंळिउ गालंकारसारु ।
 पिंगल पत्यारु समुदं पडिउ, ए कयाइ महारर चित्ते चाडिउ ॥ ४१ ॥
 जैसंयु सिंधु कक्षोलसिलु, ए कलाकोसले हियवउ शिद्धिउ ।
 हउं वणु निरक्खरु कुक्खिमुक्खु, एरवेसें हिंडमि चम्मरुक्खु ॥ ४२ ॥
 अर दुग्गमु होइ महापुराणु, कुंडपण मवइ को जलाविद्याणु ।
 अमरासुरगुरुयणमणहरोहिं, जं आसि कयउ मुणिगणहरोहिं ॥ ४३ ॥
 तं हउं कहमि भत्तीभरेण, किं एहे ए ममिज्जइ महुअरेण ।
 पडु विणउ पयासिउ सज्जणाहं, मुहे मसि कुच्चउ कउ दुउजणाहं ॥ ४४ ॥

हूं, ऐसी दशा में जिस वारित को बड़े बड़े जगद्व्य मुनियों ने रचा है उसे मैं कैसे बना सकूंगा ? ॥ ३९ ॥ मैं अकलंक (जैन दार्शनिक), कविल (सांख्यकार), कणवर (कणाद) के मतों का ज्ञाता नहीं हूं, दिय (ब्राह्मण), सुगत (बौद्ध), पुरन्दर (चार्वाक), आदि सैकड़ों नयों को, दन्तिल, विशाख, लुब्ध (प्राकृतलक्षणकर्ता) आदि को नहीं जानता । भरत के नाट्यशास्त्र से मैं परिचित नहीं ॥ ३७ ॥ पतंजलि (भाष्यकार) के और इतिहास पुराणों के निर्मल जल को मैंने पिया नहीं, भावों के अधिकारी भारतभाषी व्यास, कोमलताणीवाले कालिदास, चतुर्मुख स्वयंभु कवि, श्रीहर्ष, द्रोण, कवीश्वर बाण का अवलोकन नहीं किया । घातु, लिंग, गुण, समास, कर्म, करण, क्रिया-विशेषण, सन्धि, पदसमास, विभक्ति इन सब में से मैं कुछ भी नहीं जानता । आगम शब्दों के स्थानभूत धवल और जयधवल सिद्धान्त भी मैंने नहीं पढ़े ॥ ३८-४० ॥ चतुर रस का अलंकार शास्त्र भी मुझे परिज्ञात नहीं, पिंगल प्रस्तार आदि भी कभी मेरे चित्तपर नहीं बड़े ॥ ४१ ॥ यराः चिन्हकवि के काव्यसिन्धु की कालों से मैं कभी सिफ नहीं हुआ । कलाकौशल से भी मैं कोरा हूं । इस तरह मैं केचारा निश्वर मूख हूं, मनुष्य के वेप में पशु के तुल्य घूमता फिरता हूं ॥ ४२ ॥ महापुराण बहुत ही दुर्गम है । समुद्र कहीं एक कूंडे में भरा जा सकता है ? फिर भी जिसे सूर अमुरों के मनकी हारनेवाले मुनि गणधरों ने कहा था, उसे अब मैं शक्ति भाववश करता हूं । भौरा छोटा होनेपर भी क्या विशाल आकाश में प्रमण नहीं करता है ? अब मैं समनों से यही विनती करता हूं कि आप दुर्जनो के मुंह पर स्याही की कूची फेर दें ॥ ४४ ॥

८ सांख्यमते मूलकारः । ९ वैशेषिकमते मूलकारः । १० चार्वाकमते ग्रन्थकारः । ११ पाणिनिव्याकरणमार्थं (पतंजलि) ।
 १२ एकपुरपाथित कया । १३ भारतभाषी व्यास । १४ श्रीहर्ष । १५ कवि ईशानः बाणः । १६ परिज्ञातः । १७ प्राकृत
 लक्षण कर्ता ।

परिशिष्ट नं० २

(उत्तर पुराण के मंगलाचरण के बाद का अंश ।)

मणे जापण किं पि अमणोज्जे, कावयइ दिअइ केण विकज्जे ।
 णिच्चिणणउ द्विउ जाम महाकाइ, ता सिवणंतरि पत्त सरासइ ॥ १ ॥
 भणइं भडारी सुहयकओइं, पणवइ अरइं सुहयकमेइं ।
 इय णिसुणेधि विउद्धउ कावक, सयलकलायवें एं लुण ससहस ॥ २ ॥
 विसउ णिंछालइ किं पि ए पेच्छइ, जा विमियमइ णियघरे अच्छइ ।
 ताम पैराएण णयवंतं, मउलिय, करयलेण पणवंतं ॥ ३ ॥
 दस विस पसरिय जसतरुकंदं, घरमइंमत्तवंसणइंचंदं ।
 छणससिमंडल सणिणइ धयणं, एव कुवलयदलदीहरणयणं ॥ ४ ॥

यत्ता ।

खल संकुले काले कुसीलमइ विणउ करोण्णु संवेरिय ।
 वचंचति विसुणणसुसुणणवइ जेणसरासइ उद्धरिय ॥ ५ ॥
 ईयणु देवियव्वतणुजापं, जयदुंदुहिसरगिहिरिणणपं ।
 जिणघरसमयणिहेलेणखंभे, दुत्तियमित्तं घवगयडंभे ॥ ६ ॥
 परउवयोरंहरणिव्वइयें, विउसविहुर सयभय णिंमइयें ।
 ते ओदामिय पवरकखरेंइं, तेण विमंत्तं भव्वं भरइं ॥ ७ ॥
 वोह्माविउ कइ कत्तपिसल्लउ, किं तुहुं सघउ घण्णमिहिल्लउ ।
 किं दीसहि विच्छायउ दुम्मणु, गंयकरणं किं ए करहि णियमणु ॥ ८ ॥
 किं किउ काइं वि मइं अवरोहउ, अघर कोवि किं विरंमुम्माहउ ।

कुछ दिनों के बाद मन में कुछ घुरा मालूम हुआ । जब महाकवि निर्विण्ण हो उठा तब सरस्वती देवी ने स्वप्न में दर्शन दिया ॥ १ ॥ भट्टिका सरस्वती बोली कि पुण्यश्रु के लिए मेघलुत्य और जन्ममरणरूप रोगों के नाशक अरहंत भगवान को प्रणाम करो । यह सुनकर तत्काल ही सचलकलाओं के आकर कविवर जाग उठे और चारों ओर देखने लगे परन्तु कुछ भी दिखलाई नहीं दिया । उन्हें बड़ा विस्मय हुआ । वे अपने घर ही थे कि इतने में नयवन्त भरत मंत्री प्रणाम करते हुए वहाँ आये, जिन का मध दशोदिशाओं में फैल रहा है, जो श्रेष्ठ महामातृवंप्रकारुप आकाश के चन्द्रमा है, जिन का मुख चन्द्रमण्डल के समान और नेत्र नवीन कमलदलों के समान हैं, ॥ २-४ ॥ जिन्होंने ने इस खलजन संकुल काल में विनय करके शून्यपथ में जाती हुई सरस्वती को रोक रक्खा और उस का उद्धार किया ॥ ५ ॥ जो ऐयण पिता और देवी माता के पुत्र हैं, जो जिनशासनरूप महल के खंभ हैं, दुस्स्थितों के मित्र हैं, दमरहित हैं, परोपकार के भार को उठानेवाले हैं, विद्वानों का कष्ट पहुँचानेवाले सैकड़ों भयों को दूर करनेवाले हैं, तेज के घाम हैं, गर्वरहित हैं और भव्य हैं ॥ ६-७ ॥ उन्होंने ने काव्यराक्षस पुण्यदन्त से कहा कि भैया, क्या तुम सबसुख ही पागल हो गये हो ? तुम उन्मत्ता और छायाहीनसे क्यों दिखते हो ? प्रणयरचना करने में तुम्हारा मन क्यों नहीं लगता ? ॥ ८ ॥ क्या मुझ से तुम्हारा

१ सरस्वती । ३ सुष्ठु इतो रुजां रोगाणामोषः संघातो जैन स तं । ३ पुण्यतरुमेधं । ४ यत्तनिष्ठो जागरितः । ५ आकार । ६ पश्यति । ७ भरतमंत्रिणेति सम्बन्धः श्रीपुण्यदन्तः आलक्षितः । ८ वन्दो मेघः । ९ महामात्र-महत्तर । १० चन्द्रेण ११ संवृता रक्षिताः सरस्वती । १२ ऐयण पिता देवी माता तयोः पुत्रेण भरतेन । १३ प्रासाद । १४ सयि पुण्यदन्ते उपकार-भावनिर्वाहकेन । १५ निर्मेयकेन । १६ रमेन विमानेन । १७ गर्वं रहितेन । १८ कीमललापे । १९ अपराधः । २० अण्यकाव्यकरणवाचः किं त्वं ।

भेणु मणु मणियउं सयल पडिच्छैमि, एउ कयपंजलियर ओइच्छुभि^{२१} ॥ १६ ॥

घटा ।

अधिरण असारें जीविणए, किं अप्पउ सम्मोद्धहिं ।

तुहु सिद्धै^{२२} वाणीधेणुअहें, एवरसकीर ए दोहरिं ॥ १० ॥

तं शिसुणेपिणु दर विहसतें मिंसुद्धारविंदु जोयतें ।

कसणसरीरें सुद्धकुलवें, मुद्धापविगभि संभूवें ॥ ११ ॥

कासव गोसैं केसव पुत्तें, कइ कुलतिलपं सरसयणिलपं ।

उत्तमैसत्तें, जिणापयमत्तें ॥ १२ ॥ (?)

पुप्फयंत कइणा पडिउत्तउ, भो भो भरह शिसुणि शित्तकलुत्त ।

कलिमलमलिणु कालु धियरेरैलें, शिण्णिणु शिण्णु दुणायगारें ॥ १३ ॥

जो जो दीसइ सो सो दुज्जण, शिण्णु शीरसु एं सइउ वणु ।

रोउ राउ एं संभहें केरउ, श्रंत्ये पयइइ मणु ए महार उ ।

उव्वेउ जे वित्थर शिरारिउ, पकु वि पैंउ विरपवउ भारिउ ॥ १४ ॥

घटा ।

दोसेणैं होउ तं एउ भणमि चोउज अचरुमणे पकउ ।

जमुपउ चडाधिउ चौउजिह तिह गुणें सइवैकउ ॥

जयवि तो वि जिणुणुणुणु वणुणुमि, कि एं पदं अम्मत्तिउ अचगणमि ।

कोई अपराध बन गया है अथवा और किसी रस का उगाह हुआ है अर्थात् कोई दूसरा काव्य बनाने की इच्छा हुई है ? बोलो, बोलो, मैं हाथ जोड़ कर मुझसे सामने खड़ा हूँ, तुम जो कुछ कहोगे मैं सब कुछ देने के लिए तैयार हूँ ॥ ९ ॥

इस आशिर और असार जीवन से तुम क्यों आप को सम्मोहित कर रहे हो ? तुम्हें वाणीरूप कामधेनु सिद्ध हो गई है, उस से तुम नवरसरूप दूध क्यों नहीं दोहते ? ॥ १० ॥

यह सुनकर मुसकराते हुए और अपने मित्र के मुखकमल की, ओर निहारते हुए, कुशशरीर, अतिशय क्रूर, मुग्धादेवी और वेशव ब्राह्मण के पुत्र, काश्यपोत्रीय, कविकुलतिलक, सरस्वतीनिलय, दहव्रत और जिनपदभक्त पुष्पदन्त कवि ने प्रत्युत्तर दिया कि, हे भक्त, यह निषय है कि इस कलिमलमलिन, निर्दय, निर्गुण और दुर्नितिपूर्ण विपरीत काल में जो जो दिखते हैं सो सब दुर्जन हैं, सब सूखे हुए वन के समान निःफल और नीरस हैं । राजा लोग सन्ध्याकाल की लालिमा के सदृश हैं । इस लिए मेरा मन अर्थ में अर्थात् काव्य रचना में प्रवृत्त नहीं होता है । इस समय मुझे जो उद्देग हो गया है, उस से एक पद बनाना भी मेरे लिए भारी हो गया है ॥ ११-१४ ॥

यह जगत यदि दोष से वक्र होता तो मेरे मन में आश्चर्य नहीं होता किन्तु यह तो बढ़ाये हुए चाप (धनुष) सदृश गुण से भी वक्र होता है (धनुष की डोरी 'गुण' कहलाती है । धनुष गुण या डोरी बढ़ा ने से टेंडा होता है) ॥ १५ ॥

सद्यपि जगत् की यह दशा है तो भी मैं जिन गुणवर्गन करूँगा । तुम मेरी अभ्यर्थना करते हो, तब मैं तुम्हारी अवगणना कैसे कर सकता हूँ ! तुम त्याग भोग और भावोद्गम शक्ति से और निरन्तर की जानेवाली कविमैत्री से

२१ सर्वे प्रतीच्छामि । २२ एष तिष्ठामि । २३ तव सिद्धायाः ।

१ भरतस्य । २ कुण्ड कुक्षेण । ३ मुग्धादेवी । ४ वाणीनिलयेन सन्दिरेण । ५ सत्वेन दहव्रतेन । ६ निवृत्ति । ७ विपरीतः । ८ शुष्कवनमिव जनः । ९ राजा सन्ध्यासमयसदृशः । १० शब्दार्थे न प्रवर्तते । ११ एकमपि पदं रचितुं भारी महान् । १२ दोषेण सह जगत् चेत् वक्रं भवति तदाश्चर्यं न, किन्तु गुणेनापि सह वक्रं तदाश्चर्यमाचिन्ते । १३ चापः ।

चार्ये मांय भाउग्गमसात्तिप, पइं अणवरय रइय कइमिस्तिप ॥ १६ ॥
 राउं सालिवाहणु वि विसेसिउ, पइं शियजसु भुवणयले पयासिउ ।
 कालिदासु जे खेंधें शीयउ, तहो सिरिहरिसहो तुहुं जगि वायउं ॥ १७ ॥
 तुहुं करकामधेणु कइयच्छल, तुहुं करकप्पकप्पु दोइयफल ।
 तुहुं कइ सरवरकीलागिरियरु, तुहुं कइ रायहंसमाणससु ॥ १८ ॥
 महुं मयालसु मयणुम्मत्तउ, लोउ असेसुधि तिहणु भुत्तउ ।
 केण वि कट्वपिसल्लउ मरिणओ, केण वि यट्टु मणेधि अवगणिएउ ॥
 शिघमेव सव्भौव पउंजिउं, पइं पुणु विणउ फरे वि हउं रंजिउं ॥ १९ ॥
 यत्ता ।

धणु तणुसमु मग्गु ए तं गहणु येहु शिकौरिमु इच्छमि ।
 देवीसुअ सुदण्हि तेण हउं शिलप तुहारप अच्छमि ॥ २० ॥
 महुं सेमयागमे जायहें ललियहें, घोल्लइ कोइल अंबयकलियहें ।
 काणणे चंचरीउ कणुत्तइ, कौरु किएण हरिसेण विसहइ ॥ २१ ॥
 मग्गु करत्तणु जिणपयमत्तिहें, पसरइ एउ शियजोवियावेत्तिहें ।
 विमलगुणाहरणंकियदेहउ, पइं भरइ शिसुणइ पइं जेहउं ॥ २२ ॥
 कमलगंधु धिप्पइ सारंगे, एउ सालूरे शीसारंगे ।
 गमणलील जा कयसारंगे सा किं णासिजइ सारंगे ॥ २३ ॥
 यडिठयसज्जण दुसणवसरणे, सुकइ कित्ति किं दम्मइ पिसुणे ।
 कइमि कट्ठु वम्मइसंहारणु, अजियपुराणु भवणवतारणु ॥ २४ ॥

शालिवाहन राजा से भी बड़ गये हो और अपने यश को तुमने पृथ्वीतलपर प्रकाशित कर दिया है। इस समय जगत् में तुम दूसरे श्रीहर्ष हो जिन्हने कविकालिदास को अपने कन्धे पर बड़ा लिया था। १- ७ ॥ तुम कविकामधेनु, कविवत्सल, कविकल्पवृक्ष, कविनन्दनवन और कविराजहंस समान सरोवर हो ॥ १८ ॥ ये सारे लोग मूर्ख, मदालस, और मदोन्मत्त बने रहें, (इन से मुझे कुछ प्रयोजन नहीं) । किसी ने मुझे काव्यरासस कह कर माना और किसी ने ढूँढ़ बड़ कर मेरी अवमानना की । परन्तु तुमने सदा ही सद्भावों का प्रयोग करके और विनय करके मुझे प्रसन्न रक्खा है ॥ १९ ॥

मैं धन को तिन के के समान गिनता हूँ और उसे नहीं चाहता हूँ । हे देवीसुत भुतनिधि भरत, मैं अकारण प्रेम का मूला हूँ और इसी से तुम्हारे महल में रहता हूँ ॥ २० ॥

वसन्त का आगमन होनेपर जब आमो में सुन्दर मौ र आते हैं तब कोयल बोलती है और बगीचों में और गुंजार करते हैं, ऐसे समय में क्या तोते भी हर्ष से नहीं बोलने लगते हैं ? ॥ २१ ॥ जिन भगवान के चरणों की भक्ति से ही मेरी कविता स्फुरायमान होती है अपने जीवित की हृष्टि से या जीविकानिर्वाह के खयाल से नहीं । हे विमलगुणामणिकित हे भरत, अब मेरी यह रचना सुन ॥ २२ ॥ कमलों की सुगन्ध भ्रमरमण प्रद्वण करते हैं, निःसार शरीर मेंढक नहीं । हाथी या हंस जिस चाल से चलते हैं, उस से क्या हरिण चल सकते हैं ! इसी तरह से जिन्हें सजनों को दोष लगाने की आदत पड़ गई है, ऐसे दुर्जन क्या सुकवियों की कीर्ति को मिटा सकते हैं ? अब मैं मन्मयसंहारक और भवसमुद्रतारक अंजितपुराण नामक काव्य को कहता हूँ ।

१४ त्यागः । १५ स्कन्धे पृथो येन श्रीहर्षेण । १६ तेन सहसो महान् त्वं । १७ मूर्खो लोकः । १८ सद्भाव । १९ अकृत्रिय धर्मोन्तरागं ।

१ वसन्तसमागमे । २ जातायाः सहकारकलिकायाः । ३ आत्र कलिकानिमित्तं । ४ गृह्यते । ५ भ्रमरेण । ६ भेकेन । ७ निःसारिणेन निःकृत्र शरीरेण । ८ हस्तिना हंसेन वा । ९ मृगेण । १० हन्यते । ११ कथयामि । १२ मन्मय ।

परिशिष्ट नं० ३

(उत्तरपुराण के अन्त का कुछ अंश ।)

शिख्युष धीरे गलियमयरायउ इंदुद गणिए केवलि जायउ ।
सो विउलहरिहे गउ शिखाणहो कम्मविमुक्कओ सासयठाणहो ॥ १ ॥
तहि धासरे उण्णणउ केवलु मुणिए हे सुधम्मही पम्पलायियमल्लु ।
तं शिखाणण जंबू लामहो पंचमु दिव्वाणण हयकामहो ॥ २ ॥
णंदि सुणंदिमिनु अवकांवे मुणिए, गंवदण चउत्तु जलहरकणिए ।
ए पच्छुप समत्थ सुयपारय शिरसियमिच्छामयमवणीरय ॥ ३ ॥
पुणु वि विस्सु जइ पोद्धि खसित जयणाउ वि सिद्धथुह यत्तित्त ।
दिहिसेणंकउ विजउ बुद्धिउ, गंय धम्मसेणु वि लीसल्लउ ॥ ४ ॥
पुणु णमलत्तउ पुणु जसवाल्लउ, पंडु लामु धुवसेण गुणालउ ।

घटा ।

अणु कंसउ अप्पउ जिये वि धिउ पुणु सुहरद जणुसुहयक ।
जसभदु अलुदु अमंदमइ लार्णे लावइ गणहक ॥ ५ ॥
भइवाहु लोहं कु भडारउ आयासंगधारि जससारउ ।
एयहिं सत्तु सत्तु मणे माणिए, सेसाहिं पम्पकु देसु परियाणिए ॥ ६ ॥
जिणसेणेण वीरसेणेण वि जिणसासणु सेविउ मयगिरिपवि ।
पुव्वपाले शिसुणिएं सइ भरहं, रापं रिबु-वहुदावियविहं ॥ ७ ॥
एवं रायपरिवाडिए शिसुणिएं, धम्म मुणिएणाहं पिसुणिए ।
सेणियराउ धम्म सोयारहं, पच्छिज्जउ यजियभयभारहं ॥ ८ ॥
ताहमि पच्छुप बहुरसणडिए, भरहं काराविउ पद्धडियप ।
पढेवि सुणेवि आयरणेवि हयकले, एयडिउ मम्मःपं हय माहेयले ॥ ९ ॥
कम्मकजयकारणु गणे दिहंउ, एम महापुराणु मं सिहंउ ।
एत्तु जिणिएद मग्गे ओणाहिउ, बुद्धिविहं जं मं साहिउ ॥ १० ॥
तं महो खमहो तिलोयहो सारी, अरुहुगय सुअपवि भडारी ।
चउवीस यि महुं कलस खयंकर, देठु समाहि वोहि तित्थंकर ॥ ११ ॥

घटा ।

हुहुं छिंदउ शंदउ भुयणयले शिखम कण्णरसायणु ।
आयणणउ मणणउ ताम जणु जाम चंदु तारायणु ॥ १२ ॥
घरिसउ मेदजालु वसुधारहि, महि पिच्छउ वहु धणणपयारहिं ।
शंदउ सासणु वीर जियेसहो, सेणिए शिग्गउ शरयणिवासहो ॥ १३ ॥
लग्गउ पण्णणारंमहो सुरवइ, शंदउ पय सुहुं शंदउ शरवइ ।
शंदउ देस सुहिफलु चियंभउ, जणु मिच्छुत्तु दुच्चित्तु शिसंभउ ॥ १४ ॥

दुःखों का नाश हो और यह कर्णरसायन काव्य पृथ्वीतल पर विस्तार लाभ करे । जब तक चन्द्रमा और तारे हैं, तब तक लोग इसे सुनें और इसका आदर करें ॥ १२ ॥

पृथ्वी पर मेघ खूब बरसें और तरह तरह के धान्य पकें, धीरभगवान का शासन बढ़े, राजा श्रेष्ठिक नरक निवास से बाहर निकले और (तीर्थंकर होने पर) इन्द्र उस का जन्माभिषेक करें । प्रजा का सुख बढ़े और राजा आनन्दित हो । देश में सुभिक्ष (सुकाल) हो और लोगों का मित्रात्वं भाव नष्ट हो ॥ १३-१४ ॥ अंगीकृत

पडिणएणए पडिपालए सूरहो, होउ संति भरहहो गिरिधीरहो ।
 होउ संति बहु गुणगुणवंतहं, संतहं दयवंतहं भयवंतहं ॥ १५ ॥
 होउ संति बहु गुणहि महल्लहो, तासु जे पुत्तहो सिरि देवहो ।
 एउं महापुराणु रयणुज्जले, जे पयडेवउ सयले धरायले ॥ १६ ॥
 चउधिह दाणुजय कयचित्तहो, भरह परमसम्भाव सुमित्तहो ।
 भोगहो जयजसविन्दुरियहो, होउ संति शिख शिखवमचरियहो ॥ १७ ॥
 होउ संति गणहो गुणवंतहो, कुलवन्दुल सामय महंतहो ।
 शिखमेय पालियजिणधम्महं, होउ संति सोहण गुणवम्महं ॥ १८ ॥
 होउ संति सुधणहो दंगइहो, होउ संति संतहो संतइहो ।
 जिणपयपणमण वियलियगव्यहं, होउ संति एीसेसहं भव्वहं ॥ १९ ॥
 पत्ता ।

इय दिव्यहो कव्वहो तणुउं फल लहुं जिणणाहु-पयन्दुउ ।
 सिरि भरहहो अरुहहो जहिं गमणु पुफयंतु तहिं गळुउ ॥ २० ॥
 सिद्धिविलासिणि मणहरदुपं, मुद्धापवी तणुसंभूपं ।
 शिद्धणसधणेलोयसमचित्तं, सव्वजीवणिफकारणमित्तं ॥ २१ ॥
 सद्धसालिल परिघडिदयसोत्तं, केसवपुत्तं कासवगुत्तं ।
 विमल सरासइ जणियविलासं, सुणमवण-देवउलखिवासं ॥ २२ ॥
 कलिमल पवल पडल परिचत्तं, णिगघरेण निपुत्तकलत्तं ।
 णइयावीतलाय सरण्णएणं, जर चीवरयफकल परिहारणं ॥ २३ ॥
 धीरं धूलिधूसरियंगे, दूरयकजिह्वय दुज्जएसंगे ।
 महि सयणयलं करपंगुरणं, मानिय पंडियपंडियमरणं ॥ २४ ॥
 मणखेडपुरघरं शिवसत्तं, मणं अरहंतु देउ भायंतं ।
 भरहमणणजिणं णयणिलपं, कव्वपवंधजणियजणपुत्तपं ॥ २५ ॥
 पुफयंतकयणा धुयपंकं, जइ अहिमाणमेरुणामकं ।

गलन में शर और पर्वत के समान धीर भरत (मंथी) को शान्ति प्राप्त हो । गुणवन्त, दयावन्त, ज्ञानवन्त सज्जनों को शान्ति प्राप्त हो ॥ १५ ॥ उस क (भरत के ?) पुत्र अतिशय गुणवन्त श्री देवल्ल को शान्ति मिले जिस ने कि इस महापुराण को रत्नोज्ज्वल धरातल पर फैलाया और जिस का वित्त चारों प्रकार के दान करने में उद्यत रहता है तथा जो भरत के लिए परम सद्गुणयुक्त मित्र के तुल्य है । जिस का यश संसार में फैल रहा है और जिस का चरित्र उपमारहित है, उस भोगल्ल को शान्ति प्राप्त हो ॥ १६-१७ ॥ कुलवन्दुल, समर्थ, गुणवन्त और महन्त सुगुण को शान्ति प्राप्त हो । निरन्तर जैन धर्म का पालन करनेवाले सोहण और गुणवर्म को शान्ति मिले ॥ १८ ॥ सुजन दंगइय और सन्त संतइय को शान्ति प्राप्त हो । जिनभगवान के चरणों में मस्तक झुकानेवाले और गवैराहित अन्य सब भव्यजनों को भी शान्ति मिले ॥ १९ ॥

इस दिव्य काव्य की रचना का फल जिननाथ की कृपा से मैं यह चाहता हूं कि श्री भरत और अर्हत का गमन जहां हो पुण्यदन्त भी वहां जावे ॥ २० ॥ सिद्धि रूपी विलासिनी के मनोहर दूत, मुग्धादेवी के पुत्र, निर्धनों और सधनों को बराबर समझनेवाले, सर्वजीवों के निष्कारण मित्र, शब्द छलिल से बंटा है काश्य स्नेह जिन का, केशवके पुत्र, काश्यप गोत्रीय, विमल सरस्वती से उत्पन्न विलासोवाले, शून्य भवन और देव कुलों में रहनेवाले, कलिकाल के मत के प्रबल पटलों से रहित, बिना घट्टार के, पुत्रकलत्रहीन, नदी, बाणिका और सरोवर में स्नान करनेवाले, पटे कपड़े और वल्कल पहननेवाले, धूलिधूसरित अंग, दुर्जनों के संघ से दूर रहनेवाले, जमीन पर सोनेवाले, अपने हाथों को ही धोड़नेवाले, पाण्डितपण्डितमरण की प्रतीक्षा करनेवाले, मान्यखेट पुर में निवास करनेवाले, मन में अरहन्त देवका ध्यान करनेवाले, भरतमंथीद्वारा सम्मानित, नीति के मिलय, अपने काम्यरचनासे लोगों को पुलकित करनेवाले, पापरूप कीचड़ जिन क

कयउं कळु मत्तिप परमत्तै, छसय छडोत्तर कयसामत्तै ॥ २६ ॥
कोट्टण संघच्छरे आसादप, दहमप दियहे चंदरुदुदप ॥
घता ।

सिरि अरुद्धो भरुद्धो घडुगुद्धो कइकुलितलपं भासिउ ।

सुपहणु पुराण तिसद्विहिमि पुरिसदं चरिउ समासिउ ॥ २७ ॥

इय महापुराणे तिसद्विमहापुरिसगुणालंकारे महागठवभरुद्धाणमणिए महाकइपुष्पकयंत विरहप
महाकव्ये दुइत्तरसइमो परिच्छेओ समत्तो ॥ १०२ ॥

(प्राचीन पत्र) संवत् १६३० वर्षे भाद्रपदमासे शुक्लपक्षे पूर्णिमातिथौ कविव्यासरे उत्तरा
भाद्रपद नक्षत्रे नेमिनाथचैत्यालये श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्रीकुंदकुंदाचार्यान्वये
भ० श्रीपद्मनंददेवास्तत्पट्टे भ० श्रीशु [भवन्देवास्त] त्पट्टे भ० श्रीजिनचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भ०
श्रीप्रभाचन्द्रदेवास्तत्पिप्य भ० श्रीध.....स्तत्पिप्य भ० श्री ललितकीर्ति देवास्तत्पिप्य
भ० श्री चंद्रकीर्ति देवास्तद..... (खंडिल) चालान्वये साषड गणेश सा० धरुद्धा तद्भार्या
धिरुद्धसरिस्तत्पुत्रौ द्वौ प्र० सा.....छायलदे तत्पुत्रः सा० वोरम तद्भार्या धीरमदे तत्पुत्रः
सा० नाथू तद्भार्या.....तीर्थ जिनपूजापुरंदर सा० श्री धणराज तद्भार्ये द्वे प्र० सती
सीताक.....

परिशिष्ट भ० ४

(महापुराण के परिच्छेदों के प्रारंभिक पद्य)

- १ आदित्योदयपर्वताद्गुरुतराश्चन्द्रार्धचूडामणे-
राष्ट्रमाचलतः कुशेनिलयादासेतुवन्धादृढात् ।
आपातालतलादह्निन्द्रभवनादास्वर्गमार्गं गता
कीर्तिर्यस्य न वेत्ति भद्र भरतस्याभाति खण्डस्य च ॥
- २ बलिर्जामूतदधोचिपु सर्वेषु स्वर्गतामुपगतेषु ।
संप्रत्यनन्यगतिकस्त्यागुणो भरतमावसति ॥
- ४ आश्रयवसेन भवति प्रायः सर्वस्य घस्तुनोऽतिशयः ।
भरताश्रयेण संप्रति पश्य गुणा मुख्यतां प्राप्ताः ॥
- ५ भूलीलां त्यज मुंच संगतकुचद्वंदादिगर्वाक्षमा,
मा त्वं दर्शय चारुमध्यलतिकं तन्वंगि कामादृता ।
मुग्धे धीमर्दान्द्यखंडसुकवेर्यैर्धुर्गुणैरुन्नतः
स्वप्नेप्य परांगनां न भरतः शौचांबुधेर्याद्वृति ॥
- ६ श्रीर्वाग्देव्यै कुप्यति चान्देयो द्वेष्टि संततं लक्ष्म्यै ।
भरतमनुगम्य सांप्रतमनयोरात्यंतिकं प्रेम ॥
- ७ हंचो भद्र प्रचंडावनपतिमयने त्यागसंख्यातकर्ता
कोयं श्यामप्रधानं प्रवरकरिफराकारबाहुः प्रसन्नः ।
धन्यः प्रालेयापिण्डोपमधवलपशो धौतधात्रोतलांतः-
ख्यातो वन्धुः कवीनां भरत इति कपं पांष जानासि नो त्वं ॥

धो गया है और अभीमानमैरु जिन का किन्हीं या उपनाम है, उन पुष्पदन्त कवि ने यह काव्य भक्ति के बरत हो कर
६०६ के क्रोधन नामक संवरार में आसाठ के दशवें दिन सोमवार को बनाया ॥ २५-२६ ॥ कविकुलतलक ने पुराणप्र-
सिद्ध अष्ट पुरुषों का चरित संक्षेप से वर्णन किया ॥ २७ ॥

- ८ मातर्वसुंधरि कुतूहलिनो ममैतदापृच्छतः कथय सत्यमपास्य साव्यं ।
त्यागी गुणी प्रियतमः सुभगोऽभिमानि किं वास्ति नास्ति सदृशो भरतार्यतुल्यः ॥
- ९ एको दिव्यकथाविचारचक्षुरः श्रोता बुधोऽभ्यः प्रिय
एकः काव्यपदार्थसंगतमतिश्चान्यः परार्थोद्यतः ।
एकः सत्कथिरन्य एक महतामाधारभूतो बुधा
छावेतौ सखि पुष्पदन्त-भरतौ मद्मे भुयो भूपणौ ॥
- १० जेगं हम्मं रम्मं दीवश्रो चंदारिवं धरत्ती पल्लको दी वि हत्या सुघत्यं ।
विया णिहा णिच्चं कच्चकीलाविणोश्रो अदीणत्तं वित्तं ईसरो पुष्पयंतो ॥
- ११ सूर्यात्तज गभीरिमा जलनिधेः स्वैर्यं सुराद्रेर्विधोः
सौम्यत्वं कुसुमायुधात्त सुभगं त्यागं धलेः संभ्रमात् ।
एकीकृत्य विनिर्मितोऽतिचतुरो धात्रा सखे सांप्रतं
भरतार्यो गुणवान् सुलब्धयशसः खण्डः कवेर्वल्लभः ॥
- १४ केलासुभासिकंदा धवलदिसिगश्रोणिण्णदंतोक्रोरा,
सेसाही वद्धमूला जलाहेजलसमुन्मूयडिंडीरयत्ता ।
वंमंडे वित्थरंती अमयरसमयं चंदारिवं फलंती,
फुल्लंती तारश्रोहं जयर एयलया तुज्ज भरहेसांकिती ॥
- १५ त्यागो यस्य करोति याचकमनस्तृष्णांकुरोच्छेदनं,
कीर्तिर्यस्य मनीषिणां वितनुते रोमांचचर्चं वपुः ।
सौजन्यं सृजनेषु यस्य कुरुते प्रेमांतरां निर्बुध्तिं,
श्लाघ्योऽसौ भरतः प्रमुर्वत भवेऽत्कार्मिर्गिरां सूक्तिमिः ॥
- १६ प्रतिगृह्णमती यथेष्टं वंदिजनैः स्वैरसंगमावसति ।
भरतस्य वल्लभाऽसौ कीर्तिस्तदपीह चित्रतरं ॥
- १७ बल्लिभंगकंपिततनु भरतयशः सकलपाण्डुरितकेशम् ।
अत्यंतवृद्धिगतमपि भुवनं संभ्रमति तच्चित्रम् ॥
- १८ शशधरविम्बात्कान्तिस्तेजस्तपनाद्गभीरतामुद्धेः ।
इति गुणसमुच्चयेन प्रायो भरतः कृतो विधिना ॥
- १९ श्यामराचिनयनसुभगं लावण्यप्रायमंगमादाय ।
भरतच्छलेन संप्रति कामः कामाकृतिमुपेतः ॥
- २१ यस्य जनप्रासिद्धमत्सरभरमनवमपास्य चाशेषे,
प्रतिहृतपक्षपातदानश्रीरुपासि सदा विराजते ।
वसति सरस्वती च सानन्दमनाविलषदनपंकजे,
स जयति जयतु जगति भरहेश्वर सुखमयमलमंगलः ॥
- २२ मदकरदलितकुम्भमुक्ताफलकरमरभासुरानना,
मृगपातेनादरेण यस्योऽद्भुतमनघमनघमासनम् ।
निर्मलतरपवित्रभूषणगणभूषितवपुरदारुणा,
भारतमल्ल सास्तु देवी तव बहुविधमंबिका मुदे ॥
- २३ अंगुलिदलकलापमसमश्रुति नखनिकुरंबकार्षिकं

- सुरपतिमुकुटकोटिमाणिक्यमधुवतचक्रजुं वितम् ।
विलसदणुप्रतापनिर्मलजलजन्माविलासकोमलं
घटयतु मंगलानि भरतेश्वर तव जिनपादपंकजम् ॥
- २४ हिमगिरिशिखरनिकरपरिपंडुरधवलियगगनमण्डलं
पुलकमिवातनोति केतकतरुवरतरुकुसमसंकटे ।
विकसितपक्षिफणासु सुरसरितामणिरुचिगतमघः-
क्षितेरिदमतिचित्रकारि भरतेश्वर जगतस्तावकं यशः ॥
- २५ उन्नतातिमनुमात्रपात्रता भाति मद्र भरतस्य भूतले ।
काव्यकीर्तिघटारयो गृहे यस्य पुष्पदंतो दिशागजः ॥
- २६ घनधवलताश्रयाणामवलस्थितिकराणां मुहुर्ममताम् ।
गणनैव नास्ति लोके भरतगुणानामरीणां च ॥
- २७ गुरुधर्मोद्भवपावनमभिर्नदितकृष्णार्जुनगुणोपेतम् ।
मामपराक्रमसारं भारतमिव भरत तव चरितं ॥
- २८ मुखमलिनोदरसन्निगुणहतहृदये सदैव यद्वसति ।
चित्रमिदमत्र भरते शुक्लापि सरस्वती रक्ता ॥
- २९ तंत्रावाद्यैरनिर्द्वैरकाविरचितैर्गद्यपद्यैरनेकैः,
कांतं कुंदावदातं दिशि दिशि च यशो यस्य गीतं सुरैर्यैः ।
काले तृष्णाकरुणं कलिलमलकलितेय्य चिद्याविनोदो
सोयं संसारसारः प्रियसाखि भरतो भाति भूमण्डलेऽस्मिन् ॥
- ३० वंभंडाहं डलखोणिमंडलुच्छलियकिन्तिपसरस्स ।
खंडस्स समं समसीसियाप कइणो ए लज्जंति ॥
- ३१ विनयांकुरसातवाहनादौ नृपचक्रे दिवमोयुपि क्रमेण ।
भरत तव योग्यसज्जनानामुपकारो भवति प्रसक्त एव ॥
- ३२ तीव्रापद्विषयेषु बन्धुरहितेनैकेन तेजस्विना
सन्तानक्रमतो गतापि हि रमाकृष्टा प्रभोः सेवया ।
यस्याचारपदं वदंति कथयः सौजन्यसत्यास्पदं
सोऽयं श्रीभरतो जयत्यनुपमः काले कलौ सांप्रतम् ॥
- ३३ इति भरतस्य जिनेश्वरसामायिकशिरोमणेर्गुणान्वक्तुम् ।
मातुं च चाक्षितोयं पुलुकैः कस्यास्ति सामर्थ्यम् ॥
- ३४ अत्र प्राकृतलक्षणानि सकला नीतिः स्थितिश्चन्द्रसा-
मर्थालंकृतयो रसाश्च विविधास्तत्प्राधान्येनैकीयः ।
किंचान्यद्यदिहास्ति जैनचरिते नान्यत्र तद्विद्यते
देवे तौ भरतेश-पुष्पदन्तौ सिद्धं ययोरौदशम् ॥
- ३५ बन्धुः सौजन्यवाद्धः कविखलाधिपणाध्यांतविध्वंसभाजुः
प्रौढालंकारसारमलतनुविमघा भारती यस्य नित्यम् ।
यक्त्रांभोजानुरागक्रमनिहितपदा राजहंसीव भाति
प्रोद्यद्गंभीरभाषा स जयति भरते धार्मिके पुष्पदन्तः ॥
- ३६ आखंडोद्गमरावचंडमरुतं चंडीशमाधित्य यः
कुर्वन्काममकांडतांडवविधिं डिंडोरपिंडच्छविः ।
हसाडंबरमुंडमंडलसद्भागीरथोनायकं

वाङ्मनित्यमहं कुतूहलवती खंडस्य कीर्तिः कृतेः ।

६५ आजन्म कवितारसैकधिपणा सोभाग्यभाजो गिरां
टप्पन्ते कवयो विशालसकलप्रणानुगा बोधतः ।

किंतु प्रौढनिरुद्धगूढमतिना श्रीपुष्पदत्तेन भोः

साम्यं विभ्रति नैव जातु कविना शीघ्रं त्वतः प्राकृतेः ॥

६६ यस्येह कुंदामलचन्द्रोचिः समानकीर्तिः ककुभां मुखानि ।

प्रसाधयंती ननु वंभ्रमीति जयत्वसौ श्रीभरतो नितान्तम् ॥

पीयूषसूतिकिरणा हरहासहारकुंदप्रसूनसुरतीरिणिशक्रनागाः ।

क्षीरोदशेषलसत्तमहंस चैव किं खंडकाव्यधवला भरतस्तु शूयम् ॥

६७ इह पठितमुदारं चाचकैर्गौरयमानं इह लिखितमजस्रं लेखकैश्चाकवाव्यम् ।

गतवति कविमित्रे मित्रतां पुष्पदन्ते भरत तव गृहेस्मिन्माति विद्याविनोदः ॥

६८ चंचेचंद्रमरीचिचंचुरेचुरेचातुर्यचकोचिता

चंचती विचटश्चमलूतिकविः प्रोद्धामकाव्यक्रियाम् ।

श्चर्चती प्रिजगत्सुकोमलतया वांघुर्यधुर्या रसैः

खण्डस्यैव महाकवेः समरताम्रित्वं कृतिः शोभते ॥

८० लोके दुर्जनसंकुले हतकुले वृष्णावसे नीरसे

सालकारवचोविचारचतुरे लालित्यलीलाधरे ।

भद्रं देवि सरस्वति प्रियतम काले कलौ सांप्रतं

कं यास्यस्यभिमानरत्ननिलयं श्रीपुष्पदत्तं विना ॥

परिशिष्ट नं० ५

(यशोधरचरित के कुछ अंश ।)

तिष्ठुयणसिरिकंतहो अरसयवंतहो अरहंतो धम्महो ।

पणविधि परमेष्ठिहि पविमलदिष्टिहि चरणजुयल रायसयमहहो ॥ धुवकम् ।

कुंडिल्लगुत्तणहदिणयरासु, वल्लह्नारिंदघरमहयरासु ।

णणणहु भंदिरणियसंतु संतु, अदिमाणमेरु कइ पुफ्फयंतु ॥

चित्तइ हो वण नारोकहाण, पज्जत्तउ कय दुक्खयपहाण ।

कय धम्मणिचद्धी काधि कहंघि, कहियाई जाइ सिव सोक्खलहमि ॥

अगाइ कइराउ पुफ्फयंत सरसइणिलओ ।

देवियहं सरुओ वणणइ कइयणकुलतिलओ ॥

इय जसहरमहारायचरिण महामहल्ल णणकण्णहारणे महाकइ पुफ्फयंतविरइण महाकव्वे

जसहररायपटवंधो नाम पदमो परिच्छेओ सम्मत्तो ॥ १ ॥

नित्यं यो हि पदारविन्दयुगलं भक्त्या नमत्यर्हता-

मयं चिंतयति त्रिवर्गकुशलो जैनश्रुतानां भूशम् ।

साधुभ्यश्च चतुर्विधं चतुर्धीदीनं ददाति त्रिधा

स श्रीमानिह भूतले सच्च सुतैर्नाभिभ्यो नंदतात् ॥

१ शोभमान । २ वपल । ३ चौर्य । ४ समूह । ५ शोभयाना । ६ विद्युत् । ७ भक्त्या । ८ कवयो यथा । ९ भर्त्सनी । १० मनोहरता । ११ यह पद्य बम्बई की प्रति में नहीं है ।

नक्षत्राधीशरोक्षिप्रचयशुचिद्वरोद्दामकीर्त्या निकेतो,
निर्णीताशेषशस्त्रास्त्रिदशपतिनुताशेषविन्पादभक्तः ।
भ्राता भव्यप्रजानां सततमिह भवान्मोक्षिसंसारभीक्ष-
णीतिहो निर्जिताक्षः प्रणयधिनयतान्नदंतान्नन्ननामा ॥

× × ×
आश्रान्तदानपरितोषितयन्त्रकुदो दारिद्र्यरौद्रकरिकुंभाविभेददक्षः ।
श्रीपुण्ड्रिकविकारद्वयसामितुप्तः श्रीमान्सदा जगति नंदतु नन्ननामा ॥^१

× × ×
गंधर्वे कण्डवदण्डेण आयइं भवाइं किय यिरमणेण ।
महु दोसु ण दिज्जइ पुत्ते कइउ कइवच्छुराय तं सुत्तु लहई ॥^२

× × ×
पावनिंसुमणि मुदावंभणि, उअरुप्पणिण सामलवणिण ।
कासवगुत्ति केसवपुत्ति, जिणपयभात्ति घम्मासात्ति ॥
ययसंजुत्ते उत्तमसत्ते, धियलियसंकं अदिमारोके ।
पइसियतुं कयणा खंडं, रंजियवुइसइ कयजसइरकइ ॥
जो आयणणइ चंगउ मणणइ, लिहइ लिहावइ पढइ पढावइ ।
जो मणसावइ सो नर पावइ, विट्ठणियघणरय लासयसंपय ॥
जणघयनीरसि डुरियमलीमसि, कयनिंदायोरि दूसइ दुइयारि ।
पडियकवालय नरकं कालण, वडूरं कालण अइदुक्कालण ॥
पयरागारि सरसाधारि, सन्दइ चेलइ घरतं वोलइ ।
महु उवयारिउ पुण्णिणेरिउ, गुणभत्तिज्जउ गुणमइल्लउ ॥
होउ चिराउसु घरिसउ पाउसु, तिप्पउ मेइणि धणकणदाहि ।
विलसउ गोविणि गुणउ कामिणि, पुम्मउ महलु पसरउ मंगलु ॥
सत्ति यियंभउ दुक्ख निंसुभउ, धम्मउच्छाहि सइनरणाहि ।
सइ नंदउ पय जय परमपय, जय जय जिणवर जय भयमयहर ॥
धिमलु सुकेवलणायसमुज्जलु, मइ उण्णउ इच्छिउ दिज्जउ ।
मइ अमुणंतइ कवु छुणंतइ, जं हीणाहिउ काइवि साइउ ॥

वत्ता—तं भाइ महासइ देवि सरासइ निहयसयलसंदेह दुइ ।

महु खमहु भडारी तिहुयणसारं पुण्णयंत जिणधयणरुइ ॥ २३ ॥

इयजसइरमहारायचरिप.....चउरयो परिच्छेदो सम्मतो ॥ छ ॥ मंगलमस्तु ।
संवत् १३६० वर्षे आपाद सुदि १३ शुनौ अघेह श्रीमहाराजाधिराज श्रीसुरत्राण महामहाराज्ये
दुर्गेमहप पडिगनायागे यगडी नामनि प्राग्वाटवशीय सा० भावउसंताने सा० मल्लौ पुत्र रामा
भारु वेल्हाकेन द्वाभ्यां जलोधरपुस्तिका लेखिता । सा चिरं नंदतु ॥ छ ॥ शुभमस्तु ॥

परिशिष्ट नं० ६

(आदिपुराण की प्रति लिखानेवाले की प्रशस्ति ।)

पणविधि रिसहेसरु धिणिहयणसरु लोयालोय पयासणु ।
धरगुत्तिरमणधरु जम्ममरणहरु कम्ममहारि विणासणु ॥
मयनयणवाणससइरमिपसु संवच्छुरेसु पच्छइ गणसु ।
विक्कमरायहो सुइसेयपक्ख खवमी बुइवारे सच्चित्तरिक्ख ॥
गोवेगरीणयारि णिउ डंगरिइ, हुउ पयपाडियसामंतविउ ।

१ यह पद्य तीसरे परिच्छेद के प्रारंभ में है । २ यह पद्य बीसरे परिच्छेद के प्रारंभ का है, परन्तु बम्भई और पूने की दोनों प्रतियों में नहीं है । छपी हुई भाषावली प्रति में है । ३ यह पद्य बम्भई की प्रति में नहीं है ।

४ मद-नयन-वाण-शासधर मितेसु, अर्थात् वि० संवत् १५२१ । ५ ग्वालियर-गोपाचल । ६ हंगर सिहराजा ।

तद्यो सुउ सकिसिधवलियदियंतुं सिर्गोकिंति सिद्धु शिवलच्छिदुं ॥
 सिरिकइसंगमंडणु मुण्डिदु, गुणकिंति जईसरु जए अण्डिदु ।
 जसकिंति किंति मंडिय तिलोउ तद्यो सीसु मल्यकिंति जिअसोउ ॥
 गुणमदु भदुदु तद्यो पट्टि सूरि जे जिणवयणांमिउ रसिउ भूरि ।
 सिरि जइसवाल-कुलणइ ससंकु, सिरि उव्हासाहु सया असंकु ॥
 तद्यो जाया गयंसिरी गामधेय, तदि सुअ हंघराउ दया अमेय ।
 उव्हा चउधरियहु गारि अएण, भावसिरी गाम शियगुणपसएण ॥
 तहें पुत्त चयारि हयारिमल्ल, सिरि पउमसिहु जिहेंउ अतुल्ल ।
 लच्छीइरुमाणिकु मणिसमाणु, धेना रायालयदीवमाणु ॥

पता—सिरि हंसराय चउधरिय घरे विजसिरी भज्जा महिया ।
 तहें सुय गुणसायर सुदपउरसर परिमियमयणएरहिया ॥
 तदि लल्ला रयणु सुवुद्धिधामु, मयणुजि वीरु मंडेहिहाणु ।
 सिरि पउमसिह भज्जा सुपुज्ज, वीराणाम वरगुणसमुज्ज ॥
 तहें सुउ सोमिय गामेण धीरु, सुभा घरिणि पसहु जणि अमीर ।
 धीइ वल्लहलइहंगवग्ग, वंधो हिहाण सयदलकरग्ग ।
 अएणजि घरिणी मीया अहिकु, सिरि पउमसिह घरे लीलसिक्ख ।
 तहें चारिपुत्त रियापियराचित्त सिरि विच वाइ हाइ विचित्त ॥
 तीयउ कुलदावउ सो पयच्छु, तइ मयणउ चउयउ पसतु ।
 माणिक माणिसिणं काममहि, लखणसिरी गाम गारी मतल्लि ॥
 धेना घरिणिउ एं कामअतु, संगहिउ जाहि जिणधम्मवतु ।
 मयणामउजो यति भाइ भीय गामेण सया सोलिण सोय ॥
 लल्ला पिय मणसिरी पढम अएण, पट्टो मंगाभिकखो सुवण्ण ।
 सुअ रामवेर कुलकमलनंदु, नंदउ चिर इह एं घोयचंदु ।
 नंदो एना वे भज्जजुत्तु, चिर जीवउ वीरु कमलवत्तु ॥
 पयाइ मणि सिरि पोमसिह, जिण सासणएंदणवणससिहु ।
 विज्जुलचंचलु लच्छी सहाउ, आलोइवि हुउ जिणधम्मभाउ ॥
 जिण गंयु लिहाविउ लक्खु पक्कु, सावयलक्खाहारातिरिक्कु ।
 मुखि मोयणु भुंजाविय सहासु, चउवांस जिणालउ किउ सुमासु ॥
 धेना चउधारेय निमित्तु दवु, तणज्जिउ लाइवजं अउच्च ।
 पुरुषवजिणायदणु जि विचित्तु, ससिहरु सुपाडिहेरहुजुत्तु ॥
 एम्मविउ भववुइ जाणवत्तु, रयणत्तयजुयजुयपासजुत्तु ।
 कारिय पइहु जिणसमइ दिदु, अवलोइवि सयल सचातोहिदु ॥

पता—एंदउ सिरिहंसराउ सुहउ, एंदउ पउमसिहु ससउ ।
 एंदउ परिवारु लच्छिकलिउ, एंदउ लोउ गुणोइ जुउ ॥
 आयासस्स जिणस्स य जिह अतं कोवि लइह न गुणस्स ।
 सिरि पोमसिह तिह ते को पारइ गुणएिहाणस्स ॥ १
 सिरि पउमसिह पउमं इह लोप जइ एं होतु ता पउमा ।
 कोला कय करंती सुदाणपूया विणोपरि ॥ २ ॥

પ્રો. લ્યુમન અને આવશ્યક સૂત્ર



જર્મેનીના પ્રસિદ્ધ પ્રોફેસર લ્યુમન જૈન આગમોના ઘણા કંડા અભ્યાસી છે. લગભગ અર્ધા સૈકા જેટલા લાંબા સમયથી તેઓ જૈન સાહિત્યનું અવગાહન કરતા આવ્યા છે અને અનેક જૈન સૂત્રો-પ્રત્યોના મૂળ, નિર્યુક્તિ, માપ્ય, ટીકા, ટિપ્પણી આદિને અર્વાચીન શાસ્ત્રીય પદ્ધતિએ સંશોધિત-અનુવાદિત કરી તેમણે પ્રકાશમાં આપ્યા છે. એ યથામાં આવશ્યકસૂત્ર અને તેને લગતા સાહિત્ય ઉપર જે તેમણે અથાગ પરિશ્રમ ઉઠાવ્યો છે અને તે વિષયમાં જે નિવંધો આદિ લખ્યા છે તે તો ચરેચર તેમની જૈન સાહિત્ય વિષયક સૂક્ષ્મ-પ્રવીણતાની આશ્ચર્ય-કારક સાક્ષી આપે છે.

જર્મેનીના લૅબ્સીક શહેરમાંથી પ્રકટ થતી ઓરિએન્ટલ સોસાયટીની પ્રત્યમાળા (Abhandlungen für die Kunde des Morgenlandes) માં આવશ્યક-કથા (Die Avashyaka Erzählungen) નામે એક પ્રત્ય ઉપાવવાની તેમણે સુરુઆત કરી હતી, જેમાં આવશ્યક સૂત્રની ચૂર્ણિ અને ટીકામાં આવતી ઘણી કથાઓ મૂળ રૂપે આપી, જુદી જુદી પ્રતોમાં મઝી આવતાં તેમનાં પાઠાન્તરો તથા ઘીજા ઘીજા પ્રત્યોમાં મઝી આવતાં રૂપાન્તરોની ઘણી વિસ્તૃત રૂપરેખા આલેખવાની તેમની इच्छा હતી. પરંતુ, તે માટે જોડતાં ઘણાં સાધનો-માપ્ય, ચૂર્ણિ, ટીકા આદિની જુદી જુદી પ્રતો વિગેરે-ન મઝી શકવાથી, પચાસેક પાનાં છાપી તેમણે એ કાર્ય ધન્ય કરવું પડ્યું હતું. તે દરમ્યાન સને ૧૮૯૪ માં જિનેવા (Geneve) માં ભરાયેલી ઇન્ટર નેશનલ ઓરિએન્ટલ કોમેસમાં ઘાંચવા માટે આવશ્યકસૂત્ર સાહિત્ય ઉપર જર્મેન માપમાં એક વિસ્તૃત નિવંધ તેમણે તૈયાર કર્યો હતો જેમાં આવશ્યક સૂત્રને લગતું જેટલું સાહિત્ય મઝી આવે છે તેનું અતિસૂક્ષ્મરિતે વિવેચન કર્યું હતું. એ નિવંધ (Uebersicht über die Avashyaka-Litteratur) ના નામે તેમણે સ્વતંત્રરિતે પ્રકટ કર્યો છે; જેના હેમી સાદૃશના આજ્ઞા કાગઝ લેખક ૫૦ ઉપર પાનાં છે. એમાં પ્રથમ શ્વેતાંચર અને વિગંચર ધંને જૈન સંપ્રદાયોમાં આવશ્યકને શું સ્થાન છે તે ઘટાવ્યું છે; અને પછી આવશ્યક સૂત્રની મદ્રવાદુકૃત નિર્યુક્તિમાં આવતા ઘણા વિષયોનો ઘડુ ચૂંચી ભરેલો સાર આપ્યો છે. એ સારમાં સાથે સાથે નિર્યુક્તિમાં આવતા વિષયોને ઘીજાં ઘીજાં સૂત્રો અને માપ્યો વિગેરેમાં આવતા તેજ વિષયો સાથે, કોષ્ટકો કરી કરી ગાથાઓવાર સરલાવ્યા છે. આવશ્યકચૂર્ણિ અને હરિમદ્રકૃત ટીકામાં પરસ્પર જે જે વિશેષ છે તે સપઝા મૂળ પાઠો સાથે સમજાવ્યા છે. પછી જિનમદ્ર ક્ષમાશ્રમણકૃત વિશેષાવશ્યક માપ્યનું ઇંચાળયી વિવેચન કર્યું છે. એમાં પણ પહેલાં, વિશેષાવશ્યક એ શું છે, તેની ટીકા વિગેરે કોણે કરેલી છે, એ ઘટાવ્યું છે; અને ત્યાર બાદ નિર્યુક્તિની ગાથાઓને માપ્યના વિવરણ સાથે વિષયવાર સમજાવી છે. અને એ ઉપરાંત પછી આજ્ઞા માપ્યનો સાર આપ્યો છે. એટલું કરીને પણ એ જર્મનદેશીય ગીતાર્થને સંતોષ ન થયો તેથી એ નિવંધની એક જૂદી પૂર્તિ કરી છે, જેમાં વિશેષાવશ્યક માપ્યની શીલાંકા-ચાર્યકૃત પ્રાચીન અને દુર્લભ ટીકામાં જે જે વિશેષ વિશેષ ઉલ્લેખો છે તે ઘણા મૂળરૂપે ગાથાવાર ઉપાવી ઘીધા છે અને છેવટે એ ટીકાની સૌથી જૂની તાલપત્રની પ્રતિ જે હાલમાં પૂનાના માંડારકર

ઓરિએન્ટલ રીસર્ચ ઇન્સ્ટીટ્યુટમાં સુરક્ષિત છે, તેના અતિજીર્ણ શીર્ષકપૃષ્ઠો કેટલુંપણ પાનાના ફોટોગ્રાફ્સ આપ્યા છે.^૧

પ્રો. લ્યુમનના અથાગ પરિશ્રમ ભરેલા એ આજના નિવંધનો- અવિકલ ગુજરાતી અનુવાદ કરાવવાનો અમારો વિચાર ચાલી રહ્યો છે પણ કમનસીબે હજી અમને એ નિવંધની પૂરી નકલ મળી નથી. પૂનાના માંડારકર ઓ. રી. ઇન્સ્ટીટ્યુટમાંના સર માંડારકરના પુસ્તકસંગ્રહમાંથી ફક્ત એના કેટલાક મુક્તસીટ્સ જ અમને જોવા મળ્યા છે, જે પ્રો. લ્યુમને ડૉ. માંડારકરને, એ નિવંધ છપાતી વચ્ચે, પૂનાની પ્રતો સાથે સરલાલી જોવા માટે મોકલ્યા હોય એમ દેખાય છે. એ સંવંધમાં સુદ પ્રો. લ્યુમનસાથે જ અમારો પત્રવ્યવહાર ચાલે છે જેનો સવિસ્તર સુલાસો મળતાં માપાંતરની વ્યવસ્થા કરવામાં આવશે. તે દુર્મ્યાન, જૈન સાહિત્ય સંશોધકના વાચકોને એ અમૂલ્ય નિવંધનો કાંઈક પરિચય થાય તેટલા માટે મજકુર પ્રોફેસરે એ નિવંધમાં આવશ્યક નિર્ણયિત અને વિશેષાવશ્યક માપ્યમાં આવતા ગણધરવાદ નામે વિષયના ઉપર જે એક પ્રકરણ લખ્યું છે તેનો અનુવાદ આપીએ છીએ. એ અનુવાદ કાર્યમાં, મિ. આર. ડી. વાડેકર, ધી. એ. નામના સજ્જને જર્મન ભાષા સમજાવવા માટે જે સહાયતા અપી છે તેની આભાર સાથે અમારે અહીં જાસ નોંધ લેવી જોઈએ.

ભારત જૈન વિદ્યાલય; પૂના

વૈશાલ; સંવત્ ૧૯૭૯

}

—મુનિ જિન વિજય

—કેશવલાલ, પ્રે. મોદી.

વિશેષાવશ્યકમાપ્ય અને તેની ટીકામાં મળી આવતાં પૈદિક અને દાર્શનિક અવતરણો.

આવશ્યક નિર્ણયિતના છટ્ટા ભાગની ૧ થી ૬૪ મી સુધીની ગાથાઓમાં ગણધરવાદ નામે વિષય આવેલો છે. એમાં કેવી રીતે મહાવીરે ૧૧ બ્રાહ્મણોના તત્ત્વજ્ઞાન વિષયક સંશયો દૂર કરી, શિષ્યો સાથે તેમને પોતાના શિષ્યો થતાંવા એનું ટુંકું અને એક જ પ્રકારનું વર્ણન આપેલું છે. એ અગ્યારે બ્રાહ્મણો મહાવીરના મુદ્દથ શિષ્ય હોઈ ગણધરો કહેવાય છે. શરૂઆતમાં ૨ થી ૭ સુધી ગાથામાં સંશ્રેષ્ઠમાં ગણધરોનો ટુંક પરિચય અને સંશયાત્મક વિષયની નોંધ આપી છે અને પછી ૮ થી ૬૪ સુધી ગાથામાં તેનો જ વિસ્તાર આપેલો છે. ગાથાવાર હકીકત આ પ્રમાણે:—

૨. યજ્ઞ અને વિશાલકુશમાં ઉત્પન્ન થયેલા અગ્યારે બ્રાહ્મણ પાવાનામક સ્થાનમાં સોમિલ બ્રાહ્મણે આરંભેલા યજ્ઞપાટકમાં આવેલા હતા.

૩—૪. તેમનાં નામ—

૧ ઇન્દ્રભૂદ

૬ મણિડય

૮ અર્કપિય

૨ અતિગભૂદ

૭ મોરિયપુત્ર

૯ અચલભાય

૩ વાડભૂદ

૧૦ મેયજ્ઞ

૪ વિયત્ત

૧૧ પહાસ

૫ સુહસ્મ

૫. આ અગ્યારેમાંથી ફક્ત એક સુધર્મ (૫મા ગણધર) નીજ શિષ્ય પરંપરા આગળ ચાલી, બાકીના કોઈનો શિષ્ય સમુદાય રહ્યો નહીં.

૧ એ આજના પુસ્તકના અમે પણ ફોટોગ્રાફ્સ પઢાવ્યા છે. ચહેરો એ પ્રતિ એક દર્શનીય પ્રતિ છે અને એના એ

ફોટોગ્રાફ્સની નકલ દરેક પુસ્તક મંદારમાં મુકવામાં આવે એવી આમારી જાસ મલામળ છે.

૬ ટૂંઘા ગાથામાં 'કમ્પયી' એ અગ્યારના મનમાં જે જે વાવતનો સંશય હતો તેની નોંધ છે અને તે આ પ્રમાણે છે —

જીવિ^૧ કમ્પે^૨ તર્જીવિ^૩ મૂય^૪ તારિસય^૫ વન્ધ-મોક્ષે^૬ ય ।

દેવા^૭ નેરહ્યા^૮ વા પુણે^૯ પરલોક^{૧૦} નિર્વાણે^{૧૧} ॥ ૬ (૫૯૬)

૭. પહેલા પાંચે ગણધરોને ૫૦૦-૫૦૦ શિષ્યો હતા; ૬-૭ ને ૩૫૦-૩૫૦ અને છેલ્લા ૪ ને ૩૦૦-૩૦૦ શિષ્યો હતા.

મહાવાર દરેકને નામ ગોત્ર પૂર્વક ઘોલાવે છે અને પછી તેના મનના સંશયનું નામ લઈ, 'તું વેદના પદોનો અર્થ જાણતો નથી, તેનો અર્થ આ પ્રમાણે છે' એમ એક જ પ્રકારનો જવાબ આપે છે. ગાથાવાર ગણધરોનો ઉલ્લેખ આ પ્રમાણે —

૧૭.	પહેલો	ગણધર,	જીવ વિપયક	સંશય:
૨૫.	ચાંજો	"	કર્મ વિપયક	"
૩૧.	ત્રાંજો	"	તર્જીવ તત્ત્વોર વિ०	"
૩૫.	ચાંચો	"	પદ્મ મૂત વિ०	"
૩૯.	પાંચમો	"	સદ્ગોષ્ઠિ વિ०	"
૪૩.	છટ્ટો	"	વન્ધ મોક્ષ વિ०	"
૪૭.	સાતમો	"	દેવમૃદ્ધિ વિ०	"
૫૧.	આઠમો	"	નરકમૃદ્ધિ વિ०	"
૫૫.	નવમો	"	પુણ્ય વિપયક	"
૫૯.	દશમો	"	પરલોક વિ०	"
૬૩.	અગ્યારમો	"	નિર્વાણ વિ०	"

આ અગ્યારે ગણધરોના મનના સંશયનો મહાવારે જે સુલાસો કયો હતો તેનો ઉલ્લેખ મૂળ નિરૂપિતમાં કરવામાં આવ્યો નથી. નિન્દ્યોનો હકીકતનો પેઠે જ એ હકીકત પણ નિર્ણય વગર જ આપવામાં આવી છે. ચૂર્ણમાં ફક્ત પહેલા ગણધરના સંશયનો સુલાસો કરવાનો થોડોક પ્રયત્ન કરવામાં આવ્યો છે. પણ જિતમદ્ર આ વાવતનો ઘણો ઉત્તમ વિસ્તાર કરે છે. એ વિપય માટે તેમણે ૪૦૦ ઉપરાંત ગાથાઓ લખી છે અને તેના વિવરણમાં ઘણો વિશેષ વાતો આપી છે. હરિમદ્રસૂરિ આ વિવરણમાંથી ઘણાંક અવતરણો પોતાની ટીકામાં લે છે અને એ જ અવતરણો વિશેષાધ્યયક માધ્યમાના ગણધરવાદના ટીકાઓના આધારમૂત ધને છે. વઢાં હરિમદ્રની ટીકા ઉપરથી કિશ્કિદ્ગણધરવાદ નામનો પણ એક પ્રન્ય લખાયો છે, જેમાં કેટલોક વધારે વિસ્તાર કરવામાં આવેલો હોઈ વેદનાં ઘણાં સ્વરાં અવતરણો ઉપરાંત છટ્ટી અને તે પછી આવતી ગાથામાંની હકીકતનું પણ નિરૂપણ કરેલું છે. આની શ્લોક સંખ્યા લગભગ ૨૫૦ જેટલી છે અને પૂનાના પ્રસ્તકમંદારમાં નં० ૧૬; ૨૧૧ વાઢી પ્રતના ૨૦ થી ૨૩ મા સુધીના પાનાઓમાં એ લખેલો છે. દશવૈકાલિકની લઘુવૃત્તિમાં પણ સંક્ષેપથી આ વિપય ચર્ચેલો છે.

આ વિપયને લગતા જે કેટલાંક વૈદિક અને દાર્શનિક અવતરણો જિતમદ્ર આપે છે અને તેમનો જે અર્થ જૈન મતાનુસાર કરે છે તે જાણવાં જેવાં છે. આમાંનાં ઘણાં સ્વરાં અવતરણો તો તેમણે ફક્ત

પોતાની ટીકામાં જ આપેલાં છે; પણ તે સ્વોપક્ષ ટીકા ઉપલબ્ધ નથી. તેથી હરિમંત્ર, શીલાંક અને હેમચન્દ્ર-કે જેમણે એ સ્વોપક્ષ ટીકાનો પોતાની ટીકાઓમાં ઉપયોગ કર્યો છે-તેમણે એ અવતરણો લીધેલાં હોવાથી આપણે એ ટીકાઓમાંથી જ તે લેવાનાં છે. માખ્યના મૂળમાં જ જે અવતરણો આપેલાં છે તે સ્વાસ્થ્ય અશ્વરોમાં આપવામાં આવ્યાં છે. વાકીનાં કયા ટીકાકારે કયાં અવતરણો લીધાં છે તે જુદી જુદી રીતે થતાવવામાં આવ્યાં છે. એ અવતરણો કયા પ્રત્યોમાંથી લેવામાં આવેલાં છે તેનો કોઈ ઉલ્લેખ ટીકાકારો કરતા નથી. તેથી જેકયના ઉપનિષદ્વાન્યકોપ અને વીનાં તેવાં વેદસંબંધી પુસ્તકો ઉપરથી ઘણાંકનાં સ્થળે, ચોક્કી કાઢવાનો પ્રયત્ન કર્યો છે. એ તો ચોક્કસ છે કે જે અવતરણો જિનમંત્રે લીધાં છે તે ઘણાં પ્રમાણમૂલ્ય છે અને તેમના વચ્ચેના પ્રાક્ષણો વાદવિવાદમાં એ વાક્યોની ધ્રુવ ચર્ચા કરતા હોવા જોઈએ. પ્રાક્ષણોનાં દર્શનશાસ્ત્રોમાં પરસ્પર વિરુદ્ધ વિચાર દર્શાવનારાં એ વાક્યો ઉપરથી દરેક ગણધરનો સંશય ઊભો કરવામાં આવ્યો છે. પ્રસિદ્ધ ઉપનિષદોના મૂળ પાઠો સાથે સરસાવતાં એ વાક્યોમાં જે કેટલીક ભૂલો નજરે પડે છે તેનું કારણ બિનકાઢજીવેલક એઓનો ઉપયોગ કરવામાં આવેલો હોવું જોઈએ.

૨૨, ૫ (૧૫૫૧).

❧ (યથાદુર્તાસ્તિકાં :) *

૧૧

પતાવાતેવ પુરુષોડ્યં યાવાનિન્દ્રિયગોચરઃ ।

મંત્રે, ધૃક્પદં પશ્ય ચદ્ વદન્તિ વદુશ્ચુતાઃ^૬ ॥ *

I પિત્ર સ્વાદ ચ દાદુ શોભને યત્તીતં યગ્માત્રિ ઇત્ત સે ।

ન દિ મીઠ ગતં નિવર્તતે, સમુદયમાત્રમિદં કહેયમ્ ॥ *

(મટ્ટોડ્યાહ)

× આ અંક તે પ્રો. હ્યુનેને પોતાના મૂળ નિબંધમાં વિશેષાવધકમાખ્યના જે ૫ વિભાગો શબ્દ છે તેના સૂચક છે. એમાં પહેલો અંક પ્રકરણને અને બીજો- ગાથાનંદરને સૂચવે છે. આ પછી જે કૌંસમાં આંકડા આપેલ છે તે કામીની યશોવિજય જૈનમન્યમાઢામાં પ્રકટ થયેલ યટીક વિશેષાવધકમાખ્યમાંની ચાલુ ગાથાસંખ્યા સૂચવે છે. મુદ્રિત પ્રંથમાં ૧૫૪૮ મી ગાથા ય્યાં પૂરી થાય છે ત્યાં ઉક્ત પ્રો. ના ઘર્ગીકરણ પ્રમાણે પ્રથમ વિભાગ પૂરો થાય છે અને ૧૫૪૯ મી ગાથાથી બીજો વિભાગ શરૂ થાય છે તે ૨૦૨૪ મી ગાથા પૂરો થાય છે. એ વિભાગમાં ગણધરવાદ નામનો વિષય આવે છે અને તેની કુલ ૪૦૬ ગાથા છે.

❧-() આવા ગોઠ કૌંસમાં આપેલા પાઠો આવશ્યકસૂત્રની હારિમંત્રી ટીકામાં આપવામાં આવેલા નથી; તેમ જ [] આવા ચોક્ષણ કૌંસમાં આપેલા પાઠો વિશેષાવધક માખ્યની શીલાંકાવાચકૃત ટીકામાં આપેલા નથી; એમ સમજવું.

† આ અંકો આવશ્યકની હારિમંત્રી ટીકામાં દરેક ગણધરના માટે જે શંકા-સમાધાનાત્મક અવતરણો આપવામાં આવેલાં છે તેનો ક્રમનિર્દેશ સૂચવે છે. એમાંનો મોટો અક્ષર એ ગણધરની સંખ્યા બતાવે છે અને તેની આગળ જે નાનો અક્ષર છે તે અવતરણની સંખ્યા જણાવે છે.

I આ ચિન્હવાળાં અવતરણો કદા આવશ્યક ધર્મમાં જ મળી આવે છે.

* આ વખે શ્લોકો હરિમંદકૃત પદ્ધત્સમસુચચત્રના છેવટના શ્લોકાયત પ્રકરણમાં, શ્લોક ૮૧-૮૨, છે (મુદ્રિત પૃ. ૩૦૧, ૩૦૪, કલકતા) ત્યાં બીજા શ્લોકનો પ્રથમ પાદ ' પિત્ર સ્વાદ ચ ચારુલોચને ' આ પ્રમાણે છે.

૨. શીલાંકાચાર્યની ટીકામાં ' યથાદુઃ ' પાઠ છે. ૩. શ્રી. ટી. ' એકે. ' ૪. ચૂર્ણમાં ' એકે આદુઃ ' પાઠો જ પાઠ છે.

૫. વિશેષાવધકની હેમચંદ્રકૃત ટીકાની કેટલીક પ્રતોમાં આના ઠેકાણે ' લોકોડ્યં ' પાઠ છે. ૬. ચૂ. શી. હ. હે.

ની કેટલીક પ્રતોમાં ' વદન્ત્યવદુશ્ચુતાઃ ' પણ પાઠ છે.

૧૧૧૧૦૧

વિજ્ઞાનઘન પદ્ધતિભ્યો ભૂતેભ્યઃ સમુત્થાય તાન્યેવાનુવિનશ્યતિ, ન પ્રેત્ય સઙ્ગાસ્તિ ।

— યદ્દારણ્યકોપનિપદ ૨, ૪, ૧૨.—આગળ ગાયા ૩૧ અને ૧૩૭, ની ટીકામાં, (મુદિત પૃષ્ઠ ૬૮૦ તથા ૭૨૦ માં) પણ આ અવતરણ આવે છે. તથા માખ્ખના મૂઝમાં, ગાયા ૪૦૨, ૪૧૪, ૪૨૧ (મુ. પૃ. ૬૮૧) માં આ અવતરણ અનુવાદિત છે.

૧૪ (સુગતસ્ત્વાહ) *

ન રૂપં ભિક્ષવઃ પુત્રહ્ણ ઇતિ [આદિ] ણ

અન્યે સ્વાહુઃ

I વાસાદિ જીર્ણાનિ યયા વિહાય નવાનિ યદ્દાતિ નરોડપરાણિ ।

તથા શરીરાણ્યપપરાણિ જહાતિ યદ્દાતિ ચ પાપં જીવઃ ॥^૬

[(તથા ચ વેદઃ)]

૧૬ ન હ વૈ સશરીરસ્ય મિયામિયયોરપહતિરસ્તિ, અશરીરં વાચ સન્તં મિયામિયે ન સ્પૃશતઃ ।

—છાન્દોગ્યોપનિપદ ૮, ૧૨, ૧.—આગળ (ગાયા) ૪૩, ૧૦૩, ૨૫૬, ૩૧૩ ની ટીકામાં (મુદિત પૃષ્ઠ ૬૮૨, ૭૦૬, ૭૫૧, ૭૭૭ માં) પણ આ અવતરણ ઉદ્દત છે. તથા માખ્ખ-મૂઝ ગાયા ૩૧૩૧ = ૪૬૭૧ (મુ. પૃ. ૭૭૭, ૮૩૧) માં આ અવતરણ અનુવાદિત છે.

([તથા] અગ્નિદોષં જુહુયાન્ સ્વર્ગકામઃ)

મૈથુપનિપદ ૬, ૩૬.—આગળ ગાયા ૪૩, ૧૫, ૨૫૨, ૩૩૪. (મુ. પૃ. ૬૮૨, ૭૦૨, ૭૫૮, ૭૮૪) ની ટીકામાં પુનઃ ઉદ્દત. મૂઝ ગાયા ૧૨૨ = ૧૩૬૨ = ૩૧૧૨ = ૪૨૨૨; (મુ. પૃ. ૭૦૦, ૭૨૦, ૮૦૭, ૮૧૪) માં અનુવાદિત. ગાયા ૩૩૪. (મુ. પૃ. ૭૮૪) માં સૂચિત । સરલાવો-દરિમદ્રની આવદયકદ્વાતિમાં કૈત્યવન્દનકૃતિ આવ૦ ૫, ૧૧; તથા રાત્રવર્તાવસુચય ૬૦૫, વચ્ચે ૫ છેલ્લા પ્રખ્યા ૧૫૭ માં જ્યોત્કમાં આના જેવું જ એક અવતરણ છે જે તૈત્તિરીયસંહિતાના ૨ જાની આદિમાં છે.

([કપિલાગમે તુ પ્રતિપાદ્યતે]

૧૫ અસ્તિ પુરુષઃ) અકતો નિર્ગુણો મોક્ષા^૧ (ચિદ્રૂપઃ)

૭. આના ઢેકાણે ૬૦ માં ' તથા ' પાઠ છે. ૮. મગવદ્ગીતા ૨, ૨૨ (મહાભારત ૬, ૧૦૦) માં ઉત્તરાર્દ્ધ આ પ્રમાણે છે:—

તથા શરીરાણિ વિહાય જીર્ણાન્યન્યાનિ સંયાતિ નવાનિ દેહી ॥

— જૂર્ણિમાં એક ચીજું વધારે નીચે પ્રમાણેનું અવતરણ છે:—

કાંયા અન્નો મુત્તો નિચ્ચો કચ્ચા તદેવ મોત્તા ય ।

તણુમેત્તો મુણવન્તો ડહ્હ-ગઈ ઘણિગ્ગો જીયો ॥

સરલાવો-દશવૈકાલિક નિર્લુપ્તિ ગાયા ૨૨૭ અને તે પછીની. (મુ. પૃ. ૧૨૧)

૧ સૂત્રકર્તા ૧, ૧, ૧-૧૪ ની ટીકામાં શર્લાકાચાર્યે ' તથા ચોક્ષ ' કરીને આ અવતરણ નીચે પ્રમાણે આપે છે:—

૧૭

[નીલધિશાનં મે ઉત્પન્નમાર્ષાત્] સરસ્વતી—સર્વદર્શનસંગ્રહ પૃ.

૧૧,૭-૧૦

૨,૨૨ (૧૫૬૦).

(એક એવ હિ ભૂતાત્મા ભૂતે ભૂતે પ્રતિષ્ઠિતઃ)

એકધા યદુધા ચૈવ દદ્યતે જલચન્દ્રવત્ ॥^{૧૧}

—મદ્ગાથિન્દુ-ઉપનિષદ ૧૨. યશસ્તિલક ચમ્પૂ, આશ્વાસ ૬, કલ્પ ૧. (પૃ.૨૭૩ નિર્ણયસાગર)

યથાવિશુદ્ધમાર્ષાં તિમિરોપપ્લુતો જનઃ ।

સદ્ધર્માર્ણમિવ માત્રાભિર્મિત્રાભિરભિમન્યતે ॥

તથેદમમલં ઘણ નિર્વિકલ્પમવિચયા ।

ફલુપત્વમિવાપન્નં મેદરૂપં પ્રકાશતે ॥

“ઊર્ધ્વમૂલમધઃશાસ્ત્રમધ્યતઃ પ્રાદુરલ્લયયસ્ ।

છન્દાંસિ યસ્ય પર્ણાનિ યસ્તં વેદ સં વેદવિત્ ॥”

—મગવદ્ગીતા ૧૫-૧; (મહાભારત ૬-૧૨૮૩.)

૨૧૧

પુરુષ એવેદં મિં † સર્વં યદ્ ભૂતં યચ્ચ માત્ત્યં ।^{૧૧}

ઉતામૃતત્ત્વસ્યેશાનો યદન્નેનાતિરોહતિ ॥

—નાજલનેયી ઘંહિતા ૨૧, ૨; શ્વેતાશ્વતરોપનિષદ ૧-૧૫.

અકર્તા નિર્ગુણો ભોક્તા આત્મા સાંખ્યનિદર્શને ।

સ્વાદ્વાદમજ્જી, શ્લોક ૧૫ માં મહિષેન શાલો શ્લોક આ પ્રમાણે આપે છે:—

અમૂર્તશ્ચેતનો ભોની નિત્યઃ સર્વગતોઽક્રિયઃ ।

અકર્તા નિર્ગુણઃ સૂક્ષ્મ આત્મા કાપિલદર્શને ॥ (બનારસ, યશોવિજય જૈન ગ્રન્થમાલા, પૃ. ૧૧૩

પદ્ધર્શનસમુચયની ટીકામાં ગુણરત્ન પળ આ શ્લોક ઉદ્ધત કરે છે. (જુઓ કલકત્તા આગતિ, પૃ. ૧૦૫)

ઘડી સરલાઓ—પદ્ધર્શનસમુચય, મૂલ શ્લોક ૪૧.

૧૦ મદ્ગાથિન્દુપનિષદ (આનન્દાશ્રમ મુદ્રિત, પૃ. ૩૩૮) માં યાંજો પાદ ‘ભૂતે ભૂતે વ્યવસ્થિતઃ’ આ પ્રમાણે છે, અને યશસ્તિલક ચમ્પૂ (નિર્ણયસાગર-મુદ્રિત, પૃ. ૨૭૩-ઉત્તર ભાગ) માં યાંજો અને યાંજો પાદનો પાઠ—‘દેહે દેહે વ્યવસ્થિતઃ । એકધાનેકધા ચાપિ—’ આ પ્રમાણે છે. ઘડી, શાંભાલકાર્યની આચારાંગમૂત્ર ટીકા (આગમોદય યામિતિ મુદ્રિત, પૃ. ૧૮) અને સુવ્રક્ષાંગ મૂત્ર ટીકા (આ. સ. મુ. પૃ. ૧૧) માં પણ આ શ્લોક ઉદ્ધત છે.

૧૧. ઉપનિષદમાં ‘અર્થ’ પાઠ ઉપલબ્ધ થાય છે.

† પ્રો. લ્યુમન આ શબ્દ ઉપર એક નોંધે પ્રમાણેની યાસ નોંધ કરે છે: “કેટલાક પ્રસિદ્ધ ઉપનિષદોમાંથી જૈન ઇદ્વાનોએ લીધેલાં આ અવતરણો સૈકાઓ મુખીં બહુ ધ્યાન લેવાયા. વગર જ લખાતાં આવતાં હતાં અને તે-થી જૈનોએ કરેલાં તેમની નોંધમાં સ્વભાવિકરોજે જ કેટલીક ભૂલો થઈ છે. ઉદાહરણ તરીકે—૨૧ માંતે મિં તથા ૭૨ નું અવતરણ.”—આમાંના પ્રથમ મિં શબ્દ ઉપરની નોટમાં તે લખે છે કે—“વર્તમાનમાં વૈદિક વાચ્યના હસ્તલિખિત ગ્રન્થોમાં અનુસ્વાર માટે જે ચિન્હ વપરાય છે, તે ૮ માં સૈકા અગર તેની પહેલાં મિં અક્ષર જેનું દેશાનું હશે અને તેથી વૈદિક ચિન્હથી અજાણ એવા જૈન ગ્રન્થકારોએ તેને એક યાસ શબ્દ માની લીધેલો લાગે છે. અને તેથી તેમણે ‘પુરુષ એવેદં સર્વ’ પ એસલ શાબ્દમાં મિં શબ્દ વધારી ‘દ્’ ના ‘દ’-ઉપર યાંજો અનુસ્વાર વઢાવી દીધો હોય એમ જણાય છે.”—પ્રો. લ્યુમનની આ નોંધ અમને જરા વિચારણીય લાગે છે. લિપિભેદના જ્ઞાનના અભાવે એવી ભૂલો થઈ જો કે ઘણી સંભવિત માત્ર જ નથી પણ મુશ્કાત છે. દાખલા તરીકે જૈન લિપિમાં ‘મ’ અક્ષરને

૨૨ .

યદેજાતિ યન્નૈજાતિ યદ્દૂરે યદ્વાન્તિકે ।

યદન્તરસ્ય સર્વસ્ય યદુ સર્વસ્યાસ્ય યાહ્યતઃ ॥^{૧૨}

—વાજસનેયી સંહિતા ૪૦, ૫.

૨,૫૦ (૧૫૧૮). ૧^૬

[તથા] શ્રુતૌ [અપિ] ઉક્તં—

અસ્તમિતે આદિત્યે યાજ્ઞવલ્ક્ય ચન્દ્રમસ્યસ્તમિતે શાન્તેઽગ્રૌ શાન્તાયાં
વાચિ કિંજ્યોતિરેવાયં પુરુષઃ ? 'આત્મજ્યોતિઃ સમ્રાઙિ'તિ હોવાચ ।—યુ. શા. ઉપ. ૪, ૩, ૬; આર્માના કેટલોક વાક્યો એ જ ઉપનિષદ્વા
૪, ૩, ૨ માં પણ આવે છે. માધ્વની મૂળ ગાથા ૨, ૫૦ માં પણ આ અવતરણ
અનુવાદિત છે.

૨,૧૫ (૧૬૪૩).

(સ સર્વવિદ્ યસ્યૈવા મહિમા ભુવિ દિવ્યે ।

બ્રહ્મપુરે હોષ વ્યોમ્ન્યાત્મા સુપ્રતિષ્ઠિતઃ ॥^૧

—સુષ્ક્રોપનિષદ્, ૨, ૨, ૧. પૂર્વાધ.

તમશ્ચરં વેદયતેઽય યસ્તુ સ સર્વજ્ઞઃ સર્વવિત્ સર્વમેવાવિવેશ ॥^{૧૪}

—પ્રભોપનિષદ્, ૪, ૧૧. ઉત્તરાર્ધ.

પ્રકયા પૂર્ણાહુત્યા સર્વાન્ કામાનવાપ્રોતિ ।^{૧૫}

—સરસ્વાતી, તૈં પ્રાં ૩, ૮, ૧૦, ૫.

બદલે ઘણા ભાગે જૂના લલિઆઓ ' પ્ર ' શાવા રૂપમાં લલતા. એ રૂપને ચરાચર ન સમજવાથી પ્રો. વેબરે ચર્લિસ લાઈ-
મેરીના મ્યેટ્રિક્સિન્ડ્સ કેટલોગમાં ' સમુગ્રય ' જેવી શબ્દોની રોમન જોડણી: ' Samugrya ' આવી છોડી કરી ઘણો
ઘોટાલો ઉભો કર્યો છે. એવી જ રીતે ધીંજા વિદ્વાનોના હાથે પણ ભ્રમ યદ્ વાકે તે સ્પષ્ટ છે. પણ અમને
અહિં ધીંજી રીતે એ નોંધ વિચારણીય લાગે છે; અને તે એ છે કે આવદ્યકસૂત્રીકા કર્તા હરિભદ્રસૂરિને
વૈદિક સાહિત્ય કે તેના સંકેતથી અપરિચિત સાની શકાય તેમ નથી. કારણ કે તે પોતે જૈન દીક્ષા લીધા પહેલાં જાતિ
બ્રાહ્મણ અને વિદ્યાએ સર્વશાસ્ત્ર નિખ્યાત હતા, એ સુવિશ્રુત છે. અને જો તે વાત ગણુએ મૂકીએ તો પણ તેમણે જુદા જુદા
દર્શનો અને મતોના વિષયમાં જે અનેકાનેક અપૂર્વ અને ગદ્દન ગ્રન્થો રચ્યા છે; તેમ જ સાંખ્ય, વૈદાંત, ન્યાય, મીમાંસા આદિ
વૈદિક સંપ્રદાયોની જે હવે સૂક્ષ્મ રીતે આલોચના-પ્રત્યાલોચના કરી છે તે જોતાં સ્પષ્ટ જણાય છે કે તેઓ વેદ, બ્રાહ્મણ,
સુત્ર, સ્મૃતિ અને ઉપનિષદોના ઘણા કંઠા અભ્યાસી અને જ્ઞાતા હતા. તેથી તેમના જેવા વિદ્વાન્ શાવા આચાર્ય-પ્રસિદ્ધ અનુ-
સ્વારના ચિન્હને ન સમજી શકે અને તેને કાંઈ થીંજું જ કર્યા લે, એ માનવું ચિત્તુલ અશક્ય છે. હરિભદ્રસૂરિ
આ શબ્દને ' પ્રિ ' કહે છે અને એને વાક્યાલંકાર રૂપે ઉક્ત વાક્યમાં ચપરાણે લખે છે. —(મિમિતિ વાક્યા-
લંકારે —આવદ્યકસૂત્ર, આ. સ. પૂ. ૨૪૪) વર્તમાન ઉપનિષદોમાં પણ પાઠ—મેદ અને પાઠ—કેર વ્યાં બોધ
થાતા છે જેથી આપણે જૈન વિદ્વાનોના આધા પાઠાન્તરોને એકદમ અનોત્પન્ન કહી શકીએ.

૧૨. ફેશાવાસ્યોપનિષદ્માં પણ આ ક્ષુતિ આવેલી છે અને થયાં 'યદ્' ના ઠેકાણે સર્વત 'તદ્' પાઠ મળે છે.

૧૩. ઉપલબ્ધ ઉપનિષદ્માં વર્તમાન પાઠ આ પ્રમાણે છે:—

યઃ સર્વતઃ સર્વવિદ્યસ્યૈવ મહિમા ભુવિ । દિવ્યે બ્રહ્મપુરે હોષ વ્યોમ્ન્યાત્મા પ્રતિષ્ઠિતઃ ॥

૧૪. વર્તમાન પાઠ આ પ્રમાણે—

તદ્ધરં વેદયતે યસ્તુ સોમ્ય સ સર્વજ્ઞઃ સર્વમેવાવિવેશેતિ ।

—હરિભદ્રસૂરિએ શાસ્ત્રવાર્તાસમુચ્ચય, ૬૨૪, માં પણ આ અવતરણો સુચવેલ છે (મુદ્રિત પૃ. ૩૮૫).

૧૫. હરિભદ્રસૂરિએ પોતાની લલિતવિસ્તાર નામે ચૈત્યવન્દનશ્લોક ૫-૧૧ (મુદ્રિત પૃ. ૧૧૧) માં પણ આ
અવતરણ ઉદ્ધરેલ છે. —તૈત્તિરીય બ્રાહ્મણ ૩, ૮, ૧૦, ૫, માં આને મઝઠી હકીકતનો આ પ્રમાણે હજેલ આવેલો છે:—

एष वः प्रथमो यज्ञो योऽमिष्टोमः, योऽनेनानिष्ट्वाऽन्येन यजते, स
गर्तमभ्यपतत् ।

—साङ्ख्यमहाब्राह्मण १६, १, २.

द्वादश भासाः संवत्सरो—^{१६}

—તૈ. સં. ૫, ૨, ૫. ૫.

અમિષ્ટોમો—

અમિર્દિમસ્ય મેપજં—^{૧૭}

—વા. ઇ. સં. ૨૩, ૧૦=તૈ. સં. ૭, ૪, ૧૮, ૨.

૨, ૧૦૧ (૧૬૪૧). ૩*

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येप

ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।

ज्योतिर्मयो हि शुद्धो

ये पश्यन्ति धीरा यतयः संयतात्मानः ॥ ^{૧૮}

—મુન્ડ. ઇ. ૩, ૧, ૫. હેમચન્દ્ર વળી ૨, ૧૩૭ મી ગાયત્રી ટીકામાં પણ આ
અવતરણ ટાંકે છે.

૨, ૧૨૧ (૧૬૪૪).

(एक विज्ञानसन्ततयः सत्त्वाः ।

[यत् सत् तत् सर्वं क्षणिकम्]) ^{૧૯}

([क्षણિકાઃ સર્વસંસ્કારાઃ]) ^{૨૦}—આ વાક્ય અભયદેવસૂરિય ભગ-

વતી સૂત્રની ટીકા ૩૦, ૧ માં તથા મહાયગિરિય નન્દિસુત્રની ટીકામાં પણ
ટાંકેલું છે. વળી જુઓ વહ્નરાનંદસુચ્ચયની ઘણાતનકૃત ટીકા ૧.

૨, ૧૪૧ (૧૬૮૧). ૪*

स्वप्नोपमं वै सकलमित्येष ब्रह्मविधिरज्જસા વિज्ञેયઃ ।

૪*

આવા પ્રૃથિવી ।

૪*

પૃથિવી દેવતા [આપો દેવતા]—શીલાંકાચાર્ય આ અવતરણ આ

પછીની ગાયત્રી આપે છે.

૨, ૨૨૪ (૧૭૭૨). ૫*

પુરુષો વૈ પુરુષત્વમશ્રુતે, પશવઃ પશુત્વસ્ । —હેમચન્દ્ર આ અવતરણ

મેં દીક્ષામતિરેચયતિ । સપ્તાહં પ્રચરન્તિ । છત્ર વેદીયિષ્યાઃ પ્રાણાઃ । પ્રાણા દક્ષિા । પ્રાણેરેવ પ્રાણો દીક્ષામવગ્ધ્યે ।
પૂર્ણોદ્ધુતિસુત્તમાં જુઓતિ । સર્વ વૈ પૂર્ણોદ્ધુતિઃ । સર્વેનેવામોતિ । અયો હ્યં વૈ પૂર્ણોદ્ધુતિઃ । અસ્યામેવ પ્રતિતિષ્ઠતિ ।

૧૬. આહું વાક્ય આ પ્રમાણે છે:—' દ્વાદશ ભાસાઃ સંવત્સરઃ સંવત્સરેણેવાસ્યા અન્નં પચતિ યદમિચિત્ । '

૧૭. પૂર્વ અવતરણ આ પ્રમાણે—' સૂર્યે દેવતાકી ચરતિ ચન્દ્રમા જાયતે પુનઃ । અમિર્દિમસ્ય મેપજં ભૂમિરાવપનં મહત્ ॥

૧૮. ઉપનિષદમાં ઉપલબ્ધ વાદ આ પ્રમાણે છે—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येप आत्मा सन्त्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।

અન્તઃ શરીરે જ્યોતિર્મયો હિ શુદ્ધો યં પદ્યન્તિ યતયઃ ક્ષીણદોષાઃ ॥

૧૯. પ્રૃથ્વ્ય—ચન્દ્રપ્રમસૂરિકૃત પ્રમેયરત્નકોષ ૮, પૃ. ૩૦ । —મહાપાન્ડિત રત્નકીર્તિકૃત ક્ષણમહ્યાસિદ્ધિપ્રકરણ
(વિઝિલોધિકા કુણ્ડિકા) પૃ. ૫૪, માં આ વાક્ય 'યદ સત્ તત્ ક્ષણિકમ્' આ પ્રમાણે છે. વળી, જુઓ રત્નપ્રમહુત
રત્નાકરાવતારિકા પરિચ્છેદ ૫. (યશોવિજય જૈનપ્રમ્યમાલા સુદ્રિત, પૃ. ૭૬)

૨૦. આ આલો શ્લોક આ પ્રમાણે છે—

ક્ષણિકાઃ સર્વે સંસ્કારા અસ્થિતાનાં કૃતઃ ક્રિયાઃ । મૂર્તિયપાં ક્રિયા સૈવ કારકં સૈવ ચોચ્યતે ॥

५२ २, २५२—चाख गाथा १८००—मां पण आये छे.
शृगालो वै एष जायते यः सपुत्रीपो दहते ।

आ अवतरण बळी आगळ २, २५२—चाख गाथा १८००—
नी टीकामां कावे छे; तथा मूळ भाष्य २, २५२ मां पण सूचित छे.
२, २५२ (१८००). [(अग्निष्टोमेन यमराज्यमभिजयति ।)]

२, २५६ (१८०४). ६१ —मैथुपनि० ६, ३६.
स एष विगुणो विभुर्न दह्यते संसरति वा,
न मुच्यते मोचयति वा । —सरस्वातो धार्व्यकारिका ६२.
न वा एष बाह्यमभ्यन्तरं वा वेद ।

—सरस्वातो, घृहदारण्यकोपनिषद् ४, ३, २१.
२, ३१८ (१८६६). ७१ स एष यज्ञायुधी यजमानोऽञ्जसा स्वर्गलोकं गच्छति ।
—शतपथ ब्राह्मण १२, ५, २, ८. बळी शीलाकाचार्य आगळ २, ४०३—
चाख गाथा १९५१—नी टीकामां पण आ अवतरण ले छे.

७२ अपात्र सोमाम्, अमृता अभूम,
अगस्त्यं ज्योतिः, अविदाम देवान् ।
किं नूतमस्मान् वृणवदरातिः,
किमु धूर्तिरमृतं मर्त्यस्य ॥

अग्वेद संहिता ८, ४८, ३; तथा अयर्थशिरा उपनि० ३, २१
७३ [को जानाति मायोपमान् गीर्वाणान् इन्द्र-यम-वरुण-कुबेरा-
दीन् ?]—बळी २, ३३४—चाख गाथा १८८२—नी टीकामां पण आ
अवतरण छे.

२, ३३५ (१८८३). (उष्य-पोडादी-प्रभृति-क्रतुभिः यथाश्रुति यम-सोम-सूर्य-सुर-
गुरुस्वाराज्यानि जयति ।
—सरस्वातो, मैथुपनिषद्, ६, ३६. कहीं मूळ भाष्यमां न आ अवतरण
अनुवादित छे. २२

[(इन्द्र आगच्छ मेधातिथे मेघवृषण)]
—तैत्तिरीय आरण्यक १, १२, ३; शतपथ ब्राह्मण ३, ३, ४, १८. (आखं वाक्य
आ प्रमाणे—'इन्द्रो गच्छ हरिव आगच्छ मेधातिथेः । मेघ वृषणस्य मेने ।')
२, ३३९ (१८८७). ८१ [नारको वै एष जायते यः शूद्रान्नमश्नाति ।

२१. उपनिषदां वर्तमान पाठ नीचे प्रमाणे छे—

अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।

किमस्मान् वृणवदरातिः किं धूर्तिरमृतं मर्त्यस्य च ॥ (-- आनन्दाश्रममुद्रित, पृ० १०)

२२. उपनिषदां आ नावतने नीचे प्रमाणे उद्धृत कळे छे—'अग्निहोत्रं जुहुयादवर्गकामो यमराज्यमग्निष्टोमेनाभि-
जयति सोमराज्यमुक्थेन. सूर्यराज्यं षोडशिनः, स्वाराज्यमहिरीत्रेण, प्राजापत्यमाष्टरुक्तं वरुणान्तक्रतुनेति ।' आनन्दाश्रम
मुद्रित, पृ० ४५७.

૮૨ *

૨, ૩૬૦ (૧૧૦૮).

ન હૃદયે પ્રેત્ય નરક નારકાઃ સન્તિ ॥]

(કેતાસિતાનિ નયનાનિ મૃગાઙ્ગનાનાં
કો વા કરોતિ વિવિધાઙ્ગરુદ્ધાન્ મયૂરાન્ ।

ફશોત્પલેષુ દલસન્નિધયં કરોતિ

કો વા દધાતિ વિનયં ફુલજેષુ પુંસુ ॥) ૨૩

સરસાવો, અશ્વપોષકૃત વુદ્ધ ચરિત, કાવેલસંગાદિત પૃ. ૭૭.

૨૩

પુણ્યઃ પુણ્યેન [(કર્મણા) પાપઃ પાપેન કર્મણા]

—મૃદ ૦ આં ૩૧૦૪, ૪, ૫. હેમચન્દ્રસૂત્રિ આ અવતરણ ૨, ૧૫—વાષ

ગાથા ૧૧૪૨—ની ટીકામાં લે છે.

૨, ૪૦૩ (૧૧૫૧). ૧૨૧૦૨

સ વૈ અયન્તાત્મા જ્ઞાનમયઃ ।—મૃદ ૦ આં ૩૦ ૪, ૪, ૫.

૨, ૪૨૬ (૧૧૭૪) ૧૧૧

જરામયં વા ઇત્તસવં યદ્દામિદોષમ્ ।

તૈ ૦ આં ૧૦, ૬૪. મહા. ના. અપ ૦ ૨૫. ૬૪. હેમચન્દ્ર ગાથા ૨, ૪૭૫—વાલૂ ગાં

૨૦૨૨—ની ટીકામાં પણ આ અવતરણ લે છે.

૧૧૨

દ્વે બ્રહ્મણી [વેદિતઞ્ચે] પરમપરં ચ [ત્રિત્ર પરં સત્યમ્; જ્ઞાનપતન્તરં
બ્રહ્મ] —સરસાવો, મૈત્ર્યુપનિવદ્ ૬, ૨૨૨. બ્રહ્મવિન્દુપનિવદ્ ૧૭.

(સૈવા મુદ્ધા દુસ્વગાદા)

૨, ૪૨૭ (૧૧૭૫).

(યથાહુઃ [સૌમતવિશેષાઃ કેચિત્ તદ્ યથા]

દીપો યથા નિર્વૃત્તિરશ્યુપેતો નૈત્રાવર્તિ ગચ્છતિ નાન્તરિક્ષત્ ।

૨૩. હેમચન્દ્રસૂત્રિ, ગાથા ૧૬૪૩ ની ટીકામાં, આ પદ્યમત્ત માત્રે જગાવનારા નીચે પ્રમાણેના ત્રણ શ્લોકો આપે છે—

સર્વદેહુનિરાસં માવાનાં જન્મ વર્ણયે । સ્વમાવાદિમસ્તે હિ નાહુઃ સ્વમાપ કારણમ્ ॥

રાજીવકણ્ઠકાદીનાં વૈવિધ્યં કઃ કરોતિ હિ । મયૂરચન્દ્રિકાદિર્ષો વિચિત્રઃ કેન નિર્મિતઃ ॥

કાદાચિત્કં યદ્દનાસ્તિ નિરોધે તદ્દેહુકમ્ । યથા કણ્ઠકૃતેદમ્યાદિ તથા ચૈતે સુહાદયઃ ॥

—સૂત્રકૃતાદ્વાસૂત્રની ટીકામાં શીલાંકાચાર્ય (શુદિત પૃ. ૨૧ આ. સ.) આવી જ મતલબાઓ એક અન્ધ
શ્લોક આપે છે—

કણ્ઠકસ્ય ચ લીઙ્ગત્વં, મયૂરસ્ય વિચિત્રતા । વર્ણાય તામ્રજ્ઞાનાં, સ્વમાવેન મયાન્તે હિ ॥

૨૪. આચારાદ્વાસૂત્રની ટીકામાં શીલાંકાચાર્ય (આ. સ. મુ. પૃ. ૧૭) આ અપરના પદની સાથે અશ્વપોષવાહું
પદ તથા એક વીણું પણ અન્ય પદ આપે છે. યથા—

‘ કઃ કણ્ઠકાનાં પ્રકરોતિ સૈશ્યં વિચિત્રમાર્વં મૃગસિંગાં ચ ।

સ્વમાવતઃ સર્વમિદં પ્રવૃત્તં, ન કામવાસોઽસ્તિ કુતઃ પ્રવત્નઃ ॥ ’ —(મુદ્ધચરિત. ૧-૫૨)

સ્વમાવતઃ પ્રવૃત્તાનાં નિવૃત્તાનાં સ્વમાવતઃ । નાદં કરોતિ મૃગાનાં, યઃ પશ્યતિ સ્તુ સપશ્યતિ ॥

—જ્ઞાન્યાચાર્યે ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર અધ્યયન ૨૫ માની ટીકામાં આ અને માજાં કેટલાંક અવતરણો (અશ્વહરણ્ય મયવ-
દ્ગીતા ૧૮, ૪૨) અપ્પુત કરેલાં છે; તેમ જ આવી જ નાતનાં વીજાં પણ કેટલાંક અવતરણો (અશ્વહરણ્ય—મહાનારાયણો-
પનિપદ ૧૦, ૫—કૈવલ્ય ૩૦ ૩; અને વાજસનેયી સંહિતા ૩૧, ૧૮—ત્રેગ્ગાથાપનિવદ્ ૩, ૮) તેમજ અધ્યયન ૩૩,
ગાથા ૧૧-૧૫ ની ટીકામાં આપેલાં છે.

દિશં ન કાશ્ચિદ્ વિદિશં ન કાશ્ચિત્ ક્ષેત્રસ્યાત્ કેવલમેતિ શાંતિષ્ ।

जीवस्तथा निर्द्वैतिप्रभूपेता नैवावर्ति गच्छति नान्तरिक्षम् ।

દિશં ન કાશ્ચિદ્ વિદિશં ન કાશ્ચિત્ ક્ષેત્રસ્યાત્ કેવલમેતિ શાંતિષ્ ॥

— यशस्ति लक्ष् चम्पू ६, १ मां पण मा श्लोको आपेला छे. पण त्य चरणव्यातिक्रम यथलो नजरे पडे छे.

एक अवतरण चळी आवेलुं छे जे ऊपरना १ वाळा अवतरण साथे संबन्ध धरावतुं होय तेम जणाय छे, अने हेमचन्द्रना लखवा उपर्या ते कोई उपनिषद्नी टीकाभांतुं (उदा० बृहदारण्यक उपनिषद्) होय तेम मालुम पडे छे. जितमद्र सूळां ते आ प्रमाणे नोंधे छे.

४०. गेयम, वेय-पयाणं इमाणप्रत्यं च तं न याणासि ।

जं विप्राणपणो द्विय भूएहितां समुत्थाय ॥

४१. मन्नासि मज्जेगेषु व मयमायो भूय-समुदय-भूओ ।

विप्राणमेत्तं आया भूएऽणु विगस्तर स भूओ ॥

४२. अस्मि न य पेचसता जं पुद्वभवेऽभिहाणं 'असुगो' ति ।

जं भणियं न भवाओ भवन्तरं जाइ जियो ति ॥

छેવટની ગાથાસાંના વાક્ય ઉપર હેતુચન્દ્ર આ પ્રમાણે ટીકા કરે છે—‘કિમિદ્ વાક્યે તાત્પર્ય-વૃત્ત્યા પ્રોક્તં ભવતિ-इत्याह-धर्षयात्मनः समुत्पद्य विनष्टत्वात् न भवान्तरं कोऽपि यातात्युक्तं भवति ।’ ज्यारि शीर्लाक પોતાની હસેશની વિરલ-વ્યાખ્યાપદ્ધતિ પ્રમાણે પદ્ધતિ જ લખે છે કે—‘एवं न भवाद् भवान्तरमस्तीत्युक्तं भवति ।’

વિરોપાવશ્યક ૨, ૨૨૬ માં વનસ્પતિ અને પ્રાણી વિદ્યા સંબંધી અન્ધવિશ્વાસ સૂચવનારાં એક-ત્રે અવતરણો આવે છે, તે પળ હું આની પૂરવળી રૂપે અહીં નોંધી લેવા ઇચ્છું છું. એ અવતરણોનો વિષય, સદશપ્રાણી સદ્દશની જ હત્વતિ થઈ શકે, એવો કોઈ નિયત નથી; એ છે એના ઉપર ટીકા-કારે સૂચવેલ વિવેચના કરી છે. એ અવતરણ વાઙ્મી ગાથાઓ આ પ્રમાણે છે:—

૨૨૬. જાડ સરો સંગાઓ મૂતળઓ સાસવાણુલિતાઓ ।

સંજાયદ્ર ગોલોમાવિલોમ-સંજોગઓ દુઝવા ॥

૨૨૭. શ્રુતિ રુક્ષાઝલ્લેદે, જોણિવિદ્યાણે ય વિહારિસેહિતો ।

દીસદ જમ્હા જમ્મ, સુધમ્મ, તે નાયમેગન્તો ॥

સરસાવો, પંચતન્ત્ર શ્લોક ૧, ૧૦૭. એ ઠેકાણે કવિસંપ્રદાયની પદ્ધતિ વાદ કરતાં ઉપરના અન્ધવિશ્વાસવાળા અવતરણમાંની ધીજી હકીકતનો ચલ્લેજ કરેલો છે —જેતકે ‘દુર્વા પિ ગોલોત્રતઃ’ । આ અવતરણમાંની પહેલી હકીકત કે ‘શૂંગપ્રાણી શર ઉપજાય છે’ તેનો ચલ્લેજ વાર્તાના રૂપમાં એક પ્રત્યેકબુદ્ધની કથામાં આવે છે. ત્યાં જગાડના પ્રમાણે એક રાણી સોપરી, આંસ અને ચોઢામાંથી ઘોસના પ્રળ ફળગા નીકળ્યા હતા. આ ગાથામાં જે યોનિવિધાન શબ્દ આવેલો છે તેનો અર્થ ટીકા-કારે લખ્યા પ્રમાણે ‘યોનિપ્રાપ્ત’ છે અને એ નામ એક પ્રશ્નનું છે જે પૂતાના કેટલાંયમાં નં ૧૬, ૬૬; તથા ૨૧, ૧૨૪૨ માં નોંધેલો છે.

स्वाध्याय-समालोचन

आगरे के श्रीआत्मानन्द पुस्तक प्रचारक मंडलने एक महत्त्वके ग्रन्थका प्रकाशन किया है। इसका नाम है पातञ्जल योगदर्शन। यों तो पातञ्जल योगदर्शन के अनेक संस्करण, अनेक स्थानोंसे, अनेक रीतिसे और अनेक भाषाओंमें प्रकट हो चुके हैं लेकिन हम जो इस संस्करणको महत्त्वका कहते हैं उसका खास कारण यह है कि इस संस्करणमें जो व्याख्या प्रकट हुई है वह संस्कृतसाहित्यके ज्ञाताओंके लिये एक विशेष वस्तु है। पातञ्जल योगदर्शन एक वैदिक संप्रदाय है। ब्राह्मण संप्रदायके जो छ दर्शन गिने जाते हैं उनमें इसका विशिष्ट स्थान है। सांख्य और योग ये दोनों दर्शन युगलरूपसे व्यवहृत होते हैं और सब दर्शनोंमें प्राचीन हैं। असलमें सांख्य दर्शनका ही एक विशेषरूप योग दर्शन है। सांख्य दर्शनमें ईश्वरस्वरूप किसी व्यक्ति या तत्त्वका अस्तित्व नहीं माना जाता और योगदर्शनमें उसको आश्रय दिया गया है—इतना ही इनमें मुख्य भेद है। जैन और बौद्ध दर्शनमें ऐसे अनेक तत्त्व और सिद्धान्त हैं जो सांख्य और योग दर्शनके तत्त्व और सिद्धान्तोंके साथ समता रखते हैं। इस लिये बहुत प्राचीन कालसे जैन और बौद्ध विद्वानोंको सांख्य और योग दर्शनके अध्ययन और मननका परिचय रहा है। इसी परिचयका उदाहरण स्वरूप यह प्रस्तुत ग्रन्थ है। इस ग्रन्थमें पातञ्जल योगदर्शनके सूत्रों पर जैन धर्मके एक आति प्रसिद्ध और महाविद्वान् पुरुषने व्याख्या लिखी है वह प्रकट की गई है। व्याख्याकार है न्यायाचार्य महोपाध्याय श्रीयशोविजय गणी। इस व्याख्यामें महोपाध्यायजीने पातञ्जल योगसूत्रोंका जैन प्रक्रियाके अनुसार अर्थ किया है। व्यासकृत सूत्र भाष्यके विचारोंके साथ जहाँ जहाँ अपना मतभेद मालूम दिया वहाँ उपाध्यायजीने बड़ी गंभीर भाषाओं अपने विचारका समर्थन और भाष्यकारके विचारोंका निरसन किया है और यही इस व्याख्याकी खास विशिष्टता है।

इस ग्रन्थका संपादन विद्वद्भ्यं पं सुखलालजीने किया है। जहाँ तक हम जानते हैं, जैन साहित्यमें अभी तक कोई सांख्यिक ग्रंथ ऐसी उत्तम रीतिसे संपादित हो कर प्रकट नहीं हुआ। ग्रन्थके महत्त्व और रहस्यको सराज्ञानके लिये पंडितजीने परिचय, प्रस्तावना और सार इस प्रकारके तीन निबन्ध हिन्दी भाषामें लिखकर इसके साथ लगाये हैं जिनके पढ़नेसे एक ग्रन्थके पूर्ण अभ्यासके लिये जितने अंतरंग और बाह्य प्रश्नोंको आवश्यकता होती है, उन सबका ज्ञान पूरी तरहसे हो जाता है। परिचय नामक निबन्धमें, पंडितजीने योगसूत्र, योगवृत्ति, योगविशिका आदिका परिचय कराया है और प्रस्तावनामें जैन और योगदर्शनकी तुलना तथा तद्विषयक साहित्यका विवेचन किया है। यह प्रस्तावना कैसी महत्त्वकी और कितने पांडित्यसे भरी हुई है इसका खयाल तो पाठकोंको इसके पढ़ने ही से आ सकता है और इसी लिये हमने इस सारी प्रस्तावनाको इसी अंककी आदिमें उद्धृत की है।

इस पुस्तकमें योगदर्शनके सिवा एक योगविशिका नामका ग्रन्थ भी सम्मिलित है जो मूल हरिभद्रसूरिका बनाया हुआ है और उस पर टीका सहनृषी यशोविजयजीने की है। जैन दर्शनमें 'योग' को क्या स्थान है और उसकी क्या प्रक्रिया है यह जानने के लिये यह योगविशिका बहुत ही उपयोगी है।

पुस्तके अंतमें योगसूत्रवृत्ति और योग विशिकावृत्ति का हिन्दी सार दिया है जिससे संस्कृत न जानने वाले भी इन ग्रन्थगत पदार्थोंको सरलतासे समझ सकते हैं। इस पुस्तकका ऐसा उपयुक्त संस्करण निकालनेके लिये संपादक महाशय पं. सुखलालजी तथा मंडलके उत्साही संचालक श्रीयुक्त बाबू दयालचंदजी—दोनों सज्जन विद्वानोंके विशेष धन्यवादके पात्र हैं।

जैन साहित्य संशोधक ग्रंथमाला

अध्यापक कॉलेज लिखित

प्राकृत व्याकरण—संक्षिप्त परिचय

संपादक

मुनि जिनविजयजी

एम्. आर्. ए. एम्.

(आचार्य—गुजरात पुरातत्त्व मन्दिर—अमदावाद)

जैन साहित्य संशोधक—खण्ड २, अंक १—परिशिष्ट)

प्रकाशक

जैन साहित्य संशोधक कार्यालय

भारत जैन विद्यालय—पूना शहर.

નિવેદન

આ પ્રાકૃત વ્યાકરણ સંક્ષિપ્ત-પરિચય, ડેંટ્રીજ યુનિવર્સિટીના એક વખતના સંસ્કૃતના અધ્યાપક અને એડીનબર્ગ યુનિવર્સિટીના ઑનરરી એલએલ. ડી. શ્રી ઈ. બી. કૉવેલે લખેલા A SHORT INTRODUCTION TO THE ORDINARY PRAKARIT OF THE SANSKRIT DRAMAS નામના નિબંધનો અવિકલ ગુજરાતી અનુવાદ છે. જેમને સંસ્કૃત ભાષાનો સાધારણ અભ્યાસ હોય અને જેઓ પ્રાકૃત ભાષાનો ટુંક પરિચય કરવા માંગતા હોય તેમને આ નિબંધ ઘણો મદદ કરતો થઈ પડે એવો જણાયો, આ રૂપમાં પ્રકટ કરવામાં આવે છે. આ નિબંધ મૂળ સન્ ૧૮૫૪ માં મજકુર પ્રોફેસરે વરરચિત્ત પ્રાકૃત પ્રકાશ ની જ્યારે પ્રથમ આવૃત્તિ પહાર પાડી હતી તેની પ્રસ્તાવના રૂપે લખ્યો હતો. અને પછી ૧૮૭૫ માં કેટલાક સુધારા-વધારા સાથે, લંડનની TRUBNER and Co. એ એક પુસ્તિકાના રૂપમાં એને બહો છપાવ્યો હતો. એ પુસ્તિકા આજે હુલંધ્ય હોઈ બુકસેલરો તેની ૩-૪ રૂપિયા જેટલી કિંમત લે છે. તેથી ગુજરાતી ભાષાભિન્ન વિદ્યાર્થીઓને આ નિબંધ સુલભ થઈ પડે તેવા હેતુથી આ પત્રના પરિશિષ્ટ રૂપે પ્રકટ કરવામાં આવે છે. આશા છે કે સંશોધકના વાંચનારાઓને તેમજ અન્ય તેવા અભ્યાસિઓને આ પ્રયાસ ઉપયોગી થઈ પડશે.

પ્રાકૃત વ્યાકરણ-સંક્ષિપ્ત પરિચય

ઈ. સ. પૂર્વેના સૈકાઓમાં, ભારતવર્ષમાં સંસ્કૃત ભાષામાંથી અપભ્રંશ થઈને કેટલીક ભાષાઓ (જોલીઓ) ઉત્પન્ન થઈ જેને સાધારણ રીતે પ્રાકૃત કહેવામાં આવે છે. આ ભાષાઓની શોધ બોળનો વિષય ભાષાશાસ્ત્રીને તેમજ ઇતિહાસ લખકને ઘણો રસ આપી શકે તેમ છે. હાલની પ્રચલિત ભાષાઓ અને મહા સંસ્કૃત વચ્ચે સંબંધ જોડી શું ખલાતું કામ બનાવનાર આ પ્રાકૃત ભાષાઓનું (અને ખાસકરીને 'પ્રાકૃત' નામક ભાષાનું) જ્ઞાન હાલમાં વપરાતાં કેટલાંક રૂપો સમજવાને ઉપયોગી છે એટલું જ નહિ, પરંતુ તેઓ ભાષાસંધની એક ઇંટો-ચુરોપીગળ શાખાના ઇતિહાસમાં પ્રકાશ પાડે છે, તથા લેટીનમાંથી ઉત્પન્ન થયેલી આધુનિક ઇટાલીઅન અને ફ્રેંચ ભાષાઓ સરખાવતાં જે સ્વરમાધુર્યનું આપણને જ્ઞાન થાય છે તે માધુર્યના નિયમોના અનુપમ દ્રષ્ટાંતો પૂરાં પાડે છે. તદુપરાંત બાળ ઘણા રસોત્પાદક ઐતિહાસિક પ્રશ્નો સાથે પ્રાકૃત ભાષાનો નિકટનો સંબંધ છે. સાલોનના પૌદ્દોનાં તથા ભારતવર્ષના જૂનોનાં ધર્મચુસ્તકોની ભાષાઓ પ્રાકૃતનાં લિપિ લિપિ રૂપો છે; અને ખરેખર ગ્રાસણોની સંસ્કૃતનો વિરોધ દર્શાવીને જનસમાજના હૃદય ઉપર સચોટ અસર કરવા માટે ગૌણ ગ્રંથોમાં પાલિ ભાષાનો ઉપયોગ કરવામાં આવ્યો છે. બ્યારે અલેક્ઝાન્ડરના આધિપત્ય તળે ગ્રીક લોકો ભારતવર્ષના સંબંધમાં આવ્યા ત્યારે પ્રાકૃત ભાષા જનસમાજમાં પ્રચલિત હશે. જેમાં ઈ. સ. પૂર્વે લગભગ ૨૫૦ વર્ષના ઍન્ડીઓક્સ અને ખીબ ગ્રીક રાજાઓનાં નામો આવે છે એવા અરોક રાજાના શિલાલેખોની ભાષા પણ એક જાતની પ્રાકૃત જ છે; તે જ પ્રમાણે બેક્ટ્રીયાના ગ્રીક રાજાના દ્વિભાષિક સિક્કાઓ ઉપર પણ પ્રાકૃત ભાષા લખેલી જોવામાં આવે છે. જુના હિંદુ નાટકોમાં પણ આ ભાષાઓનો હિસ્સો એટલો નથી; કારણ કે તેમાં મુખ્ય નાયકો સંસ્કૃતનો ઉપયોગ કરે છે, પણ સ્ત્રીઓ અને સેવકો જુદી જુદી જાતની પ્રાકૃત ભાષા વાપરે છે, જેમાંના પરસ્પર ફરફારો બોલનારની કક્ષાપ્રમાણે, સ્વરમાધુર્યના નિયમનું અનુસરણ કરે છે.

વૈષ્યાકરણો 'પ્રાકૃત' શબ્દને પ્રકૃતે: મર્વ પ્રાકૃત એમ જણાવી પ્રકૃતિ એટલે સંસ્કૃત સાથે સંબંધ જોડે છે. આ વિવચમાં હેમચંદ્રે નીચેપ્રમાણે જણાવ્યું છે: પ્રકૃતિ સંસ્કૃતં તત્ર મર્વં તત્ર આગતં વા પ્રાકૃતમ્ । પણ મૂળ તેનો અર્થ 'સાધારણ' અગર 'અસંસ્કારો' એવો હશે, કારણ કે મહાભારતમાં એક સ્થળે ગ્રાસણોનો ધિક્કાર કરવો નહિ એમ જણાવી લખ્યું છે કે:—

કુર્વેદા વા સુવેદા વા પ્રાકૃતઃ સંસ્કૃતાસ્તત્તયા ॥

લગભગ આધુનિક વૈષ્યાકરણે 'પ્રાકૃત' નામ તળે ઘણી ભાષાઓનો સમાવેશ કરે છે, પરંતુ તેમાંની ઘણી ખરાં પાછળથી થયેલાં હુલ્લક રૂપાંતરો માત્ર છે. જેમ જુનો વૈષ્યાકરણ તેમ તેના ગ્રંથમાં થોડી પ્રાકૃત ભાષાઓ. તેજ પ્રમાણે ઘણા પુરાણ વૈષ્યાકરણ વરૂચિએ ફક્ત ચાર જ પ્રાકૃત ભાષાઓનું વિવેચન કર્યું છે, જેવી કે મહારાષ્ટ્રી, પૈશાચી, માગધી, અને શ્રોતસેની. આમાંથી પહેલી એટલે મહારાષ્ટ્રી ભાષાને તેણે વિશેષ મહત્વની ગણી છે; તથા લેસન સાહેબ પણ પોતાના

૧. પૈશાચી ભાષા ખાસ ઉપયોગી છે કારણકે વૃદ્ધકાયા તે ભાષામાં લખાયેલી છે.

‘ઈન્ડિયનશન્સ’ નામના લેખમાં તેને જ સુખ્ય ગણી છે. વરરૂચિના પ્રાકૃતપ્રકાશમાં પ્રથમ નવ પ્રકરણોમાં તેનું વ્યાકરણ આપવામાં આવ્યું છે; અને ખાકીનાં ત્રણ પ્રકરણોમાં ખાકીની ત્રણ ભાષાઓની વિશિષ્ટતા જણાવી છે.

મૃદ્ધકટિક નાટકમાં પ્રાકૃત ભાષાઓનું એક વિચિત્ર લઙ્કણ લેખ કરવામાં આવેલું છે જેથી કરીને તે નાટક ઉપયોગી પ્રાકૃત રૂપોની ખાણ બન્યું છે. વળી, વિક્રમોવંશીના ચોથા અંકમાં પુરુરવ રાજાના આત્મપ્રલાપની ભાષા તદ્દન લિખિત જ છે, અને એક જાતની કાવ્યમાં વપરાતી અપભ્રંશ ભાષા છે, જેને આધુનિક વૈયાકરણ મૂળ પ્રાકૃતથી, ઘણીજ ભુલી ગયું છે. આ અપવાદો સિવાય સંસ્કૃત નાટકોમાં—ગદ્યમાં શૈક્ષેની, અને પદ્યમાં મહારાષ્ટ્રી,—સાધારણ પ્રાકૃત જ વપરાય છે. આ બંને માટેના નિયમો સરખાજ છે, પરંતુ ગદ્યમાં વપરાતી ભાષા કેવળ વ્યંજનો ઉડાડી દેવામાં થોડી છૂટ લે છે, તથા ધાતુ અને પ્રાતિપદિકનાં કેટલાંક રૂપો તેનાં પોતાનાં ખાસ હોય છે, જે નીચે જણાવવામાં આવશે. તો પશુ નાટકોની ભાષા, ખાસ કરીને ગદ્યમાં, વરરૂચિના નિયમોથી ઘણી વાર વિરૂદ્ધ બળે છે.

આ લેખ વ્યાકરણ નાટકમાં વપરાતી સાધારણ પ્રાકૃત માટે ખાસ કરીને બનાવવામાં આવ્યું છે. ખરેખર, અત્યાર સુધી પદ્યાત્મક પ્રાકૃતનાં ઘણાં ઉદાહરણો જાણવામાં નહતાં; ફક્ત નાટકોમાં તથા અલંકારના ગ્રંથોમાં આવેલાં પ્રાકૃત પદ્યોનાં યોડાંક નમુનાઓ જણાયા હતા પણ પ્રો. વેળરે હાલકવિના સમશતકનો કેટલોક ભાગ છપાવ્યો છે જેને લીધે મહારાષ્ટ્રી ભાષાનું ‘મોટું’ ક્ષેત્ર મુલ્યુ થયું છે. તે કાવ્યમાં પ્રાકૃતના અભ્યાસને માટે ઘણી ઉપયોગી એવી આયાઓ છે પરંતુ મારા પ્રસ્તુત કાવ્ય માટે તે બહુ ઉપયોગી નહિ હોવાથી મેં આ લેખમાં તેમને ઉપયોગ બહુજ થોડો કર્યો છે. તો પશુ પરિશિષ્ટમાં હાલકવિની દરેક આયાઓ મેં આપી છે.

વિભાગ ૧.

લલભગ સર્વથા સંસ્કૃત શબ્દોમાં કેટલાક ફેરફારો કરીને અને કેટલાક અક્ષરો ઉડાડીને પ્રાકૃત રૂપો સિદ્ધ થયાં છે. સંસ્કૃતના અણીશુદ્ધ ઉચ્ચારોને બદલે પ્રાકૃતમાં અસ્પષ્ટ અને અર્ધ-ઉચ્ચાર કરવામાં આવે છે, તથા સંસ્કૃત ભાષાના સ્વભાવની વિરૂદ્ધ જર્થને વારંવાર સ્વરસમૂહનો ખાધ કરવામાં આવે છે. નીચેના પ્રકરણમાં, પ્રથમ તો શબ્દોના અક્ષરોમાં થતા ફેરફાર વિષે અને, પછીથી, પ્રાતિપદિક અને ધાતુઓનાં રૂપોમાં થતા ફેરફાર વિષે વિવેચન કરીશું.

સ્વર પ્રકરણ.

પ્રાકૃતમાં ક્ર, ઋ, લઃ, ઘે, ઐ સિવાયના બધા સ્વરો સંસ્કૃત પ્રમાણે છે. કોઈ શબ્દમાં પ્રથમ અક્ષર ક્ર હોય તો તેનો રિ થાય છે, જેમ કે ક્રજ્જ ને બદલે રિજ્જ; કેટલીક વાર ક્ર ની પહેલાં વ્યંજન હોય તો તે વ્યંજનનો લોપ કરવામાં આવે છે, જેમ કે સહશ—સરિસ. જો ક્ર ની પહેલાં વ્યંજન આવ્યો હોય તો ક્ર નો અ અથવા ઇ થાય છે, અને જો તે વ્યંજન યોષ્ઠ-સ્થાનીય હોય તો ક્ર નો ડ થાય છે; જેમ કે ત્ત્ત્ત—તણ, ક્ષત—કજ, દ્વિ—વિદિ, મ્મંગ—મિંગ, પૃથ્વી—પુહવી, પ્રવૃત્તિ—પડત્તિ. પરંતુ આવા ફેરફાર શબ્દના પ્રથમાક્ષર ક્ર માં ભાગ્યે જ થાય છે; તો પશુ રસિ (કાપિ), ડજ્જુઅ (કજ્જુ), ડહુ (કત્તુ).

૧. શાકુન્તલ ના ચોથા અંકમાં ધીવર મારાધી ભાષાનો ઉપયોગ કરે છે, તેમજ મુદ્રાણ્ડમાં કેટલાંક પાત્રો નિરૂપ્ત ભાષા વાપરે છે.

૨. ડાંબ પીરચેલે શૈક્ષેનીવિષે કુન્હના બીરેન પુનઃ માં વિવેચન કર્યું છે. પરંતુ તેમના કેટલાંક નિર્ણયો અનિશ્ચિત છે.

પ્રાકૃત શબ્દમાં ક્ર આવી શકતો નથી, તેથી જ અન્તવાળાં સંસ્કૃત શબ્દોનું પછી બહુવચનનું રૂપ અકારાન્ત અથવા હકારાન્ત શબ્દો પ્રમાણે થાય છે.

ફલત્ત નું કિલિત્ત થાય છે.

એ નું ઇ અગર અ ઇ (કવચિત્ ઇ અથવા ઈ) થાય છે, જેમ કે સેલ (શૈલ), દદૃચ (દૈત્ય).

ઔ નું ઔ અગર ઔ ઓ (કવચિત્ ઔ) થાય છે, જેમ કે કોમુદ (કૌમુદી), પડર (પૌર), સુંદર (સૌંદર્ય).

બાકી રહેલા સ્વરોમાંથી ઇ અને ઔ સંઘ્યક્ષર હોતા નથી, અને યથાનિયમાનુસાર -હ્રસ્વ યા દીર્ઘ હોઈ શકે.

પ્રાકૃતનો એક મુખ્ય નિયમ નીચે પ્રમાણે છે:—

મુળ શબ્દમાં જોડાક્ષરની પહેલાં દીર્ઘ સ્વર આવ્યો હોય તો પ્રાકૃતમાં તે સ્વર -હ્રસ્વ થાય છે, જેમ કે આ, ઈ, ઊ નું અનુક્રમે અ, ઇ, ઊ થાય છે; (ઇ અને ઔ એમ જ રહી શકે છે), જેમ કે માંગ-મગ્ગ, દર્શિ-દિષ્વ, પૂર્વ-પુવ્વ. તેમાં જો પેટા નિયમો નીચે પ્રમાણે છે: (અ) જો પ્રાકૃતમાં પણ દીર્ઘ સ્વર રાખવામાં આવે તો જોડાક્ષરમાંથી એક વ્યંજનનો લોપ થાય છે, જેમ કે દ્વિશ્વર-દ્વિશ્વર અથવા દ્વિશ્વર, વિશ્વાસ-વૌસાસો અથવા વિસ્સાસો; (બ) જોડાક્ષરની પહેલાં આવેલો -હ્રસ્વ સ્વર દીર્ઘ થાય છે અને એક વ્યંજનનો લોપ થાય છે, જેમ કે જિહ્વા-જોહ્વા, કોઈકવાર જોડાક્ષરની પહેલાંના ઇ ને ઊ ને બદલે ઇ અને ઔ થાય છે, જેમ કે પિણ્ડ-પેણ્ડ, તુણ્ડ-તોણ્ડ. ઘણી વાર ય ની પહેલાંના અ ને બદલે ઇ થાય છે, જેમ કે પર્યન્ત-પેરન્ત, સૌંદર્ય-સુંદર, આશ્ચર્ય-અચ્છેર. કેટલાક શબ્દોમાં પહેલા અક્ષરમાં ઊ નું અ થાય છે, જેમ કે મુકુટ-મઝડ, પુરુષ અને માત્ર નું અનિયમિત રૂપ પુરિસ અને મેત્ત થાય છે.

આ નિયમિત ફેરફારો ઉપરાંત વ્યાકરણોમાં અને પ્રાકૃત લેખોમાં, તથા ખાસ કરીને સમ-શતકમાં કેટલાક સ્વરોના ફેરફારો અનિયમિત રીતે થાય છે જેમ કે સમુદ્ધિ-સામિદ્ધિ અથવા સામિદ્ધિ, ઉત્ત્વાત-ઉક્ત્ત્વ અથવા ઉક્ત્વાત, પટહ-પટ્હ, વિગેરે. સામાસિક શબ્દો કે જેમાં વારંવાર સ્વરો -હ્રસ્વ દીર્ઘ થયા કરે છે તથા કેટલીક વાર આખા અક્ષરો હ્રસ્વ કરવામાં આવે છે તેમાં આવી અનિયમિતતા વારંવાર જોવામાં આવે છે, જેમ કે યમુનાતટ-જડળગઢ અને જડળગઢ; સુકુમાર-સુડમાર અને સોમાર; રાજકુલ-રાગડલ અને રાડલ, વિગેરે (સરખાવો-ચર ૬૦ ૪, ૧; વેબર, સત્તશત્ ૫૦ ૩૨, ૩૩.)

૨. કેવળ વ્યંજન પ્રકરણ.

(અ). સામાન્ય પ્રાકૃતમાં જ્ અને જ્ નથી, અને તેમને બદલે જ્ વપરાય છે. જ્ ની પછી દંત્યાક્ષર ન આવ્યો હોય તો સાધારણ રીતે તેનો જ્ થાય છે. શબ્દના આરંભમાં આવેલા જ્ નો જ્ થાય છે. સામાન્ય રીતે આટલા નિયમો અપવાદ રૂપે આવે છે [તે પણ, નાટકોમાં કેટલીકવાર ઝળ (પુનઃ), અ (અ) થાય છે, પરંતુ આવા ફેરફારો વરંચિએ સ્વીકાર્યા નથી. -વળી, વરંચ ૨, ૩૨-૪૧ માં આવેલા શબ્દો, જે આ પુસ્તકને અંતે આપવામાં આવ્યા છે તે જુઓ]. સુ, અ એવાં શબ્દો જ્યારે કેટલાક શબ્દોના આરંભમાં લગાડવામાં આવે છે ત્યારે તેવા શબ્દોનો પહેલો વ્યંજન હ્રસ્વ થાય છે, જેમ કે આર્યપુત્ર-અજ્જપુત્ર, સુકુમાર-સુડમાર.

(બ) છેવટના મ્ અને ન્ જે અનુસ્વારના રૂપમાં પરિણત થાય છે, તે સિવાયના ખોડા વ્યંજનોનો લોપ થાય છે. ઘણી વાર છેવટના અનુસ્વારનો લોપ થાય છે. કેટલાંક નામોના અંત્ય વ્યંજનોને જ અગર આ લગાડવામાં આવે છે, જેમ કે પ્રાવૃપ્-પાડસ, સરિત્-સરિઆ.

(ફ) વચમાં આવેલા ખોડા અક્ષરો:—

ક, ગ, ચ, જ, ટ, ઢ, ઘ, ઘ, જ નો વિકલ્પ લોપ થાય છે; પરંતુ ત્ અને પ્ નો જ્યારે લોપ ન થાય ત્યારે તેમને બદલે ઘણી વાર ઢ અને ઘ' અગર જ થાય છે. આવી રીતે થતા લોપ ગદ્ય કરતાં પદ્યમાં વિશેષ જોવામાં આવે છે. પ્રતિ ઉપસર્ગને બદલે પ્રાકૃતમાં પાંચે લખવામાં આવે છે.

ચ નો ઘણી વાર લોપ થાય છે, જેમ કે ઘાતુ—ઘાડ, નયન—જાનન.

ત્ નો જ્ થાય છે; અને ઢ નો ઢ્ થાય છે, અને કેટલીક વાર ઢ નો જ્ થાય છે.

જ્, જ્, જ્, જ્, મ્ એમ જ રહે છે, અગર તો તેમનો જ્ થાય છે (જ્યારે જ્ નો જ્ ન થાય ત્યારે, અને ખાસ કરીને ગદ્યમાં, જ્ થાય છે.) જ્, જ્, અને જ્ માં ફેરફાર થતો નથી. ઢ નો હ' મેશા ઢ્ થાય છે; ફ સાધારણ રીતે અવિકૃત રહે છે, અને કદાચ તેનો મ્ પણ થાય. (વર૦ ૨, ૨૬, સરખાવો લેસન સાહેબનું વ્યાકરણ, પાન ૨૦૮.)

ર ને બદલે ઘણી વાર જ્ થાય છે; અને આ પ્રમાણે ભાગધો અને બીજી કેટલીક હુળકી લાપા-ઓમાં નિયમિતપણે થાય છે. ત્, મ્, જ્, જ્, જ્ અવિકૃત રહે છે. જ્ અને જ્ ને બદલે જ્ થાય છે, પરંતુ વસ્તુ અને તેના ઉપસ્થિતિ થતા શબ્દોમાં તથા વિવસ્ત માં, સ નો જ્ થાય છે, જેમ કે પક્ષ-વશ-પ્રસાર, વિવસ્ત-વિવસ્ત, તેમજ, ફેરફાર-પ્રદહ.

શબ્દની મધ્યમાંના ખોડા વ્યંજનોને કેટલીકવાર બેવડાવવામાં આવે છે; જેમ કે પક્ષ-પક્ષ અથવા પક્ષ, યશિવ-અસિવ અથવા અસિવ (વર૦ ૩, ૫૨, ૫૮).

૩. જોડાક્ષર પ્રકરણ.

પ્રાકૃત ભાષાના ખાસ ફેરફારો જોડાક્ષરોમાં થાય છે. જ્યારે વધારે સંસ્કૃત જોડાક્ષરો મળી જઈને એકાદ પ્રાકૃત રૂપ સિદ્ધ થાય છે ત્યારે તે રૂપ એકાએક જોળખી શકાતું નથી. પ્રાકૃતમાં બુદ્ધા બુદ્ધા વર્ગના બે વ્યંજનોનું જોડાણ રહી શકતું નથી, તેથી તે વ્યંજનોમાંથી એકનો લોપ કરી, અને બીજાને બેવડાવી એક વર્ગના કરવા પડે છે. સામાન્ય નિયમ તરીકે, જોડાક્ષરોમાંના પહેલા વ્યંજનનો લોપ થાય છે, પરંતુ ત્, મ્, જ્ પહેલા ન હોય તો પણ તેમનો લોપ થાય છે, અને ર, જ્, અને જ્ નો સર્વત્ર લોપ થાય છે. આ ઉપરાંત કેટલાક અપવાદો પણ છે. એક નિયમ ખાસ યાદ રાખવો જોઈએ કે—જ્યારે કોઈ જોડાક્ષરમાં જિહ્વાક્ષર આવ્યો હોય, ત્યારે તેનો લોપ કરી તેને બદલે તેની સાથે જોડાયેલા વ્યંજન પછીનો મહાપ્રાણ વ્યંજન મૂકવામાં આવે છે. જેમ કે સ્ક, વ્ક અથવા ક્ષ ને બદલે ક્ષ્ થાય; અગર તો, હિંમ્વાક્ષરની સાથે જોડાયેલા વ્યંજનની પછીનો મહાપ્રાણ વ્યંજન ન હોય તો જિહ્વાક્ષરને બદલે હ મૂકવામાં આવે છે, જેમ કે સ્ક્ અથવા વ્ક્ ને બદલે વ્ક્. પરંતુ જ્યારે આવી પરિસ્થિતિ સામાસિક શબ્દના પદોમાં આવી હોય ત્યારે ઉપયુક્ત નિયમ જળવાતો નથી; જેમ કે તિરસ્કારો—તિરસ્કારો. (તિરસ્કારો એમ ન થાય.) ર અને જ્ કદી પણ બેવડાતા નથી. જોડાક્ષરમાં હ આવ્યો હોય તો છેવટે લખાય છે, જેમ કે વ્રાહ્મણ—વ્રાહ્મણ. જોડાક્ષરમાં ર આવ્યો હોય તેનું અનુસ્વાર થાય છે; આ નિયમ જ્ અને જિહ્વાક્ષરમાં પણ કોઈક વખતે લાગુ પડે છે; જેમ કે દર્શન—વંસન, વક્ષ—વંક, અશ્વ—અંસ, અશ્વ—અંસ; (બુચો વર૦ ૪, ૧૫). કેટલીક વાર જોડાક્ષરની વચમાં એક નવો સ્વર મૂકવામાં આવે છે;

૧. વ પ્રાકૃત અક્ષર હશે કે નહિ તે શંકાસ્પદ છે, કારણ કે પ્રતોમાં હ' મેશાં વ લખેલો હોય છે.

૨. હ અને ર વારંવાર એક બીજાને બદલે વપરાય છે, જેમકે વૈળિં- પા. ૧૯, ૧-૨, માં પદિ-હિસ્ત્રામો (પરિહરિસ્ત્રામ:), તથા શાકું, પા. ૫૬, ૧-૧૨, (જોધર્લાંગ), મલત્તલમ્ભલિખા [મલત્તલ- (દ)]

જેમ કે હર્ષ-હરિત (જુઓ વર ૩, ૫૯-૬૬)। ઘણી વાર ચં માં આવેલા ચૂ નો દ્વાય છે,
જેમ કે ચૌર્ય-ચોરિય.

પ્રાકૃત જોડાક્ષરોની તાલિકા.

નીચેની તાલિકામાં સંદ્રુત ભોજનક્ષરોનાં પ્રાકૃત રૂપો આપ્યાં છે, જેમાંના ફેરફાર શબ્દના મુખ્યમાં થાય છે એમ સમજવું; પણ તે પ્રાકૃત ભોજનક્ષરોમાંના પહેલા અક્ષરનો લોપ કરવાથી તે રૂપો શબ્દના આરંભમાં પણ ઉપયોગમાં આવે; જેમ કે યક્ષ-જક્ષ, પલ્લ-ક્ષલ-લ્લલ. તેજ પ્રમાણે શબ્દની વચમાં હોય તો પ્ર નો લ્પ થાય છે, અને આરંભમાં હોય તો પ્ર નો પ થાય છે.

ક=ત્ક, ક્ત (?), પય, ફ, ફં, લ્ક, ફ્ક, ક્ક; જેમ કે ઉત્કળા, મુક્ત, ચાળપ્ય, શક્ત, ધર્મ, વિદ્યુત્, ઉલ્કા, પક્, ને બદલે અનુક્રમે ઉક્ળા, મુક્, ચાળક, સક્, ધક, ઉક્, વિક્ત, પિક્ થાય છે.

પ્રત્યય=ત્વ, સ્ય, ક્ષ, ત્સં, (હ્ય), પ્ક, સ્ક, (પ્લ), સ્વ, :સ; જેમ કે ઉત્પાદિત, આશ્વા, યક્ષ, ડક્ષિત, મુષ્ક, સ્કન્ધ, સ્વલિત, દુઃસ્વ ને બદલે ઉપલબ્ધિત, અવલા, જપસ, ડમિલત્ત, મુપસ, લન્દ, શલિમ, દપસ થાય છે.

ગ્ગ=ઙ્ગ, ઢ્ગ, ણ્ગ, મ્ગ, ય્ગ, પ્ર, ગં, લા; જેમ કે ઘઙ્ગ, મુઢ્ઢ, નમ્મ, યુમ્મ, યોમ્મ, સમપ્ર, ઘર્ગ, ઘલ્લિગત
ને બદલે ઘમ્મ, મમ્મ, નમ્મ, જોમ્મ, સમમ્મ, ઘમ્મ, ઘમ્મિદ થાય છે.

ગ્ય=(ઙ, ઘ, ઘ્ન, ઘ્ન, ઘ્ન) જેમ કે ઉદ્ઘાટિત, વિગ્ન, શીઘ્ર, નિર્ઘૂણ ને બદલે ઝગ્ન, ઘિગ્ન, સિગ્ન, ણિગ્ન થાય છે.

જેમ કે સહ્યોમ-સહ્યોદ (અથવા સહ્યોજોદ?).

જ્ય, ત્ય, ચં; અચ્યુત, નિત્ય, ચર્ચરિકા ને બદલે અચ્યુદ, ગિદ્ય, ચઘરિમા થાય છે.

ચ્છ=શ્ય, છં, છઃ, દ્ય, ત્થા, હમ, ત્ત, ત્ત્ય, પ્ત, ઞ; જેમ કે મિષ્ટ્યા, મૂર્છા, કુચ્છાણક, અહિ,
ઉદ્ધિત, લક્ષ્મી, વત્ત, મત્ત્ય, રિપ્તા, આશ્વર્ય ને બદલે મિચ્છા, મુચ્છા, કુચ્છાણબ, અચ્છિ,
અચ્છિત, લચ્છી, વચ્છ, મચ્છ, લિચ્છા, અચ્છેર થાય છે.

જ્ઞ=ઘ્ઞ, જ્ઞ (કોઈક વખત) જ્ઞ, જ્ઞ, જ્ઞ, ઘ; યં, ય્ય. (ભાગ્યેન); જેમ કે કુજ્ઞ, સર્વજ્ઞ, ઘજ્ઞ, ગર્જિત, પ્રજ્વલિત, વિદ્યા, કાર્ય, શર્યા ને બદલે સ્વજ્ઞ, સત્યજ્ઞ, વજ્ઞ, ગર્જિત, પજ્જલિત, વિજ્ઞા, કજ્ઞ, સેજ્ઞા થાય છે.

જહ્ન=ધ્ય, જ્ઞ; જેમ કે મધ્ય, વાહ્યક, તે ધાત્વે મજ્ઞ, ઘજ્ઞ્ય થાય છે.

હ=તં; જેમ કે નર્તકી તુ' જાદુઈ થાય છે.

ક=ક, છ=જેમ કે દાણે, ગોષ્ઠી નું દિલ્હિ, ગોદૃષ્ટિ થાય છે.

इ=तं, दं (लाग्येन); जेम डे गर्त, गर्दम पुं गड्ड, गड्डह थाय छे.

૧. કન્ન ધણાં નાટકોમાં જોવામાં આવેછે, જુઓ મુદ્દા, પા. ૨૬ ૧-૨૦ ઉપર સ્ટેન્ડરની નોટ.

૨. ખાસકરીને સમાસમાં ક=ક, દક વપરાય છે, જેમકે નિકમ્પ=નિષ્કમ્પ ખાકી અન્ય સ્થળે વસ
આય છે. તેજ પ્રમાણે ક=ક અને વ્=વ્, અગર વ્.

૩. કવચિત્ ક્ષ ને બદલે ચ લેવામાં આવે છે, પણ ખાસ કરીને નિઘન (નિઘન) જેવા શબ્દોમાં જ
જેમાં નિષ્ ઉપસર્ગ^૧ ચ થી શરૂ થતા શબ્દ સાથે જોડાયેલા છે.

૪. અદિ (અસ્તિ=હાડકું), તથા ડિઝ (સ્થિત) માં દૃષ્ટિ સ્થ ને માટે વપરાય છે.

હૂ=હ્ય; જેમ કે આહ્ય તું અહ્ય થાય છે.

ણ=ણ (?), ણ, મ્ન, ણ, ણ્ય, ન્ય, ણ, ણ્ય, ન્ય, જેમ કે રુણ, યજ્ઞ, પ્રયુજ્ઞ, પ્રસન્ન, પુણ્ય, અન્યોન્ય, વર્ણ, કણ્વ, અન્વેષણ, ને બદલે રુણ જણ, યજ્ઞુણ, પ્રસન્ન, પુણ, અણ્ણણ, ઘણ, કણ, અણ્ણણ થાય છે.

ણ્=ઠણ ણ, ણ, ણ, ણ, ણ; જેમ કે તોણ, પ્રજ્ઞ, વિણ, પ્રસ્તુત, પૂર્વાહ્ણ, વધિ ને બદલે તિણ, પઠ, વિણ, પણ્ણ, પુણ્ણ, વણ્ણ થાય છે.

ત્ત=ત્ત, ત્ત, ત્ત, ત્ત, ત્ત, ત્ત; જેમ કે મત્ત, સુત્ત, પત્તો, આત્મા, શત્રુ, સત્ત્વ, મુહૂત્ત ને બદલે મત્ત, સુત્ત, પત્તો, અત્ત, સત્ત, મુહૂત્ત થાય છે.

ત્ય=ત્ય, ત્ય, ત્ય, ત્ય, ત્ય; જેમ કે સિત્ત્યક, તત્ત, પાત્ય, હસ્ત, અવસ્થા ને બદલે સિત્ત્યક, તત્ત, પાત્ય, અવસ્થા થાય છે.

દ્=દ્, (ઘ ?), દ્, દ્, દ્; જેમ કે શન્દ, મદ્, શાદ્, અદ્, સદ્, મદ્, સદ્, અદ્ થાય છે.

ઢ્=ઘ, ઘ, ઘ, ઘ; જેમ કે સ્તિઘ, લઘ, અઘ, અઘન્, ને બદલે સિઘ, લઘ, અઘ, અઘા થાય છે.

ન્દ=ન્ત (શૈરસેનીમાં ક્ષાય થાય છે.) જેમ કે કિન્તુ, પ્રમાવાન્ ને બદલે કિન્દુ, પદ્માવન્દો થાય છે. ૨

પ્પ=ત્પ, પ્પ, પ્ર, પે સ્પ, પ્પ, પ્પ; ૩ જેમ કે ઉત્પલ, વિપ્લવ, અપ્પિય, સર્પણીય, અત્પ, વિપ્લવ, રપમ ને બદલે ઉત્પલ, વિપ્ણપ્પ, અપ્પિય, સર્પણીય, અપ્પ, વિપ્પવ, રપ્પ થાય છે.

પ્ફ=સ્ફ, પ્ફ, (:ફ), સ્ફ, પ્ફ, સ્ફ; જેમ કે ઉત્પુલ્લ, નિપ્ફલ, સ્ફુટ, પુપ્પ, શરોરસ્પર્શ ને બદલે ઉત્પુલ્લ, નિપ્ફલ, ફુલ, પુપ્ફ, સરોરપ્પર્શ થાય છે.

વ્ય=ઢ્, ઘ, ઘ; જેમ કે ઉદ્ઘન્ય, અત્રાહ્ણ્ય ને બદલે ઉદ્ઘન્ય, અત્રાહ્ણમ્.

ધ્મ=ઘ્મ, ઢ્મ, ધ્મ, ધ્મ, ધ્મ; ૪ જેમ કે પ્રાગ્માર, સદ્માર, અમ્યથેના, અમ્, ગર્મ ને બદલે પ્રમાર, સમાવ, અમ્મત્યના, ધમ્મ, ગમ્મ થાય છે.

મ્મ=દ્મ, ણ્મ, ન્મ, મ્મ, મ્મ, મ્મ; ૫ જેમ કે દિહ્મુલ, પન્મુલ, જન્મ, સૌમ્ય, વર્મન્, ગુલ્મ ને બદલે દિમ્મુલ, હમ્મુલ, જમ્મ, સોમ્મ, ધમ્મ, ગુમ્મ થાય છે.

મ્હ=પ્મ, હ્મ, સ્મ, હ્મ; જેમ કે ગ્રામ્મ, પદ્મન્, વિસ્મય, ત્રાહ્ણ ને બદલે ગિમ્હ, પમ્હ, વિમ્હ, વમ્હ થાય છે.

ચ્ય=ચ, જ, (માગધી); જેમ કે કાર્ય, દુર્જન; ને બદલે કાર્ય, દુર્યજે થાય છે.

રિ=ટ, યં (ક્ષાય); જેમ કે તાદશ, ચૌર્ય ને બદલે તારિસ, ચોરિસ થાય છે.

૧. જ ને બદલે ત્ય અકેલા અન્યયોમાંજ વપરાય છે, જેમકે ક્ષ્ય (જ), તત્ય (તત્ત).

૨. બુઓ બોધલિંગતુ શાકું, પા. ૧૫૫ નોટ

૩. આત્મા તું પ્રાકૃત અપ્પા તથા અત્તા બેઉ છે. પ્પ=ત્પ, સ્ફ, ક્ષત સમાસમાંજ, જેમકે વત્ત-પહો=વતુપય;

૪. ધ્મ=ઢ્, જેમકે વિમ્મલ=વિહલ.

૫. મિહ્=મ્હ, જેમકે મિલાણ=મ્લાન બુઓ લેસન, પા. ૨૫૮. વળી, વ=ઢ્, જેમકે વારહ=વાદસ.

હ = હ્ય, હં, (હ્ય), યં (હાથેજ); જેમ કે શલ્ય, નિર્લજ્જ, પર્યાણ ને બદલે સહ, ણિહજ્જ, પહાણ થાય છે.

હ્લ = હ્લ; જેમ કે કહ્લાર તુ' કહ્લાર થાય છે.

વ્વ = વ્ય, (વ્ય), વં, જેમ કે કાવ્ય, પૂર્વ ને બદલે કવ્ય, પુવ્ય થાય છે.

સ = સં, શ્ર, શ્વ, સ્વ; જેમ કે દર્શન, અશ્રુ, અશ્વ, મનસ્વિની ને બદલે દંસણ, અંસુ, અંસો, મળંસિણી થાય છે.

સ્ત = વં, દમ, દ્ય, થ્ર, શ્વ, પ્મ, પ્ય, પ્વ, સ્ય, સ્ત, સ્વ; જેમ કે રૂપાં, રક્ષિ, રાજદ્યાલક, વિદ્યાન્ત, અશ્વ, શુપ્મ, પુપ્ય, પરિવ્યજામિ, તસ્ય, સહસ્ર, તપસ્વિનૂ ને બદલે રસ્તા, રસ્તિ, રાજ-સ્સાલય, વિસ્સન્ત, યસ્સ, સોસ્સ, પુસ્સ, પરિસ્સવામિ, તસ્સ, સહસ્સ, તવસ્સી થાય છે.

તા. ક.—જો સંસ્કૃત શબ્દોમાં ત્રણ વ્યંજનો ભેદાયલા હોય તો તેમાંના અર્ધસ્વરનો પ્રાકૃત કરતી વખતે, લોપ કરવામાં આવે છે, અને ત્યાર પછી બાકી રહેલા વ્યંજનો માટે ઉપયુક્ત નિયમો લાગુ પાડવામાં આવે છે; જેમ કે મત્સ્ય = મચ્છ; પરંતુ આવા (અર્ધસ્વર વાળા) ભેદ-ક્ષરની પહેલાં અનુનાસિક વ્યંજન આવ્યો હોય તો બાકી રહેલા ભેદક્ષરોની બાબતમાં સામાન્ય નિયમો લાગી શકે છે; માત્ર અનુનાસિક પછી તેઓ ભેવડાતા નથી; (ચર૦ ૩, ૫૬) જેમ કે વિન્ધ્ય = વિન્દ્ય. [છ નો જ્ઞ (ચર૦ ૩, ૨૮) પ્રમાણે થાય છે.]

ઉપયુક્ત નિયમો ઉપરાંત, હાલ કવિના સસંપતકની જેમ બીજાં પદોમાં ઘણી અનિયમિતતા બેવામાં આવે છે; જેમ કે ત્રૈલોક્ય તુ' પ્રાકૃત રૂપ વરરૂચિએ તેલોઝ તથા તેલોઝ આપ્યું છે. તેજ પ્રમાણે નમસ્તલ તુ' પ્રાકૃત રૂપ નહમલ (ઉત્તરરામ૦, પા. ૧૦૫, તથા સત્તશ૦ ૭૪), તથા નહ-ત્યલ (માલતી૦, પા. ૯૦), વિગેરે બેવામાં આવે છે.

વિભાગ ૨.

પ્રાકૃત નામો પાંચ બાતનાં હોઈ શકે: ૧ અકારાંત તથા આકારાંત; ૨ ફકારાંત તથા ફંકારાંત; ૩ ડકારાંત તથા ડંકારાંત; ૪ મૂળરૂપે ક્કારાંત; ૫ વ્યંજનાંત.

છેલ્લા બે વિભાગમાં પડે એવા નામો ઘણાં થયાં છે. ક્કારાંત પુલ્લિંગ શબ્દોને સ્વર અથવા સ્વાર અંતવાળા બનાવવામાં આવે છે; જેમ કે પિતા-પિત્રો; પિત્રા-પિત્રેણ, મર્ત્તા-મર્ત્તારો, મર્ત્તા-મર્ત્તારેણ. પ્રથમા તથા દ્વિતીયા બહુવચનમાં, તૃતીયા અને પછી એકવચનમાં, તેમજ સપ્તમી બહુવચનમાં, છેવટના ક્ર ને બદલે ડ મૂકવામાં આવે છે, અને પછી ડકારાંત શબ્દોની માફક તંનાં રૂપો ચાલે છે; જેમ કે મર્ત્તણ-મર્ત્તુણ, મર્ત્તુઃ-મર્ત્તુણો. આવું રૂપ વપરાયલું પણ બેવામાં આવે છે, જેમ કે મર્ત્તકુલ-મર્ત્તકુલ. સંબન્ધશકિ નામોતુ' પ્રથમા એકવચન જા અંતવાળું પણ હોય છે, જેમ કે પિતા-પિત્રા; માતૃ-માત્રા, અને ત્યાર પછી આકારાંત સ્ત્રિલિંગ નામોનાં માફક તંનાં રૂપો ચાલે છે. મર્ત્ત તુ' સંબોધનરૂપ મદ્દા થાય છે અને તેતુ' સ્ત્રિલિંગરૂપ મદ્દિની અથવા મદ્દિણી થાય છે.

વ્યંજનાંત નામોની દ્વિવિધ ગતિ થાય છે: (૧) તેમનો અર્થ વ્યંજન ઉડી જાય છે અને ત્યાર બાદ ઉપર બતાવેલી પહેલાં ત્રણ રીતે તેમનાં રૂપ ચાલે છે (નપુંસકલિંગ નામ પુલ્લિંગ બની જાય છે), જેમ કે સર (સરસ્) તુ' પ્રથમાતુ' રૂપ સરો, કમ્મ (કર્મન્) તુ' કમ્મો થાય છે; અથવા (૨) મૂળ શબ્દને જ કે આ લગાડવામાં આવે છે, જેમ કે શરદ્ તુ' સરદોઃ આશિસ્ તુ' આશિસા. જે વિલકિતઓના પ્રત્યયો વ્યંજનથી શરૂ થતા હોય તેમને માટે સાધારણ રીતે આ નિયમો લાગે છે. આ ઉપરથી જણાશે કે આ યુક્તિઓ વાપરવાતું કારણ વ્યંજનથી શરૂ થતા

પ્રત્યયો વ્યંજનાંત શબ્દો સાથે જોડાતાં જે નવા જોડાણો ઉત્પન્ન થાય તથા જે નવા ફેરફારો કરવા પડે તે દ્વર કરવાતું હોયું જોઈએ. પરંતુ સ્વરથી શરૂ થતા વિભક્તિના પ્રત્યયો આગળ ઘણું ખરું સંસ્કૃત રૂપજ રાખવામાં આવે છે; અલબત્ત, તેમાં પ્રાકૃત નિયમોપમાણે ફેરફાર થાય છે, જેમ કે મવદા. (મવત્ તું પૃતીયાતું રૂપ), આહસા (આયુષા, આયુસ્ તું પૃતીયાતું રૂપ).

પ્રાકૃતમાં દ્વિવચન નથી તેમજ ચતુર્થી* વિભક્તિ નથી (ચતુર્થી*ને ખદલે પછી વપરાય છે); પંચમી ખડુવચનના બે પ્રત્યયો છે: હિતો 'માંથી' ના અર્થમાં પ્રેરકમાં વપરાય છે, અને સુંતો 'માંથી' ના અર્થમાં સાધારણ રીતે વપરાય છે. ખાસ ઉપયોગી એવાં પહેલા ત્રણ પ્રકારનાં રૂપો નીચે પ્રમાણે છે. ઉકારાંત શબ્દોના રૂપ ફકારાંત પ્રમાણે ચાલતાં હોવાથી ખાસ અહીં આપવામાં આવ્યાં નથી.

નામનાં રૂપાખ્યાન.

વચ્છ-વૃક્ષ
એક વચન.

- પ્ર૦ વચ્છો (નપું૦ ઘળ)
- દ્વિ૦ વચ્છં - "
- તૃ૦ વચ્છેળ, -ળ
- પ૦ { વચ્છાદો, -દુ-
{ વચ્છાહિ, વચ્છા
- પ૦ વચ્છસ્સ
- સ૦ વચ્છે, વચ્છમ્મિ
- સં૦ વચ્છ, વચ્છા (નપું૦ ઘળ)

અગિ-અગ્નિ (પુલ્લિંગ)
એક વચન.

- પ્ર૦ અગ્ની (નપું૦ દહિ)
- દ્વિ૦ અગ્નિ - "
- તૃ૦ અગિણા
- પ૦ અગ્નીદો, -દુ, -હિ
- પ૦ અગિણો, અગિસ્સ
- સ૦ અગિમ્મિ
- સં૦ અગિ (નપું. દહિ)

એક વચન

- પ્ર૦ માલા
- દ્વિ૦ માલં
- પં. માલદો, -દુ, -હિ.

માલા

(નપુંસ૦ ઘળ-ઘન)

ખડુવચન.

- વચ્છા (નપું. ઘળાદં, -દ, ઘળા;
ઘળાનિ ગદ્યમાં વપરાય છે).
- વચ્છે; વચ્છા (નપું૦=પ્રથમા૦)
- વચ્છેહિ, -હિ
- { વચ્છેહિ, -હિ
{ વચ્છાસુંતો, વચ્છેસુંતો
- વચ્છાળં-ળ
- વચ્છેસુ-સું
- વચ્છા (નપું૦ ઘળાદં-દ).

દહિ-દાધિ (નપુંસ૦).

ખડુવચન

- અગ્નીઓ, અગિણો (નપું. દહીદં, -)
- અગિણો અગ્ની (દ્વિ). - "
- અગ્નીહિ, -હિ
- અગ્નીહિતો, -સુંતો.
- અગ્નીળં, -ળ.
- અગ્નીસુ, -હું
- અગ્નીઓ, અગિણો (નપું. દહીદં, -)

(સ્ત્રીલિંગ)

ખડુવચન.

- માલાઓ, -હ; માલા^૨
- માલાહિતો, -સુંતો.

૧. ગદ્યમાં સામાન્ય રીતે દો વાળું જ રૂપ વપરાય છે.

૨. માલા માટે જુઓ શ્લોક ૫, ૨૦., તથા શાકુંમાં પાઠ ૧૫ ઉપર, વચનાના શબ્દપર આપેલી બોધહીંગની ટીકા.

લૃં }
 ષં } માલાપ,-ઈ
 સં }
 સં માલે

માલાદિ,-
 માલાણ,-ળ
 માલાસુ,-સું
 માલાથો,-ઝ

પ્રાકૃતમાં સ્ત્રીલિંગી રૂકારાંત અને રૂકારાંત તથા રૂકારાંત અને રૂકારાંત નામોનાં રૂપોમાં ફેરફાર હોતો નથી.

જઈ-નવી (સ્ત્રીલિંગ)

એક વચન.

પ્રં જઈ
 દિં જઈ
 પં જઈવો,-હુ,-દિ
 લૃં }
 ષં } જઈઝ,-આ
 સં } જઈઈ,-પ
 સં જાદ

બહુવચન.

} જઈઓ,-ઝ; (દ્વિતીયાં જઈ ? જુઓ
 લેસન, પા. ૩૦૭, નોટ ૨.)
 જઈદિતો,-સુંતો
 જઈદિ,-દિ
 જઈણ,-ળ
 જઈસુ,-સું
 જઈઓ,-ઝ

તા તથા ત્વ છેડાવાળાં ભાવવાચક નામો પ્રાકૃતમાં લા અને સ્ત્રણ છેડાવાળાં જની જાય છે, જેમ કે પીણદા, પીણત્તણ. મત્ અને વત્ પ્રત્યયોનાં પ્રાકૃતમાં જુદાં જુદાં રૂપો થાય છે, જેમ કે જહ્, જહ્ણ, જાલ, વંત, રંત (ગદ્યમાં વંદ, રંદ), જેમ કે વિચારહ્ણ (વિકારવત્). તાચ્છીદ્યાર્થે દ્વ પ્રત્યય વપરાય છે, જેમ કે જસ્તિર. સ્વાર્થે ક (જ) પ્રત્યય જોડવામાં આવે છે. જેમ કે જમર-જમરજ, સજી-સજિઆ. લ (લક) પ્રત્યયને બદલે સ્ત્રાય થાય છે, જેમ કે જન્માદયિલ્-જન્માદ-જસ્તમ, આપાસયિત્રી-આપાસજસ્તિઆ (સ્ત્રીલિંગ).

વિભાગ ૩.

સર્વનામ પ્રકરણ.

પ્રાકૃતમાં સર્વનામનાં રૂપો નામપ્રમાણે ચાલે છે. અને તે ઉપરાંત કેટલાંક નવાં રૂપો પણ ઉમેરાય છે. નીચે આપેલાં જ = ય નાં રૂપો ઉપરથી બીજાં ખાસ ઉપયોગી રૂપો સમજાઈ જશે.

પ્રાકૃતમાં વ્યંજનાંત શબ્દ શબ્દવામાં આવતો નથી, તેથી સંસ્કૃતનાં કેટલાંક સર્વનામોને પ્રાકૃતમાં વિભક્તિના પ્રત્યયો લગાડતાં કેટલાંક ફેરફાર કરવા પડે છે; જેમ કે કિમ્, યદ્, તદ્ ને બદલે ક, જ, ત થાય છે. યત્તદ્ તું યદ્, અને કાઠકિવાર ય થાય છે (તેથી યસ્તા = યતસ્માત્); જ્દમ્ તું જમ્ થાય છે; જ્દસ્ તું જમ્ થાય છે. કિમ્, યદ્, તદ્ તું બીજું રૂપ કિ, જિ, તિ પણ થાય છે; જોકે આ પાછળના રૂપો સ્ત્રીલિંગમાં વપરાય છે તો પણ પુલિંગની અને નપુંસકલિંગની તૃતીયા અને ષષ્ઠીમાં તેમનાં કેટલાંક રૂપો આવે છે. જ્દમ્ તું પણ તૃતીયાતું જ્દમિના રૂપ થાય છે. ખરી રીતે પ્રાકૃતમાં સર્વનામનાં રૂપોમાં બહુ નિયમિતતા જોવામાં આવતી નથી; તેથી જ્દમસ્તિ ખરી રીતે પુલિંગ સપ્તમીતું રૂપ હોવા છતાં ઘણી વાર સ્ત્રીલિંગમાં વપરાયું છે જેમ કે શાકુન્તલ (મોનીયર વીલીયમ), પા. ૩૬, ૨; ૧૧૫, ૩.

વરચિએ ખાસ આપેલાં કેટલાંક રૂપો હું નીચે આપું છું. તસ્માત્ અને યતસ્માત્ ને બદલે તો અને યત્તો (૬, ૧૦, ૨૦); તસ્ય અને તસ્યા ને બદલે સે (૬, ૧૧); તેપાં અને તાસાં ને વ્યા. ૨

બદલે સિં. અવસ્ પ્રથમા એકવચન ત્રણે લિંગમાં અહ. જે કે વરૂચિએ જણાવ્યું નથી તો પણ
 પનમ્ અને પનામ્ ને બદલે નાટકોમાં જ વપરાયેલું બોવામાં આવે છે. કિયત્, તાવત્ વિગેરેને
 બદલે કેદહ, કેતિઅ, તેદહ, તેતિઅ વિગેરે આપેલાં છે (૪, ૨૫); પરંતુ ખરી રીતે કેદહ વિગેરે
 કોદશ વિ. ને માટે હોવાં બોધ્યે.

જન્ય (પુલિંગ) કાણુ.

એક વચન.	બહુવચન.
પ્ર૦ જો (જં નપું૦ કિન્કિમ્)	જે (જારં, -દ નપું૦)
દ્વિ૦ જં —	જે —
તૃ૦ જેણ, જિણા	જેદિ, જેદિ
પં૦ જત્તો, -હ, જદો, -હ	જાદિતો, જાસુંતો
પ૦ જસ્સ, જાસ'	જાણં, -ણ, જેસિ
સ૦ જર્સિસ, -સ્સિ	જેસુ, -સું
જર્મિમ, -મિમ	
જદિ, જદિ, જત્ય	

ત્રીલિંગ.

એક વચન.	બહુવચન.
પ્ર૦ જા	} જાઓ-હ, જીઓ, -હ જાદિતો, -સુંતો, જીદિતો, -સુંતો જાદિ, જીદિ જાસિ, જાણં, -ણ, જીણં, -ણ, જીસિ, (જાસાં, જેસિ) જાસુ, -સું, જીસુ, -સું
દ્વિ૦ જં	
પં૦ જાદો, -હ, જીદો (?)	
તૃ૦	
પ૦ જસ્સા જાસે (?)	
સ૦ જિસ્સા, જીસે	

વરૂચિએ (૬, ૨૫-૫૩) માં પુરૂષ સર્વનામો આપ્યાં છે. જે રૂપો નાટકોમાં કદી પણ
 આવતાં નથી તેમને મેં છંદકેટમાં મૂક્યા છે. બહુવચનનાં રૂપો તદન જુદીજ રીતે ધાય છે, જેમ કે
 તુજ્ઞ, તુમ્હ, તુમ્મ, અમ્હ, તથા મજ્ઞ.

અસ્મદ્ 'હું'

એક વચન.	બહુવચન.
પ્ર૦ અહં (હં, અહર્મ, અહમિમ)	અમ્હે (વચં ગદ્યમાં વપરાય, ઘર૦ ૨૦, ૨૫)
દ્વિ૦ મં, મમં (અહમિમ)	અમ્હે, ણો (ણે)
તૃ૦ મે, મય (મદ, મમાદ)	અમ્હેદિ, -દિ
પં૦ મત્તો (મદત્તો, મમાદો, -હ મમાદિ)	અમ્હાદિતો, -સુંતો
પ૦ મે, મમ, મજ્ઞ, મહ'	ણો, અમ્હ, અમ્હાણં, અમ્હે' (મજ્ઞ ?).
સ૦ મહ (મય, મમમિ)	અમ્હેસુ

૧. વળી, નાટકોમાં નપુંસકલિંગ વહીમાં કોઈ 'શામાટે' એવા અર્થમાં વપરાયેલું જણાય છે.
૨. આ રૂપો ઉપરાંત સત્ત્વ૦ માં મમં અને મહ રૂપો વપરાયેલાં જણાય છે.
૩. આ રૂપો ઉપરાંત સત્ત્વ૦ માં અમ્હ, અર્મ, મ્હ, અમ્હિ, અમ્હાણ રૂપો વપરાયેલાં જણાય છે.

યુષ્મદ 'તુ'

પ્ર૦	તુમં, તું (તં)	તુજ્ઞે, તુમ્હે
દ્વિ૦	(તં, તું) તુમં	તુજ્ઞે, તુમ્હે, વો
તૃ૦	તદ્, તપ્, તુમપ્, તુમે, (તુમાદ્) તે, દે	તુજ્ઞેહિં, તુમ્મેહિં, તુમ્મેહિં
પ૦	તત્તો (તદ્તો, તુમાદો, -હ, તુમાદિ)	તુમ્માદિતો, -સુંતો
પ૦	(તુમો) તુદ્, તુજ્ઞ, તુમ્દ, તુમ્મ, તુવ, તુવ, તે, દે	વો, (મે) તુજ્ઞાણં, તુમ્દાણં
સ૦	તદ્, તુદ, તપ્, (તુમપ્, તુમે તુમમ્મિ	તુજ્ઞેસુ, તુમ્દેસુ

પ્રથમનાં ત્રણ સંખ્યાવાચક શબ્દોનાં પ્રાકૃતરૂપ પણ અગર ઘઠ્ઠ, દો (પ્રથમ અને દ્વિતીય-દો, દુવે, દોણિ; પછી-દોણ્ઠ), તિ (પ્રથમ-તિણિ, પછી-તિણ્ઠ) થાય છે. પપ્ ને બદલે છ થાય છે.

વિભાગ ૪.

ક્રિયાપદ પ્રકરણ

ખરી રીતે ભેતાં પ્રાકૃતમાં એકજ ગણ (= સંસ્કૃતનો પહેલો અને છઠ્ઠો) છે. સામાન્ય રીતે બધા ધાતુઓને આજ ગણમાં લાવવાનો પ્રયત્ન કરવામાં આવે છે, તો પણ અન્યાન્ય ગણનાં કેટલાંક રૂપો નાટકોમાં ભેવામાં આવે છે.

નામ પ્રક્રિયામાં જણાવ્યા પ્રમાણે ક્રિયાપદમાં પણ દ્વિવચનરૂપ થતાં નથી.

કર્તારિ પ્રયોગમાં રૂકેત વર્તમાનકાળ, સામાન્ય ભવિષ્યકાળ, તથા આજાર્થે ભેવામાં આવે છે.

વર્તમાનકાળનાં રૂપો.

એક વચન.

પ્ર૦ પુ૦	હસામિ, હસમિ.
	હસમિહ
દ્વિ૦ પુ૦	હસસિ

તૃ૦ પુ૦ હસદિ^૧ હસદ્

મધ્યમ પ્રયોગમાં ત્રણે પુરૂષનાં એકવચનનાં રૂપો થાય છે, જેમ કે ૧. મણે, ૨. સહસે, ૩ સહવે, અથવા સહપ.

બહુવચન.

હસામો, -મુ, -મ, હસિમો, -મુ, -મ
હસમો, -મુ, -મ, હસમ્હો, -મ્હ
હસદ્ (ગદ્યમાં હસધ, -ધં)
હસિત્યા (હસત્ય ?)
હસન્તિ ^૨

આજાર્થ.

એક વચન

૧. હસસુ (ચર૦ ૭. ૧૮)
૨. હસસુ, હસ, હસાદિ, હસસ્સ
૩. હસદુ ^૩ , હસડ

બહુવચન.

હસામો, -મ હસમો, -મ, હસમ્હ.
હસદ્, હસધ, -ધં
હસન્તુ.

૧. આ ગદ્યમાં વપરાયું રૂપ છે. તેજ પ્રમાણે હું વાળાં સામાન્યરૂપ, તથા હવ વાળા ભૂત કુદત પણ ગદ્યમાં વપરાતાં રૂપો છે.

૨. ભસુ 'થસુ' નાં રૂપો નીચે પ્રમાણે છે. એક વચન. ૧. મમ્હિ, ૨. ભસિ, ૩. ભાપિ, બહુવચન. બમ્હો, બમ્હ, ૩ ભન્તિ. તેજ પ્રમાણે અંકલીટીકમાં એક વચ ૧ મિહ, ૨ સિ ૩ તિય, બહુવચ ૧ મ્હો, મ્હ, ૨ ત્ય. અન્યતત્તલભૂતમાં એકવચ ૧. ભાસિ, ભાસિ, ૨. ૩. ભાપિ.

કેઈ પણ પુરૂષપ્રત્યયની પહેલાં જ ને બદલે વ વિકલ્પે કરી શકાય છે (વરં ૧, ૩૪), જેમ કે હસેમિ, વિગેરે; હસેદિ, હસેદુ, વિં; બીજા શબ્દોમાં કહીએ તો, અય તું દુક્રિ રૂપ વ હોવાથી એમ કહી શકાય કે પ્રાકૃતમાં ક્રિયાપદોનાં રૂપો સંસ્કૃતના દસમા ગણના ક્રિયાપદો પ્રમાણે વિકલ્પે થાય છે. દ્વારાંત અને ઉકારાંત પહેલા ગણના સંસ્કૃત ક્રિયાપદોના અય અને અવ ને બદલે વ અને ઓ મૂકવામાં આવે છે, જેમ કે જયતુ—જેદુ, મવસિ—મ્વેસિ; અથવા તો યં નો લોપ થાય છે, અને વ ને રાખવામાં આવે છે, જેમ કે જમદુ, હવસિ. ક્રકારાંત ક્રિયાપદોમાં અર મૂકવામાં આવે છે, જેમ કે દરતિ—દરદ, મિયતે—મરદ. ચોથા ગણના ધાતુઓમાં અંત્ય વ્યંજન બેવડાય છે, જેમ કે કુપ્યસિ—કુપ્પેસિ, અથવા ય નો લોપ કરીને ભુદુન્ રૂપ કરવામાં આવે છે, જેમ કે વુપ્યસિ—વુજ્જસિ. સાતમા ગણના ધાતુઓમાં અનુનાસિક ઉમેરવામાં આવે છે, અને પછી બીજા ગણોની માફક તેમનાં રૂપો ચલાવવામાં આવે છે, જેમ કે રુણદ્ધિ—રુન્ધદિ, રુન્ધદ, રુન્ધેદ. પાંચમા ગણના ધાતુઓમાં જ ઉમેરવામાં આવે છે, જેમ કે ઝરુણોમિ—સુણામિ, ઝરુણ્વન્તુ—સુણન્તુ; કેટલીક વાર સંસ્કૃત રૂપો પણ રાખવામાં આવે છે, જેમ કે ચિણોમિ; સુણ તથા સુણાહિ. નવમા ગણમાં ણ અને જ બેઉ વપરાય છે, જેમ કે જાણાદિ અને જાણદિ (જાનાતિ). તે ઉપરાંત જાણાહિ અને જાણીહિ રૂપો પણ બોવામાં આવે છે.

વિધ્યથનાં માત્ર કેટલાંક ત્રુટિત રૂપો જ બોવામાં આવે છે, જેમ કે ૧. મવેઝં, જીવેઝં, ૩. મવે, હરે (પણ ભુઓ-વેબરનું સપ્તશં, પા. ૬૨.)

પ્રાકૃતમાં લવિધ્યકાળનાં ઘણાં રૂપો છે.

(ઘ) ખાસ ઉપયોગમાં આવતાં રૂપોના પ્રત્યયોનીચે પ્રમાણે છે.

એકવચન. ૧. સ્તં, સ્તામિ. ૨. સ્સસિ. ૩. સ્સદિ, સ્સદ.

બહુવચન. ૧. સ્તામો. ૨. સ્સથ, સ્સદ. ૩. સ્સન્તિ.

આ પ્રત્યયો લગાડતાં પહેલાં જ લગાડવામાં આવે છે, જેમ કે હસિસ્તં; વિગેરે. મૂળ સંસ્કૃત પ્રત્યય વ્ય તું આ સ્ત તે પ્રાકૃત રૂપ છે.

(ઘ) બીજા પ્રત્યયોમાં સ્ત ને બદલે ચ્છ વપરાય છે, જેમ કે સોચ્છં (શ્રુ તું) પ્રથમ પુરૂષી એકવચન). (ભુઓ વરં ૭, ૧૬, ૧૭.)

(ક) ત્રીજા બીજા પ્રત્યયોમાં સ્ત ને બદલે હિ વપરાય છે, જેમ કે હસિહિમિ વિગેરે. આ ઉપરાંત પહેલા પુરૂષ એકવચન અને બહુવચનનાં હસિહામિ અને હસિહામો એવાં રૂપો થાય છે. [વળી, કાહં (ક તું) રૂપ, વાહં (વા તું) રૂપ) પણ થાય છે; વરં ૭. ૨૬; કાહં રૂપ વેબરના સપ્તશં પાં ૧૬૦ માં વપરાયેલું છે.]

[વળી, જા, અને જા પ્રત્યયો લગાડતાં કેટલાંક વિરલ રૂપો બને છે, (વરં ૭, ૨૦-૨૨), જેમ કે હોજ, હોજા, હોજહિદ, હોજાહિદ, વિગેરે. કેટલાંક ફંજ અને હોજ અંતવાળા ભૂતાર્થ વચનનાં વિરલ રૂપો પણ હોખાય છે, (વરં ૭, ૨૩-૨૪) જેમ કે હુવીઝ, હોહીઝ (અમૂન્); ભુઓ લેસન્સ ઈન્સ્ટં, પાં ૩૫૩-૮. સપ્તશં માં જા અને જા છેડાવાળાં કેટલાંક વિધ્યથ રૂપો વપરાયેલાં છે.]

પ્રાકૃતમાં કમંભિ પ્રયોગમાં કતંરિનાજ પ્રત્યયો વપરાય છે; અને ય પ્રત્યયને બદલે ફંજ અથવા ફજ પ્રત્યય લગાડે છે; જેમ કે પઢીઝદ, પઢીઝદિ અથવા પઢિજ્ઝદ (પઢ્યતે). કેટલીક વાર ય રાખવામાં આવતાં પૂર્વના વ્યંજન પ્રમાણે તેનું રૂપાંતર થાય છે, જેમ કે ગમ્મદ (ગમ્યતે); દિસ્સદ અગર વીસદ (દહ્યતે).

ગ્રેરક લેહના પણ બે રૂપો છે; એકમાં સંસ્કૃતના અચૂ નો વ કરવામાં આવે છે, જેમ કે કરન્ક ઉપરથી કારેદિ થાય છે (ધાતુમાંના પહેલા અક્ષરના જ નો કા કરવામાં આવે છે, વરં ૭, ૨૫)

બીજામાં આવે (આવે ?) લગાડવામાં આવે છે; જેમ કે કારાવેદિ અથવા કરાવેદિ (અહીં, પ્રથમના અનો-વિકલ્પે જા. થયો છે, ઘર૦ ૭. ૨૭).

તો ધાતુનો અત્યાક્ષર વ્યંજનહોય તો તુમ્હુ રૂપ કરતી વખતે તુમ્ લગાડવામાં આવે છે, પણ અત્યાક્ષર-સ્વર હોય તો હુમ્ લગાડવામાં આવે છે, જેમ કે ઘસ્ટ ઉપરથી ઘસ્ટું, ની ઉપરથી નેહું. ઘણીવાર વ્યંજનનાં ધાતુને રૂં અથવા ઘ લગાડીને ધાતુને સ્વરાંત બનાવવામાં આવે છે, અને ત્યાર પછી તેને હુમ્ પ્રત્યય લગાડવામાં આવે છે; જેમ કે રમિહુ (રન્તુ), કાવ્યમાં ઘણી વાર દ્વનો લેખ કરવામાં આવે છે, જેમ કે હસ્ટ ઉપરથી હસેડં, હસિડં.

સંસ્કૃતના ત્વા અતવાળા કૃદન્ત બનાવવાને પ્રાકૃતમાં મૂળ અગર ઝળ પ્રત્યય લગાડવામાં આવે છે, જેમ કે કાન્ક ઉપરથી કાઝળ, ઘેત્-ગ્રહ ઉપરથી ઘેત્તળ. સંસ્કૃતના ય અતવાળા કૃદન્ત બનાવવાને પ્રાકૃતમાં જ્ઞ લાગે છે, અને ગદ્યમાં ઘણા અર્સ આના રૂપ વપરાય છે, જેમ કે ગેળ્-ગ્રહ્-હ્ ગેળ્હિય. કેટલીક વાર ગદ્યમાં ત્વા ને સ્થાને હુમ્ વપરાય છે, જેમ કે કહુમ્ (કૃત્વા); ગદુમ્ (ગત્વા), વિગેરે. (ઘર૦ ૧૨. ૧૦).

કર્તારિ વર્તમાન કૃદન્તને અતે કન્ત પ્રત્યય (અથવા, ઘર૦ ૭. ૩૪ પ્રમાણે પંત) લાગે છે; જેમ કે પઢંત, સુર્ણત. (વરરથિ ૭. ૧૧) ના કહેવા પ્રમાણે સ્ત્રીલિંગનાં પઢંતે તેમજ પઢંતી એમ બે રૂપો થાય છે. મધ્યમ-પ્રયોગમાં વર્તમાન કૃદન્તનો પ્રત્યય માળ છે (સ્ત્રીલિંગમાં માળી અથવા માળા પ્રત્યય લાગે છે).

કર્મણિ-પ્રયોગમાં ન્ત અને માળ પ્રત્યયો લાગે છે, અને તેની પહેલાં જ્ઞ પ્રત્યય લાગે છે, જેમ કે કરિજન્ત (કાર્યમાળ), તેમજ, હજ્જન્ત (દહ્યમાળ), રસ્યમાળ (રસ્યમાળ). ભૂત-કૃદન્તના રૂપો સંસ્કૃતપ્રમાણે થઈ તેમાં પ્રાકૃતના નિયમે પ્રમાણે ફેરફાર થાય છે, જેમ કે સુદ અથવા સુઅન્થુત; લઙ્-લઙ્ઘ; કોઈક વાર હ વચ્ચે ઉમેરવામાં આવે છે, જેમ કે ધરિદ (ધૃત), સુગિદ (શુત). આ ઉપરાંત કેટલાંક અનિયમિત રૂપો થાય છે, જેમ કે રણ્ણ (રદિત). વિધ્યર્થ કૃદન્તના ય નો તેની પહેલાંના વ્યંજન પ્રમાણે ફેરફાર થાય છે, જેમ કે વિણ્ણ (વિદાન્ણ), કજ્જ (કાર્ય); અંતીય પ્રત્યયને બદલે ઝળિઝ, અથવા ઝળિજ્ઞ થાય છે, જેમ કે પૂઝળિઝ (પૂજનીય), કરળિજ્ઞ (કરણીય).

પ્રાકૃતમાં પદોક્ષભૂત કાળ નથી. તેના ઠેકાણે અકર્મક ધાતુના અર્થમાં ભૂતકાલવાચક ધાતુ-સાધિત (વશેષણુ (કર્તારિ પ્તઃ) નો ઉપયોગ કરવામાં આવે છે. અને સકર્મક ધાતુના અર્થમાં તેવાજ રૂપની કર્તાની તૃતીયા અને સકર્મની પ્રથમા વિલક્ષિત વડે કામ લેવામાં આવે છે.

અવ્યયોવિષે પ્રાકૃતમાં વિશેષ બાધવા જેવું કંઈ નથી. ડૂકત એટલુંજ બાધવું બોધ્યે કે ક્ષતિ ને બદલે સ્તિ મૂકવામાં આવે છે, જેની પહેલાં જ્ઞ, રૂં અથવા ઝને-હુસ્વ બનાવવામાં આવે છે, અને અનુ-સ્વારની પછી આવે. તો તિ. થઈ જાય છે. -હુસ્વ સ્વર અગર ઘ, ઝૌ પછી જ હુ આવે તેના છો થાય છે, તથા દીઘ સ્વરની પછી (તથા અનુસ્વાર પછી પણ) જુ થાય છે. તેજ પ્રમાણે ઘ્વ ને બદલે જ્ઞેવ્વ અથવા જ્ઞેવ, અને ઘંવ્વ તેમજ ઘ્ઞ થાય છે. જ્ઞ ને બદલે વિઝ તથા વ્ઞ થાય છે; અપિ જે સ્વર પછી આવે તો તેતુ વિ અથવા વિ થાય છે, અને અનુસ્વાર પછી આવે તો પિ થાય છે, તથા વાક્યના આરંભમાં ઈવિ થાય છે.

આ સ્થળે માગધી ભાષાનું નામ જણાવવાની જરૂર ગણું છું. તેમાં સ અગર પ ને બદલે શ

૧. કાવ્યમાં સ્વરની પહેલાં આવેલું અનુસ્વાર પોતાની સાથેના અત્યસ્વરને દીઘ બનાવે છે. પણ જો અનુસ્વારને મ્ તરીકે લખવામાં આવે તો તે સ્વર -હુસ્વ જ રહે છે, અને ત્યાર બાદ એ બેઠ શબ્દોની સંધિ થાય છે; ભુચ્ચો વેબરં, ક્લચ્ચં પાઠ ૪૭.

થાય છે, તથા ર્ ને બદલે ર્ થાય છે; જ ને બદલે ય્ તેમજ ય્ ને બદલે ર્ થાય છે; જ કારણે નામના પ્રથમા એક વચનમાં છેવટે પ અગર-હ આવે છે, જેમ કે માશે (માપ):

ઉપરના નિબંધમાં, ધરવાપ્રમાણે, સાધારણ વિદ્યાર્થીઓને કાળિદાસ અગર ભાવસૂત્રનો નાટ-કોમાંનું પ્રાકૃત સમજવા માટે જોઈએ તેટલું જ્ઞાન આપવામાં આવ્યું છે. અલબત્ત, મૃચ્છકટિક અગર વિક્રમોર્વશીયનું પ્રાકૃત સમજવાને કેટલાક વિશેષ જ્ઞાનની જરૂર છે.

૧. જેને પ્રાકૃતનો અભ્યાસ વધારવો હોય તેમણે નીચેના ગ્રંથોનું અવલોકન કરવું:—

1 Lassen's Institutiones Linguae Pracriticae, 1837. 2. Weber's સંસ્કૃતકાવ્ય of હાલ with his excellent introduction, 1870. 3. વરદચિ ને પ્રાકૃતપ્રકાશ, ૧૮૫૪. 4. પ્રાકૃત કાલ-માપા—(માગધી)—વ્યાકરણ of Hemchandra, Bombay, 1873; આ ગ્રંથની વિવેચનાત્મક આવૃત્તિ ડૉ. પીથલે તૈયાર કરે છે. તે ગ્રંથ ખાસ કરીને જેન પ્રાકૃત માટે ઉપયોગી છે.



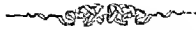
પરિશિષ્ટ:—જર્મન એડિશન-ટલ સોસાયટીના 'અલ-હુલુ'ગેન' ના પાંચમા પુસ્તકમાં ગ્રી. વેબરે પ્રકટ કરેલા હાલકવિના સપ્ત શ્લોકમાંથી આયાવૃત્તની દસ ગાથાઓ નીચે આપી છે.

૧. પાત્રપટિઅસ્સ પદ્ધિ પુટ્ટિ પુત્તે સમારહંતમ્મિ ।
દદમણ્ણુદૂમિઆપ વિ દ્દાસો ઘરિણીપ-નિઘન્ટો ॥ (૧૧.)
૨. અજ્ઞ મપ તેણ વિણા અણ્ણુઅસુદ્દાદ સંમરન્તીપ ।
અદિપ્પવમેદ્દાણ રવો ણિસામિઓ ષડ્ડપદ્ધો વ્વ ॥ (૨૬)
૩. તુજ્ઞ વસદ્દ ત્તિ દિઅં અમેદિ દિદ્ધો તુમં તિ અર્છીદ્દં ।
તુદ્દ વિરદ્દે કિસિઆદ્દ તિ સીપ અંગાદ્દ વિ પિઆદ્દ ॥ (૪૦)
૪. કહ્લં કિર સરદિઅઓ પવસદ્દ પિઓ ત્તિ સુણીઅદ્દ-જ્ઞામ્મિ ।
તદ્દ વડ્ડ મઅવદ્દ ણિસે જંદ્દ સે કહ્લં વિઅ ણ હોદ્દ ॥ (૪૫.)
૫. અદ્દસણેણ પેમ્મં અવેદ્દ અદ્દસણેણ વિ અવેદ્દ ।
પેસુણજ્ઞાણાપ્પિપ્પણ વિ અવેદ્દ, પમેઅ વિ અવેદ્દ ॥ (૮૦.)
૬. દક્ખિણણેણ વિ પન્તો સુહઅ સુદ્દાવેસિ અંદ્દ હિઅઆદ્દ ।
ણિક્કદ્દઅવેણ જાણં ગઓ સિ, કા ણિવુદ્દો તાણ ॥ (૮૪.)
૭. તદ્દદ્દા કઅગ્ગ મહુઅર ણ રમાસિ અણ્ણાસુ પુપ્ફજોદ્દિસુ ।
વદ્દફલમારગરુદ્દં માલદ્દનેર્ણિદ્દ પરિચ્ચઅસિ ॥ (૯૧)
૮. ઉપ્પણ્ણત્યે કલ્લે અદ્દચિન્તન્તો ગુણાગુણે તમ્મિ ।
અરસુરસપ્પેચ્છિ-ત્તણેણ પુરિસો હરદ્દ કલ્લં ॥ (૨૧૮.)
૯. કલ્લદ્દંતરે વિ અવિણિ-ગ્ગઆદ્દ હિઅઅમ્મિ જરમુવગઆદ્દ ।
સુઅણકઆદ્દ રહસ્સા-દ્દ દહદ્દ આઉપ્પલ્લ અમ્મી ॥ (૩૨૮.)
૧૦. વોલીણોલ્લિઅસુ-અજોવ્વણા પુત્તિ કિણ્ણ દૂમેસિ ।
દિદ્દપ્પણદ્દપોરા-ગજ્ઞાવઆ જમ્મમૂમિ વ્વ ॥ (૩૪૨.)



॥ नमोऽस्तु धर्मणाय भगवते श्रीमहावीराय ॥

॥ उपकेशगच्छीया पद्मावलिः ॥



॥ श्रीमत्पार्श्वजिनेन्द्राय नमः ॥ श्रीमत्केशीकुमारगणधरेभ्यो नमः ॥ श्रीमद्रत्नप्रभसूरि-
सद्गुरुभ्यो नमः ॥ ओक्केशाशद्वयार्थाः लिख्यन्ते ॥ इतिक् ऐश्वर्ये, ओक्केषु गृहेषु इष्टे पूज्यमाना सती या
सा ओक्केशा सत्यिका नाम्ना गोत्रदेवता । अत्र ओक्क शब्दो अकारांतः तस्यां भवस्तस्या अयामिति वा ओक्केशः ।
भवे इत्यण् प्रत्ययः, तस्येदमित्यनेन वा अणप्रत्ययः । सत्यिका देवी हि नवरात्रादिषु पर्वसु अस्मिन् गणे
पूज्यते सा चास्य गणस्य अधिष्ठात्री अतएवाम्य गच्छम्य ओक्केश इति यथार्थं नाम प्रोच्यते सद्भिरिति
प्रथमोऽर्थः ॥ १ ॥

ईशानमीशः ऐश्वर्य ओक्कैर्महद्विकथाद्भ्युत्पन्नलोकानां गृहरीशो यस्यां सा ओक्केशा ओसिका
नयरी । तत्र भव ओक्केशः । ओसिकानगर्या हि अम्य गणम्य ओक्केश इति नाम श्रीरत्नप्रभसूरीश्वरतो
विख्यातं जातमिति द्वितीयोऽर्थः ॥ २ ॥

अः कृष्णः उः शंकरः को ब्रह्मा । एषां द्वंद्वसमासे ओकास्ते ईशते पूज्यमानाः संतो देवत्वेन
मन्यमानाः संतश्च येभ्यस्ते ओक्केशाः । ओक्के कृष्णशंभुब्रह्मभिर्देवरीशते येते वा ओक्केशाः । परशासन-
जनाः क्षत्रियराज्यपुत्रादयः प्रतिबोधविधानात्तेषामयं ओक्केशः । तस्येदमित्यण्प्रत्ययः । श्रीरत्नप्रभसूरि-
भिस्तेषां पारतीर्थिकधर्मनिष्ठातः सिद्धान्तोक्तविशुद्धजैनधर्मनिष्ठायां प्रतिबोधदानेन प्रवर्तना कृता । तथा
च श्रूयते पूर्वं हि श्रीरत्नप्रभसूरीणां गुरुवः श्रीपार्श्वपत्नीयकेशीकुमारानगारसंतानयित्वेन विख्यातिर्मतो
जगति जज्ञिरे । ततः प्राप्तसूरिन्ताः समस्तंचा रमणीयाऽतिशयनिचयाः स्वकीयनिस्तुपदेशमुखीप्राग्भार-
संभारात् ज्ञातदिग्दशसूरयः श्रीमच्छ्रीरत्नप्रभसूरयः कियति गते काले विहरंतः संतः श्रीओसिका-
नगर्यां समवसृताः । तस्यां च सर्वं लोकाः पारतीर्थिकधर्मधारिणो संति । न कोपि जैनधर्मधारी । ततः सा-
ध्वचारं प्रतिपालयद्भिः सिद्धान्तोक्ततीर्थिकधर्मशुभकर्मप्रवृत्तयां कुर्वद्भिः सद्भिः श्रीरत्नप्रभसूरीभिः पार-
तीर्थिकानेकच्छेकविवेकिलोकाः प्रतिबोधितान्ततः एते ओक्केशा इति विरुद्धो विख्यातो जातः । इति तृतीयो
अर्थः ॥ ३ ॥

अः कृष्णः आः ब्रह्मा, उः शंकरः, एषां द्वंद्वे आवस्ततः ओभिः कृष्णब्रह्मशंकरंदेवैः कायते
रतुयते देवाधिदेवत्वादिति ओक्कः प्रस्तावात् श्रीवर्षमानधर्मा कश्चिदिति उ प्रत्ययः, ओक्कश्चासौ ईशश्च
ओक्केशमन्यायं ओक्केशः वर्तमानतीर्थविपतिश्रीवर्षमानजिनपतितीर्थाश्रयणादिनि चतुर्थोऽर्थः ॥ ४ ॥

अः अर्हन्, अः स्यादर्हति सिद्धे चैत्युक्तेः । प्रस्तावादिह अ इति शब्देन श्रीवर्धमानस्वामिं प्रोच्यते । ततः अस्य ओको गृहं चैत्यमिति यावत्, ओकः श्रीवर्धमानस्वामिचैत्यमित्यर्थः । तस्मादीशः ऐश्वर्यं यस्य स ओकेशः यतोयं गणः श्रीमहावीरतीर्थकरसान्वित्यतः स्फातिमवापेति पंचमोऽर्थः ॥ ५ ॥ एवमस्य पदस्यानेकेष्वर्थः संबोधवति परं किं बहुश्रमेणेति ॥

अथ उपकेशशब्दस्य कियंतोऽर्था लिख्यन्ते । उप समीपे केशाः शिरोरूपाः सत्यस्येति उप-केशः । श्रीपार्श्वपत्नीयकेशिकुमारानगरः । एतदुत्पत्तिवृत्तान्तस्तुः श्रीस्थानांगृत्त्यादी सप्रपंचः प्रतीत एवास्ति । तत एवावगंतव्यः । ततः उपकेशः श्रीकेशिकुमारानगरः पूर्वजो गुरुर्विद्यते यस्मिन् गणे स उपकेशः । अत्रादित्वाद् प्रत्ययः । अस्मिन्गणे हि श्री केशिकुमारानगरः प्राचीनो गुरुरासीत् । ततो यथार्थमुपकेश इति नाम जातमिति प्रथमोऽर्थः ॥ १ ॥

उपवर्जितास्यक्ताः केशा यत्र सः उपकेशः ओसिकानगरी तस्यां हि सात्त्विका देव्याश्चैत्यमस्ति । तदग्रे च धर्मनैनः प्रथमजातवालकानां मुदिने दिने मुंडनं कथ्यते तत उपकेश इति यथार्थं नाम ओसिकानगर्याः प्रख्यातं जातं । तत भवो यो गच्छः स उपकेशः प्रोद्यते सद्भिर्विद्वद्भिः । अत्र हि भवे इत्यनेन सूत्रेण अणि प्रत्यये संज्ञापूर्वकस्य विधेरनित्यत्वाद्बुद्धेरभावः । श्रीरत्नप्रभसूरितो अनेकश्रावक प्रतिबोध-विधानानंतरं लोके गच्छस्य उपकेशेति नाम प्रसिद्धं जातमिति द्वितीयोऽर्थः ॥ २ ॥

को ब्रह्मा, अः कृष्णः, अः शंकरः, ततो द्वंद्वे काः । तैरीष्टे ऐश्वर्यमनुभवति यः सः केशकानां ईशः ऐश्वर्यं यस्माद्वा केशः पारतीर्थिकधर्मः सः उपवर्जितस्त्यक्तो यस्मात्स उपकेशस्तीर्थकृदुक्तविशुद्धधर्मः स विद्यते यस्मिन् गच्छे स उपकेशः । अत्रापि अत्रादित्वादप्रत्ययः । इति तृतीयोऽर्थः ॥ ३ ॥

कं च मुखं ई च लक्ष्मीः कयौ ते ईशे स्वायते यत्र यस्माद्वा स केशः—अर्थात् जैनो धर्मः । स उपसमीपे अधिको वाऽस्माद्गच्छात्स उपकेशः इति चतुर्थोऽर्थः ॥ ४ ॥

कश्च अश्च ईशश्च केशाः—ब्रह्मविष्णुमहेशाः । तद्धर्मनिराकरणात्ते उपहता येन सः उपकेशः । प्रकरणादत्र श्रीरत्नप्रभसूरिः गुरुः तस्यायं उपकेशः । अत्रापि तस्येदमित्याणि प्रत्यये पूर्वबद्धेः अभावो न दोषोपपद्येति पंचमोऽर्थः ॥ ५ ॥

इत्यमन्येऽप्यनेके अर्था ग्रन्थानुसारेण विधीयन्ते, परमलं बहुश्रमेणेति । एवमुक्तव्यक्तयुक्तित्याक्ति-शक्त्या ओकेशोपलक्षणे उभे अपि नाम्नी यथार्थं यत्रां प्राचतः ॥ इति ओकेशोपकेशपदद्वयदशार्थी समाप्ता ॥

संवत् १९५९ वर्षे ॥ श्रीमद्विक्रमनगरे सकलवादिबुदकंदकुहालश्रीकवकुदाचार्यसंतानीयश्रीमद्दी-सिद्धसूरीणां आग्रहतः श्रीमद्बृहत्सरतरगच्छीयवाचनाचार्यश्रीज्ञानविमलगाणिशिष्यपांडितश्रीबलभगणिविरोचि-ता चैयम् । श्रीरस्तु ॥

ग्रीष्महेमंतिकान् मासान् अष्टौ भिक्षुः प्रचक्रमे ।

रक्षार्थं सर्वजंतूनां वर्षास्वैकत्र संवमेत् ॥ १ ॥

मनुष्याणां सर्वेषु पदार्थेषु सारो धर्म एव । मनुष्यत्वं धर्मेणैव वर्ण्यते ॥ स धर्मो वर्षासु मुनिपार्श्वत श्रोतव्यः । यतयो वषट्पिकत्र तिष्ठन्ति । किमर्थं सर्व जंतूनां रक्षार्थं । धर्मस्य सारं सर्वं

जीवेषु दया । वर्षादु पृथ्वी जीवाकुला भवति संयमो विराध्यते । अतो जीवरक्षार्थं चतुर्मासकल्पं तिष्ठ-
ति । शिवशासने पि जीवदयास्वरूपमेवं व्यावर्णितं —

पश्यन् परिहरन् जंतून् मार्जन्या मृदुसूक्ष्मया । एकाहविचरेद्यस्तु चंद्रायणफलं भवेत् ॥ १ ॥

महाभारते कृष्णद्वीपायनेनाप्युक्तं—

यो दद्यात्कांचनं मेरुः कृत्स्नां चापि वसुंधरां । एकस्य जीवितं दद्यात् न च तुल्य युधिष्ठिरः ॥ २ ॥

परेष्वेवं वर्दन्ति जैनवाक्यस्य किं वाच्यं । मुनयः क्षेत्रस्य त्रयोदश गुणान् वीक्ष्य तिष्ठति

चाखिल १ पाण २ थंडिल ३ वसहि ४ गोरस ५ जणा ६ उल्ले ७ विज्जे ८ ।

ओसह ९ धन्ना १० हिब्ब १० पासंडा ११ भिलु १२ सिज्जाय ॥ १३ ॥

एते त्रयोदश गुणाः । तत्र स्थिता दशधा समाचारी पालयन्ति—

इच्छां १ मिच्छा २ तेहकारी ३ आवास्मिया ४ नितीहिया ५ आपुच्छणा य ६

पडिपुच्छ ७ छंदणा य ८ निमंतणा य ९ उपसंपयाकाले ॥ १० ॥ समाचारी भवे दसहा ॥ ११ ॥

पुनः धर्मशास्त्रण्युपदिशति । श्रद्धा वासनावागमितिचिन्ताः शृण्वन्ति । परं चातुर्मासकात्पंचाश-
दिने व्यतिक्रान्ति कल्पावसरं ।

वीसाहि दिणेही कप्पो पंचगहाणीय कप्पववणायं ।

नव (९) सय तेणू (९३) एहिं वुच्छिक्का संघभाणाए ॥ १ ॥

अधुना कल्पावसरे अन्यग्रन्थादरो न यथा दिव्यकौस्तुभाभरणं प्राप्य अन्यरत्नाभरणेषु निरा-
दरत्वं जायते यथा न कुंडपातालासृतं प्राप्याङ्गुलास्वादो न रोचते । भारतीभूषणकविजनवचनरच-
नामासाध सामान्यजनवचांसि न रोचते । चक्रवर्तिन अग्रे सामान्यराजानोऽपसरन्ति देवानां नंदीश्रवणे-
नान्यशब्दा हीनतां व्रजन्ति । गन्धहस्तिनो मध्ये अन्यगन्धे मदजलविकला भवन्ति । केवलज्ञानागमने अन्य
ज्ञाना अपसरन्ति । कल्पवृक्षाग्रेऽन्ये तरवाः न राजते । सूर्योदये स्वद्योतस्य का प्रभाः । मुक्तिसौख्याग्रे कानि
सौख्यानि । सिंहध्वनेः पुरो यथा अन्यं शब्दा न राजते तथा कल्पावसरे अन्यानि शास्त्राणि आदरो न ।
स कल्पो अनेकविधः श्रीशत्रुघ्ननेयकल्पः गिरनारगिरकल्पः वदेव गिरिकल्पः अर्जुनाचलकल्पः अष्टापदकल्पः
समेतगिरकल्पः हस्तिनापुरकल्पः मथुरानगरकल्पः सत्यपुरकल्पः शंखेसरकल्पः स्तंभनतीर्थ
कल्पः यतीनां विहारकल्पः वज्रस्य कल्पसंज्ञा अनेन प्रकारेण अनेके कल्पसंज्ञाः । एके कल्पाः एवं
विधा वर्तते । यस्य प्रमाणेन श्री पादलिताचार्यो यावदायाति साधवो विद्वन्त्य तावत् पंच तीर्थं नमस्कारं
विधायागच्छन्ति । एके कल्पास्ते उच्यते येषां प्रमाणेन अदशीकरणं आकाशगमनं स्वर्णसिद्धिः, लक्ष्मी
प्राप्ति मित्र पुत्र बांधवसंजन प्राप्ति प्रभृति लब्धयः संपद्यन्ते । परमं कल्पोऽमेय महिमा निधिः इह लोका-
मीदृ सौख्यकारणं । अयं कल्पो दशाश्रुतस्कंधस्याष्टममध्ययने । नवमपूर्वात् श्री भद्रबाहु स्वामिनोद्धनः
अमेयमहिमानिधानः सर्वपापक्षयं करः यथा श्रूयमानः द्रुमेषु कल्पद्रुः सर्वकामफलप्रदः यथौषधीषु पीयूषं सर्वरोग
हरं परं रत्नेषु गुरुडोद्धारं यथा । सर्वविपापहारः मंत्राधिराजो मंत्रेषु यथा सर्वार्थ साधकः । यथा
पर्वसु दर्पाणी सर्वारत्ना सुखावहा तथा कल्पः सद्धर्मे शास्त्रेषु सर्व पापहस्तथा सर्व सिद्धान्त मध्ये

श्रीकल्पो गुरुतरः यथा पर्वतानां मध्ये मेरुः तीर्थं माहि शत्रुंजयः दानमध्ये अभयदान अक्षरमध्ये
 ॐकार देवोऽप्विन्द्रः ज्योतिषीषु चंद्र गजेन्द्रेऽप्यैरावण ममुद्रेषु स्वयंभुरमणः तुरंगमेषु रेवत ऋतुषु वसंत
 मृत्तिकयां तूरी सुगंधीषु कस्तुरी धातुषु पीतं मोहनेषु गीतं काष्ठेषु चंदनं इंद्रियेषु नेत्रं व्यवहारं पर्वषु
 दीपालिका धर्मशास्त्रेषु कल्पः सर्व पापहरः सर्व दुःखक्षयंकरः । यथा जनमेजय राजा अष्टादश पर्व
 श्रवणात् १८ विप्र हत्यात्यागः यवनिका श्यामत्वं जातं । यथा एकस्मिन् दिवसे जनमेजय राजाग्रे
 पुरोहितेन कथितं पूर्वं त्रेतायुगे पांडवैश्च कैरवैः कृता अष्टादशाक्षोहिणिमृताः महाभारतो जातः । राजा प्रोक्तं
 को नामवत् यत्तेषां निवारयति पुरोहितेन कथितं त्वां न निवारयामि । यतः अद्य दिवसात् पष्टे मासे
 त्वं आवेदके न गंतव्यं यदा गमिष्यति तदा सूकरमृगं तेषां केतुके अधो न क्षेपणीयं यदा अस्वो क्षेपयति
 तदा सगर्भा भृगी तस्यां बाणं न मोचनीयं यदा मुंचति तदा तस्या उदरं मध्ये पुत्रिका भविष्यति
 सा न गृहीतव्या यदा ग्राहयति तदा तस्या पाणिग्रहणं न करणीयं यदा प्राणिग्रहणं करोति तदा तस्या
 पट्टराज्ञीपदं न दातव्यं तस्या कथितं न मान्यं । इत्यादि भविष्यति वचनानि मया तव कथिताः स्युः परं
 त्वं न तिष्ठसि । अथ पट् मासाः द्वित्रिदिवसोना गता तदा मालाकारेणागत्य राज्ञः कथितं भो राजन्
 तव वनो सूकरैः भग्नः । राज्ञा अश्वं सज्जीकृत्य तेषां गृष्टे गतः । ते पूर्वोक्तानि वचनानि सर्वं कृता गदवालस्य
 पुत्रिका दत्ता एषा त्वं पालय तेन पालिता परं स्वरूपा । अन्यदा राज्ञा दृष्टा सा परिणीता पूर्ववचनानि
 सर्वं विस्मृताः राज्ञा पट्टराज्ञी कृता । अन्यदा राज्ञा यज्ञो मंडितः अष्टादशपुराणवेत्तारः अष्टादश ब्राह्मणा
 आकारिताः यज्ञं यजमानं कश्चिद्दूतेन देशान्तरादागतेन नृपोः आहूतः राज्ञा विप्राणां कथितं अहं उत्तिष्ठामि
 ते कथितं नहि यज्ञस्य विधातो भवति परं तव शरीरममाना पट्टराज्ञी अस्ति राजा उत्थित ततः कदके
 किंचिच्छातस्य रहस्यो आगतः ते ब्राह्मणाः हमिताः राज्ञी ज्ञातं एते मम हसिता क्रुद्धा राज्ञः कथितं एते
 विनष्टा मां हसति ततः यदि एते मारयिष्यति तदा तव मम संबंधः । राज्ञा ते मारिता अष्टादश
 कुष्टा जातं । ततः पूर्वपुरोहितेन कथितं वरं त्वया न कृतं राज्ञा कथितं अधुना कथय किं करोमि तेन
 कथितं अष्टादश पुराणानि निमदेहानि शृणु । ते चामि— आदि पर्व १ सभा पर्व २ विराट पर्व ३
 आरण्यक पर्व ४ उद्यान पर्व ५ भीष्म पर्व ६ द्रोण पर्व ७ कर्ण पर्व ८ शल्य पर्व ९ सौप्तिक पर्व १० गर्भ-
 पाल पर्व ११ शान्ति पर्व १२ शासन पर्व १३ आशुमान्य पर्व १४ मेघक पर्व १५ भूशल पर्व १६ यज्ञ
 पर्व १७ स्वर्गोद्गम पर्व १८ ॥ एभिर्गष्टादशविप्रहत्याक्षयकृतायवनिकाश्यामत्वं जाताः । तथा अयमपि
 अधुना ये मुनयः उपवासत्रयेण वाचयन्ति चतुर्विधसंघो अष्टमेन शृणोति तदा तस्मिन्नेव भवे मोक्षः ।
 यदि द्रव्यक्षेतकालसद्भावा भवन्ति । न चेत्तदा तृतीयभवे पंचमे भवे सप्तमे भवे अवश्यं मोक्षः । पूर्व मुनयः
 पाक्षिकसूत्रवत्तुर्द्धव्याः कथयन्ति चतुर्विध संवत्तुर्द्धवसमेव शृणोति परं श्रीवीरनिर्वाणात् ९९३ वर्षे गते
 आनंदपुरे ध्रुवसेनराज्ञः सभायां पुद्गलशोकपनोदाय देवार्द्धमुनिना सभासप्तसं वाचितः श्रावकाः तांबूलदाना-
 दिप्रभावना कृता । तादिनादाग्य सा रीतिः । परं त्वम्य कालस्य वाचनैवोच्यते न तु व्याख्या । पूर्वं ये पाद-
 लिताचार्य—सिद्धसेनदिवाकरप्रभृतयो अभवन् तैरपि वाचनैवोक्ता अन्येषां का वार्ता । यतः सिद्धान्ते
 इत्युक्तमस्ति सत्त्वदर्शनं जडहु बालुआ इत्यादि । एवंविधस्य कल्पस्य यदहं वाचनान्नोदधं करोमि स बाहुभ्यां
 समुद्रतरणमभिलषामि । यथा कुब्ज उच्चफलं लातुमिच्छति तथाऽहं यदिच्छामि वाचनां । कर्तुं तत् संवत्स्य
 सौमित्र्यं पुनः गुरुणां प्रासादः । यद्वर्षाकाले मयूरो नृत्यं करोति तच्चलधरगार्जितप्रमाणं । हृदयपश्चंद्र-

कांतमणिर्यदमृतं स्मृते तच्चंद्रस्य प्रमाणं । सूर्यसारथी रविः आरुणः पंगोपि यदाकाशमुल्लंघयति तत्सूर्यस्य प्रमाणं । पुत्तालिका नृत्यं करोति तद्दिदनालिकस्य प्रमाणं । तथाऽहं मंदबुद्धिः मूर्खशिरोमणिः प्रमाणं सप्रमाणता नास्ति, लक्षणे सल्लक्षणा न, अलंकारस्यालंकरणं नहि, साहित्ये साहित्यं नास्ति, छंदसि मुछंदता न; एवंविधोऽपि वाचनाय साहसं करोमि तत् सदगुरुणां प्रसादः । पुरातनैर्न्याख्या कृता । ममापि युक्तिः । कथं

जं देवो सायरो लहरिगज्जंतनीरपडिपुछो । ता किं गामतलाओ जलमरिओ लहरिगा देऊ ॥ १ ॥

जइ भरह भावछंदे नबइ नवरंग चंगमा तरुणी । ता किं गामगहिल्ली तालिछंदेन नचेइ ॥ २ ॥

जइ दुद्धधवलखीरी तडफडइ विविहभगेहि । ता कुनकसकणसहिया रवडिया मा तडवडह ॥ ३ ॥

अहं यद्वेदि तद्गुरुणां प्रसादः ।

टोलो रोलो रुलंतो अहियं वित्राण नाण परिहीणो । दिव्वुव वंदणिज्जो विहिओ गुरुमुत्तहारेण ॥४॥

ते गुरवः श्रीपार्श्वनाथसंतानीयाः ।

१ श्रीपार्श्वनाथशिष्यः प्रथमो गणधरः श्रीशुभदत्तः । २ तत्पट्टे श्रीहरिदत्तः । ३ तत्पट्टे श्रीआर्यसमुद्रः ।

४ तत्पट्टे श्रीकेशीगणधरः तेन परदेशीनृपः प्रतिबोधितः । राजप्रश्रीयउपागो प्रसिद्धः ।

५ तत्पट्टे श्रीस्वयंप्रभसूरिः । (स्वयंप्रभसूरिशिष्य बुद्धकीर्तिसु बौधमत नीकल्यो, आचारांग टीकासु जाननो) अन्यदा स्वयंप्रभसूरि देशनां ददतां उपरि रत्नचूडविद्याधरो नंदीसुरे गच्छन् तत्र विमानः स्तंभितः । तेन चितितः मदीयो विमानः केन स्तंभितः । यावत् पश्यति तावदधो गुरुं देशनाददंतं पश्यति । स चितयते मयाऽविनयः कृतः यतः जंगमतीर्थस्य उल्लंघनं कृतं । स आगतः गुरुं वंदति धर्मं श्रुत्वा प्रतियुद्धः । स गुरुं विज्ञापयति मम परंपरागता श्रीपार्श्वजिनस्य प्रतिमास्ति तस्या वंदने मम नियमोऽस्ति सा रावणलैकधरस्य चैत्यालये अभवत् । यावत् रामेण लंका विध्वंसिता तावद् मदीयपूर्वजेन चंद्रचूडनरनाथेन वैताल्ये आनीता । सा प्रतिमा मम पार्श्वेऽस्ति । तया सह अहं चारित्रं ग्रहीष्यामि । गुरुणा लाभं ज्ञात्वा तस्मै दीक्षा दत्ता । क्रमेण द्वादशांगी चतुर्दश पूर्वी बभूव गुरुणा स्वपदे स्थापितः । श्रीमद्वीरजिनेश्वरात् द्विपंचाशतवर्षे (५२) आचार्यं पदे स्थापितः । पंचाशतसाधुभिः सह धरां विचरति । श्रीलक्ष्मीहास्यानं तस्याभिधानं १ पूर्व नाम गुजरतिमध्ये कृतयुगे रयणमाला २ त्रेतायुगे रयणमाला ३ द्वापरे श्रीवीरनयरी ४ कलियुगे भीममाला ५ तत्र श्रीराजामीमसेन तत्पुत्रश्रीपुंज तत्पुत्र उत्पलकुमार अपरनाम श्रीकुमार तस्य बांधव श्रीसुरसुंदर युवराज राज्यभारधुरंधर । तयोरमात्य चांद्रवंशीय द्वौ भ्राता तत्र निवासी सां० उहड १ उद्धरण २ लघु भ्राता गृहे सुवर्णं संख्या अष्टादश कोट्यः संति । वृद्धभ्रातुर्गृहे ९९ नवनवति लक्षा संति । ये कोटी-श्वरास्ते दुर्गमध्ये वसंति ये लक्षेश्वरास्ते बाह्ये वसंति । तत्र उहडेन एकलक्ष भ्रातुः पार्श्वे उच्छूर्णं याचितं । ततो बांधवेन एवं कथितं भवते विना नगरं उज्ज्वसमास्ति, भवतां समागमे वासो भविष्यति । एवं ज्ञात्वा राजकुमार उहडेन आलोचितवान् नूतनं नगरं वसेयं ततो मम वचनं अग्रे आयातः । दीलीपुरे राजा श्री साधु तस्य उहडेन ५५ तुरंगमा भेटिकृता उवएसं संतुष्टो ददौ । ततो भीममालात् अष्टादश १८ सहस्र कुटुंब अगात् । द्वादश योजना नगरी जाताः । तत्र श्रीमद्रत्नप्रभसूरिपंचसयासीप्य समेत लुणद्रही समायाति । मासकल्प अरण्ये स्थिता । गोचर्या मुनीश्वरा व्रजंति परं भिक्षा न लभते । लोका मिथ्यात्व वासिताः यादृशा गता तादृशा आगता मुनीश्वराः । पात्वाणि प्रतिलेप्य मासं यावत् संतोषेण स्थिताः पश्चात् विहारः कृतः । पुनः कदाचित् तत्रायातः । शासनदेव्या कथितं भो आचार्य अन्न चतुर्मासकं कुरु ।

तत्र महालाभो भविष्यति । गुरुः पञ्च त्रिंशत् मुनिभिः सह स्थितः । मासी द्विमासी तृणासी चतुर्मासी उपोसित कारिका । अथ मंत्रीश्वर ऊहृष्ट मुते भुञ्जेन दष्टः । अनेक मंत्रवादिनः आहूताः परं न कोपि समर्थस्तैः कथितं अयं मृतः दाघो दीयतां । तस्य स्त्री काण्डभक्षणे स्मशाने आयाता । श्रेष्ठस्य महान् दुःखो जातः । वादिनाम् आकर्ष्य लघुशिष्यः तत्रागतः । शंषाणो दृष्ट्वा एवं कथापयति भो ! जीवितं कथं ज्वालयततैः श्रेष्ठिने कथितं एषः मुनीश्वरः एवं कथयति । श्रेष्ठिना शंषाणो वालितः क्षुल्लकः प्रनष्टः गुरुः पृष्टे स्थितः । मृतकामानीय गुरु अग्रे मुञ्चति श्रेष्ठि गुरु चरणे शिरं निवेश्य एवं कथयति भो दयालु मम देवो रुष्टः मम ग्रहो शून्यो भवति । तेन कारणेन मम पुत्रभिक्षां देहि । गुरुणा प्राप्नु जलमानीय चरणौ प्रक्षाल्य तस्य छंटितं । सहसात्कारेण सज्जो बभूव हर्ष वादिनाणि बभूव । लोकैः कथितं श्रेष्ठि सुतः नूतन नन्मो आगतः । श्रेष्ठिना गुरुणां अग्रे अनेकमणि मुक्ताफल सुवर्ण वस्त्रादि आनीय भगवान् गृह्यतां । गुरुणा कथितं मम न कार्यं परं भवद्भिः जिन धर्मो गृह्यतां । सपाद लक्ष श्रावकाणां प्रति बोधि कारकं । पूर्वं श्रेष्ठिना नारायण प्रासादं कारयितुमारब्धं । स दिवसे करोति रात्रौ पतति सर्वे दर्शनिनः पृथा न कोपि उपायो कथितं तेन रत्नप्रभाचार्यो प्रष्टः—भगवान् मम प्रासादो रात्रौ पतति । गुरुणा प्रोक्तं कस्य नामेन कारयतः । नारायण नामेन । एवं नहि महावीर नामेन कुरु मंगलं भविष्यति । प्रासादस्य विघ्नं न भविष्यति श्रेष्ठिना तथैव प्रतिपन्नं । अथ शासनदेव्या गुरुणा कथितं हे भगवन् अस्य प्रासाद योग्यं मया देव गृहात् उत्तरस्यां दिशी लूणद्रुहाभिधानं डुंगारिकायां श्री महावीर विंश कारयितुमारब्धं । तत्र तेन श्रेष्ठिना गोपाल वचनात् गोदुग्ध स्वावकारणं ज्ञात्वा सर्वेपि दर्शनिनः पृथाः तैः पृथक् पृथक् भाषया अन्यदन्यदुक्तं । ततः श्रेष्ठिना स आचार्योऽभिविन्द्य पृष्टः ततः शासन देव्या वाक्यात् आचार्यो ज्ञात्वा एवं कथयति तत्र त्वत्प्रासाद योग्यं विन्वो भविष्यति परं पद मासैः सार्द्धं सप्त दिनैः निष्कासनीयं । श्रेष्ठि उच्छ्रुक संजातः । किञ्चिदूनैर्दिनैः निष्कासितः निवृ फल प्रमाण हृदयस्य ग्रन्थीद्वय सहितं । आचार्यैः प्रोक्तं अद्यापि किञ्चित् असंपूर्णं विंशं विलम्बस्व श्रेष्ठिना प्रोक्तं गुरुणां कर प्रासादात् संपूर्णं भविष्यति । तेनावसरे कोरंटकस्य श्राद्धानां आवाहनं आगतं । भगवन् प्रतिष्ठार्थमागच्छ । गुरुणा कथितं मुहूर्तं वेलायां आगच्छामि ।

सप्तत्या ७० वत्सराणां चरम—जिनपतेर्मुक्तनातस्य वर्षे

पञ्चम्यां शुक्लपक्षे मुरगुरुदिवसे ब्रह्मणः सम्मूहर्त्ते ।

रत्नाचार्यैः सकलगुणयुतैः सर्वसंचानुज्ञातैः

श्रीमद्वीरस्य विन्वे भवशतमथने निर्मितयं प्रतिष्ठा : ॥ १ ॥

उपकेशे च कोरंटे तुल्यं श्री वीरविजयोः

प्रतिष्ठा निर्मिता शक्यता श्रीरत्नप्रभसूरिभिः ॥ २ ॥

निजरूपेण उपकेशे प्रतिष्ठा कृता वैक्रियरूपेण कोरंटके प्रतिष्ठा कृता श्राद्धे द्रव्यव्ययः कृतः । ततस्तेन श्रेष्ठिना श्रीऔपकेश पुरस्य श्रीमहावीर विंश पूजा आराधिका स्नात्रकरण देव वेदनादिविधिः श्रीरत्नप्रभाचार्योत् शिषिता । तदनंतरं मिथ्यात्वाभावात् श्रावकत्वं केषांचित् श्रेष्ठिसंबंधिनां संजातं । ततः आचार्येण ते सम्यक्त्वचारी कृता । एकदा प्रोक्तं भो यूयं श्राद्धा तेषां देवीनां निर्दयचित्ताया महिष चोत्कटादि

जीववधास्थि मंगलवद् ध्रुवण कुतुहलप्रियया अविरतायाः रक्तांकितभूमितले आर्द्रचर्मवद्धवंदनमाले
निष्ठुरजनसेवितं धर्मध्यानविद्यापके महावीरमत्सरोद्रे श्री सच्चिकादेवि गृहे गंतुं न बुध्यते । इति आचार्यवचः
श्रुत्वा ते प्रोचुः प्रमोयुक्तमेतत् परं रोद्रा देवी यदि छलिस्याम तदा सा कुटुंबान् मारयति । पुनराचार्यैः
प्रोक्तं अहं रक्षां करिष्यामि । इत्याचार्यवाक्यं श्रुत्वा ते देवी गृहे गमनात् स्थिताः । आचार्याणां प्रत्यक्षीभूय
देव्या सकौपमित्युक्तं आचार्य मम सेवकान् मम देवगृहे आगच्छमानान् निवारणाय त्वं न भविष्यति ।
इत्युक्त्वा गता देवी परं सातिशय कालभावात् महाप्रभावात् अनेकसुरकृतप्रातिहार्ये आचार्ये देवी न प्रभव-
ति । एकदा छले लब्ध्वा देव्या आचार्यस्य कालवेलायां किञ्चित् स्वाध्यायादि रहितस्य वामनेत्र-
भूरधिष्ठिता । वेदानां जाता । आचार्यैः यावत् सावधानीभूय पीडायाः कारणं चिंतितं तावत्
देवी प्रत्यक्षीभूय इति प्रोक्तं मया पीडा कृता । अहं स्वशक्त्या त्वां स्फोटयिष्यामि इति सावधं
आचार्योक्तं श्रुत्वा समयाकृतं सा विनयं प्रोक्तं भवादृशानां ऋषीणां विग्रहं विवादो न युक्तः । यदि त्वं
कडकमडकं ददासि तदाहं वेदानां अपहरामि । आचंदार्कं त्वत्किंकरी भवामि इति श्रुत्वा आचार्यैः
प्रोक्तं कडकमडकं दापयिष्यामि । इत्युक्त्वा गता देवी । प्रमाते श्रावकानामाचार्यैः पक्वान्नखज्जकादि-
सुंदकद्वयं कर्पूरकुंकुमादिभोगश्च आनीय श्रीसच्चिकादेवी देवगृहे श्रीरत्नप्रभाचार्यैः श्रावकैः सार्धं गतः ।
ततः श्रावकैः पार्श्वेत् पूजां कराप्य वामदाक्षिणहस्ताभ्यां पक्वान्नसुंदकादि चूर्णयद्भिः आचार्यैः प्रोक्तं
देवी कडकमडकं दत्तमस्ति । अतः परं ममोपासिका त्वं इति वचनानंतरं एव समीपस्थकुमारिका शरीरे
आवेशः कृतः । ततः प्रोक्तं प्रभो मया अन्यं कडकमडकं याचितं अन्यं दत्तं । आचार्यैः प्रोक्तं त्वया
वधो याचितः स बुलातुं दातुं न बुध्यते इत्यादिसिद्धान्तवाक्यं कुमारी शरीरस्था श्रीसच्चिकादेवी सर्वलोक
प्रत्यक्षं श्रीरत्नप्रभाचार्यैः प्रतिबोधिता । श्रीउपकेशपुरस्था श्रीमहावीरभक्ता कृता सम्यक्त्वधारिणी
संजाता । आस्तां मांसं कुसुममपि रक्तं नेच्छति । कुमारिका शरीरे अवतीर्णा सतां इति वक्ति भो
मम सेवका यत्र उपकेशपुरस्य स्वयं महावीरविभवं पूजयति श्रीरत्नप्रभाचार्य उपसेवति भगवन् शिष्यं
प्रशिष्यं वा सेवति तस्याहं तोषं गच्छामि । तस्य दुरितं दलयामि यस्य पूजा चित्ते धारयामि । एतानि
शरीरे अवतीर्णा सा कुमारी कथ्यतां । श्रीसच्चिकादेव्या वचनात् क्रमेण श्रुत्वा प्रचुरा जनाः श्रावकत्वं
प्रतिपन्नाः । क्रमेण श्रीरत्नप्रभाचार्य ८४ वर्षे स्वर्गं गतः ।

८ तत्पट्टे यशदेवाचार्यैः माणमद्र यश प्रतिबोध कर्ता संघस्य विनो निवारितः ।

९ तत्पट्टे कक्कसूरि । १० तत्पट्टे देवगुप्तसूरि ।

११ तत्पट्टे सिद्धसूरि । १२ तत्पट्टे रत्नप्रभसूरि । १३ तत्पट्टे यशदेवसूरि ।

१४ तत्पट्टे कक्कसूरि । स्वयं श्रीमहावीर स्नात्र विधि काले, कोसौ विधिः कदा किमर्थं संजातः
इत्युच्यते-तस्मिन्नेव देव गृहे अप्पान्हिकादिकमहोत्सवं कुर्वतास्तेषां मत्स्ये अपरिणतवयसा केषांचित्
चित्ते इयं दुर्बुद्धिः संजाताः । यदुत भगवत् महावीरस्य हृदये ग्रन्थी द्वयं पूजां कुर्वतां कुशोमा करोति अतः
मशकरोमवत् छेदयितां को दोषः । वृद्धैः कथितं अयं अवटितः टंकिना घातो न अहं । विशेषतो अस्मिन्
स्वयं श्री महावीर विभे । वृद्धवाक्यमवगम्य प्रच्छन्नं सूत्रधारस्य द्रव्यं दत्त्वा ग्रन्थिद्वयं छेदितं तत्-
क्षणादेव सूत्रधारो मृतः । ग्रन्थिच्छेदप्रदेशे तु रक्त-धारा छुटिता । तत उपद्रवो जातः । तदा उपकेश-
गच्छाधिपति श्रीकक्कसूरिभिः पायम्भिः चतुर्विधसेवेनाहुता वृत्तांतं कथितं । आचार्यैः चतुर्विधसंघ स-

हितेन उपवास त्रयं कृतं । तृतीय उपवास प्रान्ते रात्रिसमये शासनदेवी प्रत्यक्षी भूय आचार्याय प्रोक्तं—हे प्रभो न युक्तं कृतं बालश्रावकैः मद् घटितं विंश आशातितं । कलानीशकृतं अतोन्तरं उपवेशनगरं शनैः २ उपभ्रंसं भविष्यति । गच्छे विरोधो भविष्यति । श्रावकाणां कलहो भविष्यति । गोष्ठिका नगरात् दिशोदिशं यास्यति । आचार्यैः प्रोक्तं परमेश्वरि भवितव्यं भवत्येव परं त्वं श्रवतु रुधिरं निवारय । देव्या प्रोक्तं घृत घटेन दधि घटेन इक्षुरस घटेन दुग्ध घटेन जल घटेन कृतोपवासत्रयं यदा भविष्यति तदा अप्यादशा गोत्रं मेलं कुरु; तेमी १ तातहृद गोत्रं । २ बापणा गोत्रं । ३ कर्णाट गोत्रं । ४ बल गोत्रं । ५ मोरास गोत्रं । ६ कुल हट गोत्रं । ७ विरिहट गोत्रं । ८ श्री श्रीमाल गोत्रं । ९ श्रेष्ठिगोत्रं । एते दक्षिण बाहु । १ सुचंती गोत्रं । २ आङ्गणा गोत्रं । ३ चारवेडीया गोत्रं । ४ भाद्र गोत्रं । ५ चीचट गोत्रं (देशलहरासाखा) । ६ कुम्भट गोत्रं । ७ कनऊनया गोत्रं । ८ द्विडम गोत्रं । ९ लघु श्रेष्ठि गोत्रं । एते वाम बाहु स्नात्रं कर्तव्यं नान्यथाऽशिवो शान्तिर्भविष्यति । मूल प्रतिष्ठानंतरं वीर प्रतिष्ठा दिवसातीते शतत्रये ३०३ अनेहसि ग्रंथियुगस्य वीरोरस्थस्य भेदोऽननि देव योगात् इत्युक्तं श्रीमदुपकेशगच्छचारित्र सूत्रे श्लोक—१७२

१५ तत्पट्टे श्रीदेवगुप्तसूरि । १६ तत्पट्टे सिद्ध सूरि । १७ तत्पट्टे रत्नप्रभ सूरि ।

१८ एवं अनुक्रमेण श्रीवीरात् वर्षे ५८५ श्रीयसदेवसूरिर्वभूव महाप्रभावकर्ता द्वादशवर्षं दुर्भिक्षमग्रे वज्र स्वामी शिष्य वज्रसेनस्य गुरोः परलोकप्राप्ते यक्षदेवसूरिणा चत्वारि शाखाः स्थापिताः—

१९ तत्पट्टे ककसूरि । २० तत्पट्टे देवगुप्तसूरि । २१ तत्पट्टे सिद्ध सूरि ।

२२ तत्पट्टे रत्नप्रभसूरि । २३ तत्पट्टे यसदेव सूरि । २४ तत्पट्टे कक सूरि ।

२५ तत्पट्टे देवगुप्तसूरि । २६ तत्पट्टे सिद्ध सूरि । २७ तत्पट्टे रत्नप्रभसूरि ।

२८ तत्पट्टे यसदेव सूरि । २९ तत्पट्टे ककसूरि । ३० तत्पट्टे देवगुप्त सूरि ।

३१ तत्पट्टे सिद्धसूरि । ३२ तत्पट्टे रत्नप्रभ सूरि । ३३ तत्पट्टे यसदेव सूरि ।

३४ तत्पट्टे ककुदाचार्य । तत्पट्टे देवगुप्ताचार्य । तत्पट्टे सिद्धाचार्य । एतानि पंच उपकेशगच्छाधिपा-

चार्याणां मूलनामानि । तत्पट्टे ककसूरि द्वादश वर्षयावत् पट तपं आचार्यसहितं कृतवान् । तस्य स्मरणस्तोत्रेण मरोटकोटे सोमकश्रेष्ठस्य शृङ्खला व्रुटिता । तेन चिंतितं यस्य गुरोः नामस्मरणेन बंधनरहितो जातः एकवारं तस्य पादां बंदामि । स भरुकच्छे आगतः । अटणवेलायां सर्वे मुनीश्वरा अटनार्यं गतास्ति । सच्चिका गुरो अग्रे स्थितास्ति । द्वारो दत्तोस्ति तेन विकल्पं कृतं । शच्यका शिक्षा दत्ता मुखे रुधिरो वमति । मुनीश्वरा आगता । वृद्धगणेशेन ज्ञातं भगवन् द्वारे सोमकश्रेष्ठो पतितोस्ति । आचार्यैः ज्ञातं अयं सच्चिकाकृतं । सच्चिका आहूता कथितं त्वया किं कृतं । भगवन् मया योग्यं कृतं । रे पापिष्ठ यस्य गुरुनामग्रहणे बंधनानि शृङ्खलानि व्रुटितानि संति स अणाचारे रतो न भविष्यति । परं एतेन आत्मकृतं लब्धं । गुरुणा प्रोक्तं कोपं त्यज शान्तिं कुरु । तथा कथितं यदि असौ शान्तिर्भविष्यति तदा अस्माकं आगमनं न भविष्यति प्रत्यक्षं । गुरुणा चिंतितं भवितव्यं भवत्येव स सज्जकृतः । सच्चिकावचनात् द्वयोर्नाम भंडारे कृताः श्रीरत्नप्रभसूरि अपरश्री यसदेवसूरि एते सप्रभावा एतदनेहसि अस्य उपकेशगणस्य द्वाविंशति शाखा नामानि दत्तानि—

१ नागेन्द्र २ चन्द्र ३ निर्वृत्ति ४ विद्याधराणां स्थाने १ सुंदर २ प्रभ ३ कनक ४ मेरु ५ सार ६ चंद्र ७ सागर ८ हंस ९ तिलक १० कलस ११ रत्न १२ समुद्र १३ कल्लोल १४ रंग १५ शैल १६ विशाल १७ राज १८ कुमार १९ देव २० आनंद २१ आदित्य २२ कुंभ इति । ततः तेनैव कक्कसूरिणा अर्बुदाचलमेखलायां तृपार्तस्य संघस्य ढंड स्थापनेन जलं प्रगटि कृतं । तेनैव सार्धमिक वात्सल्ये जेसलपुरात् भरुकच्छे वृतो आनीतः ।

३५ तत्पट्टे श्रीदेवगुप्तसूरि । तत्पट्टमहोत्सवे पाठकाः पंच स्थापिता जयतिलकादि । तेन जयति—
लकेन श्रीशान्तिनाथचरित्रं निर्मितं ।

३६ तत्पट्टे सिद्ध सूरि । ३७ तत्पट्टे कक्क सूरि । ३८ तत्पट्टे देवगुप्तसूरि ।

३९ तत्पट्टे सिद्धसूरि । ४० तत्पट्टे कक्क सूरि । ४१ तत्पट्टे देवगुप्तसूरि । सं० १९५५ वर्षे बभूव ।

४२ क्षत्रीयवंशोत्पन्नत्वात् वीणावादने तत्परं क्रियाविषयं सिधिलः । ततः चतुर्विधसंघेन तत्पट्टे वीस विस्वोपकारकः स्थापितः श्रीसिद्धसूरिः ।

४३ तत्पट्टे कक्कसूरिः पंचप्रमाणग्रन्थकर्ता । ४४ तत्पट्टे संवत् १०७२ वर्षे श्रीदेवगुप्तसूरि ।

४५ तत्पट्टे नवपद प्रकरण—स्वोपज्ञटीकाकर्ता सिद्धसूरि । ४६ तत्पट्टे कक्क सूरि ।

४७ तत्पट्टे देवगुप्तसूरि । ४८ तत्पट्टे सिद्ध सूरि । ४९ तत्पट्टे कक्कसूरि ।

५० तत्पट्टे संवत् ११०८ वर्षे देवगुप्त सूरिर्बभूव । भीममाल नगरे साह भईसाक्षेन पद महो-
त्सवे सप्तलक्ष धन व्ययो कृतः । ततोः गुरुणा पादप्रक्षाल्येन जले विपापहार लब्धो येन भईसाक्ष श्रेष्ठिना
श्री देवगुप्त सूरिः पद महोत्सवः कृतः । स पूर्वं डिंडुवाण पूरे भईसा भार्याछगणाणि स्थाप्यते ततो गुरुरूपदे-
शेन ज्वालितानि छगणानि रूप्यमयानि भवति ततो तेन रूप्येन गदहिया मुद्रा पातित्ता । भईसाक्ष माता श्री
शशुंनय यात्रागता खरच तुट्यते पत्तन मध्ये ईश्वरश्रेष्ठिनः पार्श्वे खरचो याचिता । तेन शृष्टं भवती कस्य
माता तेन कथितं अहं भईसाक्ष माता । तेन हसितं अस्माकं गृहे पानीयमानयंति तेषां माता इति वित
किंतं । ततोऽनंतरं पश्चात् धनं गृहीत्वा यात्रां कृत्वा संचभक्ति कृत्वा गृहे नगाम । पुत्रेण प्रष्ट मातः मम
कियद्भूमौ नामं वर्तते । माता कथितं भवतां प्रतोली द्वारं यावन्नामस्मस्ति । तेन वचनेन असंतोषो जातः ।
श्रेष्ठि हास्यवचनं कथितं । तद्वचनं बालयिस्थामि तदा द्वितीय बेला भोजयिष्यामि । एवं प्रतिज्ञां कृत्वा
पत्तने सामान्यवेपे द्वार हट्टे गतः । भो श्रेष्ठि रूप्यं ग्रहिष्यासि । तेन कथितं रोपभरेण यत्किंचिदानयिष्यासि
तत्सर्वं गृह्णामि । संचकारो याचितः तेन गुप्ताभिर्दीयते सवालक्ष मुद्रिका दत्ता । ततो गर्दभयानि भारयत्वा
पत्तने नगाम । शृष्टं एतर्कि रूप्यं वर्तते एवं श्रुत्वा श्रेष्ठिनः चमत्कृताः स श्रेष्ठि समग्र पत्तनश्रेष्ठि मेल-
यित्वा चरणे पपात । भईसाक्षमत्तदेव कथितं गुर्जरधरीजीमये महिषेण पानीयमानयेतुं तदा
मोचयामि । तद्धनं देशे सप्तसेत्रे व्ययो कृतः । ततो गादिया इति शाखा जाता ।

५१ तत्पट्टे श्री सिद्धसूरि । ५२ तत्पट्टे श्री कक्कसूरि संवत् ११५४ वर्षे बभूव । येन हेमसूरि
कुमारपाल वचसा कृपाहीना मुनिवरा निष्कासिता ।

५३ तत्पट्टे देवगुप्तसूरि येन लक्ष द्रव्यं त्यजितं । ५४ तत्पट्टे श्री सिद्धसूरि ।

५५ तत्पट्टे संवत् १२५२ श्री कक्कसूरिर्बभूव येन मरोट कोटः प्रगटी कृतं ।

५६ तत्पट्टे श्री देवगुप्तसूरि । ५७ तत्पट्टे श्री सिद्धसूरि । ५८ तत्पट्टे श्री ककसूरि ।

६० तत्पट्टे श्री सिद्धसूरि । ६१ तत्पट्टे श्री ककसूरि । ५९ तत्पट्टे श्री देवगुप्तसूरि ।

६२ तत्पट्टे श्री देवगुप्तसूरि । ६३ तत्पट्टे श्री सिद्धसूरि । ६४ तत्पट्टे श्री ककसूरि । ६५ तत्पट्टे श्री देवगुप्तसूरि ।

६६ तत्पट्टे संवत् १३३० वर्षे चीचट गोत्रेऽतएव उवराय स्यापितः श्री अर्बुदाचल तल-
हटीकालंकारो वरणीनगरतः सा० देशलेन श्री शत्रुंजयादि सप्त तीर्थेषु चउदश १४ कोटि द्रव्य
व्ययेन चउदश यात्रा कृता चतुर्दश वारान् । प्रथमं देवगुप्तसूरि तत्पट्टे सिद्धसूरि प्रमुख सन्नय सुवि-
हित सूरि हस्तेन संवत्पति तिलकः कारितं । उक्तं च

श्री देशलः सुकृत पेसल वित्त कोटी । चंचच्चतुर्दश जगज्जनितावदातः ।

शत्रुंजय प्रमुख विश्रुत सप्त तीर्थः । यात्रा चतुर्दश चकार महामहेन ॥ १ ॥

तत्पुत्र समरसहजाम्यां विमलवसत्युद्धारः कारितः संवत् १३७१ वर्षे । तथा एवमपरेरपि
तिर्थयात्रा कृत्वा संवत्पतेः पदं स्वाकीरितं इत्युक्तप्रपदेशरसाले । साह देसलेन पाल्हणपुरे श्री
सिद्धसूरि पद महोत्सवो कृतः । तेन सिद्धसूरिणा सम्रामहेण शत्रुंजये पष्ठोद्गारे श्री आदिनाथस्य
प्रतिष्ठा कृता ।

६७ तत्पट्टे संवत् १३७१ वर्षे साह सहजागरेण श्री ककसूरि पद महोत्सवो कृतः । येन
गच्छप्रबंधः कृतः । तत्र देसल पुत्राः समर-सहजानां चरित्रमस्ति । एवं उपकेश गच्छे अनेक प्रभा-
वका ग्रन्थकर्तारो निरीहा सूरयो अपूवन् तेषां कियद् गण्यते एवं—

६८ तत्पट्टे श्री देवगुप्तसूरि बभूवः । कवि सार्वभौम विद्वच्चक्रचूडामणि सिद्धन्तपारगामी
सर्वशास्त्रपारंगत । श्री सारंगधरेण संवत् १४०९ वर्षे दिल्यां मध्ये पद महोत्सवो विहितः सुवर्ण-
सहस्र पंचक व्ययेन ।

६९ तत्पट्टे श्री सिद्धसूरिः संवत् १४७५ वर्षे गुणभूरय अणाहिलपाटक पत्तने चोरवेडीया
गोत्रे साह जावा नीवागरेण पद महोत्सवः कृतः गुरूणां ।

७० तत्पट्टे संवत् १४९८ वर्षे श्री ककसूरयः चित्रकुटे चोरवेडीया गोत्रे साह सारंग
सोनागर राजाभ्यां पद महोत्सवो कृतः येन चतुर्दश शत चतुः चत्वारिंशत् अधिक १४४४ कच्छ मध्ये
अमारी प्रवर्ताविता । याम श्री वीरभद्रः प्रतिबोधितः । संस्कृतप्राकृतपरमामृतप्रवाहा विरचित
निखिलशास्त्रावगाहाः वाणीविलासवाचस्पतिबुल्याः सकलकल्यारजितकोविदाः धर्मबुद्धिधुरंधरा
सकलपुरंदराः ।

७१ तत्पट्टे सं० १५२८ वर्षे जोधपुरे श्रेष्ठ गोत्रे मंत्रीश्वर जयतागरेण श्री देवगुप्तसूरैः
महोत्सवे नव महोत्सवो कृतः । श्री पार्श्वनाथस्य प्रासादः कारितः पौषशालायां च । श्री शत्रुंजय
यात्रा कृता । पंच पाठकाः स्थापिताः । तेषां नामानि श्री धनसार १ उ० देवकलोल २ उ० पद्म-
तिलक ३ उ० हंसराज ४ उ० मत्तिसागर ५ ।

७२ तत्पट्टे श्री सिद्धसूरयो गुणभूरयः । श्री श्रेष्ठ गोत्रे मंत्रीश्वर दशरथात्मजेन मंत्रीश्वर
लोलागरेण संवत् १५६५ वर्षे मेदिनीपुरे पद महोत्सवः कृतः ।

७३ तत्पट्टे श्री कक्कसूरयः श्री जोधपुरे संवत् १९९९ वर्षे गच्छाधिपो जातः श्रेष्ठि गोत्रे मंत्रि जगात्मजेन मंत्रीश्वर धर्मसिंहेन पद महोत्सवो कृतः ।

७४ तत्पट्टे श्री देवगुप्त मूरयः श्री श्रेष्ठी गोत्रे मंत्रि सहस्रवीर पुत्रेण संवत् १९३१ मंत्री देदागरेण पद महोत्सवः कृतः ।

७५ तत्पट्टे विद्यमान संवत् १९५५ वर्षे चैत्रसुदि १३ सिद्धसूरिर्वभूव श्री श्रेष्ठी गोत्रे मंत्रि मुगुट मंत्रि शेखर सर्व विश्व विख्यात राज्यभार पुरंधर मंत्रीश्वर महामंत्रि श्री ठाकुरसिंह विक्रमपुरे महा महोत्सवेन पद महोत्सवो कृतः ।

७६ संवत् १९८९ वर्षे फाल्गुण शुद्धि ३ श्री कक्कसूरिर्वभूव । श्री श्रेष्ठि गोत्रे मंत्रि मुगुट मंत्रि ठाकुरसिंह तत्पुत्र सं० सावल्लकेन तत्पत्नी साहित्येन पद महोत्सवो कृतः ।

संवत् १७२७ वर्षे मृगशिर सुद ३ दिने श्री देवगुप्तसूरिर्वभूव श्रेष्ठि गोत्रे मंत्रि ईश्वरदासेन पद महोत्सवो कृतः ।

७८ तत्पट्टे श्री सिद्धसूरि संजातः । श्रेष्ठि गोत्रे मंत्रि सगतसिंहेन पट्टाभिषेकः कृतः संवत् १७६७ वर्षे मृगशिर सुदि १० दिने जातः ।

७९ तत्पट्टे श्री कक्कसूरिर्वभूव । मंत्रि दोलतरामेन सं० १७८३ वर्षे आसाढ वदि १३ दिने पद महोत्सवो कृतः ।

८० तत्पट्टे देवगुप्तसूरि सं० १८०७ वर्षे चभूव । मुहता दोलतरामजीना पद महोत्सवो कृतः ।

८१ तत्पट्टे श्री सिद्धसूरिर्वभूव । संवत् १८४७ वर्षे महासुदि १० दिने पट्टाभिषेकः संजातः ।

मुं० श्री खुशालचंद्रेण पदमहोत्सवो कृतः । तेषां प्रासादान् अहं कल्पवाचनं करोमि । पुनः दीक्षा गुरुप्रासादात्

८२ तत्पट्टे श्रीकक्कसूरिर्वभूव । संवत् १८९१ रा वर्षे चैत्र सुद ८ अष्टमीदिने पट्टाभिषेकः संजातः ।

वैद्यमुं० ठाकुर सुत मुं० सिरदारसिंह गृहे समस्त श्रीसिंघेन वीकानेर मध्ये पदमहोत्सवः कृतः ।

८३ तत्पट्टे श्रीदेवगुप्तसूरिर्वभूव । संवत् १९०५ वर्षे भाद्रवा सुदि १३ चंद्रवासे पट्टाभिषेकः संजातः । श्रेष्ठि गोत्रे वैद्य मुहता शाखायां प्रेमराजो तस्य परिवारे हठीसिंघजी ऋषभदासजी मेघराजजी-कानां उत्तमो गृहीत्वा श्रीफलोधीनगरमध्ये समस्त वैद्य मुहता पट्टाभिषेको कृतः । तेषां प्रासादान् अहं कल्पवाचनां करोमि ।

८४ तत्पट्टे श्रीसिद्धसूरिर्वभूव । संवत् १९३५ वर्षे माघ कृष्ण ११ दिने पट्टाभिषेकः संजातः श्रेष्ठि गोत्रे वैद्यमुहता शाखायां ठाकुर सुत महाराजजी श्रीहरि सिंघजी पद महोत्सवः कृतः वृद्ध गृहे मध्ये थांसीवाला सुरजमलजी हस्तात् समस्त श्रीसिंघसहितेन विक्रम पुरमध्ये देवदुष्य संजित छटिका राज्य द्वारात् समागता । तेषां प्रासादात् अहं कल्पवाचनां करोमि इति ॥

॥ श्रीरत्नप्रभसूरिस्तोत्रम् ॥

॥ श्रीमद्रत्नप्रभसूरिसद्गुरुभ्यो नमः ॥

वामेयपट्टे शुभदत्तनामा ताच्छिष्यजातो हरदत्तमुख्यः ॥

आर्याभुषिः केशी स्वयंप्रभोपि सूरिशरत्नप्रभलविधपात्रः ॥ १ ॥

भज्यावलीकमलकाननराजभृंगं श्रियःप्रवृत्तिमुनिमानसरानहंसं ॥

श्रीपार्श्वेताथपदपंकजचंचरीकं रत्नप्रभं गणधरं सततं स्तवीमि ॥ २ ॥

विद्याधरेंद्रपदवीकलितोपि कामं श्रीमत्स्वयंप्रभुगिरिः परिपीय योत्र ।

दीक्षावधुमुदवहन्मुदमादधानो रत्नप्रभस्स दिशतात्कमलाविलासं ॥ ३ ॥

मंत्रीश्वरोहृदसुतो मुनयेन दष्टः संजीवितः सकल्लोकसभासमक्षं ।

यस्यांघ्रिवारिरुहपुष्करसिंचनेन रत्नप्रभस्स दिशतात्कमलाविलासं ॥ ४ ॥

मिथ्यात्वमोहतिमिराणि विभूय येन भव्यात्मनां मनसि तिग्मरुचेव विधे ।

संदर्शितं सकलदर्शनतत्त्वरूपं रत्नप्रभस्स दिशतात्कमलाविलासं ॥ ५ ॥

येनोपदेशनगरे गुरुदिव्यशक्त्या कोरंटके च विदधे महती प्रतिष्ठा ।

श्रीबीरविंशयुगलस्य वरस्य येन रत्नप्रभस्स दिशतात्कमलाविलासं ॥ ६ ॥

श्रीसत्यिकाभगवती समभूत्प्रसन्ना सर्वज्ञशासनसमुज्जितवृद्धिकर्त्री ।

यदेशानारसरहस्यमवाप्य सम्यक् रत्नप्रभस्स दिशतात्कमलाविलासं ॥ ७ ॥

गृह्णति यस्य सुगुरोर्गुरुनाममंत्रं सम्यक्त्वतत्त्वगुणगौरवगर्भितं ये ।

तेषां गृहे प्रतिदिनं विलसन्ति पद्मा रत्नप्रभस्स दिशतात्कमलाविलासं ॥ ८ ॥

कल्पद्रुमः करतले सुरकामधेनु—श्चितामाणिः स्फुरति राज्यरमाभिरामा ।

यस्योल्लसत्कमयुगांबुजपूजनेन रत्नप्रभस्स दिशतात्कमलाविलासं ॥ ९ ॥

इत्थं भक्तिभरेण देवतिलकश्चातुर्यललिगुरोः

श्रीरत्नप्रभसूरिराजसुगुरोः स्तोत्रं करोति स्म यः ।

प्रातः काम्यमिदं पठत्यविरतं तस्यालये सर्वदा ।

सानंदं प्रमदेव दीव्यतितरां साम्राज्यलक्ष्मीः स्वयं ॥ १० ॥

इति ओएसनगरे सपालक्षश्रावकाः प्रतिबोधिता ओएसवालज्ञातिः स्थापिता तस्य स्तोत्रमिदं

प्रातर्न्याख्यान पद्धतौ प्रत्यहं पठनीयं ॥ संपूर्ण ॥ ग्रंथाग्रंथ ॥ ३१५ ॥ श्रीरस्तु ॥

॥ ३२ अर्हम् ॥

॥ नमोऽस्तु धर्मणाय भगवते महावीराय ॥

जैन साहित्य संशोधक

‘पुरिसा! सच्चमेयं समभिजाणाहि । सच्चस्ताणाए उवट्ठिए मेहावी मारं ।’

‘जे एगं जाणइ से सब्बं जाणइ, जे सब्बं जाणइ से एगं जाणइ ।’

‘दिट्ठं, सुयं, मयं, विण्णायं, जं एत्थं परिकहिज्जइ ।’

—निर्मन्थप्रवचन-आचारांगसूत्र ।

खंड २]

[अंक-२]

श्री महावीर-निर्वाण समय-निर्णय

[इन्डियन एन्टीकैरी, भाग ४३ मां, प्रकाशित, जार्ल चापेन्टीअर, पीएच्. डी.; उपसला;
ना इंग्रैजी लेखनो अधिकल अनुवाद]

‘केम्ब्रिज हिस्टरी ऑफ इंडिया’ पु. १ मां जैनोना इतिहास विषेणुं प्रकरण लखती वखते महावीरनो गरेखरो समय नकी करवानां मने खास जरूर पड़ी हती; परंतु आ महत्त्वना प्रश्न उपरना अनेक प्रमाणोना ऊहापोह करवानो तेमां पूर्ण अवकाश नहि मळवार्थी, प्रचलित जैन धर्मना संस्थापकना समय विषे में जे अभिप्राय बांध्यो छे तेना मूलभूत तत्त्व विचारोने अहां दर्शाववानुं मने अनुकूल लाग्युं छे. चली, प्रो. जेकोबीण जैनधर्मना अभ्यासमां अगत्यनां पुस्तकां—कल्पसूत्र तथा सैंफ्रेड बुक्स ऑफ धी ईस्ट, पु. २२—नी प्रस्तावनामां महावीरना समय माटे ^१ सखल प्रमाणोयी, पण संक्षेपमां, जे संकुचित अवधी बांधी त्यारपड़ी आ विषय उपर कोई पण पूरेपूरी चर्चा करवामां आवी नथी; तेथी ए विषयने अहां फरीथी उपाड्यो अस्थाने नहि गणाय. प्रो. जेकोबी पासे जे प्रमाणो हतां लगभग तेवां जे प्रमाणो मारी पासे छे, तेथी मारा आ लेखमां घण भाग तेमना कथननुं पुनरालेखन धरो अने पड़ी तेमनो

१. महावीरना समय विषे मारी पहिलाना विद्वानोना अभिप्रायो माटे जुआं—राइम्, इंडि० एन्टी० पु. ३ पा. १५७; इ. थॉमस, पु. ८, पा. ३०; पाटक पु. १२, पा. २१. प्रोफेसर जेकोबीना लेखणी आ बधा लेखो रद थया छे तेथी मार लेखमां ए जुना लेखको विषं हुं उल्लेख करवानो नथी.

વિકાસ કરવામાં આવશે. ઘણા વર્ષે ઉપર ઉપર મહાવીરના સમય વિષે જે અભિપ્રાય વાંધ્યો હતો, પરંતુ જેને આ વિષયના અભ્યાસી વિદ્વાનોએ ઉપાડી લીધો નથી; તે જ અભિપ્રાય આ તપાસના અંતે મારો પણ થશે એમ સર્વને માલુમ પડશે.

જૈન ધર્મે વિપેના ઉપયોગી નિર્વંધોમાં, પટ્ટલે કે-હૉર્નલ, પ્રોસી^૦ ૫૦ ૫૨૦ થી^૦ ૧૮૯૮, પૃષ્ઠ ૩૧, અથવા ગુરીનોટ, વીન્ઝલીઓગ્રાફી જૈન, પૃ. ૮ માં, મહાવીરના અવસાનની તિથિ ૬. સ. પૂર્વે ૫૨૭ કહી છે. પોતાના આ ધર્મગુરુનું નિર્વાણ વિક્રમ પહેલાં ૪૭૦ વર્ષ થયું એમ શ્વેતામ્બરો માને છે, તથા વિક્રમ પહેલાં ૬૦૫ માં થયું એમ દિગંબરો માને છે; આ વાત સર્વને સુધિદિત છે. આ વે તિથિની વચ્ચે જે ૧૩૫ વર્ષનો તફાવત છે તે વિક્રમ સંવત્ (૬. સ. પૂર્વે ૫૭) અને શક સંવત્ (૬. સ. ૭૮) વચ્ચેના તફાવત જેટલો છે, તેથી પ્રો. જેકોબી જણાવે છે તે પ્રમાણે, ^૧ પટ્ટલું સ્પષ્ટ થાય છે કે દિગંબરોએ શાલિવાહન અને વિક્રમ એ વે નામનો માંહોમાંહે ગુંચવાડો કર્યો છે, — અને આવી મૂલ ઘણી વાર થતી જોવામાં આવે છે. ઉપલક નજરે જોતાં આપણને આ વાત એકાએક જરી લાગે છે પરંતુ જેકોબી અને થીજા વિદ્વાનોના કહેવા પ્રમાણે, જ્યારે આપણે વારીક તપાસ કરીએ છીએ ત્યારે માલુમ પડે છે કે આ કથનને સ્વલ્પ પ્રમાણોનો આધાર નથી. ૬. સ. પૂર્વે ૫૨૭ ની તિથિ વિષે વે મુદ્દાઓ વિચારવા યોગ્ય છે:—

(૧) મહાવીરના નિર્વાણનો સમય અને વિક્રમના ૬. સ. પૂર્વે ૫૭ માં રાજ્યારૂઢ થયાનો સમય, આ બેની વચ્ચેનાં ૪૭૦ વર્ષના સંબંધમાં જૈનોનાં કથનો; અને

(૨) બુદ્ધ જે મારા મત પ્રમાણે (કે જે હું આગલ સમજાવીશ) ૬. સ. પૂર્વે ૪૭૭ માં અવસાન પામ્યા તેમના સમકાલીન મહાવીર હતા એવું સપ્રમાણ સાબિત થયેલું છે, તે ઉપરથી મહાવીરના નિર્વાણ માટે ૬. સ. પૂર્વે ૫૨૭ ની મીતિ ચરી હોવાનો સંભવ છે વા અસંભવ.

અંતે મારા હેસના હેલા (૩) ભાગમાં, હેમચંદ્રે દર્શાવેલી સાંપ્રદાયિક દલીલો વિષે ઘર્ષા કરી તેમાંથી શું પરિણામો આવે છે તેનો વિચાર કરીશ.

૧. જૈન કાલગણના અને તેનો આધાર.

પ્રખ્યાત જૈન લેખક મેરુતુંગે વિ. સં. ૧૩૬૬=૬. સ. ૧૩૦૪ માં પ્રવચ્ચર્ચિતામાણિ નામક ગ્રંથ રચ્યો; અને ત્યારપછી લગભગ વે વર્ષે વિચારશ્રેણિ નામે ગ્રંથ રચ્યો જે માડ દાજીના ^૩ કહેલા પ્રમાણે, તેના થેરાવલી ગ્રંથની ટીકા રૂપે છે. આ ગ્રંથમાં વીર સંવત્ અને વિક્રમ સંવત્ના સમન્વય માટેના આધાર રૂપે તે પ્રસિદ્ધ ગાથાઓ આપેલી છે જેનું પ્રથમ અવતરણ બુલ્હરે ^૪ આપ્યું હતું અને ત્યારપછી જેની ચર્ચા જેકોબીએ કરી હતી. ગાથાઓ આ પ્રમાણે છે:—

જં રયણિં કાલગજો અરિહા તિત્યંકરો મહાવીર ।

તં રયણિં અવંતિ-વર્ષે અહિસિત્તો પાલગો રાંયા ॥ ૧ ॥

સદ્ધી પાલગ-રણ્ણો પળ્ણવળ્ણસયં તુ હોદ નન્દાણ ।

અદ્ધસયં મુરિયાણં તીસં ચિય પૂસમિત્તસ્સ ॥ ૨ ॥

૨. કલ્પસૂત્ર, પા. ૭. ૩ જુઓ—જર્નલ, ડૉ. વૈ. રૉ. ઇ. સો. પુ. ૧, પા. ૧૪૭; મેરુતુંગના બીજા ગ્રંથો, અને અર્વાચીન લક્ષણોમાં આવેલા તેના વિપેના હજેલો વિષે જુઓ વેવરલુ કંટેલોગ, પુ. ૨, પા. ૧૦૨૪.

૪. ઇંડિ. એન્ડી. પુ. ૨, પા. ૩૬૨.

चलमित्त-भाणुमिच्छा सट्टी वरिसाणि चत्त नहवहने ।

तह गहभिल्ल-रज्जं तेरस वरिसा सगस्स चउ ॥ ३ ॥

भावार्थः—जे राजे अर्हत् तीर्थकर महावीरे निर्वाण प्राप्त कर्युं ते ज राजे अघन्तीपति पालकनो अभिषेक करवामां आव्यो. (१)

पालक राजाए ६० वर्ष राज्य कर्युं, अने नंदोए १५५ वर्ष राज्य कर्युं; मौर्योए १०८ वर्ष, तथा पूसमिच्छे (पुण्डमित्रे) ३० वर्ष राज्य कर्युं. (२)

चलमित्र अने भानुमित्रे ६० (वर्ष) राज्य कर्युं, अने नमोधाहने ४० वर्ष. ते ज प्रमाणे गर्द-भिल्ली न सत्ता १३ वर्ष रही, तथा शकुं राज्य चार वर्ष रह्युं. ५ (३).

आ ग्रण गाथाओ घणी टीकाओ अने कालगणना-विचार-विषयक ग्रंथोमां उद्धृत करेली छे (ध्युल्हर). दाखला तरीके, तपासच्छली (महावीरथी विजयरत्तना पट्टारोहण सुधीनी एट्टले वि. सं. १७३२-इ. स. १६८१-८६ सुधीनी) ६ पट्टायली. एमां विक्रम अने शक घघेना समयपूरक पण वे श्लोक आप्या छे, परंतु अहीं ते संबंधे आपणे विचार करवानो नथी. ब्रजिा श्लोकोमां नहवहणने बदले नहवाण पाठ आप्या छे ते एक तफावतनी बायत छे; पण अहीं ते पण आपणने अनुपयुक्त छे; कारण के, ते श्लोको बहुत ज गुंजवाडा भरेला तथा अश्रद्धेय छे; एट्टलुं ज नहि पण, ते ग्रंथकारे नहवान नामना महान सुयानो समय विक्रमनी पहिलां सूक्यो छे के जे तदन असंभवित छे.

उपर कछा प्रमाणे, आ श्लोकोमां महावीरना निर्वाणथी ते प्रख्यात राजा विक्रमादित्यना समय सुधीमां थपला राजवंशोनी टुंक हकीकत आवे छे. पण ए गाथाओ मूल कया ग्रंथनी छे ते तदन अद्यात छे. एट्टलुं ज मात्र नकी छे के आ श्लोको मेरुतुंगना अगर तेना कोई समकालीनना रचेल नथी, कारण के ते समय पहिलां घणा वखतथी जैन ग्रंथकारोए प्राकृत भाषामां लखयानुं छोडी दीपुं ह्युं. ७ अलवत्त, जैनाना आगमोमां सो आ गाथाओ नथी ज; अने तेथी देवर्द्धिगणिनी सिद्धांत ग्रंथोनी छेली आपुत्ति पछी (महावीर पछी ९८० अगर ९९३ मां, एट्टले के इ. स. पूर्वे ५२७ थी गणतां इ. स. ४५३ अगर ४६६) एरञ्जायानो घणो संभव छे. एट्टले ए श्लोको सिद्धांतनी छेली आपुत्ति घपते अगर तरत पछी जे टीकाओ रचार्ह ते जुनी टीकाओमांनो हयो. आ ग्रंथनां हस्तलिखित पुस्तको प्रमाणे नहवहणे ए प्रथमा विभक्ति सप्रमाण होय तो ए थमुक समयनुं सूचक नथी शके—जो के आ विषयमां हुं कोई पण स्पष्ट अभिप्राय आपी शकुं तेम नथी—कारण के एट्टलुं तो सुनिश्चित ज छे के पाछलथी लखायली टीकाओमां, दाखला तरीके, देवेन्द्रनी उत्तराश्रयन उपरनी टीकांमां (इ. स. १०७३) ज्यां टीकाना समय फरतां प्राकृत भाषा घणी जुनी छे, त्यां एकारान्त प्रथमा जोयामां आवती नथी. ८ आ अने

५. आ अनुवाद बुल्हरनो कोलो छे.

६. हेंडे प्रसिद्ध करली, एन्डि० एन्टी०पु. ११, पा. २५१.

७. स्टडी इटालीअनी, पु. १, पा. १० मां पुहेना कहवा प्रमाणे जैन ग्रंथकारोए लग भग इ. स. ८५० (शीलकन समय) थी संस्कृत भाषामां लखा मांडयुं; तेम छतां आ कोई निश्चित मीति नथी.

८. आ ग्रंथने में दाखला तरीके लीथी छे तेनुं कारण ए के तेनी प्राकृत भाषा प्रो. जेकोवीना *Ausgewählte Erzählungen* नामना पुस्तकथी सुनात थाय के. आ विषयनी चर्चा स्पष्ट करवा मांडे मोरे कहेयुं जोइए. के ए प्रथमाना ज जे भाषामां एकारान्त प्रथमा जोवे छे (पा. २८, पं. १७-२४, पा. ३२, पं. २५, पा. ३३ पं. २८, अने पा. ३४, पं. ११-२०) ते ते भाषोनी भाषा तर्न सुदाज छे, अने कदाच कोइ एक शंगनी छे, जेनुं नाम हुं हाल स्पष्ट सेते कहा शकुं तेम नथी.

આર્યા યીજાં મીતિ વિપેનાં જૈનોનાં કથનો સંવંધી એક વાત ઉપર જાસં ખાર મુકવાનો છે, અને તે પ. કે. સર્વ પ્રંથકારો વિક્રમ સંવતની સ્થાપના ઉજ્જયિનીના રાજા વિક્રમાદિત્ય કરી પૂમ માને છે. પણ કીલ્હાને⁹ ઘણા વચ્ચત થયાં સિદ્ધ કર્યું છે કે ઇ. સ. પૂર્વે ૫૭ થી શરૂ થતા સંવત્સાથે, ઉજ્જયિનીના રાજા વિક્રમાદિત્ય, કે જે કદાચિત્ જગત્માં થયો પણ નહિ હોય, તેનો સંવંધ ઘણો પાલક થી સ્થાપિત થયો છે; અને એ વિક્રમ સંવતનો સોથી પ્રથમ ઉલ્લેખ, સંવત્ ૮૧૮=૬. સ. ૮૪૨ ના ધોલપુરના એક લેખમાં કરવામાં આવ્યો છે; તથા તે સંવત્ની સાથે વિક્રમના નામનું જે જૂનામાં જૂના સાહિત્યમાં કથન થયું છે તે ધનપાલના પાઠ્યલચ્છી (વિ. સં. ૧૦૨૯ ઇ. સ. ૧૭૨) અને અમિતગતિના સુભાષિતરત્નસંદોહ (વિ. સં. ૧૦૫૦ ઇ. સ. ૧૧૪) ગ્રંથમાં છે.¹⁰ આ પ્રમાણે જો આપણે ગણતા કરિયે તો આપણને જણાશે કે વિદ્યમાન રૂપમાં તો આ શ્લોકો ઘણા જૂના હોઈ શકે નહિ; છતાં કે કદાચ ઇ. સ. ના ૮મા અગર ૯ મા સૈકાના હશે. પણ આ તો માત્ર સૂચના જ છે; અને આ શ્લોકોમાં આપેલી, મહાવીરના અવસાન અને ઇ. સ. પૂર્વે ૫૭ માં શરૂ થયેલા સંવત્ની વચ્ચેના કાળમાં થયેલા રાજાઓની ગણતરી, આ સંવત્નો ઉજ્જયિનીના કાલ્પનિક રાજા વિક્રમાદિત્ય સાથે કોઈ પણ રીતિપે સંવંધ થયો, તેના ઘણા વચ્ચત પહેલાં હયાત હશે.

એ ગાથાઓમાં કોટલાં કથનો જરા ગૂઢ લાગે છે. અહીં અવંતીના રાજા પાલકને નંદ અને મૌર્ય વંશો સાથે, મગધના પુષ્યમિત્ર સાથે, તથા ગર્દભિલ્લ, જેને અન્ય સ્થલે વિક્રમાદિત્યના પિતા તરીકે વર્ણવવામાં આવ્યો છે તેની સાથે, તેમ જ પશ્ચિમ દિંદના કેટલાક રાજાઓ સાથે અને દિંદના ઉત્તર-પશ્ચિમ જુનાના અનાર્ય રાજવંશોના શકની સાથે એકત્રિત કરવામાં આવ્યો છે જેકો-વીએ¹¹ જણાવ્યું છે કે આ યાદી કે જે પ્રથમથી જ મગધરાજાઓનાં નામ આપવા માટે રચાઈ હશે, કારણ કે મહાવીર તેજ વેશના હતા, તેમાં અવંતીના રાજા પાલકનું નામ આવે એ વાત શંકાસ્પદ છે. ત્યારે આ પાલક તે કોણ? ચરેન્દ્ર આ પાલક યીજો કોઈ નહિ પણ તે અવંતીના પ્રયોતરાજાનો પુત્ર અને વારસ તથા વત્સના પ્રસિદ્ધ રાજા ઉદયનની¹² રાણી વાસવદત્તાનો ભાઈ, જે પાલક નામે ઓળખાય છે તે જ છે. આ ઉદયન મહાવીર તથા બુદ્ધનો સમકાલીન હતો તેથી તેનો સાલો પાલક લગભગ મહાવીરના નિર્વાણ સમયમાં રાજ્યારૂઢ થયો હોય એ સંભવિત છે. પરંતુ મહાવીરના સમયમાં કે ત્યારપછી મગધમાં શાસન કરતા શિશુનાગના વંશ સાથે એ પાલકને કોઈ પણ જાતનો સંવંધ નથી. પણ આ યાદીમાં તેનું નામ આવવાથી આપણને ગાથાના મૂર્ત્તિવિષયક પ્રશ્નના નિરાકરણ માટે એક અમૂલ્ય કુંચી મળે છે. કારણ કે ઉપર જણાવ્યા પ્રમાણે હાલના રૂપમાં તેઓ આધુનિક છે, અને તેથી જ્યારે મગધના રાજ્ય સાથે જૈન લેખકોનો સંવંધ રહ્યો ન હતો તે વચ્ચતમાં રચાઈ ગયો છે. પણ તેમાં જણાવેલાં ૪૭૦ વર્ષમાંથી ૨૯૩

9. ઇન્ડિ. એન્ટી. પુ. ૨૦, પા. ૩૧૭.

10. સમય નિર્ણયના જરા તફાવત માટે (ઇ. સ. ૧૧૩ અગર ૧૧૪), સરસ્વાતો સ્મીટ (Schmidt) અને હર્ટલ (Hertel), Z. D. M. G. 59, 297

11. કલ્પસૂત્ર, પા. ૮.

12. ભાલુ દાર્જીના કહેવા પ્રમાણે મેરુતુંમે સ્પષ્ટ જણાવ્યું છે કે જે રાજા મહાવીરનું નિર્વાણ થયું તે જ રાજા પ્રયો- તનું મરણ થયું, જનલ બો. ગ્રે. ઈ. સો. પુ. ૧, પા. ૧૪૭. મૃત્તિકાક્રિકમાં જે નામ આવે છે તે ઇસું છે કે નહિ તે કહી શકાય તેમ નથી. પણ તે નાટકમાં તેના અને ઉદયનના સંવંધ વિષે કોઈ સાર્વાતિ ન હોવાથી હું એ વાત સંભવિત ધારતો નથી. પરંતુ ત્રિવેન્દ્ર પ્રંથમાઝામાં છપાઈ ચારુદત્તનું મૂળ મઝ્ઝો ત્યારે કદાચ આ પ્રશ્ન ઉપર કાંઈક અજવાઈ પાડી શકાશે.

जेटलां वर्ष सुधीना तो मगधना खरा ऐतिहासिक राज्यकर्ताओने गणाव्या छ, तेथी एम चोक्स अनुमान थई शके के मगधराजाओनां खरां नाम अपनारी जूनी तचारीखोमांथी आ नामो लीधां हरो. आ यादीमां छेलां नामो उज्जयिनीना राजाओनां आवे छे; गर्दभिल्ल पण उज्जयिनीना राजा हतो, तेनो पुत्र विक्रमादित्य तेओमां घणो प्रख्यात हतो, तथा जैन लोकोए इस्वी सननां पहिलांनं सैकांओमां हिंदना पश्चिम भागमां घणो अगत्यनो भाग भजव्यो हतो, तेम ज तेमने उज्जयिनी साथे घणो संबंध हतो; एटला मटे तेमने उज्जयिनीना राजाना नामथी आ यादी शर करवी तथा तेना ज नामथी इति करवी ए अनुकूल लाग्युं हरो. विशेषमां एम पण एक अनुमान थई शके के मौर्यराजाओनी पडतीथी ज जैनोनो मगध अने पूर्वहिंद साथेनो संबंध तूटी गयो हतो. बौद्धोनी गुंचवाडा भरेली वातो उपरथी तथा वीजां वधारे निश्चित प्रमाणो¹³ उपरथी आपणे एम धारी शकीए के पुष्यमित्र घणो ज धर्मद्वेषी हतो, अथवा तो एना वंशजोथी तेमने घणुं सहन करवुं पडवुं हतुं. ते समय पछी खरी रीते मगधराज्य विपे तेथो कशुं जाणता न हता. ¹⁴ मगध देशना आ राजाओनी यादीमां पालकनुं नाम केम आव्युं तेना विपे प्रो. जेकोवीए ¹⁵ एक गुंचवण भरेलो तर्फ बांध्यो हतो, ते एवो के ग्रंथकर्ताए अजातशत्रुना पुत्र अने चारम उदायिनने बदले भूलथी पालकना वनेत्री उदयनने गण्यो, अने तेथी उज्जयिनीना पालकनुं नाम आ प्रमाणे ए यादीमां आवी गयुं. में उपर समजाव्युं छे ते प्रमाणे हुं भारतो नथी के पालक मूल यादीमां होय; पण जो तेमां, तेना नामनी हयाती माटे कोई कारण आपवुं होय तो, हुं सरळ रीते ग्राह्य थाय तेवी वीजी सूचना करुं छुं. कल्प-सूत्र १४७ (जेकोवी—संपादित पा. ६७) मां एम कहवामां आव्युं छे के महावीर ज्यारे छेला पाचा (अगर पापा) मां रहा हता त्यारे हस्तिपालकनी लेखकोवाली सभामां (रज्जुसभा) निर्वाण पाप्मा: आ राजानुं नाम कल्पसूत्र १२३ मां पण आवे छे, ज्यां तेने हाथिपाल कहेलो छे, अने जेकोवीए, से० बु० ३०, पु० २२, पा० २६४, २६९ ए वने ठेकाणे हस्तिपाल एम नाम आपरेलुं छे. पण हस्तलिखितग्रंथ वने फकराओमां हाथिपाल अने हाथिपाल एम रूप आपे छे, अने पाछलुं रूप जेकोवीए कल्प० १४७मां आपेलुं छे. आ उपरथी एम स्पष्ट थाय छे के तेनुं नाम हस्तिपाल अगर हस्तिपालक हतुं. आ वायत उपर कोई भार मूकवानी जरूर नथी, कारण के तेमांथी वधारे जाणवानुं आपणने कोई कारण नथी. हचे हस्तिपाल (क) ने घरगतु भावामां पालक पण कहैता होय तो ते संभवित छे अने मानी सकाय तेम छे; तेम ज आ राजा महा-वीरना निर्वाण साथे घणो निकटनो संबंध धरायनारो होवार्थी आपणे एम सूचवी शकिए के महावीरना निर्वाणनी रात्रिए तेने अभिषेक करवामां आव्यो हतो, एम पाछलथी कहैचामां आव्युं हरो. मारा अभिप्राय प्रमाणे, कोईक पालक जेने, पश्चिम हिंदमां जैनोमां प्रसिद्ध थएला ए ज नामना अचन्तीना राजाने बदले पाछलथी भूलथी गण्यो हरो, तेनो आ यादीमां अस्तित्व भोगववानुं आर्या पुरतुं कारण मली शके. ¹⁶ परंतु उपर जणायेलां कटलांक कारणोने लीधे

13. सरखावो: वी. ए. स्मीथ, अर्ली हिस्टरी ऑफ इंडीआ, पा. १८८.

14. पूर्वहिंदमां कालिगनो राजा खारवेल जैनोनो रक्षक हतो; परंतु आ रक्षक पणुं ओहो वखत रह्युं हरो. जेनो पानाना ए आश्रयभूत राजानो नामोहेस पण क्यांए करता नथी, तेम ज तेनी सीति पण अनिश्चित छे.

15. कल्पमूल, पा. ८,

16. पावानो हस्तिपाल (क) राजा कपिलवस्तुना शुद्धोदननी माफक, अगर कुंडगामना सिद्धार्थनी माफक एक नानो ठाकोर हरो, तेथी हुं थारुं छुं ते प्रमाणे कोई पण इतर जैन अगर ब्राह्मण ग्रंथोमां तेनुं नाम मली आवतुं नथी. आ उपरथी एम जणाय छे के एनुं नाम याद रहेवानुं कारण ए ज के एना राज्यमां महावीर निर्वाणने पाप्मा; अने तेथी ए पण स्पष्ट ज छे के आवी नानो राजा तेना नामना मोटा राजाने बदले भूलथी गणवामां आवी जाय.

आ पालक राजा महावीराने समय नहीं करवामां, अने महावीर निर्वाण तथा चिक्रम संवत्ते प्रारंभ ए वेनी वच्चेनो समय पूरे करवामां, उपयोगी थाय तेम नथी.

हाल तुरत आपणे आ श्लोकोमां आपेलो नंदेनो समय (१५५ वर्ष), मौर्येनो समय (१०८ वर्ष) तथा पुष्यमित्रनो समय (३० वर्ष) तपासमां लेता नथी; तेनो विचार आगळ उपर करीशुं- हमणां चिक्रमसंवत् पहलां ११७ वर्ष सुधीना, एटले के लगभग ६० स० पूर्वे १७४-५७ सुधीना राजाओ विपे हुं बोलचा मागुं छुं. आ राजाओ नीचे प्रमाणे:

वालमित्र अने भानुमित्र, ६० वर्ष राज्य

नहवहण (नभोवाहन), ४० " "

गर्दभिल्ल १३ " "

अने शक ४ वर्ष राज्य

आ राजाओनी विचित्र यादी विपे कांई पण निश्चित रीति कहेवातुं नथी. नहवहण जेने वदले गुल्हर अने जेकोवी नभोवाहन लखे छे तेनुं नाम बालकुल जाण्यामां नथी; १७ तेने माटे एक ज सूचना थई शके के मौर्य राज्यनी पडतीनो समय अने चिक्रमसंवत्ना आरंभनो समय ए वेउनी वचमां पश्चिम हिंदमां ए कोई नानो राजा थयो ह्यो. वली, जो के चलमित्र अने भानुमित्रनां नाम बीजे स्थले जोचामां आवे छे तो पण एमने माटे पण उपरोक्त कथन ज कहेवुं योग्य थयो. जेकोवीए प्रसिद्ध करेली, जरा गुंचवाडा भरेली कालकाचार्यनी वार्तामां, पा० २६८ उपर आपणे बांचीए छीए के आ राजाओ जे कालकना भविजा थता हता तेओनुं राज्य भरुच्छ (भरुच) मां हतुं, तथा तेओ जैनधर्म प्रत्ये मित्राचारीथी वर्तता हता. ए वार्तामां कहाा प्रमाणे कालके रोपे भराईने, पोताना शत्रु उज्जयिनीना राजा गर्दभिल्लने मारवाने, शक लोको ने हिंदमां बोलवाया हता. ते उपरथी आ ये राजा चिक्रमना समयथी जरा ज आगळ थया हता एम कही शकाय. एक अगर ८ व्रण १८ कालकोनी वातेनो वधारे गुंचवाडो करवानुं मूकी दर्शने हुं एटलुं ज कहुं छुं के कालक एक ज थयो हतो जे महावीर पछीनो २३ मो 'स्थविर' हतो; तथा कल्पद्रुमनी १७ पुरवणीमां कहाा प्रमाणे निर्वाण पछो ३७६ मा वर्षमां विद्यमान हतो; एटले के इ. स. पूर्वे ५२७ थो गणीए तो इ. स. पूर्वे १५१ मुं वर्ष आवे. तपागच्छनी २० पट्टा-वलीमां कहेवुं छे के आ कालक महावीर पछी ३७६ अगर ३८६ वर्षे, एटले के इ. स. पूर्वे १५१ अगर १४१ मा पंचत्चने पाम्यो; अने आ समय उपरोक्त श्लोकोमां चलमित्र अने भानुमित्र विपे निर्णीत करेला समय साथे बराबर मळतो आवे छे; कारण के तेओ बनेए ६० वर्षे सुधी एटले इ. स. पूर्वे १७४-१७३ अने ११४-११३ नी वचमां राज्य करेवुं मानवामां आवे छे. परंतु हुं तो आ वातने, तेम ज उपरोक्त श्लोकोने जरा पण अगत्यता आपी शकतो नथी.

१७. जो आ नहवाण नाम कांई पण उपयोगनुं होय अने ते सत्तप राजा नहपान जे इ. स. ८०—१२५ मां थयो हतो एम मानवामां आवे छे, ते ज ए होय, तो आ यादी पाछा भागमांथी नकामी नाबडे. पण वस्तुस्थिति आ प्रमाणे नथी एम मानवाने मने कारणो मळे छे: (१) गमे तेवा गुंचवाडा भरेली बंशावली होय तो पण नहपान ने विक्रम पहलां मूक्यो ए अशंभव छे; अने (२) जो, ते नहपान ज होय, तो चौकस रीति तेनुं नाम कालकाचार्यनी वार्तामां आववुं ज जोईए, के जे वार्तानो विषय विक्रमनी पहलां हिंदमा सांभीयन सत्तानो उदय ए छे, पण ए प्रमाणे जोवामां आववुं नथी.

१८. सरखावो: जेकोवी, पा. २५०.

१९. जेणे उत्तराध्ययन सूत्र उपर टीका लखी हती ते लक्ष्मीवल्लभनी बनोवेली कल्पसूत्र उपर आ एक टीका छे.

२०. ह्राट, इन्डि. एन्टी० पु. ११, पा. २५१.

उपर निर्दिष्ट कोरली कालकनी वार्तामां ज गर्दभिल्ल अने शकोनो इतिहास आवे छे. महावीर पछी ४५३ मा वर्षमां एटले के इ. स. पूर्व ७३ मां अगर विक्रमनी पहिलां सत्तरमा वर्षे थपला राज्यारोहण वाला गर्दभिल्लना समयमां हयाती धरावनार बीजा कालके विक्रम राजाना पहिलां सीधीयन राजाओने हिंदुस्थानमां चढाई करवा मटि वोलाव्या तेना विपेनी वातोने, खरेखर, काईक पतिहासिक प्रमाण होवुं जोईए. बीज स्थळ आ गर्दभि (ल) ने उज्जयिनीनो राजा तथा विक्रमादित्यनो²¹ पिता कहेलो छे; अने तेना विपे एम सुचित करवामां आव्युं छे के इ.स. ४२०-४३८ मां थपलो अरवस्ताननो राजा बहुराम गोर तेज आ हतो, बीजा चळी कहे छे के इ.स. पूर्व पहिला सैकामां थपलो सत्रप गुडफर अगर गॉन्डेफेरस ते पण आज हतो; ²² परंतु गर्दभि(ल) विक्रमना समय साथे निकटनो संबंध धरावनो हतो, तेथी उपरोक्त वने प्रमाणो निर्बल ठरे छे. चळी, गर्दभिल ए नाम पण एक चिचित्र भारतीय जेवुं लागे छे, ²³ जेतुं कारण भाग्ये ज आपीं शक्य; तेथी ते नामतुं मूल परदेशीय हरो एम संभवे छे. मने एम पण शक्य लागे छे के गर्दभिल ए ग्रीक नाम छे अने तेथी ते नामनो माणस काईक नानो ग्रीक राजा होयो जोईए जेने सीधीयन राजाओए हराव्यो हरो. पण तेने उज्जैनना ए नामना प्रख्यात राजा साथे काई संबंध न हतो. आ कामचलाउ तर्कनी विरुद्ध सबळ प्रमाण आपी शक्य तेम नथी, कारण के विष्णुपुराण पं ४५, २५, १५ मां गर्दभिलेने एक जात तरीके गणी, आंध्र वंशथी उतरी आवेली यवन, शक, बाल्हीक विगेरे हिंदुस्थान उपर चढाई करनारी जातो साथे गणावी छे; ए कारणे कदाच घणा जूना सैकाशेमां थपला गर्दभिल्लनी साथे नैसर्गिक अगर कृत्रिम संबंधे तेना नाम उपरथी आ लोकोतुं नाम पड्युं हरो.

गर्दभिल्लना विषयमां आटलुं ज.पण शक के जेणे विक्रमादित्यथी द्वार्या पहिलां चार वर्षे सुधी राज्य कर्युं हतुं एम कहेलुं छे, तेना विपे घणो रस आपी शके एवी तथा ऐतिहासिक उपयोगिता वाली केरलीक सूचनाओ कालकनी शुंभवणभरेली वार्तामां आवेली छे. ते वार्तामां कहेलुं छे के गर्दभिल्लना उच्छेदनी प्रतिज्ञा छईने कालक केरलीक वखत भट्क्यो अने शककुल देशमां (Z. D. M. G. 34, 262) आय्यो; अने कालकाचार्यकथानक, श्लोक ६३ मां शकवंश विपे कहेलुं छे के:—

समकूलाओ जेणं समागया तेण ते सगा जाया ।

‘शककुलमांथी उतरी आवेला होवार्थी ते शक कहेवाया, चळी, एमां ज कहेलुं छे के शककुलना प्रांतोना अधिकारीओने साहि कहैता. तथा ते देशना राजा ‘राजसमूहना मुकुटमाणि’ ने साहायुसाहि कहैवाता. ‘शककुल-शकस्थान’ एम कहेलुं प्रो. जेकोपीनुं सत्य हतुं; ²⁴ तथा रद्वेयो, ११, ८, २, ²⁵ मां अखिलं नाम जे संस्कृत शब्द शककुलना जेवुं ज छे ते पण तेमणे संभा. री आय्युं छे; अने एटलुं तो निःसंदेह छे के ते उपरथी ज जरा फेरफार करी पाडेलुं छे, तेथी कालक विपेनी वार्तानो तथा तेणे कएवेली सीधीयननो चढाईनो काईक ऐतिहासिक

21. विष्णुपुराण (विल्सन), ५, ३९३; सरखानो बेवर इन्डि० स्टडी० पृ. १५, पा. २५२

22. प्रथम सूचना As. Res. IX, 147 मां विल्फ्रेड कोरली, अने बीजी इन्डि० एन्डी० २, १४२ मां प्रीनेगे कोरली, तथा तेने Ind. Act. II, 409 मां लैसेने अनुमोदन आय्युं छे.

23. मारा धारवा प्रमाण जूना नाम गोमिल साथे, तथा मृच्छकटिकमांता तहन असृत रोमिल नाम साथे ज सरखानो शक्य. सरखानो: Indog. Forsch, 28, 178; 29, 280 sqr.

24. पा. २५५.

25. (आ ठेकणे लेखके ग्रीक अवतरण आपेलुं छे जे अहां छापी शक्य तेम नथी-संपादक)

આધાર હશે જ; તથા વાર્તાનું 26 સ્વચ્છ રૂપ જોઈને હું ધાતું છું કે, આપમા કડફીસે કરેલી હિંદના ઉત્તરપશ્ચિમ ભાગની જાત વિષે તે કહે છે, એ અસંભવિત છે. કારણ કે તે વાર્તામાં શકસમ્રો અને કોઈક ગ્રીક (?) રાજા (ગર્દભિલ) વચ્ચેની લડાઈ જે પાછલથી ઉજ્જયિનીની સામાન્ય લૌકિક વાર્તા થઈ તેની આછી સ્મૃતિ જ હશે એમ લાગે છે. ઇ. સ. પૂર્વે પ્રથમ સૈકામાં જે શક રાજાઓ થયા તેનો પૂર્ણ અહેવાલ ડાક સાહિયની ફ્રોનિલોંજી ઑફ ઇન્ડિયા, પા. ૧૭ માં આપેલો છે, અને તે અહેવાલથી મારી સૂચના નિર્વલ થતી નથી. ચઢાઈ કરનારા અરવસ્તાની હતા તથા સાહાણુસાહિનો અર્થ 'રાજાધિ-રાજ' થાય એ કલ્પનાને ટેકો અપાય તેમ નથી. કારણ કે તે એમ સ્પષ્ટનાથી કહેલું છે કે ચઢાઈ કરનારા શક હતા, નહિ કે આરબી અગર વેંકટેરીઅન. 'શાએતાનો શાઓ' પદ જે આ વાર્તાના 'સાહાણુ સાહિ' માં હું જોઉં છું તેના વિષે મારે કહેવું જોઈએ કે તે કનિષ્ક પહેલાંના સિક્કાઓ ઉપર નથી; પરંતુ આ ચાલ મહત્વનું નથી, કારણ કે એમ જણાય છે કે એ વાર્તા ઘણા અર્ધાંશીન સમયમાં ઉત્પન્ન થઈ; અને તે સમયમાં પહેલાંના શકો અને કુશાનો વચ્ચે ગુંચ-ઘાડો થઈ શકે તે સહજ છે. પરંતુ એ વાર્તામાં શક વંશનાં સ્ત્રીનાં સ્ત્રીનાં સ્મરણો જાલ-ધી રાજવામાં આવ્યાં છે, તે ઉપરથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે એ વાર્તા તદ્દન નકામી નથી.

આ ચર્ચાથી હું ચતાવવા માણું છું કે ઉપરોક્ત શ્લોકોમાં આપેલી વંશવાર યાદી જૈના ઉપર જૈન લોકો મહાવીરના મરણ અને વિક્રમસંવત્ના આરંભની વચ્ચેનાં ૪૭૦ વર્ષના સમયનો આધાર રાखે છે તે લગભગ તદ્દન નકામી છે. આ સમય ભરવા માટે કમવાર કરેલી રાજાઓની શ્રેણી તદ્દન વિન ઐતિહાસિક છે, અને તેથી તેના ઉપર આધાર રાખી શકાય તેમ નથી. કારણ કે તેમાં નિર્ધાન પછીનાં ૬૦ વર્ષોમાં ઉલ્લેખનો એક રાજા થયો, એમ કહેલું છે, પણ તે રાજાને મહાવીરની સાથે કોઈ પણ સંબંધ નથી. ઉપરોક્ત યાદીમાં તેનું નામ કેમ દાખલ થયું તે માટે મેં ઉપર પ્રમાણે કારણો શોધવા પ્રયત્ન કર્યો છે. વાકીનાં ૨૧૩ વર્ષોમાં મગધના ઘેરોનો સમાવેશ કરેલો છે, જેની ઐતિહાસિકતા વિષે કોઈ પણ જાતનો શક નથી. આ ઉપરથી એમ સ્પષ્ટ જણાય છે કે પ્રથમ આ યાદીમાં મગધના રાજાઓને જ મૂકવાના હશે, કે જે વાત સ્વાભાવિક રીતે આપ. અને પણ હજી છે. કારણ કે મહાવીરે લગભગ પોતાની આંખો જાંદગી એ જ દેશમાં તથા વિવિસાર અને અજાતશત્રુ રાજાઓના ગાઢ સંબંધમાં ગાળી હતી. વિષમ પહેલાંનાં ૧૧૭ વર્ષમાં જે જુદા જુદા ભાગના રાજાઓનાં નામો મર્યા છે, તેના વિષે આપણે પટલું જ કહી શકીએ છીએ કે તે રાજાઓનો મગધ સાથે કોઈ પણ સંબંધ હતો નહિ.

ઉપરોક્ત વિષેચનથી જણાશે કે જૈનોના જે કથન પ્રમાણે મહાવીર વિક્રમ પહેલાં ૪૭૦ વર્ષે, અગર ઇ. સ. પૂર્વે ૫૨૭ માં થયા તે કથનને માત્ર કલ્પનામય જ આધાર છે, અને તેથી અવિશ્વસનીય છે. હવે હું મારી તપાસના ધીજા આગ ઉપર આવીશ અને એમાં વતાવીશ કે ઉપરોક્ત કથન નિશ્ચિત કરેલી વૌદ્ધ મીતિઓ સાથે પણ અસંવદ્ધ છે, અને તેથી સર્વથા તેનો ત્યાગ કરવો જોઈએ.

૨. મહાવીર અને જૈનો સાથે વૌદ્ધોનો સંબંધ-બુદ્ધનો નિર્વાણ-સમય.

જેકોવી અને બુલ્હેરે ઝહાપોહ કરીને સ્પષ્ટ કર્યું છે કે વૌદ્ધ અને જૈન આગમોમાં ઘણાંજણા પદના એક જ માણસોનાં નામો આવે છે—માત્ર કેટલીક જગ્યાએ જ તેમને માટે જુદાં જુદાં નામો વાપરવામાં આવ્યાં છે. આ ઉપરથી ઉપરોક્ત વિદ્વાન મહાશયો એ નિર્ણય ઉપર આવ્યા છે કે બુદ્ધ

26. કાલકની વાર્તામાં સાહાણુસાહિ હિંદ ઉપર ચઢાઈ કરતો નથી પણ તેના સાહિઓ તેના ક્રોધથી નાસી છુટવાને ચઢાઈ કરે છે.

अने महावीर समकालीन होवा जोईए, तेमणे लगभग एक ज प्रदेशमां प्रवास कर्यो होवो जोईए तथा तेमना बखतना एक ज राजाओ अने अप्रगण्य पुरुषोना संसर्गमां तेओ आख्या होवा जोईए. विशेषमां जेकोवीए खास निश्चित रीते वाताव्युं छे के बौद्ध आगममां गणावेला २७ छ पाखंडी गुरुओमांना निगन्ध-नात (थ)-पुत्त ते ज महावीर छे. आ वन्ने समकालीन हुता, तथा वन्ने मगधमां फरता हुता २८ तेथी परस्पर समागममां आख्या हरो, के केम तेनी कदा च कोईने शंका होई शके; पण, आ वन्ने तहनु भिन्न अने स्वतंत्र हुता ए विषयमां तो हवे कोईने शंका थाय तेम नथी. नात(थ) पुत्त अने तेना अनुयायिओ संबंधे बौद्ध आगमोनां वाक्योनी प्रो. जेको-वीए, सैक्रेड बुक्स ऑफ् थी ईस्ट, पृ० ४५, पा० १५ मां सारी रीते चर्चा करेली छे. परंतु तारस्थले तेमनो मुख्य हेतु मात्र जैनो अने तेमना धर्म विषेना बौद्ध उल्लेखो भेगा करी समजाववानो हुतो, ए उल्लेखोमांथी पेटिहासिक वायतो तारवी काढवानो हेतु गौण हुतो, तेथी एमांनां केटलांक वाक्यो विषे हुं अहाँ पुनः चर्चा करीश. ओ के तेमां वर्णवेला वनावो पछी घणा लांवा समये पाली आगम विद्यमान रूपमां संगठित धण्डा होवाथी तेना उपर सर्वथा आधार राखी शकाय तेम तो नथी; तो पण तेमांना केटलाफ मुख्य बनायो तो खास बनेला होवानां सखल प्रमाणो जणाय छे.

सामञ्जस्यफलपुत्त (दी० नि० १, पा० ४७) नी सुज्ञात प्रस्तावनामां कहेलुं छे के, मगध-राज अजातशत्रुए, अनुक्रमे पूर्णकस्सप, मक्खलीगोसाल, अजितकेसकंबल, पकुधफच्छायन, संजयवेल्हापुत्त, अने निगण्ट नाथपुत्त एम छ पाखंडी गुरुओनो धर्म सांभळवा तेमनी मुलाकात लीधी, अने आखरे असंतुष्ट धरिने बुद्धने शरणे गयो. एमां जरा अतिशयोक्ति हरो, कारण के एक ज रातमां अजातशत्रुए सान महान गुरुओनी मुलाकात लीधी ए मानी शकाय तेम नथी. २९ परंतु आमांना गोसाल अने नातपुत्त ए वे गुरुओनी धार्मिक मान्यताओने जैन देखो ३० साथे सरखावतां आपणने जे बातमी मळे छे ते उपरथी एम कही शकाय के ए प्रस्तावनाओ निष्कर्ष खरो छे. वन्नी औपपातिकसूत्र जेवा जैन ग्रंथमां पण राजा कृणीय अगर फोणिय (अजा-

२७. कई विशेष कथा बिना ज्यां ज्यां मात्र नात (थ) पुत्तनु नाम ओवे छे एवां वाक्यो, दाखला तरीके नीचे प्रमाणे:- बु० व० ५, ८, १; दी० नि० २, पृ० १५०; म० नि० १, पृ० १९८, २५०; २, पृ० २; बौद्ध संस्कृतमां तेने निर्ग्रन्थो ज्ञातिमुत्रः कहेले छे, दाखला तरीके दिव्यावदान पा. १४३; महावस्तु १, पा. २५३, २५७; ३, पा. ३८३.

२८. स्वर्गस्य एत. फोअरे प्रपंचसूदनी उपरथी J. A. Ser, VIII, t. XII, 209 मां एवो मत दर्शाव्यो छे के महावीर ने बुद्ध कदापि मर्या न हुता, परंतु आ एक भूल छे एम स्पष्ट जणाय छे.

२९. माज्झिमनिका ० २, पा. २ मां कहेलुं छे के बुद्धना वज्रतमां उपरोक्त छए पाखंडी गुरुओ एक बखते त्यां नाथे चातुर्मास रखा हुता. कल्पसू० १२२ मां कथा प्रमाणे महावीर त्यां १४ चातुर्मास गळ्यां. परंतु दी० नि० मां एम कह्यो छे के चोमासा पछी कार्तिकनी पूर्वमांने दिवने अजातशत्रुए तेनी मुलाकात लीधी. परंतु एम पण बनवुं शक्य छे के ए ज बावतनो अहाँ उल्लेख होय.

३०. (दी० नि. १, ५७ मार्ग) नातपुत्तनी धार्मिक मान्यताओ भोट मरवावो:-जेकोवी, से० बु० ६०, पु० ४५, पृ० २०; अने गोसालनी मान्यताओ भोट (दी० नि० १५३) पृ० २९ तथा हेर्नटिस एन्साइक्लोपीडिया, पृ. १ पा. २५९ मां ओवेले डॉ. हॉर्नलेनो लेख. (मरवावो तेम ज उवासरुगद्साओ App. II)

તશત્રુ) પ લીધેલી મહાવીરની મુલાકાત વિષે કથન કરેલું છે; તેથી જો કે 'દીર્ઘનિકાયમાં' ૩૧ જેનો ઉલ્લેખ કરેલો છે તે જ આ મુલાકાત દશે, એમ કહેવાને પ્રમાણ નથી, તો પણ અજાતશત્રુ મહાવીરની મુલાકાત લેતો તેની કલ્પના જૈન લેખકોને તદ્દન અજાત ન હતી પણ સિદ્ધ કરવાને પૂરતા ટાંચલા મઝી શકે તેમ છે.

મઝ્ઞિમનિકાય ૧, પા. ૧૨ માં, યુદ્ધ પોતાના સગા શાક્યકુમાર મહાનામનને રાજગૃહની નજીકમાં કેટલાક નિર્ગ્રન્થ સાધુઓ સાથે ધપ્પલી પોતાની વાતચીત વિષે કહેલું છે. મહાવીરના તે શિષ્યો પણ પોતાના ગુરુ સર્વજ્ઞ, સર્વદ્રષ્ટા વગેરે છે એમ કહી તેમનાં વચ્ચે કાર્ય હતાં; આમાં કાંઈ ખાસ વિશેષ નથી, કારણ કે સર્વજ્ઞતા પણ મહાવીર તેમ જ ગોસાલ; યુદ્ધ તેમજ દેવદત્ત સર્વેનું સામાન્ય લક્ષણ થઈ પડ્યું હતું. ચઢી, પાલી આગમોમાં યીજા ઘણા ટાંચલા છે કે જ્યાં ઉપર પ્રમાણે જ મહાવીરના શિષ્યો પણ પોતાના ગુરુના સર્વજ્ઞ તરીકે વચ્ચે કરેલાં છે. તેથી જ રીતે મઝ્ઞિમનિકા ૨, ૩૧ માં રાજગૃહમાં સુકુલદાયિ; તેમાં જ ૨, ૨૧૪ માં કેટલાક નિર્ગ્રન્થ સાધુઓ; અને અંગુત્તર ૧, ૨૨૦ માં લિચ્છવી કુમાર અમ્બ વેસાલીમાં આનંદની સાથે વાતચીતમાં નાતપુત્તનાં વચ્ચે કરે છે. પરંતુ આ સર્વ ફકરાઓમાં નાતપુત્ત, તેની ધર્મભાષનાઓ તથા તેના અનુયાયિઓ વિષે ઘણી જાણતારૂંપક કહેલું છે, તેથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે વૈદ્ય આગમોને યથાસ્થિત રૂપ આપનારાઓને ગૌતમ અને મહાવીરનાં જીવનસમયનાં વૈદ્યો અને જૈનો વચ્ચેના સંબંધનું ચોક્કસ જ્ઞાન હતું.

વેસાલીમાં ૩૨ રહેતો સેનાપતિ સીહ જે પાછલ્લી વૈદ્ય થયો હતો તેના નાતપુત્ત સાથેના સમાગમ વાચતના મહાવગ્ગ ૬, ૩૧, ૧ નાં ફકરા વિષે, તથા મઝ્ઞિમનિકા (૧, પા. ૩૭૧) ના પ્રસિદ્ધ ઉપાલિસુત્ત વિષે પ્રો. જેકોબીયે સે. ૬૦ પા. ૪૫, પા. ૧૬ માં ચર્ચા કરી છે. એમાં વિસ્તાર પૂર્વક કહેલું છે કે ઉપાલી જે નાતપુત્તનો અનુયાયી હતો, તે જ્યારે નાલન્દામાં ૩૩ આ ઘણે ગુરુઓ મળ્યા હતા ત્યારે ધાર્મિક વિચારોમાં યુદ્ધને હરાવવાને ત્યાં ગયો હતો. પરંતુ આ પ્રયત્નનું પરિણામ ઉલટું જ આવ્યું, કારણ કે યુદ્ધે તેને જ (ઉપાલિને) પોતાનો શિષ્ય બનાવ્યો. ત્યાર પછી ઉપાલિ પોતાને ઘેર રાજગૃહમાં ગયો અને દ્વારપાલને કહ્યું કે હવે નિર્ગ્રન્થોને પેસવા દેવા નહિ. જ્યારે પાછલ્લી પોતાના શિષ્યમંડલ સહિત મહાવીર તેને મળવા આવ્યા ત્યારે ઉપાલિ પોતાનો ધર્મ વદલવાનું કારણ કહ્યું અને યુદ્ધનાં વચ્ચે કર્યાં. તેમાં એક આ શબ્દો આવે છે:—

અય સ્વો નિગ્ગણ્ઠસ્સ નાતપુત્તસ્સ ભગવત્તો સક્કારં અસહમાનસ્સ તત્થ એવંહં લોહિતં મુખતો ડગ્ગચીતિ ।

‘પણ ભગવાન યુદ્ધનાં વચ્ચે સહન નહિ કરી શકવાથી નિગંઠ નાતપુત્તના મુખમાંથી ડગ્ગ લોહી નીકળી પડ્યું.’

૩૧. ઔપપાતિકસૂત્રમાં કહ્યું છે કે કૃત્તિય ચંપામાં રહેતો હતો; દીર્ઘનિકાયમાં કહ્યું છે કે ઉપરોક્ત સમાગમ રાજગૃહમાં થયો હતો. ઉચાસ ૦ ૧, ૭ માં ઉદ્ધેકે અજાતશત્રુની મુલાકાત (વી. એ. સ્મીથ પોતાના હિંદુસ્તાનના પ્રાચીન ઇતિહાસ, પા. ૪૧ માં તેનું અવતરણ લીધું છે.) ચંપાનો પણ ઉલ્લેખ કરે છે. આ વિષે હું આગળ ઉપર કહીશ.

૩૨. ઉપરોક્ત ફકરો અંગુત્તરનિકાય, ૪, પા. ૧૮૦ માં પણ આવે છે.

૩૩. ઉપર આપેલા ફક્ત ૧૨૨ ના અવતરણમાં મહાવીર રાજગૃહમાં તથા નાલન્દાના પરા (બહિરિકા) માં ૧૪ ચોમાસાં ગાઢ્યાં. આ સ્થળને જૈનો પણ પ્રખ્યાત માનતા હતા; સરખાવો: સૂત્રકૃતાંગ ૨, ૩-સે. ૬૦, ૫૦ ૪૫, ૫૦ ૪૧૧.

આ ફકરા ઉપર ઘણો માર મુકવામાં આવ્યો છે, કારણ કે ઘણા વિદ્વાનોએ આ વાતને ૬૦ નિ. ૩, પૃ. ૧૧૭ અને ૨૦૯; મં. નિ. ૨, પૃ. ૨૪૩ વાઠી હકીકત સાથે જોડીને ૩૪ કહ્યું છે કે નાતપુત્ર જ્યારે પાવામાં મરી ગયા ત્યારે બુદ્ધ શાક્યોની ભૂમિ ઉપરના સામગામમાં હતા. આ ઉપરથી એમ અનુમાન કરવામાં આવ્યું છે કે ઉપાલીની મુલાકાત પછી થોડા જ વલ-તમાં મહાવીરનું અવસાન થયું. ૩૬ અહીં, મહાવીરના અવસાન વિષેના વૌદ્ધ ઉલ્લેખના વિષયમાં હું નહિ ચોલું; આગળ ઉપર તેની ચર્ચા કરીશ; પરંતુ ઉપાલીની આ વાર્તા તથા તેના પ્રથમ ગુરુના અવસાન સંબંધમાં, જે વાચકો ઉપર હું માર મૂકવા માતું છું. પ્રથમ વાચક એ છે કે-હાલમાં મનાતું મહાવીરના નિર્વાણનું સ્થાન પાવાપુરી પટ્ટના પ્રાંતના બિહાર ભાગના ગિરિયક ગામથી લગભગ ત્રણ માઈલ દૂર આવેલું છે; ૩૬ જ્યારે ૬૦ નિ. ૩, પૃ. ૧૧૭ વિષે ઉપરથી એ સ્પષ્ટ થાય છે કે વૌદ્ધો પાવા તે સ્થળને માનતા હતા કે જ્યાં હુસિનરાથી આવતાં બુદ્ધ ચુંદના ઘરમાં રહ્યા હતા; અને તે શાક્યોના પ્રદેશમાં આવેલું કહેવાય છે. રાજગૃહમાં ઉપલિસાથે વિસવાદ થયાં પછી જો મહાવીર થોડા જ વલતમાં અવસાન પામવાના હોત તો તેવા આજા-રીને માટે આ સ્થાન ઘણું દૂર કહેવાય; તથા કલ્પસૂ. ૧૨૨-૩ પ્રમાણે મહાવીરે પોતાનું છેલ્લું ચોમાસું પાવામાં 'રાજા હસ્તિપાલની લેલકોની સભા'માં ગાઢ્યું હતું. તેથી ઉપાલિને લીધે તેમનું મરણ થયું એમ જો માનીએ તો પણ ઉપાલિની મુલાકાત પછી તેઓ લગભગ અર્ધા વર્ષ સુધી જીવ્યા હશે. વીંજી વાચત એ છે કે ૬૦ વ. ૫, ૪, ૩ માં, જ્યારે દેવદત્તને પણ મહાવીરના જેવું કારણ થયું ત્યારે તેના મુલમાંથી પણ ઉપ્પા લોહી નીકળ્યું એમ એક જ વાત કહેલી છે. જો કે કેટલીક પાછળની વિગતો ઉપરથી સ્પેન્સ હાર્ડી અને વીંગન્ટેટ ૩૭ એમ માને છે કે ઉપાલિના વિરોધના પરિણામે તેમનું મરણ થયું, પરંતુ જૂના લેખોમાં કોઈ પણ સ્થળે એ પ્રમાણે કહેલું નથી. પણ આ ઉપરથી હું એ નિર્ણય ઉપર આવું છું કે મહાવીરના મરણને ઉપાલિના વિરોધ સાથે કાર્યકારણનો અગર અન્ય કોઈ પણ પ્રકારનો સંબંધ નથી.

અમયકુમારસુત (મં. નિ. ૧, ૩૧૨) માં કહેલું છે કે રાજગૃહમાં નિર્ગંઠનાથપુત્રે અમયને કહ્યું કે, તમે બુદ્ધ પાસે જઈ. પ્રિય શાસ્ત્રો ચોલવા એ ટીક કે નહિ, તે વિષે પ્રશ્ન પૂછો. આ પ્રમાણે બુદ્ધને પકડવાને જાઝ પાધરવામાં આવી; કારણ કે જો તે 'ના' કહે તો પોતે ધોટો પડે, અને 'હા' કહે તો દેવદત્તને તેણે શા માટે કઠોર શાસ્ત્રોથી ધિક્કાર્યો હતો એમ અમય પૂછે. હું કહુંલું કે હું કે આ ફકરાને અગત્યતા આપવાની જરૂર નથી, કારણ કે પાલી આગમમાં ૩૪

૩૪. સરસ્વાતો: ચામર્સ, J. R. A. S. 1895, p. 665.

૩૫. ઉપાલિના વિરોધ પછી નાતપુત્ર થોડા જ વલતે મરી ગયા એ વાત સ્પેન્સ હાર્ડીએ, મૅન્ચુઅલ ઑફ બુદ્ધિઝ્મ પા. ૨૮૦ માં કહેલી છે. પણ સરસ્વાતો:-જેઠેશી. કલ્પસૂ. ૦ પા. ૬

૩૬. સરસ્વાતો: હર્મીરીયલ ગૅસેટીઅર ઑફ ઇન્ડિયા. પુ. ૨૦, પા. ૩૮૧

૩૭. સરસ્વાતો: સં. બુ. ૬૦, પૃ. ૧૩, પૃ. ૨૫૧. આ જ વાચત સિદ્ધ કરનારો વીંજી દાસલો સારિપુત્ર અને મોગહાનના એક સંજયના ઇતિહાસમાં આવે છે. જ્યારે તેના સિપ્પોએ તેના ત્યાગ થયો ત્યારે તેણે લોહી બોલ્યું હતું, એમ કહેલું છે. પણ તેના મરણ વિષે કોઈ કહેલું નથી, જે તે વલતે થયું નહિ હોય, કારણ કે મારા ધારવા પ્રમાણે તે જ લેલકી-પુત્ર નામે પાલંડી હતો. પણ ચીલ અને વીંગન્ટેટ કહે છે કે તે ત્યારપછી તરત જ મરી ગયો, જે વાચત સ્પેન્સ હાર્ડીના કવનથી વિરુદ્ધ છે. Manual p. 202. સરસ્વાતો: સં. બુ. ૬૦, પૃ. ૧૩, પૃ. ૧૪૧.

૩૮. સંયુક્ત ૦ નિ. ૪, ૧૨૨ માં જ્ઞાતવવામાં આવ્યું છે કે એક દારુણ દુષ્કાળના સમયે બુદ્ધ અને નાતપુત્ર અને એક સાથે નાલંદામાં રહ્યા હતા. તે શ્મિશાન નાતપુત્ર પોતાના ધર્માનુયાયી એક ગૃહસ્થ જેનું નામ અશિવનધક-પુત્ર (સરસ્વાતો ઉપરોક્ત પુસ્તક પૃ. ૩૧૦) હતું અને તે ગામનો પ્રામણી હતા તેને બુદ્ધની પાસે જઈ એક પ્રશ્ન પૂછવા કહ્યું કે 'આ (દુષ્કાળના) વચ્ચે તમારા વધા પ્રમણેને અહીં રાહી ગરીબ લોકોના સોરાકને સ્વાહા કરાવી દેવો એ શું તમને યોગ્ય લાગે છે ? '

થીજો પળ એક આવો જ દાસલો આવેલો છે; પણ અન્ય કોઈ પણ પ્રમાણથી ૫ નકામો છે એમ સિદ્ધ થઈ શકે તેમ નથી, તેથી અમાંથી ૫ નિષ્કર્ષ ફાઢી શકાય કે દેવદત્તનો ધર્મવિરોધ થયા પછી પણ મહાવીર જીવતા હતા. આ વનાવ પ્રો. હ્રાફ્સ ડેવીઝસના ૩૭ પ્રમાણ પુરઃસર ધારવા પ્રમાણે બુદ્ધના નિર્વાણ પહેલાં દસ વર્ષે વન્યો હતા.

પ્રો. જેકોવી 40 એક ઉપયોગી વાચન ઉપર ધ્યાન સેંચે છે, કે જૈનોના પ્રાચીન આગમોમાં બુદ્ધ અને તેના અનુયાયીઓનો ચીલકુલ હલેસ થયો નથી, તેથી આ વાચત, બુદ્ધ અને મહાવીર સમકાલીન હોવા છતાં વને તે નવાઈ જેવું ગણાય, અને તે ઉપરથી ૫ એવા અનુમાન ઉપર આવે છે કે મહાવીરના સમયમાં વાંધોનું ઘનું મહત્ત્વ નહિ વધ્યું હોય. ગમે તેમ હો, હું આ અનુમાને મઠતો થઈ શકું નહિ; કેમ કે અનુમાનની પ્રતિષ્ઠા જોઈએ તેવી ચરી નથી. સિદ્ધાન્તોમાં કેટલાંપ સ્થળે અન્ય સંપ્રદાયોની સાથે વૌદ્ધોનો પણ સુલેસુલો નિર્દેશ થયેલો જોવામાં આવે છે. 41 વઢી; આનું કારણ કેટલેક અંશે જૈન સિદ્ધાન્તની રચના પણ હોય. બુદ્ધ મહાવીરનો પ્રતિસ્પર્ધી હતો ૫ નિઃસંદેહ છે અને ભયંકર પણ ગણાય ચરો, પરંતુ તે મંચલિપુત્ત ગોશાલના જોવો દ્રોહી અને દેપીલો શશુ તો નહોતો જ. કારણ, મંચલિપુત્ત ગોશાલે મહાવીરના ધર્મમાંથી નીકળી જઈ પોતાનો સ્વતંત્ર મત સ્થાપ્યો; અને આદલેથી જ સંતોષ નહિ માની પોતાના ગુરુના કરતાં ઘે વર્ષ પહેલાં તીર્થંકરપદ પ્રાપ્ત કર્યાની ઘોષણા કરવા માંડી હતી. આ વાંના નવીન સ્થાપિત થયેલા સંઘને (ધાર્મિક સમાજને) એક મીતિજનક આઘાત પહોંચાડે ૫ સ્વાભાવિક છે, અને તેથી કરીને આ તત્ત્વજ્ઞાની 42 કે જેને બુદ્ધ પણ એક મહાન દુરાશયી પાસંડી 43 તરીકે વર્ણવે છે, તેના ઉપર જૈન શાસ્ત્રોમાં પણ ગાઢો અને શાપેનો ઘરસાદ ઘરસાવેલો જોવામાં આવે તો તેથી નવાઈ પામવા જેવું નથી. આ પ્રમાણે પ્રાચીન કાલના જૈનોને બુદ્ધના કરતાં ગોશાલ વધારે મહત્ત્વનો પાસંડી લાગ્યો હોય. આ ઉપરાંત જૈનોના સિદ્ધાન્ત ગ્રંથો જે પાલી સિદ્ધાન્ત પછી ઘણાં વર્ષે હાલના રૂપમાં પ્રથિત કરવામાં આવ્યા, તેને વૌદ્ધોના આગમો 44 સાથે સરસાવી શકાય નહિ. હું આથી એમ કાંઈ સૂચવવા નથી માંગતો કે બુદ્ધ અને તેના મતવિપયક પ્રાચીન હકીકતો સૂત્રોમાંથી પુસ્તકારૂઢ કરનારાઓએ ફાઢી નાખી છે. પરંતુ હું ઘે વાચતો તરફ વાચકનું ઘાસ ધ્યાન સેંચવા મારું છે કે પ્રો. જેકોવી માને છે તેમ કેટલેક અંશે અર્થો-બોધન કરે છે.

(૧) જે દાષ્ટિવાદ નામનું અંગ વ્યુચ્છિન્ન થયું છે તેમાં કદાચ વૌદ્ધોના સંબંધમાં કાંઈ

૩૭. જુઓ, હેલ્ડાગ્સની એન્સાઇક્લોપીડીઆ પુ. ૪. પૃ. ૬૭૬. 40. કલ્પસૂત્ર, પૃ. ૪.

41. સરલાઓ: દા. ત. વેવરનું ઈ. ડી. સ્ટડી. ૧૬, ૩૩૩. ૩૮૧ અને સૂત્રક્રાંતિ ૨, ૬, ૨૬-૨૭. પુ. ૧૦, પુ. ૪૫, પૃ. ૪૧૪.

42. ભગવતી, શતક ૧૫ નો ડૉ. હૉર્નલનો સંક્ષેપ, ડવાસમ્મદસાઓ, પરિશિષ્ટ ૧,

43. જુઓ, અંગુ. નિકાય. ૧, ૩૩, ૨૮૬.

44. પૂર્વકાલમાં ચૌદ પૂર્વોં વેચમાનપણ; દષ્ટિવાદ વ્યુચ્છિન્ન થવાથી અંગોની અપૂર્ણતા અને શ્વેતામ્બરીનો વર્તમાનકાલીન આગમોને પ્રમાણ માનવામાં દિગંબરાની ચોક્કસી ના; આ સંવેં હકીકતો એમ સૂચવે છે કે ગુરુશિષ્યપરંપરા દ્વારા મઠેલા વિચમાન સિદ્ધાન્ત ગ્રંથો અપેક્ષાકૃત્ત અર્વાચીન કાલના છે.

હોય તેમ સંભવે છે; કારણ તેના નામ ઉપરથી જણાય છે કે તેમાં અન્યમતોના 45 જ સંવંધમાં ઝઘાપોહ કરેલો હતો.

(૨) વર્તમાનકાલીન સિદ્ધાન્તની શૈલી જ ઈવીઝિમ છે કે તેમાં જોઈતી હકીકતો શોધી કાઢવી અસંભવિત છે. કારણ કે તે સર્વ સંકટિત રૂપે છે—જો કે કેટલેક સ્થળે કેટલાક ભાગોને કંટાળાભરેલી ભાષાશૈલીમાં વિસ્તૃત કરેલા છે;—તેમ જ તે (સિદ્ધાન્ત) ઉપરોક્ત સારક ગાથાઓની માફક તારવી કાઢી લીધેલા યા તો જૂના સિદ્ધાન્તમાંના સામાન્ય રીતે સાચવી રાખેલા ભાગો જેવા છે.

આ વિષય ઉપર હવે યથુ ચર્ચા ન કરતાં હું જૈનોના સંવંધમાં કાંઈ સ્વાસ હકીકતો આપવા ચાલ્યાં કેટલાંક વૈદ્ધ ગ્રંથોમાંનાં ઉદાહરણો આપીશ. કારણ ઉપર ચર્ચેલો વિષય હું અન્ય સ્થળે 46 ચર્ચવા માગું છું. આવી જાતના ઘણા ફકરાઓ જેમાં મતોની વિગતો જણાવેલી છે તે પ્રો. જેકોબીયે સંગૃહીત કર્યાં છે. આ સ્થળે સાધારણ મહત્ત્વની વાચતોના વિષયના કેટલાક ફકરાઓ આપીશ; અને તે, જરૂર હોય તો, પ્રમાણરૂપે વતાવી શકાશે કે વાંચો અને જૈનો, પોતાના સંપ્રદાયોના આરંભ કાલમાં—તેઓના સંસ્થાપકોના જીવનકાલમાં—પરસ્પર ઘણા જ નિકટ સંવંધમાં રહેતા હતા. જૈનો પોતાના ધર્મપ્રવર્તકોને 'અર્હત્' નું પદ આપે છે એ સુવિસ્થાત છે. અને આ પદ સારવેલની શિલાલિપિમાં આવેલા—સમળો વા ગ્રાહ્યો વા અરહા (સાર-વેલ. ૫, ૮, ૧) 47, આ એક વાક્યમાં જોવામાં આવવાથી મારા ધારવા પ્રમાણે તેનો અર્થ 'જૈન' હોવો જોઈએ. ઘીઝી પણ એક વાચત ધ્યાનમાં રાખવા જેવી છે કે પાલી ગ્રંથોમાં નાતપુત્ર અને ઘીઝા પાંચ પાલેંડી મતાચાર્યો માટે 'ગણિન', 'ગણાચરિય', 'ગણસ સરથા', (સંયુક્ત નિં. ૧, ૬૬) અને 'તિથકર' પણ ઇલ્કાવો જણાવેલા છે. મારા મત પ્રમાણે આ ઇલ્કાવો બુદ્ધ-ને 48 કદાપિ લગાડવામાં આવતા નથી, પણ જૈન તીર્થંકર માટે તે વરાવર વ્રધ વેસતા લાગે છે; કારણ કે 'ગણ' શબ્દ પ્રાચીન સમયમાં જૈન સંઘનો એક વિભાગસ્વરૂપ હતો; જેનો અર્થા-ચીન કાલીન 'ગચ્છ' પ્રતિશબ્દ છે, અને તીર્થંકર પદ તો મહાવીરનો અત્યંત સામાન્ય ઇલ્કાવ છે જેનો હજી ગોશાલે પણ કર્યો હતો. આ સંવંધમાં કોઈને શંકા થાય તેમ છે કે આ વાચત કાંઈ વિશેષ સર્વાત કરી શકે તેમ નથી; કારણ કે આ ઇલ્કાવો યથા તીર્થંકરો માટે સરસી રીતે વાપરવામાં આવ્યા છે, પણ આપણે યાદ રાખવું જોઈએ કે જે ગોશાલ મહાવીર પછી સૌથી વધારે મહત્ત્વને મનાતો હતો, તે શરૂઆતમાં મહાવીરનો માત્ર શિષ્ય જ હતો; અને તેણે પોતાના ગુરુ મહાવીરથી એ વર્ષ પહેલાં જ તીર્થંકરપદ પ્રાપ્ત કર્યોનો દાવો કર્યો હતો. ચલો, ગાથામાં આ વચ્ચેની સાથે પકુધકચાયન અને પૂરણકસપનો હોલ્લ થયેલો છે. આ ગાથા ચરેચર જૂની છે અને તે સંયુક્ત નિં. ૨, ૩, ૧૦, ૬ માં આવેલી હોવાથી વિશેષ પ્રામાણિક ગણવી જોઈએ. અને સુ-

45. પ્રો. જેકોબી (સં. વુ. ૬૦, ૫૦ ૨૨ પૃ. ૪૫) દષ્ટિવાદના એક વિશિષ્ટ ભાગ તરીકે મનાતાં વૈદ પૂર્વે નટ થયાનું પ્રધાન કારણ તેમાં મહાવીરના વિરોધીઓના સિદ્ધાન્તોનું વર્ણન આવેલું હતું, તે લાંબ છે. પરંતુ આ અનુ-માન મને થોડકુલ સ્વીકારવા લાયક લાગતું નથી. એનાથી વિશેષ અવિચારસાગ્ર કારણ વેવેરે આપ્યું છે. Ind. Stud. XVI, 248; Cf. also Lumann Actes du VIe congres des Orient. III, 559.

46. ઉત્તરાવ્યયનસૂત્રની આશુતિ જે તૈયાર થાય છે તેની પ્રસ્તાવનામાં.

47. વૈદ ધર્મગ્રંથોમાં અર્હત્ એ ઇલ્કાવ પાલેંડી મતાચાર્યોના નામ તરીકે વપરાયેલા ભાગે જ જોવામાં આવે છે. ગરસાલો: રાદ્દા ડેવિડ્સ, Hastings' Encyclopaedia 1, 774-

48. સામન્નપલ્લસુત (દાં. નિં. ૧, ૫૪) માં બુદ્ધ અને તેનાં વિરોધી મતાચાર્યો, જે અહીંમાં ઘણું જ નજીકના સંવંધમાં જોવામાં આવે છે, તેમના મિત્ર મિત્ર વતાવેલા મુળો આ લક્ષણો ઝુઓ.

मं० विला० १, १४४ मां बुधघोष खुर्ती रीते जणावे छे के पकुध 'सिन्दूदक पटिखित्तो' हतो; अर्थात् (महावीरनी माफक) थंडा पाणीना उपयोगनो प्रतिषेध करनार हतो. अने मार्गमां नदी अथवा तळावमां थईने पार उतरवाने पाप मानतो हतो (नदि वा मग्गोदकं वा अतिकम्म सीलं मे भिंशं ति). तेना मतनी पीजी वावतनुं प्रो. जेकोपीए से० पु० ६०, पु० ४५, पा० २४ मां विवेचन कयुं छे. पूरण कस्सपना संबंधमां दीघनिकाय. १, -५२, ४९ मां वर्णवैला तेना सिद्धान्तो उपरथी जैन धर्मनी साथे तेनी काई पण समता जोवामां आवती नथी. परंतु तेना संबंधमां जणाववामां आपेली वे वावते। खास ध्यानमां राखवा लायक छे, कारण ते उपरथी पूरण अने गोसालनो परस्पर संबंध वर्णो गाढ हतो। तेम सूचित थाय छे. सु० विला० १, १४२मां एक कथा आपेली छे, जेमां पूरण शा कारणथी नग्न साधु थयो हतो ते वताववामां आव्युं छे अने आ कथा तेज ग्रंथमां पृ० १४४ मां गोसालना संबंधमां आपेली दंतकथानी साथे तइन मळती छे. ५० वल्ली, गोसालना, वर्णानुसार छ जातिमां करेला मनुष्योना विभागो वेगु-त्तर निकाय, ३, ३८३ मां पूरणना करेला छे एम वताववामां आव्युं छे.⁵¹ आ हकीकत भूल भरेली होय तेम लागती नथी, परंतु ए एम वतावती होय तेम लागे छे के पूरणनो पण एवो मत हतो. आ उपरांत गोसाल 'कर्म' ना अस्तित्वने मानतो न हतो (नत्थि कम्मं विगेरं श्री० नि०) अने पूरणनी पण आ वावतमां तेथी ज मान्यता हती एम लागे छे; कारण के ते पण एम कहे छे के माणस जीवोने मारे अगर फापे तेमां पाप नथी तेमज सापं कर्मोथी पुण्य पण संचित करतो नथी. तेने। मुख्य सिद्धान्त नीचेना शब्दोमां प्रदर्शित थाय छे:—नास्ति पापं नास्ति पुण्यम्'। आ उपर जणावेली वावतोथी एटलुं तो अचर्य संभवित लागि छे के महावीर, गोसाल, पकुध अने पूरण वझे केटलोक विशेष संबंध हतो; अल्पसंख्येभीना सिद्धान्तोमां भिन्नता हरो; अने तेमाना अनुयायीओ जैनोनी माफक गणोमां वहेँचाएला हरो.⁵²

महावीर एक नग्न साधु हुता तेतो आचारांग १, ८, १. द्वारा सुज्ञात थई चुक्युं छे. आ वावत-मां ते तेमना पूर्वगामी पार्श्वथी जुदा पडता हता; कारण के पार्श्व वे वल्ल पहेरखानी छूट आयी हती.⁵³ गोसाल पण नग्न ज हतो. अने तेणे पोताना अनुयायीओ के जे आजीविकोना नामे ओलखाता

४९. पकुध अने गोसाल ए वझे वच्चेना संबंध माटे सरखावो: होर्नल; हेस्टिंग्सनी एन्साइक्लोपीडिया १, २६१

५०. आ दंतकथा होर्नले उवाचम० ना परिशिष्ट २. पृ. २९ उपर आपेली छे; सरखावो: स्पेन्स हाईली मैन्सुअल, पृ. ३०१.

५१. सरखावो: सु० विलास० १, १६२ होर्नल, हेस्टिंग्सनी एन्साइक्लोपीडिया १, २६२. आ मत अने जैनोना लेख्याना सिद्धान्तनुं वर्णन 'जैनो अने आजीविकोना लेख्याना सिद्धान्त' नामना निबन्धमां सारी रीते बताववामां आव्युं छे, जे निबन्ध Sertum philologicum C. F. Johansson Oblatum, Upsala 1910, p. 19ff. मां छपायो छे.

५२. बाकीना वे अर्थात् अजित केसकम्भल अने सञ्जय चेलडिपुत्तना संबंधमां वर्णन आर्या शकतो नथी. अजित एक जडवादी हतो अने ते आत्माना अस्तित्वने ज न होतो मानतो; एटलुं ज नहि पण आगामी जन्मना संबंधमां विचार करवाने पण मना करतो हतो. दुल्यमां जणाव्युं छे के (Rockhill, Life of Buddha p. 103) तेना मान्यता गोसालना जेवा हती; ते दीघनिकायना फकत साथे सरखाववा लायक नथी. अने सञ्जय ए मारा धारवा प्रमाणे महावग्ग १, २३-२५ मां, सारिपुत्त अने नोग्गहानना शुद्ध तरीके जणावेल सञ्जय परित्राजक छे. आ वावत जो सत्य होय तो ते निःशक रीते ब्राह्मण होवो जोइए. दीघनिकाय १, ५८ ने आधारे विचार करतो ते एक बादी हतो अने अलंकारशास्त्रविषयक पोतानी कळा प्रदर्शित करवा वणुखर प्रयत्न करतो हतो.

५३. सरखावो; दाखला तरीके उत्तराप्पयन २३, १३.

હતા તેમના માટે પણ અચેલકવતનું જ વિધાન કર્યું હતું. પરંતુ મહાવીરે પોતાના શિષ્યો-અનુયાયિઓની પસંદગીને માટે વચ્ચે માર્ગો છુટ્ટા રાખ્યા હતા. વૌદ્ધ ગ્રંથોમાં અનેક વચ્ચત નગ્ન યતિ-ઓનો ઉલ્લેખ થયેલો જોવામાં આવે છે, અને એ રીતે તે આજીવિકો જ સમજવાના છે. ઉદાહરણ તરીકે મહાવગ્ગ ૮, ૧૫, ૩; ૬૪ ૧, ૩૮, ૧૧; ૭૦, ૨; છુલ્લવગ્ગ ૮, ૨૮, ૩; નિસ્સલ ૬, ૨; સંયુત્ત નિકાય ૨, ૩, ૧૦, ૭ વગેરે. આમાંનાં કેટલાંક ઉદાહરણોમાં નગ્ન મિશ્રુઓને માત્ર તિથિય (તીર્થિક) કહેલા છે અને તેથી કરીને તે મહાવીરના અનુયાયિઓ પણ સૂચવી શકે. વઠ્ઠી ગોસાલ અને પૂરણની 'છ જાતિઓ' ની નોંધમાં 'એકવચ્ચવાઠ્ઠા નિગ્રંથો' તથા 'અચેલકોના શ્વેતવચ્ચધારી ગૃહસ્થ અનુયાયિઓ' અને 'નગ્ન મિશ્રુઓ અર્થાત્ આજીવિકો' વચ્ચે ભેદ પાડવામાં આવ્યો છે. તે ઉપરથી જણાય છે કે વૌદ્ધો પોતાના પ્રતિસ્પર્ધી મતોના સંબંધમાં ચોક્કસ જાણતા હતા. ઘણાક સ્થલોમાં અચેલો અથવા અચેલકોના સંબંધમાં વધારે વ્યાખ્યા કર્યા સિવાય ઉલ્લેખ થયેલો જોવામાં આવે છે અને આ શબ્દ જૈનોમાં સારી રીતે માન્ય છે. અંગુ ૦ નિકા ૦ ૧, ૨૦૬ માં એમ કહેવામાં આવ્યું છે કે નિગ્રંથો પોતાના શ્રાવકોને ઉપોસથ દિવસોમાં નગ્ન રહેવા ફરમાવે છે. ઘુ ૦ વગ્ગ ૫, ૧૦, ૧ માં જણાવેલું છે કે એક સાધુના હાથમાં પાળી પીવાનું તુંવડીનું એક વ્યાલું જોઈને લોકો કહેવા લાગ્યા 'તીર્થિકોની માફક.' આચારાંગ ૨, ૧, ૬૧ પ્રમાણે જૈનોને તુંવડાના ૫૫ વનાવેલા પાત્ર વાપરવાની છૂટ અપવામાં આવેલ છે, અને તેથી કરીને આ ટીકા વાસ્તવિક રીતે તેમને જ લાગુ પડે છે. ૫૭ થા ઉપરાંત મ.વ. ૭, ૧, ૧૨ માં મૂક્યત અથવા મૌનવત પાઠનારા સાધુઓનું ઘર્ષણ થયેલું છે. તે ઉપરથી આપણને સૂત્રહતાંગ ૧, ૧૩, ૯ (સં ૦ ઘુ ૦ ૨૦, પુ ૦ ૪૫, પુ ૦ ૩૨૧) માં જૈનધર્મદર્શક (મોળપદં ગોત્તં) અર્થાત્ મૌન વ્રત પાઠતું 'ગોત્ર' રૂપી ઉદ્ગાર યાદ આવે છે.

આ વાચતને પુરવાર કરનારાં વર્ગો પણ ઉદાહરણો મઠી આવેલાં છે. વૌદ્ધોને તેમના તદ્દન પ્રારંભ કાલમાં, તેમના વિરોધિઓ-નિગ્રંથો અથવા જૈનોના ચરિત્રો તથા સંસ્થાઓનું ઘણું સાદું જ્ઞાન હતું. આ ફકરાઓ ઉપરના વિવેચનમાં ઉતરી કાલકેષ કરવા માંગતો નથી. પરંતુ જે વાચતો ઉપર રજુ કરવામાં આવી છે, તથા પ્રો. જેકોબી અને અન્ય વિદ્વાનોએ અગાડ જ જે વાચલાઓ પૂરા પાડેલા છે, તે સર્વ ઉપરથી ચોક્કસ અનુમાન થઈ શકે છે કે મહાવીર અને બુદ્ધ એ વચ્ચે ભિન્ન, સમકાલીન, અને પ્રતિસ્પર્ધી સાધુ સમાજના સંસ્થાપક હતા. પણ જો આપણે જૈનપરંપરાગત કથાને સાચી માનીએ અને તે અનુસાર મહાવીર નિર્ધોળ વિક્રમ પહેલાં ૪૭૦ વર્ષ

૫૪. આ પ્રકરણમાં બુદ્ધ અને ગોસાલની વચ્ચેના સામ્યનો એક આશ્ચર્યકારક દાખલો જોવામાં આવે છે તેથી એમ લાગે છે કે તે વાચત નિઃસંદેહ વચ્ચે જણાશે એ કોઈ માહાત્મ્ય ગ્રંથમાંથી લીધી હશે. કારણ કે ૧ ૨ માં એમ જણાવેલું છે કે એક રાત્રે એક 'ચાતુદ્દીપિકો મહામેધો' આકાશમાં આવ્યો અને વરસાદ પડ્યો. આ અવસરે બુદ્ધે પોતાના શિષ્યોને નીચે પ્રમાણે કહ્યું:—યથા મિશ્રુચ્ચે જેતવને વસ્સતિ એવં ચત્તુસુ દીપેસુ વસ્સતિ. ઓવસ્સા-પેથ મિશ્રુચ્ચે કાર્યં, અયં પલ્લિમકો ચાતુદ્દીપિકો મહામેધો:—ઓ મિશ્રુઓ, જેવી રીતે જેતવનમાં વરસે છે, તેવી રીતે અહીં ચારે દીપમાં વરસાદ પડે છે. તેને શરીર ઉપરથી વરસાદ કાઢી નાંચો. ઓ મિશ્રુઓ, કારણ કે ચારે દીપો ઉપર આ છેલ્લો મહાન મેઘ વહેલો છે' આ 'છેલ્લો' મહાન મેઘ આપણને એકદમ ગોસાલની આટ છેલ્લી વસ્તુઓ-માંની (અટ્ઠવરમાઈ) એક વસ્તુ—'છેલ્લું મયંકર વાવાત્રીર્હુ'—ની યાદ આપે છે. સરસાવો: મગ્ગવી ૫. ૧૨૫૪; અને હોર્નલ, હેસ્ટિંગ્સની એન્સાઇક્લોપીડીઆ ૧, ૨૬૩.

૫૫. સરસાવો: વઠ્ઠી ઔપપાતિક. ૧ ૩૨; ૭.

૫૬. તેજ અધ્યયનમાં સાધુને—નિગ્રંથોને, પાળી પીવા માટે માણસની ચોપરીનું પાત્ર બનાવી વાપરતા, દશા-વેળા છે. ઘણા પ્રાચીન મતમાં આ પ્રમાણે કેટલાક સંપ્રદાયોનાં આ વસ્તુનો ઉપયોગ થયેલો જોવામાં આવે છે.

પટલે ૬. સ. પૂર્વે ૫૨૭ માં થયાનું જળાવીય તો આપણને આ અનુમાનના સંવંધમાં શક ઉઠે
 ઘરો. કારણ કે બુદ્ધ નિર્વાણની, જનરલ કર્નિગહામ અને પ્રો. મેક્સમુલ્લરે પહેલી જ વખતે અને
 મારા અભિપ્રાય પ્રમાણે વરાવર રીતે નિર્ણય કરેલી મિતિ ૬. સ. પૂર્વે ૪૭૭ માં આવે છે અને
 સઘળા મૂળ લેખો એકમતે નિર્વાણ સમયે તેમની ડુંગર ૮૦ વર્ષની વયે છે, તે ઉપરથી તે ૬.
 સ. પૂર્વે ૫૫૭ માં જન્મ્યા હોવા જોઈએ. આ ઉપરથી ૫૫૭-૪૭૭ એ કે જો મહાવીર ૬. સ. પૂર્વે ૫૨૭
 માં નિર્વાણ પામ્યા હોય તો બુદ્ધ તે સમયે ૩૦ વર્ષની વયના હોવા જોઈએ. પરંતુ બુદ્ધ પોતાની ૩૬
 વર્ષની વય પહેલાં લગભગ ૬. સ. પૂર્વે ૫૨૧ માં બુદ્ધત્વ પ્રાપ્ત નહિ કરેલું હોવાથી અને અનુયાયીઓ પણ
 નહિ મેલેવેલા હોવાથી, તે સમયમાં મહાવીરને કદાપિ મઠી શકે તે તદ્દન અસંભવિત છે. આ ઉપરાંત
 વઢી વઢે અજાતશયુના રાજ્યકાલ દરમ્યાન વિદ્યમાન હતા એમ પણ આપણે જાણીએ છીએ. આ રાજા
 બુદ્ધનિર્વાણ પહેલાં ૮ વર્ષે અભિષેક થયો હતો અને તેણે ૩૨ વર્ષે રાજ્ય કર્યું હતું. તેથી પણ ઉપ-
 રોક્ત મિતિઓ વિચ્છુલ અવિશ્વસનીય વને છે. આટલા માટે, મહાવીરના નિર્વાણની મિતિ કાંતો
 ૬. સ. ની શરૂઆતની વધારે નજદીક લાવવી જોઈએ, અગર તો બુદ્ધના નિર્વાણની તારીખ
 આગલ ટ્રસેડવી જોઈએ. પરંતુ ૬. સ. પૂર્વે ૫૨૭ વાઢી મહાવીરનિર્વાણની તારીખ પરંપરાગત
 હોવાથી અને બુદ્ધ નિર્વાણની ૬. સ. પૂર્વે ૪૭૭ ની મિતિ માત્ર સંશોધિત હોવાથી કદાચિત્
 કોઈને વાંઝી મિતિને માટે—બુદ્ધની નિર્વાણમિતિની સત્યતાના સંવંધમાં શંકા ઉઠે. આ ઉપરાંત
 મિ. ચિન્સેન્ડ સિંઘ આદિ વિદ્વાનોની નવીન શોધમાં બુદ્ધનિર્વાણને સમય ૬. સ. પૂર્વે ૪૮૬ અગર
 ૪૮૭ વર્ષે સ્થાપિત કરવામાં આવ્યો છે અને ડૉ. ફ્લોરિડની શોધ અનુસાર ૬. સ. પૂર્વે ૪૮૨-૮૩
 માં સ્થાપિત થાય છે. ઉપર નિર્દિષ્ટ શોધો જો ધરેધર સાચી નીકળે તો મહાવીરનિર્વાણનાં ૬
 સ. પૂર્વે ૫૨૭ ના સમયની સત્યતાના સંવંધમાં સંભાવના ઉપસ્થિત થાય. પરંતુ હું ઉપરોક્ત
 ફેરફારોમાં કોઈ તથ્ય સમાવેલું માનતો નથી, અને વિશેષમાં માનું છું કે જનરલ કર્નિગહામ
 અને પ્રો. મેક્સમુલ્લરે જે બુદ્ધ નિર્વાણનું વર્ષ ૬. સ. પૂર્વે ૪૭૭ માં નક્કી કર્યું છે તે પ્રામાણિક છે;
 અને તેથી મારા આ મતને સાર્વત્રિક કરવા તે સમયના નિર્ણય યોગ્ય વધી મહત્વની વાતોનો પંક-
 ઘાર ફરીથી અહીં ધિવાર કરવો યોગ્ય ધારું છું.

હિંદુસ્થાનની સાચી કાલગણના, અલેક્ઝાન્ડરના હુમલાવાદ, ચંદ્રગુપ્તથી શરૂ થાય છે.
 પરંતુ હજી સુધી ચંદ્રગુપ્તના અભિષેકના કાલનો સંપૂર્ણ રીતે નિર્ણય થયો નથી; કારણ કે
 વિદ્વાનોના મતાન્તરો અનુસાર અભિષેકનો સમય ૬. સ. પૂર્વે ૩૩૫ થી ૩૧૨ વચ્ચે હોવાનું
 મનાય છે. વઢી બુદ્ધ અને ચંદ્રગુપ્તની વચ્ચેના સમયના સંવંધમાં, જૂના ગ્રંથોમાં આપેલી ગણતરી
 વજનવાઢી લાગતી નથી. તેથી કરીને મૉ. સેનાર્ટ (૬૦ ૫૦ ૨૦, ૨૨૯) અને મિ. વી.
 ગોપાલ પેયર (પુ. ૩૭, પુ. ૩૪૧) અને અન્ય વિદ્વાનોના માનવા પ્રમાણે મારું પણ
 એમ માનવું છે કે કાલગણનાની શરૂઆત માત્ર અશોકના શિલાલેખોથી જ થઈ શકે તેમ છે.
 ડૉ. ગુલ્ડર, ૬૦ ૫૦ પુ. ૬, પુ. ૧૪૯; પુ. ૨૨, પુ. ૨૯૯; ૫૦ ૬૦ પુ. ૩, પુ. ૧૩૪ ઉપર; અને
 ડૉ. ફ્રીડે ૭૦ ૨૦ ૫૦ ૧૦ ૧૨૦૪, પા. ૧ માં જે સૂચના કરેલી છે કે સિંહપુર, સહસારામ
 અને રૂપનાથની આજ્ઞાઓના અંતમાં ૨૫૬ નો અંક છે, તે બુદ્ધના નિર્વાણ પછી વ્યતીત થયેલી વર્ષ-
 સંખ્યા સૂચવે છે. તે સૂચનાનું ડૉ. એફ. ડબલ્યુ. ટોમસે (J. A. 1910, p. 507) સંપૂર્ણ
 રીતે નિરૂપણ કર્યું છે. તે જ અનિષેધ્ય પ્રમાણથી આ વાત સાર્વત્રિક કરે છે તેનો અર્થ એમ
 સમજવાનો છે કે આ આજ્ઞા પ્રસિદ્ધ થઈ ત્યારે ૨૫૬ રાત્રિઓ સુધી અશોક ઘર છોડીને ચાલ્યો
 ગયો હતો. 57 આ લેખ જોવામાં આવ્યો ત્યાર પહેલાં આ સૂચના અશ્રદ્ધેય લાગતી ન હતી.

57. ડૉ. થોમસના પાઠને સ્વીકારીને ડૉ. ફ્રીડે (J. R. A. S. 1910, p. 1301) તેના
 આધારે જે અનુમાન કર્યું હતું તે કોઈપણ રીતે ટકે તેમ નથી. મૉ. લેવી (J. A. 1911, p. 119) ૨૫૬
 દિવસોનું જે અનુમાન કર્યું છે, તે માત્ર શક્ય છે.

कारण के अशोक पोताना आध्यात्मिक गुरुने 'व्युथ'ना नामथी दर्शावे ते असंभवित लागे छे. बल्ली, आ विशेषण तेणे अन्य कोई स्थले वापर्युं नथी; छुंविनी स्तंभ उपर ते बुद्ध, शाक्यमुनि अने भगवन्त एवां गुणनामो वापरै छे. आथी कालगणनानी दृष्टि ते सूचनानुं धौलकुल महत्त्व रह्युं नथी. माँ० सेनादे घणा वखत पहेलां जणाव्युं हतुं के कालगणनानी शरुधातनुं केन्द्र १३ मी खडक उपरनी आशामां छे, कारण के ते स्थले अशोक अंतियोक 58 नामना योन-राजा अने तेना राज्यनी पार तुरमय, अंतिकिन, मफ अने अलिकसुदरनी उल्लेख करै छे. आ मतने हुं अनुसरं छुं. लैंसने (Ind. Alt II, 254) अगाउ ज सूचवी दीधुं हतुं के आ राजाओ अनु-क्रमे नीचेना राजाओ छे: सीरीआनो राजा थीओस, एन्टिओकोस बीजी (२६१-२४६ ई. स. पूर्व), इजीतनो बीजी टोलेमिडोस (मृत्यु २४७ ई. स. पूर्व), मेसेडोनोआनो आन्टिगोनोस गोनटस (मृत्यु ई. स. पूर्व २३९), सिरानो मगस (मृत्यु २५८ ई. स. पूर्व); अने एपिरसने अलेकझांडर (मृत्यु २५८ ई. स. पूर्व); ५ हवे खडक उपरनी आशामां अशोकना अभिषेकने १२ वर्ष थयां हतां सारे एटले के तेना अभिषेकना १३ मा वर्षमां प्रसिद्ध थई हती. ए विषयमां हजी सुथी कोईने पण शंका थई नथी; तेम ज थाय तेम पण नथी के, ए १३ मी आशामां जे पांच राजाओनो निर्देश करैलो छे ते सघळा, ते घखते हयात न हता. कारण के अशोक देखे राजा पोसे पोताना धर्मप्रवर्तकाने मोकल्या हता. अने आ उपरथी ए सहज समजी शकाय तेम छे के तेओनी साथे ते गाढ संबंध धरावतो होवो जोईए. अने तेथी करीने ई. स. पूर्व २५८ वर्ष पछी एक या वे वर्षों बाद जे तेओमाना वे राजा गुजरी गया हता ते एनी जाणमां न आवे एम मानवुं अशक्य छे. कारण के आ वेमानो एक तो (मगस) टोलेमिडोस (Ptolemaios) नो एक निकटनो सगो हतो अने टोलेमिडोस ए अशोकना चखतनो एक घणो ज बल्लवान राजा हतो जेणे बिंदुसारना दरबारमां अने खुद अशोकना दरबारमां पण पोतानो दिओनिसीओस (Dionysios) नामनो एलची मोकल्यो हतो. 59 आटला माटे अशोकनुं तेरसुं वर्ष एन्टिओकस थीओस (Antiochos Theos) ना राज्यधिरौहणना ई. स. पूर्व २६१ मा वर्ष पछी अने मगसना अवसान तथा प्रायः अलेकझांडरना मरणनी पूर्व—जो आ छेलो राजा आ करतां चधोर बहेलो न गुजरी गयो होय— एटले ई. स. पूर्व २५८ मा वर्ष पहेलां आववुं जोईए. जो ए प्रमाणे आ तेरसुं वर्ष ई. स. पूर्व २६०-२५८ नी वचमां आवे तो तेनो अभिषेकनो समय ई. स. पूर्व २७२-२७० मां पड़े. अने सघळी चौद परंपराओना एक-मते अशोक पोताना अभिषेक पहेलां चार वर्षे राजा बन्यो हतो ते उपरथी तेनो पिता बिन्दुसार ई. स. पूर्व २७६ अने २७८ नी वचमां गुजरी गयो हरो.

उपरोक गणत्री तत्कालीन स्मरणस्तंभादिना अखंडनीय आधार उपर तैयार करघामां आधी छे. परंतु बौद्ध इतिहास ग्रन्थो एम जणवि छे के बुद्ध पछी २१८ मां वर्षमां अशोक पोताना ९९ भाईओने ६० मारी नासीने राज्याभिषेक थयो हतो. आ कथन जे विश्वासपात्र लेखाय तो बुद्धनुं निर्वाण ई. स. पूर्व ४८९-४८७ नी वचमां नकी धयुं मानवुं जोईए. पण आ कथन

58. सरखावा, खडक उपरनी आश बीजी. वहीयां पण तेज राजाओनो मतलब छे.

59. सरखावा, वही. ए स्मिथ, Early History, P. 139.

60. आ हकीकत खडक-आश नं. ५ थी खोटी पड़े छे कारण के आ आशामां अशोक पोताना भाईओने निर्देश कयों छे. आ बाबत मॉगनटों बोधी कयौ हता. (Ind Ant XX 259.)

વિરુદ્ધ તે જ શ્વેતશિવોમાં 61 વીજું કથન મળતું હોવાથી તેઓની ગણતરીમાં ક્યાં મૂલ છે તે હું આ સ્થળે સમજાવીશ.

રાજગૃહનો રાજા વિવિસાર અને તેનો પુત્ર તથા ઉત્તરાધિકારી અજાતશત્રુ-જેને જૈનો કૃષિય અથવા કૌણિય નામે ઓળખે છે-તેમના સંવંધમાં દ્રાહ્મણ, વૌદ્ધ અને જૈન આ ત્રણે ધર્મોમાં પરંપરા-ઓ જોવામાં આવે છે. વૌદ્ધોના પુરાતન લેખો જણાવે છે કે વિવિસાર બુદ્ધનો સમકાલિન હતો અને બુદ્ધ નિર્વાણથી આઠ વર્ષ પહેલાં તે પોતાના પુત્રના હાથે મરણ પામ્યો હતો. પુરાણોની હકીકત અનુસાર આ વિવિસાર શૈશુનાગ વંશનો પાંચમો રાજા હતો અને તેણે ૨૮ વર્ષ રાજ્ય કર્યું હતું. પરંતુ વીપવંશ ૩, ૫૬-૬૧, અને મહાવંશ ૨, ૨૫ માં એમ જણાવેલું છે કે તે બુદ્ધ પછી પાંચમે વર્ષે જન્મ્યો હતો, પંદર વર્ષની ઉંમરે રાજ્યાસન પર આવ્યો હતો અને ૫૨ વર્ષ સુધી તેણે રાજ્ય કર્યું હતું. જો કે આ હેવાલમાં ફાંઈ તથાગંધ નથી. કારણ કે વિવિસાર બુદ્ધ અને મહાવીર વચ્ચેની પહેલાં ગુજરી ગયો હતો. વિવિસાર પછી અજાતશત્રુ (ઉર્ફે કૃષ્ણિક) ગાદિ પર આવ્યો અને તેણે પુરાણ અનુસાર ૨૫ વર્ષ, અને સિલોનના શ્વેતશિવ પ્રમાણે ૩૨ વર્ષ રાજ્ય કર્યું. તેને ગાદી ઉપર આવ્યાને આઠ વર્ષ થયાં ત્યારે બુદ્ધનું અવસાન થયું. પણ આ પછી પૌરાણિક અને વૌદ્ધ હેવાલો નામોમાં મજબૂતતા આવતા નથી. કારણ કે પુરાણ જણાવે છે કે અજાતશત્રુની પછી હર્ષક અથવા દર્શક નામનો રાજા થયો અને તેણે ૨૫ વર્ષ રાજ્ય કર્યું. ત્યારપછી ઉદય રાજા વન્યો જેણે ૩૩ વર્ષ રાજ્ય કર્યું. વૌદ્ધો એમ કહે છે કે અજાતશત્રુ પછી ઉદાયિમહ (વીરનાિકાય) અથવા ઉદય મહક⁶² (વીરવંશ, મહાવંશ) રાજા વન્યો અને તેણે ૧૬ વર્ષ રાજ્ય કર્યું. જૈનો અને ઉપાધિન કહે છે અને તેના શાસનનો સમય લાંબો વતાવે છે. 63

હવે આ હકીકત ને શરૂઆતનું કેન્દ્ર માનીને વિવિધ કાલગણના વિષયક લેખોનો એક પછી એક લઈ વિચાર કરવો જોઈએ. અને તેથી હું પહેલ વહેલાં વાયુપુરાણમાંથી મળી આવતી દ્રાહ્મણપરંપરાથી શરૂઆત કરીશ.

આ ગ્રંથની અનુસાર, દર્શક (અથવા હર્ષક) 64 ના ૨૫ વર્ષ પર્વત રાજ્ય કરી રહ્યા પછી ઉદય (અથવા ઉદયાશ્વ) રાજા વન્યો અને તેણે ૩૩ વર્ષ રાજ્ય કર્યું. આના પછી અનુક્રમે નન્દિવર્ધન અને મહાનાન્દિન આવ્યા જેઓ વંચે ૮૫ વર્ષ રાજ્ય કર્યું. મહાનાન્દિન શૈશુનાગ વંશનો છેલ્લો રાજા હતો અને તેની પછી નવ નન્દો, મહાપદ્મ इत्यादि રાજાઓ વે પેઢી સુધી કુલ ૧૦૦ વર્ષ રાજ્ય કર્યું. છેલ્લા નંદની પછી મૌર્ય રાજાઓ ગાદી પર આવ્યા તેમાંના ચન્દ્ર-ગુપ્તે ૨૫ વર્ષ, ચિન્દુસારે ૨૫ વર્ષ અને અશોકે ૩૬ વર્ષ રાજ્ય કર્યું. જો હવે આપણે અજાતશત્રુથી માંડીને અશોકના અભિષેક સુધીનાં વર્ષો રાજાઓનો સરવાલો કરીએ તો તે સરવાલો ૩૧૭ વર્ષનો થાય છે. અને જો આપણે સિદ્ધરૂપે માની લઈએ કે અજાતશત્રુના અભિષેક પછી ૮ વર્ષ બુદ્ધ નિર્વાણ પામ્યા તો અશોકને સમય બુદ્ધનિર્વાણ પછી ૩૦૨ માં આવે, એ અશંક્ય છે. કારણ કે સિલોનનો સન્-જેના આધારે બુદ્ધ ૬. સ. પૂર્વે ૫૪૪ વર્ષે નિર્વાણ પામ્યા હતા તેની-અનુસાર ઉપરોક્ત સમય ૬. સ. પૂર્વે ૨૩૪ વર્ષે આવે છે અને આપણે જાણીએ છીએ કે ૬. સ. પૂર્વે ૨૬૦ અને ૨૫૮ વચ્ચેના વર્ષથી ૧૨ વર્ષ પહેલાં અશોકને રાજ્યભિષેક થયો હતો. ૬. સ. પૂર્વે

61. ઉત્તરીય વૌદ્ધોના કથનને હું બીજાકુલ મહત્ત્વનું માનતા નથી, તે એમ કહે છે કે અશોક બુદ્ધનિર્વાણ પછી ૧૦૦ વર્ષે જન્મ્યો હતો.

62. આ કદાચ તેનું ચંદ્ર નામ હશે કારણ કે વૌદ્ધોની તેમ જ જૂનોના જૂનામાં જૂની પરંપરા આ નામ જણાવે છે.

63. આ વિષય હું આગળ ઉપર ચર્ચાવ.

64. વિષ્ણુપુરાણમાં તેનું નામ દમર્ક ઓપેલું છે. સરસ્વાતી, મુદ્ર, Ancient Skt. Lit P. 296

४७७ ने निर्वाणना वर्ष तरीके स्वीकारिए तो तेनी अनुसार अशोकनो अभिषेक इ. स. पूर्व १६८ वर्षे आवी पड़े परंतु आ परिणाम तो विशय असंगत बने छे.

आ हिसाबे जोतां पुराणोमां भूल थई होय तेम जणाय छे अने ते संहलार्थी शोधी शकाय तेची छे. पिता अने नव पुत्रो मळी नन्दोनी ये पेढीओ हती एम ब्राह्मणोना, जैनोना अने केटलेक अंदो बौद्धोना ग्रंथोमां पण वर्षेन जोवमां आवे छे. वळी हेमचन्द्र अने अन्य जैन ग्रंथकारो तो स्पष्ट रीते ज कहे छे के उद्य अथवा उदायि ते शैशुनाग वंशानो छेलो राजा हतो. आ उपरथी स्पष्ट थाय छे के महानन्दिन् अने नन्दियर्धन जेवां नामोनु शैशुनाग नामो साथे कोई सादृश्य नथी. परंतु ते नंद अने महानन्दिन् महापद्मनन्दनु 65 जाणे हुंकु रूप होय एम शंका उत्पन्न करे छे. आ उपरथी तेमज वर्षोनी अतिशयोक्ति भरेली संख्या उपरथी हुं एवी कल्पना करुं हुं के पुराणोमां ये वखत नन्दोनी गणती थई छे. अने आम थयुं ते, नंदोना इतिहासना संबंधमां ते ग्रंथोमां थपेलो मोटे। गोटाळो जोतां, तदन शक्य लागे छे. वळी पिता अने पुत्रोना राज्यनां मळी जे एकंदर १०० वर्षो आपवामां आव्यां छे ते घणां शंकास्पद लागे छे. कारण के आजे प्रत्येकने धरावर १० वर्षे फाळे आवे छे, आ दाखलाओ उपरथी हुं अनुमान करुं हुं के महानन्दिन् अने नन्दिधन आ ये पुरुषो असलमां नन्दो के जेमणे कुल मळीने ८५ वर्ष राज्य कर्युं हतुं तेमनी ये पेढीओना प्रतिनिधियो हता. 66 अने नन्दोनां जे सो वर्ष वताववामां आव्यां छे ते पाछळधी साची हकीकतोनां विस्मरण अने गेरसमजुतिने लईने, उमेरो थपेलो छे. तेथी करीने जो आपणे नंदोनां १०० वर्ष उड़ावां दर्इए तो बुद्धनिर्वाण अने अशोकना अभिषेक घट्ठेनो काल ३०९ वर्षोने वदले २०९ वर्षोना थाय. अने पछो निर्णित कालगणनानुसार तेनो समय इ. स. पूर्व २६८ मां पड़े. परंतु बौद्धो जेमने अशोक परत्वेनी उमत्त माहिती छे तेओ फदे छे के तेणे पोताना अभिषेक पहिलां चार वर्ष अने अभिषेक पछी ३७ वर्ष राज्य कर्युं हतुं, जे हकीकत पुराणमां जणवेली ३६ नी संख्याने साधारण निकट थाय छे. जो धाम होय तो आपणे ३६ मां ५ उमेरवां जोईए अने तेम कर्याथी तेना राज्याधिरोहणनो काल इ. स. पूर्व २७३ मां वर्षमां आवबो. आ मिति शिलालेखो उपरथी तारखी काढेली मिति अर्थात् इ. स. पूर्व २७६-२७४ साथे लगभग मळती आवे छे.

आटलुं विवेचन ब्राह्मणग्रंथना संबंधमां कर्युं. जैन हेवाल के जे उपर टांकेली स्मारक गाथाओमां मळी आवे छे ते हेमचन्द्रना परिशिष्ट पर्वमां अंतर्गत थपली परंपरारूप ज छे. पण आनो विचार अंतमां ज करवो, घटे छे. तेथी करीने हालमां बौद्धोना हकीकतो, के जे सिलोनना

65. खारवेलना शिलालेखमां तेम ज कौटिलीयना पृ. ४२९ उपर नन्दराजतो ये वखत निर्देश थपेलो छे. नन्दस बुद्धी रीते Justin XV, 4, 1 मांन अलेक्जेन्डरस मटे सुधारणा छे. (जुओ Gutschmid). Diodoras XVII 93 अने Curtius IX, 2 मां चन्द्रगुप्तनी पहिलांन मगधना छेला राजाना नाम थतविला Xandramas अथवा Aprammes नुं संस्कृत रूप शुं थाय ते हुं वीलकुल समझी शकतो नथी. Xandramas मां संस्कृत शब्द चन्द्र अथवा तो चण्डेनो भास पाय छे खोरा, पण नंदोमां आलुं नाम नहि बळी शकतुं होवाथी आ उपरथी कोई अनुमान काढी शकाय नहि.

66. ये पेढीओए मळीने कुल ८५ वर्ष राज्य कर्युं होय ते बावत जो के थोडीक आविश्वासनाय लागे खरी परंतु मि. विन्सेन्ट स्पीथे पोतानी Early History of India मां, अंग्रेजी इतिहासमांथी लांबा राज्यकाल दाखवतां जे उदाहरणो आप्यां छे ते जोतां आ बात पण असक्य होय एम लागती नथी. वाचक नीचेना हकीकत उपर ध्यान आपरो के आठमो हेनरी अने तेना पुत्रोए मर्कने ९४ वर्ष (१५०९-१६०३) राज्य कर्युं हतुं अने ते हेनरी इतिहासवेधना मरण पूर्व ११२ वर्षे जन्मो हतो.

इतिहासामां मळी आवे छे ते उपर चर्चा करिदा. शरूआतमां महावंश ग्रंथ लईशुं. कारण के एमां आपेली हकीकतो तदन स्पष्ट छे, ज्यारे दीपवंशमां आपेली वधी हकीकतो घणी गोटाळा भरेली छे. 67

महावंश २, २५; अने ४, १; ५, १४ मां जणावेलुं छे के विंविंसारे ५२ वर्ष राज्य कयुं हतुं अने तेनी पछी तेनी हत्या करनार तेनो पुत्र अजातशत्रु आव्यो. तेणे बुद्ध निर्वाण पहेलां आठ वर्ष अने त्यारपछी २४ वर्ष एम कुल ३२ वर्ष राज्य कयुं हतुं. अजातशत्रु पछी आवेला राजा-ओ बुद्धधर्मना सारा आश्रयदाता थया होय तेम लागतुं नथी, कारण के महावंश ४, १ मां पछीना राजाओने 'पितुघातवंश' एटले पितानी हत्या करनाराओनो वंश, एवुं नाम आपेलुं छे. अने वधारेमां जणाव्युं छे के ते वंशना सघळी राजाओ अनुक्रमे पोताना पिताने अगर पूर्व जने मारिने ज पोते गादी उपर आव्या हता. आ राजाओ ते अनुक्रमे—उदयमदक जेणे १६ वर्ष 68 राज्य कयुं. अनुरुद्धक अने मुण्ड वधे मळीने ८ वर्ष राज्य कयुं अने छेहो नागदासक जेणे २४ वर्ष राज्य कयुं हतुं. आ राक्षसो—जेमांन छेहाने आवेशमां आवी गपला लोकोए ठारमारी नाख्यो हतो तेमनी—पछी एक धर्मात्मा मंत्री गुप्तुनागे १८ वर्ष राज्य कयुं अने तेनी पछी तेनो पुत्र कालासोक राजा थयो अने तेणे २८ वर्ष राज्य कयुं. तेना शासनना ११ मां वर्षमां (अर्तते दसमे वस्से, ४, ८) वेसालीमां बीजा सभा मळी जेनी मिति बुद्धनिर्वाण पछी १०० वर्ष आपेली छे. कालासोकनी पछी तेना दश पुत्रो गादिण आव्या अने तेमणे २२ वर्ष राज्य कयुं. तेओनी पछी नव नंदो थया जेओए पाँजां २२ वर्ष राज्य कयुं. 69 छेहानंदने चाणक्ये गादी उपरथी उठावी दीघा पछी चंद्रगुप्त राजा थयो जेणे २८ वर्ष राज्य कयुं. तेना पुत्र बिन्दु-सार ५८ वर्ष राज्य कयुं अने तेनी पछी अशोक गादीए घेहो. ते पोताना ९९ भाईओने मारी नाखीने निर्वाण बाद २१८ वर्ष राज्याभिषिक्त थयो. आ सघळी तरीओए एक पाँजा साधे साधारण रीति ठीक वैसती आवे छे परंतु उपरोक्त समन्तपासादिकामांन। 'भूल' निःशंक-पणे बतावे छे के आ परंपरा सघळी वाचतोमां विश्वास राखवा लायक नथी. अने तेथी आपणे बुद्धनिर्वाण पछी २१८ वर्ष अशोकनो अभियेक थयो हतो ए जणावती नोंघने बहु महत्व

67. बुद्ध पछी सो वर्षे अशोक राजा थयो हतो ए प्रकारनुं दिव्यावदाननुं कथन हुं अहिं विचारमां लई शकतो नथी. (pp. 568, 379 etc) अने ए ग्रंथना, पृ. ३६९, ३३० उपर एक तदन अविश्वसनीय एकी राजाओनी यादी आपेली छे; जे यादी कोई पण अन्य नोंधे साथे मळती आवती नथी बल्के अन्य सर्व नोंधयो विरुद्ध अछे छे. आ यादीमां नीचे प्रमाणे मगधराजाओनी यादी आपेली छे. विंविंसार, अजातशत्रु, उदायिन (उदयिभद्र), मुण्ड काकवर्णि, सहस्रि, तुलकुचि, महामण्डल, प्रसेनजित, नन्द, बिन्दुसार, अशोक, सम्प्रति (अशोकनो पौत्र अने कुणालनो पुत्र), बृहस्पति, बृहसेन (?) पुष्यधर्मन अने पुष्यरथ. आ स्थळ एटलुं सूचवा मांगुं छुं के आ यादीमां चन्द्रगुप्त ने सर्वथा छोडी देवामां आव्यो छे अने ए ज एक वाचत उपरथी तेनी किमत आंकी शकथे.

68. बुद्धघोषनी समन्तपासादिकाना ३२९३ पृ. मां, आ राजाओमांन प्रसेकना ८ वर्षेनि बदले १८ वर्ष बताविलां छे. आ परंपरा घणी अजायबी भरेली लागे छे, अने ते बुद्ध अने अशोकनी बचैनी कुल वर्ष संख्या साथे मोटो विरोध दर्शावे छे. आ उपरथी एटलुं ज अनुमान काढी शकथ छे के सौलेननी परंपरा गंभीर रीते अचोक्त छे.

69. मौरा जाणवा प्रमाणे, आ पहेलां, ए कोईनी जाणमां नथी आव्युं के जैनपरंपरामां पण कालासोक अने तेना उत्तराधिकारीओनुं झांशुं स्मरण बर्युं छे. उपांग ८ अने ९ मां (निरुपावली) कालराज अने तेना नव भाईओ, जेओने परंपरागत कथन अजातशत्रुना औरमान भाईओ होवानुं बतावे छे, तेओ संबंधी उल्लेख मळी आवे छे. अने आगळ ऊपर तेना दश पुत्रो जेमांन वे. नामे महापद्म अने नन्दन हतां तेमनो पण उल्लेख थएला छे. आ उपरथी नंदोनो बीज पण सगाओना संबंधमां तदन अस्तव्यस्त रूपमां केटलुं मळतापणुं जेवाय छे-

આપણું જોઈએ નહિ. તેમ છતાં, ઉપરોક્ત મિતિઓમાં એક એવી મિતિ છે જેને યૌદ્ધો સાધારણ રીતે વરાવર જાણતા હોવા જોઈએ; અને તે અન્ય કોઈ નહિ પણ તે વીંજી સમાની તારીખ છે. આ સમા વુદ્ધ પછી ૧૦૦ વર્ષે મઝી તેમ જુ. ૬૦ ૧૨, ૧૧ માં જણાવેલું છે. તે તારીખ સાચી હોવા ન હો, અથવા સમા પણ મઝી હોવા ન હો તેની સાથે આપણને આ સ્થળે કામ નથી. 70 આપણો મુખ્ય મુદ્દો એ છે, તે ૫ છે કે આ વર્ષ સિલોનની કાલગણનામાં એક મહત્વનું પ્રારંભ-કેન્દ્ર હતું અને મારી હંદ માન્યતા છે કે સિલોનના મિશ્રુઓ, પ્રાચીન પરંપરાઓ દ્વારા જાણતા હતા કે આ સૈકું કાલાસોકના શાસનના વરાવર ૧૦ માં વર્ષ પછી આવતું હતું. આ વિષયમાં એક વાર ફરીથી હું માત્ર વુદ્ધધોષની, એક જરા વિષયાન્તર વતાવેની, હકીકત ઉપર ભાર મૂકવા માતું છું; કારણ કે તેને લઈને કદાચ આપણને કોઈ રીતે કાલાસોકના પહેલાંના રાજાઓની યાદીમાં કોઈ ફેરફાર કરવો પડે. પરંતુ તેના સમય પુર્વેની વીનાઓ, મહાન અશોકની મિતિને અસર કરતી નથી; કારણ કે તે વચ્ચે તેના અભિષેકના સંબંધમાં એવી ચોક્કસ પરંપરા પ્રચલિત હતી કે તેનો અભિષેક વીંજા સંઘમિલન પછી ૧૧૮ વર્ષ બાદ અને વુદ્ધ પછી ૨૧૮ વર્ષ થયો હતો, હવે નિર્ણીત કાલગણનાના અધારે ગણતરી કરતાં અભિષેકની આ મિતિ ઇ. સ. પૂર્વે ૨૬૦-૫૯ માં આવે સરી, પણ શિલાલેખો સાથે તેનો મેઝ મેઝવી શકાય તેમ નથી.

પ્રતો નિઃસંદેહ છે કે અશોકની સમય-ગણના, સઘણ તારીખવાળા શિલાલેખોમાં સ્પષ્ટ જોવામાં આવે છે તે પ્રમાણે, અભિષેકના વર્ષથી થાય છે. 71 પરંતુ આપણે ઉપર ગણતરી કરી છે કે તેનો અભિષેક ઇ. સ. પૂર્વે ૨૭૨-૨૭૦ ની વચ્ચે થયો હશે. આ ઉપરથી વુદ્ધનિર્વાણ સ્પષ્ટ રીતે ઇ. સ. પૂર્વે ૪૯૦-૪૮૮ ની વચ્ચેમાં આવે છે, જે સાલ જનરલ કનિંગહામ અને પ્રો. મેક્સમૂલરની ગણતરી સાથે એક થતી નથી. પણ અહીં એક વીંજી વાચત પણ વિચારણીય છે.

યૌદ્ધ અહેવાલો અનુસાર, અશોક તેના રાજ્યકાળના પ્રથમ ભાગમાં અથવા શરૂઆતમાં નાસ્તિક હતો અને અભિષેક બાદ ત્રણ વર્ષે તે યૌદ્ધધર્મમાં દાખલ થયો 72 હતો. આ વાચત ઘણી મહત્વની છે કારણ કે પ્રાયઃ કરીને અશોકના પોતાના કથનો સાથે ૫ સંમત થાય છે. જાદક ઉપરની આજ્ઞા નં. ૧૩ ની સુપ્રસિદ્ધ ઉપોદ્યાતમાં જણાવ્યું છે કે

અ[સ્તવ]સ અભિસિત [સ દે] વન પ્રિઅસ પ્રિઅદશિસ રજો ક [લિગ વિજિત] 73

આથી કલિંગની જીત ઇ. સ. પૂર્વે ૨૬૪-૨૬૨ વર્ષોની વચ્ચેમાં થઈ હશે અને આ પછી તરત જ રાજા ૫ થપલા નરસંહાર અને રક્તપતનો પશ્ચાત્તાપ કરવા માંડ્યો અને કેટલાક પ્રમાણમાં તે નવીન ધર્મમાર્ગી બન્યો. આગળ ઉપર તે સહસારામ ઘોરે આજ્ઞામાં જણાવે છે કે હું અહીં વર્ષ કરતાં વધારે વચ્ચે મુઘી મન્દેાત્સાહી (ઉપાસક) હતો. પરંતુ ત્યાર બાદ એક વર્ષથી હું અત્સાહી થઈ સંઘનો સમ્યક બન્યો છું.

અધિકાન્ (િ) અદાતિયાનિ વસાનિ ય હક્ (ઉપાસકે) નો તુ લો વાદં પક્તે હસં એકં સ (મ)વહરં સાતિરેકં તુ લો સ (મ) વહર [અ] મ્ યં મયે સંધે લપયીતે વાદં ત્ત મે પક્તે.

70. આ મત મારો નથી. કારણ કે આ સંબંધમાં બૌદ્ધપરંપરાને મુખ્ય પણ નિર્મૂલ ઠરાવવાના હેતુથી R. O. Franke એ લખેલી સઘણી દલીલોથી પણ હજી એનું સ્પષ્ટ થઈ નથી.

71. જાદક ઉપર કોતરેલી આજ્ઞા નં. ૧૩ માં ૮ માં વર્ષ (કલિંગની જીત) થી તે ૨૬ માં વર્ષ (સ્તંભ-આજ્ઞા, ૧૪ અને ૫.) અને ૨૭ માં વર્ષ (સ્તંભ-આજ્ઞા ૭) સુધીની તારીખો.

72. દૌપદ્ય. ૬, ૧૮; યજ્ઞી પ્રશિષ્ટ ગાયા ૬, ૨૪ માં અભિષેક બાદ ત્રણ વર્ષે ધર્મસંસ્થાન જણાવેલું છે.

73. શાહાબાદગઢી. ઈ.પ. ઇન્ડિ. ૨, ૪૬૨.

આનો તાત્પર્ય એ છે કે, અશોક વુદ્ધધર્મનો સાચો અને વિશ્વાસુ અનુયાયી બન્યો તે વચ્ચે તેના અભિપ્રેક્ષે, સાઢા દશ કરતાં વધારે, આશરે અગીઆર વર્ષ; થયાં; અને તે પ્રમાણે ગાંધી ઉપર આવ્યાને લગભગ પંદર વર્ષ થયાં હતાં. સ્વદેશ આજ્ઞા નં. ૮ માં તેણે જણાવ્યું છે કે તે પોતાના અગીઆરમા વર્ષમાં 'સંવોધિ પ્રાપ્ત કરવા નીકળ્યો' હતો (અર્થાત્ સંવોધિ); આ હકીકત સહસારામ આશ્રામાં 74 લેસલી થાયત સાથે ઠીક મળતી આવે છે. હવે આપણે વીપ-વંશમાં કહ્યા પ્રમાણે અભિપ્રેક્ષ પછીના પ્રશ્ન વર્ષોને, જો, સહસારામ આશ્રામાં જણાવેલાં 'અઢી વર્ષોથી અધિક' કાલ સાથે સરસાર્વાશું તો આપણે કબુલ કરવું પડશે કે તે વચ્ચેની વચ્ચે અ-સરકારક સામ્ય દૃષ્ટિ પડે છે, અને તે ઉપરથી એવું અનુમાન થાય છે કે વસ્તુતઃ તે વચ્ચે હજીસો એક જ વીનનિ ઉદ્દેશીને કરવામાં આવેલા છે. 75 આ ઉપરથી વીજું પણ એક અનુમાન નીકળે છે કે સિલોનના આ હેવાલો—અથવા તેમની મૂળભૂત પ્રાચીન અટકયા—નો, અશોકના અભિપ્રેક્ષ અને નિર્વાણ વચ્ચેના અંતરાલને ૨૧૮ વર્ષોનું ઘટાવવામાં ગેરસમજુતિ થયેલી છે. આ ૨૧૮ વર્ષો મૂળમાં અભિપ્રેક્ષે ઉદ્દેશીને નહિ હતાં પરંતુ કલિંગની વિજયસમાપ્તિ અગર પ્રથમ ધર્મપ્રવર્તન, અથવા આ વચ્ચે ધીનાઓની સાથે સંબંધ ધરાવતાં હતાં. પટલું તો આપણે કબુલ કરવું જોઈએ કે ઘોઝોના માટે અશોકના અભિપ્રેક્ષ કરતાં તેનું વુદ્ધધર્મમાં પ્રવર્તન અતિ મહત્વનું હતું. અને આટલા માટે અશોકના આ વનાવને એક કેન્દ્ર મારી યોદ્ધોષ ત્યાંથી તેના સંબંધની તેમની કાલગણનાત્મક તેમજ ઐતિહાસિક નોંધોના શરૂઆત કરી હોય. કલિંગની જીત કાલગણનાત્મક ગણતરીઓમાં ઘણું કરીને વધારે અગત્યની ન હતી, પરંતુ તેનું મહત્વ તેના ધર્મપ્રવર્તનને અંગે જ છે. કારણ કે મરત પોતાના અભિપ્રાય પ્રમાણે, કલિંગની અંદર, અગર કોઈ અન્ય સ્થાનમાં, અશોકના રાજ્ય સાથે કલિંગના મિથ્રણ થયા ઉપર કોઈપણ સંવત્સરી સ્થાપના થઈ હોય એવો એક પણ પુરાવો નથી. 76

સારે સિલોનના અઢેવાલોમાં જણાવેલાં ૨૧૮ વર્ષો અસલમાં અશોકના અભિપ્રેક્ષની સાથે

74. અઢીમાં મેં ડૉ. એફ. હસ્તુ. થોમસની J. A. 1910, p. 507 માં આપેલી સ્પષ્ટ અને વિશ્વાસ-જનક હકીકતોનો સંપૂર્ણ ઉપયોગ કરેલો છે.

75. ઘોઝાઓ અને આજ્ઞાઓના પરસ્પર સરસારાપણના ટેકામાં ઘણાં પ્રમાણો છે, જેનો કોઈ પણ નિર્દેશ કરી શકે તેમ નથી. ઉદાહરણ તરીકે, દિવ્યાવદાનમાં, ધાર્મિક આજ્ઞાઓના અસ્તિત્વના સંબંધમાં હજીસ થયેલો છે, અને તે સ્વદેશ તેમની સંખ્યા ૮૪૦૦૦ ની ઘટાવવામાં આવી છે. આ સંખ્યા હાસ્યજનક—કલ્પનામય—લગે છે; પરંતુ તેમાં આ આજ્ઞાઓના સંબંધમાં (પૃ. ૪૧૯, ૪૨૯ इत्यादि) પચ્ચવાર્ધિક નામની સંસ્થાનો નિર્દેશ કરે છે. આ સંસ્થા તે ધર્મયાત્રા જોઈએ જોઈએ, જે પ્રસ્તર-આજ્ઞા (Rock-Ed.) ૩ અને ૪ માં ઘટાવ્યા પ્રમાણે પાંચ પાંચ વર્ષે ચલી હતી. ઘોઝી દિવ્યાવદાન પૃ. ૪૦૭ માં જણાવેલું છે કે કુળાલને તેના પિતાએ તક્ષાશિલ્પના સુવા તરીકે મોકલ્યો હતો (હેમ. પરિશિષ્ટ, ૧, ૧૪ માં જણાવેલું છે કે તેને ડગ્ગીયીની મોકલવામાં આવ્યો હતો.) આ ઉપરથી ઘોઝી અને જોગડની આજ્ઞા ૧ થી માં આવતા 'ઉજેનિ (તે) કુમાલે ' અને ' તાલસિલોતે (કુમાલે) ' શબ્દોનું સ્મરણ થઈ આવે છે. દિવ્યાવદાન પૃ. ૩૯૦ અને રામ્મિન્દેઈ શિલાલેખની વચ્ચે જે સેઝ Barth, Journal des Savants, 1897, p. 73 અને ડુહર, Ep. Ind. V; p. 5 ઘટાવે છે, તેનો પિસલ S. B. Pr. A. W. 1903, p. 731, અસ્વીકાર કરે છે; અને તે વાસ્તવિક રીતે લગે છે પણ અનોક્સ. પરંતુ, દિવ્યાવદાનમાં અશોકની તૈર્થયાત્રા સંબંધી જે હજીસ મટે છે તે વાસ્તવિક છે.

76. ડૉ. ફ્રીટ J. H. A. S. 1910, pp 242 ff, 824 ff, જે કહે છે કે સારવેલના શિલા-લેખ ઉપરથી મૌર્યવંશના અસ્તિત્વના સંબંધમાં કોઈ પણ તર્ક ઘાંધવાનો આપણને હક નહોતો નથી, તેને હું સમત છું. જો કે તે લેખની ૧૭ મી લીટીના તે સિવાય અર્થને હું સર્વથા અસ્વીકારનીય મારું છું. ડૉ. ફ્રીટનું આપાંતર આ પ્રમાણે

સંબંધ ભરાવતાં નહિ પરંતુ ધર્મપરિવર્તનને ઉદ્દેશીને લેણાં હોય, તો આ વનાવ, બુદ્ધિ-
ર્વાણીની મિતિ ૬. સ. પૂર્વે ૪૭૭ ની સ્વીકારતાં ૬. સ. પૂર્વે ૨૫૯ માં થયો હોય, અને હેવટનું
ધર્મપરિવર્તન આશરે ત્રણ વર્ષો પછી પટલે ૬. સ. પૂર્વે ૨૫૬ થયું હશે. પરંતુ આ મિતિમાં કેટ-
લાંક વર્ષો વધારે ગણાવવાં લાગે છે; કારણ કે કાલિગની જીત મોડામાં મોડી ૬.સ. પૂર્વે ૨૬૨
માં પરિસમાપ્ત થઈ હોવી જોઈએ. તેમ છતાં આપણે નીચેની વે વાચતો ધ્યાનમાં રાખવી જોઈએ,
કારણ કે તે દ્વારા ઘણું કરીને વધી મિતિઓ સંપૂર્ણ રીતે સંગત થાય તેમ છે. (૧) ઉપર જણાવ્યા
પ્રમાણે બુદ્ધગોષ અને અદિવાલો વચ્ચેનો વિરોધ કેટલોક અગત્યનો છે; અને (૨) મહાવંશમાં
જ્યારે વિંદુસારે ૨૮ વર્ષ રાજ્ય કર્યાનું જણાવેલું છે ત્યારે બ્રાહ્મણગ્રંથો કે જે એ વાચતમાં વધારે
સત્ય હોઈ શકે તેમાં ૨૫ વર્ષ અર્થાત્ ત્રણ વર્ષ ઓછાં દર્શાવેલાં છે. આ સૂક્ષ્મ ભેદોને ભેગા
કરવાથી પશું અનુમાન નીકળે છે કે, ઉપરોક્ત ૨૧૮ વસ્તુતઃ અતિશયોક્તિ ભરેલાં છે, અને તેથી
૬. સ. પૂર્વે ૪૭૭ વર્ષે નક્કી કરેલી બુદ્ધનિર્વાણની મિતિમાં આ અતિશયોક્તિ કાંઈ વાંધો કરતી
હોય તેમ મને લાગતું નથી, પટલું જ નહિ પણ તેને વધારે દૃઢ કરે છે.

મહાવંશનાં કેટલાંક કથનો જો કે અવિશ્વસનીય છે સ્પષ્ટ, છતાં પણ દીપવંશમાં આપેલાં,
રાજાઓ તથા તેમના રાજ્યો સંબંધી વર્ણનો, પદ્યાં ગોટાલા ભરેલાં જોવામાં આવે છે કે તેને મુકા-
બલે મહાવંશનાં વર્ણનો ઘણાંજ સ્પષ્ટ લાગે છે. આ ગુંચવાડાવાળાં વર્ણનોમાં પણ હું કાંઈક
જે માર્ગે શોધી શક્યો છું તેમાં મને મગધના રાજાઓનાં સંબંધમાં વે મુખ્ય પરંપરાઓ જણાઈ
આવે છે. આમાંની પહેલી તો ઘણી જ ગુંચવણી ભરેલી છે અને યાંત્રી સિલોનના રાજાઓની કાર-
કીર્તિની ગણતરીઓ સાથે વિચિત્ર રીતે મેળસેલ થયેલી છે. શરૂઆતમાં કહેયું જોઈએ કે દીપ-
વંશમાં અને મહાવંશમાં જે વે મુખ્ય વાચતો સ્પષ્ટ જોવામાં આવે છે તેમાંની એક તો દ્વિતીય સંઘ-
સમ્મેલન સંબંધે છે કે જે સમ્મેલન બુદ્ધ પછી ૧૦૦ વર્ષે થયું હતું. આ વચ્ચે શિશુનાગના ૭૭ પુત્ર
અશોકના રાજ્યનાં ૧૫ વર્ષ અને ૧૦ દિવસો વ્યતીત થયા હતા. અને યાંત્રી વાચત એ છે કે,
અશોક બુદ્ધ પછી ૨૧૮ વર્ષે અભિષેક થયો હતો. ૭૮ યાંત્રી જે હકીકતો દીપવંશમાં ૩,૫૬ થી
માંડીને ૬, ૧, જ્યાં અશોકના અમલની શરૂઆત થાય છે ત્યાં, સુધીમાં જણાવેલી છે, તે એ છે
કે, વિંધિસારે ૫૨ વર્ષ રાજ્ય કર્યું હતું. અજાતશત્રુષ્ટ ૮ વર્ષે બુદ્ધના જીવતાં અને ૨૪ વર્ષે નિર્વાણ

છે:— 'સાત અંગોના સંપ્રહના ૬૪ મા અધ્યયનને (અથવા અન્ય વિભાગને તે ઉત્પન્ન કરે છે, મહાર આવવા પ્રેરણા
કરે છે(અર્થાત્ તાજું કરે છે.) આનો અર્થ શું? મારા જાણવા પ્રમાણે, પહેલાં સાત અંગો કદાપિ એક ભાવ ધારણ કરતાં
હોય તેમ શાસ્ત્રમાં માનવામાં આવ્યું નથી. અને તેમ થરાવર રીતે કરી શકે પણ નહિ. કારણ કે ઉપાસગદ્સાઓ,
રચનાશીલમાં છઠ્ઠા અંગની અપેક્ષા આઠમા અને નવમા અંગની માથે વધારે સમાન છે. ' અને આપણે કદાચિત્ માની
લઈએ કે ધર્મશાસ્ત્ર-આગમ-જે સ્વપ્નમાં અલ્પો વિદ્યમાન છે તે જ સ્વપ્નમાં તે વચ્ચે હતાં-જો કે આ વાત તદ્દન અવિશ્વ-
સપાત્ર છે-તો ૬૪ મું અધ્યયન તે મગવર્તના ૫ માં 'સમ' સાથે વંધ બેસે જોને સારેવેલે ફરીથી તાજો કર્યો હોય.
પરંતુ આમ માનવું તે મૂર્ખતા ભરેલું છે. વચ્ચે ૯-૧૧ અંગોમાં કુલ ૭૫ અધ્યયનો નથી પરંતુ ૩૩+૧૦+૨૦ પટલે
૬૩ જ છે. પરંતુ આ વિષય હું અન્ય સ્થલે ચર્ચિશ. ચંદ્રગુપ્તે કોઈ પણ મૌર્યયુગ સ્થાપ્યો ન હતો તે વાત તો સહી
છે કારણ કે અશોક તેનો ઉપયોગ કરતો નથી. અને એ ઉપરાંત પ્લિની (Pliny) ૬, ૧૭ (૨૧) માં જે
મેગોસ્થીનીશનું કથન આપેલું છે કે ' બેકસપિતા (Father Bacchus) યી માંડીને તે અલેક્ઝાન્ડર સુધી
પટલે ૬૪ ૫૧ વર્ષોમાં હિંદુઓ ૧૫૩ રાજાઓની ગણતરી કરે છે, તે મને તો કલિયુગ અપર અન્ય કોઈ લૌકિક
યુગની ગણતરીની કડંગી નોંધ હોય તેમ લાગે છે; સરલાષો, વચ્ચે Arrian, Ind. ch. ૮

યાદ પડેલે કુલ ૩૨ વર્ષ અને ઉદય-(મદ) ૧૬ વર્ષ. 70 પરંતુ મહાવંશમાં જે જણાવેલું છે કે અનુરુદ્ધને અને મુંડે ૮ વર્ષ રાજ્ય કર્યું હતું, તે યાવત દીપવંશમાં તદ્દન છોડી જ દીધી છે અને ૫, ૭૮ થી તો ચોક્કસ અનુમાન થાય છે કે ઉદયનો ઉત્તરાધિકારી નાગદાસ હતો. નાગદાસે ઓછામાં ઓછાં ૨૧ વર્ષ 80 રાજ્ય કર્યું હતું. તે ૧૧, ૩૦ ઉપરથી માલુમ પડે છે. શિશુનાગે ૧૦ વર્ષ 81 રાજ્ય કર્યું અને તેની પછી કાલાસોક ગાદી ઉપર આવ્યો. પરંતુ તેની કારકીર્દી કેટલો કાઢ રહી તે સંબંધી દીપવંશમાં કાંઈ કથન હોય તેમ મારા જાણવામાં નથી. દીપવંશ ૫, ૧૧ મી ગાથા, જે નીચે આપી છે તેમાં કાલાસોકને જરૂર તેના પિતા સુસુનાગ સાથે મેલસેલ કરી દીધો હશે કારણ કે તેમાં કાણું છે કે:-

સુસુનાગસ્તન્ચયેન હોન્તિ તે દસ ભાતરો ।

સંઘ્યે વાવીસતિ વસ્સં રજ્જં કારેસુ વંસતો ॥

આમાં કાલાસોકના દશ પૂર્વેનો સ્પષ્ટ નિર્દેશ થયેલો છે, જેમણે મહાવંશમાં જણાવ્યા પ્રમાણે ૬૨ વર્ષ રાજ્ય કર્યું હતું. નંદોનો તો પતો જ નથી. ચંદ્રગુપ્તે ૨૪ વર્ષ રાજ્ય કર્યાં જણાવેલું છે. વિંદુસારનો માત્ર ૫, ૧૦૧; ૬, ૧૫ માં અશોકના પિતા તરીકે નિર્દેશ થયેલો છે, પરંતુ તેના અમલને કાઢ આવ્યો નથી. 82

અશોકે ૩૭ વર્ષ રાજ્ય કર્યું હતું (૫, ૧૦૧) બુદ્ધ પછી ૨૧૮ વર્ષ તેનો અભિષેક થયો હતો, અને અભિષેક થયા બાદ ૩૧ વર્ષ તેણે ધર્મપરિવર્તન કર્યું હતું. વિગેરે વિગેરે. આ થી હકીકતો સુપ્રસિદ્ધ છે. પરંતુ વીજી યાજુષ, નીચે આપેલી પ્રકટ દ્વારિમ ગાથા ૬, ૨૪:-

પરિપુણ્ણવીસવસ્સામ્હિ પિયદસ્સામિસિચ્ચયું ।

પાસણ્ડં પરિગણ્હન્તો તીણિ વસ્સમીતકામિ ॥

કે જેની અંદર ૨૦ વર્ષો કોઈ અઘાત થીનાની સાથે લગાડ્યાં છે. ઉપરાંત અશોકના સમયના સંબંધમાં એક ગોટાળા ભરેલી ચીજી હકીકત આપેલી છે: ૬, ૧૦૨ માં જણાવેલું છે કે અશોકના ૨૬ મા વર્ષમાં તિસ્સ ગુજરી ગયો; પરંતુ ૭, ૩૨ માં તે આઠમા વર્ષમાં ગુજરી ગયો હતો તેમ જણાવેલું છે આ પરસ્પર વિરોધી કથનો કેવી રીતે ઉત્પન્ન થયાં હશે તે હું સમજી શકતો નથી.

૧૧, ૧, થી આપણને સિલોનના રાજાઓ સંબંધી હકીકત મળે છે કે, જેમાંના પ્રાચીન રાજાઓએ તો ઘણા લાંબા સમય સુધી રાજ્ય ભોગવ્યું હતું, અને પછીના રાજાઓએ ઘણાં જ થોડાં વર્ષો તેમ કરી શક્યા. ૫, ૧૧, ૮ માં જણાવેલું છે કે વિજયરાજા અજાતશત્રુ 83 પછી ૮ મે વર્ષે ગાદી ઉપર આવ્યો અને ૩૮ વર્ષ રાજ્ય કરી ઉદયના ૧૪ મા વર્ષમાં ગુજરી ગયો. ત્યાર-

79. દીપ. ૪, ૩૮; ૫, ૧૭.

80. નાગદાસ જો શરેશ્વર ઉદયનો ઉત્તરાધિકારી હોય તો તેણે ૪૦ વર્ષ રાજ્ય જરૂર કર્યું હોય; કારણ કે કાલાસોકને નિર્વાણ પછીના ૧૦૦ મા વર્ષમાં, રાજ્ય કરતાં ૧૦ વર્ષ અને ૧૫ દિવસ થયાં હતાં.

81. દીપ. ૫, ૧૭,

82. પરંતુ આની ગણતરી ૧૧, ૧૨-૧૩ (હુઓ, હેટલ), થી કરી શકાય, અને તે પ્રમાણે તેના રાજ્યસમયની વર્ષસંખ્યા ૨૧ મેલવી શકીએ.

83. દી. ૧, ૪૦ પ્રમાણે બુદ્ધના અંતિમ વર્ષમાં તે સિલોન આવ્યો; મહાવંશ ૭, ૧ પ્રમાણે જે રાત્રિએ બુદ્ધનિર્વાણ થયું તે જ રાત્રિએ.

પછી લગભગ એક વર્ષ જેટલો નિર્નાયકી-અરાજક-કાલ ગયા પછી ઇટલે ઉદયના ૧૬ મા વર્ષે પળ્લુવાસનો રાજ્યાભિષેક થયો અને તે ૩૦ વર્ષે રાજ્ય કરી નાગદાસના એકવીસમા વર્ષમાં અવસાન પામ્યો. તેના પછી અભય રાજા થયો અને તેણે ૨૦ વર્ષે રાજ્ય કર્યું અને સ્વારપછી ફરીથી ૧૭ વર્ષે અરાજક પળું રહ્યું. તે અંધારુંથી દરમ્યાન પકુણ્ડક યા પળ્લુકામય જે હુંદારા તરીકે જીવન ગુજારતો હતો (ચોરો આતિ, ૧૧, ૨) તે પોતાના નવ મામાઓને મારીને (૧૧, ૩) અનુરાધપુરમાં અભિષેક થયો અને ૭૦ વર્ષે રાજ્ય કરી ચન્દ્રગુપ્તના ૧૪મા વર્ષમાં મરણ પામ્યો. તે પોતાનો રાજમુકુટ પોતાના પુત્ર મુદસીવને સોંપતો ગયો હતો. આ મુદસીવ ૬૦ વર્ષે રાજ્ય કરી અશોકના ૮૪ અભિષેક પછી ૧૭ વર્ષે ઇ. સ. પૂર્વે ૨૫૭ માં દેહાંત પામ્યો. આ સઘડી હકીકતો ઉપરથી ચન્દ્રગુપ્તનો સમય ઇ. સ. પૂર્વે ૩૧૫-૩૧૪ માં આવે છે અને અશોકનો રાજ્યાભિષેક ઇ. સ. પૂર્વે ૨૫૭ માં પડે છે. પરંતુ આ વચ્ચે મિતિઓ વધારે અર્થાત્મક થાય છે. હવે વિચાર કરીએ કે પકુણ્ડક જે પોતાના અભિષેકના સમયે ૩૭ વર્ષનો હતો તેણે ૭૦ વર્ષે રાજ્ય કર્યું હોય અને તેના પછી તેના પુત્રે ૬૦ વર્ષે રાજ્ય કર્યું હોય તે અશક્ય જેવું જ લાગે છે. ૮૫ પરંતુ આમાં કયે સ્થળે ભૂલ રહેલી છે તેનો માત્ર નિર્ણય કરવો કઠીન છે. છતાં ગણતરીની ચૂક પળ બહુ મોટી નહિ હોવાથી, સિલોનના પેતિહાસિક ગ્રંથો, વ્યવસ્થિત કરેલી ઇ. સ. પૂર્વેની ૪૭૭ ની તારીખને કાયમ રાખવામાં પ્રતિવંધ કરે તેમ લાગતું નથી.

આ હુકી તપાસનું સંક્ષેપમાં તાત્પર્ય:-અશોકનો રાજ્યાભિષેક ઇ. સ. પૂર્વે ૨૭૨ અને ૨૭૦ની વચ્ચમાં થયો હશે અને તેનું યાસ્તવિક રાજ્યાધિરોહણ તેનાથી લગભગ ચાર વર્ષ પહેલાં ઇટલે ઇ. સ. પૂર્વે ૨૭૬-૨૭૪ વર્ષે થયું હશે. જો એનાથી વધારે ચોક્કસ તારીખ મેળવવા માટે ઉપર અપેલાં વીજાં વર્ષો ગણતરીમાં લઈએ અને અશોક ઇ. સ. પૂર્વે ૨૭૪ માં રાજા થયો હતો એમ ધારીએ તો તેના રાજ્યકાલના ૪૧ (૪+૩૭) વર્ષો ગણતરીમાં લેવાથી તેના દેહાન્તની તારીખ તરીકે આપણે ઇ. સ. પૂર્વે ૨૩૩ માં વર્ષ મેળવી શકીએ. વિન્દુસારના સંવંધમાં બ્રાહ્મણગ્રંથોનું કથન યૌદ્ધગ્રંથોના કથન કરતાં વધારે સાતું-પ્રામાણિક છે તેમ મારું ધારણું છે, અને તેના રાજ્ય-કાલનો સમય આપણે વધારેમાં વધારે ૨૫ વર્ષનો જ સ્વીકારી શકીએ. આ અનુસાર તેનો સમય ઇ. સ. પૂર્વે ૨૯૯ અને ૨૭૪ વર્ષોની વચ્ચે નિર્ણીત થાય; અને મારું એમ પણ માનણું છે કે તેનું રાજ્ય પછી જ શરૂ થયું હતું. ચન્દ્રગુપ્તે ઇ. સ. પૂર્વે ૩૨૩ અને ૨૯૯ ની વચ્ચે રાજ્ય કર્યું હશે. અને આમ થયું જ મને તો વધારે સંગતિત લાગે છે. એનું કારણ એ છે કે જસ્ટિન ૧૫, ૩ માંથી જો કોઈપણ અનુમાન નીકળી શકતું હોય તો તે એ છે કે ચન્દ્રગુપ્ત, પાશ્ચિમાત્ય પ્રાન્તો ૮૬ જીલ્લાની પહેલાં જ કેટલાક વર્ષે મગધનો રાજા થયો હતો. જો કે તેણે તે સમય પહેલાં ૮૭ અલેક્ઝાન્ડરને સરેસરી રીતે જોયો હોય તો પણ આ અનુમાનને ઘાંઘો આવતો નથી. મેગાસ્થિનીસે સ્વાત્રી-પૂર્વક ઇ. સ. પૂર્વે ૩૦૩-૩૦૨ માં, પાટલીપુત્રના ૮૮ રાજદરવારમાં આવેલો હતો તેથી, અને

84. આ કથન ઉપરથી વિન્દુસારના સમયની ગણતરી કરી શકાય; તેણે આશરે ૨૯ વર્ષે રાજ્ય કર્યું હતું એમ માન્ય છે.

85. એ વાત તો ગરેસર આધર્ય પનાહે છે કે એક કરતાં વધારે લેખકોનું કહેવું છે કે Taprobane ના નિવાસીઓ પળા લાંબા આયુષ્યવાળા હતા. સરસાબા, ઉદાહરણ તરીકે પ્લાઈની (Pliny) ૬, ૨૨ (૨૫)

86. મિ. વિન્સેન્ટ સ્મિથે પોતાના પ્રાચીન ઇતિહાસના ૫૦ ૧૧૫ ઉપર દર્શાવેલો આશિપ્રાય જો કે આથી વિરુદ્ધ છે, છતાં હું તેને સ્વીકારી શકતો નથી.

87. પ્લુટાર્ક, Alex. ch. 72

88. Smith, l. c. p. 118.

ત્યાં કેટલાંક વર્ષ રહેલો હોવાથી, ચંદ્રગુપ્તના મરણની પ્રાચીનમાં પ્રાચીન મિતિ, મેગેસ્થિનીએ તેના જીવતા હોવાનું ચોક્કસ કથન કરેલું હોવાથી, તે માત્ર ૬. સ. પૂર્વે ૨૯૯ વર્ષે જ થઈ શકે.

ત્યારે હવે, ૬. સ. પૂર્વે ૪૭૭ અને ૩૨૩ માં વર્ષની વચ્ચેનું ૧૬૪ વર્ષોનું અંતર આપણે અજાતશત્રુ અને તેના વંશના રાજાઓ, તથા નંદરાજાઓના રાજ્યકાલથી મરી શકીશું. અજાતશત્રુ બુદ્ધ પછી ૨૪ વર્ષે રાજા થયો હતો એમ કહેવાય છે. અને તે ઉપરથી તેની અવસાનમિતિ તરીકે લગભગ ૬. પૂર્વે ૪૫૩ 89 આપણે પ્રાયઃ નક્કી કરીએ. ઉદય અથવા ઉદાયિ જેને હું શૈશુનાગ વંશનો છેલ્લો રાજા માનું છું તેણે પુરાણમાં આપેલી હકીકત અનુસાર ૩૩ વર્ષ, અને સિલોનના ઇતિહાસ અનુસાર માત્ર ૧૬ વર્ષ રાજ્ય કર્યું હતું. પરંતુ આ સ્થલે આપણે જૈનોનું પણ કથન છે તે ધ્યાનમાં લેવું જોઈએ. આ વાયત હું આગલ ઉપર ચર્ચાશ, પરંતુ તે કથન, એકંદર પૌરાણિક કથનને પુષ્ટિ આપતું હોય તેમ લાગે છે. દીર્ઘનિકાય ઉપરથી પટલું તો સ્પષ્ટ જણાય છે કે અજાતશત્રુએ જ્યારે બુદ્ધની મુલાકાત લીધી ત્યારે ઉદાયિ તે અગાઉ જન્મેલો હતો. તથા તે વચ્ચે તે ઝંઝર લાયક થયો હતો, એમ મનાવું હતું. આમ છતાં તેણે ૩૦ વર્ષ રાજ્ય કર્યું પણ હોય. આ ગણતરી આપણને સ્થૂલ રૂપે ૬. સ. પૂર્વે ૪૨૫ અગર ૪૨૦ અર્થાત્ ચંદ્રગુપ્ત પૂર્વે ૬૦ વર્ષ જેટલા અર્વાચીન કાલમાં લાવી મૂકે છે. અને આ સમય મુખ્યત્વે કરીને નંદરાજાઓનો હોય, જેમણે હેમચંદ્રના કહેવા મુજબ ૯૫ વર્ષ, તેમજ જે રીતે મેં ઉપર પુરાણમાંથી તારવી કાઢ્યાં છે તે મુજબ આસરે ૮૫ વર્ષ, રાજ્ય કર્યું હતું. શૈશુનાગ નામ શાસન સન્દેહજનક લાગે છે. કારણ કે શિશુનાગ તો તે વંશનો સ્થાપક હતો, જેમાં વિચિત્રાર આદિ રાજા થયા હતા. જો કાલાતોક શરેશ્વર થઈ ગયો હોય તેમ આપણે માનીએ તો તે નન્દ જ હશે. આ પ્રમાણે શૈશુનાગ વંશનો ૬. સ. પૂર્વે ૪૨૦ ના અરસામાં અંત આવી ગયો હશે. અને આમ માનવાથી હેમચંદ્રના નંદરાજાના અભિપ્રેક સંબંધી કથન સાથે તેનો વિરોધ પણ આવતો નથી. તેથી આ મિતિને પાંચેની મિતિ તરીકે સ્વીકારી શકાય અને હું ૬. સ. પૂર્વે ૪૭૭ વર્ષને બુદ્ધનિર્વાણની અતિશય સંમતિ મિતિ તરીકે સ્વીકારવામાં કોઈ પણ વાંધો હોય તેમ જોતો નથી. 90 હવે જો બુદ્ધનિર્વાણની અન્ય સૌ-

89. આ ૨૪ વર્ષને પુરાણમાં અજાતશત્રુના રાજ્યકાલનાં જણાવેલાં ૨૫ વર્ષ સાથે અદ્ભુત મળતાપણું છે. આનો ભાવાર્થ શું એ હોય કે ગણનાનો ઉપયોગ બુદ્ધનિર્વાણથી થયો હતો; કારણ કે ય્યારે પૌરાણિક રાજવાદી ઉત્પત્ત થઈ ત્યારે આ બુદ્ધનિર્વાણ મોહુદ હતું. આ ઉપરાંત બીજું પણ એક મળતા પણું અશોકના સંબંધમાં મળે છે. કારણ કે પુરાણમાં અશોકના ૩૬ વર્ષો, બૌદ્ધોએ અશોકના અધિકેક વાદનાં વતાવેલાં ૩૭ વર્ષ સાથે મળતાં આવે છે.

90. મિ. વિન્સન્ટ. એ. સ્મિથે, પ્રાચીન ઇતિહાસ, પૃ. ૪૨ f, માં બુદ્ધનિર્વાણને ૬. સ. પૂર્વે ૪૮૭-૮૬ માં નક્કી કરવા રજુ કરેલાં કારણોના વિષયમાં કહેવું જોઈએ કે તે બીલકુલ વિશ્વસનીય જણાતાં નથી. વર્ષગણ્ય અને વિશ્વવાસ, એ બંને વસ્તુવસ્તુના સમકાલીન હતા અને બીની મંચોમાં એમ જણાવેલું છે કે 'તેણે નિર્વાણ પછી ૧૦૦ વર્ષે થયા હતા' પરંતુ એમ્. એન. પેરિયે B. E. F. E. O. XI. 339 ff પુરાતાં પ્રમાણે આપી વતાવ્યું છે કે બીની પ્રંથકારે નિર્વાણસમય ૬. સ. પૂર્વે છઠ્ઠી સદીમાં મૂકે છે, અને બીજું એ કે વસુવન્ધુ ૬. સ. ૩૫૦ ના પહેલાં થઈ ગયો હતો. કેન્ડનની " ટપ્પનિકા " (Dotted record) એ ૬. સ. ૪૮૯ માં સમાપ્ત થઈ હતી તે બુદ્ધનિર્વાણનો સમય ૬. સ. પૂર્વે ૪૮૬ માં વતાવે છે અને તે ટિપ્પનિકા ઉપલબ્ધ જોતાં, ઉપયોગી હોય તેમ માંસે છે. પરંતુ ય્યારે આપણે વધારે વિચાર કરીએ છીએ ત્યારે ભિન્ન ભિન્ન શાખાઓનાં વૌદોનું આ સમયના વિષયમાં ભિન્ન ભિન્ન મન્તવ્ય જોવાય છે અને કોઈપણ બૌદ્ધશાખા નિર્વાણના આ સમય અર્થાત્ ૬. સ. પૂર્વે ૪૮૬ થી ગણતરી કરતી નથી. ત્યારે કેવલ આ એક જ નોંધમાં આપેલી તારીખ જ ચર્ચા છે એમ માની લેવું બહુ અજબ લાગે છે. ઉદાહરણ તરીકે પદમાર્પ-

મિતિ કરતાં, વિશ્વસનીય મિતિતરીકે ઇ.સ.પૂર્વે ૪૭૭ મું વર્ષે જો સ્વાકારી શકાય તો તદ્દનુસાર બુદ્ધનો જન્મ, અવસાનસમયે તેમનું વય ૮૦ વર્ષનું હતું, તેથી ઇ.સ.પૂર્વે ૫૫૭ માં થયો હશે. અને આ વિષયની સઘટ્ટી દલીલોતોનું આપણું એકજ મૂલ્ય જે પાલીગ્રંથો છે તે એમ જણાવે છે કે તેમણે ૨૯ વર્ષની ઝંમેરે સંન્યાસ ગ્રહણ કર્યો હતો તથા ૩૬ માં વર્ષે બુદ્ધત્વ મેળવ્યું હતું. તે ઉપરથી આ છેલ્લી વાંના જરૂર ઇ. સ. પૂર્વે ૫૨૦ માં વતી હશે. આ ગણતરી-જે લગભગ સાચી જ છે-તે અનુસાર પટ્ટણું તો સુગમ્ય છે કે જો મહાવીરનું દેહાવસાન, જે એક પરંપરાનુસાર કદેધાય છે કે ઇ. સ. પૂર્વે ૫૨૭ માં થયું હતું, એ જો ચરું હોય તો તે પ્રમાણે તેઓ અને તેમનો મહાન પ્રતિસ્પર્ધી બુદ્ધ વચ્ચે કોઈ પણ વચતે પરસ્પર મઠ્ઠી શક્યા હોય તેમ માની શકાય જ નહિ, અને તે પ્રમાણે પાલિગ્રંથોમાં નાતપુત્ર અને તેમના અનુયાયીઓના સંબંધમાં કરેલા સઘટ્ટા ઉલ્લેખો કલ્પનાજન્ય અને દ્વાગ્રિમરીતે ચનાવી લીધેલી યોજના રૂપે જ ટરે. પરંતુ આમ માનવું તે તો કોઈ પણ દષ્ટિએ સંગત હોઈ નહિ શકે.

આ રીતે આપણે જોઈ શક્યા છીએ કે બુદ્ધનિર્વાણની તારીખ જો ઇ. સ. પૂર્વે ૪૭૭ વર્ષની હોય-અને આમ હોવામાં કોઈ શંકા નથી-તો મહાવીર નિર્વાણની ઇ. સ. ૫૨૭ ની તારીખ યથાર્થ હોય એ શક્ય જ નથી. આ મહાવીર નિર્વાણની ઉપરોક્ત તારીખ જે એવી ગણતરી ઉપર અસ્તિત્વમાં આવેલી કે તેઓ વિક્રમ પૂર્વે ૪૭૦ વર્ષે નિર્વાણ પામ્યા હતા, તેનો પાયો મજબૂત નથી, તેટલા માટે આપણે નિઃસંદેહે રીતે આ મિતિનો અસ્વીકાર જ કરવો જોઈએ. અને તેને વધારે ફાલગણનાત્મક વધી ગણતરીઓની સાથે વંધેવેસ તેવી ધોંઝી મિતિ શોધી કાઢવા પ્રયત્ન કરવો જોઈએ. આ પ્રકારની મિતિ ડૉ. જેકોબીએ ૭૧ ઘણા વર્ષ પૂર્વે સૂચવી દીધેલી હોવાથી મારું કર્તવ્ય માત્ર તેમની દલીલોનું મહત્ત્વ ચતાવવાનું તથા તેને કેટલાક નવા હેતુઓ દ્વારા મજબૂત કરવાનું છે, એમ હું માનું છું.

૩. હેમચન્દ્રની જૈન પરંપરા અને મહાવીરનો સત્ય સમય.

જૈન ગ્રંથકારોમાં સૌથી મહાન મનાતા હેમચન્દ્રે (ઇ. સ. ૧૦૮૮-૧૧૭૦) પોતાના સ્થવિરાવલી ચરિત—જે સાધારણ રીતે પરિશિષ્ટપર્વને નામ ઓઝણાય છે-તેમાં વિવિસારથી માંડીને અશોકના પૌત્ર અને તેના ઉત્તરાધિકારી સમ્પ્રતિના વચ્ચેના કાળનો એક પ્રકારનો ઇતિહાસ આપેલો છે. આ ગ્રંથ જે ઘણે સ્થળે માત્ર એક મનઃકલ્પિત અને પૌરાણિક પૈતિહાસિક ગોંધ જેવો જણાય છે તે તેમણે પોતાના ધર્મપ્રવર્તકોના પુરાણ-વર્ણનના એક પરિશિષ્ટ રૂપે લખેલો છે. પરંતુ મારી સાતરી થઈ છે કે આ ગોંધ જો કે કેટલેક સ્થળે ગુંચવાડા ભરેલી તથા પૌરાણિક લાગે છે, છતાં પણ તેમાં અહીં તહીં કેટલીક સાચી અને પૈતિહાસિક વાચતો સૂચિત થયેલી છે. અને આ પૈતિહાસિક વાચતો મહાવીરનો સમય નિર્ણય કરવામાં ઉપયોગી થાય તેમ છે.

જેનો સમય ૪૯૯-૫૬૯ છે તે એમ જણાવે છે કે તેની એક કૃતિ બુદ્ધ પછી ૩૬૫ માં વર્ષે સમાપ્ત થઈ હતી. (પેરિ. l. c. p. 361). હવે જે પરંપરા જણાવે છે કે અશોક બુદ્ધનિર્વાણ પછી ૨૨૦ વર્ષે થયો હતો તથા તે શી-હાંગ-તિ (ઇ. સ. પૂર્વે ૨૪૬-૨૧૦) નો સમકાલીન હતો તે પરંપરાનુસાર બુદ્ધનિર્વાણનો સમય ઇ. સ. પૂર્વે ૪૯૬ (૨૪૬+૨૫૦) માં મુકાય. મિ. વિ. ગોપાલ ટેયર, ઇ. ઇ. એન્ટી. ૩૭, ૩૪૧ માં જણાવેલાં કારણોના સંબંધમાં પટ્ટણું જણાવ્યું મરા ધરે કે તે સર્વ દલીલો સહસારામ આશામાં આવતા ૨૫૬ ની ગેરસમજૂતી ઉપર અવલંબિત હોવાથી તેમજ સિલોનના ઇતિહાસગ્રંથોમાં આપેલી મિતિઓને સર્વથા અવિવેકપૂર્ણે કબુલ રાखने, ડમી કરવામાં આવેલી હોવાથી, સાચી નથી.

૭૧. કલ્પસૂત્ર, પૃ. ૮ અને તે પછીનાં.

ધ્રેણિક (વિવિસાર) અને તેનો પુત્ર કૃષ્ણિક (અજાતશત્રુ) જૈનોમાં સુપ્રસિદ્ધ છે, પરંતુ તેમના રાજ્યકાલની મિતિઓ, મારી જાણ સુજય, કોઈ પણ સ્થળે આપવામાં આવી નથી. હેમ-ચંદ્ર ૬, ૨૧ માં જણાવે છે કે કૃષ્ણિક ચંપામાં મરણ પામ્યો હતો અને તેની પછી ઉદાયિન રાજ્ય-ગાદી ઉપર આવ્યો હતો, અને તેણે રાજધાની તરીકે નહું નગર, પાટલીપુત્ર, વસાવ્યું હતું. આ રાજા હુસત જૈન હતો અને ઘણો સત્તાશાલી થઈ શક્યો હતો. પરંતુ તેના ઉપર એક શોકજનક વિપત્તી આવી પડી હતી. હકીકત એ છે કે તેણે કોઈએક રાજાને ગાદી ઉપરથી ઉઠાવી લીધો હતો, તેના પુત્રે યુક્તિથી જૈન સાધુનો વેશ પહેરી તેના મહેલમાં પ્રવેશ કર્યો અને તેને મારી નાંખ્યો. ઉદાયીની પાછલ વારસ ન હતો અને તેથી કરીને તેનાં પાંચ રાજચિન્હોને તેનો ઉચ્ચ-રાધિકારી શોધવા વહાર મોકલવામાં આવ્યાં. પસંદગી વિલક્ષણ થઈ; કારણ કે એક નાપિત અને ગણિકાનો પુત્ર જેનું નામ નંદ હતું તે આ રીતે પસંદ થયો (૬, ૨૩૧.) અને રાજ્યાસને તેનો અભિષેક થયો. આ વીના, પરિ ૬, ૨૪૩ ના નીચે આપેલા શ્લોકની અનુસાર, મહાવીર-નિર્વાણ પછી ૬૦ વર્ષે વની.

અનન્તરં વર્ધમાનસ્વામિનિર્વાણવાસરાત્ । ગતાયાં યાદૃષત્સર્પામ્ એપ નન્દોઽભવન્તુપઃ ॥

આ નંદના સંબંધમાં હેમચંદ્રે વિરોધધર્શક વિચાર વિલક્ષણ પ્રદર્શિત કર્યો નથી. અને તે ઉપરથી આપણે સાધારણ એમ માની શકીએ કે આ નંદ કેટલાક પ્રમાણમાં જૈનધર્મનો સંરક્ષક મનાતો હશે. આ ધારણાને ઉદયગિરિમાંથી મળેલા ચાર્વેહના શિલાલેખ રૂપ એક અતિશય મહત્ત્વવાળા લેખદ્વારા સાચું સમર્થન મળતું હોય તેમ જણાય છે. તે લેખમાં નંદરાજના સંબંધમાં બે ઉલ્લેખો થયેલા છે. એક આ નંદરાજ તે સામાન્ય રીતે નંદવંશનો જ હશે. આ લેખનો પ્રથમ ભાગ જો કે સર્વથા અસ્પષ્ટ છે અને યોગ્ય ફકરો કટિત થયેલો છે પરંતુ તેની પછીનો ભાગ સ્પષ્ટ જણાવે છે કે ચાર્વેહે 'મગધના રાજાને અપ્રજિન (પ્રથમ તીર્થંકર) ના પગે પડાવ્યો અને નંદરાજ લઈ ગયો હતો (?) [પાદે વ (મ) દાપયતિ નંદરાજનિતસ અગ્નિનસ]; આ 'અપ્રજિન' શબ્દ તે મહાવીર તથા ક્રપ્તમ વન્નેને લાગુ પડી શકે-અને અહીંયાં ગમે તેને લાગુ પડતું હોય-પરંતુ આટલું તો સ્પષ્ટ જ છે કે કાલિંગ ઉપર સ્વારી કરી તે ઘસતે નંદરાજા જિનની ૭૨ પ્રતિમાને લઈ ગયો હશે. અને જો તે જિનમાં શ્રદ્ધાવાળો ન હોય તો તે શા માટે આવી વસ્તુ લઈ જવાની પસંદગી કરે? આ ઉપરાંત નંદનો પૂર્વાધિકારી-પૂર્વજ ઉદાયી તે એક શ્રદ્ધાલુ જૈન હતો અને અજાતશત્રુ પણ થોડેક અંશ તેવો જ હતો. ૭૩ આ ઉપરથી આ વધા રાજાએને વૌઢો 'પિલ્લુઘાતક વંશ' યસું જે નામ આપે છે તેમાં કોઈ નવાઈ જેવું જણાતું નથી; જો કે આ નામ અન્ય સ્થળે વસ્તુતઃ માત્ર અજાતશત્રુને જ ઘટતું હોય એમ માનવામાં આવ્યું છે.

આ પ્રમાણે મહાવીરનિર્વાણ અને નંદના રાજ્યાધિરોહણ વચ્ચે ૬૦ વર્ષોનું અંતર પડે છે. આ કાલાંતરમાં સ્પષ્ટ રીતે કૃષ્ણિકના રાજ્યસમયનો કેટલોક ભાગ તથા ઉદાયિનની સંપૂર્ણ કારકીર્દીના સમયનો સમાવેશ થયેલો છે. અને મેં ઉપર સિદ્ધ કર્યું છે કે ઉદાયી પ્રાયઃ તેના વંશનો છેલ્લો જ રાજા હતો. હવે બુદ્ધ, ઇ. સ. પૂર્વે ૪૭૭ માં નિર્વાણ પામ્યા હોય, તો તે હિસાબે અજાતશત્રુ ઇ. સ. પૂ. ૪૮૫ માં રાજા થયો હશે. અર્થાત્ નિર્વાણ પહેલાં આઠ વર્ષે. આ રાજાનું પહેલું સાહસ તેણે કોસલના વૃદ્ધ રાજા સાથે યુદ્ધ આરંભ્યું તે હતું. આ કોસલનો રાજા તે

૭૨. આ હકીકતને મળતી એવી એક વાત, પ્રો. જેકોબીના 'આડમ્સવાલ્ડ ઇસ્ટેલેંગન, પાન ૩૧ અને તે પછીનામાં, પ્રચોત અને ઉદયનના સંબંધમાં લેખેલી મઠી આવે છે.

૭૩. જુઓ જેકોબીનું કલ્પસૂત્ર, પૃ. ૫.

તેની ઓરમાન માતાનો ખર્ચ હતો. ભગવતીસુદ્રના ૧૫ મા ૭૪ સયમાં એમ જણાવેલું છે કે પાંચ-ઢાઢાર્ય ગોશાલ, જે મહાવીરનો કષ્ટો પ્રતિસ્પર્ધી હતો તે, આ લઢાઈના ૭૫ અંતે તરતજ શ્રાવ-સ્તીમાં મરણ પામ્યો હતો. અને તેના મરણ પછી ૧૬ વર્ષ મહાવીર જીવતા રહ્યા. આ મિતિ ગોશાલના સંયંધમાં આપવામાં આવેલી અન્ય મિતિઓ સાથે મલતી આવે છે તે આપણે નાંચેની હકીકત ઉપરથી જોઈ શકીશું. મહાવીર પહેલાં વે વર્ષે ડ્યારે ગોશાલે જિનાવ પ્રાત કર્યોનો વાવો કરેલો હતો ત્યારે મહાવીરની ડંમર ૪૦ વર્ષની હતી અને ત્યારપછી ૧૬ વર્ષ સુધી તેઓ વચ્ચે મલ્યા જ ન હોતા. ત્યારપછી તેઓ માત્ર, ગોશાલના મરણના વર્ષમાં પટલે છેલ્લી વચ્ચે મલ્યા હતા. આ ઉપરથી ગોશાલે કાલ કર્યો તે વચ્ચે મહાવીરની ડંમર ૫૬ વર્ષની હશે મહાવીરની કુલ ડંમર ૭૨ વર્ષની હતી પટલે તે ઉપરથી તેઓ ગોશાલ પછી ૧૬ વર્ષ જીવતા રહ્યા હતા તે પળ સાવિત થાય છે જ. ૭૬ આ ૧૬ વર્ષની ગળતરી કરતાં આપણે ઇ.સ. પૂર્વે ૪૭૦ થી સહેજ પાછલ પટલે આશરે ૪૬૮-૬૭ માં ઉતરી આવી પછી, આ તારીખ હેમચંદ્રના કથન-આધારે મહાવીરના નિર્વાળ તરીકે સૂચવેલી તારીખ સાથે તહન મલ્લી જાય છે. જો કે કૃષિક-અજાત-શત્રુના રાજ્યસમય દરમ્યાન મહાવીર સ્વામીનું નિર્વાળ થયું હતું એવું ચોક્કસ કથન, મારા જાણવા પ્રમાણે, મલતું નથી એ વાત ચરી; પરંતુ, તેવી રીતે, તેમનો અને ઉદાયીનો મેલાપ થયો હતો, એવું વતાવનાર પણ કોઈ કથન જણાતું નથી. અને હું ધારું છું કે, આપણે વલકે એવું જ અનુમાન કરવું જોઈએ કે વાંદ્યંત્ર્યોમાં અજાતશત્રુના રાજ્યકાલનાં જે ૩૦ વર્ષ વતાવ્યાં છે તે સાચાં છે. ઉદાયીનું રાજ્ય ૧૬ વર્ષ વાલ્યું હશે, અને કદાચ, અજાતશત્રુ અને તેની વચ્ચે જો વીજો કોઈ ન થયો હોય તો ૩૩ થી પણ વધારે વર્ષ તેણે રાજ્ય કર્યું હોય. ૭૭

નંદરાજાઓ કે જેમની સંખ્યા ૯ હતી, તેમના મંત્રીઓ ઘણા કુશલ હતા. એ મંત્રીઓ સઘલા, પ્રથમ નંદરાજાના મંત્રી કલ્પકના વંશજો જ હતા. છેલ્લા નંદરાજાના પ્રસિદ્ધ મંત્રીનું નામ સકટાલ હતું. આ સકટાલને પ્રસ્તુતવિષયમાં સ્થૂલમદ્રના પિતા તરીકે વર્ણવવામાં આવ્યો છે. અને સ્થૂલમદ્ર તે જૈન-ધર્મના સાતમા (અગરનવમા) યુગપ્રધાન આચાર્ય હતા અને તેઓ મહાવીર પછી ૨૧૫ (અથવા ૨૧૯) મા વર્ષમાં ગુજરી ગયા હતા. એ પુસ્તકમાં નંદ, સકટાલ, ઘરલધિ, ચંદ્રગુપ્તની યુવાવસ્થા તથા ષાળમ્ય સાથેનો તેનો સંવંધ—એ વિષયક જેટલી કથાઓ—વાર્તાઓ આપવામાં આવી છે તે સઘલી માત્ર પરીની વાર્તાઓ (Fairy tales) જેવી દેખાય છે. પરંતુ એ જોતાં આશ્ચર્ય ઉત્પન્ન થાય છે કે આ કથાઓ હેક આવદયક નિર્યુક્તિની ટીકામાં પણ આવેલી છે અને તે તેની પહેલાં લખાણલી હોય તેમ દેખાય છે. તેમ જ કેટલેક અંશે કથાસરિત્સાગરની વાર્તાઓને પણ મલતી આવે છે અને મહાવંશ ટીકાના ૧૧૯, ૮ ff; ૧૨૧,

૭૪. હોર્નલે આપેલી ડવા• પરિશિષ્ટ ૧, તથા હેલ્ડિમ્સની ડન્સા• પૃ• ૨૬૦ માર્ગે હકીકત સાથે સરસાવો.

૭૫. આ બનાવ લઢાઈ પછી વન્યા હતા તેની સાધીટી, ભગવતી, પૃ• ૧૨૫૪ અને તે પછીનામાંના ઉલ્લેખથી, સ્પષ્ટ મલ્લી આવે છે. ગોશાલના જે નિયાતિના ૮ સિદ્ધાંતો વતાવ્યા છે તેમાં એ લઢાઈનું સૂચન પણ થાય છે. મરલાવો હોર્નલ, l. c. પા. ૨૬૩

૭૬. સરસાવો: હોર્નલ, ડવા• પરિ• ૨, પા. ૧૧૦

૭૭. જો આપણે મહાવીરના મૃત્યુ માંડે ઇ. ય. પૂર્વે ૪૬૭ મું વર્ષ સ્વીકારી લઈએ તો, પછી અજાતશત્રુ, જો તે શુદ્ધ પછી ૨૪ વર્ષ જીવતા રહ્યો હોય, તો તેમના પછી ૧૪ વર્ષે મરણ પામ્યો હોવો જોઈએ. મહાવીરના નિર્વાળ અને નન્દના રાજ્યારોહણ વચ્ચે, હેમચંદ્રના કથનાનુસાર જો ૬૦ વર્ષનો અંતર હોય તો તે મુજબ ઉદાયીએ ૪૬ વર્ષ પર્યંત રાજ્ય કરવું જોઈએ, પણ આ સમય વહુ વધારે પડતો દેખાય. કારણ કે તેના ગાદીએ આવ્યા પહેલાં ૩૦ વર્ષ ઉપર ડ્યારે કૃષિકે શુદ્ધની મુલાલાત લીધી હતી ત્યારે તેની જન્મ થયેલો હતા, એવો ઉલ્લેખ મલ્લી આવે છે. (દા.નિ. ૧-૫૦)

૨૨ ii; 95 ભાગો સાથે તેો તેનાથી પણ વધારે મળતી આવતી હોય તેમ જણાય છે. પરંતુ આપ-
ળને આ સ્થળે આ યાચત ફાઈ મહત્વની નથી. તેનાથી જે ફાઈ સિદ્ધ થાય છે તે માત્ર એટલું જ
છે કે 'આપણા સનની પછી કેટલીક સદીઓ સુધી નંદો અને મૌર્યરાજાઓના કાલના સંબંધમાં
કેટલીક કથાઓ હિંદુસ્તાનમાં પ્રચલિત હતી.' (જેકોબી, પરિશિષ્ટ પર્વ. પૃ. ૫૦ ટિ. ૨).
આ યથું છતાં આ પ્રથમાં જો 'કોઈ મહત્વનો શ્લોક હોય તો તે ૮, ૩૨૯ 'માં આવેલો નવિનો
શ્લોક છે:—

एवं च श्रीमहावीरमुक्ते वर्षशते गते । पञ्चपञ्चाशदधिके चन्द्रगुप्तोऽभवन्नृपः ॥

આ શ્લોકના મહત્વ ઉપર માર મુક્તાં, જેકોવિયે કેટલાંક વર્ષો આગમ ન જણાવી દીધું
છે કે આ શ્લોક, મહાવીરના નિર્વાણ સંબંધી એક નવી અને વધારે સંગત પરંપરાનો સૂચક છે.
99 'ચંદ્રગુપ્તોઽભવન્નૃપઃ' અને ૬, ૨૪૩ ના અંતે આવેલો 'एष नन्दोऽभवन्नृपः' આ બંને
પદોની રચનાશૈલી એટલી વધી મળતી લાગે છે કે એથી માયે જ એમ કહી શકાય કે એ અળ-
ધોરેલી રીતે—શાકાસ્મિક રીતે—લખાઈ ગયા હોય. અને તેના ઉપરથી એવું અનુમાન નિકળતું
હોય તેમ લાગે છે કે હેમચંદ્રે આ શ્લોકો કોઈ વિશેષ પ્રાચીન ગ્રંથોમાંથી અક્ષરદ્વાર ઉદ્ઘૂત કર્યા
હશે અથવા તો કોઈ પ્રાચીન કાલગણનાત્મક પ્રાકૃત ગાથાઓનું ભાષાંતર કર્યું હશે. હેમચંદ્ર
ફક્ત એટલું જ જણાવે છે કે ચંદ્રગુપ્તનો પછી તેનો પુત્ર વિંદુસાર ગાદી ઉપર આવ્યો હતો (૮,
૪૪૫) અને વિંદુસાર પછી તેનો પુત્ર અશોકધી રાજા થયો હતો. (૯, ૧૪) અને અશોકધીએ
પોતાનું રાજ્ય પોતાના પૌત્ર સંપ્રતિને સોંપ્યું હતું. આ સંપ્રતિ તે કુળાલનો પુત્ર હતો (૯, ૩૫) અને એક
અદ્વાયંત જૈન હતો. હેમચંદ્રે આ સ્થળોમાં તેઓના સમયનું ચીલકુલ સૂચન કર્યું નથી; તેમ કાલ-
ગણના સાથે પણ તેઓનું અનુસંધાન થતાવ્યું નથી. તે ઉપરથી જેકોબીના માનવા પ્રમાણે આપણે
એમ ધારી શકીએ કે તેમણે વિક્રમસંવત્ અને ચંદ્રગુપ્તના રાજ્યાધિરોહણના કાલ વચ્ચેનું અંતર
૨૫૫ વર્ષનું થતાવતી પરંપરાને સત્યરૂપે સ્વીકારી હશે. આ ગણતરી અનુસાર મહાવીરનિર્વાણ
અને વિક્રમના રાજ્યાધિરોહણની વચ્ચેનો કાલ ૨૫૫ + ૧૫૫ = ૪૧૦ વરાવર થાય. અને એ ઉપ-
રથી એ પણ અનુમાન ફલિત થાય કે મહાવીર ૬. સ. પૂર્વે ૪૬૭ મા વર્ષમાં નિર્વાણ પામ્યા હતા.
મારા માનવા પ્રમાણે આ જ તારીખથી નિર્વાણ સંબંધી યોગી પળ વધી ઘાયતોનો નિકાલ આવી
શકે છે, અને તેટલા માટે તે જ સ્તરી છે એમ માનવું જોઈએ.

98. સરલાઓ; ટર્નર, મહાવંશ ૧ પૃ. ૩૧ ની ફુટનોટ; તેમ જ ગાયમર, દીપ. મહા. ૫૦. ૪૨ ક. આ
ગ્રંથ અને પરિશિષ્ટ પર્વ વચ્ચે નાનામાં નાની વિગતોની પણ સમાનતા છે. મહાવંશની ટીકા પાછલથી ચણી જણાય છે
(ગાયમર, તેજ પૃ. કુ. ૩૭) પણ તેમાંની સામગ્રી જૂની છે.

99. કલ્પસૂત્ર, પૃ. ૮. ની ફુટ નોટ.

100. દિવ્યા. પૃ. ૪૩૦ માં અશોક પછી સંપ્રતિને જે ઉલ્લેખ ચણે છે તે આથી વધારે મહત્વનો બને છે.
નાગાર્જુની ગુપ્તાના લેખોથી સાબીત થયું છે કે મગધમાં અશોક પછી દ્વારથ ગાદિએ આવ્યો હોતો કે જેના વિષે જૈનો
કર્યું કહેતા નથી. આ ઉપરથી, મિ. વિન્સેન્ટ. એ. સ્મીથે પોતાની અર્લી હિસ્ટરી ઓફ ઇન્ડિયામાં જે એમ સૂચન કર્યું છે
કે—અશોકના મરણ પછી તેના સામ્રાજ્યના પૂર્વ અને પશ્ચિમ એમ બે વિભાગો થઈ ગયા હતા, તે મને સરૂ લાગે છે.
સંપ્રતિના પિતા કુળાલનો ઉજ્જયની અને તક્ષશિલા સાથેનો સતત સંબંધ એ જ યાચત સૂચવે છે, અને જૈનો જે મૌર્યોનો
રાજ્યકાલ ૧૦૮ વર્ષનો ગણે છે તેનો પણ કદાચ આ હકીકતથી નિકાલ આવી શકે. કારણ કે ૬. સ. પૂર્વે ૧૮૫ માં
મગધમાંથી જ્યારે પુષ્યમિત્રે એ વંશનો ઉત્થેદ કર્યો તેની પહેલાં જ પશ્ચિમમાં એ વંશનું રાજ્ય વન્ધ થઈ ગયું હશે. તેમ
છતાં, એ ઘાત નોંધવા જોઈ કે મેરુતુંગે આપેલી કાલગણનાત્મક ગાથાઓમાં પુસમિત્ર (પુષ્યમિત્ર) ની રાજ્યતા
૩૦ વર્ષોની નોંધ લેવાઈ છે. અને આ સમય ૬. સ. પૂર્વે ૨૦૪-૧૭૪ ના ગાઠ સાથે બંધ થતો આવે છે. હું,
મહાભાષ્ય અને મિનેન્ડરના સમયથી જે કાલગણના નક્કી થાય છે તેનાથી વિરુદ્ધ આ ઉલ્લેખને ઘટાવી શકતો નથી.

मेरुतुंगे नौधेली परंपराानुसार चन्द्रगुप्तना राज्याधिरोहणतुं वर्ष इ.स. पूर्वे ३१२ सुं आवे छे. आ मिति घणी ज गुंचचाडो उत्पन्न करनारी छे. मौर्यसंवत् इ.स. पूर्वे ३१२ मा वर्षे शरु थयो हतो ए वायत, सेल्युसिडनना संवत्नी साथे ते संवत् अभिन्न छे एम वतघवा खातर माननुं मने उचित लागतुं नथी. जो के आपणे सारी पेठे जाणीए छीए के चंद्रगुप्ते सेल्युकसने हिंदुस्तानमाथी देशघटो आप्यो हतो तेम ज तेनी पासेथी तेनी सत्ता हठेलना वेष्ट्रीआना मुल-कनो एक भाग खुंचावी लीघो हतो; परंतु ए घात समजमां नथी आवती के चंद्रगुप्ते, तेना पराजित शत्रुना नाम उपरथी, पोताना संवत्तो आरंभ कर्यो होय. आ उपरांत एम पण मनाय छे के चंद्रगुप्ते नवो युग स्थाप्यो न होतो. (सरखावो, उपर पृ. ११५.) परंतु चंद्रगुप्त वीर पछी १५५ वर्षे राज्याभिषिक्त थयो हतो एम कहेवातुं होवार्थी एम लागे छे के आ संवत्तो आरंभ पण कोई एक घणीज महत्त्वनी जैन वायत साथे संबंध धरावतो हशे. अने हुं धारंगे हुं ते प्रमाणे छे पण तेम ज.

चंद्रगुप्तनो समय जैनधर्ममाटे खेरखर एक अतिशय पीडा अने दुःखनो समय हतो. आ समयमां जैनधर्म राज्याध्ययी वंचित थयो हतो. जो के जैनो चंद्रगुप्तने जैनधर्मानुयायी तरीके अने पाछली वयमां तो खास तेने एक जैन साधु तरीके पण वतावे छे; परंतु, चाणक्यनी राजनीति आवा पाखंडी मतेनी ^१ अनुकूल नही पण प्रकट प्रतिकूल हती. अने घास्त-विक रीते जीतां जैनोनी पूर्वहिंदुस्थान साथेनी संबंध जे अशोक पछी सर्वथा नुटी गयो हतो (आमां सारखेलतुं राज्य अपघाद रूप छे परंतु तेनो समय हजी सुधी अनिश्चित छे.) ते स्यार-पेहलां पण फेटलेक अंशे शिथिल थयो होय एम लागे छे. परंतु आ उपरांत चंद्रगुप्तना राज्य-कालमां १२ वर्षनो एक दारुण दुष्काळ पडयो हतो, के जे दुष्काळ जैनधर्ममां भेद उभो करवा-मां निमित्त बन्यो हतो एम जणववामां आवे छे. ए ज समयमां श्वेतावर अने दिगंबर नामना वे संप्रदाओनी शरुआत थीर हती. जे कालमां चंद्रगुप्त राजा थयो हतो ते वखते—जैन इति-हासमां घणा ज थोडा कालांशोमां जोधामां आवे छे तेम—एक ज समये जैनधर्म संभूतिविजय अने भद्रबाहु नामना वे युगप्रधानोनी सत्ता हेठल प्रवर्ततो हतो. परंतु संभूतिविजय, चंद्रगुप्त जे वर्षमां राज्याभिषिक्त थयो तेनी पछीना ज वर्षमां एटले वीर पछी १५६ मा वर्षमां काल कर्यो. आ वर्ष ते कदाच हेमचंद्र, परीशिष्ट पर्व, ८, ३३९ मां जे कहे छे के १५५ सुं वर्ष पूर्ण थयुं हतुं (गत), ते ज वर्ष छे; अने ते उपरथी मारी एवी मान्यता छे के आ वनायने अनुकूल आववा माटे ज हेमचंद्र चंद्रगुप्तना राज्यनी शरुआत, इ.स. पूर्वे ३१२ (अथवा ३११) नी बराबर मळता एवा ते ज वर्षमां, स्यार पेहेलांन दशमा अगर अर्गावारमा वर्षे न मूकतां, मूकी छे. संभूतिविजयनो मरणकाल जैन इतिहासना एक कालभागनो अंतसूचक छे. ए वायत खरी छे के तेमना पछी १५ वर्षे गुजरी गया हता ते भद्रबाहु, तथा तेमना उत्तराधिकारी स्थूलभद्र ए

१. सरखावो:—इ. थॉमस. गुप्तवंशनी नौथे (Records of the Gupta dynasty) प १७; जेकोथी, कल्पसूत्र, पा० ८; वि. ए. स्पीथ, हिंदुस्थाननो प्राचीन इतिहास पा० ३३ टी०; ४० टी०, १८७ टी०; फ्लॉट, ज० रॉ० ए० सो० १९१०, पा० ८२५ टी० २.

अर्थशास्त्र, ज्यां सुधा ते अन्यकृत सिद्ध थाय नही त्वां शुधी, हुं ते चाणक्यकृत ज मानुं छुं. ए अर्थशास्त्रमा संप्रदायिक अथवा जैन असरनो जरए उल्लेख जणतो नथी. सिंवाय के, पृ० ५५वींमेरे उपरनो उल्लेख के जेमां बीजा बीजा देशोनो साथे कदाचित् जैन सम्मत अपराजित, जयन्त अने वेजयन्तनो पण निर्देश छे. पण मारा मतें एमां कोई विवेकता नथी. पृ० ११९ इत्यादि उपरनो तीर्थंकरनो उल्लेख जैनधर्म प्रवर्तकने सूचवे; पण आपणे याद राखनुं जाईए के पाली पिटकमां 'अन्य तीर्थिक' ए शब्द अनेक संप्रदायना भिक्षुओ माटे वापराएलो छे.

વંને ચતુર્દશપૂર્વધારી હતા; જો કે સ્થૂલભદ્રને છેલ્લા ચાર પૂર્વો યીજાને શીઘ્રવવા મનાઈ થઈ હતી. દિગંબરો ભદ્રવાહુને છેલ્લા શ્રુતકેવલી માને છે ત્યારે શ્વેતાંબરો સ્થૂલભદ્રને છેલ્લા શ્રુતકેવલી માને છે^૨ આ ઉપરથી એમ જણાય છે કે સંમૃતિવિજય કરતાં ભદ્રવાહુ વધારે મહત્ત્વના યોગ્યતા હશે અને તેમ હતું પણ સર. પરંતુ ભદ્રવાહુ જો કે આજે જૈનધર્મના યુગપ્રધાન હતા છતાં પણ કેટલેક અંશે સાંપ્રદાયિક હતા. આમ માનવાનું કારણ એ છે કે જ્યારે તે પોતે દક્ષિણ તરફ જવા નીકળ્યા ત્યારે તેમણે પોતાના અનુયાયીઓની એક મંડળી મગધમાં છોડી દીધી હતી અને જે મંડળી તેમની સાથે દક્ષિણમાં ગઈ હતી તેણે પછી, જે મંડળી મગધમાં રહી હતી તેમનાં ચારિત્ર તથા સિદ્ધાન્તને પસંદ કર્યો નહિ. અને ત્યારપછી ભદ્રવાહુ નેપાલ તરફ ચાલ્યા ગયા અને સઘળા સિદ્ધાંતોને ૩ એકત્ર કરવા ઉચુક થઈ ગયા તેમણે મદદ કરવા ઘણી સુશીલ થતાથી. તે ઉપરથી લાગે છે કે તેઓ તે લોકોના આ કાર્યમાં સંમત નહિ હોય અથવા તે તેને પૂર્ણ રીતે પસંદ કર્યું નહિ હશે. અને તેથી આજે એ અનુમાન થાય છે કે મૂળ પ્રાચીન, અધિભક્ત અને મહાવીરના સમયથી નિર્વિકૃત સ્વરૂપે ચાલતા આજના જૈનધર્મના વાસ્તવમાં છેલ્લા યુગપ્રધાન સંમૃતિવિજય છે, પરંતુ તેમના ઘણા જ વધારે પ્રસિદ્ધ સાર્થા ભદ્રવાહુ, અવ્યવસ્થિતકાલની અસરને લઈને ફોર્ડે જુદીજ હાલતમાં મૂકાયા. તેટલા માટે માર્ક ધાર્મ્ય છે કે ચંદ્રગુપ્તને સંમૃતિવિજયના દેહાન્તકાલના વર્ષમાં મૂક્યો હશે, એમ કે મહાવીરનિર્વાણની રાત્રિમાં પાલકનો રાજ્યાભિષેક મૂકેલો છે.^૪

૬ સ. પૂર્વેના ૪૬૭ માં વર્ષને મહાવીર નિર્વાણ વર્ષ તરીકે માનવાના પક્ષમાં અન્યાય થાવતેનું વિવેચન પ્રો. જેકોબીએ પોતાની કલ્પસૂત્રની આગૂતિમાં કર્યું છે. હું ફક્ત એ જ સુરા ઉપર ચર્ચા કરવા માગું છું, કારણ કે એ મુદ્દાઓ આ પ્રશ્નના વિષયમાં ઘણી મહત્તા ધરાવે છે. હેમચંદ્રથી ૬માં ડોને અર્ચાચીન કાલની સઘળી જૈનપરંપરા ભદ્રવાહુના નિર્વાણસમય તરીકે વીર પછી ૧૭૦ મું વર્ષ જણાવે છે. આ વર્ષ પરંપરાગત નિર્વાણસમયને હિસાબે ૬ સ. પૂર્વે ૩૫૭ માં આવે પરંતુ પ્રો. જેકોબીની વ્યવસ્થિત કરેલી મિતિની અનુસાર ૬ સ. પૂર્વે ૨૯૭ માં મૂકાય. આ ધને મિતિઓમાંની યીજી જ મિતિ શક્ય જણાય છે, કારણ કે સઘળી જૈનપરંપરાઓ ભદ્રવાહુને ચંદ્રગુપ્ત સાથે નજીકમાં નજીક સંબંધ ધરાવનાર તરીકે સ્પષ્ટ જણાવે છે. અને આ રીતે ૬ સ. પૂર્વે ૩૫૭ ની મિતિ વહિષ્કૃત થાય છે.

કલ્પસૂત્રમાંના જિનચરિત્રનું ૧૪૮ મું સૂત્ર આપણને જણાવે છે કે તે ગ્રંથ મહાવીર પછી ૯૮૦ વર્ષ સમાપ્ત થયો હતો. પરંતુ સાથે સાથે એક યીજો પણ ઉલ્લેખ છે (વાચાન્તરે) જેમાં ૨૯૩ મું વર્ષ આપેલું છે. સઘળી ટીકાઓ જે પ્રાચીન ચૂર્ણિના^૬ આધારે રચાઈ છે તે સર્વે આ મિતિઓનો જુદા જુદા યીનાઓ સાથે સંબંધ વતાવે છે.^૭

(૧) દેવાર્ધિગણીના અધ્યક્ષપણાને થઈ ગઈ વલમીની સભા, જે ઘણે સિદ્ધાંતને પુસ્તકારૂઢ કરવામાં આવ્યું હતું તે પ્રસંગ.

૨. પણ, શ્વેતાંબરો પણ કેટલેક ઠેકાણે ભદ્રવાહુને છેલ્લા યુગપ્રધાન માને છે, એ વાચતનો પુરાવો મળે તેમ જણાય છે. સરસાઓ-જેકોબી, કલ્પસૂત્ર પૃ. ૧૧ Z. D. M. G. ૩૮, ૧૪.

૩. આ વિષયની વધારે વિગતો માટે જુઓ પ્રો. જેકોબીનો 'શ્વેતાંબર અને દિગંબર સંપ્રદાયોની ઉત્પત્તિ' વારો લેખ, Z. D. M. G. ૩૮, ૧.

૪. સરસાઓ:-ઉપર પૃષ્ઠ ૫. પરિશિષ્ટપર્વ, ૧, ૧૧૨ ૬. જેકોબી, કલ્પસૂત્ર પૃ. ૫.

૭. જેકોબી, સેક્ટર યુક્ત ઓફ ધી ઇસ્ટ. ૨૨, પૃ. ૨૭૦.

(૨) સ્કંદિલાચાર્યના અધ્યક્ષપણા હેઠળ મથુરામાં મળેલી સભા. જેમાં પ્રાયઃ સર્વ સિદ્ધાંતોમાં સુધારા વધારા કરવામાં આવ્યા હતા.

(૩) આનંદપુરના રાજા ધ્રુવસેન આગળ તેના પુત્રના મરણનો શોક નિવારણ કરવા અર્થે કલ્પસૂત્રનું જાહેર વાંચન; અને

(૪) કાલકાચાર્યે કરેલો પજ્જુસળના દિવસનો પેરફાર. ૮

મથુરામાં ભરેલી સભાના વિષયમાં જણાવ્યું જોઈએ કે તેનું, તેનાથી વધારે મહત્વની અને પ્રસિદ્ધિ વલભીની સભા સાથે ગુંચવણ થયેલું છે. વલભીની સભામાં સિદ્ધાન્તત્રન્થોને અત્યારના રૂપમાં સ્વરેશ્વર ઠરાવવામાં—નક્કી કરવામાં આવ્યા હતા. પરંતુ આ સભા સાચે જ થયેલી હતી કે નહીં, તે પ્રાચીનકાલની યાત્રા હોવાથી, અત્યારે વિચારણીય નથી^૧ પરંતુ વલભી સંબંધી વર્ણનો તેમ જ આનંદપુરના રાજા ધ્રુવસેન સમક્ષ કલ્પસૂત્રની થયેલી જાહેર વાચના; એ વે વાચતો ઘણા ઉપયોગની છે. દુર્ભાગ્યે આનંદપુરના સંબંધમાં કોઈ હકીકત મળતી નથી; ટીકા-ઓમાં તે મહાસ્થાન હોવાનું જણાવેલું છે પરંતુ આટલી માહિતીથી આપણને વિશેષ મદદ મળતી નથી. તેમ છતાં આપણે નીચેની વાચતો ધ્યાનમાં લેવી જોઈએ.

૧. ધ્રુવસેન એ નામ, ઘણું અજાણ્યું નથી. તે વલભીના એક વંશનું નામ છે. અને આપણે જાણીએ છીએ કે પહેલો ધ્રુવસેન ઇ. સ. ૫૨૬ માં રાજ્યગાદી ઉપર આવ્યો હતો.

૨. આ ધ્રુવસેનનું પુત્ર ન હતો કારણ કે ઇ. સ. ૫૪૦ માં તેની પછી તેનો ભાઈ ગૂહસેન^{૧૦} ગાદી ઉપર આવ્યો હતો; અને

૩. મહાવીરનિર્વાણની તારીખ તરીકે ઇ. સ. પૂર્વ ૪૬૭ માં વર્ષને સ્વીકારી, કલ્પસૂત્રની એક વાચના કે—જેના માટે કહેવું જોઈએ કે, તે સ્વરેશ્વર પ્રાચીન અને ઉપયોગી છે તે વાચનામાં આપેલા ૯૯૩ વર્ષની, ત્યારથી ગણતરી કરીએ છીએ તો એક આશ્ચર્યજનક સરસાપણું મેળવીએ છીએ. કારણ કે (૯૯૩-૪૬૭=૫૨૬) ૯૯૩ માંથી ૪૬૭ વર્ષ બાદ કરતાં જે ૫૨૬ મું વર્ષ આવે છે તે વરાવર વલભીની ગાદી ઉપર ધ્રુવસેનના અધિરોહણનું વર્ષ છે.

આ સચલી હકીકતો ઉપરથી મારું ચોક્કસ અનુમાન થાય છે કે વલભીની મહાસભા ધ્રુવસેનના રાજ્યારોહણના વર્ષમાં જ મળી હતી, અને યજ્ઞ એ કે કલ્પસૂત્રમાં આપવામાં આવેલું મહાવીરનું જીવનચરિત્ર પણ, જે છેલ્લી વચ્ચત તે જ સભામાં નિર્ણીત કરવામાં આવ્યું હતું, તેનું ધ્રુવસેન રાજાની સમક્ષ વાચન કરવામાં આવ્યું હતું. અને આ વાચત, મારા અભિપ્રાય પ્રમાણે મહા-વૈરાગિચાળના ઇ. સ. પૂર્વ ૪૬૭ મું વર્ષે સૂચવતી હકીકત માટે એક ઘણું કિમતી સમર્થન છે.

હવે માત્ર એક જ પ્રશ્નનો ઉદ્ઘોષ કરવો અહીં વાંચી રહ્યો છે. જે વિદ્વાનેને આ મિતિ પ્રાપ્ત નથી તેઓ એકદમ જણાવશે કે આ સૂચના નાતિપુત્તના અવસાનના સંબંધમાં પાલી સિદ્ધાન્તોમાં આવતાં વર્ણનોથી વિરુદ્ધ છે. કારણ કે તે ગ્રંથોમાં જણાવેલું છે કે બુદ્ધ જ્યારે શાક્ય-મુ-

૮. આ કાલકાચાર્ય જૈન પદ્ધતીમાં લીજા છે. મહાવીર પછી ૪૭૦ વર્ષે વિદ્યમાન ગદાંબલ્લના શત્રુ કાલકાચાર્ય તે આ નથી સરસાવો—Z. D. M. G. 34. 241.

૯. આ સમિતિના પ્રમુખ સ્કંદિલ એ જો હાટે પ્રસિદ્ધ કરેલી (Testgruss an Bohtlingk p. 54 ff) પદ્ધતીમાં જેનો ઉલ્લેખ છે તે જ હોય તો, તે તો વીર પછી ૪૧૪ વર્ષે પુટલે ઇ. સ. પૂર્વ ૧૧૩ માં મરણપામ્યા એમ કહેવાય છે.

૧૦. આ વંશમાં ભાઈઓ એકબીજા પછી ગાદિએ આવતા એવો કોઈ નિયમ ન હતો; એ વાત ગૂહસેન પછી તેનો પુત્ર ગૂહસેન બાંજો જે ઇ. સ. ૫૫૯ માં ગાદિએ બેઠો હતો તે ઉપરથી સિદ્ધ થાય છે.

મિના સામગામમાં વિચરતા હતા ત્યારે નાતપુત્રે પાવામાં કાઢ કર્યો હતો; અર્થાત્ મહાવીર-નિર્વાણ યુદ્ધનિર્વાણની પૂર્વે થયું હતું. આ વર્ણન મને તદ્દન માન્ય છે પરંતુ હું માનું છું કે એ વિદ્વાનો આ પ્રશ્નના સંબંધમાં થોડો સંભાલપૂર્વક વિચાર કરશે તો તેમને જરૂર જણાશે કે આ હકીકત વધુ મહત્ત્વની નથી.

પ્રો. જેકોવીય પોતાના ગ્રંથમાં એક ઘણું જ મજબુત પ્રમાણ રજૂ કરેલું છે અને જણાવે છે કે ઇ. સ. પૂર્વે ૫૨૭ જા વર્ષને વરતર્ક કરી, હેમચંદ્રના કહેવા મુજબ ઇ. સ. પૂર્વે ૪૬૭ મું વર્ષજ સ્વીકારણીય છે. અને મારે આ સ્થળે જણાવી દેવું જોઈએ કે ડૉ. જેકોવીનું પ્રમાણ પટલું વધું મજબુત છે કે તેને પાલીગ્રંથમાં મળી આવતા આવા પ્રકારના વર્ણનને લીધે ફેંકી દેવાય તેમ નથી.

ઉપરોક્ત વર્ણન ધૌધનિકાય ૩, ૧૧૭; ૨૦૯; અને મજ્ઞિમાનિકાય ૨, ૨૪૬ 11 માં જોવામાં આવે છે અને તે એમ જણાવે છે કે જ્યારે બુદ્ધ સામગામમાં રહેતા હતા ત્યારે તેમને સ્વર કેદધામાં આવી હતી કે તેમના પ્રતિસ્પર્ધી પાવામાં કાઢ કર્યો. અને ઘીનું એ કે. નિર્મ-થોમાં ગંભીર ભેદો—સાંપ્રદાયિક ફાંટા પડી ગયા હતા, તેમ જ આલો જૈનસમાજ મગ્ન થઈ જવાની તૈયારીમાં હતો. પાવા સંબંધી વર્ણન કેટલેક અંશે સ્પષ્ટ છે, કારણ કે જૈનોની માન્યતાનુસારે પણ મહાવીર પાવામાં જ નિર્વાણ પામ્યા હતા. પરંતુ કેટલેક અંશે છોટું પણ છે, કારણ કે મેં ઉપર જણાવ્યું તેમ 12 બુદ્ધો એ પાવાને—રાજગૃહની પાસે આવેલી પાવાને—માનતા નથી કે જે આજ દિન સુધી પણ જૈનો માટે તીર્થ સ્થળ મનાય છે. યૌદો પાવાને, જ્યાં આગળ બુદ્ધે હુંદના ઘરે છેલ્લું જાણું જાણું હતું તે કુશીનારની પાસે આવેલા નાના શહેર તરફને ઓલવાયે છે, કે જે વાવત પણ શંકા ઉત્પન્ન કરવા લાગી છે. આ ઉપરાંત હું ઉપર જણાવી ગયો છું કે, ઉપાલિ સાથેનો મેઝાપ, જેને મહાવીરના મરણના સાચા કારણ તરફે ચતાવવામાં આવ્યો છે, તેણે કશું વર્ણન સૌથી પ્રાચીન સૂત્રોમાં મળતું નથી. અને, અંતમાં જણાવું છું કે ધર્મભેદ સંબંધી તેમાં આપેલો વૃત્તાંત આ નોંધને પહેલાં કરતાં વધારે શંકાપાત્ર બનાવે છે, કારણ કે જૈનગ્રંથોમાં આ પ્રકારનું ધીલકુલ વર્ણન નથી, પણ તેથી ઊલટું તે તો એમ જણાવે છે કે આ અવસરે તો સમાજમાં સર્વ સ્થળે શાંતિ ફેલાયલી હતી. વળી જૈન ગ્રંથોમાં ધર્મભેદો છુપાવેલા છે જ નહીં. તે ગ્રંથોમાં એવા બે નાના ધર્મભેદોનું વર્ણન આપેલું છે, અને તે તીર્થંકરની 13 વિચિત્રતામાં જ ઉત્પન્ન થયા હતા તેમ કહેલું છે. આ સ્થળે હું ગોસાલ અને તેના અનુયાયીઓની કરેલી પજવણીનું વર્ણન કરતો જ નથી કે જેનો મહાવીરસ્વામીના નિર્વાણ વચ્ચે અંત આવી ગયો હતો. આ વાવતમાં, મારું એમ ધારણું છે કે આ ધર્મભેદોનો ક્ષાંતો હોવાલ નિકાયોના રચયિતાઓને મળ્યો હશે અને તેઓએ તેને પાવામાં થપલા નાતપુત્રના નિર્વાણ સંબંધી તેમણે મેઝવેલા જ્ઞાન સાથે ગુંચવી નાંખ્યો હશે અને તેથી તેઓએ આ પાવાને, મૂલથી તેઓની વધારે પરિચિત પાવા માની લીધી હતી. આલો મારે કહેવું જોઈએ કે આ વંતકથામાં ઉપરોક્ત તપાસના નિર્ણયને વાધા પહોંચાડે તેણે એક પણ તત્ત્વ નથી અને મહાવીર બુદ્ધ કરતાં થોડા વચ્ચત પાછલ થયા હતા તે પ્રકારના મતને વરોવર વેસતી આવતા અન્ય બે વાવતો હું નોંધવા ઇચ્છા રાખું છું.

દી૦ નિ૦ ૨, ૫૭; મ૦ નિ૦ ૧, ૩૭૭; સં૦ નિ૦ ૧, ૬૬; इत्यादि ग्रंथોમાં જૈનધર્મને ચાતુર્યામ

11. પ્રો. ચામરૈં જ. રા. એ. સો. ૧૮૯૫, પૃ. ૬૬૫ આદિમાં એ ઝલેલોનું અવતરણ અને ભાષાંતર કર્યું છે.

12. જુઓ ઉપર પૃષ્ઠ

13. સરસાવો—લાયમાન, ઇન્ડિયન સ્ટડીઝ, ૧૭, પૃ. ૯૮ ની નોટ.

પટલે 'ચાર યમવાળો' 14 કહેલો છે. પરંતુ સરી રીતે એ મહાવીરનો ધર્મ નથી. એ તો તેમની પૂર્વે થયેલા પાર્શ્વ નામના તીર્થંકરનો પ્રત્યેકો ધર્મ છે. કારણ કે મહાવીરે તો પોતાના ધર્માવલંબીઓ માટે પાંચ વ્રતનું વિધાન કર્યું હતું. અને જુદા જૈનોમાં પણ "મહામતો" ની સંસ્થાના સંવંધમાં વાસ્તવિક રીતે ગુંચવણ હોય તેમ જોવામાં આવે છે. 15 સામઙ્ગ્યકલરુપા આદિ પાલીગ્રંથોની આવી રીતે વર્ણન કરવામાં મૂલ થયેલી હતી એમ માનવાનું કારણ નથી. કારણ કે આ વર્ણન બુદ્ધ અને મહાવીર પરસ્પર વધારે નિકટના સંવંધમાં આવ્યા તે સમયની જેમી પરિસ્થિતિ હતી તેનો ચિતાર માત્ર છે. અને આ ઉપરથી આપણે કદાચ અનુમાન કરી શકીએ કે મહાવીરે, તેમનો બુદ્ધ સાથે કાંઈક સંવંધ થયો હતો તે વચ્ચે પટલે થોડોક વગત થાય પોતાના પાંચ મહાવ્રતનો સિદ્ધાંત છેવટરૂપે નક્કી કર્યો હતો.

આ ઉપરાંત વૌદ્ધ ધર્મના ગ્રંથોમાં મુખ્ય રાજા તરીકે માન વિંશિસારનું વર્ણન થયેલું છે, અજાતશત્રુનો હલ્લેજ વધારે પ્રમાણમાં થયેલો જોવામાં આવતો નથી. આ ઉપરથી એ દલીલકર્તાને ટેકો મળે છે કે અજાતશત્રુના રાજ્યની શરૂઆત થઈ ત્યાર આગમચ દુરનું જીવન પોતાના અવસાન સંમુલ થવા લાગ્યું હતું, અર્થાત્ તેમનું જીવન સમાપ્ત થવાની તૈયારીમાં હતું. પરંતુ જૈનધર્મગ્રંથોમાં મહાવીરના જીવનકાલમાં કૃષિકે ઘણો મોટો ભાગ ભજવેલો છે અને રાત્રીત તેનું વર્ણન વધારે નહિં તો નિવાન તેના પિતાના બેઠલું તો થયેલું છે જ. વાંચો જ્યારે જણાયે છે કે તેમના તીર્થંકર બુદ્ધ અને આ રાજાઓનો પરસ્પર મેળાપ મગધની જુની રાજધાની રાજગૃહમાં થતો હતો ત્યારે જૈનગ્રંથોમાં સ્થલે સ્થલે તેમના તીર્થંકર અને કૃષિકના મેળાપની મૂંઝી સરીકે કૃષિકની નવી રાજધાની ચંપાને ઘતાઘવામાં આવી છે. આ વાચત પણ મરેશ્વર અજાતશત્રુના રાજ્યના ઉત્તરકાલની ઘોતક છે.

હવે હું મારી તપાસની અંતે આવી પહોંચ્યો છું. મારે ન્યાયરષ્ટિપ જણાવી દેવું જોઈએ કે આ લેસમાં લેણેલી સઘલી વાચત એક યા વાંજા રૂપમાં આ લેસની પેટલાંજ ઘણીત થઈ ગયેલી છે. પરંતુ આ પ્રકારનું પિછપેવળ, આ જાતની સામાન્ય રૂપની અત્યારની સઘલી શોધેને સાધારણ છે, અને તેથી એ વાચતમાં મને વીલકુલ દિલગીરી થતી નથી. અત્યાર સુધીમાં મઠી આપેલી સઘલી હકીકતોનું મંડોલ એકવાર કરીંથી, વાચકો સમક્ષ મૂકવાનું મને તથું જ અનુકૂળ લાગ્યું છે, કારણ કે એ દ્વારા તેઓ આના સંવંધમાં વધારે યોગ્ય અભિપ્રાય-પણી તે અભિપ્રાય ઉપરાંત અભિપ્રાયને અનુકૂળ થાય કે પ્રતિકૂળ થાય-ગ્રંથવા દાનિમાન થશે. અને મારું માન્ય માનું છે કે મહાવીરના સમયનિર્ણયનો પ્રશ્ન ઘણો જ મહત્વનો છે અને તેટલા માટે બેટલાં વધારે સાધનો મળે તેટલાં વધારે સાધનો દ્વારા વિવેચન કરવા યોગ્ય છે. જો હું પટલી માંટી આશા ન રાખી શકું કે સઘલા લેણકો મારા અનુમાનને સંમત થશે, કે જે અનુમાન પ્રા. ગ્રંથોથી એ ત્યાં કાલ ઉપર સૂચવેલું હતું અને જેને મેં માત્ર અન્ય નથી વહેલી દ્વારા મજબૂત કરવા જ પ્રયાસ કરેલો છે, તો પણ હું પટલી આશા તો જરૂર રાખી શકું છું કે ઉપરાંત વિવેચન, ઘણા ત્યાં સમયથી ઉપેક્ષાપત્ર વનેલા યવા આ અતિ મહત્વના વિષય નરફ નેશા પોતાનું ધ્યાન ધારશે. મને નહિ મઠી શકેલી એવી ઘણી નવી માહિતીઓ વિઠાનેનિ ઉપલબ્ધ થશે અને આ સંબંધ પ્રશ્નોનો કોઈ નવો ચૂકાદો જન્મ પામે એ પણ વચનું સંમથિત છે. અન્યાર તો આનાથી અન્ય

14. સારંગિ—સામઙ્ગ્યકલ વ્રત ૨૩, ૧૨ માં જોઈએ, 'કાટજ્ઞામાં પ્રમ્મો'

15. મરત્તકો—દેવટીગ્ગની દન્ગદન્ગેનીદિવા, પુ. ૧, પૃ. ૨૬૪ માં જી. કોર્નલનો ટિપ્પ

પ્રકારનો નિર્ણય થઈ શકે એ મને શક્ય લાગતું નથી-કે જે નિર્ણય આ મહાધીરનિર્વાણના સમય સાથે સંબંધ ધરાવતી તેમજ તેના ઉપર આધાર રાખતી અન્ય વાવતોને વધારે વંધવેસતો થાય.

ટિપ્પણ—આ નિબંધના વાચકને જરૂર લાગ્યું હશે કે મેં પ્રો. ગાયગર (Geiger) ના મહાવંશના ભાષાંતરના (London 1912) ઉપોદ્ઘાતનો વીલકુલ ઉલ્લેખ કર્યો નથી. વાસ્તવમાં, મારે જણાવવું જોઈએ કે હું આ નિબંધ પૂરો કરી રહ્યો ત્યાંસુધી મેં તે ઉપોદ્ઘાત વાંચ્યો જ ન હતો, અને તેથી કરીને મારાં કરેલાં કેટલાંક અનુમાનો ત્યાર આગમ ન પ્રો. ગાયગરે સાર્વાત કરેલી વાવતોની માત્ર પુનરુક્તિ રૂપે જણાશે. પરંતુ આ પ્રસિદ્ધ વિદ્વાન્ સિલોનની પરંપરાવિષયક સઘળી વાવતોનું અર્પણ જ્ઞાન ધરાવતા હોવા છતાં તેમની કાલગણનાત્મક તપાસના મુખ્ય પરિણામ સાથે હું સંમત થઈ શકતો નથી. બુદ્ધનિર્વાણની મિતિ તરીકે ઇ. સ. પૂર્વે ૪૭૭ માં વર્ષને માનવા માટેનાં મારાં સઘળાં કારણો-પ્રમાણો-મેં મારા લેખમાં આપેલાં છે. અને ઇ. સ. પૂર્વે ૪૮૩ વર્ષથી ગણાતા સીલોનના સંભવિત સંઘત્તના અસ્તિત્વમાત્રથી, મારો મત સોદ્ધો હોય તેવી મારી જાતરી થતી નથી. આનું કારણ એ છે કે આ સંઘત્તનો પત્તો-ઉલ્લેખ ૧૧મી સદીના પહેલાં, બુદ્ધનિર્વાણ પછીના ૧૫૦૦ વર્ષના અરસામાં, થયેલો મળતો નથી. અને પ્રો. ગાયગર જ્યારે અશોકનો અભિષેક ઇ. સ. પૂર્વે ૨૬૪ નક્કી કરે છે ત્યારે તેઓ શિલાલેખના પ્રમાણ તરફ ઉપેક્ષા કરતા હોય તેમ જણાય છે; કારણ તેમાં જણાવેલું છે કે અભિષેક પછીનું ૧૩ મું વર્ષ ઇ. સ. પૂર્વે ૨૬૦ અને ૫૫૮ ની વચમાં પડે છે. અને તે જ કાલના શિલાલેખો દ્વારા આ પ્રમાણે પુરાવો મળતો હોવાથી, સિલોનના ऐतिहासिक ग्रंથોનું પ્રમાણ, સ્વાભાવિક રીતે જ નિરુપયોગી નિવડે છે.

આ નિબંધનો ઉપસંહાર કરતા પહેલાં, હું મારા નિબંધના હસ્તલિખિત કાગળોને અતિશય માયાલુપણે વાંચી જઈ અંગ્રેજી ભાષાના શુદ્ધ પ્રયોગને લગતી મારી કેટલીક ભૂલો સુધારી આપનાર ડૉ. એફ. હવલ્સુ. થૉમસના તરફ મારી અંતઃકરણની ઉપકારવૃત્તિ પ્રકટ કરું છું.

તીર્થંકર વર્ધમાનનો સમય.

[જર્નલ ઑફ ધી રૉયલ એસિયાટિક સોસાયટી, સન ૧૯૧૭, પૃષ્ઠ ૧૨૨-૩૦ માં પ્રકટ થયેલ એન્. વી. વેન્કટેશ્વરના THE DATE OF VARDHAMANA નામના લેક્ચરનો અનુવાદ.]

વર્ધમાન એ આધુનિક જૈનધર્મના સંસ્થાપક છે. તથા તેમનો સમય તે પ્રાચીન હિંદુસ્થાન (આર્યાવર્ત) ની કાલગણનામાં એક જૂનામાં જૂનો સીમાસૂચક સ્મરણ-સ્તંભ છે. આમ છતાં તેમના નિર્ધારણના સમયના વિષયમાં ઘણા મતભેદો છે. જૈન તીર્થંકરોના જીવન તથા યુગના સંબંધમાં પૌરાણિક હકીકતો તો પુષ્કળ પડેલ્લે થાય છે. પરંતુ આ પરંપરાગત કથનોની વિગતો અત્યંત ગુંચવણીવાળી તથા પરસ્પર વર્ણી વિરોધાત્મક જણાઈ આવે છે. તેમાં વઢી કેટલીક તો સામાન્ય પણે ઓટી રીતે સમજાવામાં તથા સમજાવવામાં આવેલી છે. આ લેખમાં આ સઘળાં પરંપરાગત કથનોને, તેમના યુગના રીતરિવાજો, ગૌતમબુદ્ધની સાથેનો વર્ધમાનનો સંબંધ, તેમજ આ ઘંને ય્યાગી મહાપુરુષોનો, મગધના રાજ્યવંશ—કે જે વંશની સાથે ભારતવર્ષના ઇતિહાસના પ્રારંભિક કાળમાં, આ વંશે ધર્મો અત્યંત ગાઢ સંબંધ ધરાવતા હતા—તે વંશના રાજાઓ તથા મહારાજાઓની સાથેના તેમના સંબંધને અનુકૂલ થાય તે રીતે સમજાવવાનો યત્ન કરવામાં આવેલ છે. ભારત વર્ષની, ઇ. સ. પૂર્વેની છઠ્ઠી અને પાંચમી શતાબ્દિની કાલગણનાની સાધારણ રીતે યથાર્થ યોજના, હિંદુ, બૌદ્ધ અને જૈન સાધનો, કે જે અનુક્રમે પુરાણો, દીપવંશ અને ગાથાઓમાંથી મળી આવે છે, તે સાધનોમાંથી મળી આવતાં અનેકવિધ કથનોને પરસ્પર સંગત કરવાથી, કરી શકાય છે. આ પ્રકારની કાલગણનાની એક વિગતવાર યોજના મત વર્ષના ઇન્ડિ-અન એન્ટીક્વેરીમાં આપેલી છે. તેટલા માટે તે જ યાવતની પુનરુક્તિ કરવાની અહીં જરૂર નથી; મારી પદ્ધતિની ગણના અનુસાર, વર્ધમાન સાથે સંબંધ ધરાવતા શૈશુનાગ રાજાઓની તારીખો આપવી જ અહીં પુરતી થશે. વિવિસાર ઉર્ફે શ્રેણિયનો સમય ૦ ૫૧૩-૪૮૫ ઇ. સ. પૂર્વે છે. અજાતશત્રુ ઉર્ફે ક્રૂણિક ઇ. સ. પૂર્વે ૪૮૫-૪૫૩, ડ્વય ઉર્ફે ઉદાયી મદ્રક, ઇ. સ. પૂર્વે ૪૫૩-૪૩૭, અને દર્શક ઇ. સ. પૂર્વે ૪૩૭-૪૧૩.¹

જૈનપરંપરા અનુસાર વર્ધમાન શ્રેણિય વિવિસાર સાથે સંબંધ ધરાવતા હતા. શ્રેણિયની રાણી ચેલ્હણા ઘંશાલિના ચેટક રાજાની પુત્રી હતી. અને વર્ધમાનની માતા ત્રિશલા તે પરાજાની વહેન હતી.² આ ઉપરથી વિવિસારની રાણી એ વર્ધમાનની પહેલી વહેન (મામાની છોકરી) થાય. આપણને મઠી આવતી નાંધો ઉપરથી, વર્ધમાનનો પોતાની વેન-મગધની રાણી—સાથે અગર તો તેના પતિ વિવિસારની સાથે વયોવિષયક શો સંબંધ હતો, તે કલ્પી કાઢવું અશક્ય છે. જૈન નાંધોમાં વર્ધમાન અને વિવિસાર એ વંનેના પરસ્પર થયેલા મેઢાપ સંબંધી ઘણી જ જૂઝ હકીકત મળે છે. જેકોવીનું માનવું છે કે ઉત્તરાધ્યયનસૂત્રના ચીસમા અધ્યયનમાં આવી એક પરસ્પર થયેલી મુલાકાતનો ઉલ્લેખ છે. જો, તે કહે છે તેમજ હોય તો પણ વિવિસાર એ ઘસતે સાસો બુદ્ધ હોયો જોઈય; અને એ જૈન યતિ તો તે સમયે તદન યુવાન હતા તથા સ્પષ્ટ રીતે તરતના જ દીક્ષિત થયેલા હતા.³ પરંતુ વાસ્તવિક રીતે, આ અધ્યયનમાં ઉલ્લિખિત જૈન યતિ-ને વર્ધમાન કહેવા એ ઘણું શંકા મરેલું લાગે છે; કારણ-યતિ એમ કહે છે કે તેમના પિતા કૌસા મિયના (રહીશ) છે. જ્યારે આપણે એ તો સ્પષ્ટ જાણીએ છીએ કે વર્ધમાનના પિતા તો વૈશાલીની

નજીક આવેલા કુણ્ડગ્રામના એક સરદાર—ઉમરાવ હતા. યતિએ એમ કહેલું છે કે તેમનું કુટુંબ પુષ્કલ સમૃદ્ધિવાન હતું. પરંતુ વર્ધમાનના કુટુંબના વિષયમાં આનું કોઈ સાસ કથન થયેલું નથી.

અજાતશત્રુના વિષયમાં ઘોઢો કરતાં જૈનો ઘણું વધારે જાણે છે. તેના રાજ્યકાલના અંતિમ સમયમાં તેનો રાજધાની ચંપા હતી. અને ત્યાં જ તે મરી ગયો હતો⁴ એમ જાણવામાં આવ્યું છે. તેણે વર્ધમાનનો ઘણી વાર મુલાકાતો લીધી હતી,⁵ અને તેનો પુત્ર ઉદાયી તે તો ચરેચર એક ચૂસ્ત જૈન હતો. ઉવાસગ-વૃક્ષાઓમાં⁶ ગોસાલનો મરણ સમય, કોસલ સાથે અજાતશત્રુના થયેલા યુદ્ધ વાદ ચતાયેલો છે, અને વર્ધમાનનું નિર્વાણ ગોસાલના મરણ પછી ૧૬ વર્ષે થયાનું જણાવેલું છે. જૈન સૂત્રોમાં⁷ એમ કહેલું છે કે વર્ધમાનનો મામો ચેટક, જે વચ્ચે અજાતશત્રુએ ચંપા નામની પોતાની રાજધાનીમાંથી વંશાલી ઉપર હુમલો કર્યો તે વચ્ચે, ત્યાંનો રાજા હતો. આ ઉપરથી આપણે ન્યાયસર એટલું અનુમાન કરી શકીએ છીએ કે તે રાજાના ભાણેજ આ જૈન યતિ, આ વનાવ વાદ વળા વર્ષ સુધી વિદ્યમાન રહ્યા હતા. તેમ જ એટલું તો આ પરથી સ્પષ્ટ જ થાય છે કે જૈનો, અજાતશત્રુના રાજ્યના પ્રારંભિક વર્ષોના કરતાં તેના અંતનાં વર્ષોની ઘણી જ વધારે અને ચોક્કસ માહિતી ધરાવે છે.

ઉદય અને દર્શકના રાજ્યોનું, આ બંને ધર્મોની નોંધોમાં ઘણું જ ઘાંચું પ્રતિબિંબ નજરે પડે છે. સર્વે આટલી વાત તો કયુલ રાણે છે કે અજાતશત્રુનો ઉત્તરાધિકારી ઉદય વન્યો હતો, અને આ વાત પુરાણોક્ત હકીકતો દ્વારા સમાર્થિત ન થતી હોવા છતાં આપણે ઠીક ઠીક તેમ માની શકીએ છીએ. ઘોઢ પરંપરાઓની અનુસાર ઉદય એ અજાતશત્રુનો, વિંધિસારની હયાતિમાં સુદ્ધાં એક માનીતો પુત્ર હતો; તથા પોતાના પિતાનો યુદ્ધની સાથે મેટાપ થયો તે વચ્ચે, એ એક યુવાન પાટવી કુંવર હતો. આથી અજાતશત્રુના મરણ સમયે ઉદય મધ્યવયસ્ક હોવો જોઈએ. પરંતુ દર્શક, માત્ર ભાસના વાસવદત્તા નાટકમાંથી જ તેના વિષયમાં જે ફક્ત એક પરંપરા મળી આવે છે તે અનુસાર, ગાદીએ આવ્યો તે સમયે ઘણો જ યુવાન-નાની ઉંમરનો હતો. આ રીતે જોતાં, પુરાણોમાં જણાવ્યા પ્રમાણે અજાતશત્રુ અને ઉદયની વચ્ચે દર્શક આવ્યો હતો તેમ મનાય નહિ. સંભવિત છે કે જે ઉદય રાજાની ગાદીએ તે આવ્યો હતો તે રાજાનો, તે એક પુત્ર તો નાનો ભાઈ હોઈ શકે. ઘોઢો ઉદય વિષે આથી વધારે કોઈ જાણતા નથી; પરંતુ જૈન નોંધોમાં જણાવ્યા પ્રમાણે, તે (ઉદય) જૈન ધર્મનો એક ચુસ્ત અનુયાયી હતો,⁸ પોતાના પિતાનો ઉત્તરાધિકારી વન્યો હતો તેમ જ પાટલિપુત્રનો⁹ વસાવનાર હતો. અને છેલ્લું એ કે તેની કારકીર્દિનો ટુંક સમયમાં જ તેના જૂનને લઈને અંત આવ્યો હતો.

દર્શકના વિષયમાં, સિલોનના ઘોઢો ફક્ત એટલું જ જણાવે છે કે તેનું નામ નાગદસક હતું. પરંતુ આ ઉપરાંત તેણે કોઈ જણાવતા નથી. દર્શકના રાજ્યના પ્રારંભ કાલમાં ચંડપ્રયોત વિદ્યમાન હતો.¹⁰ ચણ્ડ તથા તેના પુત્ર પાલકને જૈનપરંપરાઓમાં જે મહત્વ આપવામાં આવ્યું છે તે ઉપરથી એમ અનુમાન નીકળે છે કે તે યુગમાં જૈનધર્મનું મુખ્ય સ્થાન અને કેન્દ્ર મગધ નહિ પરંતુ ઉજ્જૈન હતું. તેમ જ વર્ધમાન અને ચણ્ડ એ બંને સમકાલે વેદાંત થયા હતા, તે વાત જો સચી હોય તો, આપણે માની શકીએ કે જૈનધર્મના સંસ્થાપકે દર્શકનું રાજ્ય જોયું હશે.

4. હેમચન્દ્ર રચિત રથવિરાવલી ચરિત, ૬, ૨૧. 5. ઔપપાતિક સૂત્ર, પૃ. ૩૧. 6. હર્નેલની આશ્રિત. પરિશિષ્ટ ૧. અને ૨. પૃ. ૧૧૦. 7. નિર્યાવલી સૂત્ર, પૃ. ૨૭. 8. કલ્પસૂત્ર, op. cit., p. 5. 9. હેમચન્દ્ર, op. cit. જેની સાથે પાટલીપુત્ર વસાવ્યાની વાતમાં વાયુપુરાણ પણ મળેલું છે. 10. ભાસકૃત સ્વપ્રવાસવદત્તમ (ત્રિવેન્દ્રમ સીરીઝ) પૃ. ૪.

આટલી હદકીકતો ઉપરથી પટ્ટલો નિર્ણય થાય છે કે વર્ધમાનનું નિર્વાણ ગાંતમબુદ્ધની પછીથી થયું હતું. પરંતુ વિદ્વાનોનો એક પવો મજબુત પક્ષ પણ રહેલો છે જે આ વિચારની સ્વત્વ વિરુદ્ધ છે. ઉદાહરણ તરીકે મિ. વિન્સેન્ટ ઇ. સ્મીથ,¹¹ હજી પણ માને છે કે વર્ધમાન પ. બુદ્ધના પહેલાં કેટલાક વર્ષે થઈ ગયા હતા. તે લખે છે કે જૈન યતિ (તીર્થંકર) “સંભવિત રીતે વિવિસારના રાજ્યના અંતત્તી નજીકના કાલમાં નિર્વાણ પામ્યા હતા.” અને ગાંતમ બુદ્ધનું નિર્વાણ “અજાતશત્રુના પ્રારંભના રાજ્યકાલમાં થયું હતું.” મહાવીરના નિર્વાણના, પરંપરાગત ચાલી આવેલા સમયને માનનારાઓનો પણ આજો જ મત છે. વાસ્તવમાં, તેઓ, જૈન તીર્થંકરના નિર્વાણને, બુદ્ધના નિર્વાણ કરતાં પચાસથી વધારે વર્ષો પૂર્વે મૂકે છે. આથી કરીને આ વિષયની વિગતવાર તપાસ કરવાની જરૂર છે.

મિ. સ્મીથનો ઉપરોક્ત મત દૌર્ધનિકાય ૩, ૧૧૭ આદિ, અને મઙ્ગલ નિકાય ૨, ૨૪૩ આદિને આધારે ઉત્પન્ન થયેલો છે. આ વિષયમાં, પ્રથમ તો આપણે પ. ધ્યાનમાં રાખવું જોઈએ કે ૧૦ નિ. ૨, ૨૭ આદિ અને મ. ૧, ૩૭૭ માં જૈનધર્મનો ઉલ્લેખ “ચાતુર્યામ” (ચાર વ્રતો વાળા) ધર્મ તરીકે કરેલો છે. જૈન આગમગ્રંથોમાં 12 પણ પ. ઉલ્લેખ મળી આવે છે અને તે ધર્મ વર્ધમાનની પૂર્વે ૨૫૦ વર્ષે થયેલા પાર્શ્વનાથનો હતો. પરંતુ તે ધર્મ વર્ધમાન-જેમણે પાર્શ્વનાથના આ ચાર વ્રતોમાં પાંચમું બ્રહ્મચર્યનું વ્રત ઉમેરીને પાંચ વ્રતો અમલમાં મૂક્યાં-મૂકાવ્યાં હતાં-તેમનો ન હતો. યીજું પ. કે બુદ્ધ અને વિવિસાર પ. વંનેનો પરસ્પર અનેક વચ્ચત મેળાપ થયો હતો 13 અને આ વિષયમાં એક યૌદ્ધસંપ્રદાય 14 તો પટ્ટલે સુધી કહે છે કે બુદ્ધ અને વિવિસાર પ. વચ્ચે એક જ દિવસે જન્મ્યા હતા. આથી વિરુદ્ધ જૈનપરંપરાનું 15 એમ કહેવું છે કે વર્ધમાન અને અવન્તીપતિ ચણ્ડપ્રયોત પ. વંને એક જ દિવસે સ્વર્ગે ગયા. ખાસરૂત વાસવદત્તા દ્વારા આપણે જાણીએ છીએ કે પ્રયોત સ્ત્રેસ્તર અજાતશત્રુના સ્વર્ગવાસ પછી તથા ઉદયના પળ દેહાંત થયા પાદ પોતે હયાતી ધરાવતો હતો. ઝીઝી ચાવત પ. છે કે બુદ્ધ અજાતશત્રુના પ્રારંભિક રાજ્યકાલમાં, પછી તે તેના ૫, અથવા ૮ મા વર્ષમાં હોય, નિર્વાણ પામ્યા હતા પ. વાત સઘળી યૌદ્ધપરંપરાઓને સંમત છે. પરંતુ જૈનપરંપરાઓ તો એમ જણાવે છે કે વર્ધમાન કોસલના રાજાની સાથે અજાતશત્રુના બુદ્ધ થઈ ગયા પછી ઓછામાં ઓછાં ૧૬ વર્ષ તો હયાતી ધરાવતા હતા.

આ ઉપરાંત આ વંને ધર્મોના પ્રાચીનગ્રંથોના સામાન્ય અભ્યાસ દ્વારા પટ્ટલું અનુમાન સ્પષ્ટ રીતે નીકળી આવે છે કે વર્ધમાન, બુદ્ધના સમયમાં નહિ, પરંતુ તેમના કેટલાંક વર્ષો પછી જન્મ્યા હતા. પ્રાચીન વૌદ્ધ ગ્રંથોમાં 16 જૈનોના ભિન્ન ભિન્ન સંપ્રદાયોના ઉલ્લેખ થયેલા છે જેવા કે:—પાર્શ્વનાથ, વર્ધમાન અને પુરાણ કાદ્યપ એમના અનુયાયીઓ. આ કાલ તેમને વિવિધ ધાર્મિક પંથો રચવાના હતા. તીર્થંકર પ. શબ્દ જૈનો અર્થ વૌદ્ધો “પાપંડીમતનો સંસ્થાપક” એવો કરે છે, તે શબ્દનો જૈન ગ્રંથમાં થયેલો અર્થ “ધર્મનો સંસ્થાપક” છે. હવે તીર્થંકર અગર તો પાપંડીમતોના ધ્યાસ ધ્યાસ સંસ્થાપકોનો વિચાર કરતાં, જૈનગ્રંથોમાં નોંધાયા પ્રમાણે, મોસાલ પ. સૌથી પ્રધાનપદ મોળે છે; પરંતુ બુદ્ધના વિરોધી તરીકે તેનું

11. Early History of India, 3 rd., ed., p. 33

12. ઉદાહરણ તરીકે જુઓ ઉત્તરાખ્યયન સૂત્ર અધ્યયન ૨૩.

13. જુઓ, સે. બુ. ૬. પુસ્તક ૫૦ (ઇન્ડિય) પ્રમાણમટિ પા. ૧૧

14. Rockhill, Life of the Buddha (Citing *Dulva*, XI), p. 16.

15. The Literary Remains of Dr. Bhau Daji, p. 130.

16. સરસાધો-મહાવગ્ગ ૮, ૫, ૩; અંગુત્તરનિકાય ૩, ૩૮૩.

સ્થાન પટ્ટલું મોટું જોવામાં આવતું નથી. આપણે જાણીએ છીએ કે ગોસાલ વર્ધમાનની પહેલાં ૧૬ વર્ષે મરી ગયો હતો તથા તેણે આર્જીવિક નામે એક સુપ્રસિદ્ધ પંથ સ્થાપ્યો હતો. જો તે ગોસાલ બુદ્ધનો સમકાલીન હોત તથા એક વિરુદ્ધ પંથના સંસ્થાપક તરીકે પ્રસિદ્ધિ મેળવતો હોત તો આપણે સહજે આશા રાખી શકીએ કે, તેનો પ્રાચીન વૌદ્ધગ્રંથોમાં, તેના રૂપમાં જરૂર ઉલ્લેખ કરવામાં આવ્યો હોત. તેમજ જમાલિ નામનો વર્ધમાનનો એક પ્રસિદ્ધ સમકાલીન પુરુષ, કે જેણે જૈનધર્મમાં પહેલો પદ્ધતિ ઉભો કર્યો હતો, તેના વિષયમાં પણ વૌદ્ધોને કશી માહિતી નથી. અંતમાં જૈનગ્રંથોમાં ઘર્ષણવામાં આવેલું તત્ત્વશાસ્ત્ર એ સાંખ્ય તેમજ વેદાંત ધર્મોથી વિરુદ્ધ છે. પરંતુ વૌદ્ધ તત્ત્વશાસ્ત્રનો પાયો આ વે પ્રાચીન ધર્મો ઉપર નંચાયેલો છે; તથા તેમાં (વૌદ્ધ દર્શનમાં) પાછળના ઘસતમાં વ્યવસ્થિત થયેલ વૈશેષિક દર્શનનો ક્યાંય પણ ઉલ્લેખ થયેલ નથી; પરંતુ, યનાથી ઉલટું, જૈનદર્શન, જેમ ડૉ. માળાડારકર સ્પષ્ટ રીતે જણાવી આવ્યું છે 17 તેમ “તે એક વાજુલ સાંખ્ય અને વેદાંત અને ધીજી વાજુલ વૈશેષિક એ ધર્મોની વચ્ચે કરેલા સમન્વયના રૂપમાં છે.”

હવે આપણે વર્ધમાનના સમય સાથે કોઈપણ રીતે સંબંધ ધરાવતી એવી જુદી જુદી પરંપરાગત હકીકતોને તપાસીએ.

૧. આ પરંપરાઓમાં પ્રથમ ઉલ્લેખનીય એવી એક સુપ્રસિદ્ધ ગાથા છે. આ ગાથાને દિગંધરો તથા શ્વેતાંધરો—ધર્મે સંપ્રદાયો માને છે, અને તેનું તાત્પર્ય એ છે કે મહાવીરનું નિર્વાણ ‘વિક્રમની પૂર્વે ૪૭૦ વર્ષે’ થયું હતું. પરંતુ ડૉ. હોર્નલેના 18 જણાવ્યા મુજબ આ ગાથાનો અર્થ ધર્મે સંપ્રદાયો જુદી જુદી રીતે કરે છે. દિગંધરો આને વિક્રમના જન્મથી ગણે છે સારે શ્વેતાંધરો તેના રાજ્યાધિરોહણના સમયથી. આ ગાથા સાથે વિક્રમનું નામ જોડાયેલું છે તે ઉપરથી તેને એક અર્વાચીન પરંપરાદારી માની અને તે રીતે પેતિહાસિક દૃષ્ટિએ મહત્ત્વ વિનાની ગણીને તેનો ફિક્કાર કરવાનો નથી. કારણ કે આ ગાથાનું સ્વરૂપ નિઃશંક આધુનિક હોવા છતાં પણ એ શક્ય છે કે તે કોઈ એક પ્રાચીન પરંપરાને આધારે રચાયેલી હોય. અને તેમ માનવાને માટે અધિક મજબૂત કારણ એ છે કે એ ગાથા ધર્મે સંપ્રદાયને માન્ય છે.

આ ગાથાવિષયક જે સરો પ્રશ્ન છે તે તેના અર્થના સંબંધમાં છે. પ્રો. કીલહોર્ન 19 એમ જણાવે છે કે ઇ. સ. પૂર્વે ૫૮ વર્ષે શરૂ થયેલા સંવત્ સાથે વિક્રમનો સંબંધ છેક ૯ મી અને ૧૦ મી શતાબ્દિમાં ઉત્પન્ન થવા માંડ્યો હતો. અને આ સંવત્ને વિક્રમાદિત્યે સ્થાપિત કર્યો હતો એવા ખાસ ઉલ્લેખ, પહેલ પહેલો, સન ૧૧૯૮ ના એક શિલાલેખમાં જોવામાં આવે છે. પરંતુ આ ઉલ્લેખનીય સંવત્ના વિષયમાં એક વાવત પ્રો. કીલહોર્નને વિચારણી રહી ગઈ છે કે ચારમી શતાબ્દિમાં વિક્રમસંવત્ને અનંદવિક્રમસંવતના નામે લખવાની એક ખાસ ગણના પદ્ધતિ ઉભી થઈ હતી. આ અનંદવિક્રમસંવત્ 20 લગભગ ઇ. સ. ૩૩ માં પટ્ટલે પહેલા વિક્રમસંવત્ પછી ૯૦ અગર ૯૧ વર્ષે શરૂ થયો હતો. ધીજી ‘સનંદ’ નામની ગણના પદ્ધતિ ઇ. સ. પૂર્વે ૫૮ અગર ૫૭ વર્ષે ઉત્પન્ન થઈ હતી. ચન્દ્ર વરદાઈ નામના તે જ (૧૨ મી) શતાબ્દિના પ્રસિદ્ધ કવિએ પોતાના કાવ્યમાં આ ગણતરીનો અર્થથી તે રીતે સુધી ઉપયોગ કરેલો છે. આ ઉપરથી પટ્ટલું સ્પષ્ટ થાય છે કે વિક્રમસંવતની ગણતરીની આ સનન્દ અને અનન્દ એ ધર્મે રીતિઓ, જે સમયે પ્રસ્તુત ગાથાને વર્તમાન રૂપમાં મૂકવામાં આવી તે સમયે, પ્રચલિત હતી.

17. જુઓ તેમનો રિપોર્ટ સન ૧૮૮૩-૮૪, પૃ. ૧૦૧ આદિ. 18. *Imp. Ant.* XX p. 360

19. *Ind. Ant.* XIX and XX. 20. *J. R. A. S.*, 1906, p. 500

હવે જો આપણે સનન્દગણતરી સ્વીકારીએ તો તદનુસાર નિર્વાણસમય ઇ. સ. પૂર્વે ૫૨૭ માં મૂકાય પરંતુ આપણે જેમ પાછલ જોઈ ગયા, વર્ધમાન બુદ્ધની પછી થયેલા હોવાથી આ તારીખ પ્રકટ રીતે અસંભવિત છે. તેથી પરિણામે ગાથામાં ઉલ્લેખ કરવામાં આવેલ વિક્રમસંવત્ તે ઇ.સ. ૩૩માં શરૂ થયેલ અનન્દ વિક્રમ સંવત્ હોવો જોઈએ. ઇ. સ. ૩૩ થી પૂર્વે ૪૭૦ વર્ષ ગણતાં વર્ધમાનના નિર્વાણની તારીખ તરીકે ઇ. સ. પૂર્વે ૪૩૭ મું વર્ષ આવે.

૨. હવે આપણે તે પરંપરાગત હકીકત 21 તપાસીએ, જેની અનુસાર મૌર્યવંશીય ચંદ્રગુપ્ત-રાજાનું રાજ્યાધિરોહણ ધૈરનિર્વાણ પછી ૧૫૫ વર્ષે થતાવેલું છે. ચંદ્રગુપ્તના રાજ્યાધિરોહણની સૌથી વધોર સંભવિત તારીખ 22 ગ્રહણ કરતાં નિર્વાણના સમય તરીકે આપણે ૩૧૯+૧૫૫= ૪૭૪ ઇ. સ. પૂર્વેનું વર્ષ પ્રાપ્ત કરીએ છીએ. પરંતુ જૈન ગણતરીમાં મૂલ થઈ હોય તેમ જણાય છે. કારણ કે તેમાં જ્યારે પાલકના રાજ્યનાં ૬૦ વર્ષે આપેલાં છે, ત્યારે પુરાણોમાં તેના રાજ્યકાલનાં ફક્ત ૨૪ અગર ૨૮ વર્ષો જ ગણાવેલાં છે. 23 મત્સ્યપુરાણ જેવા સૌથી પ્રાચીન પુરાણમાં પાલકનાં રાજ્યનાં ફક્ત ૨૮ વર્ષો જણાવેલાં છે. આ રીતે માત્ર પાલકના જ રાજ્યકાલમાં ૩૨ વર્ષનો તફાવત પડે છે. નંદોના સંબંધમાં એમ છે કે હેમચંદ્રે તેમના રાજ્યકાલ તરીકે ૯૫ વર્ષો ગણેલાં છે. પરંતુ આપણી કાલગણનાની પદ્ધતિ અનુસાર ઉદયના મરણ પછીના નંદોના—માત્ર એકલા નંદોનો જ જૈન ગ્રંથમાં વિચાર કરવામાં આવેલો છે—રાજ્યનાં ચરાવર ૯૦ વર્ષ સિદ્ધ થાય છે. જૈન ગણતરીમાં આ મૂલો છે એમ જો સ્વીકારી લઈએ તો આપણે વર્ધમાનના નિર્વાણ સમય તરીકે ૪૭૪-(૩૨+૫), પટલે ઇ. સ. પૂર્વે ૪૩૭ મું વર્ષ નક્કી કરી શકીએ.

૩. હવે આપણે તે પરંપરાગત હકીકત 24 તરફ ફરીશું, જેમાં કહેલું છે કે મહાવીર પછીના સાતમા પટ્ટધર સ્થૂલભદ્ર તે નવમા નંદના મંત્રી હતા તથા જે કાલે ચંદ્રગુપ્તે નંદનુ સ્થૂન કર્યું હતું તે અરસામાં સ્વર્ગે ગયા હતા. જો કે આપણે સમ્રાટ અને યતિ એ વચ્ચેના મરણોની સમ-કાલીનતા જેવા મુદ્દા ઉપર વધોરે ભાર ન મૂકીએ છતાં આ મુદ્દાના સંબંધમાં પટલી નોંધ લેવા જેવી છે કે તે ગણતરી આપણી તારીખ સાથે ઘેસે છે. પટલું યાદ રાખવું જોઈએ કે ગણધરો યા પટ્ટધરોની પરંપરાના વિષયમાં લગાડેલી વર્ષોની સરેરાશ, ઘંશની માપક જ ચરા-વર વંધવેસી શકતી નથી. અને એનું કારણ એ છે કે પટ્ટધરની ધાયતમાં ઉત્તરાધિકારી કેટલીક ઘણત એક મોટી ઝંમરનો હોવાથી તેના પૂર્વજનો સમકાલીન ગણાય છે; નહિ કે તેની પછીની નવી પેઢીનો. પ્રાચીન મતની પુષ્ટિમાં હું તપાસીએ છું 25 પટ્ટાવલીમાંથી તેમજ લક્ષ્મીચલ્લમના કલ્પદ્રુમમાંથી વર્ષ સંખ્યાઓ ટાંકું છું. આ વચ્ચે ગ્રંથોમાં—એ વાત પરસ્પર મલ્લતી આવે છે કે વર્ધમાન પછી ૩૭૬ યા ૩૮૬ વર્ષના કાલમાં ૨૩ સ્થાવિરો થયા હતા. આ ઉપરથી આપણે પ્રત્યેક પેઢિનાં ૧૬ અગર ૧૭ વર્ષો મેલવી શકીએ છીએ. વર્ધમાનની જે નિર્વાણ તારીખ આપણે નક્કી કરી છે તેની સાથે સંગત રાખવા ક્ષાતર ચંદ્રગુપ્ત સુધી થયેલી સ્થાવિરોની સાત પેઢિઓના ૧૧૮ વર્ષ નક્કી કરવાં જોઈએ. અને આ વર્ષસંખ્યા, ઉપર પ્રત્યેક પેઢિ માટે મેલવેલી વર્ષસંખ્યા સાથે મલ્લતી થાય છે.

21. હેમચંદ્રે એનો ઉલ્લેખ કર્યો છે અને મેહુરુંગે તેનો સમાવેશ કર્યો છે.

22. Dr. Hultzsch's, in JRAS., 1914.

23. વાયુ અને વ્રહ્માન્ડ પુરાણમાં ૨૪ તથા મત્સ્યપુરાણમાં ૨૮ વર્ષ આપેલાં છે.

24. ડૉ. જી. સ્થાવિરોની સૂચિ. SBE. xxii, pp. 278, 289. તથા ઇન્ડિ. એન્ટિ. પુ. ૧૧, ૨૪૬.

25. Ind. Ant. XI, 251.

૪. અંતમા, આપણે વર્ધમાન અને અવન્તીપતિ ચંદ્રપ્રયોત ય ધનેના અવસાનની સમકાલીનતા ચતાવનારી પરંપરાના સંવંધમાં વિચાર કરીએ. અહીં આ પળ આપણે આ સમકાલીનતાને અક્ષરશઃ ન લઈ શકીએ છતાં પણ પટલું તો સ્વીકારી શકાય કે આ મહાત્મા તથા રાજા બંને લગભગ સરસ્વા સમર્થ દેહાંત-પામ્યા હશે. ભાસના ઘાસવદન્તામાં જે એક પરંપરા આવેલી છે તદનુસાર ચંદ્રપ્રયોતનું મરણ મગધના દર્શકના રાજ્યના પ્રારંભમાં (૪૩૭-૪૧૩ ઇ. સ. પૂર્વે) થયું હોયું જોઈએ. કારણ એમ છે કે, ભાસે, પ્રયોત પાસે તેના પુત્રને મોટી દર્શકની વહેનનું માગું કરાવેલું છે. આ નાટકના પોતાના જર્મન અનુવાદમાં પ્રો. જેકોવી યવો મત ધરાવે છે કે આ પ્રયોત “પ્રાયઃ મહાસેનનો પુત્ર છે.” પરંતુ મારી પાસે સ્પષ્ટ પુરાવા છે કે તે મહાસેનનો પુત્ર નહિ પણ-શુદ્ધ મહાસેન જ હતો. ચીજા અંકમાં ભાસે જણાવેલું છે કે “પ્રયોત જે મહાસેન કહે-વાય છે તેનું કારણ તેની મોટી સેના છે.”²⁶ છઠ્ઠા અંકમાં પ્રયોતની રાણી ઉદયનને કહે છે કે “તું અમારા પુત્ર ગોપાલ ચાલકના જેટલો વહાલો અમારો જમાઈ થયો હું.”²⁷ બૌદ્ધગ્રંથો દ્વારા આપણે જાણીએ છીએ કે ઉદયને ચંદ્રપ્રયોતની પુત્રીનું દરણ કરી તેનું પાણિગ્રહણ કર્યું હતું. હવે માત્ર પટલું જ ચતાવવાનું રહ્યું છે કે-ભાસની આ કથા એક પ્રાચીન અને વિશ્વાસપાત્ર પરંપરાને આધારે રચાઈ છે. તે કથાની અંદર ટાવાળ્યકનું વહન અને પ્રયોતની પુત્રીએ કલ્પિત મરણ એ એક મુખ્ય સાંકળ છે અને આ વાચકમાં આ કથાને બૌદ્ધ દિવ્યાવદાન²⁸ દ્વારા પુષ્ટિ મળે. ભાસે પ્રયોતને જે મહાસેનનો વિરુદ્ધ આપેલો છે તેને વાળના કથનનું પણ સમર્થન મળે છે. કારણ કે વાળે પણ હર્ષચરિત્રમાં²⁹ તે રાજાને તે જ ઉપનામ આપેલું છે ગોપાલપાલક પછું નામ વિષ્ણુપુરાણમાં પણ મળી આવે છે. પરંતુ અન્ય પુરાણો અને જૈન મેરુતુંગ તેનું નામ ફક્ત પાલક પટલું જ આપે છે, અને આ નામ તે ઘણું કરીને તેના પૂર્ણ નામનું એક રૂપાન્તરિત સંક્ષિપ્ત નામ છે. ભાસે આ રીતે સ્પષ્ટ રૂપે એક પ્રાચીન પરંપરાનો ઉપયોગ કરેલો હોવાથી આપણે તેની કથાને સ્વીકારીએ કે ચંદ્રપ્રયોત દર્શકના રાજ્યાધિરોહણ પછી પણ હયાતી ધરાવતો હતો. આ કથન જો સચ્ચં હોય તો તેનું અને વર્ધમાનનું અવસાન ઇ. સ. પૂર્વે લગભગ ૪૩૭ વર્ષની પહેલાં હોઈ શકે નહિ.

આ રીતે ઇ. સ. પૂર્વે ૪૩૯ સુધી વર્ષ અગર તો અનન્દવિક્રમનું ૪૭૦ સુધી વર્ષ તે જૈન કાલગણનાવિષયક પ્રાચીન પરંપરાઓને પૂર્ણ કરતું જણાય છે. તેમજ આ હિંદુ, બૌદ્ધ અને જૈન પુરાણકાળોના આધારે ૫ યુગના સામાન્ય ઇતિહાસના સંવંધમાં જે જાણીએ છીએ તેની સાથે પણ સંધેસનું થાય છે.

26. ત્રિવેન્દ્ર સંસ્કૃત ગ્રન્થાવલીમાં મુદ્રિત પૃ. ૨૦

27. તેજ પુસ્તક. પૃ. ૬૧.

28. જુઓ, અવદાન ૩૬.

29. હર્ષચરિત્ર ઉચ્છ્વાસ, ૬, પૃ. ૨૨૧ (In the Bombay edition of the Text.)

મેરુતુંગાચાર્યની સ્થવિરાવલી.

[જર્નલ ઑફ ધી 'થોમ્સે ટ્રેચ ઑફ ધી રૉવલ ઇસિયાટિક સોસાયટી, ભાગ ૧ (સન્ ૧૮૬૪-૭૦) માં પ્રકાશિત ડૉ. માઇ ડાજીનો નિવન્ધ]

ઈ. સ. ની પંદરમી (? ચૌદમી) શતાબ્દિમાં મેરુતુંગ નામના એક જૈન આચાર્ય થઈ ગયા છે. તેમના રચેલા ગ્રંથો પૈકી ચાર ગ્રંથોની નકલો મારી પાસે છે. એક પ્રવંધચિંતામણિ; જેનો ફૉર્સસસાહેબે રાસમાલા નામે ગુજરાતનો ઇતિહાસ લખવામાં સારો ઉપયોગ કર્યો છે. વીજું-મહાપુરુષચરિત્ર; જેમાં અનેક અતિપ્રાચીન જૈન સત્પુરુષોનાં ચરિત્રો વર્ણવવામાં આવ્યાં છે. શ્રીજાનું નામ પદ્મદર્શનનિવાર છે. આ ગ્રંથમાં, જૈન, બૌદ્ધ, સાંખ્ય, જૈમિનીય અથવા મીમાંસા, ઔલ્ક્ય અથવા કળાદ અને ગૌતમીય ઇમ્મ-હ દર્શનોનું સંક્ષિપ્ત વર્ણન કરેલું છે. અને ચોથા ગ્રંથનું નામ થેરાવલી છે. આમાં સ્થાવિરોની એક વંશાવલી યાને પરંપરા આપેલી છે. આ છેલ્લો ગ્રંથ, તે, કાલ-ગણનાત્મક અને પેતિહાસિક મુદ્દાવાલી કેટલીક પ્રાચીન ગાથાઓના ઉપર એક ટીકારૂપ છે. આ સઘળા ગ્રંથો સંસ્કૃત ભાષામાં રચાઈ છે પરંતુ તેમાં પ્રાકૃત ભાષાની ગાથાનાં અવતરણો આપેલાં છે. મારી પાસે છ ભિન્ન ભિન્ન જૈન સૂરિઓ યા પંડિતોની રચેલી છ સંપૂર્ણ પટ્ટાવલીઓ છે. અને ધાંજી પળ કેટલીક પટ્ટાવલીઓના અંશો છે પરંતુ તેમાંની એકે પેતિહાસિક રસિકતાની દ્રષ્ટિ મેરુતુંગની થેરાવલીને પહોંચી શકે તેવી નથી. પ્રવંધચિંતામણિ ગ્રંથ, તેમાં અંતે જણાવ્યા પ્રમાણે, સંવત્ ૧૩૬૭ પટ્ટલે ઇ. સ. ૧૪૨૩ (? ૧૩૧૦ જોડે-સંપાદક) માં કાઠીઆવાડમાં આવેલા વર્ધમાનપુર અર્થાત્ વઢવાળ શહેરમાં, રચેલો હતો.

પટ્ટાવલીનો સાર નીચે મુજબ છે:—

કાર્તિક વદી ૧૫ ને દિવસે શ્રીમહાવીર તીર્થંકરનું નિર્વાણ થયું. આ વાચત કલ્પસૂત્ર નામના ગ્રંથમાં વર્ણવેલી છે. એક પ્રાચીન ગાથાનો પણ આ સ્થલે ઉલ્લેખ કરેલો છે. તે ગાથામાં ઇમ્મ જણાવેલું છે કે જે રાત્રિએ અહં તીર્થંકર મહાવીર નિર્વાણ પામ્યા તેજ રાત્રિએ અવન્તી (માલવા) નો વંદ્યપ્રદોત નામનો રાજા પણ મરણ પામ્યો. તેની પછી તેનો પુત્ર પાલક અવન્તીની ગાદી ઉપર અભિષેક થયો. મેરુતુંગ પોતાની તારીખો અને કથનોના પ્રમાણમાં રૂપાંતરિત માગધીમાં રચેલી ગાથાઓનો ઉલ્લેખ કરે છે, અને તે ગાથાઓને સંસ્કૃતગદ્યમાં વિવરણ-પૂર્વક સમજાવે છે.

આ પાલક રાજાનું રાજ્ય ૬૦ વર્ષ ચાલ્યું; તે વખતે પાટલિપુત્રમાં રાજ્ય કરતા કૂળિકના પુત્ર ઉદયીનું જ્ઞાન થયું. * આ રાજાને સંતાન નહિ હોવાથી નાપિત-ગણિકાથી ઉત્પન્ન થઈ નંદનો, પાંચ દેવિપ્યમાન આમૂષણથી ભૂષિત એક મુખ્ય હસ્તીની પસંદગી અનુસાર, રાજ્યાભિષેક થયો. પરીશિષ્ટ પર્વ (હેમચંદ્રકૃત) માં પણ વર્ણન મળી આવે છે કે “ વર્ધમાન સ્વામી (અર્થાત્ વીર) ના નિર્વાણ પછી સાઠ વર્ષો વીતી ગયાં પછી આ નંદ રાજા થયો અને તેની પાછલ એક પછી એક ઇમ્મ અનુક્રમે નવ નંદો પાટલિપુત્રની ગાદીએ આવ્યા. તેમનું રાજ્ય કુલ ૧૫૫ વર્ષ ચાલ્યું” આમ વીર પછી ૨૧૫ વર્ષ થાય પછી પરીશિષ્ટ પર્વમાં ઇમ્મ પણ કહેલું છે કે મહાવીરનિર્વાણ પછી ૧૫૫ વર્ષે ચંદ્રમુક્ત રાજા થયો. તેટલા મોટે મેરુતુંગ આ હકીકત વિચાર-ણીય છે ઇમ્મ જણાવે છે, કારણકે આ હકીકત પ્રમાણે ૬૦ વર્ષ ઓછાં થાય છે. તેમ અન્ય ગ્રંથોની હકીકતો સાથે પણ આ વાચત વિરોધ ધરાવે છે.

* કૂળિક અગર કૂળિક તે શ્રેણીકનો પુત્ર હતો. આ શ્રેણિક મંભાસારના નામે ઓલ્લાય છે અને તે બૌદ્ધ ગ્રંથોમાં વર્ણવેલો રાજપૂતનો રાજા વિવિસાર જ હતો.

ત્યારપછી ૧૦૮ વર્ષ મૌર્ય રાજ્ય ચાલ્યું. ચાળાક્યે નવમા નંદને ગાદી ઉપરથી દૂર કરી ચંદ્રગુપ્ત આદિ મૌર્ય રાજાઓને પાટલિપુત્રની રાજ્યગાદી ઉપર સ્થાપિત કર્યા. એમ વીર પછી ૩૨૨ વર્ષ વાલ્યા. મૌર્યરાજ્ય પછી પુણ્યમિત્રે ૩૦ વર્ષ રાજ્ય કર્યું.

ત્યારવાદ વલમિત્ર અને માનુમિત્રે ૬૦ વર્ષ સુધી રાજ્ય કર્યું. આ રાજાઓ તે ઉજ્જયિનીની ગાદી ઉપર થઈ ગપલા તેજ નામના રાજાઓથી જુદા હતા. કલ્પચૂર્ણિ (કલ્પસૂત્રની એક ટીકા) માં એવી હકીકત આપેલી છે કે આ રાજાઓએ (ઉજ્જયિનીના) ચતુર્થી પર્વના સંસ્થાપક કાલિકાચાર્યને પોતાના રાજ્યમાંથી વહિવટીત કર્યા હતા. તેમના પછી ચાલીસ વર્ષ નમોવાહને, જે કેટલાંક સ્થલોમાં નરવાહનના નામથી ઓલસાય છે તેણે, રાજ્ય કર્યું. આ વનાવનો સમય વીર-નિર્વાણ પછી ૪૫૩ વર્ષ આવે છે. અને આ વર્ષે ગર્દભિલ્લે નિર્મૂલ કરનાર કાલિકાચાર્ય, માન પૂર્ણ સૂરિપદ પામ્યા. નમોવાહન પછી ગર્દભિલ્લે ૧૫૨ વર્ષ રાજ્ય ભોગવ્યું. અર્થાત્ ગર્દભિલ્લે શરૂ રાજ્ય કુલ ૧૫૨ વર્ષ રહ્યું. નમોવાહન પછી ગર્દભિલ્લે ઉજ્જયિનીમાં જ્યારે ૧૩ વર્ષ માત્ર રાજ્ય કર્યું હતું તે વચ્ચે, કાલિકાચાર્ય પોતાની યેન સરસવતી ઉપર કરવામાં આવેલા જુલમને કારણે ગર્દભિલ્લે નિપૂદન કર્યું, અને ઉજ્જયિનીમાં શક રાજાઓને સ્થાપિત કર્યા. તેઓએ ત્યાં ચાર વર્ષ રાજ્ય કર્યું અને તે રીતે કુલ ૧૭ વર્ષ થયાં.

ગર્દભિલ્લના પુત્ર વિક્રમાદિત્યે ઉજ્જયિનીનું રાજ્ય પાછું લીધું અને સુવર્ણના દાનથી વિશ્વના કરજને દૂર કરીને વિક્રમસંવત્ નામે નવીન સંવત્સર પ્રવર્તાવ્યો. આ (યુગ) ની સ્થાપના વીર ના વાર્ષિક દાનના વર્ષથી * શરૂ થતા વીર સંવત્ ૫૧૨ વર્ષે કરવામાં આવી.

વિક્રમના રાજ્યકાલનાં	૬૦ વર્ષો.
તેનો પુત્ર વિક્રમ ચરિત્ર ઉર્ફે ધર્માદિત્યના રાજ્યકાલનાં	૪૦ "
તેના પછી થપલા રાજા ભાદહના રાજ્યના	૧૧ "
" " નાદહના રાજ્યના	૧૪ "
" " નાદહના "	૧૦ "
૧૩૫ "	

આ રાજાના સમયમાં શ્રીમદ્દાધીરનું યક્ષવસતિ નામનું મોટું ચૈત્ય, જાલોર નજીક આવેલા સુવર્ણગિરિના શિખર ઉપર, એક વેપારી (શ્રેષ્ઠ) એ પુષ્કલ દ્રવ્ય (૧૧ લાખ) સરસી વંદ્યાવું હતું. વિક્રમ પછીના ૧૩૫ વર્ષમાં ૧૭ વર્ષે ઉમેરતાં ૧૫૨ વર્ષ થાય છે, અને (ગાથામાં) પણ તેમ જ કહેલું છે. વિક્રમરાજ રાજ્યકાલ પટલે કે વિક્રમનાં ઇશાત્મક વર્ષની નમોવાહનની પછી ૧૭ વર્ષે શરૂઆત થઈ; વિક્રમ સંવત્ અગર રાજ્યારંભ તે વિક્રમના રાજ્યથી, અથવા મેરુતુંગની કલ્પનાનુસાર વિક્રમરાજ્યકાલના ૧૭ મા વર્ષથી, શરૂ થયો. તેથી ૧૫૨-૧૭=૧૩૫ વર્ષો વિક્રમકાલયુગનાં થાય છે. જિનકાલ તે વિક્રમકાલની પહેલાંનો જિનધીરનો કાલ છે. આ ૪૭૦ વર્ષનો કાલ તે શ્રીમદ્દાધીર અને વિક્રમની વચ્ચેના કાલની ગણાવે છે. શ્રીધીર અને વિક્રમાદિત્યના કાલ યા સંવત્તની ગણતરી કેવી રીતે કરવામાં આવી હતી? વિક્રમના રાજ્યની શરૂઆત પહેલાં ૪૭૦ વર્ષે શ્રી વીરનું નિર્વાણ થયું હતું, પટલે કે વિક્રમના રાજ્યની શરૂઆત વીરનિર્વાણ વાદ ૪૭૦ વર્ષે થઈ.

* દાનનું વર્ષ કે જે નવા સંવત્તની સ્થાપનાનું એક મુખ્ય કારણ છે. રાજા આણું વર્ષ અતિશય સુવર્ણરાશિ દાનમાં ઓપે છે ત્યારે તે પ્રવર્તે છે એમ માનવું છે. મહાવીર પોતાના મરણ અગાઉ ૪૨ મા વર્ષમાં તેમ કર્યું હતું એમ કહેવાય છે.

પાલક	૬૦	વિક્રમાદિત્ય	૬૦
નન્દ	૧૧૫	ધર્માદિત્ય	૪૦
મૌર્ય	૧૦૮	માદહ	૧૧
પુપ્પમિત્ર	૩૦	નાદહ	૧૪
વલમિત્ર }	૬૦	નાહડ	૧૦
માનુમિત્ર }			
નભોવાહન	૪૦		૧૩૫
ગર્દભિલ્લ	૧૩		૪૭૦
	૪૭૦	કુલ સંખ્યા	૬૦૫

શક સંવતની આ વચ્ચે—વીરનિર્વાણ પછી ૬૦૫ વર્ષે ભારત (હિંદુસ્થાન) માં શરુઆત થઈ હતી.

આટલી વાયતોનું ધર્મન કરીને મેરુતુંગ અનેક સ્થવિરો (થેરો, પટલે મહાન યતિઓ) ના પટ્ટપ્રતિષ્ઠાકાલ (સૂરિ પદ્ધતી ઉપર પ્રતિષ્ઠાપન) ની તારીખો આપે છે.

શ્રીવીરના નિર્વાણથી:—

સુધર્મસ્વામીનું પટ્ટાધિરોહણ ૨૦ વર્ષસુધી

જંયુસ્વામીનું " ૪૪ " ૬૪

પરિશિષ્ટ પર્વમાં પશું લખેલું છે કે જંયુવ વીરનિર્વાણ પછી ૬૪ વર્ષ આયુષ્ય ભોગવી, પોતાની પાટે કાલ્યાયન ગોત્રના પ્રભવને સ્થાપિત કર્યા; અને સર્વ કર્મથી નિવૃત્ત થઈ અશ્વર્ય સ્થાનને પામ્યા.

પ્રભવ ૧૧ વર્ષ
સર્યમ્ભવ ૨૩ "
યશોભદ્ર ૫૦ "
સંભૂતિવિજય ૮ "
મદ્રવાહુ ૧૪ "

૧૭૦

આ રીતે વીરનિર્વાણ પછી ૧૭૦ વર્ષ થયાં. પરિશિષ્ટ પર્વમાં જણાવેલું છે કે વીરનિર્વાણથી ૧૭૦ વર્ષો વીંચ્યા પછી મદ્રવાહુ સમાધિપૂર્વક સ્વર્ગે ગયા.

સ્થૂલમદ્ર ૪૫ વર્ષ અર્થાત્ વીરનિર્વાણથી ૨૧૫ વર્ષ
આર્યમહાગિરિ ૩૦ "
આર્યસુહસ્તિ ૪૬ "
ગુણસુદર ૪૪ "
૩૩૫ વર્ષ

આ સમયે (અણુનિગોદ વ્યાખ્યાતા) કાલિકાચાર્ય પ્રાદુર્ભૂત થયા. કાલિકાચાર્યનાં અણુ-નિગોદ ઉપરનાં વ્યાખ્યાન સાંભળ્યા શ્રદ્ધા આપ્યો હતો તે વાત ફરીથી સંક્ષેપમાં પુનરાવૃત્ત કરી છે. કાલિકાચાર્ય પ્રજ્ઞાપનોપાંગ સૂત્રના કર્તા છે. સૂત્રમાં ૧૪૦ નો અંક આપ્યો છે જે નકલ કરનારની પ્રકટ ભૂલ છે. કારણકે આના પ્રમાણમાં પરિશિષ્ટપર્વની જે એક માથા ટાંકેલી છે તેમાં ૧૭૦ હોવાનું જણાવેલું છે તે વીર પછીના ૧૧ ગણધર સહિત પટ્ટધરોમાંના ૨૩ મા પટ્ટધર હતા. સિદ્ધાંતમાં તે દયામાર્યાના નામે ઓલવાય છે.

કાલિકાચાર્ય
સ્કંદિલસૂરિ

૪૧ વર્ષ
૩૮ "
૪૬૪ વર્ષ

આ આપ્યા પછી મેરુતુંગાચાર્ય ધૃત્વસંપ્રદાય પટ્ટે પ્રાચીનપરંપરાગત કથનો નોંધે છે. સ્ફૂલ-
ભદ્રના આર્યમહાગિરિ આર્યસુહસ્તિ નામે યે શિષ્યો હતા.

આર્યમહાગિરિ શાખા તે મુખ્ય શાખા છે અને તે સ્થવિરાવાલીમાં નીચે પ્રમાણે આપવામાં
આવી છે:—

વલિસ્સદ સૂરિ	રેવદસિંહો	(રેવતિસિંદ)
સાંયિ (સ્વાતિ)	ચંડલો	(સ્કંદિલ)
સામજ્જો (ઇયામાર્ય)	હિમચં	(હિમવાન્)
સંડિલો (શાંડિલ્ય)	નાગજ્જુણો	(નાગાર્જુન)
જિયધરો (જિત-ધર)	ગોવિંદો	(ગોવિન્દ)
અજ્જસમુદ્ધો (આર્યસમુદ્ર)	ભૂયદિન્નો	(ભૂતદિન્ન)
મંગુ (મંગુ)	લોહિત્યો	(લૌહિત્ય)
મંડિલ્લો (મંડિલ)	દૂસગણિ	(દુપ્પગણિ)
નાગહસ્થિ (નાગહસ્તી)	દેવટ્ટી	(દેવધિન્)

આ દેવધોં તે વીરથી ૨૭ મા પટ્ટધર હતા. તેમણે સંપૂર્ણ સિદ્ધાન્ત, રહેને તે નષ્ટ
થઈ જાય, તેટલા માટે લલાચ્યો.

કલપસુત્રમાં આપેલી વીજી શાખા નીચે પ્રમાણે છે:—

અજ્જસુહસ્થિ (આર્યસુહસ્તિ)
સુદ્ધિય (સુસ્થિત)
ઇંદદિન્નો (ઇન્દ્રદિન્ન)
અજ્જદિન્નો (આર્યદિન્ન)
સિંહગિરિ (સિંહગિરિ)
ઘરસામી (ઘરસામી)
સૌપારગ ઘરસેનો (સૌપારક ઘરસેન)

પરંતુ આ શાખાઓમાં આર્યસુહસ્તિની પછી ગુણસુંદરતું નામ આવતું નથી; તેમજ શ્યામા-
ર્યની પછી સ્કંદિલાચાર્યતું નામ પણ નથી. પરંતુ મેરુતુંગ પુરાતન યાદીઓમાં તેઓના નામનો
નિર્દેશ થપ્પેલો જોવાથી અહીં પણ તેમણે તે નામો યચમાં મૂકી દેવાની હિંમત કરી છે. આવી જ
વાચત રેવતિમિત્રના સંવેધમાં જાણવાની છે. સ્કંદિલ પછી ૩૬ વર્ષે રેવતિમિત્ર થયા હતા.
(અને તેમના પછી), આર્ય મંગુ ૨૦ વર્ષે પટ્ટે આ કાલ તે વીરનિર્વાણ પછી ૪૭૦ વર્ષનો
કાલ થયો. (વીરનિર્વાણથી) ૪૫૩ વર્ષે થયા પછી કાલિકસૂરિ જેમણે ગદંભિલ્લનો વિનાશ
કર્યો હતો તેઓ થયા. તેમના પછી ૨૪ વર્ષે આર્યધર્મ થયા કેટલાકનું ઇમ માનવું છે કે મંગુ અને
ધર્મ એ બંને એકજ વ્યક્તિનાં નામો છે. તેઓના મતે આર્યધર્મનો કાલ ૪૪ વર્ષનો બને છે.

ભદ્રગુપ્ત	૩૧ વર્ષ
શ્રીગુપ્ત	૧૫ "
શ્રીવજ્ર	૩૬ "

આ સમય વીરનિર્વાણ પછી ૫૮૪ વર્ષનો છે. તદનંતર શ્રી આર્યરાક્ષિત ૧૩ વર્ષ. પુણ્યમેત્ર ૨૦ વર્ષ પટ્ટધર રહ્યા. આમણે યથાર્થ રીતે સૂત્રાર્થનો બોધ કરાવ્યો હતો. આ પ્રમાણે આપણે વીરથી ૬૧૭ મા વર્ષમાં આવો છાં. આ સમયે શક સંવત્સરની શરૂઆત થઈ. (નકલ અંગ્રે વોપંચુક છે અને ડહ્લિખિત ગાથા મેલચવાની જરૂર છે.)

સાધારણ રીતે નીચે લેખેલ કથન ઉપલબ્ધ થાય છે:—

અગાઉ (પ્રાચીન સમયમાં) ચંદ્રગુપ્ત રાજાના સમયમાં વાર વર્ષનો હુષ્કાલ પડવાથી ઉત્કલપ્રલધિ (ઉત્કલ જ્ઞાનના પ્રંથો) અને વીજા હજારો પ્રકીર્ણકો નષ્ટ થયાં. વહલસ્ત અને ઘલિસ્તહ આ વંને એકજ વ્યક્તિનાં નામો હતાં. સ્થવિરાવલીમાં આર્ય મંથુની પછી મિત્રશાસ્ત્રમાં ઉત્પન્ન થયેલા એવા આર્યભરમ, ભદ્રગુપ્ત, વજ્રસ્વામી અને આર્યરાક્ષિતનાં નામો મુકેલાં છે. અને આમ કરવાનું કારણ પટલુંજ હતું કે તે વ્યક્તિઓ નામાંકિત યા પ્રધાનપુરુષ હતા. રેવતિતિહ સૂરિ તે વહાદૂરપદથી ભિન્ન છે. ત્યારપછી વજ્રસ્વામીના સમયમાં ફરીથી ૧૨ વર્ષનો હુષ્કાલ પડવાથી સિદ્ધાન્તનું વ્યાખ્યાન વંધ થયું. પરંતુ જ્યારે ફરી આવેલો થઈ ત્યારે સ્કંદિલાચાર્યે મથુરામાં સંઘને એકઠો કરી ફરીથી સિદ્ધાન્તની વાચનાનો આરંભ કર્યો. અને આ વર્ણન “જેસિ હમો અણુઓ” થી શરૂ થતી ગાથા અનુસારે માનવામાં આવે છે.

વીજી શાસ્ત્રમાં, આર્યસુહસ્તિના ૧૨ અંતેવાસીઓમાંના સુસ્થિત નામે પાંચમા અંતેવાસી હતા. તેમની દ્વારા કોટિકગણની ઉત્પત્તિ થઈ. અને કલ્પસૂત્રમાં એમ જણાવેલું છે કે પલાવત્ય ગોત્રના આર્યમહાગિરિને ઉત્તરધેરો નામના પ્રથમ અને પહલુક ઉર્ફે રોહગુપ્ત જે આઠમા અંતેવાસી હતા તેઓના ઉપરાંત આઠ શિષ્યો હતા. છેલ્લા અંતેવાસી પહલુક ઉર્ફે રોહગુપ્તદ્વારા કલ્પસૂત્રમાં જણાવ્યા પ્રમાણે ત્રૈરાશિક શાસ્ત્રનો પ્રાદુર્ભાવ થયો.

આવશ્યકસૂત્રમાં ભિન્નભિન્ન નિવ્હવોનો સમય નીચે પ્રમાણે આપેલો છે:—

પ્રથમ નિવ્હવ (જમાલિ) વીર પ્રભુને કેવલ જ્ઞાન થયા પછી ૧૪ મે દિવસે (? વર્ષે) થયો.

વીજી (તિપ્પગુપ્ત)	૧૬ વર્ષ
ત્રીજી (અવ્યક્ત)	૨૧૪ „
ચોથો (સમુદ્દોદિક)	૨૨૦ „
પાંચમો (ગંગા)	૨૨૮ „
છઠ્ઠો (રોહગુપ્ત ત્રૈરાશિક)	૫૪૪ „
સાતમો (ગોષ્ઠા માહિલ)	૫૮૮ „
આઠમો (દિગંબર પંથ)	૬૦૧ „

હવે વિચારો કે પહલુક રોહગુપ્ત આર્યમહાગિરિનો શિષ્ય હોય તો તે સમયે વીર પછી ૫૪૪ વર્ષો કેવી રીતે વ્યતીત થયાં હોય ? આર્યમહાગિરિ એ સ્થૂલભદ્રના શિષ્ય હતા. અને સ્થૂલભદ્ર ઉપર સમજાવ્યા પ્રમાણે વીરનિર્વાણ પછી ૨૪૫ વર્ષે ઉત્પન્ન થયા હતા. આથી (આર્યમહાગિરિના) અંતેવાસીને વીર પછી ૫૪૪ મા વર્ષમાં મૂકી શકાય જ નહિ.

આ સંદેહનિરાકરણ માટે વહુશ્રુત ચિદ્વાનો જ પ્રમાણ છે. આ જ પ્રમાણે વાર વર્ષના હુષ્કાલના અંતે વજ્રસ્વામીએ પોતાના વજ્રસેન નામના શિષ્યને જોહર કર્યું હતું કે—“જ્યારે તમને એક લાખ રૂપીઆની કિંમતનું ભોજન મળે ત્યારે તમારે હવે લોકમાં સમૃદ્ધિ (અથવા રેલચેલ) થશે એમ સમજવું” એમ કહીને પોને સંવંશો આપી મોકલ્યો, તે શિષ્ય સોપારગમાં વસતા જિનદક્ષ નામના શ્રેષ્ઠ (વ્યાપારી) ને ત્યાં ગયો. તેની રૂઢિચુસ્ત નામનો પત્નીએ તેને દેર મેલવ્યા વિના

एक लाख रुपीआनी किंमतनुं भोजन अर्पण कर्यु.* अने शिष्ये तेमने कहुं के आचरी काले समृद्धि थशे—अने पछी ते त्यां सुखपूर्वक रह्यो. पछीथी तेने इन्द्र, चन्द्र अने विद्याधर नामना शिष्यो प्राप्त थया हता.

एक सो शाखावाळा वड अगर पिंपळाना झाडनी माफक चंद्रकुल, आज सुधी कीर्तिमंत वर्ते छे अने तेना संवंधमां नचिनी एक गाथा पण प्रचलित छे:—

“कोडि गणो गणो मे, वडर साहा साहा मे; चन्द्रकुलं कुलं मे.”

“गणोमां कोटी गण, शाखाओमां वज्रशाखा अने कुलोमां चन्द्र कुल (अष्ट) छे.”

भृगुक्षेत्रमां आर्य खपुटाचार्य अने सिद्धसेन प्रभावक (थया).

वर्ली, वज्रस्वामी पछी वज्रसेन थया हता	૩૩ વર્ષ.
नागहस्ति	૬૯ „
रेवतिमित्र	૫૯ „
ब्रह्मद्वीपक सिंह	૭૯ „
	૨૩૯

ત્યાર પછો સ્કંદિલ, હિમવત્સુરિ અને નાગાર્જુન ૭૮ વર્ષ.

આ ૭૮ વર્ષમાંનાં ૨૨ વર્ષે જ્યોરે વ્યતીત થયાં ત્યારે ઘલભિનો નાશ થયો. તેના માટે એવો ઉલ્લેખ છે કે—“પણ સયરી વાસસાઈ તિણિણ સયાઈ અફકમેડળ, વિક્રમકાલાડ તઓ ઘલ-હી-મંગો સમુપ્પળો.” —વિક્રમકાલ પછી ૩૭૫ વર્ષે વ્યતીત થયાં પછી ઘલભિનો મંગ થયો.

વિક્રમ પછી વજ્રસ્વામી ૧૧૪ વર્ષે થયા.

વજ્રસ્વામી પછી સ્કંદિલ ૨૩૯ વર્ષે થયા.

તેના પછી ૨૨ વર્ષે ઘલભિમંગ થયો અને એમ એકંદર ૩૬૫ વર્ષો થયાં. તેજ રીતે, વિક્રમ પછી ૫૧૦ વર્ષે, અને વોરનિવોળ પછી ૯૮૦ વર્ષે દેવાર્ધિંગણીણ સિદ્ધાન્ત લખાવ્યો. અને તે વચ્ચે કલ્પસૂત્રમાં તેમણે લખ્યું કે—“અમળ મળવાન મહાવીરના નિર્વાણ પછી ૯૦૦ વર્ષો પસાર થયાં પછી ૧૦ માં સૈકાના ૮૦ મા વર્ષમાં આ ગ્રંથ રચાયો હતો.”

આના પછી ૧૩ વર્ષે (કાલકસૂરિ) શુક્લ ચોથને દિવસે પર્યુપણાપર્વે ઉજવ્યું; અને આ વાચત (અલ્પિખિત ગાથામાં) વર્ણવેલી છે.

૧૦૫૫ મા વર્ષમાં (અલ્પિખિત) ગાથામાં જળાબ્યા સુજવ, હરિભદ્રસૂરિનું મરણ (થયું).

પછી જિનમદ્રશ્મશ્રમણ ૬૫ વર્ષે થયા.

” પુણ્યમિત્ર ૬૦ ” ”

” સ્વાતિસૂરિ ૭૫ ” ”

જેમણે શુક્લ ચૌદશને દિવસે પાશ્વિક પ્રતિક્રમણની સ્થાપના કરી હતી. (અલ્પિખિત ગાથા) કેટલાક ગ્રંથોમાં પુણ્યમિત્રને સ્વાતિસૂરિની પછી સુખ્યા છે, પરંતુ આમ કરવું (અલ્પિખિત) ગાથાથી વિરુદ્ધ છે. મુજબ ગ્રંથ (જે અનુક્રમ યા અનિર્દિષ્ટ છે પરંતુ જેમાં ગાથા આપેલી) માં એમ કહેલું છે કે તેમણે વીર પછી ૧૩૦૦ વર્ષે સૂરિપદ મેલવ્યું હતું. પરંતુ આના સંવંધમાં વહુશ્વત પુરુષોણ તપાસ કરવાની જરૂર છે, કારણ કે તેમાં એમ જણાવેલું છે કે સ્વાતિ (સૂરિ) પછી સંભૂતિવિજય થયા હતા. પચાસ વર્ષ માહર, ૬૦ વર્ષ સંભૂતિશુભ અને વળ્પમદ્રસૂરિ; પરંતુ આ વિષયમાં ઉત્તમ પ્રમાણ માલ સંપ્રદાય જ છે.

* ગ્રંથકાર આ થયે એમ સ્વયં છે કે શ્રેષ્ઠિની સ્ત્રીનો દાદો, દુષ્કાલપીડીત કુટુંબિઓને ક્ષેત્રમિશ્રિત ભોજન આપી અનિવાર્ય ચિરંતન પીડામાંથી મુક્ત કરવા માટે એકી વચ્ચે મારી નાખવાનો હતો.

વીરનિર્વોણ પછી ૧૬૩૯ વર્ષે અને વિક્રમ પછી ૧૧૬૯ વર્ષે શ્રી વિધિપક્ષ મુલ્યામિધાન, આર્યરક્ષિતસુરિયે અંચલ ગચ્છ સ્થાપ્યો.

ધર્મનો શિષ્ય શ્રેણિક હતો. તેનો પુત્ર કૂળિક. તેનો પુત્ર ઉદાર્ય તેના પછી પાટલિપુત્રમાં નવ નંદોણે રાજ્ય કર્યું. ચાણાક્યે તેઓને હાંકી કાઢી ચંદ્રગુપ્તને રાજ્યભિષિક કર્યો. તેના પુત્રનું નામ યિદુસાર હતું. તેના પુત્રનું નામ અશોકશ્રી અને તેનો અંધ પુત્ર કુળાલ હતો. પના પુત્ર સંપ્રતિ રાજાણે ઉજ્જયિનીમાં રાજ્ય કર્યું હતું. આનો વંશજ ગર્દભિહ્ન હતો. ૫ રાજાનો શક રાજાણે નાશ કર્યો. ગર્દભિહ્નના પુત્ર વિક્રમાદિત્યે શક રાજાને નસાડી ઉજ્જયિનીની ગાદી ઉપર પોતે ઘેઠો. તેણે વીરના મોક્ષ પછી ૪૭૦ વર્ષે સંવત્સરયુગ સ્થાપ્યો. ત્યારવાદ સંવત ૮૨૧ ના વૈશાખ સુદ ૨ ને સોમવારે ચાવડા વંશ (ચાવડા અગર ચાવરા વંશ) ના ઘનરાજે અણહિલપુર વસાવ્યું. તેણે પોતે ૬૦ વર્ષે કુલ રાજ્ય કર્યું. તેના પુત્ર યોગરાજે ૯ વર્ષ રાજ્ય કર્યું; પછી સંવત ૮૯૧ માં શ્રીરત્નાદિત્યે ત્રણ વર્ષ રાજ્ય કર્યું. તેનો પછી ચૈરિસિંહે ૧૧ વર્ષ રાજ્ય કર્યું.

સંવત ૯૦૫ માં તેનો પુત્ર ક્ષેમરાજ ગાદી ઉપર આવ્યો અને ૩૯ વર્ષ રાજ્ય કર્યું.

સંવત ૯૪૪ માં ચામુંડ રાજે ક્ષેમરાજનો ઉત્તરાધિકારી બની ૨૭ વર્ષ રાજ્ય કર્યું.

સંવત ૯૭૧ માં તેનો પુત્ર યાઘડ ગાદી ઉપર આવ્યો અને તેણે ૨૭ વર્ષ રાજ્ય કર્યું.

સંવત ૯૯૮ માં તેનો પુત્ર મૂઅડ ગાદીએ આવ્યો અને તેણે ૧૭ વર્ષ રાજ્ય કર્યું.

આ પ્રમાણે ચાવડા વંશના આઠ રાજાઓએ કુલ ૧૯૬ વર્ષ રાજ્ય કર્યું.

સંવત ૧૦૧૭ માં ચાલુક્યવંશનો શ્રીમૂલરાજ(દૌહિત્ર)ગાદીએ આવ્યો, તેણે ૩૫ વર્ષ રાજ્ય કર્યું.

સંવત ૧૦૫૨ માં તેનો પુત્ર ઘણભરાજ ગાદીએ આવ્યો અને તેણે ૧૫ વર્ષ રાજ્ય કર્યું.

સંવત ૧૦૬૬ માં તેનો ભાઈ દુર્લભ રાજ્યગાદી ઉપર આવ્યો અને તેણે ૧૨ વર્ષ રાજ્ય કર્યું.

સંવત ૧૦૭૮ માં તેનો ભાઈ અને નાનગિલનો પુત્ર નામે ભીમદેવ ગાદીએ આવ્યો અને તેણે ૪૨ વર્ષ રાજ્ય કર્યું.

સંવત ૧૧૨૦ માં તેનો પુત્ર શ્રીકર્ણદેવ તેનો ઉત્તરાધિકારી થયો અને તેણે ૩૦ વર્ષ રાજ્ય કર્યું.

સંવત ૧૧૫૦ માં તેનો પુત્ર જયાસિંહદેવ તેનો પછી ગાદી ઉપર આવ્યો અને તેણે ૪૯ વર્ષ રાજ્ય કર્યું.

સંવત ૧૧૯૯ ની કાર્તિક સુદ ૩ થી સંપૂર્ણ ત્રણ (૧) દિવસ સુધી અરાજક સ્થિતિ (પાદુકા રાજ્ય—પાઘડી ઓતું રાજ્ય)

તેજ વર્ષના માર્ગશીર્ષ સુદ ૪ ને દિવસે ભીમદેવના પુત્ર ક્ષેમરાજના પુત્ર દેવપાલના પુત્ર ત્રિમુઘનપાલનો પુત્ર કુમારપાલ ગાદીએ આવ્યો અને સંવત ૧૨૨૯ ના પૌષ સુદ ૧૨ સુધી પટલે ૩૦ વર્ષ, ૧ માસ અને સાત દિવસ તેણે રાજ્ય કર્યું.

તે જ દિવસે તેના ભાઈ મહિપાલનો પુત્ર અજયપાલ ગાદીએ આવ્યો.

સંવત ૧૨૩૨ ના ફાલ્ગુન સુદ ૧૨ ને દિવસે અર્ધાત્ ૩ વર્ષ અને ૨ મહીના પછી લઘુ મૂલરાજ ગાદીએ આવ્યો.

સંવત ૧૨૩૪ ના વૈશ્ર સુદ ૧૪ ને દિવસે તેના રાજ્યના ૨ વર્ષ, ૫૬ મહીનો અને ૫ દિવસ પૂરા થયા. અને તે દિવસે ભીમદેવ રાજા થયો.

થેરાવલી સમાપ્ત.

(ટિપ્પણ) ત્યારવાદ ગજનક (ધિજનના મહમુદના) રાજ્યની સ્થાપના થઈ. (એક ગાયનાં ઉલ્લેખ કર્યો છે.) પછીથી સંવત્ ૧૩૦૦ માં શ્રી ઘીરધ્વલનો માર્ગ વીસલદેવ રાજ્ય ગાદી ઉપર આવ્યો.

૧૩૧૮ માં અર્જુનદેવ.

૧૩૩૧ માં સારંગદેવ.

૧૩૩૫ માં લઘુકર્ણ.

૧૩૬૦ માં માધવ નામનો એક નાગર બ્રાહ્મણ યવનોને લાવ્યો.

કુમારપાલના પ્રધાન નામે ચાહટે, સંવત ૧૨૧૧ માં [શમુંજય ઉપર] એક પથરનું મંદિર બંધાવવામાં બે કરોડ ૧૭ લાખ રૂપીઆ (રૂ ૨,૧૭,૦૦,૦૦૦) खर्च્યા.

સંવત ૧૩૭૧ માં યવનો (મુસલમાનો) તરફથી થપ્લા યાત્રાને લઈને, જ્યારે જાવડિની સ્થાપેલી મૂર્તિ નષ્ટ થઈ હતી ત્યારે સમરાકે એક નવી મૂર્તિ સ્થાપિત કરી.

[કેટલોકે સુલાસો.]

થેરાવલીના પ્રારંભમાં આપેલાં નામો તથા તારીખો ઘણાં જ મહત્વનાં છે.

મહાવીર એ છેલ્લા જૈન તીર્થંકર છે.

બૌદ્ધો ગૌતમને મહાવીર કહે છે અને તેમના મુખ્ય અને પ્રસિદ્ધ શિષ્ય તરીકે મહાકાશ્ય-પનું નામ આપે છે. જૈનો કાશ્યપને મહાવીર કહે છે અને ગૌતમને તેમનો મુખ્ય શિષ્ય (ગુણધર) વતાવે છે. જૈનો તથા બૌદ્ધો બંને મગધ અથવા વિહારની રાજધાની રાજગૃહના રાજા શ્રેણિક, જેને જૈનો ભંભાસાર કહે છે તથા બૌદ્ધોના મતાનુસાર જ ધિવિસરો છે, તેને મહાવીરના મિત્ર તથા ધર્માનુયાયી તરીકે એકમતે જણાવે છે. આ પુરુષો તથા ત્યારપછીના રાજાઓના સંબંધમાં મારી સમાલોચના હું થીજા લેખમાં કરવા રચ્છું છું. તે લેખમાં હું બુદ્ધનો કાલ તથા ખ્રિસ્તિ સન્ પૂર્વેનો હિંદુસ્થાનનો ઇતિહાસ, જેમના સંબંધમાં બૌદ્ધ અને બ્રાહ્મણગ્રંથોમાંથી જડી આવતી તારીખોથી જૈન ગ્રંથોમાં આપેલી તારીખો ઘણીજ જુદી પડે છે, તેના વિષયમાં આલોચના કરવા મારો હરાદો છે.

પરિશિષ્ટ પર્વમાં હેમાચાર્યે ઉદાર્યાના સૂત્રના વિષયની વિગતો આપેલી છે. થેરાવલી પ્રથમ નંદની ઉત્પત્તિના વિષયમાં એક સંક્ષિપ્ત અને અત્યુપયોગી હકીકત આપે છે. અત્યારસુધીમાં પ્રકાશિત થયેલા બૌદ્ધગ્રંથોમાં તે વિષયમાં કાંઈ લેખેલું જોવામાં આવતું નથી. પુરાણોમાં તેને શૂદ્રથી ઉત્પન્ન થયેલ જણાવ્યો છે. પરંતુ તેની નાપિત (હજામ) કુલમાં ઉત્પત્તિ વિષયક જે જૈન હેવાલ મળે છે તે હેવાલ, અલેક્ઝાન્ડરે પંજાબ ઉપર ચઢાઈ કરી તે સમયે પાટલિપુત્રના રાજાના ડિઓડોરસ સિક્યુલસ (Diodorus Siculus) અને ક્વિન્ટસ કુર્ટિઅસ (Quintus Curtius) આપેલા હેવાલ સાથે જો કે તદ્દન એકરૂપ નથી છતાં ઘણો મળતો છે. આ રાજા તે, ચંદ્રગુપ્ત અગર ગ્રીકોના સંઘકોટસનો પૂર્વજ હતો.

પ્રાકૃત ગ્રંથોમાં શકો તેમજ સિથિઓનો સગ કહેલા છે. વિક્રમસંવત્ અને વિક્રમાદિત્યે કરેલો શકરાજાઓનો પરાજય આ બે વનાઓ સમકાલીન હોય તેમ જણાય છે. પરંતુ શકનૃપ-કાલ કે જે શાલિયાહનનો યુગ જ છે તે શક લોકોએ કરેલી માલવા અને દક્ષિણ ઉપરની જીતનો સમકાલીન છે. શકકાલ અથવા શકોના યુગને, ભારતવર્ષીય વિદ્વાનો સુદ્ધાંષ કેટલીક વચ્ચત પહેલી યાવત સાથે અને કેટલીક વચ્ચત થીજા વનાવ સાથે ગોટાઝો કરી લીધો છે, અને તે રીતે તેમની ગણતરીમાં ૧૩૫ વર્ષની ભૂલ થાય છે.

મરુત્તની એક પ્રાચીન જૈન લાઇબ્રેરીના અવશિષ્ટોમાંથી મળી આવેલ એક પટ્ટાવલીના હુદા

પાનામાં શા કારણથી કાલિકાચાર્યે શક રાજાઓને શાસન કર્યા તથા વિક્રમાદિત્યે તેમને કેવી રીતે હાંકી મૂકી પોતાનો સંચત્સર સ્થાપ્યો તે વાચકનો ખુલાસો આપ્યા પછી નીચેની વાચકને ઉમેરેલી છે: “વિક્રમ પછી ૧૩૫ વર્ષ વીત્યાં પછી શક લોકોએ ફરીથી વિક્રમપુત્ર (વિક્રમનો પુત્ર અગર વંશજ) ને હાંકી કાઢ્યો અને તેનું રાજ્ય જીતી લીધું.”

ચાહડા (ચાપોતકદ) વંશની કાલગણના જે વનરાજથી શરૂ થાય છે તે કાલગણના પ્રવંધચિંતામણિ તથા અન્ય ચારીઓમાં આપેલી કાલગણનાથી, રાજાઓના નામ સંવંધી ક્રમ અને સંખ્યા પરત્વે તથા તેઓના રાજ્યકાલની સંખ્યા પરત્વે, ભિન્ન પડે છે. આ ઉપરથી સ્વાભાવિક રીતે એક એવો પ્રશ્ન ઊભો થાય છે કે થેરાવલીના કર્તા મેરુતુંગ તે પ્રવંધચિંતામણિના કર્તા જેમનું નામ પણ મેરુતુંગ છે, તે હોય કે નહિ?

આ સ્થલે હું પ્રવંધચિંતામણિ, જિનમણ્ડનોપાધ્યાયકૃત કુમારપાલ પ્રવંધ, તથા એક નનામી પટ્ટાવલી ઉપરથી તારવી કાઢેલું એક તુલનાત્મક કોષ્ટક નીચે રજુ કરું છું:—

	મેરુતુંગની પ્રવંધ- ચિંતામણિ	જિનમણ્ડનોપાધ્યાય- કૃત કુમારપાલ પ્રવંધ.	પટ્ટાવલી (નામ બગરની)
વનરાજ	૬૦	૬૦	૬૦
યોગરાજ	૩૫	૩૫	૩૨
કેમરાજ	૨૫	૨૫	૨૫
મુચ્છ	૨૯	૨૯	૨૯
વૈરિસિંહ	૨૫	૨૫	૨૫
રત્નાદિત્ય	૧૫	૧૫	૧૫
સામંતસિંહ	૭	૭	૭
મૂલરાજ	૫૫	૫૫	૫૫
ચામુણ્ડરાજ	૧૩	૧૩	૧૩
વલ્લભરાજ	૬ મહીના	૬ મહીના	૬ મહીના
દુર્લભરાજ	૧૧—૬	૧૧—૬	૧૧—૬
ભીમરાજ ઝૂંફે ભીમદેવ	* ૪૨	૪૨	૪૨
કર્ણદેવ	નથી આપ્યું	૨૫	૨૫
જયસિંહદેવ	પ્રતિજ્ઞા દોષને લઈને ૪૨	નથી આપ્યું	૪૮-૮-૧૦
કુમારપાલ	૩૧	૩૧	૩૦-૮-૨૭
અજયદેવ ઝૂંફે અજય- પાલ	૩	...	૩-૧૧-૨૮
મૂલરાજ	૨	...	૨-૧-૨૪
મીમદેવ	૬૩	...	૬૫-૨-૮
પાદુકા-રાજ (અરાજક સ્થિતિ)	1 /
ત્રિભુવનપાલ	...		
વૈસલદેવ	...		
અર્જુનદેવ	...		
સારંગદેવ	...		

૬૧

साहित्य-समालोचन

Ardha-Magadhi Reader By Banarasi Das Jain M. A.

Published by the University of the Punjab, Lahore.

अर्धमागधी रीडर, प्रत्यकार प्रो. बनारसी दास जैन, एम्. ए. ओरिएण्टल कॉलेज, लाहोर।

यम्यई, फलकत्ता और पंजाब युनिवर्सिटीके अभ्यासक्रममें कुछ वर्षोंसे जैन साहित्यको भी स्थान मिला है और यम्यई इलाखेमें तो कुछ विद्यार्थी जैन साहित्यका आभ्यास कर एम्. ए. तक भी पहुँचे हैं। लेकिन विद्यार्थियोंको और प्रोफेसर्सको इस विषयमें अभी तक सबसे पहली कठिनाई तो इसी बातकी हो रही है कि पढ़ने-पढ़ानेके लिये वही कोई पुस्तकें हो। अभी तक तैयार नहीं हैं। कुछ वर्षोंसे जैन साधुओंका प्रयत्न इस बारेमें तो यथेष्ट हो रहा है कि भंडारोंमें पड़े पड़े सड़ने वाले संस्कृत प्राकृत आदि जैन ग्रन्थोंको छपवा छपवा कर प्रकट कर दिये जाय। परंतु साधुओंके इस प्रयत्नकी मर्यादा बहुत ही संकुचित और कार्यकी पद्धति बहुत ही शिथिल होने के कारण, युनिवर्सिटीके विद्यार्थियोंको उसका कोई लाभ नहीं मिलता। इस लिये यह काम, जैनसाहित्यके आभ्यासी जो थोड़े बहुत स्कॉलर हैं उन्हींके द्वारा किये जानेकी आवश्यकता है।

हमें यह जान कर प्रसन्नता हुई कि धीयुत प्रो. बनारसी दासजीने यह अर्धमागधी रीडर तैयार कर, इस महत्त्वके कामका प्रशंसनीय प्रारंभ कर दिया है। यह रीडर, अर्धमागधी अर्थात् जैनागमोंकी प्राकृत-भाषाके अभ्यासियोंको प्रावेशिक ज्ञान करानेमें अच्छी मदद दे सकेगी। इसका संकलन और संपादन उत्तम रीतिसे किया गया है। प्रारंभमें, पहले अर्धमागधीका संक्षिप्त व्याकरण दिया गया है; उसके बाद, अर्धमागधी भाषा और उसके साहित्यका परिचय कराया गया है। तदनन्तर, कुछ उपयुक्त ऐसे छपे हुए जैन ग्रन्थोंकी सूचि; जैन साहित्यके प्रकाशन-कार्यमें विशिष्ट योग देनेवाली कुछ व्यक्तियोंका परिचय; और अन्तमें हस्तलिखित ग्रन्थ पढ़नेवालोंके लिये पुरानी लिपि विषयक कुछ सूचनाएं भी दे दी हैं। फिर कोई ७८ पन्नोंमें, विवागसुय, नायाधम्मकहा, ओवचाइयसुत्त, आचारंगसुत्त, पण्हावागरण सुत्त, स्यगडंगसुत्त, उत्तरज्जयणसुत्त और दसवेयालियसुत्त आदि जैन सूत्रोंमेंसे चुन चुन कर कितनेके मूल-पाठ दिये हैं। पाठोंका चुनाव अच्छा और भाषा तथा साहित्यकी दृष्टिसे विशिष्ट परिचायक किया गया है। फिर इन मूल-पाठोंका इंग्रजी अनुवाद और कुछ आवश्यक टिप्पणियां देकर सर्वांतमें महत्त्वके शब्द और नामोंकी एक सूचि भी दे दी है। इस प्रकार नवीन आभ्यासीके लिये इस रीडरको उपयोगी बनानेमें प्रो. जैनने जो खूब परिश्रम और प्रयत्न किया है तदर्थ वे विद्यार्थियोंके धन्यवादके पात्र हैं और हम आशा करते हैं कि भारी श्री बनारसी दासजी इस विषयक अपना प्रयत्न सतत जारी रखेंगे और आगे पर हमको इससे भी अधिक मूल-पाठोंकी एक मंड करंगे।

प्रस्तुत की गई ऐसी पुनः आवृत्ति भी बनारसी दासजीने तैयार की है जो कभी शायद जैन साहित्यकी एक हिन्दी ज छे त-पढ़नेको मिल सकेगी।

अधिकके पाठकोंको पढ़ा श-

प्रकाशक—श्री केशवलाल माणिकचंद, लोक-द, माननीय कार्यवाहक जे० सा० सं० कार्यालय;

मूल-स्थल, पूना शहर.

भारत जैन विश्व

विशिष्टोपदेश प्रिंटिंग वर्क्स, ४९५ बानवार पेठ, पुणे शहर.

मुद्रक—गणेश

१५ गोखले, सेक्रेटरी;

તુરંગવતી

અર્થાત

ભગવાન્ શ્રી મહાવીરદેવનાં શાસનની એક સાંધ્વીની
હૃદયંગમ અને આદર્શભૂત

આત્મકથા.



પ્રાકૃતમાં

મૂળકર્તા: પાદલિપ્તાચાર્ય—

સંક્ષેપકર્તા: નેમિચંદ્ર ગણિ.



પ્રો. લાયમેનના જર્મન અનુવાદ ઉપરથી ગુજરાતી કરનાર
નરસિંહભાઈ ઈશ્વરભાઈ પટેલ.

શાન્તિનિકેતન.

પ્રકાશક

બખલચંદ કેશવલાલ પ્રે. મોદી.

હાજપટેલની પોળ-અમદાવાદ.

વિક્રમ સં. ૧૯૮૦.

[સર્વ હક્ક સ્વાધીન.]

સને ૧૯૨૪.

આવૃત્તિ ૧ લી.

કી. રૂ. ૦-૨૨-૦.

નકલ. ૧૪૦૦.

શ્રી "વીર-શાસન પ્રિન્ટીંગ પ્રેસમાં" શ્રી કેશવલાલ દલમુખલાલએ છાપ્યું
દે. કાગુપુર, દહેશાળા-અમદાવાદ.

દેશવલ્લભ એમચંદ મોદી (ખીડર) ની પુત્રી
(મોહનલાલ પોપટલાલ ડાકટર (ખીડર) ની પત્ની)



માણિક

૧૮ ૧૯૬૨ ના કારતકે શુદ્ધ ૧૨

બુધવાર તા. ૮ નવેમ્બર સને ૧૯૦૫

દેહત્યાગ સં. ૧૯૭૬ ના માગસર વદ ૧૩

શનીવાર તા. ૧૬ ડીસેમ્બર સને ૧૯૨૨

અર્પણ પત્રિકા.

મહારી વ્હાલી લગિની !

પૂર્વસંચિતનો કૃપા વિના આવી બેન ક્યાંથી મળે? ડાહી અને વિવેકી
 તો વણીય બહેનો હોય, પણ આવી કુટુંબવત્સલ અને સત્કર્મમાં
 આમ ધાર્યું કરનારી તે તો દુર્લભજ. માણેક ! ત્હારા મનોરથ
 ઉમદા અને પરાપકારી; એ મનોરથ પાર પાડવામાં ત્હારો આ-
 ગ્રહ અને ત્હારું બળ અમને સૌને હરાવે છે ! તું ધાર્યું
 કરનારી, તું ત્હારા ગુણથી, બુદ્ધિથી અને કર્મથી સૌને
 છતનારી ! તે અમારામાં જન્મી, માટેજ અમારો
 ભાગ્યોદય છે. ધન, વૈભવ કે રાજ્યસત્તા કરતાં
 તારા જેવા રત્નના સહવાસીને કેમ અલિ-
 માન ના ચડવું બેઠાયે ? છતાંય તારો
 સહવાસ કેટલો દુઃક. સુવાસવાળુ ઉ-
 ત્તમ કંમલ. ખીસતાં પહેલાંજ કર-
 માઇ બય તે દેખી કોને શોક ના
 થાય ? એમ છતાંય શોક કયે શું વળે
 એમ માની ત્હારા સ્મરણાર્થે તારા
 જેવીજ સુંદર, પ્રેમાળ અને ગુણવાન
 નાયિકાવાળી મહાન્ કથા, સમયના ગાદ-
 તિમિરમાંથી બહાર પ્રકાશમાં લાવવા પ્રયત્ન કરવો
 તે ઉત્પન્ન થતાં શોકને ભુક્તવાનો એક સરલ માર્ગ છે
 એમ માનીનેજ આ પુસ્તક ત્હારા સ્મરણાર્થે અર્પણ કરું છું.

કો ન જળો હરિસિદ્ધ તરંગવદ્-વદ્યરં સુનેહન ।

ઇયરે પવંધ-સિધુ વિ પાવિયા જીવ મહુરત્તં ॥

પ્રભાવક ચરિત્રના કર્તાએ 'પાદલિપ્તાચાર્યવું' મૃત્યું સાંભળી ડોક કવિએ કહેલ
હુઃખોઃગારનિર્દશક એક પ્રાચીન પ્રાકૃત ગાથા સંગ્રહી રાખી છે જેમાં જણાવ્યું છે કે:—

સીસં કહ વિ ન ફુટં જમસ્સ પાલિત્તયં હરંતસ્સ ।

જસ્સ મુહનિઙ્ગરાઓ તરંગલોલા નઈ વૃદા ॥

પાદલિપ્તાચાર્યની તે મૂળ કૃતિ આજે કયાંયે ઉપલબ્ધ નથી. ધણા જૂના ભંડારોમાં અને તેવી જૂની ટીપોમાં પણ આ કથાનો ઉલ્લેખ મળી આવતો નથી. આથી જણાય છે કે એ મૂળ કથા ધણા જૂના સમયમાં નષ્ટ થયેલી હોવી જોઈએ.

જે કૃતિને આધારે પ્રસ્તુત અનુવાદ તૈયાર કરવામાં આવેલો છે તે એક મૂળ કથાના સારરૂપે પાછળથી રચાયેલો સંક્ષેપ છે, અને આ વાત પહેલા જ પાના ઉપરના બીજા પ્રેરણાક્રમાં સ્પષ્ટ જણાવેલી છે. આ સારના કર્તા હાઈયપુરીય ગરુડમાં થયેલા આચાર્ય વીરભદ્રના શિષ્ય નેમિચંદ્રમણિ છે, એમ છેવટે આપેલી ગાથા ઉપરથી જણાય છે. એ ગાથા આ પ્રમાણે:—

હાઈયપુરીયગચ્છે સૂરી જો વીરભદ્રનામેતિ ।

તસ્સ સીસસ્સ લિહિયા જસેના ગણિનેમિચંદસ્સ (૧) ॥

આ હાઈયપુરીય ગરુડ અને તેમાં થયેલા આચાર્ય વીરભદ્ર તથા તેમના શિષ્ય નેમિચંદ્ર વિગેરેના સમય ઇત્યાદિના સંબંધમાં હજી કંઈ વિશેષ જાણવામાં આવ્યું નથી, આખો ગ્રંથ પ્રાયઃ ૧૬૪૪ પ્રાકૃત આયોમાં રચેલો છે.

મૂળ કથા ગદ્યપદ ઉભયમાં હશે એમ જણાય છે અને તેની ભાષા પ્રાચીન અપભ્રંશ હશે. ઉપર જે મૂળ કથાની પ્રથમ જણાવનારા પદો રોકેલાં છે તે ઉપરથી તેનું મહત્ત્વ સહેજે જાણી શકાય તેમ છે. વિદ્વાન શોધકો અને સુનિષ્ઠો આ બાબત લક્ષ્ય રાખે અને જૂના પુરાણ ભંડારોમાંથી જે મૂળ ગ્રંથ મળી આવે તો જૈન કથાસાહિત્યની કીર્તિ દિગંત પર્યંત ગળકી ઉઠે તેમ છે.

આ ગ્રંથની એક મૂળ પ્રતિ, અમદાવાદમાં, કુતરસાની પોળમાં હરકોર શેઠ-જીના નામથી ઝોળખાતી હવેલીમાંના બેન ટ્રીચંચળખાઇ-શેઠ ઉમાભાઈ હડીસિંગના ધર્મશત્રી-તરફથી મળી આવી હતી, અને એક બીજી પ્રત પાલીતાણાના આણંદજી કલ્યાણજીના ભંડારમાંથી મળેલી છે.

આમાંની એક પ્રત જર્મનીના પ્રસિદ્ધ વિદ્વાન પ્રો. યાકોબીને, શ. ર. કેશવલાલ પ્રે. મોદીએ મોકલેલી, અને તેમણે તે પ્રત પોતાના મિત્ર ડૉ. હાથમાનને આપી. ડૉ. હાથમાનને એ ગ્રંથ અતિશય રસદાયક જણાયાથી તેમણે પ્રથમ આખા ગ્રંથની પોતાના

હાથે નકલ કરી અને પાઠશુદ્ધિ કરવાનો પ્રારંભ કર્યો, એ પછી તેની અર્થ-સંકલ્પના કરતાં હરમ્યાન મૂળ પાઠ કેટલાક ઠેકાણે વધારે અશુદ્ધ અને ટ્યાંક ખંડિત જેવો જણાવાથી બીજી પ્રતિ મેળવવા માટે તેમણે રા. રા. મોદી સાથે પત્ર વ્યવહાર શરૂ કર્યો. એમ કરવામાં ઘણો સમય જશે એમ જણાવાથી, વચ્ચે તેમણે આખા ગ્રંથનો જર્મન ભાષામાં ઉત્તમ અનુવાદ કરી તેને છપાવીને પ્રસિદ્ધ કરી દીધો. ડૉ. લૅયમેનનો એ અનુવાદ ઘણો સરસ અને કાવ્યમય ભાષામાં થયેલો હોવાથી તેમજ મૂળ કથાની વસ્તુ પણ એક ભાવપૂર્ણ ભારતીય આદર્શ હોવાથી યુરોપમાં તેના તરફ સારું લક્ષ્ય જે આપ્યું છે અને બીજી યુરોપીય ભાષાઓમાં પણ તેનાં ભાષાંતરો થવા લાગ્યાં છે. અમારી પાસે એ જર્મન અનુવાદ આવતાં અમને પણ એવું ગુજરાતી ભાષાંતર પ્રકટ કરવાની ઇચ્છા થઈ. પણ તે પૂર્વે જ શાન્તિનિકેતનમાં રહેતા શ્રીયુત નરસિંહભાઈ ઈશ્વરભાઈ પટેલને હાથ જર્મન ભાષાન્તર આવવાથી ગુજરાતી ભાષાન્તર કર્યું, અને તેને પુરાતત્ત્વ મંદિરના આચાર્યશ્રી જિનવિજયજી મહારાજે ગહનત લઈ, પાત્રીતાણાવાળી મૂળની પ્રતિની સાથે સરખાવી ચોખી આપ્યું છે.

આ સાથે પાદલિપ્તાચાર્યના અમય વિગેરેના વિચાર સંબંધમાં એક વિસ્તૃત નિબંધ લખી આપવા માટે સુનિશ્ચી જિનવિજયજી ને નિવેદન કરતાં તેમણે તેમ કરી આપવાની ઇચ્છા દર્શાવી હતી, પરંતુ સમયાભાવે અદ્યપિ તેઓશ્રી તે લખા ન શક્યા તેથી, હાલ તુરત તો અમે આ સંબંધમાં આટલું જ નિવેદન કરી સંતોષ માનીએ છીએ.

ડૉ. લૅયમાન મૂળ ગ્રંથ તૈયાર કરી રહ્યા છે અને તે યોગ્ય દિવસમાં પૂર્ણ કરી શકવાનું જણાવે છે. એ મૂળ ગ્રંથ પ્રસિદ્ધ થવાને પ્રસંગે આ સંબંધમાં સંવિરતર ઐતિહાસિક હકીકત વાચકોને જોવા મળશે એવી આશા રહે છે.

આ બાબત માટે અમે શ્રીયુત નરસિંહભાઈ તથા શ્રી જિનવિજયજી ના અત્યંત આભારી છીએ.

તેમજ કેટલાંક મુદ્દે વિગેરે જોવામાં અને ઉપયોગી સૂચનાઓ આપવામાં સાક્ષરવર્થ રા. બ. શ્રીયુત રમણભાઈ મહિપતરામ નીલકંઠ. બી, એ.એલ.એલ. બી, તથા શેઠ વર્ધમાન સ્વરૂપચંદ જે પરિશ્રમ કીધો છે તે બદલ તેમનો પણ અમે અંતઃકરણપૂર્વક આભાર માનીએ છીએ.

અમદાવાદ હાનપટેલની પોળ.

એપ્રિલ ૧૯૨૪.

લી.

પ્રકાશક.

સાદ્વી

અર્થાત

પ્રાચીન ભારતની એક નવીન કથા.

હું આ ને કથા રજુ કરું છું તે ખરેખર એક નવીન કથા છે. કારણ કે ભારતવાસીઓ સિવાય બહારના દ્રાવિડો અઘાપિ એ વાંચી નથી, અને ને ભારતમાં એકવાર એ લોકપ્રિય થઈ પડી હતી, ખુદ તે ભારતમાં પણ અત્યારે એને દ્રાવિડ બળતું નથી. આ કથા પ્રાચીન ભારતનું દાન છે, પણ વાંચીને એને વાચક કથા કાળમાં મુકશે એ હું ચોક્કસ રીતે જાણતો નથી. હુંકામાં એટલું જ કહેવાનું કે એમાં વર્ણવેલા ધાર્મિક સિદ્ધાન્તો જૈન કાળમાં પ્રકટ થયા છે, તેથી કથા કાષ્ટરના પછીના કાળમાં એટલે કે બીજી કે ત્રીજી સદીમાં લખાઈ હોવી ભ્રમ છે.

કાળનિર્ણય ચોક્કસ રીતે વાચક જાણશે ત્યારે વખતે ફરીવાર એનો ભ્રમ હટી જશે. મયાળે મેં કથાકાર પાદ્મકિન્નરું નામ આપ્યું નથી. વળી પુસ્તકનું નામ એમણે ને આપ્યું છે તે પણ લીધું નથી. પોતાની કથા કહેનાર સાખીના નામ ઉપરથી એમણે 'તરંગવતી' નામ રાખ્યું છે. આમ લેખકના અને કથાના મળ નામને મેં શામાટે વિચારી મુક્યાં છે? મારે એ વિચારી મુક્યાં પડ્યાં છે, કારણ કે એ નામવાળી એમની મળ કૃતિ ખરી રીતે તો જાહ કાળથી નાશ પામી છે. એમાંના વસ્તુ ઉપરથી આશરે એક દહાસ વર્ષ પછી 'તરંગદોલા' એવા નવા નામથી તેનું એક નવું મંસ્કરણ થયું હતું, એ દશ સંચવાઈ રહ્યું છે, અને તેના જ ઉપરથી આ અનુવાદ થયો છે.

મેં આપેલા નામ પ્રમાણે તેના સમયનિર્ણયની ને લોકોએ આશાઓ રાખી હશે તે આશાઓ તો મારે લીધી કરી નાખવી પડે છે, પણ એટલું તો હું નક્કી માનું છું કે એ બધું જતાં આપણું આ પુસ્તક દરેક સાહિત્યલક્ષને અને દરેક ધર્મશોધકને જાહ ઉપયોગી થઈ પડશે. માનસશાસ્ત્રીને પણ ઉપયોગી થઈ પડશે; અને એ આશ્ચર્ય સહિત ભ્રમી સંકેતો કે પુનર્જન્મનો સિદ્ધાન્ત કેવી પ્રજાજાતીની ભાવનામય પ્રદેશ ઉપર અસર કરીને ઠેક વસ્તુસ્થિતિમાં આવી હશે એ અને શ્રદ્ધાના સામાન્ય મતો પેઠે એ મત પણ વ્યવસ્થિત રીતે પ્રવર્તે છે. વૈદ્ય મુકદ્દિને પણ એમાંથી ત્રિલોચ વિશે વાંચવાનો આનંદ મળશે.—એક ત્રિલોચ એવો પણ જાણીશ કે ને કથાના વિકાસને જ નહિ, પણ મુધરેલા સમસ્ત સંસારને અને એ કથાકાર મુકદ્દિને લાગેલો છે.—જીની આપણી કથામાં પુનર્જન્મની ભાવનાની અવિરોધભાવે પ્રકટ થાય છે, કારણ કે આપણે માત્ર કોઈ દ્રાવિડ વાર સાંભળેલી એવી પ્રકૃતિજનની સાચી કથાઓ પણ એમાં આવે છે. બ્રેમના (Brahm) પ્રાણીજીવ વિષેના લેખો વાંચીશું તો આખા એશિયામાં અને બીજાં પણ પોતાના સ્નેહને માટે પ્રખ્યાત થયેલા સ્વવાક જાતિના પંખી માટે નીચે પ્રમાણે જાણી શકીશું (ત્રીજી આવૃત્તિ, ૧૮૬૦-૧૮૮૨, ભાગ ૬, પૃષ્ઠ ૬૨૪):

તુર્કસ્તાનમાં અમારામાંના એક જણે એક જોગમાંની માદકને જોળી મારીને તેની પાંખ

તોડી નાખી અને તેના ગસરાયલા નરના દેખતાં તેને પકડીઃ એ નર હિડી તો ગયો, પણ ત્યાંથી દૂર ગયો નહિ; અને બીજા ટાઇપલુ સૂઝવડે ક્યું હોત એમ એણે પણ ક્યું કે એ વેદનામય સ્થિતિ માટે કદપાન્ત કરી કરીને ચારે બાલું ગોળ ઉડવા માંડ્યું, છ અવાજ કર્યા પણ એ ત્યાંથી ગયો નહિ અને પોતાની પ્રિયાને માટે એને એણે પ્રાણ આપ્યો."

આ ભારતી દેવિએ લખ્યું છે એ જાણે ઉપર જણાવ્યા પ્રમાણેના જીવનનો આધાર લેઈને પુનર્જન્મનો મત પ્રતિપાદન કરવા માટે પ્રકૃતિની કવિતા નો લંબી હોય! આત્મા માત્ર માણસમાં જ અવતરે છે એવા પ્રિચ્છિત મતને લીધે, બીજાં પ્રાણીમાં આત્મા નથી એવી માન્યતાએ, પ્રાણીના આત્મા પ્રત્યેની આપણી લાગણીઓ મરી ગઈ છે, અને તેથી સાધારણ રીતે આપણામાં આવાં આત્મલાવ-સમ્મનવાળી પ્રકૃતિની કવિતા સ્ફુરતીજ નથી. પણ એમાં ટાઇપ પ્રદિદ નથી કે ભારતમાં એ કવિતા વિકસેલી છે અને તે મનુષ્યના અને પ્રાણીના આત્માને સ્નેહસંબંધે જોડે છે. ભારતના આ વિચારોને રૂપાન્તર કરીને ઓવિડે (Ovid) અને તેના સમયના ગ્રીક વિચારક ટાએ લીધા હતા.

એ લાગણી અને પ્રિયે વર્ણવી છે એ અવલોકન માટેની વસ્તુસ્થિતિ જોઈને આપણે આગળ આશીએ તો જણાશે કે આપણા કથાકારને ભારતના આદિકવિ વાલ્મીકિ સાથે પણ સંબંધ છે એમ જણાશે. એ કવિએ, જે એક પક્ષીના જીવનસાધીને એક પારખીએ મારી નાખ્યો તે પક્ષીને માટે, બહુ સુંદર સ્લોકોમાં ખેદ કર્યો છે. આપણી કથાના વણાટમાં ભારતની લાવનાનો, અરે એશિયાની લાવનાનો અને એથીય વિશાળ લાવનાનો હાથ કર્યો છે.

આ કથાનું વસ્તુ અને એમાં જે કંઈ બીજા ખાસ ખુબીઓ છે તેથી યુરોપમાં એ લોકપ્રિય થશે; એટલું જ નહિ પણ એમાં રહેલી કવિની તેજસ્વિતા તથા સરળતા પણ પ્રકટ થશે. ભારતના કથાત્મક સાહિત્યમાંથી જે કંઈ આપણને મળે છે તેમાંનું ઘણુંખરું આ કથામાં છે. કારણ કે અંકાકાંચના નીરસ વિસ્તારની અને લઘુ કાવ્યતા સરસ અર્કની વચ્ચેનો સુખી મધ્ય માર્ગ ભારતનો સાહિત્યમાં લાગ્યે જ હોય છે.

છતાંયે, આ કાવ્યમાં આવી ભારતીય અને સાર્વદેશિક મહત્તાઓ છતાં, પ્રમ થાય છે કે, મૂળ કથાને નાસ પામવાનું શું કારણ હશે? નવા પ્રસ્કરણનો લેખક પોતાના પૂર્વકથનમાં લખે છે, કે: "અનેક કારણોત્તે લીધે એ મૂળ કથા, આજે સમજવી કઠણ થઈ પડી છે." તેથી એને ભવિષ્યમાં કાયમ કરવાને માટે આ જીવનના જીવતા રૂપમાં પાછી આણવી પડી. તેવી જ રીતે અનુવાદ કરીને આજે હું પણ એને નવું સ્વરૂપ આપું છું જેથી યુરોપમાં એ વાંચી શકાય.

મૂળ કથા તો સમજવી કઠણ છે. પણ આ અનુવાદ પણ સમજવો કઠણ પડે નહિ એટલા માટે મારે અહીં કંઈક ઉમેરીને વાંત સ્પષ્ટ કરવી જોઈએ.

આર્યકુળની ભારતશાખા દક્ષિણ સૂર્યના પ્રતાપમળે બીજા શાખાઓ કરતાં વહેલી પાછી ઉડી. તેમજ બીજા શાખા કરતાં એને પ્રવાસમાં આદિવાસીઓ તરફથી વિદ્વેષ પણ બહુ ખમવાં પડેલાં. વળી આર્યકુળની બીજા શાખાઓને સેનેરીક કુળમાંથી, (બાબિલોનિયનોમાંથી; મિસરીઓમાંથી અને પેલેસ્ટીનોમાંથી) જેમ જીવનરસ મળ્યો હતો એવો જીવનરસ ભારતકુળને બહાર કાઢવાથી મળેલો નહિ.

ભારતકુળના આર્યો વહેલા પાછી ઉડ્યા એની એ જ સાબિતિ છે કે એમણે સાહિત્યધારા ઇતિહાસમાં સૌથી વહેલી, વહેવરાવી અને વળી વારસામાં મળેલા પ્રતિષ્ઠાધર્મમાંથી, ઉચા

પ્રકારનો ધર્મ વિદ્યમાનો. તેથી યુરોપમાં આપણા જુગો કરતાં ઇતિહાસના જુગ-જેવા કે પ્રાચીન, મધ્ય અને નૂતન જુગ ભારતમાં પણ પારી શકાય-પણ વહેલા શરૂ થયા.

આશરે ઇ. સ. પૂ. ૧૫૦૦ વર્ષથી ભારતમાં પ્રાચીન જુગ શરૂ થાય છે. ત્યાર પછી હજારેક વર્ષથી મધ્યજુગ શરૂ થાય છે, એ જુગમાં પ્રકર્ષનો વિકાસ થયો અને ઉપભાષા અનેલી સંસ્કૃત ભાષામાં-વિકાસતા બાબત્તધર્મના પ્રકર્ષની રેખા પાસે એક નવું જ પગલું મુકાયું: સાક્ષી આવેલી બળિપૂજનો અને સાથે સાથે એ સંસ્કૃત ભાષાનો પણ જુદા ધર્મે અને એવા બીજા ધર્મોએ અનાદર કર્યો, અને વિવિધ પ્રકારની લોકભાષાઓનો-એટલે કે પ્રાકૃત ભાષાઓનો-ઉપયોગ કર્યો. સુસલમાનોના હુમલા થયા ત્યારથી છેવટે નૂતન જુગ ખેડા; ઉપર વર્ણવેલા એ પ્રકારના પ્રકર્ષોમાં એક પરદેશી-સુસલમાની પ્રકર્ષ પોતાનું કારગીઆરખી ભાષાધન લેઈ આવી મળ્યો.

આમ ધર્મના તથા ભાષાના ઇતિહાસને હિસાબે ભારતનો સમગ્રત મધ્ય જુગ, એક બીજાની સાથે વહેતા તથા ભેગા વહેતા વિરૂદ્ધ પ્રકારના પ્રવાહોનો બનેલો છે. પ્રથમ તો નવા ધર્મોએ સામા બળને રોષા દીધું; આમ પ્રખ્યાત મહારાજ અશોકે આશરે ઇ. સ. પૂ. ૨૫૦માં બૌદ્ધ-ધર્મ પ્રદર્શ કર્યો અને આખા ભારતમાં એણે જે વિખ્યાત લેખો દેાતરાખ્યા તે પ્રાકૃતમાં દેાતરાખ્યા. વળી જુદાધર્મમાં અને તેના સહચર જૈનધર્મમાં ધાર્મિક પ્રદેશ ઉપરાંત સાહિત્યના બીજા સર્વ સાધારણ પ્રદેશમાં પણ પ્રાકૃતનો છુટથી ઉપયોગ થયા લાગ્યો. પણ પાછળથી, આશરે ઇ. સ. ની ચોથી સદીમાં સંસ્કૃતે પાછો ફરી પોતાનો સર્વોપરિ અધિકાર મેળવ્યો; અરે, એ ધર્મોમાં પ્રજા એણે પગ પેસાડ્યો ને કંઈક અંશે તો એનો પુરો કબજો લીધો.

તેથી હવે થયું એમ કે પ્રાકૃત લેખકો જે દેશમાં ને કુળમાં ઉછર્યા હોય તેને અનુસરીને તથા તેમના ઉપર જે પ્રભાવમાં સંસ્કૃત ભાષાનો પ્રભાવ પડ્યો હોય તે પ્રમાણમાં સંસ્કૃત નહિ એવી જુદા લોકભાષાના-એટલે કે દેશમાં બોલાતી ભાષાના ભંગારમાંથીજ વિવિધ સમૃદ્ધિ વાળા શબ્દોનો ઉપયોગ કરતા થયા. ઇ. સ. ની શરૂઆતની સદીઓમાં જે એક આ ભાષાધન પ્રાન્તભાષાઓનાં શબ્દો-તરફ મોહાયી વળ્યો, તે પછીની સદીઓમાં સંસ્કૃત ભાષા પાછી સર્વ સાધારણ ચર્ચાગત ત્યારે એનો તે પ્રમાણમાં ત્યાગ થયો.

જે કાળમાં, અથો લખવામાં પ્રાન્તની પ્રાકૃત ભાષાનો ઉપયોગ કરવાનું વલણ હતું અને સાહિત્યવ્યવહારમાં એ ભાષાઓ બધાને સમજતી હતી તે કાળમાં-ઈ. સ. ની શરૂઆતની સદીઓના એ કાળમાં આપણી કથા રચાઈ હતી. પણ સંસ્કૃતના દબાણને લીધે પાછળથી પ્રાન્ત-ભાષાઓ વ્યવહારમાંથી ખસતી ગઈ અને સમજવી કઠણ થતી ગઈ. અને પછી એવું થયું કે જે લેખકો એ ભાષાઓ સમજતા હતા તેઓ એ અંધોનાં નવાં સંસ્કરણ કરવા લાગ્યા. એવા પ્રાચીન સમયના અથો પાછળથી એવી રીતે નિરૂપયોગી થઈ પડ્યા ને તેથી નાશ પામવાના લયમાં આવી પડ્યા. એવા અંધોને આપણી આ કથાની પેઠે સંસ્કૃત શબ્દોથી અર્વાચીન પ્રાકૃતમાં ઉતારી લેઈને, એટલું જ નહિ પણ સીધો સંસ્કૃત અનુવાદ કરીને બચાવી લીધાં છે. આ કથાની પેઠે ઇ. સ. ની શરૂઆતની સદીઓમાં લખાયેલી અને પાછળથી નાશ પામેલી બૃહત્કથાનાં એ જાનનાં ત્રણ નવાં સંસ્કરણ હાલ મળી આવે છે.

હાલની ગાયાસમશતીને નામે જોળખાતા શૃંગારિક અંધની કાળગણનામાં, પ્રાન્તિક ભાષાઓમાં-પ્રધાન એવી એની પ્રાકૃતને મટિ શરૂવણ ઉભી થઈ હતી. પણ એ ગાયાસમશતીમાં

બારેક લેખકનો હાથ છે. અને એ ગાથાઓમાં પ્રબળ અને સરસ છાપ પાડે એવી રીતે એટલે કે શુદ્ધ સ્પષ્ટ અર્થભરી રીતે ગૃહજીવન આંકવામાં આવ્યાં છે. તેમાં શબ્દો કે રચના બદલીને, કથાપ્રધાની પેઠે, અવાંચીન સ્વરૂપ આપવામાં આવ્યું નથી, સુંભાર્યે એ વગરફેરફારે જળવાઈ રહી છે; અને દશકાઓ પૂર્વે આદ્યેષ્ટ વેબરે પોતાની પ્રબળ શક્તિ એના ઉપર જેમ અંશમાવી હતી તેમ ખીમ કોઈ પડિતે પાછું એ કામ હાથમાં લેવું નોંધ્યું છે. આ ૭૦૦ ગાથાઓના ભાગ્ય ઉપરથી આપણે નિર્ણય કરી શકીએ તો એમ પણ ખુશીથી કહી શકીએ કે આપણી કથા તેમજ બૃહત્કથા પણ મૂળ સ્વરૂપે સચવાઈ રહી હોત. કારણ કે નવા સંસ્કારથી વસ્તુ તો સચવાઈ રહ્યું, પણ એ રૂપ બદલાવાને કારણે જ વસ્તુનું પુરાણ સ્વરૂપ મૂરી રીતે દબાઈ ગયું.

આ કથાની સાથે 'કામનીત' નામની ગેલેડેપની દૌધિય-ભારત (અથવા એમ કહીએ કે ભારત-જર્મન) કથા સરખાવતાં દૌધિય (જર્મન) પોતાને જર્મન નહિ પણ દૌધિય કહે છે અને ડેન, દૌધિય, શ્વીસ, શ્વાય્સ નોર્વીશ વગેરે પ્રભુઓ જર્મન કુળની છે તેથી જર્મન કહેતાં એ બધી પ્રભુઓનો સમાવેશ કરે છે) વાચકને બહુ રસ પડશે. એ બંનેમાં આ ત્રણ ઘટનાઓ આવે છે:

પ્રથમ તો, નાયિકા પોતાની શક્તિથી આગળ આવે છે, ભારતની નાયિકા આશ્ચર્યજનક કુટુંબપરીક્ષાથી અને ગેલેડેપની નાયિકા દહે રમવાની કળાની અદ્ભુત કુશળતાથી.

બીજું, નાયકનાયિકાને પાછલો ભવ સાંભરી આવે છે અને તે બંને કથાઓમાં જુદી જુદી રીતે; ભારતનાં નાયકનાયિકાને આ ભવમાં અને, ગેલેડેપનાં પેલા ભવમાં.

ત્રીજું, કેવળ જુદી પડતી પણ લટારાની વાત બંનેમાં આવે છે, ભારતની કથામાં બંનેને લેટે છે, ત્યારે ગેલેડેપનીમાં માત્ર નાયકને જ લેટે છે.

આવી બાબતની વધારે સરખામણી મારે કરવી જોઈતી નથી. મારા કરતાં આપણા સાહિત્ય-ધર્મિદાસ પડિતો ભારતની અને ભારતમાંથી ઉત્પન્ન થયેલી ભાવનાઓને માર્ગે ઉતરે અને એ બેની સરખામણી કરીને કિંમત આકે તો સારું.

તેમજ આ કથાની પ્રધાન ભાવના રૂપ મહાવીરના ધર્મ ઉપર પણ અહીં કંઈ બોલવા ઇચ્છતો નથી, કારણ કે જેને એ સંબંધે કંઈ વધારે જણવાની ઇચ્છા હોય તે "બુદ્ધ અને મહાવીર" નામની મારી ચોપડીમાંથી વાંચી લેશે. આ કથાની સાથે એ ચોપડી પણ તે જ અંચપ્રેકાશકે પ્રકટ કરી છે.

+ + + + +

જે હસ્તલિખિત પ્રતિ ઉપરથી આ અનુવાદ કરવામાં આવ્યો છે, તે પ્રતિ બેનવાળા મારા શુભિત્ર ગ્રેડિસર હરમાન યાકોબીએ મને પહેલાંવાર ૧૯૨૦ના ઓક્ટોબરમાં આપી હતી. તે પહેલાં મને એમણે સમાચાર આપ્યા હતા કે પ્રતિ ભારતમાંથી આવી છે, પણ સાથે જણાવ્યું હતું કે તે એટલી અશુદ્ધ છે કે તેમાંની વાર્તાની ધારા સળંગ કરવાને માટે બહુ કાળ અને શ્રમનો વ્યય કરવો પડશે, અને નવી આવૃત્તિને માટે મૂળ તૈયાર કરવું તો મોટે ભાગે અશક્ય પણ બને. મેં ઉત્તર આપ્યો કે ગમે તેમ હોય પણ મારે એક વખતે તો એની વાચના કરવી છે, કારણ કે જે અંચનું આ નવું સંસ્કરણ થયું છે એ મુગ્ધાંચની મહત્તા, એનો ઉલ્લેખ કરનાર

સાતમી અને આઠમી સદીના દીકરાઓની દીકરાઓ, ત્રીસ વર્ષ પહેલાંથી જ મારા ધ્યાનમાં આવેલી છે. મારા મિત્રે એ પુસ્તકની તપાસ કરવા, એ હસ્તપ્રતિ ખુદીથી મને સોંપી. એમને એ પ્રતિ અમદાવાદના રા. કેશવલાલ ગ્રેમચંદ મોદીએ આપી હતી. આ પ્રત કેટલીક સદીઓ ઉપર લખાએલી કોઈ પ્રતિના ઉતારા રૂપે છે. તેનાં પંદર પાનાં પ્રથમ રા. કેશવલાલે (ગાથા ૧-૪૫૭) તપાસી જોવાને પ્રો. યાદાજીને મોકલ્યાં હતાં. પાછળથી તેમણે પુરી પ્રત મળ્યે મને મોકલી દીધી હતી.

હસ્તપ્રતના ખુટતા ભાગ ઉપરથી (અને હું માનું છું ત્યાંસુધી તેના સ્વરૂપ ઉપરથી) યથામતિ માફ અતુમાન એવું છે કે કયા પદમાં છે અને ગાથાની અંખ્યા કરવામાં આવી છે. એવો ખુટતો મોટો ભાગ એક જ જગ્યાએ છે અને તે ગાથા ૬૭૧ ઉ. થી ૬૭૭ ઉ. સુધીનો તેર પંક્તિઓ વાળો છે. ગાથાઓના અંકની ગણતરી બધેય (૧૦, ૨૦, ૩૦, એમ) દશકાથી કરેલી છે, અને ૬૦ના અંકને બે ચાર મુક્યો છે, તેથી ૬૦થી બધા અંકમાં દસદશની જૂલુ દેસુધી આવી, આવી છે; એક જગ્યાએ ખુટતો ભાગ તો છે જ નહિ, છતાં ગમે તો મૂળ લેખના દૃગમે તેો સંસ્કારકના દષ્ટિકોણથી કંઈક ભૂલ થયેલી લાગે છે. પરંપરા પછી નાવંકનાયિકાએ અનેક માસ પછી સંસારતપાગ કર્યાનું એક જગ્યાએ જણાવ્યું છે. બીજી જગ્યાએ બાર વર્ષ પછી સંસાર તપાગ કર્યાનું જણાવ્યું છે. વાર્તાને આખી ચળંગ મોકળા પછી આ વિરોધભાવ ટાળી શકાય. અનુવાદમાં આવી પૂર્તિ (બેશક કૌંસમાં) ૧૦મા અધ્યાયને આરંભે મુકી છે, ૧૩૦૬મી ગાથો પૂર્વે હસ્તપ્રતમાં અમુક ભાગ ખુટતો હોય તેમ લાગે છે, પણ (ગાથાના અંક જોતાં) કંઈ ભાગ ખુટતો જણાતો નથી; એટલે એ લેખક કે સંસ્કારકનો માત્ર દષ્ટિકોણ જ છે.

૧૬૪૪ ગાથામાં ભારતભાષામાં આ કથા પુરી થાય છે. મેં એમાં ૧૨ અધ્યાય પાડ્યા છે. અને માછીનમાં ગાથાના અંક મુક્યા છે. તેથી અંકના ભાગને એકબીજા સાથે સરખાવી જોતાં ક્યાં અને કેવી રીતે મેં અનુવાદને સંક્ષિપ્ત કર્યો છે એ સમજી શકાશે. બાર અધ્યાયનાં નામ, તેમજ કથાભાગમાં હકીકત સ્પષ્ટ કરવા કે કથા ચળંગ કરવા કેટલાક શબ્દો મેં કૌંસમાં મુક્યા છે.

Freiburg i/B. im Hause Sutterlin, }

Mitte Mai 1921.

Ernst Leumann.



તરંગવતી.

(૧. મંગલ અને પૂર્વકથન.)

૧-૪. શાશ્વત, અચળ અને અનુપમ સુખને પ્રાપ્ત કરનાર તથા જન્મમરણના કલ્લોલોવાળા દુઃખસમુદ્રથી પાર થનાર સર્વ સિદ્ધાન્તમાઓને વન્દન હો. સદ્ગુણ, સત્ક્રીડા, વિનય અને વિજ્ઞાન વડે સંઘસમુદ્રની શોભા વધારનાર સત્પુરુષોને નમસ્કાર હો. જેના પ્રભાવથી મૃત છતાં પણ જે ઠવિવરો સદા જીવિત જણાય છે તે સંગીત અને સાહિત્યની અધિષ્ઠાત્રી દેવી સરસ્વતી સુપ્રસન્ન થાઓ. કાવ્યરૂપી સુવર્ણના ગુણદોષોની પરીક્ષા માટે જે કસોટી સમાન ગણાય છે તે વિદ્વત્સમાજનું કલ્યાણ થાઓ.

૫-૬. પાદલક્ષિત આચાર્ય તરંગવતી નામે એક કથા લોકભાષામાં રચી છે, તે ઘણી વિસ્તૃત અને વિચિત્ર છે. એમાં કેટલાંયે કુલકો ભરેલાં છે, કેટલાંયે યુગ્મકો ગુથેલા છે, અને કેટલાંયે વર્કોનાં વર્કો રચેલા છે, એ કારણથી એ કથાને નથી તો કોઈ સાંભળતું, નથી તો કોઈ પૂછતું અને નથી તો કોઈ કહેતું. કેવળ એ વિદ્વાનોના જ ઉપયોગની વસ્તુ થઈ પડી છે, ઈતર જનોને એનો કાંઈ ઉપયોગ થતો નથી, તેથી એવા જનોના હિતાર્થે, તેમજ એ કથા સર્વથા નષ્ટ ન થાય એ માટે પણ, એમાની કિલ્લપ્રાથાઓ અને લોક પદોને છોડી દઈને અતિસંક્ષેપમાં એ આ કથા ગુંથી છે. એટલા માટે મારું આ કાર્ય મૂળ કથાકાર આચાર્યને ક્ષન્તવ્ય થાઓ !

૭-૧૩. ભૂમિતલ ઉપર ઉતરી આવેલ સ્વર્ગલોક મમાન કોશલા (અયોધ્યા) નામે વિશાળ નગરી છે. ત્યાં રહેતી પ્રજા દ્વારા પ્રાદ્યજ, શ્રમજ, અતિથિ અને દેવતાઓની કૃગચ્છેદી, પૂજાએ કરીને સંતુષ્ઠ થએલા દેવો એ લોકો ઉપર સંતતિ અને સંપત્તિના આશીર્વાદો વર્ષાવે છે, એવી એ પુણ્યભૂમિમાં થએલા આચાર્ય પાદલક્ષિતના શુદ્ધિવૈભવના નમુના રૂપ આ કથાને અનન્યમનવાળા થઈ તરંગે સાંભળે. પ્રાકૃત જનોના સર્વ સાધારણ કલ્યાણને અર્થે કરાચ્છેદી આ પ્રાકૃતકથા એ ધર્મશુદ્ધિપૂર્વક સાંભળવામાં આવે તો પછી જમના ભયથી પણ ડરવાનું કાંઈ પણ કારણ રહે નહિ.

ધાય અને ધર્મનો ઉપદેશ સાંભળ્યા પછી તે અહિંસા ધર્મનું મત લે, તો ઉપદેશકને ઉપદેશ આપ્યો સફળ છે; કારણકે પોતાના ઉપદેશથી તે માત્ર ખીજને જ નહિ, પણ પોતાને પણ પુનર્જન્મના અપાર સમુદ્રથી પાર ઉતારી બચ છે; આથી ધર્મનો ઉપદેશ જેવો એ તો સદા શ્રેષ્ઠ છે. તેથી હું જે કંઈ બહુ ધું તે કહું છું; તમે ધ્યાન દેખે સાંભળો. ”

૬૨-૬૫. તે વખતે ઠાસીઓ આનંદે તાળીઓ લે છે અને બોલે છે કે “હવે આપણે એકીટસે આ સાધ્વીની અજળ મુદરતા નિહાળી શકીશું !” પછી એ સાધ્વી અને તેની સહચરી તેમને માંડી આપેલ આસન ઉપર એકાન્ત સ્થાન પર બેસે છે અને આનંદ જેમનો માતો નથી એવી ઠાસીઓ તથા શેઠાણી પણ તેમને સમ્મતાપૂર્વક નમસ્કાર કરીને સામે દ્વરસળાંથી ઉપર બેસી બચે છે.

૬૬-૬૮. પછી એ સાધ્વી સ્કુટ અને વિશદ વાક્યોએ કરીને, કાન તથા મનને મધુર લાગે તેવે સ્વરે, હુંકાણમાં પણ સહજ સમજાય તેવી શૈલીમાં, જગતના સર્વ જીવોને સુખ આપનાર અને જન્મ, જરા, શોક, મરણ આદિનાં દુઃખોનો નાશ કરનાર એવા જિનમહાત્માએ કહેલા ધર્મનો સાર સંભળાવે છે; સચ્ચગૂણનિર્વાણ; અહિંસા, સત્ય, અસ્તેય, અહમ્યથ અને અપરિગ્રહ સ્વરૂપ પાંચ મહાવ્રત; તપ અને સંયમ; વિનય અને ક્ષમા આદિ ગુણવિશિષ્ટ ધર્મનાં તત્ત્વોનું સહસ્ર સમજાવે છે.

૨૪-૨૮. એ સાધ્વીની આજીવે ચેઠે સાંભળ્યો; પણ હે પવિત્ર આર્યા! મને ખીજ સવારે છટું (જે ઉપવાસ) વ્રતનાં પારણા જી મારી આંખો તો તૃપ્ત થઈ છે, પણ નવલીક્ષિત લિલ્લુણીને પોતાની સાથે લઈને તે લિક્ષુણી ગાળી ગયા છે. વિલ્લુને જેમ પગ જહાર નિકળે છે. નાના ફોટા બધા જીવો ઉપર ને આજીવ જગતને નમસ્કાર કરવા નીચી નજરે તથા ધીમે પગલે ચાલતી એ સાધ્વી લિક્ષા અને પતિના ઘરમાં કેવું સુખ હવેલીના પ્રથસ્ત આંગણમાં આવીને ઉભી રહે છે.

૨૯-૩૦. અતિથિઓના આગમનની રાહ જોતી ઘરની કેટલીક ઠાસીઓ આંગણમાં ઉભી છે તે એ સાધ્વીના સાન્નિધ્યને જોઈને ચક્રિત થઈ બચે છે.

૩૧-૩૫. માંહોમાંહે તે વાતો કરવા લાગે છે કે જુઓ આ લક્ષ્મી સમાન સાધ્વી! એના વાળ કેવા સુંદર અને આંકડીયા છે ! એનું સુખ ચંદ્રના જેવું મોહક છે. વિના શ્રણુગારે હો પણ ચીકણે વસ્ત્રેથી એના કાન ઢંકાયલા છે. અને પાણીમાંથી કમળ જહાર નિકળે છે તેના જેવો એનો સુંદર હાથ લિક્ષા માગતી વખતે ત્રણમાંથી જહાર નિકળે છે.

વિષયો સંજોગે અમે વિચાર કરી શકીએ નહિ. પૂર્વે ગૃહજીવનમાં જે આનંદ અમે લોગવતાં તે યાદ પણ કરી શકીએ નહિ. તેપણ જગતનાં દુઃખથી જે ઘૃણા પેદા થઈ એ તરફ જ નજર રાખીને, કર્મનું ફળ મને કેમ પ્રાપ્ત થયું એ વિષેનું જ હું સ્વાતંત્ર્યવનું થોડુંક વર્ણન કરીશ.”

૮૧-૮૫. આ સંજોગથી રાજી થઈને શેઠાણી પોતાની દાસીઓને બધું ધ્યાનથી સાંભળવાની સૂચના કરે છે. અને સાધ્વી હવે પોતાના પૂર્વજન્મની કથા કહી સંભળાવે છે. પોતાના આશ્ચર્યજનક સફળાચ્ચ વિષે અભિમાન કર્યા વિના અને માત્ર ધર્મ ઉપર જ દ્રષ્ટિ રાખીને સુંદર સરસ્વતી દેવી જેવી એ સાધ્વી આમ આરંભ કરે છે : હું જે જાણું છું. અથવા જે મને યાદ છે તે પ્રમાણે મારા જીવનની કથા હું હુંકામાં કહું છું.

(૩. સાધ્વીની પૂર્વકથાનો પ્રારંભ.)

૮૬-૯૪. મધ્ય દેશમાં વત્સ નામે એક મનોહર પ્રદેશ છે. અમૂલ્ય પદાર્થોથી એ પ્રદેશ પરિપૂર્ણ લાગેલો છે. ત્યાં અનેક ધર્માત્માઓ વસે છે, અને જીવનની ત્રણ કામનાઓ ધર્મ, અર્થ ને કામનું ઉચિત રીતે પરિપાલન કરે છે. તે પ્રદેશની રાજધાની કૌશામ્બી ખરેખર સ્વર્ગનગરી છે, મધ્યદેશનું જાણે મોતી એ છે, ખીજી નગરીઓને નમુનારૂપ છે, અને જમુનાને કિનારે જાણે રત્ન છે. ત્યાં ઉદયન રાજા રાજ્ય કરે છે, તે યુદ્ધમાં અને પ્રતાપમાં પ્રખ્યાત થયેલ છે, સાધુઓનો અને સાધ્વીઓનો ભક્ત છે, મિત્રોને સુખકર છે, અને શત્રુઓને ભયંકર છે. અશ્વે, હાથીઓ, રથે અને પાયદળે બળવાન, હૈહય વંશમાં એ ઉતરી આવેલો છે; પૂર્ણચન્દ્ર જેવી એના સુખની શોભા છે, હંસના સ્વર જેવો એનો સ્વર છે, અને સિંહની ગતિ જેવી એની ગતિ છે. કુળે, રૂપે ને ગુણે પ્રખ્યાત એવી એની વાસવદત્તા રાણી છે.

૯૫-૧૦૧. રાજાને સમાન વયનો એક મિત્ર એ નગરનો નગરશેઠ છે, એનું નામ ઋષભસેન છે. નગરના મહાજનનો એ સુખી છે, પ્રજામાં એનો ખોલ વજનદાર ગણાય છે, અર્થશાસ્ત્રના સિદ્ધાન્તોને તે સારી રીતે જાણે છે, લોકોમાં અને વ્યાપારીઓમાં ન્યાય ચુકવી જાણે છે, બધાની સાથે મિત્રભાવે રહે છે, લોકનું લહું કરવાની વૃત્તિવાળો છે, સત્યનિષ્ઠ અને પ્રમાણિક છે, નિષ્કલંક ગૃહસ્થજીવન જીવે છે, અને જૈન ધર્મના ઉપદેશનું નિરંતર શ્રવણ કરે છે.

૧૦૨-૧૦૬. તે શેઠને આઠ પુત્રો થયા પછી છેલ્લે એમણે યમુનાની આર્થના કરી, અને તેના ફળ રૂપે હું એમને ઘેર અવતરી. અવતર્યા પછી મને સારી તજવીજથી પારણામાં સુવાણી, અને મારી સંભાળને માટે હું શિઆર દાસીઓ રાખી. થોડા સમય પછી નાડી-

૧૪૩-૧૪૬. એમ ઠહીને એણે કુલની છાળડી ઉઘાડી અને સપ્તપર્ણનાં કુલથી ભરેલી છાળ મારા પિતાના હાથમાં સુકી. એ કુલનો સુગંધ, હાથીના મદના ગંધ જેવો, તીવ્ર હતો અને તેથી ચારે દિશામાં તેનો સુગંધ પસરી રહ્યો. પ્રભુને અર્પણ કરવાના સંકલ્પે તે છાળને મારા પિતાએ પોતાને કપાળે અડાડી, અને પછી દેવને ચઢાવવાને માટે એમણે તેમાંથી થોડાંક કુલ જુદાં કાઢ્યાં, થોડાંક મને આપ્યાં, થોડાંક મારી માને આપ્યાં ને ણાકીનાં મારા ભાઈઓને અને લાલીઓને પહોંચાડ્યાં.

૧૪૭-૧૫૬. એ જાંઘાં કુલ હાથીદાંતના જેવાં સફેદ હતાં; પણ મારા પિતાની નજર અમુક એક કુલ ઉપર પડી. એ પુલ ભવ્ય સીના સ્તન જેવડું મોટું હતું અને રંગ રહેજ પીળું હતું. થોડીક વાર સુધી તો એ પુલની સામે એ ચક્રિત ચક્રને જોઈ રહ્યા. પછી જ્યારે એ વિચારમાંથી જાગ્યા, ત્યારે હસીને મને એ પુલ આપ્યું ને બોલ્યા:

‘આનો રંગ તો જો ! કુલ ઉછેરવામાં અને સુગંધ પારખવામાં તું નિપુણ જાની છે, તેથી એ વાત તો તું સારી રીતે સમજે. આ જાંઘાં સફેદ સપ્તપર્ણનાં કુલોમાં આ એક પીળું કેમ ? વખતે કોઈ કુશળ કારીગરે આપણને આશ્ચર્ય મમાડવા અથવા તો કુલ ઉછેરવાની કળામાં નિપુણતા દેખાડવા આમ કયું હશે ? કેમકે દાહક અને ખીજાં દ્રવ્યોથી (તેમને કુલના કયારાની માટીમાં મેળવવાથી) કુલના અને ફળના ધાયાં રંગ લાવી શકાય છે. કારણ કે એવા પદાર્થોમાં છોડને ખીલવી તેમાં ફેરફાર કરવાનું વલ્લ્ય હોય છે, જે આપણે ચોમાસામાં નજરે જોઈએ છીએ. છતાં યે જુદાજુદા રંગનાં કુલ અને ફળ આડથીજ પરખાઈ આવે છે.’

૧૫૭-૧૫૯. પિતાનાં વચન સાંભળીને મેં એ કુલને ખરાબર તપાસી જોયું અને પછી એ જાળતમાં ચોક્કસ નિર્ણય ઉપર આવતાં હું વિનયભાવે બોલી:

૧૬૦-૧૬૨. ‘જમીનની જાત ઉપર, વાવેતરની ઋતુ ઉપર, ખીજ કે ઢર ઉપર, તથા ખાતર અને વરસાદ ઉપર આડની જાતનો આધાર રહે છે. અને આ જાંધી વસ્તુસ્થિતિ ઉપર ખારીક નજર રાખીને કુશળ કારીગર કુલને જાંધી જાતના રંગ લાવી શકે છે. પણ આ કુલના સંબંધમાં એવું કંઈ થયું જણાતું નથી, કારણ કે એના સુગંધ ઉપરથી હું અપના થું હું કે પીળો રંગ એ કુલનો પોતાનો નથી, પણ કમળના પુલના રંગનારે માગાં આગેલા છે તેનો છે.’

મારા પિતાએ ઉત્તર આપ્યો: ‘પણ જાગ વચ્ચેનાં સપ્તપર્ણનાં આડ, વચ્ચે આ જે કુલ કુદરત છે તેને કમળના કુલના રંગકણ લાગે કેવી રીતે ?’

૧૬૪-૧૬૬. મેં કહ્યું: ‘આ કુલમાંથી જે ઘાસ આવે છે, તેમાં કમળનો વાસ વધારે પડતો છે અને તે ઉપરથી આપણે એ અનુમાન ઉપર આવવું જ જોઈશે કે

આપણું સમવર્ણનું પુલ કમળપુલને રજકણે પીળું રંગાયું છે. સમવર્ણના એ ઝાડ પાસે તળાવ હોયું નેહએ ને આ શરદઋતુમાં એમાંનાં કમળપુલ યુગ્મ, ખીટ્યાં હોવાં નેહએ; અને ત્યાં એ પીળે રજકણે રંગાયેલાં કમળપુલ ઉપર તેમાંનું મધ યુસવા હબરો મધમાખીઓ બેસતી હશે અને ત્યાંથી આગળ ઉડતાં એ મધમાખીઓ સમવર્ણનાં ધોળાં પુલ ઉપર થઈને જતી હશે અને પોતાની પાંખ ઉપર આણેલા કમળના રજકણ એ પુલ ઉપર પડતા હશે. અને આ રીતે આપણું આ કુલ પીળું થયું હોયું નેહએ. ખીજે તો કોઈ જ સંભવ નથી; અને હું જે કહું છું તેની ખાતરી આપણને આપણી માગણ પાસેથી થઈ શકશે.’

૧૭૦-૧૭૨. માફ કથન સાંભળી પિતાએ મારા કપાળ ઉપર વંહાલથી ચુંબન કર્યું ને બોલ્યા: ‘ખહુજ સુંદર રીતે આ કોહડો તેં ઉકેલ્યો છે; હું પણ મારી મેળે એ જ અનુમાન ઉપર આવ્યો હતો, પણ તારી પરીક્ષા કરવાને માટે જ મેં તને એ પ્રશ્ન કર્યો હતો: ખરેખર હવે તું સત્વર લગ્ન કરવાને યોગ્ય થઈ છે અને તારે યોગ્ય વર શોધી કાઢીશ.’

૧૭૩-૧૭૪. આ વળતે મારી માતાએ મારા પિતાને કહ્યું: ‘આપણી દીકરી જેને વિષે આવા સુંદર અનુમાન પર આવી તે ઝાડને બેઠે નેવાની મને ખહું આકાંક્ષા છે.’ પિતાએ કહ્યું: ‘ભલે, તમારા સમગ્ર સ્ત્રીમંડળને લેઈને ત્યાં જઈ શકો. ખહાર ફરવા જવાથી તમને ખીજ પણ લાલ થશે.’

૧૭૫-૧૭૬. અને પછી પિતાએ ઘરના સુનીમને બોલાવીને કહ્યું: ‘કાલે સવારે ખાગમાં ઉઠાણીનો બંદોબસ્ત કરો. યાદી વ્યવસ્થા ખરોખર કરજો. સ્ત્રીમંડળ ત્યાં આનંદ કરવા જનાર છે.’

૧૭૭-૧૮૧. દાસીઓ, સખીઓ અને લાસીઓએ મને વંધાવી લીધી. અને મારા લોજનની સંભાળ રાખનારી દાસી બોલી: ‘હવે વળત થયો છે, માટે જમી લો. કારણ કે જેમ ઈંધણ વિના દેવતા ટકતો નથી, તેમ અન્ન વિના શરીર ટકતું નથી. ખાવાની વેળા વટાઈ નાથ એમ ન થયું નાંધએ.’

૧૮૨-૧૮૭. ચંદ્ર અને હૃદયના જેવી સદેહ અને ઉત્તમ પ્રકારે બનાવેલી ખીર પછી મેં ખાધી અને ત્યાર પછી તાજાં માખણનો બનાવેલો પાક ખાધો. પછી એક વાસણમાં મારા હાથ ધોઈ નાખ્યા ને રૂમાલે લોહીને સાફ કરી નાખ્યા. ત્યાર પછી મારા હાથ અને મોં ઉપર તેલ ચોળ્યું.

૧૮૮-૧૯૩. આવતી સવારે ખાગમાં જવાની વાટ જોતી ત્રી સ્ત્રીઓનાં મોં ઉપર આનંદ આનંદ છવાઈ ગયો, અને એટલામાં જ આરામ અને નિદ્રા લેતી રાત્રિ આવી

પહોંચી. મેં પણ આ અજવાળી રાત જૂઠા આનંદમાં ગાળી, અને જ્યારે ઉઘ આવી ત્યારે દીવાને અજવાળે જ પલંગમાં જઈ સૂતી. સવાર થતાં મેં હાથ મોં ધોયાં અને દેવને નમન કરી આધુપુરૂષોના ગુણુમરણ પૂર્વક સંકોષમાં પ્રતિક્રમણ કર્યું. પણ અનેક સ્ત્રીઓને તો રાત ઉતાવળે પુરી થતી ન હતી એટલા માટે રાતને ગાળો લાંઠતી, અને ખરેખર કેટલીક તો બાગમાં શું શું જોવાનું મળશે અને સરોવરમાં સ્નાન કરવાથી કેવો આનંદ થશે ઇત્યાદિ અનેક વિષયો ઉપર વાતો કરતી આખી રાત જાગતી બેસી રહી.

૧૯૪-૧૯૮. ઉઝણીની વ્યવસ્થા કરવાને સુનીમ તો જોઈતા આકરોને લેઈને આગળથી મળસ્કે જ બાગમાં ગયા હતા. એવે પૂર્વાકાશના ઢમળને ખીલવતા, આકાશમાં પોતાનો પ્રવાસ કરતા કરતા સૂર્યદેવ ઉદય પામ્યા. હવે સ્ત્રીઓ જુદા જુદા રંગનાં-કોઈ સુતરાઉ તો કોઈ હીરાગળ તો કોઈ ચીનાઈ, એમ-બહુ મૂલ્યવાન વસ્ત્રો પહેરી બહાર નિકળી; એમણે વળી માતીનાં અને સોનાનાં રત્નજડિત ઘરેણાં પહેર્યાં હતાં. સ્ત્રીઓની સુંદરતાએ શોભામાં વળી શોભા વધારી સુકી અને તેમની જુવાનીએ તેના ઉપર વળી એાપ ચઢાવેા.

૧૯૯-૨૦૪. મારી માતા પણ એટલામાં તૈયાર થઈ ગઈ હતી અને શુભ સૂક્ત જોઈને એણે આધેડ નારીઓના લગ્ન સંઘને પોતાની પાછળ લીધો. પાછળ તેમની ચંચળતાએ મ્હાલતી જુવાન નારીઓ આવી. તેમના, ઝાંઝરના, કટિમેખળાના અને બીજાં ઘરેણાના ઝણકારથી હવેલીનું આંગણું એવું તો ઝણઝણી રહ્યું કે જાણે તે સંઘને વિદાય દેનારાં વાજાં વાગતાં હોય. અને આ સંઘ નિકળવાના સમાચાર મારી માએ મને, મારી સખીઓ મોકલી, કહાવ્યા.

૨૦૫-૨૦૯. મારી સખીઓ શણગારાતી હતી તે વેળાએ હું પણ સૌથી અનેકાં જ કપડાંથી અને ઘરેણાંથી શણગારાતી હતી; અને મારા અતિ મૂલ્યવાન શણગાર કરીને તેમનાથી ત્રણ ગણી શોભા પામી ચંપાના પુલ પેટે ખીસી નીકળી હતી. પછી હું સખીમંડળની વચ્ચે મ્હાલતી મ્હાલતી હવેલીના આંગણામાં આવી ઉભી. ત્યાં આવીને જોઈ તો ઇંદ્રના સ્વર્ગમાં જાણે જુવાન અપ્સરાઓ ટોળે મળી હોય એમ અમારા આંગણામાં જુવાન નારીઓ પુર લપકામાં ટોળે મળી હતી.

૨૧૦-૨૧૪. રથને બળદ જોડી દીધાં હતા, અને પોતાની બેઠક પાસે ઉભેલા સારથિએ મને દેખતાં જ કહ્યું: 'અહીં બેન; શેઠે તમારે માટે આ અનુપમ સુંદર રથ નક્કી કર્યો છે.' એમ બોલતાંની સાથે જ તેણે મદદ કરીને મને રથમાં ચઢાવી. રથમાં સુંદર મૂલ્યવાન ગાલીઓ પાંચથોં હતો. મારી દાસી અને સખી સારસિકા પણ એજ રથમાં આવી બેઠી ને પછી રથ પોતાની ઘુઘરીઓ ખળગવતો ચાલવા લાગ્યો. પાછળ અમારો

રૂખવાળા પોતાનો પોશાક પહેરીને ચાલતો હતો. આબુ બાબુ અમને જોવા આવનાર સ્ત્રીઓની ખૂબ લીડ નભી હતી.

૨૧૫-૨૨૪. અમારો સુંદર સંઘ નગરના રાજમાર્ગ વચ્ચે થઈને ચાલ્યો. ઠેર ઠેર લોકો ટોળેટોળાં મળીને અમને જોવા લાગ્યા. નારીઓ પોતપોતાનાં ઘરની બારીઓમાંથી મોં કાઢીને બહુ આતુરતાથી અમને જોઈ રહી હતી. એ જોઈ હું તો છક થઈ ગયો. તેમ જ રસ્તા ઉપર અને ઘરની બારીઓમાં બાંધે હીરા વડી દીધા હોય. એમ સમજી થઈ ગયેલાં માણસો પણ અમને જોઈને છક થઈ ગયાં. સ્વર્ગ, રથમાં બેસી ને જતી લક્ષ્મીને જેમ જોઈ રહે તેમ લોક મને એકીનજરે જોઈ રહ્યા. નગરના જુવાન પુરૂષોનાં હૈયાં મને જોઈને આતુર અને ગળવાન કામચળને લીધે એવાં તો બળી. ઉઠ્યાં કે તેમનાં જીવન જોખમમાં આવી પડ્યાં. પણ જુવાન નારીઓને બીજી જ ઈચ્છા થઈ. આવી:- જો આપણી બાતને સ્વર્ગની સુંદરતા સાથે સરખાવવી હોય તો આપણે આના જેવું સુંદર થવું જોઈએ. મારા મુખની સુંદરતાથી અને મૃદુતાથી નગરનો એ રાજમાર્ગ ગાંડો ગાંડો થઈ ગયો, અને સુંદર દેખાવથી ઉભરાઈ ગયો. એમાં મારો દેખાવ તો સૌથી અમૂલ્ય હતો. લોકો પાસેથી સાંભળેલી આ ગધી વાતો મારી સખીઓએ મને કહી.

૨૨૫-૨૨૮. ગાંગને દરવાજે આવી પહોંચતાં અમે બધાં રથમાંથી ઉતર્યાં અને ત્યાં આગળ એકીદાર સુકીને અમે બધાં ફરવા નિકળ્યાં. બાંધે સ્વર્ગનાં નંદનવનમાં જુવાન અંસરાઓ ફરતી હોય, તેમ બધી નારીઓ ફરે તેમ પોતપોતાને મારો ફરવા લાગી. ખીલતાં ઝાડો એક બીજાની સાથે ગુંધાઈને જે ઉપર ફરવા બેજાં બની ગયાં હતાં, તેની નીચે થઈને તેઓ ચાલવા લાગી, અને ઝાડ ઉપરથી પુલસરી ડાંખળીઓ તોડવા લાગી.

૨૨૯-૨૩૦. એટલામાં મારી માતાએ ખૂબ મારી. આવો આપણે મારી દીકરીએ બતાવ્યું છે. તે, તળાવને કાંઠે ઉભેલું, સપ્તપર્ણીનું ઝાડ જોવા જઈએ, એની સૂચના પ્રમાણે બધું એ નારીમંડળ આનંદલયાં પગલાં લરતું તે દિશાએ ચાલ્યું.

૨૩૧-૨૩૬. રથમાંની મારી સહચરીઓ અને હું રથમાંથી ઉતર્યાં પછી બાગની શોલાથી મુઘ્ધ મને અને આજે અંદર પેઠાં શરદાનું બાગનાં વિવિધ પુલોને સુંદર ખીલાવ્યાં હતાં. બાંધે કુલે કુલે લમરો લમતો હોય તેમ હું તો લમવા લાગી, અને પક્ષીઓનાં હજારો તરેહનાં ગાનથી મારા કાનને પરિતૃપ્ત કરવા લાગી. જેમ જુગારી પોતાની મૂઠ હારી બેસે ને રમતો તેનો જોસ લાગી જાય, તેમ વસંતને આરંભે જેનાં સુંદર પીછાં ખરી પડ્યાં છે એવાં મેર સંલોગની આતુરતા વિનાં જ ફરતાં જોયા. વળી કેળોના અને તાલના માંડવા અને બાગકોને એકવાંની કુલે અને

એવી એવી ઘણી જગાઓ જાગમાં ભેઈ. કુલને લીધે સફેદ થઈ ગયેલાં સપ્તપર્ણનાં ઝાડ પાસે રાતાં અશોકવૃક્ષ અને આસમાની બાણવૃક્ષ હતાં.

૨૩૭-૨૫૦. ચાલતાં ચાલતાં એક સુંદર સપ્તપર્ણનું ઝાડ અમારી નજરે આવ્યું. એ ચારે બાજુએથી, કુલશણગારના ભારે કરીને, લચી ગયું હતું. કુલથી સફેદ થઈ ગયેલી એની ડાંખળીઓ મધમાખીઓનાં ટોળાંથી નમી ગઈ હતી અને જાણે કાળા રંગનો પોષાક ચઢાવ્યો હોય એવું દેખાતું હતું. અને પવને ફરીને જે કુલ લોચ ઉપર પડી ગયાં હતાં તેને જાંડછાએ ચઢેલા કાગડા સફેદ માળાણના લોચા માની ઉપાડી ઉડતા ફરતાં હતા. એ ઝાડ ઉપરથી નારીના રતન જેવડું મોટું ને ચાંદીના વાડકા જેવું સફેદ એક પુલ મેં ચુંટ્યું કે તરત જ મધ ચુસનારી માખીઓનું એક ટોળું, કમળ ઉપર ખેસવાની લાલસાએ કમળના ઘાટના અને કમળના જેવો વાસ આપતા મારા મોં તરફ ધસી આવ્યું. મોં ઉપર એ મધમાખીઓ ખેસવા જતી હતી, તેમને મેં મારા મૃદુ હાથ વડે વારી; પણ મારા હાથ તો જાણે પવનમાં ડાંખળી હાલતી હોય એમ માની એની દરકાર ક્યાં વિના જ તે મોં ઉપર આવી લાગી. વેદનાએ મેં ચીસ પાડી અને હું પાછી પડી; પણ માખીઓના ગણગણાટ અને પાખીઓના કલગણાટમાં મારી ચીસ તો ક્યાંય ફળાઈ ગઈ. ઘોડાના મોંના ફેંજ ફરતાંએ નરમ એવી મારી ઓઢણી મેં મારા મોં ઉપર જેથી લીધી, કે જેથી ઘણીખરી માખીઓ ખસી ગઈ. પણ આમતેમ ઢોડવાથી મારાં રત્નજડિત ઘરેણાં વિખેરાઈ પડ્યાં, અને કામદેવનું બાણ જેના વડે ચઢાવાય એવી કટિમેખળા કેડેથી છૂટી પડી. પણ વેદનાને લીધે એની પરવા ક્યાં વિના જ હું તો ઢોડી ને કેળના માંડવામાં પેશી ગઈ. ત્યાં મારી સખી સારસિકા હતી તેણે મને આશ્વાસન આપી કહ્યું: 'તને મધમાખીઓ તો હજી થેં જાહું લાગેલી છે, પણ ઠરવા જેવું કશું નથી.'

૨૫૧-૨૬૧. જે સપ્તપર્ણને અમે જોવા આવ્યાં તે ઝાડ પાસે હવે હું ગઈ. કમળના તળાવવાળી મધમાખીઓનાં ટોળેટોળાં તેના ઉપર બેઠાં હતાં. પુનેમના ચાંદા જેવા મધપ્રુડાને છોડીને આજે એ બધી શરફનાં ફુલોમાં ભરાઈ બેઠી છે. અમારા સાથમાંની જે સ્ત્રીઓ ત્યાં પહોંચી હતી તેમણે તો ફુલોના મોઢમાં ઝાડની ડાંખળીઓ સુદાં બધી ચુંટી નાંખી હતી. મારી સખીના બલા ઉપર મારા ડાખા હાથનું કાંડું ટેકવીને અને કમળસરોવર ભણી નજર રાખીને હું આગળ ચાલી રહી હતી. બધી જાતનાં કમળકુલ પુરેપુરાં ખીંચ્યાં હતાં. બાગના રત્નસમાન આ સરોવરની સપાટી પક્ષીઓના શબ્દોથી ગાંજ રહી હતી અને મધમાખીઓનાં ટોળાંથી છવાઈ રહી હતી. રાતાં કુલ પ્રભાતની, સફેદ ફૂલ અંદ્રપ્રભાતની, અને સ્વામળાં કુલ વાદળાંની ચાદ આપતાં હતાં. મધમાખીઓનો ગણગણાટ અને હંસોના નાદથી જગન ભરાઈ ગયું હતું. પાણીની ઉપરનાં મોજાં ઉપર કુલ પવનથી હીંચકા શાતાં હતાં. ત્યાં મેં કલગણાટ કરતી ખતકો, નર-માદાની ભેડીએ

ચાલતાં ચક્રવાકો, અને ધોળાં પીછાં વાળા આનંદી હંસો જોયા. પીછાં કમળ ઉપર બેઠેલી મધમાખીઓ સોનાની તાસડોમાં મુકેલાં નીલમ જેવી શોભી રહી હતી; અને રેતીના કિનારા ઉપર રૂના જેવાં સફેદ પીછાંવાળા હંસ શરદના સુંદર હાસ્ય સાથે પોતાનું હાસ્ય લેળવતા હતા.

૨૬૨-૨૬૭. પછી મેં નર-માદાની જોડીએ ગંધાંયેલાં અને પોતાના સ્નેહને લીધે પંકાયેલાં અનેક ચક્રવાકોને જોયાં. એમના રાતા રંગમાં પીળો રંગ લેળવાયાથી એ રમણીનાં સ્તનના રંગ જેવાં ગહુરંગી દેખાતાં હતાં. તળાવમાં રંગિત ફરસળાંથી જેવાં લીલાં પાનનાં જે આસન-ગંધાર્ધ રહ્યાં હતાં તેના ઉપર કેટલાક આવા ચક્રવાક આરામ લેતા હતા, અને કેટલાક વળી આવાં પત્રાસનોની વચ્ચે વચ્ચે સોમલતા જેવા રાતા રંગનાં, બહુ સ્નેહને લીધે જ રાતા બન્યા હોય એવા, પોતાની નારીઓના સ્નેહને પોષિતા બેઠા હતા. જે વખતે તળાવમાંનો આ દેખાવ હતું જોતી હતી તે વખતે એ ચક્રવાકોને પરસ્પરનો સ્નેહ અને મમતા જોઈને મારા મનમાં કાંઈ અગમ્ય વિચારો આવવા લાગ્યાં. આ જન્મમાં નહિં અનુભવેલી એવી કાંઈ કલ્પના મને થવા લાગી અને એ ઉંડા વિચારમાં ને વિચારમાં મને મારો પૂર્વ અવતાર પ્રત્યક્ષ થઈ આવ્યો. એ પૂર્વ જન્મનું રમરણ થતાં જ મને મૂર્છા થઈ આવી અને ચેતન વિનાના શરીરની માફક હું જમીન પર ઢળી પડી.

૨૬૮-૨૭૨. બંધારે મને જાન આપ્યું ત્યારે બહુ ડે મારી આંખમાંથી તો શું પણ મારા વેદના-લયો હૈયામાંથી પણ આંસુની નદી વહે જતી હતી, અને મારી સખી કમળપત્રનો પડીઓ બનાવી તેમાં પાણી ભેર આવીને મારા હૃબલયો હૈયા ઉપર અને આંખો ઉપર એ પાણી છાંટતી હતી. હું ઉભી થઈ અને પાસેની કેળોની ઘટ્ટા અંદરની એક કુંજમાં પડેલી આસમાની કમળને યાદ કરાવતી કાળી શીશા ઉપર જઈને હું બેઠી. ત્યાર પછી મારા હૃબમાં અને અશાન્તિમાં હૃદયથી લાગ લેતી મારી સખી મને પુછવા લાગી: 'બેન, તને એકદમ આ શું થયું?' શું તને ચક્કર આવવા લાગ્યાં કે ગહુ થાક લાગ્યો કે ગરેબર તને મધમાખીએ ચટકે ભર્યો?'

૨૭૩-૨૭૭. મારી આંખમાં નાં આંસુ તો એ પુછી રહી હતી, પણ મારા ઉપરના સ્નેહને કારણે એની આંખમાંથી આંસુ દરદર વહે જતાં હતાં. વળી એ બોલી: 'તને આમ મૂર્છા શાથી આવી ગઈ? બેન, તું જે બહુતી હોય તે કહે કે જેથી જલદી તેનો ઉપાય થાય; તારૂં શરીર કથળી ન જાય એટલા માટે હવે ખોટી થવાય નહિ. દરદ બેશક કંઈક ભારે હોયું જોઈએ, બેપરવા કે બેદરકાર કંઈ પાલવે નહિ. વાત હાથમાં હોય એટલામાં જ કંઈક ઉપાય કરી લેવો જોઈએ, નહિ તો માન ઉઝરડો હોય તે પણ કાઢીના ધા જેવો થઈ જાય.'

૨૭૮-૨૭૯. સખીને કહી શકાય એવું એણે મને ઘણું કહ્યું ત્યારે મેં ઉત્તર આપ્યો: 'ભય જેવું કશું નથી; બેન, મને ચક્કરે આવ્યાં નથી, બહુ થાકી ચે ગઈ નથી કે મધમાખીના ચટકા ચે લાગ્યા નથી.

૨૮૦-૨૮૧. પણ એ તો વચ્ચે જ બોલી ઉઠી કે: 'ત્યારે તું રંગ વિના પ્રીકા પડી ગયેલા રામધનુષની પેઠે મૂર્છા ખાઈને એમ લોંચ ઉપર કેમ પડી ગઈ? બેન, તું તારે હૈયું જોલ, હું તો તારી પ્રિય સખી છું.'

૨૮૨-૨૮૬. નીલમ જેવી સુંદર કુંજમાં મેં સખી સારસિકાને કહ્યું: - 'મારી પ્રિય સખી, પવનથી તુટી પડેલા પાનની પેઠે મૂર્છા ખાઈને હું શા માટે લોંચ ઉપર પડી એ બધી હકીકત હું તને ટુંકમાં કહીશ. તું મારી નાનપણની સખી છે અને મારા સુગંધુબની લાગિયણ છે; તેમ મારાં બધાં છાતાં પણ તું જાણે છે, ત્યારે આજની વાત પણ બધી તને કહીશ. પણ બધી વાત તારા હૈયામાં રાખજે. એ તારે મોઝેથી ખીબા કોઈને કાને જવા પામે નહિ! મારા ગળાના સમ ખાંડે, ખીબા કોઈને આ વાર કહીશ નહિ.'

૨૮૭-૨૮૮. ત્યારે સારસિકા મારે પગે પડી ને બોલી: 'બેન, તારા પગના સમ મેં તારા ગળાના સમ, હું કોઈને તલ્લ કહું.'

૨૮૯-૨૯૧. પછી મારી વહાલી ને વિશ્વાસુ સખીને મેં કહ્યું: 'બહુ દુઃખની વાત છે કે મારા પાછલા અવતારની વાત મારી આંખોએ આંસુ વડે બહાર નિકળી જવા દીધી છે. મારા પ્રિયનો મને જે વિજેગ થયો છે તેનું સ્મરણ થઈ આવતું એ, પણ બહુ દુઃખની વાત છે. જે સ્નેહ મેં એકવાર માણ્યો છે તે જે દુઃખ લોગવ્યું છે તે સૌ હું તને કહું છું, જે મન દેઈને સાંભળ.'

૨૯૨. મારી સખા મારી બાજુમાં સાંભળવાને અધીરી થઈને બેસી ગઈ ને આંસુ વહેતી આંખોએ મેં વાત શરૂ કરી.

(૪. પૂર્વ જન્મનું વૃત્તાન્ત.)

૨૯૩-૨૯૪. આપણી પાટાશમાં અંગ નામે પ્રસિદ્ધદેશ છે અને એ દેશ શત્રુથી, ચોરથી ને દુષ્કાંડથી સદા નિર્ભય છે. ત્યાં અંધા નામે સુંદર નગર છે જેમાં અનેક સુંદર બોગબગીચા તથા સ્મરણીય જલાશયો છે ત્યાંની વસ્તી સાંચે જ સ્વર્ગસમી છે.

૨૯૫-૨૯૬. તે દેશની વચ્ચે થઈને પવિત્ર ગંગાનદી વહે છે. તેને બંને તીરે અનેક નગર અને ગામ વસેલાં છે અને જગપણીઓનાં ટોળે ટોળાં તેમાં રહે છે. સમુદ્રની બંને વહાલી પત્ની હોંચ એમ એ તેના તરફ ધસે છે. કાંઈ પક્ષી તે બંને એનાં હું છે, હુંસની હાર બંને એની કટિમેખળા છે, ચક્રવાક પક્ષીની બેડે બંને એનાં બે

રતન છે, એનાં મોજાંથી બાણે એ હસતી દેખાય છે. એને કિનારે હાથી, ગળદ, વાઘ, ચિંતા ને વઙ્ગ રહે છે. પાણીની સપાટી ઉપર પાકા રાતા ઘડા તરતા હોય એમ ચક્રવાકનાં ભેડાં આનંદે રમ્યા કરે છે. હંસ બતકો અને એવાજ પીળાં જળપ્રાણીઓ પણ ચિંતા વિના સ્વતંત્રતાએ ફરતા ફરે છે.

૩૦૦-૩૧૪. મારી પ્રિય સખી, ત્યાં હું આગલા અવતારમાં રાતાંપીળાં પીછાં-વાળી ચક્રવાકી હતી અને સ્વતંત્રતાનું પૂરું સુખ લોગવતી. ચક્રવાકોમાં સ્નેહ બેટલો સાચો અને પ્રબળ હોય છે તેવો સ્નેહ આખા જગતમાં ખીજે કયાંય નહિ હશે. અને મારો નર તો વળી ચંચળ માથાએ કરાને અને મોળ દડા જેવે શરીરે કરીને પ્રખ્યાત હતો; તેમાં વળી એ કુશળ તરનારો હતો અને કોરેન્ટના કુલના ગોટા જેવો સુંદર હતો. તેનાં કાળાં અને ફવાંટી વગરનાં પગનાં ચાપ્યાં કમળના કાળા પાન જેવાં હતાં. છેવટ સુધી તેનો સ્વભાવ તપસ્વી જેવો સરલ હતો, એનો ક્રોધ તો બહુ પહેલેથી બળી ગયો હતો. રાતા પ્રભાતસમયે તેની સાથે જ હું તરવા જતી. ઉડતી પણ તેની સાથે જ. એવી રીતે અમે સ્નેહમાં સાથે રહેતાં, ચઢતા ઉતરતા સુંદર શબ્દથી અમારા કાનને અને હૃદયને આનંદ આપતાં, એક ખીજાને સુખી કરતાં, એક ખીજાની પાછળ જતાં, સાથે રમત રમતાં અને એકબીજાનો વિલેગ કદી સહી શકતાં નહિ. નદીએ, કમળસરોવરે, રેતીને કિનારે કે કિનારાના જંગલો-જંગાં જતાં ત્યાં અમે સ્નેહનો દેખાવ કર્યા વિના જ પણ સાથે સ્નેહે બંધાઈને સાથે જ રહેતાં.

૩૧૫-૩૨૬. એક સમયે સૌ જળપક્ષીઓ સાથે અમે પણ ગંગાને પાણીએ બનેલા સુંદર તળાવમાં રમતાં હતાં, તેવે સૂરમ્ને તાપે બળ્યો બળ્યો થઈ ગયેલો એક હાથી ત્યાં નદીમાં નાહવા કાળે આવ્યો. રાત્રીઓના લાગ્યસમા અંચળ એના કાન આમ તેમ હાલતા હતા; મૃદંગના જેવો મૃદુમૃદુ અવાજ તે કર્યા કરતો, પણ વળી એ રાક્ષસસંસ્કૃત પ્રાણી વચ્ચે વચ્ચે મેઘગર્જનાના જેવો લયકર નાદ પણ કરતું. તેના કુલસ્થળમાંથી મદ ગરતો હતો અને સપ્તર્ષના કુલના જેવો એનો તીવ્ર વાસ પવનને બળે ચારે દિશાઓમાં પ્રસરી રહેતો. કિનારાના ધુસ્મટ ઉપરથી આ મહાપ્રાણી નીચે ઉતર્યું. રેતીમાં પડતાં એનાં પગલાં વડે બાણે ગંગાની ટેટા ઉપર કંદોરો બનાવતું હોય તેમ દેખાવા લાગ્યું અને સમુદ્રની રાણી જેવી ગંગા બાણે એ હાથીથી લય પામીને પોતાનાં મોજાંને લેઈને દોડી જતી હોય તેમ દેખાવા લાગી. એણે પાણી પીધું ને પછી સુંદરી કુંકવાડો મારીને પાણી એવું ઉડાડ્યું કે બાણે નદી ઉપર વાદળ ચઢી આવ્યું. પછી પ્રવાહમાં એ ઉડે ઉતર્યો અને સુંદ વડે પાણીનો પર્વત જેવડો પ્રવાહ પોતાની પીઠ ઉપર વહેવડાવ્યો. નદીમાં એણે એવાં તેાં મોજાં ઉડાડ્યાં કે તે અમે હતાં તે તળાવમાં પણ આવી પહોંચ્યાં. એ જ્યારે સુંદ ઉંચી કરતો અને તેથી એનું મોં પહોંચું થતું

ત્યારે એનાં જડણાં, છાત્ર અને હોઠ વડે એવી ગજોલ દેખાતી કે જાણે એ અંજન પર્વતની સિંદુરની શુદ્ધ હોય.

૩૨૭-૩૩૫. લયથી ત્રાસીને બીજાં જળપ્રાણીઓની પેઠે હું પણ મારા સ્વામીની સાથે ઉઘે ઉડી ગઈ. પછી હાથી નદીમાંથી નિકળી પોતાને રસ્તે પાછો ચાડ્યો જતો હતો, તેણે સમે વનકુલાંએ શણગારાએલો, હાથમાં ધનુષગાણુ લેઈને સાક્ષાત્ જમહત જેવો એક જીવાન પારધી આવી પહોંચ્યો. એના પગ ઉઘાડા હતા અને નળ વાળના પંખશા ખૂણ લાંબા વધેલા હતા. એનું શરીર ખૂણ મજબુત હતું અને એની પહોળી છાતીમાંથી, ધનુષની પછાડ કુટે એમ, એ લાંબા હાથ કુટતા હતા. તેની દાઢી સતાશ પર અને સુંવાળી હતી; હોઠ કંઈક ફાટેલા હતા અને ભળવાન ખાંધ ઉપર માંચું હાલતું હતું; માથા ઉપર વાંકડીઆ વાળ હતા અને વાળના છેડા સાપની છાત્રા દેખાતા હતા. વળી પવને અને સૂરજને તાપે-કરીને એની આમડી કાળી થઈ ગયેલી હતી. તેથી એ રાક્ષસસમો કે જમહતના સાક્ષાત્ અવતારસમો દિસતો હતો. તેની પીઠે એક ટુંબડું લટકતું હતું, અને તેમાં બાણુ લખ્યાં હતાં. તેણે લખકર વ્યાઘ્રચર્મ પહેર્યું હતું, અને તે જાણે વસ્ત્ર ઉપર મેથાના કે સહીના લીસોટા તાણ્યા હોય એમ દેખાતું હતું.

૩૩૬-૩૪૫. પારધીએ એ હાથીને જોયો કે તરત જ, જરૂર પડે તો ઉપર ચઢી જવા માટે, દોડીને એક મોટા ઝાડ નીચે જઈ ઉભો. પછી ધનુષ પર બાણુ ચઢાવીને ખુણ ભેરવી ખેંચ્યું ને હાથી ઉપર તાક્યું. પણ કમનશીએ એ મિશાન ચુક્યો અને તે હાથીને ન લાગતાં સામે જ ઉડતા મારા સ્વામીને જઈ ચોટ્યું. તેનાથી એમની એક પાંખ કપાઈ પડી ને તેની સાથે એ પણ મૂર્છા ખાઈને પાણીને કિનારે પડ્યા. હું મારા પ્રિયની પાછળ ઉડી અને એમની વેદના મારાથી નહિ સહન થઈ શકવાને કારણે હું પણ તેમની પાસે જ મુગ્ધિત થઈ ધરણી ઉપર ઢળી પડી..

૩૪૬-૩૪૬. ત્યારે મને લાન આવ્યું ત્યારે મેં બળતે હોયે અને આંસુભરી આંખે શું જોયું! મારા સ્વામીની પાંખ છુટી થઈને જાણે પવનના ગળે તુટીને કમળ પડ્યું હોય એમ એમની પાસે પડી હતી અને તેમના શરીરમાં બાણુ ચોંટ્યું હતું. પાસે પડેલી પાંખ કમળના પાન જેવી વિળસાઈ પડેલી હતી. જાણે સતાપીળા ઘડા ઉપર લાખના ડાંધા પડ્યા હોય તેમ મારા સ્વામીના શરીર ઉપરના લોહીના ડાંધા દેખાતા હતા. એ ડાંધા એટલા ગંધા પડ્યા હતા કે જે જોઈને કોઈને તો એમ જ લાગે કે અથોડાં કુલના ગોટા ઉપર અંડનરસની છાંટ મારી છે; અને છતાં એ એ પાણીને કિનારે જ પડેલા હોવાથી કિંશુકવન જેવા કે આથમતા સૂર્ય જેવા લબ્ધ દેખાતા હતા.

૩૪૭-૩૫૦. મારી ચાંચ વડે મેં એમના ઘામાંથી ગાણુ જે'થી કાઢ્યું, અને રક્તી આંખે મારી પાંખો વડે મેં એમને પવન નાંખ્યો. પછી મેં એમને ઘોલાવ્યા, પણ એ તો જડ જેવા નિશ્ચેષ્ટ થઈને પડી રહ્યા હતા. તેમ છતાં સ્નેહને લીધે અને સુંઝવણને લીધે તે વખતે તો મેં માની લીધું કે હજી એ જીવતા છે.

૩૫૧-૩૫૩. પણ જ્યારે મને બધું સમજાઈ ગયું ત્યારે વણવી નહિ શકાય એવી વેદનાએ હું તો થોડીવાર બેસાન થઈ ગઈ. પછી મારી પાંખોમાંથી સુંદર પીંછાંને મારી ચાંચ વડે સુંધી નાંખ્યાં; મારા સ્વામીની પાંખોમાં પણ મેં ચાંચો મારી અને મારી પાંખો વડે હું એમને ગાળી પડી. હું એમની આસપાસ ઉડવા લાગી અને આમ ફેરવ કરવા લાગી:

૩૫૪-૩૫૬. તમને, આ ગંગાના શણગારને, કીથા પાપીએ માયા? મારાં સુખની ઈર્ષ્યાએ કાણે મને અનાથ કરી મુકી કે જેથી વિભેગનું દુઃખ મને આગના ભડકાની પેઠે જાણે છે, અને ભયંકર વિચારોની અંદર મારે ડુબી જવું પડ્યું છે? મારા પ્રિય સ્વામી, હવે તમારે વિભેગે કરીને કમળસરોવર ઉપર હું આનંદ શી રીતે લોગવી શકીશ? આપણા બેની વચ્ચે કમળના પાંદડાએ કરીને પણ વિભેગ થતો, તો જાણે તમે પરદેશ ગયા હો એમ મને તેનું દુઃખ સાલતું, ત્યારે હવે તો મૃત્યુએ આપણને આજે કાયમનાં જુદાં પાડ્યાં છે, માટે હવે મારા દુઃખનો અવધિ કયાં આવશે?

૩૬૦-૩૬૫. ફરીવાર પાછો એ પારધિ આવ્યો અને મારા જીવનના સાથી ઉપર નજર કરીને જોવા લાગ્યો ત્યાં તો હાથીને ખદ્દે મારા સ્વામી માયાં ગયેલા જણાયા, તેથી વેદનાએ કરીને એ ઘોલી ઉઠ્યો: 'હા, પ્રભુ!' એ ભયંકર માનવીના ભયથી હું પાછી ઉડી ગઈ. પણ મારા સ્વામી માયાં ગયા તેથી એને પણ દીલગીરી થઈ. એણે એમને ઉપાડીને અંદ્રપ્રકાશ જેવી રેતી ઉપર સુક્યા. પછી કિનારા ઉપર એ લાકડાં શોધવા આવ્યો એટલે ફરીને હું મારા પ્રિય સ્વામી પાસે જઈ બેઠી.

૩૬૬-૩૬૯. ડુસકાં ભરતી ભરતી વિદાયના છેદા શબ્દો હું બોલતી હતી તેવામાં તે પારધિ લાકડાં લેઈને વળી પાછો આવ્યો અને હું ફરી પાછી ઉડી ગઈ. મને જણાયું કે એ પાપી હવે મારા સ્વામીનો અગ્નિસંસ્કાર કરશે, તેથી એમના મૃત દેહ ઉપર આમતેમ આકાશમાં મેં નિરાશાએ ઉડ્યા કર્યું.

૩૭૦-૩૭૩. અને સાચે જ એ પારધિએ પોતાનું ધનુષ અને ગાણુભર્યું તુંબડું લોંચ પર મુકીને મારા સ્વામીને લાકડાંની ચિતામાં સુકયા. પછી એમાં અગ્નિ મુક્યો, અને લાકડાંની ચીપાટો આમતેમ જોશી ઘાલી. મને તો એ અગ્નિ દાવાનળ ઠરતાં પણ ભયંકર લાગ્યો અને નિચારમાં ને નિચારમાં મારા સ્વામીને શોકભર્યું હૃદયે કહેવા લાગી:

૩૭૪-૩૭૬. ઓ પ્રિય સ્વામી, આજ સુધી આપણા મિત્રરૂપ પાણીમાં તમે વાસ કરતા, તે આજે આ શત્રુરૂપ અગ્નિને શી રીતે સહન કરી શકશો? જે અગ્નિ

તમને બાળે છે તેથી હું પણ બળી મરું છું; એ અગ્નિ તમે શી રીતે સહન કરી શકશો ? આનંદ અને શોક ઉપજવનારું આપણું પ્રારબ્ધ હજી એ ધરાયું નથી કે આપણને એકવાર એક કયાં પછી પાછાં ફરી બુઢાં કર્યાં ? અરેરે ! મારું હૈયું લોહાવું હોવું જોઈએ, નહિ તો એ તમારું દુઃખ, એ પ્રિયતમ, આમ જોઈ રહે નહિ, પણ તરત જ તમારી ચિતામાં કુદી પડે. આમ દુઃખમાં ને વિજેગમાં હું તમારાથી દૂર રહું એના કરતાં તો એ ભહું કે હું તમારી સોડમાં ચિતા ઉપર સુઉં.

૩૭૬-૩૮૩. આમ શોકના આવેગને કારણે ને નારીસુલભ વીરતાને પ્રભાવે હું સતી થવાના ઠરાવ ઉપર આવી. જે સ્નેહી આત્માની પાછળ એમનું શરીર ચાલ્યું જતું હોતું તેમની પાસે હું અગ્નિમાં જઈ પડી; અગ્નિ હવે મને હિમ જેવો ઠંડો લાગવા લાગ્યો, કારણ કે હું મારા સ્વામીની સોડમાં હતી. કુલમાં જેમ માળી, તેમ હું અગ્નિમાં કુળી ગઈ, અને એ અગ્નિએ મને મારા સ્વામી લેળી કરી દીધી. જોકે એ શતીપોળી અગ્નિની શિખા મને બાળતી મારી ચારે બાજુએ રમતી હતી, તોયે પતિના વિચારમાં મને જરા એ દુઃખ થયું નહિ. એમ, મારી સારસિકા, હું સતી થઈને મારા પ્રિય પતિની પાછળ આલી નિકળી.



૫ કામના, સાધના અને સિદ્ધિ.

૩૮૪-૩૮૫. (સાધ્વી તરંગવતી આગળ જાહે છે :) અમારાં મરણની કથા મારી સખીને હું વર્ણવી રહી કે તરત જ શોકને લીધે ફરી હું મૂંઝાં પાંચી. ફરી ન્યારે મને ભાન આપ્યું ત્યારે ફરીથી એને અચકાતે શબ્દે અને ઘડકતે હોયે કહેવા લાગી:

૩૮૬-૩૮૬. ગંગાને કાંઠે હું સતી થયા પછી કૌશામ્બી નગરીમાં કપલસેન શેઠનાં ધનવાન અને આબરૂદાર ઘરમાં અવતરી. એક વખતે આ જળતરંગો જોઈ મને એ મારી પૂર્વજન્મ વાતાં સાંભરી આવી હતી, તેમજ આજે પણ અહીં આ તળાવના ચક્રવાટોને જોઈને મને ફરી જળવાન સ્નેહ-સ્મૃતિ યદ્ય આવી. આ પ્રમાણે મારા પાછલા જન્મનું પ્રારબ્ધ મને બધું કેમ સાંભરી આવી તાણું થયું અને હું મારા સ્વામીથી મૃત્યુ થયે કેમ વિજેગ પામી, એ બધું મેં તને દુઃકામાં કહ્યું છે. પણ તેં મારા જીવના સોગન ખાધા છે તે પ્રમાણે, હું મારા પ્રિયને ફરી મળી શકું નહિ ત્યાં સુધી, આ વાત કોઈને કહેતી નહિ. હવે ન્યારે મારી કામના સફળ થશે, ત્યારે જ મને સુખ થશે.

આજ સાત વર્ષથી હું મારા સ્નેહીને ભેટવાની આશામાં ને આશામાં, મારા માતા-પિતાને ખોટી-ખોટી આશાઓ આપ્યે જાઉં છું. જો એમાંથી કશું હવે વળશે નહિ તો હું યાના-દુઃખને ટાળવાનો માત્ર એક જ માર્ગ બાકી છે, જે જિનપ્રભુએ જગત્તા ઉદ્ધારને માટે સાર્થવાહ થઈને બતાવ્યો છે. તે નિવૃણનો માર્ગ સાધવાને માટે હું સાધ્વી

યદ્યપિ. સંસારના સંબંધમાં બંધાવાથી આ જાતનું જે વિજેગતું દુઃખ ખમવું પડે છે, તે દુઃખ ફરી બીજી વાર ન થાય. તેવે માર્ગે હું વિચરેશ સંસારનાં દુઃખની સાથે સાથે જન્મમરણનાં દુઃખ ટાળીને આત્માના સાચા સ્થાનમાં પહોંચવાને માટે હું સાધવી યદ્યપિ.

૩૯૭-૪૦૧. (તરંગવતી વળી આગળ બોલે છે :) સ્નેહને બળે મારી સખી ઉપર વિશ્વાસ રાખીને મારા દુઃખની બધી વાત મેં એને કહી. એ ભણી સારસિકા પણ મારા ઉપરના સ્નેહને લીધે અને મારા દુઃખની દયા આવવાને લીધે ભારે વિલાપ કરવા લાગી. પછી એ રકતી આંખે બોલી :

અરેરે સખી, મારા પ્રારબ્ધમાં આ શી તારા સ્વામીના વિજેગની દુઃખભરી વાર્તા સાંભળવાની ! પૂર્વનાં કર્મ, વખત જતાં પાછીને, દેવાં કરવાં ફળ આપે છે ! પણ બેન, ધીરજ ધર, દેવ તારા ઉપર જરૂર કૃપા કરશે અને તારા એકવારના સ્વામી ભેળી તને કરશે.

૪૦૨-૪૦૩. આવાં પ્રિય આત્માસનનાં વાક્યો બોલીને સારસિકાએ મને શાન્ત કરવાના પ્રયત્ન કર્યા, અને પાણી લાવીને મારી આંસુભરી આંખો ધોઈ નાંખી. પછી અમે કેળોની એ કુંજમાંથી નિકળીને ચાલ્યાં અને જે જગાએ મારી માતા સ્ત્રીઓના સાથને લોઈ આનંદ ઉઠાવતી હતી ત્યાં ગયાં.

૪૦૪-૪૦૬. મારી માતા તળાવને કિનારે હતી ને ત્યાં સૌના સ્નાનને માટે બ્યવસ્થા કરતી હતી. હું તેની પાસે ગઈ. મારી આંખો રાતી અને માફ્ મોં શીકકું ભેઈને તરત જ તે ગણરાએલા અવાજે બોલી :—જેટા, તને આ શું થયું ? આ બાગના આનંદમેળામાં તને દુઃખ જેવું શું લાગ્યું ? તાર્ મોં કરમાઈ ગયેલી કમળમાળા જેવું કેમ દેખાય છે ?

૪૦૭-૪૧૦. શોકને લીધે આંસુભરી આંખો લહોતાં લહોતાં મેં ઉત્તર દીધો :—‘મા, માફ્ માથું દુખવા આઠ્યું છે.’ તરત જ મારી મા છળી ઉઠી ને બોલી :—‘દીકરી, ત્યારે તું ઘેર જા ! હું પણ તારી સાથે જ આવું છું. તને—મારા આખા ઘરના મોતીને—દુઃખભરી દશામાં એકલી શી રીતે મોકલું ?’

૪૧૧-૪૧૪. મારા ઉપરના સ્નેહને લીધે એણે બધી વાતો પડતી મેલીને ઘેર જવાની તૈયારીઓ કરી નાખી, અને નારીમંડળને ધીમે રહીને એણે કહ્યું : ‘જ્યારે તમે નાહી રહો અને ઉઝાણી જમી રહો, ત્યારે પાછળથી ધીરે ધીરે ઘેર આવજો. કંઈક જરૂરતું કામ આવી પડવાથી હું તો અહીંજ જાઉં છું. તમે આનંદે કામ પતવજો !’ આમ એણે પોતાની આનંદની કામના છોડી દીધી, પણ સ્ત્રીઓને એમના કામમાં બળગાડી રાખી. તેમને આનંદમાં રાખવાને કારણે જ અમારા ઘેર જવાનું કારણ એણે એમનાથી સંતાડી રાખ્યું.

૪૧૫-૪૧૬. ચોકીદારને, વ્યવસ્થાપકને, અનાનખાનીના વ્યવહારને તેમના કામની જરૂર પુરતી સૂચનાઓ આપીને પોતાના નાના દોષ સાથે અને થોડા ચાકરો સાથે મને લેઈને એ સત્વર શહેરમાં આવી.

૪૧૭-૪૧૮. ઘેર આવીને સારસિકાએ મારો શણગાર અને વસ્ત્રો ઉતારી લીધાં ને હું ઘરનાં વસ્ત્રો પહેરીને પ્રલંગમાં સુતી.

૪૧૯-૪૨૨. પછી મારી માતા મારા પિતા પાસે ગઈ અને બોલી:-આપણી દીકરીને લેઈને હું પાછી ઘેર આવી છું. એના માથામાં વેદના થાય છે તેથી એને બહુ ઉઘાડામાં રાખવી સારી નથી. મારે જે સપ્તપર્ણું જાઠ લેવું હતું, તે મેં સારી પેઠે અને કુલે પૂરું ખીલેલું ભેયું છે, અને નારીમંડળ એમની ઉભાણીના આનંદમાંથી નિરાશ ના થઈ જાય એટલા માટે મારા ઘેર આવવાનું કારણ મેં તેમનાથી છુપું રાખ્યું છે.

૪૨૩-૪૨૬. મારી માતાને મોંએથી આ સમાચાર સાંભળીને મારા પિતા તો અચાનકે અને ચિંતાએ ગભરાઈ ગયા, કારણ કે એમનો સ્નેહ મારા બધાં ભાઈઓ કરતાં પણ મારા ઉપર વધારે હતો. એમણે તરત એક સારા કુળમાં અવતરેલા, ચતુર અને વિદ્યામયપાત્ર, તથા આખા નગરમાં પ્રખ્યાત એવા વૈદરાજને બોલાવી આપ્યા. એ શસ્ત્રવૈદ પછી બહુતા હતા. એમનો હાથ હલકો અને વેદના વિના ક્રિયા કરે એવો હતો, રોગની પરીક્ષા કરવાના અને પછી રોગ દાળવાના ઉપચાર કરવાને આશયે એમણે સામે બાજઠ ઉપર બેસીને મને પુછ્યું:

૪૨૭-૪૨૮. 'એન, તમને તાવને લીધે કે માથાના દુખાવાને લીધે શરીર ભારે લાગે છે? મને ખુલ્લું કહે જેથી ઉપચાર થઈ શકે. આજ સવારમાં શું ખાધું હતું? ખાંધેલું બરાબર પચી ગયું છે? ગઈ રાત્રે ઉંઘ બરાબર આવી હતી?'

૪૨૯. મારે બદલે સારસિકાએ જ ઉત્તર આપ્યો અને મેં સવારમાં શું ખાધું હતું અને અમે શાગમાં કેમ ગયાં હતાં એ બધું બધું જીવતા બતાવ્યું; પણ મારા પાછલા અવતારના અનુભવની વાત ટાળી દીધી.

૪૩૦-૪૩૭. અનેક પ્રશ્નો પુછીને ચિકિત્સા કર્યા પછી વૈદરાજે મારાં માથાપને કહ્યું: 'તમારી દીકરી માંદી દેખાય છે, એટલું જ ન. બાકી ચિંતા કરવા જેવું કંઈ નથી. કારણ કે, જો ખાધા પછી તરત જ તાવ ચઢે તો એવું કારણ સ્નેહ હોય છે અને એને કફ કહે છે. પચનક્રિયા ચાલતી હોય તે વેળાએ જો તાવ ચઢે તો એવું કારણ બીજું છે તે પિત્ત છે, પણ જો પચન થઈ રહ્યા પછી તાવ ચઢે તો તે વખતે વાતને કારણે પણ હોય. જો ત્રણે કારણો એકઠાં થયાં હોય તો એમાં અનેક રોગ હોય, અને એવા ત્રિદોષમાં બે ત્રણ લક્ષણ દેખા દે છે. બીજા એક પ્રકારનો તાવ હોય છે એને અકસ્માતજન્ય કે ખેદજન્ય કે સ્વપ્નજન્ય કહે છે, તે સોટી કે આ-

બુકના ફટકાથી, કે હુચિયારના ધાથી કે ઝાડના પડવાથી કે એવા જ કારણથી આવે છે. તમારી દીકરીના સંબંધમાં તાવ નહીં કરવામાં એનાં કોઈ લક્ષણ દેખાઈ આવતાં નથી, તેથી તમારે કશી ચિંતા કરવાનું કારણ નથી. એ નીરાળ છે. ગાડીના આચકાથી એ હાલી ગઈ છે અને બાગમાં ફરવાથી થાકી ગઈ છે એટલે અત્યારે એ નરમ છે ને તાવ જેવું લાગે છે, પણ એ તો માત્ર થાક જ છે. પણ વખતે એને બીતરની ચિંતા પણ હોય અને એ કોઈ ભારે શોકને કારણે થઇ હોય.

૪૩૮-૪૪૧. મારા સંબંધમાં મારાં માળાપને વૈધરાજે સાચું જ કહ્યું હતું, અને ત્યારે એ ઉઠ્યા ત્યારે એમને માન આપવાને માટે હવેલોનાં દરવાજાં સુધી એ એમને વળાવવા ગયાં. પાછલે પહોરે મારી માતાએ મારા શોકબળ્યાં હૃદયને ખાવાનો આગ્રહ કર્યો ને મારે કંઈક ખાવું પડ્યું. એટલામાં બાગમાં ગએલું નારીમંડળ પોછું આંધું અને તેમને સ્નાનમાં અને ઉબાલીમાં કેવો આનંદ આવ્યો એવું વર્ણન કરવા મંડ્યું. રાતે પથારીમાં ઉઘાડી આંખે આમતેમ મેં આળોટ્યાં કર્યું; પણ રાત તો બહુ દેરે કરી બય નહિ તેવી લાગી.

૪૪૨-૪૪૩. સવાર થતાં, જે જીવાનોના હૃદયમાં આગલે દિવસે મને એમને મદનનાં બાણ વાગ્યાં હતાં, એવા સેંકડે જીવાનોના પિતા માટે માણું કરવાને મારા પિતા પાસે આવવા લાગ્યા. ગમે તેવા એ આળસુદાર હશે, પૈસાંદાર હશે, પણ એ બધાનાં માગાં મારા પિતાએ પાછાં વાળ્યાં, કારણ કે કોઈની નૈતિક કે ધાર્મિક યોગ્યતા એમની નજરમાં ભેડી નહિ.

૪૪૪-૪૫૧. પણ પછીથી એ પાછા વાળેલા ઉમેદવારોનાં જીવંત જીવંત પ્રકારનાં કપશુની વાતો સાંભળીને મારા પાછલા અવતારની કથા પાછી મને યાદ આવી ને આંખોમાંથી આંસુની ધારા વહેવા માંડી. જેમ જેમ એ સ્મૃતિમાં હું ડુબતી ગઈ, તેમ તેમ ખાલું પીલું હું જીલતી ચાલી. માત્ર મારાં માતાપિતાને અને સગાંસંબંધીને શીઝવવાને ખાતરજ વેદનાભયે હું પશુ કંઈક ખાતીપીતી કે જોડતીખેરતી. એ જીવનના તરંગ મને મારે રસ્તે ફેરી નય નહિ, તો એ તરંગ ઉપર મારો જીવ શી રીતે ચોટે? સપ્તર્ષુના કુલવાસના તરંગે એ આકળા થઈને સ્નેહને નથાવે, તો પહેલાં ગમે એટલું સુખ આપતો હોય, પણ આજે મને જાણની પેઠે કેમ ન લાગે? અંદરનાં કિરણો એ મદનનાં બાણ થઈને મારી છાતીમાં લોકાય તો મને શી રીતે સુખકર લાગે? ગમે તો પુલમાંથી અમૃત ઝરે, ગમે તો શાન્તિ આપતો વરસાદ પડે, ગમે તો સવારમાં આકળ પડે, પણ મારે મને તો એ સૌ બહુ અંગાર ઝરતો હોય એમ લાગતું. દુઃખમાં જે બધું બીજી વેળાએ સુખ આપે, તે અત્યારે મારા સ્નેહી પિતા મને દુઃખ આપતું હતું.

૪૫૨-૪૫૪. ગુરૂજનોના ઉપદેશ અનુસારે મેં મારી કામનાં સિદ્ધ કરવાને માટે

કંઠણું તપસ્યા કરવી શરૂ કરી. એ તપસ્યા એકસોને આઠ આચાર્ય કરવારૂમ હતી. મારાં માળાએ એ મત કરવાની સમ્મતિ આપી. કારણ કે આવા મતથી દુર્ભાગ્ય ટળે છે અને સલામત વધે છે. મારી મતકામનાની તો એમને ખબર જ નહોતી; તેથી જેમ જેમ હું સુકાતી ગઈ તેમ તેમ એમને લાગતું ગયું કે એ તો મતને કારણે એનું શરીર સુકાતું જાય છે. મારી કાગના સિદ્ધ નંથી થતી તેથી આ શરીર સુકાય છે એની એમને શી રીતે ખબર પડે ?

૪૫૫-૪૬૩. મારી આંતરિક વેદનામાં મને અકસ્માત્ એક નવીન વિચાર સ્ફુરી આવ્યો અને તે અનુસાર મેં દેવતાંકે ચિત્રપટ આલેખ્યાં. મારા પાછલા અવતારમાં મારા સ્વામી સાથે રહીને મેં જે અનુભવ લીધા હતા, તે પ્રકટ કરવાને વચ્ચે પડે ઉપર સુંદર પીંછી વડે અનેક ચિત્રો મેં આંક્યાં. અમે એકઠાં સ્નેહ કેમ રહેતાં, કેમ ચરતાં, મારા સહચરને કેમ બાણ વાગ્યું, પારધિએ કેમ એમને અગ્નિસંસ્કાર દીધો, હું ચોતે તેમની પાછળ કેમ સતી થઈ; એ બધા દેખાવોનાં મેં ચિત્રો ચીતર્યાં. વળી ગંગા, ને તેની પાસેનું ભર્યું તળાવ, ને નદીનાં બળવાન સ્રોત, ને તેના ઉપરનાં સાંજળપક્ષીઓ, ને તેમાં થે વળી ખસ કરીને ચક્રવાકો-એ સૌનાં પણ ચિત્રો આંક્યાં. વળી હાથી ને તેની પાછળ પડેલાં ધનુષીરી પારધિ પણ ચીતર્યાં. કમળતળાવ કુદે ખીલેલું અને વિવિધ ઋતુનાં ખીલેલાં ફુલોએ લચકાતાં વિશાળ આડવાળું વન પણ ચીતર્યું-અને એ બુદ્ધાં બુદ્ધાં ચિત્રની ચિત્રમાળાની સામે કલાકૃતિના કલાકૃતિ બેસીને મારા હૈયાનો હાર જે ચક્રવાક તેના સાંમું એકીટથે નિહાળી રહેતી.

૪૬૪-૪૬૬. એવે કાર્તિકી પૂર્ણિમા આવી, એ દૌસુદીપર્વ તરીકે મનાય છે. તે પર્વને મોટા આનંદનો દિવસ ગણવામાં આવે છે. હિંસક ધંધા કરનારાઓનાં હાટે બંધ રહે છે અને કષ્ટ કરીને આજીવિકા કરનારાઓને વિશ્રાંતિ મળે છે. ધર્મનિષ્ઠ મનુષ્યો તપ, જપ, દાન, પુણ્ય આદિ કરીને પોતાના જન્મને સફળ કરવા પ્રયત્ન કરે છે.

૪૬૭-૪૭૨. એ દિવસે મેં પણ મારાં માતાપિતાની સાથે ઉપવાસ કર્યો. સંધ્યાકાળે ચાતુર્માસિક પ્રતિક્રમણકરીને બધા આત્માઓની સામે જાણેઅજાણે થએલા અપરાધ માટે મનોભાવે ક્ષમાપ્રાર્થના કરી. સવાર થતાં મેં ઉપવાસનું પારણું કર્યું અને પછી મારી હવેલીની અટારીએ ચઢીને આનંદી નગરની શોભા નિહાળવા લાગી. કળાકુશળ કારીગરોએ ચીતરેલા ધાંભલાઓ વડે હવેલી આકાશ સુધી ઉંચી શોભી રહી હતી. સુખ્ય દરવાજા ઉપર પાણીએ ભરેલાં સોનાનાં કળશ ચક્રવાકમાં આવ્યા હતા, જે જાણે દાનની ઘોષણા કરતા હોય તેવા દેખાતા હતા; અને એથી ઘોંક જાણી લેતા કે આ હવેલીમાં રહેનાર ગૃહસ્થ પુષ્કળ દાન કરનાર છે અને ખરેખર તે દિવસે અમારે ત્યાં પુષ્કળ જ દાન

૧ દિવસમાં એક જ વાર અને તે પણ માત્ર છૂપું સૂઝ અત્ર જમવું તેને જૈનધર્મમાં આચાર્ય અથવા આચાર્યિણ મત કહ્યું છે.

કરવામાં આવ્યું. સોનું, ચાંદી, ગાય, કન્યા, ભૂમિ, શયન, આસન આદિ જેને જે ભેળવતું હતું તેને તે આપવામાં આવ્યું.

૪૭૩-૪૭૬. તેની સાથે નગરમાં બેટલાં જૈનચર્યો (મંદિરો) હતાં તે પણ ગૂઢ શણગારવામાં આવ્યાં અને સુવ્રતી સાધુસંતોને સ્વીકારવા લાયક વસ્ત્ર, પાત્ર, લોચન, શયન, આસન આદિ વસ્તુઓનું પણ સદ્ગાધર્મીક દાન કરવામાં આવ્યું. મંદિરોમાં વિરાજમાન જિનેશ્વરદેવની મૂર્તિઓ આગળ સોના અને રતનનાં ભેટણાં મુક્યાં.

૪૭૭-૪૮૦. દાનનું સદા ફળ મળે છે; સારા દાનનું સાડું ને નળખાતું નળખું. જ્ઞાની અને તપસ્વી સાધુઓને દાન દીધાથી હમેશાં સાડું ફળ મળે છે; એ વડે આ જીવનનાં દુઃખ ટળે છે ને પેલા જીવનમાં સારે ઘેર જન્મ મળે છે, જેથી આત્માની ઉન્નતિ કરવાનો અવસર મળી શકે છે. સંતપુરુષોની આ રીતે દાન વિગેરે દ્વારા કરેલી સેવાથી નિર્વાણનો માર્ગ સહેજે જડી આવે છે.

૪૮૧-૪૮૩. પણ જો રાજાના શત્રુને, ચોરને, બુદ્ધાને અને બ્યભિચારીને દાન અપાય તો તેનાં ફળ ખોટાં પમાય. આ પ્રકારે દાનનો વિવેક કરી અમે અમારે ઉદાર હૃદયે માત્ર આપણા ધર્મના સાધુઓને જ નહિ, પણ બ્રાહ્મણો અને બિશુકો વગેરે બીજા પણ અંધા પ્રકારના દાનાર્થીઓને પુષ્કળ દાન આપ્યાં. દુઃકમાં ક્રીસ્ટીપર્વ એ અમારે માટે તો પૈસાની કોથળી છોડી મુકવાનો, દાન આપવાનો અને પવિત્રતા ખીલવવાનો મહાન્ દિવસ હતો.

૪૮૪-૪૮૭. સાંજ થઈ અને મેં નગરની ઉંચીનીચી છબિ નિહાળવા માંડી; સૂર્યભગવાને પોતાનાં કિરણની જાળ સંકેલી લીધી ને પોતે અદૃશ્ય થઈ ગયા. તેમની સવારની રાણી પ્રભાતદેવીની સાથે રહીરહીને એ કંટાળી ગયા હતા ને ફીછા પડી ગયા હતા અને સાંજની રાણી સંધ્યાદેવી પાસે તેના શાન્તિનગરમાં જઈ રહ્યા. લોક એમ પણ કહે છે કે આકાશના આટલા લાંબા પ્રવાસને લીધે થાક્યાથી રાતાં-સોનેરી-કિરણોની-માળા-પહેર્યા વીરની પેઠે ધરતીમાતાને ચરણે લીન થઈ ગયા, અને પછી અંધારેલીટી રાત્રિએ સૌ જીવનને પોતાની અંદર વીંટી લીધાં.

૪૮૮-૪૯૧. હવે, અમારા ધરના મુખ્ય દરવાજા આગળ જે એક સુંદર આંગણું આવેલું હતું તે અમારી હવેલીને અને ખરી રીતે તો આખા રાજમાર્ગનો શણગાર ગણાતું. એ આંગણામાં અતિ મૂલ્યવાન તથામાં જડીને મેં મારી છબિઓ લોકોને લેવાને માટે મુદ્રી, અને એની સંભાળ રાખવાને મારા મુખદુઃખની ભાગિયેણ, મારી સહી સળી સારસિકાને પાસે ઉભી રાખી, એવી કામતાથી કે પૂર્વજન્મના સ્વામી, જે જરૂર તે વખતે મનુષ્યજન્મમાં આવ્યા હતા, તેમને ખોળી કઢાય. મારાં ધરનાં કે બહારનાં માણસોમાં, મર્મ જાણી લેવામાં ને પરીક્ષા કરવામાં એના જેવું કોઈ અતુર નહોતું. મેં એને કહી રાખ્યું હતું કે:

૪૯૨-૫૦૫. 'માણસના અંતરને તેના શબ્દો ઉપરથી અને હાવભાવ ઉપરથી કેમ પારખી કાઢવું એ તું તો સારી રીતે જાણે છે. તેથી મારા જીવનને સુખી કરવાને માટે કહેવું સાંભળ: જો મારા તે વખતના સ્વામી આપણા નગરમાં જ જન્મ્યા હશે તો તો ખીજા બધા લોકની પેઠે એ પણ ફરવા જરૂર આવશે અને આ ચિત્રો જોશે, અને જોશે ત્યારે અમારા પાછલો ભવ યાદ આવશે. કારણ કે જે માણસ સુખ-દુઃખમાં રેનેહી હોય છે, તેણે ગમે એટલો લાંબો વિજેગ સહ્યો હશે તો ય એને એવાં ચિત્રો ઉપર આંખ પડતાંની સાથે જ બધું યાદ આવે છે, અને હેયામાં છુપાઈ રહેલો ઉભરો આંખમાં તરી આવે છે. અસંસ્કારી માણસની આંખ કઠણ હોય છે, મિત્રની આંખ ખુલી અને શુદ્ધ હોય છે, સાચા માણસની આંખ દૃઢ હોય છે, બેદરકારી માણસની આંખ ઢીલી હોય છે; દયાળુ માણસ ખીજતું દુઃખ જુએ છે ત્યારે એને દયા ઉપજે છે, અને ન્યારે એ પ્રસંગ એના પોતાના જ જીવનનો અનુભવ હોય છે, ત્યારે તો એથી શે વધારે એને લાગી આવે છે! ત્યારે તો જાણે એની છાતીમાં બાણ વાગ્યું હોય એમ એને લાગે છે! વળી લોક કહે છે કે જેને પાછલો ભવ યાદ આવે છે એ ગમે એટલો જાળવાન હોય તો ય મૂર્છા પામે છે. તેથી મારા સ્વામીને પોતાના પાછલો ભવનું શોકભર્યું સ્મરણ આ ચિત્રોથી જાગશે કે તરત જ મૂર્છા પામશે. પછી ન્યારે એમને જાન આવશે ત્યારે હૃદયે અને આંસુભરી આંખે કોણે આ ચિત્રો ચીતર્યાં એમ અધીરાધી પુછવા માંડશે. ત્યારે તારે ખાત્રીથી માનવું કે એ જ મારા જોવાયલા ને મનુષ્યયોનિમાં હાલ અવતરેલા સ્વામી છે. તેમનો દેખાવ અને હાવભાવ તું ધ્યાન દેઇને નિકાળી લેજે અને એમનું નામકામ જાણી લેજે અને પછી બધી વાત મને સવારમાં કહેજે. અહા! એમને ફરીથી મળીને માટે બધું દુઃખ વાતીશ અને એમને લેટીને મારો રેનેહ તાજે કરીશ! પણ અરેરે! જો એ ના જઈયા તો! મારે સાધવી થઇને નિર્વાણને માગે ચાલવા નિકળી પડવું. સ્વામી વિના અને ઉવ-ટની સીમાએ જલદી પહોંચવાની આશા વિના જીવતર ગાળવું એમાં જ નવા નવા અવતાર ધરવાનું અનંત દુઃખ છે.'

૫૦૬-૫૦૮. એમ પતિ સાથે ફરી સંજેગ થાય એ કામનાએ મેં સારસિકાને બહુ બહુ સૂચનાઓ આપીને પછી ચિત્રો સાથે એને વિદાય કરી. અને હવે તો સૂર્ય પૂરેપૂરો આથમી ગયો હતો. અને સૌને ઢાંકી દેનારી રાત્રિ આવી હતી. આપણા ધર્મ પ્રમાણે પર્વને દિવસે હમેશના સુવાના ખંડમાં સુવાને જલ્દે પોષધ લેવાના ખંડમાં જમીન ઉપર જ સૂઈ જોઇએ. તે રાત્રે રાત્રિજગરણ કરવું જોઇએ અને પ્રભુનું ધ્યાન ધરવું જોઇએ; એ પ્રમાણે હું પણ પોષધ લેવાના ખંડમાં ગઈ અને મારાં માળાપ સાથે જિનપ્રભુની સ્તુતિ-વંદના કરીને દેવસિક અને આતુર્માંસિક પાપ-માંથી મુક્ત થવા માટે પ્રતિક્રમણ કર્યું.

૫૦૯-૫૧૨. એ બધું કરી રહ્યા પછી હું સ્થિરભાવે લોંબ ઉપર ઉઘી ગઈ.

એ ઉદ્ધમાં મેં; જાણે હું પર્વત ઉપર ચઢીને લમતી હોઉં, એવું સ્વપ્ન જોયું. ત્યારે હું જાગી ત્યારે મેં મારા પિતાને પુછ્યું કે:—‘આવા સ્વપ્નનું ફળ શું ?’

૫૨૩-૫૨૩. ત્યારે મારા પિતાએ ઉત્તર આપ્યો:—‘સ્વપ્નશાસ્ત્ર પ્રમાણે એવું સ્વપ્ન સફલાગ્ન્ય સૂચવે છે. સ્વપ્નવડે માણસનો આત્મા સફલાગ્ન્ય કે દુર્ભાગ્ય, આનંદ કે શોક, જીવન કે મરણ આગળથી જાણી શકે છે. કાચું માંસ, લોહીભર્યા ઘા, હાથ પગ ભાંગવો, વેદનાની ચીસ, અને આગનો ભડકો: એવાં એવાં સ્વપ્ન નકારા ફળની સૂચના આપે છે; પણ હાથી ઉપર કે બળદ ઉપર કે મહેલ ઉપર કે પર્વત ઉપર કે દ્વધાળા ઝાડ ઉપર ચઢવું એ આવતા ભાગ્યની સૂચના આપે છે. અને સ્વપ્નમાં સમુદ્ર કે નદીને જે આગળની જાય છે તેનાં દુઃખ નિશ્ચય ટળે છે. વળી જાતિ ઉપર પણ ઘણા આધાર રાખે છે: કાંઈને સ્વપ્નમાં નરજાતિની કે નારીજાતિની વસ્તુ મળે કે જોવાય તો પારેલો લાભ કે હાનિ થાય. દુકામાં માણસ જે સારાની આશા રાખે છે કે જે નકારાથી ડરે છે તે સ્વપ્ન ઉપરથી જાણી શકાય છે. અને સ્વપ્નમાં ફળવાનાં ફળ ક્યારે ફળે છે એ સ્વપ્નના સમય ઉપરથી નક્કી થાય છે: જો સ્વપ્ન સમીપમાં ઉદ્ધ આવે તો જ આવે તો તેનું ફળ છ મહિને ફળે, જો મધ્યરાત્રે આવે તો તેનું ફળ ત્રણ મહિને ફળે, જો પ્રાણમુહૂર્તે એટલે કે ગાયો ચરવા નિકળે તે સમયે સ્વપ્ન આવે તો ઠોઢ મહિને ફળે અને જો સવાર થતાં આવે તો તરત ફળે. છેવટે કહેવાનું એટલું જ કે સારે શરીરે આવેલાં સ્વપ્નો જ ભવિષ્ય સૂચવે છે. પણ એથી વિરુદ્ધનાં સ્વપ્નોનું ફળ કંઈ જ નથી. ત્યારે કન્યા પર્વત ઉપર ચઢવાનું સ્વપ્ન જીવે ત્યારે ધાયો પતિ મળે, અને બીજાને એવું સ્વપ્ન આવે તો ધાર્યું ધન મળે. મારો દિકરી! સાત દિવસની અંદર તારું સફલાગ્ન્ય ખુલશે.’

૫૨૪-૫૨૪. મારાં પિતાનાં આ વચનથી મને વિચાર ઉઠ્યો કે મારા હૃદયમાં જેને માટે કામના છે, તેના સિવાય બીજા પુરુષ સાથે મારાથી રહી શકાય નહિ. મારી શુભ કથા તો મારાં માળાપથી સંતાડી રાખવાનો જે ઠંરાવ કયો. તેથી સાર-સિક્ષાની વાટ જોતી આખી રાત હું ત્યાં પોષધશાળાના ખંડમાં બેસી રહી અને પછી વિચારમાં ને વિચારમાં જિનપ્રમુત્તુ ધ્યાન ધરતી બિજાનામાંથી ઉઠી ઉભી થઈ અને રાત્રિ પ્રતિક્રમણ કર્યું. સૂર્યોદય થયા પછી દાતણ કર્યું ને ત્યાર પછી મારાં માળાપથી છુટી પડીને ધીરે ધીરે ઉપર ચાલી ગઈ.

૫૨૫-૫૨૫. પછી અમારી હવેલીની અગાથી ઉપર હું ચઢી, છેક એની દરસ ઉપર સુંદર ચિત્રો ચીતર્યા હતાં અને તેમાં મૂલ્યવાન હીરા ચોતી જડયાં હતાં: મારું તુટી પડે એવું શરીર માત્ર આશાને લીધે જ ટટાર ચાલી શકતું હતું. એવામાં સૂરજ ઉઠ્યો, એનાં કિંશુકપુલના જેવાં લાલ ફિરણો પૃથ્વી ઉપર પથરાઈ રહ્યાં અને મછી દૂર દૂર સુધીની પૃથ્વી કેશર રંગે રંગાઈ ગઈ. સર્વ જગતને એણે જગાડ્યું અને રાત્રે બીજાં ગયેલાં કમળોને ખીલવ્યાં.

૫૩૩-૫૩૪. એવે સારસિકાએ પણ દેખા દીધી. ઉતાવળે ઉતાવળે એ મારી પાન
સે આવી અને સ્નેહભરી દૃષ્ટિએ એણે મને આવતાની સાથે જ હૈયા સાથે ચાંપી લીધી.
પછી આનંદી મ્હોંએ ફરતેહ મળ્યાના મને સમાચાર આપ્યા. એના બોલમાં જ કંઈક
અનેરી મિઠાશ હતી. એણે હાંફતે હાંફતે કહેવા માંડ્યું:

૫૩૫-૫૩૬. 'બહુ દિવસથી ખોવાયલા તારા સ્વામી જણ્યા છે. વાદળાં વિના-
ની શરદાનુગુની રાત્રિનો ચંદ્ર જાણે પ્રકાશતો હોય એવું એમનું સુખ પ્રકાશે છે. ખેન,
હવે ધીરજ ધર. તારી આશા હવે થોડા જ વખતમાં ફળીભૂત થશે.'

૫૩૭-૫૩૮. આ શબ્દો સાંભળ્યા કે તુરત જ હું તો સુખના વરસાદમાં નવાઈ
ગઈ, મ્હાનંદે સારસિકાને ભેટી પડી. પછી મેં પુછ્યું: 'આ વહાલી સખી, મારા સ્વામી-
નું સ્વરૂપ તો અત્યારે ફરી ગયું હશે, તો ય તે એમને શી રીતે જાણખી મળ્યા ?'

૫૩૯-૫૪૨. ત્યારે એણે ઉત્તર આપ્યો: "પ્રિય સખી, કેવી રીતે તારા સ્વામી
જડી આવ્યા તે વિગતવાર કહું, તું સાંભળ તે ચોક્કસી રાખવાની જે જે સૂચનાઓ
સંધ્યાસંજે આપી હતી, તે સાંભળી લેઈ હું છબિઓ લઈ આવતી થઈ. હું એ છબિ-
ઓ ચોંતરા ઉપર ગોઠવી રહી તેવે સમયે, રાત્રિએ ખીલતાં પદ્મનો મિત્ર જે ચંદ્ર તે
ઉગ્યો. પ્રકાશને ફેલાવતો રાત્રિનો પ્રિયજન, કામદેવનો વહાલો, એ ચંદ્ર ધીરે ધીરે
ઉપર ચઢવા લાગ્યો. સરોવરના જળ પર જેમ ખીલેલું કમળ તરે તેમ એ આકાશપટમાં
ખીલીને તરવા લાગ્યો. તેવે રાજમાર્ગ ઉપર સુદર ગાડીઓમાં ખેડીને ધને મઠ-
મંત્ર નગરંજનો જાણે રાજા હોય તેમ ફરવા નિકળ્યા. રાતની ચોલા જેવાને આતુર સ્ત્રીઓ
માંડીઓમાં ખેડી નિકળી. પગે ચાલતા જુવાન પુરૂષો જુવાન સ્ત્રીઓ સાથે હાથેહાથ મીલા-
વીને હુંથેહુંથાં મિલાવી આમ તેમ ચાલતા દેખાયા. આનંદે ઘેરાયલાં લોકોનાં ટોળાં સામે
આવતાં ટોળામાં મળી જતાં ને પછી પાછાં વળી સાથે ચાલતાં. દુકાનો, ચોમાસામાં
પાણીનો પ્રવાહ નદીનું રૂપ ધારણ કરીને જેમ સમુદ્ર તરફ વહે છે, એમ રાજમાર્ગ
ઉપર લોકોનો પ્રવાહ વહેવા માંડ્યો. જે ઉંચા હતા, તે સહજે એઈ શકતા, પણ જે
નીચાં હતા તેમને પગની આંગળીઓનાં ટેરવાં ઉપર ઉંચું થવું પડતું. ઘણા બીડમાં
ભયંકરતા અને આસ કરીને જાડા તો એથી ચીસો પાડતા. રાત જેમ ચાલી નીચે છે
એની કેટલાક માણસો પોતાના ફરમા આંગળ પરવા કરતા નહોતા, પણ કેટલાક પોતાની
ફાંસમાં અર્ધ ઉપર બળી ગયેલી દિવેટો તરફ આંખ રાંખ્યાં કરતા; અને રાત જેમ જેમ
જતી ગઈ તેમ તેમ લોકોની આંખ ઉઘે ઘેરાતી ગઈ; અને તેમની આતુરતા ઓછી
થતી ગઈ; તેથી બીડ પણ ઓછી થતી ગઈ; અને આખરે થોડા જ લોકો છબિઓ પાસે
આવવી લાગ્યા. પણ હું લોક તરફ અને અખત જેવાને દીવા તરફ જોતી હતી, તેવામાં
અકસ્મત સરળી વર્થના પોતાના મિત્રોનાં ટોળા વચ્ચે ચાલતો એક જુવાન પુરૂષ ત્યાં
આવી પહોંચ્યો અને છબિઓ જેવા લાગ્યો. કાચબાના પગ જેવા એના પગ મૂક હતા, પ-
ગની પિંડીઓ ઘાટઘાટ હતી, એની જાંઘો મજબુત હતી, એની છાતી સપાટ વિશાળ અને

માંસ ભરી હતી, તેના હાથ લાંબા સ્થૂલ અને બલવાન હતા. પોતાના મિત્રોનાં મુખને કમલ-
કુલોની પેઠે ખીલાવતો અને તેમની વચ્ચે ચાલતો ત્યજે બીજા ચંદ્ર આંખો હોય એમ
એ ચંદ્રથી એ વધારે સુંદર શોભતો હતો. એની જુવાનીની સુંદરતા અને મૃ-
દુતા એવી તો ભવ્ય હતી કે જુવાન સ્ત્રીઓ અને સ્નેહથી ભેળ રહેતી. ખરેખર એવી
તો એકેય આ નહીં હોય જેના હૃદયમાં આ પુરૂષ પેશી ન શકે. લોક તો બોલવા લાગ્યા
કે ગમે તો એ દેવલોકનો પુરૂષ હોવો ભેધએ કે ગમે તો એ પોતે જ એકાદ દેવ
હોવો ભેધએ. એ છળિઓને થોડી વાર ભેધ રહ્યો અને પછી એમાં પ્રકટ થતી ઉત્તમ
કળાનાં વખાણ કરતો બોલ્યો:

પદ્મ-પદ્મ. 'અહીં આ રેતીના બે કિનારા વચ્ચે નીચાણમાં વહેતી ને ભંમરા
ઉઠાવતાં મોળાંવાળી અંચળ ગંગાને કેવી સુંદર ચીતરી છે ! કમળભર્યા તળાવવાળું અને
વિવિધં ઝાડોથી ઉંચુંનીચું દેખાતું આ વન કેવું સુંદર છે ! વળી શરત, શીત, વસંત,
શ્રીષ્ઠ વગેરે ઋતુઓ વનકુળ અને વનકુલ વડે કેવી આબેહુબ બનાવી છે ! અરે, અને
આ બે સ્નેહને પાંજરે પુરાયલાં ચક્રવાક જીવનના સમસ્ત પ્રવાહમાં કેવાં સુંદર રીતે
એક બીજાની સાથે જડાઈ ગયાં છે ! અહીં તેઓ પાણી ઉપર સાથે તરે છે, તહીં
રેતીના કિનારા ઉપર સાથે આરામ લે છે, પણ આકાશમાં સાથે ઉડે છે અને વળી
પણ કમળકુલોની વચ્ચે સાથે જ બેસે છે; સદા અને સર્વત્ર તેઓ એક બીજા સાથે
અંચળ સ્નેહમાં કેવાં જડાઈ રહ્યાં છે ! ચક્રવાકની ગરદન ટુકડી ને સુંદર છે અને એનો
રંગ કિંચુક કુલના જેવો લાલ ચળકે છે. વળી મૃદુ અને ટુકડી ગરદનવાળી ચક્રવાકી તેના
રંગને લીધે ફોરેત કુલના જેવી લાગે છે. અને એ ચક્રવાકની પાછળ કેવી આલે-આલી
રહ્યા છે. આ હાથી પણ કેવો સુંદર ચીતર્યો છે ! એ એની નાતના મુખી જેવો લાગે છે
અને ઘાડા વનમાં પોતાનો માર્ગ કરવાને માટે ઝાડનાં ઠાળ તોડી પાડતો ચાલે છે.
નદીમાં નાહવાને લોકો હવે તે નીચે ઉતરે છે. હવે અહીં એના ભવ્ય શરીરને લેઈને
એ પાછો નિકળે છે. ત્યાં તે શિકારી એના ઉપર ખાણ તાકે છે. પહોંચે પગે ઉભો
રહીને એ ધનુષ ઉપર ખાણ ચઢાવીને કાન સુધી જેંચે છે. પછી ખાણ છોડે છે-આ
પણ બહુ સુંદર ચીતર્યું છે-પણ ડાંગરનાં કણસલાં જેવા કે કમળના તંતુ જેવા શતાશ
રંગે ચળકતો ચક્રવાક ઉડે છે અને એ ખાણ એને વાગે છે. અરે જુઓ, આ ચક્ર-
વાકી સંતાપને લીધે વિલાપ કરે છે, કારણ કે પારધિએ તેના પતિના જીવનનો અને
સ્નેહનો નાશ કર્યો ! એ પોતાના સ્વામીની પાછળ પડે છે અને અતંત વેદનામાં
બળી મરે છે. ખરેખર ! આજના ઉત્સવમાં જે કંઈ ભેવા જેવું છે એમાં આ ચિત્રો
સૌથી સુંદર છે; પણ આ ચિત્રોની બધી હારને અનુક્રમે ભેવી ભેધએ.'

પદ્મ-પદ્મ. આમ બોલતાંની સાથે જ એ સુંદર પુરૂષ ચિત્રો સામે આશ્ચર્યથી
ભેધ રહ્યો હતો. એટલામાં બેભાન યદ્યધરણી ઉપર ઢળી પડ્યો. વાંસ ઉપર બાંધેલી
ધનની દોરી કપાતાં જેમ ધન ધન દઈને જમીન ઉપર પડી ત્યજે એમ એ ઢળી

પડયો. એના મિત્રો તો ચિત્રો જોવામાં એવા હીન થઈ ગયા હતા કે એ પડયો એની પછુ ખબર એમને તરત તો ના પડી. ખબર પડી કે તરત જ એમણે એને ઉપાડી લીધા અને એને જાણે ચિત્રોએ જ બેલાન કયો હોય એમ એથી દૂર ખુટી હવામાં લઈ ગયા. વખતે એ જ સુંદર પુરુષરૂપે તારો ચક્રવાક હોય અને છેવટે મારી સખીની કામના સિદ્ધ થાય એ ઉત્કંઠાએ હું પણ પાછળ પાછળ ગઈ. અને ખરેખાર ! ત્યારે એને જ્ઞાન આપ્યું, ત્યારે રડતી આંખે હુસકાં ખાતો ખાતો એ બોલ્યો:-

૫૮૬-૫૮૮. 'ઓ મારી બહાલી ! મારા આલિંગ ના આનંદ તારી માળી ચક્ર ચકતી આંખો લેધને અત્યારે તું ક્યાં હશે ? એકવાર ત્યારે આપણે ગંગાનાં મેઘ ઉપર ચક્રવાકજન્મમાં રમતાં હતાં, ત્યારે તું મારા સ્નેહનો ખાજનો હતી; પણ અત્યારે તારા વિના હું ગાંઠા થઈ ગયો છું. તું સ્નેહની ધળની પેઠે બધે મારી પાછળ પાછળ આવતી અને છેવટે મૃત્યુમાં પણ તું મારી પાછળ આવી.'

૫૮૯-૫૯૪. લાજ છોડીને આંધુભરી આંખે એ વિલાપ કરતો હતો અને ઉપરથી નીચે સુધી ચોકની મૂર્તિ જેવો થઈ રહ્યો હતો ત્યારે એના મિત્રો એને ઠપકો આપવા લાગ્યા: 'આમ ચોક કર ના, શું તારું જ્ઞાન ગયું છે ?' એણે એમને ખત્રી આપી કે 'મારું જ્ઞાન ગયું નથી.' ત્યારે વળી એમણે પુછ્યું: 'ત્યારે તને થયું છે શું ?' અને પછી એણે એમને ઉત્તર આપ્યો: 'હું એ બધી વાત તમને કહીશ, પણ તમે છાની રાખજો ! આ ચક્રવાકોની કથા જે અહીં આ અનેક ચિત્રોમાં ચીતરી છે તે મારા પોતાના પાછલા ભવની કથા છે.' એમણે પુછ્યું કે એ શી રીતે કોઈ શકે ? અને વળી ચક્રિત થઈને પુછ્યું કે પાછલા ભવની કથા તને યાદ શો રીતે આવી શકે ? ત્યારે તેણે દરેક ચિત્ર કેવી રીતે પોતાના પાછલા ભવની સાથે બંધાયેલું આવે છે એવું ધીરે ધીરે વર્ણન કરી બતાવ્યું અને પછી છેવટે કહ્યું:

૫૯૫-૬૦૩. 'પારધિના બાણથી મારો જીવ તો ચાલ્યો ગયો, તેથી મારી પ્રિયા મારી પાછળ કેવી રીતે સતી થઈ ગઈ, એ તો હું આ ચિત્રોથી જ જાણી શક્યો. એ જોઈને મારું હૈયું બળતી વેદનાએ એવું તો ભરાઈ આવ્યું કે કોણ જાણે કેવી રીતે હું મૂચળી પામી ધરણી ઉપર ઢલ્યો. આ ચિત્રો જોઈને મને મારો પાછલો ભવ આંખેહુબ યાદ આવ્યો ને તે પ્રમાણે મેં તમને એ ભવની બધી કથા કહી ચ'લ્યાવી. અને હવે જે નિશ્ચય મારા મનમાં કયો છે તે તમને જણાવું છું. એના વિના બીજી કોઈ સ્ત્રીની સાથે હું લગ્ન કરીશ નહિ; તેથી કોઈ પણ રીતે જો એની સાથે મારો લેટો થાય તો તો સ્નેહનો આનંદ મને મળે. તમે લાઈ ! જાઓ ને તપાસ કરો કે એ ચિત્રો ચીતરનાર કોણ છે ? નક્કી એણે જ એ ચિત્રો તૈયાર કરાવેલાં હોવાં જોઈએ. ગમે તો એ ચિત્રો એણે ચીતર્યા છે કે ગમે તો એણે જાતે કોઈ કળાધરને સૂચનાઓ આપી ચીતરાવ્યાં છે, નહિ તો જે હકીકતો હું જાણું છું તે બીજા કોઈ ચીતરી શકે નહિ. જે ભવમાં હું ચક્રવાક થઈને એની સાથે રહ્યો હતો તે એના વિના બીજું કોણ જાણી શકે ?'

૬૦૪-૬૦૬. એની સૂચના સાંભળીને, સખ. ! જે કોઇ પ્રશ્ન પુછવા આવે તેને ઉત્તર દેવાને હું તો ઉતાવળી ઉતાવળી ચિત્રો પાસે જઈ ઉભી. તુરત જ ખોળતો ખોળતો એક જથ્થા આંખો ને પુછવા લાગ્યો: ‘આખા નગરને આશ્ચર્યચકિત કરી મેલ્યું’ છે એવાં આ ચિત્રોનું ચીતરનાર કોણ ?’ મેં. ઉત્તર આપ્યો: ‘નગરશેઠની દીકરી તરંગવતીએ એ ચિત્રો ચીતરીને અહીં મુકાવ્યાં છે, અને સાચે જ એ ચિત્રો કંઈ કલ્પનાથી ચીતર્યાં નથી.’ પછી જીલુ કેટલીક ચોખવટ મેં કરી એટલે તે તારા સ્વામી પાસે પાછો દોડી ગયો અને ત્યાર પછી શી વાતો થાય તે સાંભળવા હું પણ તેની પાછળ જ ગઈ.

૬૧૦-૬૧૨. ત્યાં જઈ મને પુછવા આવનારો બોલ્યો: ‘ચિંતા કરીશ ના, મારા મિત્ર પદ્મદેવ ! તારી પ્રિયા મળી આવી છે. એ ઋષભસેન નગરશેઠની દીકરી તરંગવતી છે. એની જ સૂચનાથી એ ચિત્રો મુકાવ્યાં છે, અને એ કંઈ કલ્પનાથી ચીતરાયાં નથી, પણ એની સખીએ મારા પ્રશ્નોના ઉત્તર દીધા એ ઉપરથી મારી ખાત્રી થઇ છે કે એ એક સાચા જીવનની કરુણ કથા છે.’

૬૧૩-૬૧૬. આ શબ્દોથી તારા પ્રિયનું સુખ પૂરા ખીલેલા કમળની જેમ મલકાયું. પછી એ બોલ્યો: ‘હવે મને મારા જીવનમાં આનંદ આવશે; કારણ કે મારી એક વખતની ચક્રવાકી નગરશેઠની દીકરી થઇને અવતરો છે.’ પણ તરત જ પાછો ચિંતાતુર થઈ બોલવા લાગ્યો: ‘પણ નગરશેઠ પૈસાને ભેરે એટલો અભિમાની છે કે એની કન્યાને માટેનાં બધાં માગાં પાછાં વાળ્યાં છે, ત્યારે આપણું ધાર્યું પાર શી રીતે ઉતરશે ? એકવાર મારી પ્રિયા જલ્યા પછી જો એને મળી શકું નહિ તો ન જલ્યા કરતાં પણ વધારે વેદનાં થશે.’

૬૧૭-૬૧૯. એનો એક મિત્ર બોલ્યો:—‘બચ, તે જડી છે એટલે તો હવે કાંઈ વાંધો નથી. જે વસ્તુ વિદ્યમાન છે તે જરૂર મળી જ રહેશે, એનો રસ્તો થઈ રહેશે. અને હજી પરજીવી નથી એટલે એને માટે નગરશેઠની પાસે માગું કરવાની વ્યવસ્થા કરીશું. જો એથી કશું નહિ વળે અને તારી ખુશી હશે તો આપણે એનું હરણ કરી લાવીશું.’

૬૨૦-૬૨૧. પણ એણે તો ઉત્તર આપ્યો: ‘નગરશેઠના ઘરમાં જે કુળાચાર પેઢીઓ થયાં ચાલતો આવે છે તે કંઈ પોતાની પુત્રીના સ્નેહને કારણે એ જાળગમે નહિ, અને તેથી જો એ પોતાની પુત્રી મને દેશે નહિ તો હું મારા જીવનનો અંત આણીશ, કારણ કે તું કહે છે એવું બળાતકારનું કામ તો મારે કરવું નથી.’

૬૨૨-૬૨૪. હવે સૌ મંડળ પોતાના અગ્રેસરને વીંટી વળી તેની હવેલી તરફ ચાલ્યું અને તેના કુટુંબ વજેરેનાં નામકામ જાણી લેવાને માટે હું પણ એમની પાછળ ચાલી. જે મકાનમાં એ પેઢા તે એવું તો ઉંચું ને સુંદર છે કે જાણે કોઈ સ્વર્ગમાંથી ઉપાડી આણીને પૃથ્વી ઉપર મુકી દીધેલું દેવવિમાન હોય. મેં એના પિતાનું નામ

અને ધંધા વગેરે ચોક્કસાઈથી પુંછી લીધું અને એ બધી હકીકતોથી જ્યારે મને પુરો સંતોષ થયો ત્યારે ઉતાવળે પાછી આવતી રહી.

૧૨૫-૧૨૮. એવામાં નક્કો, અહો તેમ જ ચંદ્ર પણ એકેએકે કરી અદ્ભુત થઈ ગયા અને પુલો-ચુટી-લીધા તળાવ જેવું આકાશ દોરું થઈ ગયું. અને પછી સંઘળા જીવજંતુનો જે મિત્ર અને દિવસનો જે પ્રભુ સૂર્ય તે બધું જીવ (બપોરીઆના) કુલના જેવો લાલ રંગે ઉગી નીકળ્યો. આરે દિશાઓ સૂર્યથી સોનારંગે રંગાઈ ગઈ. તે જ વેળાએ તને બધા સમાચાર આપવાની આતુરતાએ હું તારી પાસે દોડતી આવી. તારો સ્વામી જલ્યાની જે જે બધી હકીકત મેં જોઈ બાણી તે બધી મેં તને આ રીતે કહી દીધી છે અને મારા ઉપર જે વિશ્વાસ તે મુક્યો હતો તે આજે સફળ થયો છે; એવી લાગણી અત્યારે હું અનુભવું છું.”

૧૨૯. (સાધ્વી તરંગવતી પોતાની કથા શેઠાણી પાસે વળી આગળ ચલાવે છે) મારી સખી પોતાની વાત પુરી કહી રહી એટલે હું અધીરી થઈને બોલી: ‘પણ એમના માળાપનાં નામ ને વ્યવસાય તો મને કહે.’

૧૩૦-૧૩૫. વળતી સારસિકા બોલી: ‘એનો પિતા ધરતી અને સાગરના બન્ને નાનો બાણી છે. શુદ્ધ હિમાલય પણ એના જેટલો અચળ નથી. વળી એણે ધરતીને ધર્મશાળાઓ અને આનંદશાળાઓની એવી તો શંભુગારી દીધી છે કે તેનું નામ જેમ મોટા વ્યાપારી તરીકે તેમ જ મોટા ધર્મોત્સાહ તરીકે પણ આરે દિશામાં પ્રખ્યાત થઈ ગયું છે. એ શેઠનું નામ ધનદેવ છે. શેઠનો આ પુત્ર ઘરડાં અને જીવાન સૌને વહાલો છે અને એનું નામ પદ્મદેવ છે. એ કામદેવ જેવો સુંદર છે અને વળી પદ્મ જેવો મનોહર છે.’

૧૩૬-૧૩૯. સખીએ જે બધા સમાચાર આપ્યા તેથી મારા કાનની સ્નેહભરી ઉત્કંઠા તૃપ્ત થઈ. છતાં યે સારસિકાની આંખ અને કાનને ધન્યવાદ દેતી હું બોલી: ‘તું બેન ભાગ્યશાળી કે તે મારા સ્વામીનાં દર્શન કર્યો ને એમનાં વેણ કાનોકાન સાંભળ્યાં.’ પછી મારી પાસેથી એ ચાલી જતી હતી ત્યારે પણ મેં મારા આનંદના આવેગમાં કહ્યું: ‘મારો શોક હવે ટળ્યો છે અને આનંદ ઉભરાયો છે, કારણ કે મારા સ્વામી મને આસક્ત છે.’

૧૪૦-૧૪૨. પછી મેં નાહી લીધું, પછીઓને હાથ નાખ્યા, જિનપ્રભુની પૂજા કરી અને પારણાં કરીને ઉપવાસ પૂરો કર્યો. ત્યારપછી ઉપવાસે અને પારણાંએ થયેલા શ્રમથી આરામ લેવાને કાજે શેતરંજી-પાથર્યો અને પવને-કંઠા-થયા ખંડમાં ગઈ. ત્યાં સ્વામીને મળવાની હજારો આશાએ હું વેરાઈ ગઈ અને એમના સ્નેહથી વિપ્રીત પદ્મ અનેક વિચારોમાં વખત ગાળવા લાગી.

૬૪૩-૬૪૭. એવે સારસિકા પાછી આવી, એનો ધ્યાસ તો જાણે માતો જ નહોતો. અને આંખોમાંથી ધાર ધાર જેવડાં આંસુ જતાં હતાં. એ બોલી: “સર્વમાન્ય શેઠ ધનદેવ પોતાના મિત્રો અને સંબંધીજનોને લેઈને (તારા પિતા) નગરશેઠ પાસે આવ્યા અને સ્વયં શબ્દોમાં એમને કહ્યું: ‘તમારી, દીકરી તરંગવતીનું મારા દીકરા પદ્મદેવ માટે માગું કશું છું; બોલો, કેટલો આંકડો આપને જોઈશે?’ પણ નગરશેઠ અસંભવતાભયો આ શબ્દો એમને સંભળાવી દીધા:

૬૪૮-૬૫૨. ‘જે ધણી વેપારને કારણે હમેશાં પરદેશમાં રહે, કદી ઘેર રહે નહિ અને તેથી કરીને દાસીઓની સાથે રમ્યા કરે, એવા માણસને મારી આંવી કન્યાને શી રીતે સોંપું? એને તો સદા પ્રેરિતભરૂં કાના જેવા વાંજ સંખવા પડે અને (બીજી સ્ત્રીઓની પેઠે) શણગાર સજવાના કદી પ્રસંગ જ નહિ આવે. સ્વામીથી વિષુટી પડેલી એને લીની અને રાતી આંખે માત્ર કાગળો લખવામાં ને સ્નાન કરવામાં વખત ગાળવો પડે. આમ મારી દીકરીને વેપારીના ઘરમાં પુષ્કળ ધન હોવા છતાં મરતાં મુખી વિધવાની દશા લોગવવી પડે, એના કરતાં તો લીખારીને આપવી સારી. પછી ભલેને એવાં નાવણીઆં, શણગાર, સુગંધી પદાર્થો અને એવા સુંદર સોહાગ એને ના મળે.’

૬૫૩-સારસિકાએ કહેવા માંડ્યું કે આમ એમણે એ શેઠનું માગું તુચ્છકાર્યું અને (વાતચિત્તમાં) સંભવતા, મિત્રતા અને માનવૃત્તિ અશક્ય થઈ પડી તેથી તે શોકાતુર થઈને આલી નિકળ્યા.

૬૫૪-૬૫૫. મારી સખીએ આણેલા આ સમાચારે શિયાળાનો હિમ જેમ કમળની દાંડીને ભાગી નાખે એમ, મારા મનોરથને મૂળથી ભાગી નાંખ્યો. માફ સર્વ ભાગ્ય આવ્યું ગયું માફ હૈયું એકવાર તો આનંદને બદલે પાછું શોકથી ભરાઈ ગયું. અને આંસુભરી આંખોએ મેં મારી રોતી સખીને કહ્યું:

૬૫૬-૬૫૮. “મારો સખા જાણુ વાગ્યે જીવી શક્યો નહિ, તેથી હું પણ જીવી શકી નહિ. એ જીવે તો જ મારાથી જીવાય. પક્ષીના ભવમાં પણ હું એની પાછળ ભૂત્યુમાં પેહી! ત્યારે જાજ આ માનવભવમાં એમના વિતા-મારા સ્નેહી વિના હું શી રીતે જીવી શકું? બ, સારસિકા, અને એમને આ પત્ર આપ, વળી કહેજે કે:

૬૫૯-૬૬૦. ‘ચરધરતી આંગળી વડે લોજ પત્ર ઉપર લખેલો આ પત્ર સ્નેહની સુંદર કથા કહેશે. એ છે તો દુઃખ, પણ અંદર હકીકત મહત્ત્વની છે. તમને આપવા એ પત્ર મારી સખીએ આપ્યો છે.’

૬૬૧. અને એમના આત્માને આધાર આપવાને માટે વળી આ સ્નેહશબ્દો એમને કહેજે:

૬૬૨-૬૬૫. 'તમે સ્વામીને અનુસરવાને માટે જેણે ચક્રવાકીના ભવમાં પોતાનું જીવન સમર્પી દીધું, તે આજે નવે અવતારે નગરચોકની કન્યા ચંદ્રને અવતરી છે. તમને શોધી કાઢવાને જ ચિત્રમાળાનું પ્રદર્શન કર્યું હતું. એકવાર તમે એની પાસે આવ્યા કે એની દામતા પુરી થઈ. અરે, ગયા ભવમાં જોવાયેલા અને ફરી પાછા આજે મળી આવેલા પ્રિયતમ! આપણને ગયા ભવમાં એકરૂપ કરનારા સ્નેહસંબંધ હજી એ હોય, તો તમારા જીવનને જાળવી રાખો અને તમારી સાથે મારા જીવનને પણ બચાવો !”

૬૬૬. 'વળી અમને એકસૂત્રે બાંધનારા સ્નેહ પરિપૂર્ણતાએ પામે ત્યાં મુઠી સૌ શુભ રાખવાની એમને સૂચના આપજે. '

૬૬૭-૬૬૮. આ અને એવી બહુ બહુ વાતો મેં ભારે હૈયે સારસિકાને કહી ને પછી કાગળ આપીને વિદાય કરી. (અને છેવટે મેં એને સોગન દઈ કહ્યું:) 'અમે જો સ્નેહસંબંધે ભેટાઈશું' એવા સમાચાર ગમે તે રીતે જરૂર લાવજે. મેં તને કહી ન હોય કે કાગળમાં લખી ન હોય, એવી સૌ વાતો મારા લાલની હોય તે, એમને કહેજે. '

૬૭૦-૬૭૧. પછી મારી એ સારી સખી મારા સ્વામી પાસે પત્ર લઈને ગઈ ને માથે મારા હૃદયને પણ લેતી ગઈ. એની ગેરહાજરીમાં ચિંતાએ કરીને મેં નિશ્ચય કર્યો:

(અહીં' મૂળ ગ્રંથમાં દ્વા સ્લોક ૬૭૧ ઉ. ચી ૬૭૭ ખુટે છે.)

૬૭૮-૬૮૦. (સખી પાછી આવી અને મને કહેવા લાગી:-) “સખી, તારી પાસેથી પત્ર લઈને હું નિકળી એટલે નગર વચ્ચે આવેલા રાજમાર્ગ ઉપરની મુંઢર હવેલીઓ પાસે ચંદ્રને ચાલી. અનેક ચક્રલાં વટાવીને હું એક મહેલ પાસે આવી ઉભી, વૈશ્રવણ (કુબેર) અને શ્રી જાણે ત્યાં એકઠાં થયાં હોય એવો એ મહેલ લાગતો હતો. ભારે હૈયે હું તો દરવાજા પાસે આવી ઉભી. ત્યાં ચોકીદાર હતો તેણે અનેક જતીઆવતી દાસીઓમાંથી પણ મને ઓળખી કાઢી કે આ કોઈ અજાણ્ય માણસ છે; અને મને વાતે વળગાડીને પ્રશ્ન કર્યો કે ‘તું ક્યાંથી આવી છે?’ સીઓને વાતો ઉઠાવી દેતાં આવડે છે, તેથી મેં જુલું જ કહ્યું, કે ‘હું અજાણી છું’ એ તમે સાચે જ પારખી કાઢ્યું છે, પણ મને તમારા મહેલના કુમારે જોલાવી છે. ’ ચોકીદારે (આનંદથી) કહ્યું: ‘અહીં થઈ જનાર આવનાર કોઈ મારાથી અજાણ્ય નથી! તે ઉપરથી મેં એનાં વખાણ કરી કહ્યું: ‘જેને ઘેર દરવાજા આગળ તમારા જેવા ચોકીદાર હોય છે તે શેઠ સુખી છે. (અને વળી કહ્યું:) હવે મને શેઠના પુત્રની પાસે લેઈ જાઓ. ’ એણે ઉત્તર વાળ્યો, ‘ખીજાની સ્ત્રીઓ મારા ઉપર એવો વિશ્વાસ કરે ત્યાં રે તો એ કામ હું પુરીથી કરું. ’ એણે કહીને તેણે એક દાસીને લલામણ કરી કે ‘સાચી ઉપરને માણે કુમાર પાસે આને લેઈ જા. ’ પછી દાસી સાથે હીરામોતીએ

જેલમાં મહેલના સૌથી ઉપરના માળે હું પગવારમાં જઈ ઉભી. ત્યાંથી રાજમહેલમાં લાંબે સુધી નજર પહોંચતી હતી. દાસી મને રત્નજડિત આસન ઉપર બેઠેલા જુવાન પુરુષને દેખાડી આલતી થઈ.

૬૯૧-૭૦૯. વિશ્વાસ રાખીને હું કુમારની પાસે ગઈ. પાસે એક લોખંડા જેવો પ્રાણલુપ્તમાર હતો; શેઠના દીકરા દીંચણ ઉપર મુકીને એક ચિત્ર લેતો હતો. એની આંખમાંથી આંસુ ઝરીને એ ચિત્ર ઉપર પડ્યું, તે જેમ કોઈ કાગળમાં થયેલી ભૂલ લુછી નાખે એમ એણે લુછી નાખ્યું. આમ એ તને-મળવાની-આશાભર્યે અને વળી તારા-વિલ્લેગથી-ચિંતાભર્યે હેંચે બેઠો હતો. મેં વિનયથી નમીને હાથ કંપાળે આડાડી નમસ્કાર કર્યા અને કહ્યું: 'ઘણું જીવો કુમાર !' તે સાંભળી હાથમાં વાંકો ફંડ અને લાલચોળ લતમા નીચે વ્યાઘ્રચર્મ છે જેની પાસે એવો પેલો મૂર્ખો અને બહુબોલો પ્રાણલુપ્તમારના પી જેવાં દાંત કાઢી બોલી ઉઠ્યો: 'મને પ્રાણલુપ્તને તે પહેલા નમસ્કાર શા માટે ન કર્યો ? ને આ શૂદ્રને કેમ ક્યો ?' બચથી મારી ચુકી તો કાંડેથી સરી ગઈ, જાણે હું પોતે લોંબ ઉપર પડી ગઈ, અને બોલી: 'મહારાજ, નમસ્કાર તમને.' હું તરત જ પાછી ઉભી થઈ ગઈ ને બોલી: 'સાપના જેટલી મને તમારી બીક લાગે છે, એણે જૂમ મારી: 'શુ ?' મને તું સાપ કહે છે ?' મેં ઉત્તર આપ્યો: 'સાપ કહેતી નથી, હવે થયો સંતોષ ?' પણ એ બોલી ઉઠ્યો: 'મને સાપ કહીને હવે ફરી જાય છે ? યાદ રાખ કે હું ઉંચા પ્રાણલુપ્તમારનો છું; મારા પિતા હારિતગોત્રના કાશ્યપ છે, અને હું છાન્દોગ્ય સપ્રદાયનું મીઠું ખાઈ ખાઈ છું. હજી તું મને ઓળખતી નથી ?' આમ એણે મને અનેક મહેલગાંઠણાં સંસ્થાપ્યાં. શેઠના કુંવરથી આ સાંમળ્યું ગયું નહિ તેથી તેણે એ પ્રાણલુપ્તને ખમડાવ્યો ને કહ્યું: 'અરે પાછા, પારકા ઘરની દાસીને આમ સત્તાવ ના. તારો ખાલી ગઠબગાટ બંધ કરી દે. તું માત્ર મૂર્ખજ છે, બીજા કાંઈ નહિ.' શેઠના કુંવરે એને આમ ધમકાવ્યો એટલે પછી માત્ર દૂર રહીને મારી સામે આંખો કાઢવા લાગ્યો ને બીજા એવા એવા ચાળા કરવા લાગ્યો; બીજાં એનાથી કશું થઈ શક્યું નહિ. પછી એ ચાલતો, થયો એટલે સજી થઈને, પણ જાણે રડવા જેવી થઈ ગઈ હોઈ એમ, હું બોલી: 'ધન્ય પ્રભુ, એ ગયા.'

૭૧૦-૭૧૬. "શેઠના એ કુંવરે પછી મને પૂછ્યું: 'સુદરી, તું ક્યાંથી આવે છે ? તારે શું બેઠ્યું છે તે જલદી બાતી દે.'

"તારે હું બોલી: 'હે કુમરજીવણ, અવગુણવિહીન, સદગુણસંપન્ન, સંજીવનદાયક મોહન, મારો એક નાનકો સંદેશો સાંભળો. નગરશેઠ કચમસેનની સ્વર્ગની આશ્રય સમાન કન્યા તરંગવતીએ એ સંદેશો મોકલ્યો છે. તરંગવતીએ પોતાના હૃદયની જે ઇચ્છા પોતાના ચિત્રમાં ચીતરી છે, તે ઇચ્છા સંજીવનદાયકની આશા રાખે છે. પોછલા ભવનો (ચિત્રમાં ચીતરેલો) એકસંબંધ ને હજી ચે રહેવાનો હોય તો એનું જીવન ટકાવવા

માટે એને તમારો હાથ આપો. આ સંદેશો મારે તમને આપવાનો છે. સંદેશોનો મર્મ તો (એના લખેલા) આ પત્રમાં તમે જોશો. ’

૭૧૭-૭૨૧. “ આ શબ્દો સાંભળી એના ગોં ઉપર તો આંધુનો પ્રવાહ વહેવા લાગ્યો અને એનું આખું શરીર થરથરવા લાગ્યું. આમ એણે પોતાનો સ્નેહ તો દેખાડી આપ્યો; પણ તરત કંઈ ઉત્તર દેઈ શક્યો નહિ. કારણ કે હુસકાંથી એનો સ્વર નિષ્ફળી શક્યો નહિ. નિરાશાને દાખી દેવાને જે ચિત્ર એણે આંક્યું હતું, તે પાછું આંધુથી ફરી પલળી ગયું. કંઈક શાન્ત થઈને એણે પત્ર લીધો અને જેમ જેમ એ પત્ર તે ધીમે ધીમે વાંચતો આવ્યો તેમ તેમ એની આંખો રમવા લાગી. પત્રનો (ચતુર વાક્યોએ લખેલો) ભાવ એ સમજી ગયો એટલે એ સારી રીતે શાન્તિ પામ્યો અને પછી ૬૬, ૬૫૫, રણકતે શબ્દો બોલ્યો: ”

૭૨૨-૭૨૪. “ વિસ્તાર કરવાનું કારણ નથી. મારી શી દશા છે તે હુંકામાં જ સાંભળ. જો તું આવી નહોત તો હું જીવી શકત નહિ. ઠીક પછે તું આવી પહોંચી છે ને હવે મને આશા પડે છે કે પ્રિયાને મળવાને કારણે જીવનમાં રસ આવશે. વળી તારા આવવાથી, કામદેવ પોતાના બાણથી ઉડા ને ઉડા ઘા કયે જાય છે, તેની સામે રક્ષણ કરવાનું બળ હું પામ્યો છું. ’

૭૨૫-૭૨૬. “ ત્યાર પછી, તારાં ચિત્રે કરીને એને પાછલો ભવ જે યાદ આવેલો તેની સાથે કથા મને કહી બતાવી અને તે મને જે કહેલી. એને રજેરમ મળતી આવી. બાગના તળાવ પાસે ફરતાં ચક્રવાકને જોઈને તને તારો પાછલો ભવ જે સાંભરી આવેલો તે કથા મેં પણ તેને વિગતવાર કહી સંભળાવી. ”

૭૨૭-૭૪૫. “ એણે કહ્યું: ‘ અરેરે, (તારી સખીનાં) ચિત્રો જોઈને ત્યાં ને ત્યાં જ મારા હૈયામાં (વિલોભના) હુઝળો કાંટો ઉડે સુધી પેશી ગયો, જેટલો અમારો સ્નેહ એકવાર ઉડે હતો તેટલો જ ઉડા એ કાંટો પેઠો. ઉત્સવ પુરો થતાં જેમ વાવટો જમીન ઉપર પડી જાય તેમ ઘેર જઈને હું પધારી ઉપર પડ્યો, મારે બાણ મારા મિત્રો વિંટાઈ વળ્યા ને એને સ્થિતિમાં પાકીની રાત મેં ગાળી. કિનારા ઉપર આવી પડેલી માછલી જેમ તરકારે, તેમ હું સ્નેહદેહ પીકાતો અને અસહાય નિરાશાએ હાંકતો પધારીમાં પડી રહ્યો. હું ગ્રન્થમાં તારી રહેતો, આંખને અણસારે ઉત્તર આપતો, વળી હસતો અને ગાતો અને વળી પાછો ફાંઈ પડતો. મારા મિત્રો મારું સ્નેહદેહ પારખી ગયા અને એમણે શરમ છોડીને મારી માતાને વાત ઉઘાડી પાડી કહ્યું કે જો તમે તમારા (પુત્ર) પદ્મદેવને માટે નગરશેઠની લીકરી તરંગવતીનું માગું નહિ કરો તો એ મરી જશે. મારી માતાએ આ વાત મારા પિતાને કરી. તે તુરત જ નગરશેઠને યાં ગયા, પણ નગરશેઠે એમનું માગું તરછોડી કાઢ્યું. આથી મારાં માથાપે શાન્ત કરવાને બીજું મને કંઈ-કે તું કહે તેની સાથે તને પરજીવીએ, માત્ર એની વાત છોડ. આ વાત સાંભળીને હું એમને પગે પડ્યો, નમ્રતાપૂર્વક

હાય જોડ્યા અને જમીને કપાળ અડાડયું; પછી સ્વચ્છતાપૂર્વક બોલ્યો કે જેમ તમે કહેશો એમ કરવા તૈયાર છું, એનામાં એવું શું વધારે છે? આથી મારાં માળાપ શાન્ત થયાં અને એમની ચિન્તા ટળી. પણ મેં તો આપઘાત કરવાનો નિશ્ચય કર્યો હતો, કારણ કે મળવાની મારી બધી આશાઓ ભાંગી પડી હતી. અને દિવસે મારી યોજનાનો અમલ કરતાં વખતે લોક મને અટકાવે એ બીકથી રાતે બધાં ઉઘી જાય ત્યારે આપઘાત કરવાનો સંકલ્પ કર્યો. જીવવાની તૃષ્ણાથી છુટો થઈને અને મરવાને માટે તૈયાર થઈને આ બધા સંકલ્પવિકલ્પ કરતો હતો, એવામાં જ તું આ સંદેશો લેઈ આવી. એથી મારા હૃદયમાં ઉત્સવ થયો ને મારા જીવનમાં અમૃત રેડાયું. પણ તારી સખીનો શોકમયો કાગળ વાંચતાં મારી આંખોમાંથી આંસુ નિકળી પડેશે ને મને બહુ દુઃખ થશે. તારી સખીને મારા તરફથી આટલું કહેજે: જેને મરતાં તું સતી થઈ અને જેને તેં આટલે મૂલ્યે ખરીદી લીધો છે તે તારો (ખરીદેલો) દાસ થવાનું સ્વીકારે છે. તારાં ચિત્રથી એને સૌ વાતો સાંભરી આવી છે. અને જ્યાં સુધી તું એની થઈ નથી, ત્યાં સુધી એ દુખિયો છે; અને છતાં યે તારા સંબંધની અને સ્નેહ-પ્રમાણની જે આશાએ એને આનંદ આનંદ થઈ રહ્યો છે, અને એ આશાએ કરીને એ સુખિયો છે.

૭૪૬-૭૫૮. “આ સંદેશો આપ્યા પછી પણ એ મહાનુભાવે તારા સ્નેહની આશાઓ ઉપર બહુ સ્નેહવાતો કરીને મને બહુવાર ઉભી રાખી ને છેવટે—ના છુટકે—રજા આપી. પણ પછી મહેલમાંથી બહાર નિકળતાં મને તો જાણે આકાશપાતાળ એક થઈ ગયાં. ખરેખર, (તારા પિતાનો) નગરશેઠનો મહેલ બાદ કરતાં (આખા રાજ્યમાં ઉપર) એવો બીજો એકે મહેલ નથી. હજી યે એ ભવ્યતા, એ શોભા, એ આદરમાન મારી આંખો આગળ તરી આવે છે, અને તારા પ્રિયની અતુલ સુંદરતા પણ બળકી આવે છે. હવે એણે લખી આપેલો ઉત્તર તને આપું, એમાં એણે સ્નેહ અને આશાઓની ધારાઓ પ્રકટાવી છે.”

(તરંગવતી હવે સાધ્વીરૂપે પોતાની કથા આગળ ચલાવે છે.) જે પત્ર રૂપે મારા પ્રિય મારી પાસે આવ્યા હતા, તે પત્ર મેં લીધો ને તેની ઉપરની મહોરને ઉઠે શ્વાસે ચુંબન કર્યું. હજી તો મારી આંખો એ મહોર ઉપર હતી અને કાનમાં મારી સખીના શબ્દો ઉતરતા હતા, તેવે જ ચંપાની પાંખડીઓ ઉઘડતાં જેમ અંદરથી તંતુગણ બહાર નિકળ્યા આવે એમ મારા હૃદયમાં આનંદનો કુવારો છુટ્યો. તરત જ મેં મહોર તોડી અને વાંચવાને આતુર થઈ કાગળ ફેરવ્યો. મારા પોતાના મૃત્યુ સિંચાણની બીજ બધી અમારા પાછલા ભવની કથાતું એમણે સંપૂર્ણ અને ચમત્કારિક વર્ણન કર્યું હતું: જ્યાં સુધી અમે સાથે હતાં ત્યાં સુધીનું બરાબર ચોક્કસ વર્ણન હતું અને મારા મરણની કથા તો એ જાણતા ન હતા. આનંદથી ઉછળતે હૃદયે એમણે ચોક્કસ એ પત્ર મેં

વાંચવા માંડ્યો. જે લાગણી મને થઈ હતી એ એમને પણ થઈ હતી અને તે એમણે સુંદર શબ્દોમાં વર્ણવી હતી. વાંચતાં એમનો સ્નેહ મને સ્પષ્ટ થયો. કાગળમાં આમ હતું:

૭૫૯-૭૬૭. “મારા હૃદયની સ્નેહપાત્રી તરંગવતી જોગ આ સ્નેહસંદેશ છે. જેનું સુખ કમળસમું છે અને જેનું આપું અંગ અનંગને ખાણે કરીને આટલી તીવ્ર વેદના સહિ છે એવી જીવતીનું મંગળ અને કુશળ હો ! (વિજેગમાં પણ) આપણને સ્નેહે કરી જેણે ખાંધી રાખ્યાં છે એવા કામદેવની કૃપાવટે હું કુશળ છું. માત્ર અનંગનું ખાણું મને ચોટયું છે એટલે જ્યાં સુધી તું મારાથી દૂર છે ત્યાં સુધી મારું અંગ ઢીલું ને નળણું પડતું જશે. આ સામંતાલના સામાન્ય સમાચાર પણી, કમળપત્રના જેવી સુંદર આંખોવાળી હે પ્રિય, ખીંછ વાત હવે કહું: આપણા એક વળતના સ્નેહાનંદને યાદ કરતાં આજે પણ તારે માટેની કામનામાં હું કુખી જાઉં છું; મારા મિત્રો અને સંબંધીઓની મદદથી હું નગરશેઠનું મન મનાવી લેઉં, ત્યાં સુધી તું ધીરજ ધર. પિતાની ઇચ્છા થાય ત્યાં સુધી ધીરજ ધર.”

૭૬૮-૭૬૯. આ પત્ર વાંચીને મને લાગ્યું કે મારા પ્રિય (જે કે એમણે અમારા અંતર્જીવનનું યથાસ્થિત વર્ણન કર્યું હતું, તોપણ મને ધીરજ ધરવાનું કહેવું હોવાથી) સ્નેહમાં ઠંડા પડી ગયા છે. આથી મારો ઉત્સાહ ને ઉત્કંઠા પણ ભાગી ગઈ. હું ઢીલી થઈને બેસી પડી અને જાંઘ ઉપર કોણી ટેકવી. તથા હાથ ઉપર મોં ટેકવી ખાવરાની પેઠે ત્રાકી બેઠો રહી.

૭૭૦-૭૭૩. મારી સખી મને સ્વપ્નતાથી સમજાવવા લાગી ને દિલસો આપવા લાગી. એ બોલી: “પણ મારી સખી, તારી લાંબા કાળની કામના સફળ થવાના, અને તમારો સ્નેહસંબંધ બંધાવાના સમાચાર જે પત્ર આપે છે તે જ પત્રથી તારો શોકજનું તારા પ્રિયના વચનામૃતથી મરી જઈ મીઠો થઈ જવો જોઈએ; તેથી નિરાશ થતી ના થોડા જ સમયમાં તમે એક ખીલને આલિંગન કરી શકશો.”

૭૭૪-૭૭૫. મેં ઉત્તર દીધો: “સાંભળ હું શાથી એટલી બધી નિરાશ થઈ ગઈ તે: મને લાગે છે કે દૂર રહેવાથી સ્નેહ ઠંડા પડી જાય છે, કારણ કે એથી અમારા સંબંધનો આધાર લવિય ઉપર લટકતો રહે છે.”

૭૭૬-૭૮૧. હાથ ભેંસીને ફરી સખી બોલી: “સખી, તું નહોતો જાણતો કે, વીરપુરૂષો ચોતાનું સાધ્ય સાધવાને કંઈક ચોળના અને વ્યવસ્થા રચે છે. સાચાં સાધનને અભાવે જેનોતેનો ઉપયોગ કરી લેવો એ ચાડું નથી. ઉતાવળમાં વગરવિચારે સાચાં સાધન વિના કંઈ કામ કોઈ ઉપાડે તે: એ સફળ થાય તો ય પરિણામ કડવાં આવે. મારાં સાધનનો ઉપયોગ કર્યો છતાં ખાણુંસ ધાર્યું ના ઉતારી શકે, તો ય એનો દોષ કોઈ કાઢે નહિ. માટે વીરપુરૂષો, કામનાં ખાણીથી ગમે એટલા પીડાવ તોપણ, કુમારો જઈને ચોતાના કુળને દાઢ દેઈ બેસે નહિ.”

(૭. પંક્તિયન.)

૭૮૨-૭૮૭. આમ મારી સખી સાથે વાત કરતાં કરતાં પંક્તિયન પીલવનારો જે સૂર્ય તે આથમી ગયો એવું મને લાગ્યું રહ્યું નહિ. ઉતાવળે ઉતાવળે મેં નાહી લીધું ને સખી સાથે કંઈક ખાઈ લીધું. પછી એને લેઈને અગાશીમાં ગઈ અને સુંદર આસન ઉપર બેસીને એની સાથે મારા પ્રિય વિષેની વાતો મોઠા મુઠી કરી. જેમ જેમ મોઠું થતું હતું તેમ તેમ અંદરની અશાન્તિ વધતી જતી હતી, અને તે અસહ્ય થતી જતી હતી. રનેહને બળે હું એટલી બધી પીડાવા લાગી કે મારું જીવન ટકાવી રાખવાને ખાતર મારી સખીને (સારસિકાને) મારે વિનંતી કરવી પડી (હું બોલી-) :

૭૮૮-૭૯૦. “ કુમુદને પીલવનારો ચંદ્ર જેમ જેમ ઉપર આવે છે તેમ તેમ એ વૈશ્યને (શેઠના દીકરાને) મળવાની મારી ઉત્કંઠા બહુ જ વધતી જાય છે. અને જેમ પવનને બળે ખરતીના મોં આગળતું પાણી ઉડી જાય છે એમ એ ઉત્કંઠાને બળે મારા હૃદયમાંથી તારી મીઠી વાણી પણ ઉડી જાય છે-ટકતી નથી. અરે મારો જીવ એમની પાછળ તલસે છે ! અત્યારે જ મને એમને ઘેર લેઈ જા ! એકવાર એ મારા પતિ હતા; રનેહની વેદી ઉપર હું મારી લાજ હોમી દેઈશ. ”

૭૯૧-૭૯૨. મારી સખીએ મને સમજાવવા કહ્યું : “ તારે તારા કુળની લાજ રાખવી જોઈએ. આવું કશું સાહસ કરતી ના ! તારે એને કલંક ન લગાડવું જોઈએ. એ તારો થયો છે, તું એની થઈ છે. તારે મુશ્કેલી વહોરી લેવી જોઈએ નહિ. તારાં માબાપ જરૂર તારી વાત માનશે. ”

૭૯૩. આપણે સ્ત્રીઓ ઘણીવાર આવેશથી ખેંચાઈ જઈએ છીએ, મને પણ એમ જ થયું. આવેશનો માયો મારો સૌ વિવેક આફ્યો ગયો. રનેહથી કેવળ બાવરી બની હું બોલી :-

૭૯૪-૭૯૭. “ માણસે બધાં જોખમ ખેડવા તૈયાર થવું જોઈએ. જે માણસ સાહસ ખેડતાં, તેમાં આવી પડનારાં વિધેયો ડરતો નથી તે જગતમાં વિજય પામે છે. એકવાર કામ શરૂ કર્યું કે પછી તે ગમે તેવું આકર્ષ હોય તો ય સહેલું થઈ જાય છે. આટલી ઉત્કંઠા પછી જો તું મને મારા પ્રિય પાસે નહિ લેઈ જાય તો રનેહને બાણે પીડાઈને તારી નજર આગળ મને મરી ગયેલી તું જોશે. વખત જરા ચે ખોતી ના ! મને લેઈ જા ! જો મને તારે મરેલી જોવી ના હોય તો આ અપકૃત્ય પણ કર ! ”

૭૯૮-૮૦૬. આવા દબાણથી કરીને મારા જીવનને આનંદ આપવા માટે એ મારી સાથે મારા પ્રિયને મહેલે આવવા કબુલ થઈ. (જેના ઉપર રનેહનું બાણ ચઢાવી શકાય એવું) કામરેવનું ધનુષ-કામને ઉશ્કેરવા-મારો શબ્દગાર આનંદે ઝટપટ સજી લીધો. મારી આંખોમાં ભગ્ન-તેજ આબું, કારણ કે એની સાથે મારા પ્રિયને ત્યાં જવા મારા પગ તલપાપક થઈ રહ્યા હતા અને હૈયું તો તોફાને ચઢીને ક્યારનું યં ચાલતું થઈ ગયું

હતું. પછી અમે ધુમ્મતે શરીરે એકએકને હાથ ઝાલીને પાછલે બારણે યધને મારા લગ્ન મહેલમાંથી બહાર નિકળી ગયાં. (અમારા નગર) કોશાગ્રીને સ્વર્ગસુમી શોભા આપનારે રાજમાર્ગે યધને અમે કુલમાળાના જેવાં લાંબા ચાંટામાં ચાલ્યાં. પછુ આ સુંદર દેખાવ ઉપર મારી આંખ ચોંટી રીતે? કારણ કે મારા વિચાર તો મારા પ્રિયમાં જઈ ચોંટ્યા હતાં! આજે મારા પ્રિયને જોઈ શકાશે એ જ વિચારે મારા મનમાં ઘોળાવા હતા. એથી મને થાક પછુ લાગ્યો નહિ. માણસોની લીડ તો હતી, તો ય અમે ઉતાવળે પગલે ચાલ્યાં અને અનેક હરકતો વેઠીને પછુ આખરે અમે : સ્નેહમંદિરમાં આવી પહોંચ્યાં. સખીએ મને એ બતાવ્યા, તે વેળાએ એ પોતાના નિત્રોની વચ્ચે દરવાજા ઉપર બેઠા હતા અને ચીણા વગાડતા હતા. શરમ્યંદ્રની પેઠે સૌને પ્રકાશ આપી રહ્યા હતા.

૮૧૦-૮૨૦. વગર હાથેચાલ્યે જે તો એમને જોયા જ કર્યા; છતાં યે મારી આંખે એમને જોઈને ધરાઈ નહિ. વારંવાર એ તો આંસુથી ભરાઈ જતો. મારા ચક્ર વાકતા ભવના મારા રૂપાગ્રીને જેમ જેમ જોયા કર્યો, તેમ તેમ એમને જોવાની મારી તૃષ્ણા અત્યારે વધતી ગઈ. માત્ર એમની જ નજર અમારા ઉપર પડવાને કારણે આનંદ પાગીને અમે ત્યાં પાસે ઉભાં, અને છતાં ય પાસે જઈ શકતાં નહોતાં. એવામાં સારે નશીએ એમણે પોતાના નિત્રોને રજ આપી. “ભાઈ હવે, શરદ્રાત્રિમાં જઈ આનંદ કરો, હું હરે મુર્છા જઈશ.” એ લોક ગયા કે તરત જ એ મારી સખી (જેને એમણે જોળખી લીધી હતી) તરફ જોઈ બોલ્યા: “આવ, જે ચિત્રો નગરશેઠને ઘેર મુક્યાં હતાં, તે આપણે જોઈએ.” (આમ એ બોલતા હતા ત્યારે) હું મારા શણગારને અને કપડાંને ઠીકઠીક કરી જતી હતી ને મારે અભિમાની હૃદયે, કામદેવનો જાણે અવતાર ના હોય એવા મારા પ્રિયને મનમાન્યા જોઈ રહી હતી. સખી સભ્યભાવે એમની પાસે ગઈ, એટલે. એ તુરત જ સભ્યભાવે ઉઠ્યા ને જે ખંડમાં હું શરમ ને ગભરાટની મારી સંતાઈ ઉભી હતી તે જ ખંડમાં (મારી સખીના દોરાયા) આવી ઉભા. પછી એ આનંદભરી આંખે એ સ્નેહમુખ વહેને બોલ્યા.

૮૨૧-૮૨૫. “તારી સખી, મારા જીવનસરોવરને પોષનારી, મને સુખ આપનારી સહચરી, મારા હૃદયની રાણી કુશળ તો છે ને? જ્યારથી મહનપ્રભુનાં બાણથી હું ઘવાયો છું ને તેને મળવાને ઉત્સુક બન્યો છું ત્યારથી મને કશું ચેન પડતું નથી. તમે શરદ્રાત્રિમાં આનંદ કરો મારે હવે મુર્છા જવું છે” એવું બહાનું કાઢીને મારા નિત્રોને જે વિદાય કરી લીધા એ તો માત્ર મારી ચાલાકી જ હતી. (સાચી વાત તો એ હતી કે) તેમની સોબતમાંથી છુટા પડી મારે ક્ષણે તેમ તમારે મહેલે જવું હતું અને ત્યાં એ ચિત્રો જોવાં હતાં. પછુ તને જોતાની સાથે જ મને થયેલા આનંદને લીધે મારા હૃદયનો શોક ઉઠી ગયો છે, કહે, મારી પ્રિયા પાસેથી તું શો સંદેશો લઈ આવી છે?”

૮૨૬. ત્યારે મારી સખી બોલી: “કશો સંદેશો હું લાવી નથી, એ પોતે જ આવી છે.”

૮૨૭-૮૨૮. વળી એ બોલી: “સખી છે તો બહુ ચે. કુશળ; પણ એ એવી તો રનેહલેલી બની ગઈ છે કે તમારે હવે એનો હાથ ઝાલવો જ નોંધશે. સમુદ્રની નારી ગંગા જેમ સમુદ્રમાં વહી બંધ છે, તેમ રનેહલે કરીને તણાતી તરંગવતી તમારી પાસે દોડી આવી છે.”

૮૨૯-૮૩૬. (આ શબ્દો સાંભળીને) મારે તો આજે થરીરે પરસેવાનાં બિંદુઓ ચમકી ઉઠ્યાં, મારામાં કશું બળ રહ્યું નહિ. મારી આંખોમાં આનંદનાં આંસુ ભરાઈ આવ્યાં. ગભરાતી ને થરથરતી હું સ્વચ્ચતાએ મારા પ્રિયને પગે જઈ પડી, પણ તરત જ એમણે પોતાને બળવાન ને રનેહલેલે હાથે મને ઉઠાડી ઉભી કરી, એમણે મને બાથમાં લીધી લીધી, એમની આંખોમાં પણ રનેહનાં આંસુ ભરાઈ ગયાં. પછી એ બોલ્યા: “મારા શોકને હણનારી મારી સખી, તારું કંઈયણ હો!” એમ બોલતા એ, પુરા ખીલેલા કમળ જેવે આનંદભર્યે મુખે મારી સામે એકીટસે, નોંધ રહ્યાં; એ મુખે જણે કમળમાં બેસનારી પણ કમળ વિનાની લક્ષ્મી ના હોય એવું મને જણાયું. થરગની મારી હું તો એમની એમ ઉભી રહી, આનંદનાં મોજાંમાં ડુબતી અને કમળના પાન જેવા મારા કોમળ પગ ધરતી ઉપર આમતેમ ફેરવતી, હું ત્રાંસી-આંખે એમના તરફ જોયા કરતી અને જ્યારે એ મારી આંખ સામે જોતા ત્યારે પાછી નીચું જોઈ જતી. તેમના બધા હાવભાવમાં તેમનું સ્વરૂપ એવું તો મોહક અને સુંદર હતું. કે મારા મોહનો પાર રહ્યો નહિ. મારા હૃદયની ભૂમિ ઉપર એમની દૃષ્ટિનો એવો મુખભર્યો વરસાદ રેલાયો કે મારા આનંદનાં બીજ કુટી નિકળ્યાં.

૮૩૭-૮૪૧. પછી એ બોલ્યા: “મારી કોમલદાઈ, આ સાહસ તું શો રીતે કરી શકી? તારા પિતાની મરણ સંપાદન કરતા સુધી જોવાનું મેં તને કહ્યું જ છે. તારો પિતા રાજદરબારનો કૃપાપાત્ર છે, મહાજનનો અગ્રેસર છે, મિત્રમંડળમાં એમનો ભારવક્રર આખા નગરમાં સૌથી વધારે છે; એમની ઇચ્છાને જો આ તારા આચરણથી આઘાત લાગશે તો એ પોતાની ઇચ્છા પ્રમાણે ચલાવવાને બધા ઉપાયો યોજી શકશે અને ક્ષોધના માથો મારા આખા કુટુંબ ઉપર વેર વાળશે. તેથી તને વિનંતી કરું છું કે તારી ગેરહાજરી જણાઈ આવે તે પહેલાં તું ઘર આલી જા. સીધે રસ્તે તને પ્રાપ્ત કરવાના હું બધા ઉપાય લઈશ. મારી પ્રિયા, આપણે આપણું મિલન ગમે તેટલું છુપું રાખવાનું કરીએ તોપણ તે તારા પિતાની જાણમાં આવી જશે. કારણકે ગમે તેટલું ગૂઢ કાર્ય પણ સાવધાન મનુષ્યો જાણી શકે છે.” મારા સ્વામી મારી સાથે આ પ્રમાણે વાત કરે છે એ જ બખતે રાજમાર્ગે જતા કોઈ પુરૂષના નીચે પ્રમાણેના ઉગ્ગારો સાંભળવામાં આવ્યાં:

૮૪૨-૮૪૩. “પોતાની મેળે ચાલી આવેલ પ્રિયા, ચૌવન, અર્ધ, રાજલક્ષ્મી, વર્ષાસમય, જ્યોત્સ્ના અને ચતુર સ્નેહીઓના આનંદનો ઉપસોગ જે કરી શકતો નથી તે જાતે ઘેર ચાલી આવેલી લક્ષ્મીની કિંમત જાણતો નથી.”

૮૪૪-૮૪૫. “જીવિતના સર્વસ્વસમાન રમ્ય પ્રિયાને પ્રાપ્ત કરીને જે છોડી દે છે તે મનુષ્ય સદૃશ કામનાવાળો થતો નથી.”

૮૪૬-૮૪૮. એ ઉદ્ગારના ભાવાર્થથી પ્રેરાઈને વળી મારા પ્રિયે મને કહ્યું: “જો આપણે પરદેશમાં આત્મ્યાં જઈએ, તો જ વિઘ્નથી ને શંકાથી મુક્ત થઈને આનંદ રહી શકીએ.” ત્યારે મેં રડતે હૃદયે ઉત્તર આપ્યો: “હા! મારા પ્રિય, હવે મારાથી ઘેર જવાય એમ નથી, હું તો તમે જ્યાં જશો ત્યાં, તમારી પાછળ આવીશ.”

૮૪૯. (હું એમના વિચારો પ્રમાણે અનુસરી શકું એટલા માટે) અનેક તરેહથી એમણે મને ઉત્તેજન આપ્યું, અને હું પાકા ઠરાવ ઉપર આવી એટલે એ બોલ્યા: “હીક ત્યારે, આપણે નાશી જઈએ! હું હવે મુસાફરીની તૈયારી કરી લેઉં.”

૮૫૦-૮૫૨. માર્ગમાં જરૂર પડે એવી ચીજો એકઠી કરવાને એ મહેલની અંદરના લાગમાં ગયા, એટલે મારા દરદાગીના લેઈ આવવાને મેં મારી સખીને ઘેર મોકલી. એ દોડતી ગઈ; પણ એટલામાં તો મારા પ્રિય હાથમાં કોઇળી લઈને પાછાં આવ્યા અને કહેવા લાગ્યા: “ચાલ મારી પત્નિની, વખત વહો જાય છે. નગરચોક જાણી જાય તે પહેલાં આપણે ખરી જવું જોઈએ.”

૮૫૩. મેં ગલસાઈને ઉત્તર આપ્યો: “મારા દાગીના લેવા મેં સખીને ઘેર મોકલી છે. એ આવે એની આપણે વાટ જોઈએ.”

૮૫૪-૮૫૮. એમણે ઉત્તર આપ્યો: “અર્થશાસ્ત્રમાં લંબ્યું છે કે દૂતી એ પરિભવ-તિરસ્કાર કરાવનારી છે, એ કાર્યની સાધક નથી પંજી ખરી રીતે બાધક છે. ખરેખરી શુભ વાતથી દૂતીને સદા દૂર જ રાખવી જોઈએ. એ જલદી જ દેસાવી દે છે, કારણ કે ખેરીઓથી કશું છાતું રાખી શકાતું નથી. વળી જો સાથે દરદાગીના લીધા, તો તો એથીયે વધારે ફસાઈ પડવાનો ભો. વળી એના આવવાથી આપણને માર્ગ કાપતાં અડચણ પડશે અને આપણી શાન્તિનો ભંગ થશે, માટે એને તો આપણે છોડી દેઈએ! અને હવે વખત બોલો જોઈતો નથી. હીરા, ઝવેરાત અને એવું એવું શા કીમતી મેં લેઈ લીધું છે. જેની આપણને જરૂર પડશે તે એનાથી ખરીદી લેવાશે. માટે આવ હવે, આપણે ચાલતાં થઈ જઈએ.”

૮૫૯-૮૬૩. એ સાંભળીને હું તેમ કરવા તૈયાર થઈ ને સારસિકાની વાટ જોયા વિના જ અમે તો રસ્તે પડ્યાં. નગરના દરવાજા સારો રાત ઉઘાડા રહે છે તેથી અમે બહાર નિકળી ગયાં અને જમુનાને કિનારે જઈ પહોંચ્યાં. ત્યાં અમે એક

મહવો ખોળી કાઢ્યો. એને દોરથી એક ખોલા સાથે બાંધ્યો હતો અને (સુભાગ્યે) એની અંદર પાણી પેસતું નહોતું. અમે એને છોડી લીધો ને જાને જણ અટપટ અંદર ચઢી ગયાં. મારા પ્રિયે હાથમાંની કોથળી અંદર સુકી દીધી ને હલેસું પકડ્યું. ત્યાર પછી નદીમાં રહેતા કાલીયાનાગની અને ખુદ નદીની પણ, નમસ્કાર કરીને, સ્તુતિ કરી. પછી સમુદ્રને મળતા જતી નદીમાં અમે અમારી છોડી હાકારી.

૮૬૪-૮૬૭. પણ અમારા જમણા હાથ તરફ શિયાળવાં રખડતાં હતાં તે અકાળે ખોલવા લાગ્યાં. પશુઓમાં સાથી લુચ્ચાં એ શિયાળવાનો અવાજ અમને સંભળાવા લાગ્યો. ભેરથી વગાડાતા શંખ જેવો ઘેમુરો એમનો અવાજ હતો. તરત જ મારા પ્રિયે મહવો અટકાવ્યો અને મને કહ્યું: “શુકન મળે ત્યાંસુધી આપણે ઉભાં રહીએ. કારણ કે હાથી બાબુથી નિકળીને જો શિયાળ જમણી બાબુએ બાંધે તેમજ પાછળ બાંધે અથવા પાછળ આવે તો અપશુકન થાય. જીવને કશું ભોખમ થવાનું નથી, કશું વિઘ્ન આવવાનું નથી એવી આપણે ખાતરી કરી લેવી જોઈએ.”

૮૬૮-૮૭૨. એમ બોલ્યા પછી મોબના (અટકાવી રાખેલા મહવા ઉપરના) મારાથી કરીને ફરીથી મહવો નદીમાં હાકારવા માંડ્યો. હલેસાંને ભેરે મહવો ચાલ્યો ને વળી મોબને પ્રવાહ ખૂબ ઉતાવળો ચાલ્યો, અને આમ અમે મહત્તરમાં ગેંથી ઘણી ઉતાવળે આગળ ચાલ્યાં. દૂરના કિનારા ઉપર નવાં નવાં ઝાડ દેખાતાં ને પાછળ અદૃશ્ય થઈ જતાં. પવનનો સુસવાટ અને પંખીઓનો કિલકિલાટ અત્યારે બંધ થઈ ગયો હતો અને તેથી જમુના શાન્તિની પ્રતિષ્ઠા પાળતી હોય એવી દેખાતી હતી. પણ ત્યારે મારા પ્રિયે, લય ગયો છે અને ચિંતા જેવું કશું નથી, એમ જાણીને હૃદયને આનંદ આપનારી વાતો કરવા માંડી.

૮૭૩-૮૭૬. જો બોલ્યા: “આટલા લાંબા વિભોગ પછી આપણે પાછાં એક બીજાને આલિંગન દેઈ શક્યાં એ આપણું કેવું સહભાગ્ય! તે આપણો સંભોગ ધન્યવો ના હોત, એ ચિત્રો ચીતર્યા ના હોત, તે આપણે એક બીજાને મળી શક્યાં ના હોત; કારણ કે (પાછલા ભવ પછી) આપણું રૂપ તો બદલાઈ ગયાં હતાં; મારી પ્રિયા, (ખરેખર) તે ચિત્રો ચીતરીને મારા પ્રત્યેની મોટામાં મોટી (સ્નેહ-અને) જીવન-સેવા સિદ્ધ કરી છે.” આવું આવું મારા કાનને ને હૃદયને સુખ આપનારું એ બહુ બોલ્યા. હું એનો કશો ઉત્તર વાળી શકી નહિ. હું તો માત્ર શરમની મારા મોં નીચું રાખીને ત્રાંસી નજરે એમના તરફ જોઈ જ રહી. ગળામાંથી અવાજ નિકળ્યો જ નહિ, સ્નેહની આશાઓ સફળ થતી જોઈને સ્નેહભર્યું હૈયું કંપવા લાગ્યું. (અતે) મારા સુખના ભાવ ખુલા કરવાને, મારા પગનો અંશુકો મંછવાને પાટીએ ધસતી ધસતી, હું બોલી:—

૮૮૦-૮૮૩. “આહા પ્રિય, તમે જાણે મારા પ્રભુ છો. તમારી સાથે સુખદુઃખ ભોગ.

વવાને મારા અંતરની પ્રેરણાથી મેં આપ સાથે પાસા નાખ્યા છે. માફ ગમે તે કરો; માત્ર એટલું માગું છું કે વિષમ સ્થિતિમાં આવી પડતાં પછી મને એકલી સુકી જશે ના. ગમે તે થતાં પછી હું તો તમારી સાથે રહેઠે બંધાઈ રહીશ. જો તમે મને આવતું બંધ કરશો તો મારાથી ભૂખે રહેવાશે, પણ જો મારા હૃદયનું આવતું બંધ કરી દેશો, તો તમારા વિના મારાથી રહી શકાશે નહિ.”

૧૮૪-૧૮૨. માનવહૃદયની અચળતા દેખાડનારા મારા આ શબ્દો સાંભળીને એમણે ઉત્તર આપ્યો: “આહ મારી બહાલી, તું એવી કરી ચિંતા કરતી ના, તને એવું કશું નહિ થવા હો. આપણે હવે શરદઋતુની ઉતાવળી નદીમાં અનુકૂળ પવનને બળે વિના મુરકેલીએ આગળ ચાલીએ છીએ અને સુંદર કાંકરી નગર પાસે આવતા જઈએ છીએ; પેલા એના સફેદ મહેલો દેખાય. ત્યાં મારાં દોઈ રહે છે, એમના મહેલમાં આપણને આવકાર મળશે અને સ્વર્ગમાં જેમ અમ્મસરા તેમ ત્યાં તું ચિંતામુક્ત થઈ સુખમાં રહી શકશે. તું મારા સુખની વધારનારી છે ને દુઃખની હરનારી છે. તું મારા જીવનનું સર્વસ્વ છે ને મારા વંશની રાખનારી છે.” એવું કહીને અમારા ચક્રવાકના ભવને સંભારતાં એમણે મને આલિંગન દીધું; ઉનાળામાં (સરજથી) તપેલી લોંબને વરસાદના સ્પર્શથી જેવી આનંદની લાગણી થાય, એવી આનંદની લાગણી મેં મારા પ્રિયના સ્પર્શથી અનુભવી.

૧૮૩-૧૮૬. ત્યાર પછી ગાન્ધર્વલોકો જેમ કરે છે એમ, માનવલોકને શિખરે પહોંચાડનાર ગાન્ધર્વવિવાહે અમે પરસ્પર બંધાયાં. દેવોની પ્રાર્થના કયો પછી તરત જ (જેમ વ્યાવહારિક લગ્ન પ્રસંગે થાય છે એમ) મારા હાથ જાલવાને બદલે મારા સ્વામીએ મારી જીવાનીની કળી ચુંટી લીધી. પરસ્પર ધરાતા સુધી ઘાંપત્ય વિલાસનો આનંદોપલોગ કરી લીધો.

૧૮૭. એટલીવારમાં અમારો મછવો અમને લેઈને (અમારી ધૃષ્ટા હતી તે પ્રમાણે, જસુતામાંથી નીકળીને) ગંગામાં આવી પહોંચ્યો. એકવાર જેમ પૂર્વભવમાં આ નદી ઉપર અમારી ચક્રવાકની જોડી તરતી હતી તેમ આજે સ્નેહી યુગલની જોડી તરવા લાગી.

૧૮૮-૧૯૦૧. રાત્રિ ચાલી ગઈ; લલાટમાં જેને ચંદ્ર છે, ચંદ્રિકા જેનાં સુંદર સફેદ વસ્ત્ર છે અને તારા જેના ભવ્ય અલંકાર છે એવી એ જીવાન રાત્રિનારી સરી ગઈ. પૃથ્વીના જળદર્પણ ઉપર ચંદ્ર હવે તો માત્ર હંસની પેઠે તરવા લાગ્યો; જેને રાત્રિના ચાર પહેરેગીરે અત્યારસુધી પકડી રાખ્યો હતો તે હવે ઉપર આંખો ને નીચે માત્ર આંખો દેખાવા લાગ્યો. મળસ્કામાં પંખીનાં સૌ ટોળાં બગી-ઉઠ્યાં, તેમનાં ગાનથી ને સાહથી જાણે નદી સાથે એ સંબંધ જોડતાં હોય એવું દેખાતું હતું. અધારાનો શત્રુ-સૂર્ય, માનવીઓની દિનચર્યાને માટે પ્રકાશનો ગગનદીવો પ્રકટ્યો હોય એમ, ઉઘ્યો.

૮. લૂટારાને હાથે પકડાયું.

૬૦૨-૬૦૪. ગંગાના વહેતા પાણી ઉપર ફેટલાક સુંધી એમ મુખે વહ્યા પછી મારા પ્રિય બોધ્યા: “ પ્રિયે નિતગિની, સૂર્ય ઉગ્યો છે એટલે હવે દાતણ કરવાની વેળા થઈ છે, તેથી જમણા હાથ ઉપર શંખલા જેવી સફેદ રેતીથી ચળકતો જે કાંકો દેખાય છે ત્યાં આપણે ઉતરીએ.”

૬૦૫-૬૦૮. ત્યાં આગળ પહોંચીને મછવો લંગર્યો અને ઉતર્યા. જ્યાં હજી કોઈ માનવીનો સંચાર થયો નહોતો એવા રેતીના-કાંકા ઉપર અમે ફરવા લાગ્યાં. પણ સામે દેખાતી સુંદર જગા હજી તો અમે પુરી ભેઈ પણ નહોતી તેવામાં, જ્યાં ભયની શંકા સુદાં નહિ પડે એવી તે જગ્યામાંથી, એકાએક લૂટારા દેખાયા. કાંકા ઉપરનાં ઝાંખરાંમાંથી એ બહાર નિકળી આવ્યા અને જમરાજના ભયંકર દૂતો જેવા દેખાતા એ અમારી તરફ ધસ્યા.

૬૦૯-૬૨૦. ભયથી હું તો ચીસ પાડી ઉઠો ને “ હવે આ સંકટમાં શું કરીશું ? ” એમ મારા સ્વામીને પૂછવા લાગી. એ બોધ્યા: “ ડરતી ના ! અહુણા જ તને ખંખર પડશે કે મારી લાકડીના ઝપાટાથી એમને કેવા હાંકી કાઢું છું. તને મારી જીવનનો કાળ બતાવવાના મનોરથમાં હું એવો તો મુગ્ધ થઈ ગયો હતો કે ઘેરથી હથિયાર લેવાનું પણ ભુલી ગયો. સ્નેહના આનંદોત્સવને માટે બધા પ્રકારનાં ઝંચરાત માત્ર લીધાં; પણ સ્નેહસાંહસને અંગે જે સંકટ રહેલું છે તેનો તો વિચારેય આવ્યો નહિ. છતાં ચે તું શાન્તિ રાખ ! બળવાન હશે તે બુદ્ધમાં જીતશે. આ જંગલી ચોર મને ઓળખતા નથી અને એમણે હજી મારો હાથ ભેયો નથી, એથી જ એ ઓટલી હિંમત કરી શક્યા છે. એક જણને હું નીચે પાડી દેઈશ અને એનાં હથિયાર લેઈ બીજાઓની પાછળ પડીશ. પરિણામ અનિષ્ટ જ આવશે તો તને લૂંટાતી દેખવાં કરતાં માત્ર શોધ સમાપ્ત કરી દેઈશ. કારણકે તારાં કપડાં ને ઘરેણાં કાઢી લેવાને લૂટારા તને બાંધે એ તો મારાથી કદી ભેયું બંધ નહિ. મારે માટે તું પાછલા ભવમાં સતી થઈ હતી અને મારે માટે આ ભવમાં પરદેશમાં નિકળી પડી છે. ત્યારે મારામાં જ્યાં સુંધી પ્રાણ છે ત્યાં સુંધી તને બચાવવાને માટે મારાથી બને એટલું બળ વાપર્યા વિનાં શી રીતે રહેવાય ? મને જવા દે અને લૂટારાની સાથે બુદ્ધમાં ઉતરતાં મને અટકાવ નહિ. હવે તો જિતવું કે મરવું ! ”

૬૨૧-૬૨૬. આ શબ્દો સાંભળીને હું પ્રિયને પગે પડીને બોલી: “ મારા નાથ, મને અનાથ કરીને એકલો મુકી જતા ના. તમારે જુદે ચઢવું જ હોય તો મારો જીવ લેઈ ત્યાં સુંધી ઉભા રહો. કારણ કે લૂટારાના હાથમાં તમને પડ્યા મારાથી ભેંચે નહિ. લૂટારાને હાથે પડ્યા છો એવું જોવાને જીવવું એના કરતાં તો આશાભર મરવું બહુ. અરે મારા પ્રિય, આખરે તમે મારાં થયાં તો ખરા, પણ એટલામાં તો આ જંગા

કાંટે જ, જાણે માત્ર ચંચળ સ્વભાવ જ હોય, એમ તમે ચાલી જવા બેઠા ! આવતા ભવમાં આપણે એક બીજાને મળીશું કે નહિ એ તો બીજી વાત છે, પણ અત્યારે તો હું છું છું ત્યાં સુધી મારી પાસે રહો ! આપણે એક બીજાની વિશ્વતાં પરીએ નહિ, બાકી બીજું તો જે થવાનું હોય તે થાય ! કારણકે બીજા બધાને આપણે ભુલાવી શકીશું, પણ આપણાં કર્મના ફળને ભુલાવી શકીશું નહિ.” (તેથી કરીને આવતા ભવમાં વિશ્વતાં પડાય નહિ એટલા માટે આજે પણ વિશ્વતાં પડવું નહિ જોઈએ.)”

૯૨૭-૯૨૮. આ પ્રમાણે કલ્પાન્ત કરીને મેં મારા સ્વામીને જુદે ચઢતાં વાંચી. લૂટારાઓને મેં, રહી પડી, હાથ ભેડી, કાલાવાલા કરીને, કહ્યું: “મરણમાં આવે એમ મારા અંગ ઉપરથી ઘરેણાં ઉતારી લો; અમારા રનેહની ખાતર મારા સ્વામીને મારશો નહિ (એટલું માગી લેઉ છું).”

૯૨૯-૯૩૦. પછી અમને લૂટારાએ પકડ્યાં. એક પાંખ કપાઈ ગઈ છે જેની એવું પંખી જેમ ઉડી શકે નહિ તેમ અમારાથી પણ નાશી જવાય એમ નહોતું. શે ઠાક લૂટારાએ એટલામાં જઈને મછવો અને (તેમાં સુકેલી) કોથળી પણ કબજે કરી લીધી. બીજા મને દૂર લેઈ આવ્યા તેથી મેં ચીસો પાડવા માંડી. કેટલાકે મારા સ્વામીને પકડયા; પણ, વાદીના શબ્દથી ઝેરી સાપ જેમ ઠંડા પડી જાય તેમ, મારા શબ્દથી એ (સુદ્ધ કરવાની ઇચ્છા છતાં) ઠંડા રહ્યા. અમને બંનેને અને અવેશતની કોથળીને લૂટારા ગંગાના રેતીના કિનારા ઉપર લેઈ ગયા. મારા શરીર ઉપરથી બધાં ઘરેણાં તો ઉતારી લીધાં, પણ અમને બેને જરા ય લુહાં કર્યાં નહિ. છતાં વેલીનાં જેમ કુલ સુટી લેવાય તેમ મારાં બધાં ઘરેણાં ઉતારી લેવાતાં જોઈને મારા સ્વામી રોવા લાગ્યા. હું પણ રોવા લાગી, કારણ કે મારા સ્વામી લૂટારાએ લાંઠાર જેવા, અથવા તો કમળ જેમાંથી તોડી લીધાં છે એવા સરોવર જેવા, દેખાતા હતા. મારો ચીસો બહુ કારણે થતાં એ ભયંકર લૂટારાઓએ મને ધમકાવી (ને કહ્યું): “જૂએ તારી બંધ કર ! નહિ તો તારા ધણીને મારી નાંખીશું.” એથી હું દગ્ગાઈ ગઈ ને મારા સ્વામીનો જીવ અવધાની ચિંતા કરવા લાગી, અને માત્ર ધીમે ધીમે છાનાં ડુરકાં ખાવા લાગી. જોકે આંખુ તો મારી છાતી સુધી ફફડી પડતાં હતાં, તો ય માત્ર રાંધું તો હાંક આગળ જ અટકી પડતું.

૯૩૧-૯૩૨. અમારા અવેશતની કોથળી લૂટારાના સરદારે જોઈ ત્યારે એ મલકાઈને બોલ્યો: “ઠીક શિકાર મળ્યો છે !” એક જણ બોલ્યો: “આખો મહેલ આપણે શોધી વળ્યા હોત, તો ય આટલું તો ના મળ્યું હોત.” બીજો બોલ્યો: “જુગારમાં માણસનું લાગ્ય ગમે એટલું જુદે અને વર્ષોનાં વર્ષો સુધા રમે તો ય આટલું તો લેઈ ના થાય. આપણી બૈરીઓને આ બધું આપીશું ત્યારે એ શું કહેશે ?” આવી વાતો કરતા કરતા એ લૂટારા (અમને લેઈને) કિનારા છોડી વિંધ્યાચળની દક્ષિણ દિશા તરફ ચાલતા થયા.

૯૪૪-૯૪૭. પર્વતની ઉંડી સુંદર ખોમાં લુટારાઓની શુદ્ધ હતી. ત્યાં અમને ખંનેને એક વેલાવડે એકઠાં બાંધીને લેઈ ગયા. કેટલાક લોક બહાર ઉભા રહીને પાણીની ભિક્ષા માગતા હતા, કારણ કે શુદ્ધની અંદર પાણી ખૂબ હતું. શુદ્ધનો દરવાજો ખુલ્લો મજબુત હતો, અને તલવારો લાલા અને એવાં ખીન્ન હથિયારોવાળા લુટારા અંદર જતાર અને અંદરથી નિકળનાર ઉપર સખત ચોકી રાખતા હતા. ટોલ, કરતાલ, શંખ અને એવાં ખીન્ન વાદ્યોથી તેમજ ગાન, હાસ્ય, નાચ અને ખૂંસો તથા ચીસોથી થતે કોલાહલો કરીને આખી શુદ્ધ ગાજી રહી હતી.

૯૪૮-૯૫૪. અંદર પેસતાં જ અનેક વાવડા ઉપરથી અમે પારખી લીધું કે આ તો કાળીનું મંદિર છે અને તેના બગિચો ઉત્સવ ચાલે છે. દેવીને (નિયમ પ્રમાણે) નમસ્કાર કરવાને માટે અમે જમણી જાણુએ ગયાં તો જોશું કે (અમારા માલ ઉપરાંત) ખીન્ને પણ માલ ખીન્ન લુટારા લેઈ આવ્યા હતા. ખંને ટોળીવાળા સાબતાળ પાછા આવ્યા હતા અને મોટી લૂટ લાવી શક્યા હતા તેથી તેઓએ એક ખીન્નેને પ્રણામ કર્યા ને કુશળસમાચાર પુછ્યા. વેલાએ એકઠાં બંધાયેલાં અને લુટારાની શુદ્ધમાં આવી પડેલાં અમને બેને સા જણ આશ્ચર્યચકિત નજરે એવાં લાગ્યાં, અને એમાંથી એક જણ બોલી ઉઠ્યા: “નરનારીઓની જે સદિ પડેલાં રચાઈ, તેથી અચંતુષ્ઠ થઈ (તેનો નાશ કરીને) ચમદેવે અતે આ જોડું સરજ્યું લાગેછે. ચાંદો રાતથી ને રાત ચાંદાથી જેમ વધી જાય તેમ આ એક ખીન્નથી સુંદરતામાં વધી જાય એવાં છે.”

૯૫૫-૯૫૬. અમે એ શુદ્ધમાં જરા આગળ ગયાં અને જાણે ત્યાં સ્વર્ગ અને નરક એકસાથે જ હોય તેમ અંદરના આનંદી વસનારા અને નિરાનંદ કેદીઓને જોયા. દેવલોકના જોડા જેવું નરનારીનું જોડું અહીં આણ્યું છે, એવા સમાચાર શ્રેલાતાં શુદ્ધમાંનો રસ્તો (અમને જોવાને) ઉત્ક્રુક લોકથી, ખાસ કરીને બાળકો, વૃદ્ધો અને સ્ત્રીઓથી ઉભરાઈ ગયો.

૯૫૭-૯૬૩. શોકાતુર સ્થિતિમાં અમને આગળ લેઈ જવામાં આવ્યાં, ત્યારે દેદમાં જીવતી રહેલી સ્ત્રીઓ અમારે માટે વિલાપ કરવા લાગી, જાણે અમે એમનાં જ બાળક હોઈએ. ખચ પુરૂષના જેવા હૃદયવાળી લુટારાની એક સ્ત્રીએ મારા સ્વામીને કહ્યું: “તમારું સુંદર મુખ લેઈને મારી પાસે આવો. (અને અમારા ચોકીદારને એણે કહ્યું:) ચંદ્ર સમાન સુંદર, અને ચંદ્રની પ્રિય સખી નક્ષત્રરાણી શહિણીના જેવી આ સ્ત્રીને આપણી આ પૃથ્વી ઉપર લેઈ આવનાર, આ જીવાન પુરૂષને થોડો વખત અહીં ઉભો રાખો, કે જેથી લુટારાની નારીઓ પગવાર એની સુંદરતા નિરખી લે.” એ ચાલતા હતા ત્યારે મોઢ પામવાને ટેવાઈ ગયેલી સ્ત્રીઓ મોહવશ થઈને તેમને જોઈ રકવા લાગી. આ જોઈને હું તો સંતાપથી, ઈર્ષ્યાથી ને સાથે સાથે ક્રોધથી સજગી ઉઠી.

૯૬૪-૯૬૭. પકડાયેલી સ્ત્રીઓમાંની કેટલીક તો, જાણે એ ચોંતાનો જ પુત્ર

હોય એમ, શોક કરવા લાગી. કેટલીકે એમને કહ્યું: “તારા સ્વર્ગીય સ્વરૂપથી તું અમારું ચિત્ત ચોરી લે છે; તારી દૃષ્ટિનો સ્વર્ગીય ઘુટડો અમને કૃપા કરીને પીવા દે !” વળી કેટલીક આંખમાં આંસુ લાવીને એમ કહેતી જણાઈ કે: “તું તારી સૌ સાથે અહીંથી વહેલો છુટકારો પામે તો ઠીક !” વળી એક જણી તો એમના સૌન્દર્યથી છેક આશ્ચર્યમૂઠ બની ગઈ ને કટિમેખળાની ઘુઘરીઓ ખખડાવી બેલાવવાના ઇસારા કરવા લાગી.

૯૬૮-૯૭૪. (મારે મારે પણ તરેહવાર વાતો થવા લાગી.) એક જુવાન નર્તકે કામાતુર થઈને કહ્યું: “આહ, આ અદ્ભુત નારીસ્વરૂપ !” કેટલાક એકબીજાને આંગળી કરી મને બતાવવા લાગ્યા, ને ગારા વખાણુ કરવા લાગ્યા: “એકેએક બાબતમાં એનું સૌન્દર્ય તો જુઓ ! એના વેલી જેવા સુંદર શરીર ઉપર કળીઓ જેવાં એનાં સ્તન અને ફણગા જેવાં એનાં હાથ કેમ કુટે છે એ તો જુઓ ! વળી એને જોઈને પૂરે આંવેલી નદી સાંભરી આવે છે; એનાં બે સ્તન તે જાણે ચક્રવાકતું જોડું બેઠું છે, (અનેક આંકડાથી શોભતી) એની કટિમેખળા તે જાણે હંસની હાર સરખી લાગે છે અને એના નિતંબ તે જાણે પ્રચંડ રેતીનાં કિનારા હોય એવા દેખાય છે. પૂર્ણચંદ્ર (દશ્ય-સમયે) પ્રભાતરંગે (એટલે કે રાતે રંગે) રંગાયો હોય એમ એનું સુંદર ગુખ શિવાને કારણે કંઈક રાતું થયું છે. અને સર્વ હાવભાવે કરીને સુંદર અને મોહક બનતા એના રૂપથી શ્રીતું સ્મરણ થાય છે. માત્ર એના હાથમાં કમળ નથી એટલી જ ખામી છે. એના કાન જુઓ કેવા રૂપાળા છે ! આંખો કેવી કાળી છે ! દાંત કેવા ચિત્ છે ! સ્તન કેવાં ભરાવદાર છે ! બંગો કેવી ગોળ છે ! અને પગ કેવા ઘાટીલા છે !”

૯૭૫-૯૭૬. બીજા બેએક લૂટારા બોલ્યા: “ઘટતાં ઘરેણાં પહેરાગ્યાં હોય તો તો ખરેખર અસરો બની જાય. યુદ્ધ યાંત્રિકો હોય તો ય પણ એનો સ્પર્શ કરે તો અંદરથી જાગી ઉઠે. મોટો તપસ્વી હોય તે પણ પોતાની કઠોર તપસ્થાના કળમાં એની વાંચના કરે. ખરે (દેવરાજ) ઇંદ્ર પણ પોતાની હબાર આંખો વડે પણ એને જોતાં ધરાય નહિ.”

૯૭૭-૯૭૮. પણ પરનારીને દેખી જેઓને કંઈક શરમ આવે છે એવા કેટલાક મને-જોઈને સંકોચાયા ને ‘અભાગણી’ કે ‘એ તો પરણેલી છે’ એમ કહીને ચાલતા થયાં. તો ય અમને બનેને જોઈને કેટલાક લૂટારા અનુમાન કરવા લાગ્યા કે ‘જરૂર આપણો સંરહાર આ માણસને મારી નાખશે અને પછી એ સ્ત્રીને પરણશે.’

૯૭૯-૯૮૧. આવી આવી વાતો સૌ નરનારીઓ કરવા લાગ્યાં, પણ મારા સ્વામીનું મરણ તો સૌ અનુમાનવા લાગ્યાં અને તેથી મારી ચિંતા અસહ્ય થઈ પડી. સામાન્ય રીતે જુવાન પુરૂષો મને અને જુવાન સ્ત્રીઓ મારા સ્વામીને વખાણતી; બાકીનામાંથી કોઈએ જિજ્ઞાસાથી, કોઈએ નિરાશાથી અને કોઈએ તો કશી પણ લાગણી વિના અમારી વાતો કરી. લૂટારાની આ શુદ્ધાની વસ્તી અમારે માટે આમ ત્રણ પ્રકારે

અભિપ્રાય આપ્યા જતી હતી તે સાંભળતાં સાંભળતાં અમે. (એ સંસ્તાને છેડે) સરદારને ઘેર આવી પહોંચ્યાં. એ ઘર ઉંચું હતું અને એને કાંટાની વાડ હતી.

૯૮૨-૯૮૦. આમ અહીં ડાળીઓથી બનાવેલા એક ખંડમાં અમને લેઈ ગયા. એ લોકના સરદારનું આ દિવાનખાતું હતું. પ્રસિદ્ધ વીરપુરુષ હોય એમ એ સરદાર કુપળે પાથરેલા આસનઉપર બેઠો હતો, ખીલેલાં પુલના મોટા ગોટાથી ખોતાને પંખો કરતો હતો, એનો એ ગોટો સોના જેવો ચળકતો હતો અને એના ઉપરના ભમરા સુંદર ચુંબરવ કરી રહ્યા હતા. જુદા કરીને છતી આણેલાં શસ્ત્રો એ સરદારે ખોતાના શરીર ઉપર ધારણ કર્યાં હતાં, અને અનેક જુદોમાં અને સંકટોમાં સાચા નિવટેલા લૂટારાઓ એની ચારે બાજુ ઉભા હતા. જેમ જમને ચારે બાજુએ ચંડાળો વીંટાઈ વળે તેમ એની ચારે બાજુએ એ લોક વીંટાઈ વળેલા હતા. એના પગની પિંડીઓ માંસના હોચાથી ભરાવાદાર હતી, તેની બાંધો કઠણ અને તેના નિતંબ ભારે હતા. અમે તો મોતની ચિંતાએ યરથરતાં યરથરતાં હાથ બેડીને તેને નમસ્કાર કર્યા. હરણના બેડાને જેમ વાધ, એમ અમને એ તીણી નજરે બેઈ રહ્યા અને તેથી અમને વળી વધારે ચિંતા વધી પડી. પાસે ઉભેલું લૂટારાનું ટોળું અમારું જુનાનીનું સાંસ્કૃત્ય ભયંકર, વાંકી દૃષ્ટિએ નિહાળવા લાગ્યું ને આશ્ચર્યચકિત થઈ ગયું.

૯૮૧-૯૮૨. વીરોની, સ્ત્રીઓની અને પ્રાદાણીની હત્યા તથા એવાં બીજાં પાપકર્મો કરવાથી દયામાયા નાથ પામી ગઈ છે જેના હૃદયમાંથી, એવાં એ (લૂટારાના) સરદારે, બીલાકૂલ લાગણી વિના અમને નિહાળી લીધાં, પછી પાસે બેઠેલા એકંભયંકર લૂટારાને કાનમાં આ પ્રમાણે કહ્યું:

૯૮૩-૯૮૪. “ (આપણા મંડળના) ગોટરોઓ મળીને દેવીને (કાળીને) શરફનો જે બળિ આપવાનો છે, તેને માટે જ આ નરનારી ઠીક પડશે. તેથી કરીને (માતાની) નવમીની રાત્રે આ બેડાનો બળિ દેવાશે. એ બેની શરાણર ચોકી કરો જેથી એ નાશી નાથ નહિ. ”

૯૮૫-૧૦૦૭. આ શબ્દો સાંભળીને મારા હૃદયમાં ચિંતા ને મરણની ખીક ફેરી વળી. પેલા લૂટારાએ તો એ આજ્ઞા નમ્રતાએ માથે ચઢાવી અને અમને એના ઘરમાં લેઈ ગયાં. ચોકી રાખવામાં જરા પણ ખામી આવે નહિ એટલા માટે એણે મારા સ્વામીને તાણીને બાંધ્યા. તેમને આપવામાં આવતી આવી વિટંબણને દુઃખે મારો આત્મા બળી ઉઠ્યો, તેથી ગરુડ જેના સ્વામીને ઉપાડી ગયો છે એનો સાપણીની પેઠે કંધાન્ત કરવા લાગી. વિખરાઈ ગયેલે વાળે ને આંખમાંથી વહી જતે આંસુએ હું એમને અને એમના બંધને બાંધી પડી, (પછી મેં લૂટારાને કહ્યું :) “ જેમ વનહાથીની સાથે (એને વળગી પડેલી) હાથણીને બાંધે તેમ આ નરોત્તમ સાથે મને પણ લલે બાંધો, કારણ કે એમની પીઠ તરફ બાંધી લીધેલા એમના દોશણ સુધી પહોંચતા હાથ મને

આલિંગન દેવાને સર્જ્યા છે. ” (આંમ કહીન) હું એમને છુટા કરવા જતી હતી એટલામાં તો એ લૂટારાએ મને મારી, ધગકાવી ને ધક્કો મારી એક ડોરા ખસેડી મુકી. મારા સ્વામીએ હિંમત રાખીને પોતાના ગંધ અત્યાર સુધી સહન કર્યા હતા, પણ મારી આ સ્થિતિ જોઇને એમની હિંમત જતી રહી રહતા રહતા એ બોલ્યા: “અરેરે, મારે માટે તું આવી કદી ન સાંભળેલી, મરવા કરતાં પણ ભુંડી વેદના સહન કરે છે! મારા સંબંધીઓને અને મારી ભત્રીજાને માટે કદી પણ નહોતું લાગ્યું તેવું આજે મારી નવવધૂને માટે લાગે છે! ” આ સાંભળીને, એ જાણે ગળવાન છાતી વાળે હાથી હોય તેમ ધારી એમને પેલા લૂટારાએ લોંબા સાથે ઢબાવ્યા, તોડે એમના હાથ તો પીક તરફ ખાંધેલા જ હતા. આમ એમને સૈ રીતે હાલતાચાલતા ગંધ કરી દીધા પછી એ નિર્દય લૂટારો એક લાકડા ઉપર બેઠો અને ત્યાં કાચું માંસ તથા મંદિરા આરોગવા લાગ્યો.

૧૦૦૮-૧૦૧૪. મરણચિંતાએ એ મારા સ્વામીને કહ્યું: “અરેરે, આવા કયા વિનાના સ્થાનમાં આપણે મરણ પડશે. ” એ પછી એ લૂટારાને કહ્યું: “આ (મારા સ્વામી) કોશાગ્રીના એક વેપારીના એકના એક પુત્ર છે, અને હું પોતે (ત્યાંના જ) નગર-શેઠની પુત્રી છું. કહેશે એટલા હીરા, મોતી, સોનું ને પરવાળાં અમે તમને ત્યાંથી અપાવીશું. અમારા પિતા પર કાગળ લેઇને કોઇને ત્યાં મોકલો, અને એ જાણુ જ્યારે અહીં આવે ત્યારે અમને છુટાં કરજો. ” પણ એ લૂટારાએ તો ઉત્તર વાળ્યો: “તમને (અમારી દેવી) કાળી આગળ જાળ દેવાનું સરદારે નક્કી કર્યું છે. જેની કૃપાએ અમારી સા આશા પુરી થાય છે એવી એ માયાને જ માનેલી લોગ અપાય નહિ, તો એ કોષે ભરાય. અને અમારો નાશ કરે. તેમજ જે અમને અમારી મહેનતકં ફળ, જીવનમાં વિજય, ધનમાલ ને બધા પ્રકારનાં સુખ, જે અમને આપ્યા જ નય છે તેની કૃપા અમારાથી શી રીતે તરછેડાય? ”

૧૦૧૫-૧૦૨૧. આયું સાંભળીને અને મારા સ્વામીને આંમ ભયંકર રીતે ખાંધેલા જોઇને હું તો છાતીફાટ રડવા લાગી. સ્વામીને રેનેડખંધને બંધાયેલી હું છુટે મહેલે વિકાપ કરવા લાગી. કારણ કે હવે કોઈ આશા દેખાતી નહોતી. મારી આંખો માંથી એવાં તો અનર્જળ આંસુ વહી ગાલ ઉપર થઇ છાતી ઉપર વહેવા મંડેલાં કે કેક પકડાયેલી બીજા કેટલીક સ્ત્રીઓને પણ રડવું આવ્યું. એ કંટપાન્ત કહ્યું, માથું કુટ્યું, માથાના-વાળા પીંખ્યા, ને છાતી કુટી (પગવાર સુખદ-સ્વપ્ન) આવે તો યે હું તો આમ જ રડું:) “ મહારા વહાલા, સ્વપ્નમાં હું તમને પામી હતી, જાગે ને-હું એકલી જ પાછી રોઇશ. ” મારી વેદનામાં આમ એ જાહુ કંટપાન્ત કહ્યું.

૧૦૨૨ કેટલાક લૂટારા ખૂળ આનંદ ઉડાવતા હતા અને ચીણા ઉપર આમ ગાતા હતા:—

૧૦૨૩-૧૦૨૬

વારણહારી વાણીની પરવા કર્યો જ વિના,

જીવનમરણને ઝોળગી સાહસ કરીને,

ધોરું લેવું એ જ વીરનું કામ છે.

કારણકે બીજાની પેઠે મોત તો આવવાનું,
પણ વિના સાહસે ધાર્યું મળવાનું નહિ,
માટે વેળાસર સાહસ કરવા દોડા.
જે જિત્યો છે તે જ સુખે મરે છે,
કારણકે વીરપુરુષ જ, ગયેલું સુખ પાછું આવે
ત્યાં સુધી, ઉત્સાહને તાલે રાખી શકે છે.
૧૦૨૭. સાથે જ, વીર વેદના વેઠતે વેઠતે પણ,
વીરતાથી હરકતોને ધકેલ્યે જાય, તો
સુખરૂપી નારીની સાથે આનંદ કરે છે.

૧૦૨૮-૧૦૩૩. ત્યાર પછી મારા સ્વામીએ મને કહ્યું: 'શોક કર ના, મારી વહાલી, પણ હું તને કહું છું તે સાંભળ! આ કેટલાનામાંથી નારી છુટતું બની શકે એમ નથી જ. વળી માણસે વિના આનાકાનીએ જન્મદેવની આજ્ઞાને તાબે થવું જોઈએ. એ એકવાર માણસને પકડે એટલે બીજે ઉપાય જ નહિ. રાત્રે તારા ને ગ્રહને લેધને દરનારો આકાશનો ચંદ્ર પણ (સંપૂર્ણતામાંથી ધીરે ધીરે ક્ષય પામી આખરે બધો ય અધારો થવાનો) દુર્ભાગ્યને તાબે થાય છે. ત્યારે સામાન્ય પ્રાણીને તો દેવડો મોટો લો છે! સ્થળ, કાળ, વસ્તુ ને પ્રકારને અનુસરી માણસને એના કયાં કર્મનાં ફળ મળે ને તેને અનુસરીને સુખદુઃખ મળે એ તો મહાનિયમ જ છે. તેથી મારી પ્રિયા, હિંમત હારતી ના! સમસ્ત પ્રાણીજગતમાં એવું કોઈ નથી કે જે સુખ:દુખને નક્કી કરનારા એ નિયમને ઝોળાંગી શકે.'

૧૦૩૪-૧૦૩૮. આ દિલાસો દેનારા શબ્દોથી મારો શોક કંઈક ઝાંઝા થયો. પતિની સાથે બંધાયેલી હરણીની પેઠે હું બીજી કેટલુંક પડેલી સ્ત્રીઓ તરફ જોવા લાંગી. મારાં વિલાપથી કેટલાકની આંખોમાંથી આંસુ વઘાં જતાં હતાં, અને હવેતે પણ પોતાનાં દુઃખ સંભારી રહ્યા લાગી. બીજી જે સ્વભાવે જ સહૃદય હતી એ તો અમારા આવતામાં જ લાગણી યવાથી રડી પડી હતી. રોતી આંખે એ પુછવા લાગી: 'તમે ક્યાંથી આવો છો? અને તમે આ લૂટારાને અભાગી હાથે દેવી રીતે પકડ્યાં!'

૧૦૩૯-૧૦૪૨. (પાછલા લવની કથાથી માંડીને) અમારા નશીબની સાે કથા મેં એમને રડતી આંખે કહી સંભળાવી: હાથી નાહવા આવ્યો અને શિકારીએ એને બંદલે મારા ચક્રવાકને માર્યો, અમે એ લવમાં કેમ સુખી હતાં, કેમ હું એમની પાછળ સતી થઈ અને અમે બે વત્સનગરમાં માનવલવમાં અવતર્યાં; કેમ ત્યાં ચિત્રેની સહાયતાથી અમે એકબીજાને શોધી કાઢ્યાં; કેમ મેં મારા પ્રિયને વિનંતી કરી, પણ એમણે ના પાડી એટલે મેં મારી સખી આરસિકાને મોકલી; અને કેમ છેવટે મહાવામાં બેસી નાહ્યાં અને ગંગાને રેતીને કાંઠે લૂટારાને હાથે પકડ્યાં (એ સાે કહી સંભળાવ્યું).

૧૦૪૩-૧૦૪૬. (ત્યાં ઉલ્લેખ હતા) એ લૂટારાને આ (બધુ) સાંભળીને ક્યા આવી અને મારા પતિના બંધ હીલા કરવા એમની પાસે ગયો. પણ પેલી કેદ પકડાયેલી સ્ત્રીઓને તો એણે એવી સખત ધમકાવી કે વાદળોના કાટકાથી ગભરાઈને જેમ હસીઓ નાસે એમ એ છુટી પડીને નહી. અને એ બધી જતી રહી કે તરત જ એણે મારા સ્વામીને છાત્રમાત્રું કહી દીધું, કે: 'તારે હવે ડરવાતું કારણ નથી; હું તમને સાત માંથી ઉગારી લેઈશ. તમારા જીવન બચાવવાને માટે મારા જીવનને એખમમાં નાખીને પણ ગમે તે પ્રકારે ઉપાય કરીશ.'

૧૦૪૭-૧૦૫૦. એના સુખની આવી વાણી સાંભળીને અમારી મરણચિંતા એકેવારે ચાલી ગઈ અને (અમારા હૃદયમાં) હર્ષ વ્યાપી રહ્યો. છતાં એ છુટવાની અમારી એ આશા સફળ થાય એટલા માટે અમે ઉપવાસ કરી, અમે આજે કોઈપણ પ્રકારનો આહાર લેઈશું નહિ' એવા, જિનપ્રભુને રમરી, પચ્ચખાન કર્યા; તેથી લૂટારાએ બ્યારે અમારી સામે સ્વાદિષ્ઠ માંસાહાર આણી સુક્યો ને બહુ લાંબા પ્રવાસ કરવાનો હોવાથી એ ખાવાને કહ્યું ત્યારે અમે કહ્યું, કે: 'અમે એ ખાતાં નથી, માટે ખાઈશું નહિ.'

(૯. ઘેર આવવું.)

૧૦૫૧-૧૦૫૫. હવે સૂર્યભગવાનની (આયમતાં) પ્રભુતા ને તાપ ચાલ્યો ગયો, પદ્મવ્રત થયેલા રાજા જેવો એ દેખાયો, ચાતાવરણમાંથી પાર નિકળી ગયા પંદી ઉગતી વખતે દેખાય છે એવો (તાપની નખગાંધથી લાલ) દેખાવા લાગ્યો. દિવસ પુરો થયાના સમાચાર સૌ ઝાડ પણ આપવા લાગ્યાં-એ પણ નમતાં દેખાયાં અને તેમની અંદરના માળામાં પક્ષીઓ આરામ માટે એકઠાં થવા લાગ્યાં. આંખ સામે મરણ દેખીને અમે આટલું બધું રડયાં ને કંકળ્યાં હતાં ને તેણે કરીને બહુ લાંબા શબ્દો દહાડા પુરો થયો. પૃથ્વીને આરામ આપતી તથા આકાશને શણગાર સભવતી રાત્રિ લબ્યરૂપે આવી. અંદ્ર પણ પોતાનો મૃદુ, ભુધનાં ફુલ જેવો સદેહ પ્રકાશ પાડતો પોતાના કષાળમાં ચાંદી (સસલાનો દાઘ) કરીને બહાર આવ્યો.

૧૦૫૬-૧૦૬૪. એવે લૂટારાની એ સુદમાં કોલાહલ મચી રહ્યો. પીતાં ને નાત્યા લૂટારા તથા કેલીઓ યુદ્ધો માડીને, હરીને, વગાડીને અને ગાઈને શોર કરવા લાગ્યા. બ્યારે એ લોક શાન્ત થઈ ગયા ત્યારે અમારે પહેરેગીરે મારા સ્વામીના બંધ છોડી નાખ્યા ને કહ્યું: 'ચાલો, હવે હું તમને લેઈ જાઉં.' પછી કોઈ બાજુ નહિ એવી રીતે અમને એ બહાર લેઈ ગયો, અને એક છુપે વનમાં આગળ ચાલ્યો. એ ત્યાં ઘણું રખડેલો તેથી ત્યાંની સૌ ગલીકુચીઓ ભણુતો. એ ચારે દિશાએ નજર રાખ્યા જ કરતો. આ નીરવ પ્રવાસમાં અમને ઘણીવાર યાકે પણ ખાવા દેતો. અજસ્ર એણે સજેલાં હતાં ને કમરે પટ્ટો કસ્યો હતો. એવી રીતે એ અમારી સાથે ચાલતો.

૧૦૬૫-૧૦૬૭. એકાદ ઝાડમાંથી થોડાંક પાંખીઓ (અરધી ઉંઘમાંથી બગીને

હવે જતાં અને એમની પાંખોને અવાજ, પુઠ્ઠી ખાઈને પડતાં મુકાં પાદડાંના ખખડાટ જેવો સંભળાતો. વળી રાત્રી લેસો, વાંધ, ચિત્તા અને જરખની ખૂમો, તેમજ પંખીઓની અનેક પ્રકારની ચીસો (દૂરદૂરથી) સંભળાતી. અમે મહાભયમાં પડતું મુકયું હતું તે છતાંય, અમે કહી શકીએ કે, વનનાં બધાં પ્રાણીઓને પણ પંખીઓ સારે નરીએ શાન્તિ રાખી રહ્યાં હતાં.

૧૦૬૮-૧૦૭૧. છેવટે મેં હાથીઓએ તોડી પાડેલાં ડાળ બેયાં, જેના ઉપરથી ફળફુલ તોડી લીધાં હતાં. આ અને બીજી નીશાનીઓથી જાણી લીધું કે હવે અમે વનને છેડે આવ્યાં છીએ. અને ત્યારે એ લૂટારાએ અમને કહ્યું: 'હવે તમે વનની બહાર આવ્યાં છો ને હવે કંઈ ભો જેવું નથી. પાસે જ ગામડાં આવે છે. આ મેદાનને રસ્તે તમે ચાલ્યાં જાઓ. હું પણ બીજે રસ્તે ચાલ્યો જઈ છું. લૂટારાની ગુફામાં મારા સરદારના હુકમને અનુસરીને કેદમાં રાખ્યાં ને સંતાપ્યાં તે માટે ખમા કરજો.'

૧૦૭૨-૧૦૭૫. મારા સ્વામીએ ઉપકારની લાગણીથી લૂટારાની, અમારું ભલું કરનારની, આંખ સામે ભેયું અને શુદ્ધ નમ્રસ્વરે કહ્યું: 'અમારે કોઈ (સહાયક) સંબંધીઓ પાસે હતા નહિ તેવી વેળાએ, તમને એવો હુકમ હતો છતાં, તમે અમારાં જીવન ઉગારી લીધાં છો. કોઈ પણ આધાર કે છત્ર વિનાનાં અને જીવનાશા હારી બેઠેલાં અમને તો એમજ લાગ્યું હતું કે અમે કાંશીએ ચઢી ગયાં છીએ અને અમારા ગળા ઉપર (મોતની) દોરી લાગી છે, એ દોરીને તમે વીરતાથી કાપી નાખી છો. વત્સનગરમાં વસતા શેઠ ધનદેવનો પુત્ર હું પસદેવ છું, એ વાતની કોઈ પણ સાખ પુરશે.'

૧૦૭૬-૧૦૭૮. અને વળી એમણે કહ્યું: 'આલો ત્યાં, અમે તમને સારી પેઠે બઢો આપીશું.' લૂટારાએ ઉત્તર આપ્યો: 'જેઈ લેઈશું.' (તે ઉપરથી મારા સ્વામીએ ફરી કહ્યું: 'જ્યારે ત્યાં આવવાનું થાય ત્યારે તમને સમ છે કે, તમે અમને જરૂર મળજો. જેણે જીવ બચાવ્યો હોય તેને તેના જેવો સરખો બઢો તો કદી જ આપી શકાય નહિ, પણ તમે અમારા ઉપર કમમાં કમ એટલી તો કૃપા કર્યો જ કે, જેથી અમે તમારો સ્નેહભર્યો આદર કરી શકીએ.'

૧૦૮૦-૧૦૮૧. એણે ઉત્તર આપ્યો: 'તમે મારાથી સંતોષ પામ્યાં છો એ જ મારે તો ઘણું છે.' આટલું બોલ્યા પછી વળી એ બોલ્યો: 'હવે તમે તમારી મેળે ચાલતાં થાઓ. એમાં કહી એ પર્વતને રસ્તે ચાલતો થયો અને અમે મેદાનમાં રખડવા લાગ્યાં.

૧૦૮૨-૧૦૮૬. રસ્તા વિનાના મેદાનમાં મારાથી ચાલતું મુશ્કેલ થઈ પડ્યું. અત્યાર સુધી અમે બહુ ઉતાવળે ચાલ્યાં હતાં અને હવે તો ભુખ, તરસને થાકથી અકળાઈ ગઈ હતી. તેથી કેવળ મુકાઈ ગયેલો મેદાન ચાલતાં પગ લયકતા હતા. મારાથી જશ ય ચાલતું અશક્ય થઈ પડ્યું એટલે મારા સ્વામીએ અને પોતાની પીઠ ઉપર ઉઘાડી લીધી, પણ એમને શ્રમ પડે એથી તરત જ નીચે ઉતરી પડવા મેં એર

કર્ચુ, પણ મને શ્રમમાંથી ઉગારી લેવાને માટે એમણે કહ્યું: 'આપણે એક ધીરધીરે જઈશું. જો આ વન ધીરધીરે આશુ' થઈ ગયું છે, વળી ગાયોએ ઠેરઠેર ભોંય ખોદી નાખી છે અને કોઈ કોઈ ઉકરડા પણ દેખાય છે. એ અધાથી સમજાય છે કે કોઈ ગામ ખાસે જ છે, હવે તને સારી રીતે વિશ્રામ ગ્રાણશે.' ...

૧૦૮૭-૧૦૮૯. પળવારમાં મારો ભોટ ટળી ગયો અને ગાયોને ગૂંહાવનની માતાઓને-મારી સામે જ ભેળેને મને આનંદ થયો. વળી કાંનમાં ફૂલના ગોટા ઘાલેલા ને હાથમાં ઝાડની હાંખળીઓ ઝાલેલા ગોવાળીઆના છોકરા પણ અમે ભેળાં. ઉકાઠાએ એમણે અમને પુછ્યું: 'આવે ઝોતાડે મારે તમે ક્યાંથી આવો છો?' મારા સ્વામીએ કહ્યું કે 'અમે બુલાં પડ્યાં છીએ' ને પછી પુછ્યું:

૧૦૯૦. 'આ દેશનું નામ શું? અને (પાસેના) નગરનું નામ શું? તમારું ગામ કયું અને અહીંથી એ દેરલે છે કે?'

૧૦૯૧. એમણે ઉત્તર વાળ્યો: 'અમારું ગામ ખાયગ છે; અહીં આ વન પુરું થઈ રહે છે, એથી થીલું કંઈ વધારે અમે જાણતા નથી.'

૧૦૯૨-૧૦૯૪. થોડે આગળ ગયાં ત્યાં તો ખેડેલી ભોંય આવી અને મારા પ્રિય બાલી ઉઠ્યા: 'પણે પેલી બુવાન નારીઓ ગામમાંથી નિકળી વનમાં ખાંડાં વીણવા જાય છે. મારી સુભાષુ પ્રિયા, સફેદ કટિમેખળા નીચે એમની ગોળ રાતાશ પડતી બાગો કેવી સુંદર દેખાય છે!' આવાં આવાં રનેહભર્યાં વચનો બાલીને મારા સ્વામીએ મારો કલેશજનક થાક ઉતારવા પ્રયત્ન કર્યો.

૧૦૯૫-૧૦૯૭. પછી અમે ગામની જરાક એક ખાલુએ આવેલા તળાવ ઉપર આવી પહોંચ્યાં, તેના સ્વચ્છ પાણીની અંદર માછલાં હતાં ને ઉપર કમળપુલ હતાં. અમે નિશ્ચિંતમને ગામડાના આ તળાવમાંથી કમળે સુવાસિત કંચન જેવું પાણી ખોળે ખોળે પીધું. ત્યાર પછી વળી અમે (છછરા) પાણીની અંદર ઉતર્યાં અને ઠંડું પાણી અમારા (મોં) ઉપર છાંટ્યું, પછી થાક તથા ચિંતાથી મુક્ત થઈને ગામ તરફ આધ્યાં.

૧૦૯૮-૧૧૦૦. ત્યાં તો અમે સુંદરીઓને ઘડામાં પાણી ભરી જતી ભેળ, એ-એકે કેડ ઉપર ઘડા લીધા હતા અને બુલેયાંથી ચોમતા હાથ (ઘડાને) ગળે વીંટળી રાખ્યા હતા. અને મારા મનમાં પ્રશ્ન ઉઠ્યો: 'ત્યારે આ ઘડાએ એવું તે શું પુણ્ય કર્યું હશે કે એ નવનારીઓની સોડમાં પુર્યો હોય એવા બેઠા છે અને એમના હાથમાં સુંદર આભિંગન પામ્યા છે?' પણ એ સુંદરીઓ તો એકીટસે આશ્ચર્યદૃષ્ટિએ અમારી સામે ભેળ રહી.

૧૧૦૧-૧૧૦૭. જે ગામમાં અમે આવ્યાં હતાં તેની ચારે બાજુએ કળાવિનાની અને છતાંયે સુંદર વાડ હતી. નારીઓ જાણે પહેરા ઉપર ઉભી હોય એવી એ દેખાતી હતી, કોરણકે નારીઓનાં રતન જેવાં-તુળકાં એના ઉપર લટકતાં હતાં. જ્યાં આ-

મળથી ગામની સ્ત્રીઓ અમને જોતી હતી, ત્યાં આગળથી એ વાડ કમનસીબે ભાગેલી હતી તેથી એ સ્ત્રીઓ આશ્ચર્યથી અમારી સુંદરતા જોતાં આંખ પહુ ફરકાવતી નહિ, અને જોવાની સ્પર્શમાં અંદરની બાબુઓથી (વાડ) ઉપર પડતી ને તેને હડસેલતી અને ઠોલાહલ મચાવતી. આમ (વાડના) લાગવાયો અવાજ થતો એટલું જ નહિ, પણ (ઉત્સુકતાએ બહાર આવેલી) આપેડ સ્ત્રીઓને જોઈને કેટલાક કુતરા ચમકતા ને ઉંચાં મોં ઠરીને બસવા લાગતા. અમને જે સ્ત્રીઓ જોતી હતી તેમાંની કેટલીક તો માંદી ને ફીફી જેખાતી હતી, એમને તાવ આવતો હતો અને (દુખળી પડી જવાંથી) એમનાં બહેંયાં ઢોલાં પડી ગયાં હતાં. એમની પાછલી બાબુએ ધોળો પોશાક પહેરેલી (તંદુરસ્ત) તરૂણીઓ કેડમાં છોકરાં લેઈને પોતાના ઘરમાંથી બહાર નિકળી આવી હતી. આવા આવા અનેક જેખાવ જોયા અને જાણ્યા, અને આમતેમ જોતાં જોતાં અમે ખીરેધીરે (એ ગામની) ચેરીમાં પેઠાં.

૧૧૦૮-૧૧૧૦. વનમાં હતાં ત્યારે ગમે એમ કરીને જીવ બચાવવાની ખાતર અને વનમાંથી નિકળી જવાની ખાતર, (જે પગે હું ચાલતી હતી તે) પગના ઘાની કે બૂખળી કે તરસની કે થાકની મેં (બહુ) પરવા કરી નહોતી, પણ હવે તો લો ટળી ગયો હતો ને બલિધ્ય નહીં થઈ ગયું હતું, તેથી બૂખ તરસ ને થાક વિષેના મને વિચાર આવ્યા ને મેં મારા સ્વામીને કહ્યું: 'પ્રવાસીને કરવું પડે છે એમ આપણે પણ ખાવાનું માગીએ.'

૧૧૧૧-૧૧૧૭. જેમણે સાં ધન લૂટારાએ લૂટી લીધું હતું એવા મારા સ્વામી બોલ્યા: 'જેમને અનમ્ર કુળાભિમાન હોય છે તેમને તો, ગમે એવા સંકટમાં આવી પડ્યા છતાં, લોકની પાસે બીખારીને વેચે જવાનું ભારે પડે છે. ગામના લોક પાસે જઈને ઉભો રહું એ તો મને શરમ બરેલું ને નીચું જોવા જેવું લાગે. કારણ કે (શીખા-રીની પેઠે) આમ ઉભા રહેવું એ તો જેનામાં કંઈક લાગણી છે એવો માણસ, એનું બધું જઈ રહ્યું હોય અને વગડામાં દુઃખે ઘેસયો હોય તો ય, પસંદ ન જ કરે. જે જીમ દુઃખને સમયે ફરિયાદ કરતાં સંયમમાં રહે એ જીમ બીખ માગવાનું શી રીતે કબુલ કરે! અને છતાં યે, મારી પ્રિયા, એ અભિમાન હોવા છતાં યે તારે માટે ગમે તે કરતાં પણ અચકાધચ નહિ; તેથી આ ચેરીના શબ્દગારરૂપ આ મંદિરમાં તું થોડોવાર થાક ખા; તારે માટે ખાવાનું શી રીતે લાવવું એનો હું વિચાર કરું છું.'

૧૧૧૮-૧૧૨૧. ત્યારે બાબુઓથી ખુલ્લું અને દરેક ખુલ્લુંએ ચાંબલાને ટેકે રહેલું એવું એ મંદિર હતું અને ત્યાં પર્વને દિવસે વહેલા જીવાનીઆ મેળો ભરતા. (વનમાંથી નિકળ્યા પછી જે જેતરો આવ્યાં હતાં તેની આ બાબુની સીમા ઉપર જ આવેલા) આ મકાનના ખંડમાં અમે પેઠાં. એ સુકામ પ્રવાસીઓને ઉતરવા (ગામ લોકોએ) કાઢતો હતો. તેમાં (ગામના) શૂદ્રઓ (જગતની નવીજીની બાણવાની ધર્મજી) અને વળી

ગામનાં છોકરાં (રમવા માટે) એકઠાં થતાં. વનમાં મધા પ્રકારનાં બીજ અને પ્રકૃષ્ઠ જાળવીને સંચવી રાખનાર, (રાત) દશરથનાં સત્રીપુત્રવધૂ, જગત્પ્રસિદ્ધ સીતાજીતું, રમરણ કરીને જમીન ઉપર એક ચોકખી ને ડાંગરનાં કણસલાં જેવી ચળકતો જગાએ બેઠાં.

૧૧૨૨-૧૧૨૬. એવામાં તો યોડખાંપણ વિનાના બાંધના એક સુંદર ભુવાનને ચપળ સિંધી ઘોડા ઉપર બેસીને આવતો અને જોયો. એણે બહુ જ નરમ ધોળાં સુતરેલ કપડાં પહેલાં હતાં. તેની આગળ સિપાઈઓ અને બીજા માણસો ઉતાવળે પગલે ચાલતા હતા. હું જરૂર (એની નજરમાં) એક પુરૂષની સોબતમાં નગરનારી જેવી દેખાતી હોઈશ ! પણ હું તો શરમાયા વિના અમારા સીતામંદિરના અષ્ટ-કોણ ચાંભલાને અંદરોને ઉભી રહી. કુદમાપકરતી (એ અશ્વારતું નામ એવું હતું) અમારા મંદિરની ડાબી (દેવના માનમાં) બાજુએ થઈને ચાલ્યો, પણ મારા સ્વામીને દેખતાં જ તે એકદમ ઘોડા ઉપરથી છલંગ મારીને ઉતરી પડ્યો. એ મારા સ્વામીને પગે પડ્યો ને ઉંચે સ્વરે રડી પડીને બેઠો. ‘ હું તમારા ઘરમાં બહુ દહાડા રહ્યો છું. ’ મારા સ્વામીએ એને ઓળખ્યો કે તરત જ એને એ આવેગથી ભેટી પડ્યા ને પુછવા લાગ્યા : ‘ તું અહીં ક્યાંથી ! (મારા પિતા) શેઠ કુશળ છે ? મારાં બા ને બીજાં સા આપણાં સંબંધી ને મિત્રો કુશળ છે ! ’

૧૧૩૦. મારા સ્વામીની સાથે એ જમીન પર નમીને બેઠો અને પોતાના જમણા હાથથી એમનો હાથો હાથ ઝાલી સમાચાર કહેવા લાગ્યો :

૧૧૩૧-૧૧૪૨. “ નગરશેઠના ઘરમાં મોટે મગરકે બખર પડી મધ કે દીકરી દેખાતી નથી ત્યારે એની સખીએ (સારસિકાએ) તમારી પાછલા ભવની બધી કથા કહી સંભળાવી; અને તમે કેમ તૈયારી કરીને નાશી ગયાં એ વાત પણ એણે કહી. પછી તરત જ નગરશેઠ તમારા પિતા પાસે ગયા અને બોલ્યા : ‘ હું કઈક કઠોર થયો હતો એને માટે કૃપા કરીને મને સમા આપશો. મારા જમાઈની (હવે એમને જમાઈ માનીય) શોધ કરાવો ! તરત જ એ ઘેર આવે તો ય એમને (મારાથી) બીજાનું કારણ નથી. એ બિચારો ભુવાન પરદેશમાં અજણ્યા લોકની વચ્ચે શું કરશે ? ’ ત્યાર પછી એમણે (તમારા પિતાને) શેઠને તમારા પાછલા ભવની બધી કથા અથઈ તે ઇતિ સુધી, જે પ્રમાણે એમણે સખી પાસેથી સાંસળી હતી તે પ્રમાણે, કહી સંભળાવી. અને તમારો કેમજા હૃદયની માતા તો તમે આમ અકસ્માત્ અજાગા થઈ ગયા તેથી શેઠમાં ડુબી ગયાં, અને એવું છાતીફાટ રહવા લાગ્યાં કે પાસે બેઠેલાંને પણ રડવું આવ્યું. આખા વત્સનગરમાં એક મોંઢેથી બીજે મોંઢે એમ સા જગાએ વાત જણાઈ ગઈ કે શેઠના દીકરાને ને નગરશેઠની દીકરીને પોતાનાં (સહ) ભવનની કથા યાદ આવી છે. હવે શેઠ ને નગરશેઠ તમને જોળી કાઢવાને ચારે બાજુ અનેક માણસો મોકલ્યા છે; મને પણ સવારમાંજ પ્રજ્ઞાથક (નામે નગર) તરફ તમારો પુછપરછ કરવા

મોકલ્યો હતો, કારણ કે મારા પિતા ત્યાં રહે છે; પણ ત્યાં તમારો કશો પત્તો લાગ્યો નહિ. છતાં એ મેં વિચાર્યું કે જેમની મિલકત નાથ પામી હોય છે, કે જેમને માથે બીજા સંકટ આવી પડ્યાં હોય છે, અથવા જેમણે અપરાધ કર્યો હોય છે, કે જે કંઈક બહુ વિદ્યા શિખ્યા હોય છે (જેમને પ્રયોગ કરવા માટે વનમંત્રી સામગ્રીઓની જરૂર પડે છે), તેમને વનવગડાના પ્રદેશમાં ફરવાનું ગમે છે. તેથી એવે એવે ઠંકણે તપાસ કરવા ને નજર રાખવા ગયો હતો અને અતે અહીં આવી પહોંચ્યો છું. દેવે અહીં મારા શ્રમનો બદલો આપ્યો છે. તમારા ઉપર શેઠે અને નગરશેઠે નિર્નહાંચે લખેલા આ કાગળો આપ્યા છે. ”

૧૧૪૩-૧૧૪૭. તરત જ માયું નમાવીને મારા સ્વામીએ પત્રો લીધા અને પોતાના મિત્રને જણાવ્યું કે ‘એ થાકે આવાને ત્યાં બેઠી છે.’ કાગળો ઉઘાડીને (પોતે પ્રથમ વાંચીને) ધીરે ધીરે વાંચવા લાગ્યા, રખેને એમાં લખેલું કંઈ છાંતું ઉતાવળે વાંચી ના નંખાય. કાગળોની બધી મતલબ બહુ લીધા પછી, એમણે એ કાગળો (કશું છુપાવવાનું હતું નહિ તેથી) મોટેથી વાંચી સંબળાવ્યા; એટલે હું પણ એથી વાકેફગાર થઈ. કાગળો સાંભળ્યા તે પ્રમાણે તો જરા એ કોથ વિના એ લખાયા હતા અને પુષ્કળ વાતસહયભાવ એમાં બતાવ્યો હતો; વારંવાર લખ્યું હતું કે: ‘ઘેર આવો!’ આથી મારી ચિંતા તો એકેવારે વેગળી થઈ ગઈ અને મારા હૃદયમાં આનંદઆનંદ વ્યાપી રહ્યો.

૧૧૪૮-૧૧૫૫. એટલામાં કુદમાવહસ્તીની આંખો મારા સ્વામીના હાથ ઉપર પડી. એમના એ હાથને (લૂટારાની ગુફામાં) બહુ સખત બંધને બાંધ્યાથી સોરાયા હતા ને તેથી બુંદી જ બાતના દેખાતા હતા, વળી સુજી પણ ગયા હતા. અને એણે (એમને) કહ્યું: ‘રજુશેત્રમાં ઉતરેલા જોદાના જેવા તમારા હાથ હાથીની સુઠ, સમાન બળવાન છે અને સાથે સાથે અનેક ઘાથી બુદ્ધા જ પ્રકારના ને સુજેલા દેખાય છે એવું જે મેં સાંભળેલું તે વાત ત્યારે ખરી કે?’ તરત જ, અમે કેવાં કેવાં લયકર દુઃખ (લૂટારાની ગુફામાં) વેઠ્યાં હતાં એ એને કહી બતાવ્યું. પછી ગામમાં સોથી સારે ઘેર એ અમને, આરામ થાય એટલા માટે, લેઈ ગયો. એ ઘર બ્રાહ્મણનું હતું. બ્રાહ્મણ અમારી સાથે સંબંધ રાખી શકે એવી સ્થિતિના અમે હોવાથી એ બ્રાહ્મણકુટુંબમાં (બ્રાહ્મણ) સરખો આદર પામ્યાં, પાણીના કરવા વાપરી શક્યાં; વળી હાથ ધોવાને ચોકળું પાણી મળ્યું અને પછી તરત જ સ્વાદિષ્ટ લોચન અમને જમાવ્યાં; અમે ઉપકાર માન્યો કે અમને આવી પ્રમુની પ્રસાદી મળી. અમે હાથ મોં ધોઈને અમારા પંગના ઘામાં ગરમ ઘી મુક્યું, અને ત્યાર પછી એ કુટુંબમાંથી વિદાય લેઈ નિકળ્યાં.

૧૧૫૬. આમ ફરી અમે હતાં એવાં થઈ ગયાં ને હવે બને જણાં ઘોડા ઉ-

પર ચઢ્યાં. કુલમાપહસ્તી અને તેના સિપાઈઓ તથા માણસોને લેઈને ઘર તરફ અને ચાલ્યાં.

૧૧૫૭-૧૧૭૭. પહેલાં તેા અને પ્રજ્ઞાશક નગર ભણી ચાલ્યાં. એ નગર એવું તેા સુંદર છે કે એને આંખા પ્રદેશનું મોતી અને ભાગ્યદેવીનું સ્થાન કહેવું બેઠે. પોતાની સખીને ઉતાવળી ઉતાવળી મળવા જતી, ને નીચાણના પ્રદેશમાં બે કાંઠે વહેતી, ને પીવા જેવા સ્વચ્છ પાણીવાળી તમસા નદી (માર્ગમાં આવતી હોવાથી) અને મહાવામાં બેસી ઓળંગી ગયાં એટલે અને પ્રજ્ઞાશક નગરથી શોભી રહેલા એ બે નદી-ઓના સંગમસ્થાનમાં તે ને તેજ દિવસે આવી ઉભાં. અને કુલમાપહસ્તીએ (ઉતાવળે) ગોઠવણ કરી હીધા પ્રમાણે ધોરીમાર્ગે ચઢીને મહા આનંદે અમારા કુળમિત્રના સંબંધીને ઘર આવી ઉતર્યાં. ત્યાં અમારે સ્નાનથી, ભોજનથી અને તૈલમઢનથી સારી રીતે સત્કાર થયો અને ત્યાર પછી વળી રાત્રે સુંદર નિદ્રાનો લાહવો મળ્યો. બીજે દિવસે સવારમાં ઉઠીને દાતણપાણી કર્યાં, નાહ્યાં, દેવની ઉપાસના કરી ને પછી થાક, ભય અને ભૂખથી મુક્ત થઈને વળી પાછાં પથારીમાં સુતાં. તે દરમિયાન કુલમાપહસ્તીએ અને ઘર તરફ આવીએ છીએ એવા સમાચાર આપવા, કૌશામ્બીમાં અમારા માખાપ ઉપર કાગળ લખી નાખ્યા. જેટલા દિવસ અને ત્યાં રહ્યાં તેટલા દિવસમાં ખાનપાન વગેરે સર્વ પ્રકારની અમને બેઠતી સામગ્રીથી અમારાં દુઃખની નિશાની મુદ્દાં બુંસી નાંખવા એ લોકોએ પ્રયત્ન કર્યાં. થોડા દિવસ પછી જ્યારે અમે પૂરેપૂરા સાજ થયા ત્યારે કૌશામ્બી તરફ જવાની અમે ઈચ્છા દેખાડી. પ્રવાસની સૌ તૈયારીઓ થઈ. ઓઝોએ બહુ ચે ના પાડી, તેા ય ધરનાં બાળકોને મેં એક હજાર કાપોપણની (રકમની) બક્ષીસ કરી, જેમાંથી અમારે માટે ચરેલું લગભગ બધું ખર્ચ વળી જાય. મારા સ્વામી એટલી બક્ષીસ આપતાં શરમાતા હતા, કારણ કે એવા સ્નેહભર્યા. આદરની એવી કિંમત એમને બહુ ઓછી લાગતી અને એવી વાંત કરતાં એમને સંકોચ થતો. (જતી વખતે મળી લેવાને) એ સ્નેહીધરની સૌ ઓઝોને મેં અને સૌ પુરોષોને મારા સ્વામીએ મળી લીધું. પ્રવાસમાં જરૂર પડે એવી સૌ ચીજો ને ઔષધો મુદ્દાં અને સાથે લેઈ લીધાં, જેથી માર્ગમાં કરી અડચણ પડે નહિ. ત્યાર પછી મારા સ્વામી સુંદર ઘોડે ચઢ્યા, તે ઘોડા મારા રથની પાછળ ચાલતા હતા. શેઠ અને નગરશેઠ મોકલેલા ચાકરો જ માત્ર નહિ. પણ વળી (એ ચાકરો સાથે કૌશામ્બીથી આવેલો એ અમારો ગૃહમિત્ર) કુલમાપહસ્તી અને તેનાં માણસો પણ ચારે બાજુ નીકળી વળીને ચાલતાં. તે ઉપરાંત ઘાટો પડેલી ત્યારે પોતાની શૂરવીરતા અને કવાર દેખાડેલી એવા માણસોને હથિયારબંધ કરીને અમારે રખવાળે મોકલ્યા હતા. આમ અને ચોટામાં થઈને પ્રજ્ઞાશક નગરમાંથી નિકળ્યાં ત્યારે અમારા બપકાથી સૌ વસ્તી આશ્ચર્યમૂલક થઈને બેઠી રહી. અને અમારા મિત્રનો અરૂધો અને અમારો પોતાનો અડધો ભ્રમ ભરેલો કહ્યો. લેઈને, કોઈથી ન ઉતરે એવા બપકાથી, અંતે (એમની નજર) બહાર અને નિકળી ગયાં ત્યાંસુધી રાજમાર્ગને રસ્તે જતાં હજારો લોક અમારી ઉપર તાકીને બેઠી રહ્યાં.

૧૧૭૮-૧૧૮૨. હવે મારા સ્વામીએ ગાડીવાનને કહીને મારો રથ ઉભો રખાવ્યો અને પોતે મારી પાસે અંદર આવ્યા; ત્યારપછી વળી પાછો સાથ ચાલ્યો. (માર્ગમાં) પછી ઉંચી ડાંગરનાં ખેતર, વિસામાનાં ચોતરા તથા પરબો ભેતાં ધીરેધીરે અમે વાસાલિક નામે ગામે આવી પહોંચ્યાં. ત્યાં પર્વતના (કીલોતરીથી ઢંકાયેલા) શિખર જેવું એક પ્રાચીન વડતું ઝાડ ભેંધને અમને આનંદ થયો. કોઇપણ પ્રવાસીને આનંદ આપે એવું એ મનોહર ઝાડ હતું. યુગ પાંદડાવાળી એની ઘંટામાં પંખીઓનાં ટોળેટોળાં એના ઉપર બેઠાં હતાં. અમારો ગૃહમિત્ર એ ભેંધને બોલ્યો:

૧૧૮૩-૧૧૮૫. 'આપણા ધર્મના પ્રવક્તા વર્ધમાન. (મહાવીર-૨૪ માંના છેલ્લા તીર્થંકર) સંસારનો ત્યાગ કરીને જ્ઞાન પામ્યા તે પૂર્વે અહીં એમણે વાસ કર્યો હતો અને તેથી આ જગ્યાનું નામ વાસાલિક પડ્યું. પરિણામે એ જિનેશ્વર ભગવાનના સ્મરણમાં હજારો દેવ, કિતર ને માણસો આ વડના છાંડની પૂજા કરે છે.'

૧૧૮૬-૧૧૮૮. આ વચનો સાંભળીને અમે બંને સુખલાલે તે આનંદલાયે હોયે રથમાંથી નીચે ઉતર્યા. જિનભગવાનના સ્થાનકનાં દર્શન કરવાને અમને ઇચ્છા થઇ અને વડના મૂળને અમારા કપાળવડે બહુ શ્રદ્ધાથી અને નમ્રતાથી સ્પર્શ કર્યો. હાથ ભેડીને હું બોલી: 'હે ભાગ્યશાળી વૃક્ષ, તું ધન્ય છે કે જિનભગવાન મહાવીર તારી છાંયામાં આવી રહ્યા.'

૧૧૮૯-૧૧૯૦ એ વડની એમ પૂજા કર્યા પછી અને ત્રણવાર એની પ્રદક્ષિણા કર્યા પછી પાછાં અમે તાત્કાલ યઇને વિચાર કરતાં ફરી રથમાં ચઢ્યાં. જ્યાં (ભગવાન) વર્ધમાને શાન્તિએ વાસ કર્યો હતો તે સ્થાનનું દર્શન કર્યોથી મને ઘણું આનંદ અને ઉદ્ઘાસ થયો અને લાંબા સમય સુધી હું એ વિચારમાં નિમગ્ન થઇ રહી.

૧૧૯૧-૧૧૯૫. સ્વામીની પંડબે (બેરી) ગૃહિણીનું સુખ અનુભવતી અનુભવતી એકાકીહસ્તી અને કાળી એ ગાંઠડાં વટાવી ચાલો. પછી રાતવાસો કરવાને અમે, જેની હવેલીએ વાદળાંએ ઝાડકે છે એવી બહુ વસ્તીવાળી શાળાજના નગરીમાં, આવી પહોંચ્યાં. અંહી અમે (મારા સ્વામીના) મિત્રને ત્યાં આનંદથી ગયાં, એની દેલીસના શિખર જેવી હવેલી એ નગરીના અનન્ય શણગારરૂપ હતી. અમારે માટે નાહવાની, ખાવાની અને સુવાની ઉત્તમ ગોઠવણ કરવામાં આવી હતી. અમારા સમસ્ત સાંધને પણ જમાડ્યો, વળી સોરઠિની અને બળદની પણ સારવાર કરી. આમ અમે બહુ સુખમાં તે રાત ગાળી. પછી સવારમાં મેં તથા હાથપગ ધોઇને સૂરજ ઉગતાં ત્યાંથી વિદાય લીધી.

૧૧૯૬-૧૨૦૨. વિવિધ પંખીઓનાં અને ભંભરાનાં ટોળાં (ઉડતાં) દેખાતાં; અમે વાતો કર્યે જતાં હતાં તેથી કેટલો પંથ કપાયો, એ તો અમને જણાયું નહિ.

કુદમાપહસ્તીએ આગળથી કહી રાખ્યું હતું તે પ્રમાણે ગામ અને નગરના રસ્તાની (માપ દેખાડવા) નિશાનીરૂપ ઉભાં રહેલાં યવિત્ર ઝાટોને અમે દૂરથી જોઈ લેતાં. પાછું એક બીલું વડતું ઝાડ દેખાયું; તેની ઠંઈક પાસે આવ્યાં ત્યારે તેનાં લીલાં પાનને લીધે તે 'પૃથ્વીતું' બહુ સ્થામ, ભવ્ય, પ્રકાશક સ્તન હોય, એવું દેખાતું હતું; પ્રવાસીઓના સંઘને વિસામો કરવાતું એ સ્થાન હતું, રસ્તાના શણગારરૂપ હતું અને (વળી) કૌશામ્બીના સીમાડાતું મોતી હતું. ડાંબડાળીઓની ઘટામાં સે'કડો પ'ખીઓ રહેતાં; વળી સુવાસિત કુલકળીઓ અનુપમ શોભા આપતી. ઉપર મેઘ જેવા સદૈવ પટ ઝુલતા હતા અને નીચે ઉત્સવહાર પહેરાવેલા અને પાણીએ ભરેલા કોરા ઘડા મુક્યા હતા. (અમને ત્યાં સુધી સામે લેવા આવેલાં) ઝોળખીતાંએ અને સગાંવહાલાંએ અમને ત્યાં વધાવી લીધાં અને અનેકાનેક આશીર્વાદ આપ્યા.

૧૨૦૩-૧૨૦૭, અમે ત્યાં નાહ્યાં અને તેથી અમારો થાક ઉતરી ગયો. પછી અમે અમારાં સાસરીઆંની પાસે ગયાં અને એમનાં ટોળાંમાં આનંદે જઈ બેઠાં. હવે મારે સ્થમાં બેસવાતું ન હતું ને તેથી ઘોડે ચઢી. મારી પાછળ (મારી સાચી સખી) સારસિકા અને (મને માન આપવાને આવેલો) વ્યાધાઓ, ખોળઓ, દાસીઓ, જુવાનીઓ અને બીજાઓનો સાથ ચાલ્યો. પણ ખાસ કરીને મારા સ્વામી પોતાના મિત્રને (કુદમાપહસ્તીને) લેઈને બીજા ઘોડાઓ જોડેલા સોનાના સ્થમાં બેસી સાથે ચાલ્યા. વળી નહુંદો અને લોભપ્રઓ પણ પોતાના દાસદાસીઓના સાથ સાથે અમને મળવાને આવી હતી, તે પણ સુંદર (બળદ-ગાડીઓમાં બેસીને મારી સાથે (પિતાનો) નગર તરફ ચાલી.

૧૨૦૮-૧૨૧૨. પ્રખ્યાત માણસનાં સુખદુઃખ, જીવંતઆવડું, પ્રયાસે નિકળડું ને પાછું ઘેર આવડું, સૌ લોકને તરત માલમ પડી જાય છે. એવી રીતે અમે પણ ઉંચા પ્રભુદ્વારમાં (ઉતાવળે-ઉતાવળે તૈયાર કરેલા વિજયતોરણમાં) યઇને કૌશામ્બી નગરમાં પ્રવેશ્યાં. ત્યાં આગળ જમણે હાથે એક નરપંખીનો અવાજ સંભળાયો અને એમ સારા શકુન થયા. અને જે રાજમાર્ગે યઇને અમે ચાલ્યાં તે માર્ગે અમને આવ-હાર આપવાને સદૈવ સુગંધિત ફુલોથી શણગારી કાઢ્યો-હતો, અને ઠેક સુધી રસ્તાની બેઠે બાસુની ઉંચી હવેલીઓની હારો ઉપર અને સુંદર દુકાનો આગળ અમને જોવાને આતુરતાથી એકઠાં થયેલાં પુરૂષો અને સ્ત્રીઓની ભીડ જામી હતી. સરોવર ઉપરનાં કમળકુલોની સપાટી પવનથી ઉચીનીચી ચાથ એવો દેખાવ લોકનાં કમળકુલમાં સુખોને લીધે અમને દેખાવા લાગ્યો.

૧૨૧૩-૧૨૧૬. મારા સ્વામીને માન આપવાને માટે રાજમાર્ગે ઉપરના લોકોએ રોહલરી દૃષ્ટિએ એમની તરફ જોયું, એટલુંજ નહિ પણ હાથ જોડીને નમસ્કાર કર્યા. વાહણથી ઢંકાઈ રહ્યા પછી જેમ શરત્ચન્દ્ર આવે એમ પરદેશથી પાછાં અમને ઘેર આવેલાં.

જેમને સૌને આનંદ થયો, એટલું જ નહિ પણ સૌએ એમને આશીર્વાદ આપ્યા ને તેમાં પણ પ્રાદાણોએ અચેસર થઈને. અને હૃદયના આ ઉમળકાનો એ કશો લુખો ઉત્તર આપી શક્યા નહિ. પ્રાદાણશ્રમણો અને એવા પૂજ્ય લોકને એમણે પણ હાથ જોડીને નમસ્કાર કર્યા; મિત્રોને આલિંગન દીધાં ને બીજાઓને ધન્યવાદ દીધો.

૧૨૧૭-૧૨૨૦. કોઈ કોઈ બોલવા લાગ્યા: 'નગરશેઠના મહેલ આગળના ચિત્રમાં ચીતરેલો ને જેને શિકારીએ વીધી નાખ્યો એ ચક્રવાક પેલો રહ્યો. અને તેમાં ચીતરેલો અને જે સતી થઈને નગરશેઠને ઘેર દીકરી થઈને અવતરી છે તે આ જ આ (ભાગ્યશાળી) વધુ છે. પ્રારબ્ધે ચિત્રમાંનાં એ બેને કેવી સુંદર રીતે એકઠાં આણી દીધાં છે ! બીજા કોઈ બોલવા લાગ્યા: 'કેવો સુંદર છોકરો !' બીજાએ ટાપસી પુરી: 'કેવું સાચું !' વળી બોલાયું: 'કેવું જુગતે જોડું !' 'એ એને શોભતો જ છે !'— 'ઉસ્તાદ છોકરો છે !'

૧૨૨૧-૧૨૨૫. એમ સૌ લોકોએ (જુદી જુદી રીતે) મારા પ્રિયતમને વખાણ્યા, પછી અમે ધીરેધીરે એમને મહેલે સાથે આવી પહોંચ્યાં, ત્યાં અમને દાસદાસીઓએ 'પગ ધોવાનું' પાણી આપ્યું અને સુંદર પાત્રો આણીને તેમાંથી ઢહી, ચોખા અને ફુલ દેવને ચઢાવ્યાં; પછી અમને માળાઓ અને કમળદડા આપ્યા ને ત્યાર પછી હું મારા સ્વામીની સંગે બારણામાં પેડી. હું જૂલથી જરાક પાછળ પડી ગઈ ને ઉતાવળે ચાલીને પાછી સાથે થઈ ગઈ; અને અમે મારા સસરાના મહેલના, લોકની બીડવાળા સુંદર અને વિશાળ એકમાં આવ્યાં.

૧૨૨૬-૧૨૩૨. મારા પિતા (નગરશેઠ) પોતાના કુટુંબને લેઈને બીજા વેપારીઓ સાથે આગળથી જ આવીને સાંગામાંથી ઉપર ભેઠા હતા. કંઈક સંકોચથી અમે સૌને ચરણે માથું મુક્યું, અને એમણે સ્નેહાળ દેવોની પેઠે અમારા ઉપર દ્રષ્ટિ કરી. એમણે અમને આલિંગન આપ્યાં, કપાળ ઉપર ચુંબન કર્યું, એમની આંખમાં હર્ષનાં આંસુ આવ્યાં ને ક્યાંય સુધી અમારી સામે જોઈ રહ્યાં. મારી માતા અને સાસુએ પણ અમને હૃદયાના ઉમળકાથી આલિંગન આપ્યાં અને રોઈ પડ્યાં—એમની આંખોમાંથી આંસુ નિકળી પડ્યાં અને સ્તનમાંથી ધાવણ નિકળી પડ્યું. પછી મારા (આઠ) ભાઈ-ઓને એકેએકે પગે લાગી અને લક્ષિતભાવે માફ મસ્તકકમળ એમની આગળ નમાવતી ચાલી ત્યારે એમની પણ આંખમાં આંસુ તરી આવ્યાં. વળી જે સૌને હું સ્નેહથી સંભારતી તે સૌ આવી મળ્યાં. મારી દાસીએ અને સખીએ (સારસિકાએ) પ્રયત્ન કરી એને ઝાંઝ નીચે વધાવી લેવા આવ્યાં હતાં ત્યારે) પોતાનાં આંસુ-રોડી રાખ્યાં. પણ અત્યારે છુટથી વહેતાં મુઠ્ઠી દીધાં, (કારણ કે થોડી વાર સુધી) નહિં ત્યાં સુધી સમે એવું નહોતું; ઝાકળનાં મોતી જેના ઉપર પડ્યાં છે એવી કલ્પવૃક્ષ હતા. હું (જે) દેખાતી.

૧૨૩૩-૧૨૩૮. નગરશેઠની અને વેપારીઓની સૂચનાથી પછી (લેટ મુકતી વખતે લાવવામાં આવે છે એવા પ્રકારનો) એક ઘડો આવ્યો. અમને અમારે આસને બેસાડ્યા પછી. સૌ સંબંધીઓએ અમારા આજ સુધીના જીવન વિષેની વાતો પુછવા માંડી. ત્યારે મારા પ્રિયે અમને જે અનુભવ થયો હતો તે સૌ (અથવા ઇતિમુખી અનુક્રમે) એમને કહી સંભળાવ્યો; અને એકવાર સાથે વસતાં, એ સહવાસ પ્રિય હોવા છતાં અમારું મૃત્યુ થયું ને તેથી વિયોગ થયો, એ ચિત્રોને લીધે પાછો સંજોગ થયો, મછવામાં બેસીને નાશી ગયાં, લટારાના હાથમાં ફસાયાં, મરણના મોંમાં જઈ પડ્યાં, એમની શુક્રમાંથી એક લટારાએ બચાવી નસાડયાં, વનમાં પ્રવાસ કર્યો, એક ગામ મળી આવ્યું અને છેવટે કુદમાપહસ્તી સાથે ભેટો થયો. આ સૌ વાતો વર્ણવી.

૧૨૩૯-૧૨૪૪. અમારો એ સૌ અનુભવ મારા સ્વામીએ વર્ણવ્યો તે સાંભળીને બંને પક્ષની (મારા પોતાના કુટુંબની અને મારા સ્વામીના કુટુંબની) આંખોમાં પાછાં આંસુ ભરાઈ આવ્યાં, અને મારા પિતા બોલ્યા: 'તમે આ વાત અમને પહેલાં કેમ ના કહી? તમને આટલું દુઃખેય પડત નહિ ને આટલો પસ્તાવોય થાત નહિ. જરા પણ ભલું કયું હોય તેને માટે પણ સારો માણસ હવે ઉપરાંત ઉપકાર માને છે અને એનો બદલો વાળી શકાય નહિ ત્યાં સુધી પોતાને ઝણી માને છે. ત્યારે જેવું એક વાર ભલું કયું છે તેના ઉપર વળા ફરી ભલું કરાય તે માણસો ઉપકાર માને નહિ તો શી રીતે જીવી શકે? એવા બલોનો એને મંદરપર્વત જેટલો ભાર લાગે છે અને તેનો બેવડો બદલો વાળી શકાય ત્યારે જ એને સતોષ થઈ શકે છે. તમે મને જીવન આપ્યું છે, ત્યારે હું પણ તમને જીવન આપી શકું તો જ જીવવું સાફ લાગે.'

૧૨૪૫-૧૨૪૮. આવાં આવાં વચનોથી ગૃહપતિએ (મારા પિતાએ) અને બીજા શેઠીઓએ અમને રીઝવ્યાં. અને અમારા પાછા આવવાથી અમારા ઘરનાં બધાં માણસો ખુશી થયાં હતાં. ખરે, અઝણ્યા લોક, ને સાફ નગર પણ, અમને હોતે મળવા ઉતાવળે ભરાઈ ગયું; અને વખાણ કરવા માટે, આશીર્વાદ આપવા માટે અને વધાવવાં માટે અમે સુદર કીમતી લોટો આપી. કુદમાપહસ્તીને તો બદલામાં હાનર સોનોમંહોરો મળ્યાં અને અમને પણ સૌ સંબંધીઓએ એકઠાં મળીને અમૂલ્ય લેટ આપી.

૧૨૪૯-૧૨૫૩. શુભ સુહૃત નિરધારીને અમારા બંને કુટુંબને શોભે એવા લીધે અમનનગરમાં કદી થયો નહિ એવા ઠાઠથી-અમારાં લગ્ન થયાં, આખો વખત એવો ૧૨૫૩ ઉત્સવ મંડાયો કે અનેક લોકો આવો આવક કદી નહિ અનુભવ્યો હશે! સ્નેહભરી દૃષ્ટિએ બંને કુટુંબો હૃદયભરી મિત્રતાએ, આનંદશોકનો સમાન અનુભવ કરવા વાદળાંથી ઢંકાઈ બંને કુટુંબો બંને એકજ હોય એમ દેખાવા લાગ્યાં. વળી મારા સ્વામીએ (આપણા ધર્મનાં) પાંચમત લીધાં અને જિનપ્રભુના સુંદર અમૃત પદેશન મંત્ર

કરતાં આદર્શ ગૃહજીવન ગાળવા લાગ્યા. હું પણ આગળ (૪૫૨-૪૫૪ માં) કહી ગઇ છું એમ એકસો ને સાઠ આયબિલ ત્રત પૂરાં કરતી હતી—કારણ કે એ જ ત્રતથી મારી કામના સફળ થઇ હતી.

૧૨૫૪. હવે મારી સખી સારસિકાને મેં પુછ્યું: ‘હું મારા સ્વામી સાથે ચાલી નિકળી (અને તને ઘેર મોકલી) ત્યાર પછી ઘેર તારી શી સ્થિતિ થઇ?’

૧૨૫૫-૧૨૭૨. સારસિકાએ ઉત્તર દીધો: “તારી સૂચના પ્રમાણે તારા દાગીના લેઇ આવવાને હું તો ઉતાવળી ઉતાવળી ઘેર ગઇ. દરવાજાને આગળે ન જોયાથી ઘરના લોકને વ્યાકુળ થઇ ગયેલા મેં જોયા અને મહેલમાં મને મારી પણ સલામતી લાગી નહિ, છતાં-યે તારા ખંડમાંથી તારા દાગીનાની થેલી, નગરના મહિરૂપ એ થેલી લેઇને અહીં આવી. પણ મારી એટલેટલી વાંછના છતાં તું તો મને મળી નહિ ને તેથી નિરાશ થઇને એ દાગીનાની થેલી લેઇને પાછી ગઇ. ‘આહ મારી સખી’ એવો નિસાસો નાંખીને તારા ખંડમાં પેડી ને (દુઃખની મારી) ખૂબ છાતી કુટી. ધીરેધીરે મારી ગ-વારામણુંભરી એકાન્તમાં શાન્તિ વળતી ગઇ ને મને આમ વિચાર આવ્યો: ‘(પૂર્વ-જન્મનાં યાદ આવ્યાનો) એમનો પડદો નગરશેઠને નહિ જોઇ તો એ પોતાની દીકરી ઉપર ભારે ક્રોધ કરશે. માટે હું એમ કરીશ, (એટલા માટે કે) જતે દહાડે એ એમની દયા પામે. માફ પોતાનું પણ થોડું ઘણું ઋણ આ પ્રમાણે વળશે.’ મારા અકળાએલા હૃદયમાં આવા આવા વિચારો ઉઠ્યા અને હું પથારીમાં જઈ પડી, પણ તે રાતે ઉઘ ધીલકુલ આવી નહિ. પછી સવારમાં હું નગરશેઠને પગે પડી અને તારો પૂર્વભવ તને સાંભરી આવ્યાની અને તારા પ્રિયની સાથે તારા ચાલી ગયાની સૌ કથા એમને કહી દીધી. પણ એ તો પોતાના અનન્ન કુળાભિમાનને કારણે, રાહુએ ચઢાએલા ચંદ્રની પેઠે પોતાનું સૌ તેજ હારી બેઠા. હાથ ઝાળીને એ બોલ્યા: ‘અરે! કેટલું ભયંકર. આ-પણા કુળ ઉપર આ શું કલંક આવી પડ્યું! એ ચક્રવાકનો કે શેઠના દીકરાનો પણ કથો દોષ નથી, દોષ માત્ર મારી દીકરીનો કે જે આમ સ્વચ્છંદ થઇને ચાલી ગઇ. નહીં જેમ પોતાના જ કિનારાને ડુબાડે તેમ બ્રષ્ટ નારીઓ પોતાના કુળની આબરૂને ડુબાડે. અશુદ્ધ પુત્રી ઉંચા અને ધનવાન કુળને હાનિ કરે છે, અને એ પોતાના બ્રહ્મજ્ઞારથી આપ્તા કુળને, તે ગમે તેલું સાફ હોય તોય, કલંક આણે છે, તેથી તે એ કુળને શો-ભતી નથી. સાચું જ કહું છે કે કટપનાનાં સ્વપ્ન ઉપર અને સુંદર મૃગજલ ઉપર જે-ટલો વિશ્વાસ રખાય એટલો જ વિશ્વાસ અંચળ અને અતુર નારી ઉપર રખાય.’ વળી એમણે કહ્યું: ‘પણ તેં આ ભધી વાત મને વહેલી કેમ ના કહી?’ હું ત્યારે જ એને પરણાવત અને આ સંકટ આવવા ના દેત.”

૧૨૭૩-૧૨૭૪. “મેં ઉત્તર દીધો: ‘એની કામના સફળ થાય નહિ’ ત્યાં સુધી એ વાત છાની રાખવા માટે મારે એના જીવના સોગન ખાવા પડ્યા હતા. હું

એ સંતલસમાં ભળી હતી, તેથી મારે પરાણે પણ સુપ રહેવું પડ્યું હતું. તેથી શેઠ, મારા ઉપર દયા કરો.'

૧૨૭૫-૧૨૭૬. " શેઠાણીએ ત્યારે આ બધી વાત સાંભળી ત્યારે એ તો તારા દુઃખના ને વિજેગના વિચારમાં બેભાન થઈ પડ્યાં. અને એમને પહેલાં જોઈને, નાગ-ણને ગરૂડના પંજામાં સપડાવેલી જોઈને ગભરાવેલા નાગરાજની પેઠે, શેઠ પોતે પણ તરત જ છુટે મોંઝાંએ રડવા લાગ્યા. જાન આવ્યા પછી શેઠાણી એવું તો હૃદયલેદક રૂદન કરવા લાગ્યાં કે બીજા બધાંને રાવું આવ્યું. ભાઈઓ ભોભાઈઓને બીજા બધાં, સખી, તું જતી રહી તેથી, ખૂબ રાપોટ કરવા લાગ્યાં. પણ શેઠાણી તું હૈયું રનેહાળ, તેથી દીકરીના રનેહાળે કારણે એમના શોકનો ને રૂદનનો તો પાર જ રહ્યો નહિ; છેવટે એમણે શેઠને કાલાવાલા કરી કહ્યું:

૧૨૮૦-૧૨૮૪. " જે લોક શુદ્ધાચારી હોય છે ને આગરદાર મનાય છે એમને પણ દીકરી તરફનાં બે દુઃખ તો હોય છે: વિજેગ ને કલંક. પણ એ સૌ પૂર્વકર્મે કરીને નેહી થયેલા પ્રારબ્ધને આધીન છે. માણસની ઇચ્છા હોય કે ના હોય, પણ એ પ્રારબ્ધ વડે માણસ સુખદુઃખ પામે છે, તેથી ભૂલ થઈ જાય તેનો દોષ લેવો ના ઘટે; કારણકે કુટિલ કાળદેવતા એને જોતી ગયો, પૂર્વભવની વાત એને સાંભરી આવી અને તેથી એક વખતના કર્મનું ફળ એને મળ્યું, ત્યારે તો એની ભૂલ બહુ નાની કહેવાય. અને મારે એ દીકરી ઉપર એવો ગાવ છે અને મારા હૈયામાં એ એવી વશી રહી છે કે એના વિના મારાથો જીવાશે નહિં."

૧૨૮૫-૧૨૮૬. " આવે વચને કાલાવાલા કરીને નગરશેઠની પત્ની પોતાના સ્વામીને પ્રગે પડી, અને 'ઠીક ત્યારે' એવું એમની મરજી ના છતાં ય એમની પાસે કહેવરાવ્યું. પછી એમણે કહ્યું: 'ધીરજ ધર ! એ તારી લાડકી તને લાવી આપીશ; એ બે ક્યાં ઉપડી ગયાં છે તેની શેઠ પાસેથી ખતર પડશે.' એમ બોલી તારા પિતા પછી સ્થમાં બેસીને અહીં આવ્યા અને તમને બેને શી રીતે ઘેર પાછાં લાવનાં એ જ્ઞાત શેઠ સાથે વિચાર કરવા લાગ્યા, પણ (તે દરમિયાન તારા પિતાના) ખરાબ કંઠે એ તો મને ધમકાવી, આંખો કાઢીને એક લપડાકે બોલી કાઢી ને આમ મને સજ કરી. વળી એ કહેવા લાગ્યાં કે 'તું એને ત્યાં લેઈ જ કેમ ગઈ ?' વળી તમને બોળવાને માટે માણસો મોકલ્યાં અને તમને આવનાં સાંભળીને એ સૌ રાજી થઈ અહીં પાછાં આવ્યાં."

૧૨૯૦-૧૨૯૧. (સાધ્વી કહે છે:) સારસિકાએ જે બધું બોલ્યું હતું એ સૌ એણે મને વિગતવાર કહી સંભળાવ્યું. અને પછી મારા સ્વામીએ શા માટે ઉતાવળ કરી હતી ને દાસદાસી વગર અમે કેમ આવ્યાં ગયાં એ વાત મેં એને કહી સંભળાવી.

૧૨૯૨-૧૨૯૭. મારા પતિએ વિદ્વાન મિત્રોની સહાયતાથી એક નાટક રચ્યું હતું. તે નાટક નટીઓ મને લજવી બતાવે એવી વ્યવસ્થા થોડા દિવસ પછી મારા સસરાએ કરી. આમ અમે આ લગ્ન મહેલમાં સંબંધીઓ અને મિત્રો વચ્ચે, કમળ-સરોવરમાંના ચક્રવાકની પેઠે, મહાં આનંદ રહેવા લાગ્યાં. અમારાં હૈયાં સ્નેહાનંદ કરીને ગંઠાઈ ગયાં અને અમે પળવાર પણ એક બીજાથી અળગાં રહી શકતાં નહિ. હું જાણે સ્નેહના લાંબા મુખને માટે સરભાઈ હતી તેથી એક પણ પણ જો હું એકલી પડતી તો ય મને એ પણ જાહુ લાંબી લાગતી; નાહતાં, ખાતાં; શણગાર સજાતાં, સુતાં, ખેસતાં, ટુંકમાં સૌ કાજ કરતાં, અને અંદરની એકતાનો આનંદ લોગવતાં, તે એટલે સુધી કે અમે માળાઓ પહેરીને, અને મુગધી પદાર્થો અમારા શરીર ઉપર છાંટીને અને ચોળીને નાટક જોવા જતાં લારે પણ એવી એકતાનો આનંદ લોગવતાં. આમ અમે કશી પણ ચિંતા વિના સ્નેહમાં એકવત્ થઈ રહેતાં.

૧૨૯૮-૧૩૦૮. આમ સુખસાગરમાં તરતાં તરતાં તારાઓ અને ચંદ્રથી પ્રકાશતી રાતોવાળી મુંદર ચરદ્ મુખમાં ચાલી ગઈ. પછી શિશિરની રાતો આવી. તે લાંબી યવા લાગી ને ગાંઠળ પડવા લાગ્યો, (એ જતુમાં) સૂરજ પોતાનો પ્રકાશ ઉતાવળે ખેંચી લેવા લાગ્યો; (શીખની વિદાસસામગ્રીઓ) ચંદ્ર, ચંદન, ચોતીની માળા, કંકણ, મુતરનાં ને રેશમનાં કપડાં એ સૌ મનથી ઉતરવા લાગ્યાં. શિયાળો આવ્યો, બરફ સાથે એની પણ મળ્યો લેતો આવ્યો. ઘેરઘેર સ્નેહીજન અને (ઘેર આવેલા) બધા પ્રવાસીઓ આનંદ કરવા લાગ્યા. ત્યારપછી વસંતમાં ઠંડી ચાલી ગઈ ત્યારે સહકાર કુલ (સૌ પ્રકૃતિમાં) ખીલ્યાં તેની સાથે સ્નેહનું રાજ્ય પણ ખીલ્યું. તેવારે નારીઓએ કામ પડતાં મેલવા માંડ્યાં ને ઉતાવળી ઉતાવળી હિંદોળાખાટે ગઈ. હિંદોળાખાટને મજાનુત બાંધી હોય અને સ્નેહી હાથે કરીને એ હિંદોળાય તો વગર લોએ ખુબ હિંચકા આવે ને ખૂબ આનંદ મળે. અમારા અતુલ, અદ્ભુત અને જોવાજોવા બાગની શોભા નિહાળતાં અમે નંદનવનના દેવજીગલની પેઠે આનંદ કરતાં. (મારા પ્રિયમને કહેતા:) ‘મહનવાડીનાં દૂતરૂપ આ લમરા તો જો. ગાંઠનાં કુલ અને ખીલ વનસ્પતિ ઉપર, નારી લોકની આંખના કાજળની પેઠે, ચોંટી બેઠા છે અને વેલીઓ ઉપર (તેમની કળીઓ રૂપ) ચંદ્રને (ચંદ્રગ્રહણમાં) ઢાંકી નાખતા રાહુ સરખા દેખામ છે.’ આવી શૃંગારિક ઉપમાઓથી મારા સ્વામી મને આનંદ આપતા અને મારા વાજમાં કુંલે ખોસતા, જેથી એ બધાંનો મિશ્ર મુગધ નિકળતો. આપું આપું કરવાને લીધે ખીલેલી વનસ્પતિ જોવામાં અમને જાહુ મળ પડતી અને આવી રીતે આનંદમાં તથા સ્નેહમાં અમે ગંઠાયાં રહેતાં.

(૧૦ લૂટારાનું સાધુ થવું.)

૧૩૦૯-૧૩૧૪. (ઋતુઓ બદલાતાં ફરી પાછી વસંત આવી અને પ્રકૃતિની શોભા નિહાળવાં ફરી પાછાં અમે બાગમાં ગયાં) ત્યાં એક અશોક વૃક્ષની નીચે મુકેલી પત્થરની બેઠક ઉપર (આપણા ધર્મના) એક સાધુને નિશ્ચિંતમને મ્હેં નીચું રાખીને બેઠેલા જોયા. તરત જ મારા વાળમાંનાં પુલ ખરી પડ્યાં; મેં મારાં અંગ ઢાંકી દીધાં અને ગારા મ્હેંને શોભાવતા ચૂર્ણ(પાઉડર)ને લુંછી નાખ્યો. મારા સ્વામી પણ સ્વેસ્થ થઈ ગયા; એમણે જોડા ઉતારી દીધા ને કુલ મુકી દીધાં, કારણ કે લાભકારી પોશાકે મહાપુરૂષ પાસે જલુ શોભે નહિ. પછી અમે ઉતાવળે ઉતાવળે એમની તરફ ગયાં, અને કંઈક દૂરથી માથું નમાવી પૂજ્યભાવે, પણ શાન્તિથી, અમૂલ્ય સ્તનની પેઠે એમને નિહાળવા લાગ્યાં. પછી અમે જરા વધારે નજીક ગયાં, અને માયા, મદ, મોહ આદિથી વિરંકત, શુંભધ્યાનમાં સંલગ્ન અને શરીર તરફ પણ અનાસક્ત એવી એ ધર્મમૂર્તિના ચરણમાં અમે અમારી કરાંજલિ અર્પણ કરી. ક્ષણભર અમે પણ એમની આગળ, અભ્યગ્ર મનવાળા થઈ, શાન્તચિત્તે ધ્યાન ધરીને બેઠાં અને પછી જ્યારે પોતાના ધ્યાનમાંથી સુક્ત થઈ, એમણે પ્રશાન્તદિગ્દિએ અમારી તરફ જોયું. ત્યારે અમે ઉભા થઈ વિનયભાવે એમને ત્રણ વાર વંદન કર્યું.

૧૩૧૫-૧૩૧૭. આ પ્રમાણે વંદન અને નમન કરીને તપોશુભનો ઉત્કર્ષ ઇચ્છીને એમના શરીર અને જીવનચાત્રના કુશળ પ્રશ્નો પૂછ્યા.

૧૩૧૮. એના જવાબમાં તેમણે આશીર્વાદ આપીને કહ્યું કે ‘ત્યાં જવાથી જગતનાં ઘડાં દુઃખોનો અંત થાય છે અને અતુલ તથા અક્ષય સુખ પમાય છે એકે જે નિર્વીણ સ્થાન તે તમને પ્રાપ્ત થાઓ.’

૧૩૧૯-૧૩૨૦. તેમનો એ આશીર્વાદ અમે અતિ નમ્ર અને શ્રદ્ધાળુ હાવે મસ્તકે ચંદાળ્યો અને પછી જરા અને મૃત્યુની પેલી પાર લઈ જનાર કલ્યાણકારક ધર્મનો ઉપદેશ આપવાની પ્રાર્થના કરી.

૧૩૨૧. એના ઉત્તરમાં તેમણે જીવ-આત્માનાં બંધન અને મોક્ષ વિષે શાસ્ત્રમાં જણાવ્યા પ્રમાણે ધીરેધીરે સરળતાપૂર્વક આ રીતે ઉપદેશ આપ્યો:

૧૩૨૨-૧૩૨૬. ‘જગતમાં રહેલા પદાર્થોનાં સ્વરૂપને જાણવાનાં ચાર સાધન છે: ૧ પ્રત્યક્ષ, ૨ અનુમાન, ૩ ઉપમાન, અને ૪ આગમ. આપણી ઇદ્રિયોથી જે વસ્તુ જોઈ-જાણી શકાય, તે પ્રત્યક્ષ ગણાય. જે વસ્તુના કોઈએકે શુભધર્મને જોઈ-જાણી તેના વિશેષ સ્વરૂપનો નિર્ણય કરવો, તે અનુમાન કહેવાય. પ્રત્યક્ષ અગર પરોક્ષ વસ્તુ સાથે કોઈ બીજી વસ્તુને સરખાવવો તેનું નામ ઉપમાન હોય છે; અને કોઈ શાસ્ત્ર અગર શિક્ષક પાસેથી જે વસ્તુનું જ્ઞાન મેળવવું તે આગમ કહેવાય છે. આ ચાર રીતે બંધ અને મોક્ષનું પણ જ્ઞાન મેળવી શકાય છે.

૧૩૨૭-૧૩૩૪. ‘હવે આત્મા તે શું છે તે વિચારીએ: આત્મા રૂપ, શબ્દ, ગંધ, રસ અને સ્પર્શ એ ઇદ્રિયગોચર શુદ્ધોથી સંઘા સર્વદા સુક્ત છે, એ ઇદ્રિયથી પણ

અગોચર છે. એ અનાદિ અને અનંત છે. જ્યાં સુધી એ શરીરના બંધનથી બંધાયો છે ત્યાં સુધી એ સુખદુઃખ અનુભવે છે, અને ત્યારે (અનુભવે એટલે) - ઇન્દ્રિયોવટે નહિ, પણ પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ વડે - વિવિધ પ્રકારની સમ્મતિ, ઇચ્છા, વિચારો આદિ દર્શાવવા માટે દેહનાં જે હલનચલન થાય છે તેનાં વડે - પ્રમાણભૂત થાય છે. વિચાર, અકુંકાર, જ્ઞાન, સ્મરણ, બુદ્ધિ આદિ સ્વરૂપે એ પ્રકટ થાય છે. સંસારનાં સ્વભાવ નિયમ પ્રમાણે (પૂર્વ જન્મનાં પુણ્યનાં કે પાપનાં ફળરૂપે) કર્મ લોગવતો આત્મા હંધ કે શોકનો, સુખ કે દુઃખનો, શાન્તિ કે અશાન્તિનો, આનંદ કે ઉદ્દેગનો, લય કે ધૈર્યનો અનુભવ કરતો પરિભ્રમણ કર્યા કરે છે.

૧૩૩૫-૧૩૩૬. “આત્મા પોતે કરેલાં સારાં નરસાં કર્મોવટે સંસાર વધારે છે. અને તે ત્રણ રીતે: મનથી, વાચાથી ને કર્મથી. મૂઠ લવન (મોઢે કરીને સંસારમાં) સિમ્ત થઈ જતાં કર્મનાં બંધનમાં પડે છે; પણ મોહથી મુક્ત થઈને સંસારમાં વસે છે તો તે પોતે કર્મથી અસિમ્ત રહે છે; એ જ તીર્થકરોએ (આપણા ધર્મના સંસ્થાપકોએ) એ જ પ્રકારનો દુઃકામાં (આત્માના) બંધ અને મોક્ષ સંબંધે ઉપદેશ આપ્યો છે. એક બાલુથી આત્મા (અમુક કર્મથી) મુક્ત થાય છે, અને બીજી બાલુથી (અમુક કર્મથી) એ બંધાય છે; એ રીતે સંસારમવાહતા યત્રમાં લમરડાની ચેઢે એ ક્યો કરે છે. સારાં કર્મો એ બંધાય તો (ફળ પાકીને) દેવયોનિમાં અવતરે છે; મધ્યમ કર્મથી માનવયોનિમાં અવતરે છે, મોહમય કર્મથી પશુયોનિમાં પુનર્જન્મ પામે છે; ને બીલકુત્ર ખરાબ કર્મથી નરકમાં પડે છે.

૧૩૪૦-૧૩૪૩. “રાગ અને દ્વેષને જે દબાવી દેતો નથી, તે કર્મના બંધનમાં પડે છે. વળી (પાંચ મહાપાપ, જેવાં કે) પ્રાણાતિપાત, અસત્ય, અદત્તાદાન, મૈથુન અને પરિગ્રહ; તેમજ ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ; (તથા વિવિધ પ્રકારની બીજી નિર્બંજતા) ભય, તરંગ, કુટિલતા, અપ્રામાણિકતા આદિ; આ બધા દુર્ગુણો ત્યારે અજ્ઞાન સાથે લેગા થાય છે, ત્યારે કર્મના બંધનનું મૂળ દૃઢ બને છે; એમ સારરૂપે તિર્થકરોએ કહ્યું છે.

૧૩૪૪-૧૩૪૬. “તેલ ચોળેલા માયા ઉપર જેમ ધૂળ ચોંટી જાય છે, તેમ રાગ અને દ્વેષના વિચારોએ ખરડાએલા આત્માને કર્મ ચોંટી જાય છે, અને તેના પ્રભાવથી આત્મા પૃથ્વી, પાણી; અગ્નિ, પવન, અને વનસ્પતિ જેવી અતિ સૂક્ષ્મ જીવયોનિઓમાં વારંવાર જન્મમરણ કરતો પરિભ્રમણ કર્યો કરે છે.

૧૩૪૭-૧૩૪૮. “સાધારણ રીતે વર્ણવીએ તો (આત્માને બંધનમાં રાખનારાં) કર્મ આ આઠ પ્રકારનાં છે:

- | | |
|----------------|-----------|
| ૧. જ્ઞાનાવરણીય | ૫. આયુ: |
| ૨. દર્શનાવરણીય | ૬. નામ |
| ૩. વેદનીય | ૭. ગોત્ર |
| ૪. મોહનીય | ૮. અન્તરય |

૧૩૪૯-૧૩૫૨. “અને જેમ જુદા જુદા જાણનાં બીજાં પૃથ્વીમાં વેરવાથી પોતપોતાની જાત પ્રમાણે જુદાં જુદાં ફળપ્રલ આપે છે, તેમજ વિવિધ પ્રકારનાં કર્મો

પોતપોતાની વિવિધતા પ્રમાણે શુભ અશુભ-સારાં નરેસાં ફળ આપે છે. કર્મકૃત ફળોદયનું સ્વરૂપ દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ, લાવ અને લવને આશ્રયે જાણી શકાય છે. દ્રવ્ય એટલે કે (આ વિષયમાં) આત્મા, નક્કી થયેલે ક્ષેત્રે એટલે કે ત્રણ લોકમાં (સ્વર્ગમાં, મર્ત્યમાં અને પાતાળમાં અથવા નરકમાં), કાળમાં એટલે કે ફળને અનુસરી જન્મજન્માન્તરના ફેરામાં ભટકે છે, જેથી એક સ્થિતિ ફરીને બીજી થાય છે અને પૂર્વતાં કર્મને લેધને નવાં નવાં જીવન ધારણ કરે છે.

૧૩૫૩-૧૩૫૬. “ (આત્માના સામયિક શરીરને ધારણ કરતી) સ્થિતિ ઉપર શરીર આધાર રાખે છે, શરીર ઉપર માનસિક કર્મનો આધાર છે, માનસિક કર્મ ઉપર અંતઃકરણનો આધાર છે, અંતઃકરણ ઉપર તદ્વૃપતાનો (લાવ અને વસ્તુની એક રૂપતાનો) આધાર છે, તદ્વૃપતા ઉપર પરિણામનો આધાર છે અને પરિણામ ઉપર આત્માને લાગતાં બાહ્ય અને આભ્યંતરિક દુઃખોનો આધાર છે. આ દુઃખો ટાળવાને માટે માણસ આનંદ કરવા જાય છે ને ત્યાં બહુ પાપ આચરે છે; આ પાપને લીધે (કારણકે એનું પ્રાયશ્ચિત્ત કરવાને માટે બીજા દેહ ધરવાજ જોઈએ) જન્મમરણના ફેરા કર્યા જ કરવાની ઘટમાળને ચાકે બંધાય છે. આમ માણસને પોતાનાં કર્મને અનુસરીને ચોળ્યા પ્રમાણે ગમે તો નરકમાં, ગમે તો પશુચોળિમાં, ગમે તો માનવજાતિમાં કે ગમે તો સ્વર્ગમાં ભ્રમણ જ પડે.

૧૩૫૭-૧૩૬૧. “ (ઉપર બતાવેલી ચોળિઓમાંથી ત્રીજીમાં એટલે માનવજાતિમાં અવતરે તો) માણસને (ઉઠાહરણ તરીકે) તેના કર્મને અનુસરીને પુનર્જન્મમાં અંશજ, સિદ્ધ, અંત્યજ, પારધિ, શક (સિધિયન), યવન (સેનેટિક અને ગ્રીક), બર્બર (વનવાસી) આદિને ત્યાં અવતાર આવે. માનવજાતિમાં જન્મ આવત પણ તેને પોતાનાં (પૂર્વ)કર્મને અનુસરી અનંત સુખદુઃખ લોગવવાં પડે; શરીર અને બુદ્ધિના વિકાસને અનુસરી માણસ ચાકર ચઈ દુઃખ લોગવે કે ધણી ચઈ સુખ લોગવે, સંજોગ પામે કે વિજોગ સહ, કુલીનને ઘેર કે કુલંહીનને ઘેર અવતરે, જીવનને જીવનવિલાસમાં આગળ કે પાછળ પગલાં ભરે; લાભ પામે કે હાનિ સહ; સૌ કરતાં પણ વધારે તો એ ધ્યાન રાખવાનું છે કે આત્મા મનુષ્યના જ (સ્વર્ગના બીજા કોઈમાંથી નહિ) અવતારમાંથી સર્વ દુઃખનો અંત આણનાર મોક્ષને પામી શકે.

૧૩૬૨-૧૩૭૧. “ (હવે આ સોદાસ સંજોગે) સંસારમાંનો અજ્ઞાન ઝંખરાંએ પુર ગયેલો જે માર્ગ તે તીર્થંકરેએ સમ્યગ્ જ્ઞાને તથા શુદ્ધ જીવને ફરીને ઠેક મોક્ષ સુ ચોક્ષો કર્યો છે. પૂર્વકાળથી પોતાને વળગી આવેલાં કર્મને (જીવના જન્મજન્માન્તાં માર્ગમાં એના ઉપર લાગેલા કર્મસંસ્કારને) આત્મસંયમ વડે જે દબાવે છે અને (ગએલાં અથવા વધતાં જતાં) બાકીનાં કર્મને સંયમ વડે નષ્ટ કરે છે. એ ત્યારે (માદેહમાંથી મરીને) પોતાનાં સર્વ કર્મનો દૂય કરે છે ત્યારે તે કર્મમુક્ત થાય છે. પરમપવિત્ર અને છે. નિષેષમાત્રમાં એ ઉંચામાં ઉંચું સ્થાન પ્રાપ્ત કરે છે, અને

જન્મવાના દુઃખથી અને ચિંતાથી મુક્ત થઈને, અવિચળ પવિત્રતા ભોગવે છે. વિવિધ ચોનિમાં અવતાર આપનાર કર્મથી મુક્ત થતાં આત્મા પવિત્ર બનીને ઉપાધિના પંજ-માંથી છુટી પોતાની મેળે જ ઉઠે ચઢે છે. સર્વોત્તમ દેવોના (પ્રદેશોના) ઉપર એ પવિત્ર પ્રદેશ આવેલો છે, તે પ્રભાતના જેવો પ્રકાશે છે અને સોના તથા શંખ જેવો સ્વચ્છ છે. ત્રિલોકને શિખરભાગે એ અવસ્થિત છે અને રત્નનિર્મિત છત્રના જેવો આકાર ધારણ કરે છે. એને કોઈ સિદ્ધશ્રેય, કોઈ પરમપદ, કોઈ અનુત્તરસ્થાન અને કોઈ પ્રહલોક કહે છે. અખિલ જગતને શિરોભાગે આવેલા એ સ્થાનની ઉપરે સર્વ કર્મથી વિમુક્ત થયેલા સિદ્ધાત્માઓનો શાસ્ત્રત વાસ હોય છે. એ સિદ્ધાત્માઓ સર્વ કર્મથી મુક્ત હોય છે, રાગદ્વેષના સંસ્કારોથી અલિપ્ત હોય છે. પાપ અને પુણ્યની પેલે પાર ગયેલા હોય છે. સુખદુઃખના વિકારોથી અસંપૃષ્ટ હોય છે. અનંતજ્ઞાન અને શક્તિથી પરિપૂર્ણ હોય છે. એ સિદ્ધાત્માઓ ફરી વાર ક્યારે પણ પુનર્જન્મને પ્રાપ્ત થતા નથી. એક આત્મજ્યોતિમાં અનંત આત્મજ્યોતિઓ સંમિલિત થાય તોપણ તેમના સ્વરૂપ-વસ્થાનમાં કોઈ પણ પ્રકારનો સંકેત કે વિસ્તાર થતો નથી.”

૧૩૭૨-૧૩૭૪. (સાધ્વી તરંગવતી એ શેઠાણી આગળ બોલે છે:) સાધુના આ ઉપદેશથી હું તો એક પ્રકારના આનંદમાં ડુબી ગઈ, ને હાથ કપાળે લગાડીને બોલી: ‘અમે આ ઉપદેશને કારણે આપનાં અત્યંત ઋણી છીએ.’ મારા પ્રિયે તો એમને અચળ શ્રદ્ધાથી નમસ્કાર કરી કહ્યું: ‘આપ જગતના બંધનથી મુક્ત થઈ ગયા છો, ધન્ય છે આપને. જો આપને શ્રી સાંભરતું હોય તો આપ એ સાધના શી રીતે સાધી શક્યા છો, તે પણ મને કહો. મારી ઉત્કંઠને માટે, હે મહાત્મા, મને ક્ષમા આપશો.’

૧૩૭૫. તીર્થકરોના ધર્મમાં પારંગત થયેલા એ સાધુએ પોતાના જીવનની કથા આનંદમય શાન્તિએ ખીટી અને શાન્ત વાણી વડે આ પ્રમાણે કહી:

૧૩૭૬-૧૩૮૪. “ભેંસ, સાપ, ચિત્તા અને જંગલી હાથીઓ જ્યાં વસે છે એવા ભયંકર વનપ્રદેશમાં આવેલા ચંપાપ્રાન્તની ધારે પારધિઓ રહેતા હતા, તેઓ વનમાં સંહાર કર્યો કરતા; તેમનું સંસ્થાન ચમરાજના ગુપ્તવાસ સ્વરૂપ હતું. તેમની ભોળનવંતી કન્યાઓ રાતા રંગનાં વસ્ત્ર પહેરતી અને વળી એમની નારીઓ જીવાન હાથીઓના હાંતવડે હંથિયાર બનાવવાનું કામ કરતી. હું પણ પાછલા જીવમાં ત્યાં પારધિ હતો. અને હાથીઓનો શિકાર કરતો. વનમાં જીવન ગાળતો. ને માંસ ખાતો; મારા સફળ બાણવેધનાં લોક વળાણ કરતા અને તેથી મને ‘સિદ્ધબાણ’ કહેતા. મારા પિતા પણ પારધિ હતા; એ પોતાની નેમ કઢી ચુકતા નહિ; પોતાના ધંધામાં કુશળ હોવાથી એમને લોક ‘બ્યાધરાજ’ કહેતા. મારી માતા મારા પિતાની માનીતી હતી ને તે પોતે પણ એક પારધિની પુત્રી હતી. વનનું ભયંકર અને અભિમાનભર્યું સૌન્દર્ય તેનું પોતાનું જ હતું, એથી લોક એને ‘વનમુદરી’ કહેતા.

૧૩૮૫-૧૩૮૭. “જીવાનીમાં એકવાર મેં મારું તીર એક હાથી ઉપર તાક્યું,

ત્યારે મારા પિતાએ મને શીખામણ આપી: ‘આપણા કુળમાં જે આચાર પળાય છે તે તું સાંભળ, પ્રભુ ઉત્પન્ન કરી શકે એવો હોય ને ટોળાનો નાયક હોય એવા સભ્ય હાથીને તારે મારવો નહિ: વળી પોતાનાં બચ્ચાંનું રક્ષણ કરવાને સ્નેહવશ યથાને પારધિનો ભય કર્યા વિના બચ્ચાની સાથે ચાલે છે એવી જે હાથણી તેને પણ બચાવવી. તેમજ હાથીનું જે બચ્ચું હજી ધાવતું હોય તેને પણ મારવું નહિ, કારણ કે નાનાને મોટું થવા દેવું જોઈએ. વળી કોઈ નર તથા માદા સ્નેહવશ યથાને દેવજોગે આગળથી જ સંલોગ કરતાં દેખાય, તો તારે જો બેને વિષુદ્ધ નહિ પાડવાં, કારણકે તેમના સ્નેહસંલોગથી બચ્ચાં થાય છે. આવો આપણો કુળનો આચાર છે તે તારે પાળવો જોઈએ. જે એ આચાર જોળંગે છે તે અને તેનાં કુટુંબીઓ નાશ પામે છે. (હાથીનાં) બચ્ચાંને મારવાં નહિ અને તેના વંશને બચાવવો જોઈએ. આ શીખી લે અને (પછીથી) તારા પુત્રોને પણ શીખવજે.’ આ લાવનાએ જ હું મારો ધંધો ચલાવતો હતો. અને ગાદા જંગલમાં રસ્તો કાપતો અને ગેંડા તથા જંગલી બળદો તથા જંગલી લેસો તથા હરણો તથા હાથીઓ તથા સુવરોની પાછળ પડતો.

૧૩૯૪-૧૪૦૦. “સરખા ઘરની એક જુવાન ને સુંદર કન્યા સાથે મને મારા માળાએ પરણાવ્યો. એ મને સ્નેહાનંદ આપતી. એ રંગે શ્યામળી હતી, એનાં સ્તન કામોદીપક હતાં, નિતાબ લારે હતા અને ચંદ્રમાના હાસ્યથી પ્રકાશ પામતું હોય એવું એનું મુખ હતું. એની આંખો રાતા કમળ જેવી હતી અને જુવાનીના ભરથી એનું કલેવર ખીલી ઉઠેલું હતું. દુકામાં, એની વિશુદ્ધ સુંદરતાને લીધે અને એના સ્નેહને બળે-મારી જુવાનીમાં એ મારા મહાભાગ્ય રૂપ બની રહી હતી. વનનું આર્ધમનગમતું સ્તન જેની પાસે હોય તે શિકારના આવા બળનાથી સંતોષ પામ્યા વગર કેમ રહે! મારી પારધણના મોહમર્યા આલિંગનમાંથી છુટી સવારમાં ઉઠતો અને પછી મહિરા અને રતિહીઝના ઉપલોચથી જે કંઈ થાક ચઢ્યો હોય તેને દૂર કરી અમારા પારધિ-લોકની દેવીની પ્રાથના કરતા જતો. પછી ખાનપાન કરી તાલે યથા પાછો મારા લોહીથી ખરડાએલે ધંધે લાગી જતો.

૧૪૦૧-૧૪૧૪. “એક દિવસ ઉનાળામાં મેં ધનુષબાણ લીધાં, લાથું લટકાવ્યું ને રસ્તે પડ્યો. કાન પાછળ વનકુંડાઓમાં હતાં ને પગમાં પાવડીઓ પહેરી હતી. એવી રીતે હું વનહાથીની શોધમાં નિકળ્યો, અને આખરે (આધાપીધા વગર ને કંઈ શિકાર મેળવ્યા વિના) તાપે ને હું:જે નળજો પડી જઈ આખા વનમાં રખડતો રખડતો ગંગાનદી સુધી જઈ પહોંચ્યો. ત્યાં સ્નાન કરીને તરતનો જ નિકળેલો પર્વત જેવો ઉંચો માત્ર એક જ હાથી મેં જોયો. હું બાણી ગયો કે એ મહાજીવ ગંગાની ઝાડીમાંનો ના હોય, કારણ કે ઝાડોથી ગાદી ધરેલો, આ ઝાડીમાં એને હંતા એવા સુંદર વાળ (વાળા હાથી) મળી શકે એમ નહોતા. તેથી એ હાથી બીજા કોઈ વનમાંથી આવેલો હોવો જોઈએ; એને ઘાંત તો હતા નહિ, તેણે એ સર્વોત્તમ શિકાર હોવાને માટે એને મારવો

જેઇએ. તેથી પારધિના નિયમ પ્રમાણે બરાબર એકાગ્ર થઇને એ હાથી ઉપર જીવનસંહારક બાણ છોડયું. પણ તે બાણ કંઈક ઉચું નિકળી ગયું ને હવામાં ઉડયું; એ બાણથી એ હાથી ન વિધાતાં એક ચક્રવાક વિંધાઈ પડ્યો. દુઃખથી પોડાતા એ ચક્રવાકની એક પાંખ તુટી પડી અને પળતારમાં એ જળપટ ઉપર આવી પડ્યો. પાણી બધું રક્તસાગરમાંનું હોય એમ રાતું થઈ ગયું. એની નારી, રૂદન કરતી એના કલેવર ઉપર આમ તેમ ઉડવા લાગી. એથી મને પણ રડવું આવ્યું ને હું બોલ્યો: ‘અરેરે, સ્નેહી ભેડા ઉપર મેં આ શું દુઃખ આપ્યું!’ પતિ હજી જીવતો છે એ જ્વરમાં એણે માત્ર બાણ ધામાંથી ખેંચ્યું. એટલામાં તો હાથી અદૃશ્ય થઈ ગયો. મેં એ પંખીને ત્યાંથી ઉપાડી રેતીને કિનારે મુક્યો અને પછી થોડી વારે સહાનુભૂતિ સાથે એનો અગ્નિસંસ્કાર કર્યો. પણ એટલામાં તો મેં જે અગ્નિ સળગાવ્યો હતો તેમાં એની ચક્રવાકી પોતાના સાથીના સ્નેહબંધનથી તણાઈને પડી, અને એની સાથે બળી મુઝ.

૧૪૧૫-૧૪૨૨. ‘એ ભેઇને મને બચકર પરિતાપ થયો (ને વિચાર આવ્યો): ‘આવા મુખી ભેડાનો મેં શા માટે નાશ કર્યો!’ હું વિલાપ કરવા લાગ્યો: ‘અમારા કુળધર્મના નિયમો મેં પાળ્યા છે અને છતાં યે, અરેરે, આજે આ ખીજનો (જેમાંથી રૂળ પેદા થઈ શકે તેનો) નાશ કર્યો. આવા નિહારથી અને આવા કુળધર્મથી મને તો તિરસ્કાર છુટે છે. મારાથી આવું જીવન જીવાય શી રીતે? આ જીવન કરતાં તો મરણું મહું!’ આમ આપઘાત કરવાની મને પ્રબળ ઈચ્છા થઈ આવી અને તેના આવેશમાં મેં પણ ચક્રવાકીની પાછળ અગ્નિમાં પડતું મેર્યું ને મારા પાપી-શરીરને બાળીને ભસ્મ કર્યું. હું મારા કુળધર્મને સખ્ત રીતે વળગી રહ્યો હતો, અને વળી મને મારા કંમને પરતાવો થયો હતો, તેમજ મારા એ જન્મની અપૂર્ણતાથી ખેદ થયો હતો. આ કારણથી, પચાત્તાપને લીધે પ્રાપ્ત થએલા શુભકર્મના ફળથી-એ શરીરનો નાશ થતાંની સાથે જ નરકમાં પડવાને બદલે, ગંગા નદીને ઉત્તર કિનારે એક ધનવાન વ્યાપારીને ત્યાં મારો જન્મ થયો.

૧૪૨૩-૧૪૨૭. “અનેક ખેડુતોની વસ્તીવાળો, ફળદ્રુપતાએ વખણાયેલો અને ઉત્સવોથી ભરપૂર એવો બહુ વિશાળ કાર્દી નામે દેશ છે. કમળસરોવર ઉપર અને બાગમાં આનંદ કરવાને અનેક પ્રવાસીઓ અહીં આવે છે. સાગરરાણી ગંગાનદી કાંઠે દ્વારવતી સમાન વારાણસી નગરી એ દેશમાં મુખ્ય નગરી છે, ગંગા નદીના મોળ એ નગરીને કિલ્લા સમાન છે. એમાં અનેક મોટા વ્યાપારીઓ વસે છે. તેમની સ્ત્રીઓ અમૂલ્ય આભૂષણોથી કલ્પવૃક્ષ જેવી શણગારાયેલી રહે છે. અંકેકો વ્યાપારી લાખોને હિસાબે માલ વેચે છે ને ખરીદે છે. એમની હવેલીઓ અલગ અલગ છે, તેથી તેમનાં આંગણમાં જ નહિ પણ (હવેલીઓની) વચ્ચે લાંબા રાજમાર્ગે પણ વાતાવરણમાં થઈને ઠંઠ જમીન સુધી સૂરજ પોતાનાં કિરણ ફેંકી શકે છે.

૧૪૨૮-૧૪૪૦. “અહીં (એક વ્યાપારીની આવી હવેલીમાં) મારો

જન્મ થયો અને માફ તામ રૂપયથસ્ પડ્યું. રિવાજ પ્રમાણે લેખન આદિ વિવિધ કળાઓ શીખ્યો. પણ થોડા જ સમયમાં હિઠાઉ ણનાવનાર, કલંક લાવનાર, દુકામાં બધા દુર્ગુણ વસાવનાર જુગારની રમત તરફ માફ વલણ થયું. એ રમતે કરીને (બ્યાપારી વર્ગના) હલકા લોકો અનેક રીતે નાટ્યાટ થઈ બાક છે અને છળકપટમાં નિહાય અને જિતવાને માટે ગાંડા ણની બંધને બધા સફળોને વિસારી મુકે છે. આ જુગારના મોહમાં હું પડ્યો અને અંતે ચોરી કરવા લાગ્યો અને એથી મારો મુળ-પર્વત દાવાનળની પેઠે બળત્રા લાગ્યો. ઘર ફાડવાં ને બાંધણીઓને લૂટવા એ મારો ધંધો થઈ પડ્યો ને મારાં આવાં કર્મને લીધે મારાં(કુટુંબીઓ)ને નીચું જોવાનો પ્રસંગ આવ્યો. એવી રીતે (એકવાર) બીજાઓનું ધન લૂટવાને ઈરાદે રાતે હાથમાં તલવાર લેઈને રાજમાર્ગે નિકળી પડ્યો, પણ નગરમાં આ વાતની જાણ થઈ ગઈ અને હરોમ જોરનો જીવ હવે સલામત નહોતો એમ જોઈને હું ખારીકવનમાં નાશી ગયો. વિંધ્યાચળની વિભૂતિ સમાન એ વનમાં અનેક જાતનો શિકાર મળી શકે એમ હતો, પંખીઓનાં પુષ્કળ માળા હતા તથા લૂટારાની પુષ્કળ ગુફાઓ હતી. વિવિધ પ્રકારનાં આડોની ઘટાં સાંને અંધારામાં ઢાંકી દેતી. વિંધ્યાચળની અંદરની ગાંજીએ આવેલી આવી એક ગુફામાં હું આવી પહોંચ્યો. એને એક જ ખારણ હતું અને એ ગુફાનું

નાખતો, મિત્રોને જાણીસો આપતો અને જુગાર રમતી વખતે સરતમાં મારી જાતને પણ સુકતો, એવી રીતે જહું કાળ સુધી મેં એ લૂટારાઓની સુકામાં મારા સાથીઓ સાથે યમદેવના ખલા હતાવ્યા.

૧૪૫૧-૧૪૫૫. “એકવાર અમારી એક ટોળી અમારા એ નિત્યકર્તવ્ય ઉપર ગઈ હતી ને ત્યાંથી લૂટમાં એક જુવાન જોડાને ઘેર લેઈ આવી. એ વાતની ખબર થતાં, એમને જોયા પહેલાં જ કાળીની સ્તુતિ થવા લાગી ને એમને (અમારા) સરદાર પાસે આપ્યાં. એ સ્ત્રીપુરૂષને ત્યારે એણે જોયાં, ત્યારે તે સ્ત્રીએ પોતાની સુંદરતાને લીધે. એનું હૈયું હરી લીધું. એણે નિશ્ચય કર્યો કે આ અપસરાશી સુંદરીનો કાળીને લોગ આપવો. કાળીની બીકથી એને પોતાની સ્ત્રી બનાવવાની એની હિંમત આલી નહિ, પણ મનમાની રીતે લૂટારાઓને કાળીના તો લેઈ લેવા દીધા અને એ જોડા પાસે જે કંઈ કીંમતી ચીજ હતી તે સૌ એણે એમને સોંપી દીધી.

૧૪૫૬-૧૪૬૧. “સરદારે મને કહ્યું: ‘આ મહિનાની નવમીએ એ બેને કાળીને લોગ આપવાનો છે.’ પછી મને એમના ઉપર ચોક્કી કરવાં રાખ્યો, અને મરણચિંતાને લીધે એ બે જણ આંસુભરી આંખોએ ખાવરાં જેવાં થઈ ગયાં, ત્યારે હું એમને મારા ઘરમાં લેઈ ગયો. એ પુરૂષને મેં તાણી જાંધ્યો તેથી તે સ્ત્રી પોતાના સ્વામી ઉપરના રનેહને લીધે ભયંકર વિલાપ કરવા લાગી ને છાતીફાટ ચીસો પાડવા લાગી: ‘એથી બીજી કેદ પકડાએલી ને જીવનથી નિરાશ થઈ ગયેલી સ્ત્રીઓ ત્યાં ટોળે મળી ગઈ ને દયાભાવે ને આકાંક્ષાએ એમને પુછવા લાગી: ‘ક્યાંથી આવો છો ને ક્યાં જતાં હતાં ? લૂટારાના હાથમાં કેવી રીતે પકડ્યાં ?’

૧૪૬૨-૧૪૭૧. “આંસુભરી આંખે ડુસકાં ખાતાં એણે ઉત્તર આપ્યો: ‘અમે અહીં શી રીતે આવ્યાં એનું દુઃખભર્યું વર્ણન પહેલેથી સાંભળ્યો. સુંદર અપાનગરવાળા વનમાં ગંગાને કાંઠે અમે ગેરૂઆ રંગનાં ચક્રવાક પંખી હતાં. આ મારા સ્વામી તેવારે મારા ચક્રવાક હતા અને હું એમની પ્રિય નારી હતી. અમે ગંગા ઉપર કુશળતાએ તરતાં અને મોર્નના રેતીકિનારા પેઠે ચણગારૂપ હતાં. એકવાર એક પારધિ ધનુષખાણ લેઈને આવ્યો અને એણે એ જંગલી હાથીને મારવા જતાં એમને મારી નાખ્યા. આ અપ-કૃત્યને કારણે) એક કરતાં કરતાં એણે એમના મૃતદેહને અગ્નિદાહ દેવા માટે કિનારા ઉપર અગ્નિ સળગાવ્યો. સ્વામીની પાછળ જવાને માટે મેં પોતે પણ એ અગ્નિમાં પ્રવૃત્તિ કરી. એમ મરી ગયા પછી જમુનાને કિનારે આવેલા સુંદર કૌશાભી નગરમાં નગરશેઠને ઘેર હું તો કન્યારૂપે અવતરી, અને તે જ નગરમાં ત્રણ સસુદ્ર પાર અખ્યાત થયેલા શેઠને ઘેર આ મારા પ્રિય નવા અવતારમાં પુત્ર સ્વરૂપે અવતર્યો. (મોટાં થતાં) અમે ચિત્રવટ એક બીજાને બોળી કાઢ્યાં, એમણે માઈ માણ કરાવ્યું, પણ મારા પિતાએ એ માણ પાછું વાળ્યું. મેં એમની પાસે હતી મોકલી અને પછી એક વારના સ્નેહથી પ્રેરાઈને રાતને અંધારે હું પોતે પણ મારા પ્રિયની હવેલીએ ગઈ.

અમને અમારાં માળાપની બીક લાગી, તેથી મજવામાં બેસી નાશી. ચાલ્યાં ને પછી ગંગાને રેતીકિનારે લૂટારાને હાથે પકડાઈ ગયાં.”

૧૪૭૨-૧૪૭૮. “ એ રીતે એ બુવતીએ પોતે અનુભવેલી પોતાની સુખદુઃખ-ભરી સૌ કથાં રાઈરેઈને એ પકડાએથી સહભાગિનીઓને. કહી સંભળાવી. પણ મને એ વર્ણનથી મારાં પૂર્વજવની વાતો સાંભરી આવી ને તેથી હું બેસાન થઈ ગયો. જ્યારે મને પાછું લાન આપ્યું ત્યારે તે (લવના) મારા પિતા, મારી માતા તથા પત્ની અને તે વંશતનો મારો સૌ અતુલવ- તેમજ (તે કાળે હું પાળતો હતો તે) કુળધર્મ પણ મારા મન આગળ તરી આવ્યો. અને તે સ્ત્રીએ તેના (પોતાના સ્મૃતિ-) સ્વપ્નમાં જે ભેયું હતું તે હું સમજી ગયો, તેથી મારું હૈયું કયાથી અને ભલી લાગણીથી (એ ભેડા તરફ) નરમ બની ગયું. હું નાહી શક્યો કે જેતું મેં બગર વિચારે મોત નિપજાવ્યું તે ગંગાના શણગારરૂપ ચક્રાકનું ભેડું આ જ છે. હવે આ સંકટમાં આવી પડેલા સ્નેહભુગડને ફરી તો મોતના મોંમાં સુકી શકું નહિ. એકવાર કહેલી એ હિંસાનો ખલો મારા જીવનને ભેખે પણ આપવો ભેધએ. એ ખંતેને હું ઉગારી લેઈશ અને તે રીતે હું શાન્તિ પામીશ.

૧૪૭૬-૧૪૮૨. “ આવો ઠરાવ કરીને હું ઘરમાંથી નિકળ્યો અને તે પુરૂષના ખંધ લીલા કરી નાખ્યા. પછી મેં પોતે કેક બાંધી કટાર તથા તલવાર લીધી અને રાત્રે તે કેલીને અને તેની સીને લૂટારની ગૂંધમાંથી ખહાર કાઢ્યાં ને બચકર જંગલમાં થઈને એક ગામ સુધી સુકી આવ્યો. બુદ્ધા પડ્યા પછી સંસારથી વિરક્ત થઈને મેં હૈયામાં વિચાર્યું :

૧૪૮૩-૧૪૮૬. મેં “ લૂટારાઓનો અપરાધ કયો છે તેથી હું એમની પાસે તો પાછો જઈ શકું નહિ. એ જમહૂત સરદારની આંખ સામે હવે ફરી હું શી રીતે જઈ શકું ? વંણી મેં લોભે ને વિલાસવાસનાએ જે કર્યું છે એ સૌ મહાભયકર પાપ છે, માટે હવે તો એમાંથી મોક્ષ મેળવવાને માટે મારે પ્રાયશ્ચિત્ત કરવું ભેધએ. વિલાસની માયામાં પડીને જે બીજાની હિંસા કરે છે તે પોતાની સૂખતાએ કરીને (મનગમતું) વધારે દુઃખ માગી લે છે. જે મગતામાયામાંથી મુક્ત થઈ શકે છે, સ્ત્રીઓના પ્રયત્ન-જામાંથી સરકી શકે છે અને પ્રેમનાં ખંધનથી છુટો રહી શકે છે એ જ સુખી થઈ શકે છે અને સુખદુઃખમાં સમાન રહી શકે છે.”

૧૪૮૭-૧૫૦૦. “ આવો વિચાર કરીને હું ઉત્તર તરફ (અથવા પાછો પર્વત તરફ) ચાલ્યો, મેં સંન્યસ્ત લીધું ને (સાંસારિક) વાસનાઓનો ત્યાગ કર્યો. દેવનગરી અલકાપુરીનાં તાલવનોની યાદ આપતી ‘પૂર્વતાલ’ (નામની નગરી) જઈ પ્રહોવ્યો. નગરની દક્ષિણ બાજુએ કોઈપણ મહનવાટિકા કરતાં તપ્ત સુંકર, અને માત્ર સ્વર્ગના નંદનવનની જ સરખામણીમાં સુકી શકાય એવો એક પ્રાગ છે. એની લીલોતરી, કુલ અને ફળની શોભાએ કરીને હૃદયને આનંદ આપે છે. લમરાનાં ટોળાંએ અને થંખીઓના

ગાને કરીને પૃથ્વીના સૌ આગેનો જાણી અહીં સાર ખેંચાઈ આવ્યો હોય એવું લાગે છે. માત્ર ખામી એટલી જ છે કે પૃથ્વીના ગીતનો અને ભમરાના ઉડવાનો મધુર સુર (ત્યાં ભરાતાં) માણસોની વાતચિતના ગણગણાટમાં લાગી જાય છે. એ ઉદ્યાનમાં, ઘોળાં વાદળાં-માંથી નિકળતા સૂર્યના વિમાન જેવું ભવ્ય અને ચળકતું દેવમંદિર મારી દૃષ્ટિએ પડયું, તે લાકડાંના કોતરકાર વાળું અને સૌ થાંભલા ઉપર ઉભું કરેલું હતું. એનાં પ્રાંગણમાં શ્રદ્ધાળુ ભત્રાંજીઓ દ્વારા કુલ, કળ, પત્ર, માળા અને ચંદન વિગેરેથી પૂજાએલ અને વસ્ત્રખંડોથી વિભૂષિત થયેલ રમણીય ન્યગ્રોષ વૃક્ષ ચોલી રહ્યું હતું. પ્રથમ તો મેં એ દેવમંદિરની બહારથી પ્રવેશિલુ કરી અને પછી એ પવિત્ર વૃક્ષ નીચે જઈ ઉભો રહ્યો. એની નરમ પાંદડાંવાળી ડાળીઓ ચારે બાજુ પ્રસરી હતી અને ચીકી મધુર પત્રશોભા આપતી હતી. ત્યાં ઉભેલા એક જણને મેં પુછ્યું: 'આ બાગનું નામ શું? અને કયા દેવની અહીં સ્થાપના છે? મેં ઘણાં ઘણાં સ્થાનો અને સ્થળો જોયાં છે, પણ કયાંય કદી મેં આવે બાગ તો જોયો નથી.'

૧૫૦૧-૧૫૦૬. "હું કોઈ પરદેશી છું એવું એ તુરત કળી ગયો ને તેથી તેણે ઉત્તર આપ્યો: 'આ બાગનું નામ ચક્રતમુખ છે. પૂર્વે દિવાકુ કુળના ચક્રતમુખ સમાન ઋષભ નામે રાજા થઈ ગયા. તેઓ હિમાચળથી લઈ સાગર સુધી પ્રસરી રહેલી પૃથ્વીના સ્વામી હતા. જન્મભરણની જાળમાંથી છુટવા માટે જ્યારે તેઓ એ સર્વ ઋદ્ધિસમૃદ્ધિનો ત્યાગ કરી તપસ્યા તપતા હતા ત્યારે આ વૃક્ષ નીચે તેમને અનંત અને અક્ષય એવું કેવલ્ય જ્ઞાન પ્રાપ્ત થયું હતું. એટલા માટે આ પરમપવિત્ર સ્થાન મનાય છે અને એથી જ અદ્યાપિ લોકો એની પૂજા કરે છે. આ મંદિરમાં પણ એ જ ચુગાદિદેવ ઋષભતીર્થંકરની પ્રતિમા સ્થાપિત થયેલી છે.'

૧૫૦૭-૧૫૦૮. "આ સાંભળીને મેં પણ એ જાડની અને મૂર્તિની વંદના કરી. ત્યાર પછી આસન વાળીને ઉઠી શાન્તિમાં બેઠેલા એક સાધુને-મહાપુરુષને મેં ત્યાં જોયા. એમણે પાંચે ઈંદ્રિયોને ચોતાની અંદર વાળી દીધી હતી અને તેમના સર્વે વિચારો ધ્યાનમાં અને આત્મસંયમમાં વળી ગયા હતા. હું ત્યાં ગયો ને જેમના હૃદયમાંથી સૌ પાપવાસના ચાલી ગઈ છે એવા એ પુરુષને પગે લાગ્યો. પૂજ્યભાવે હાથ ભેડીને હું બોલ્યો:

૧૫૧૦-૧૫૧૧. "હે પરમપૂજ્ય, રાગ અને દ્રેષનો નાશ કરવા, ધનજનનો મોહ છોડવા અને પાપપ્રવૃત્તિઓમાંથી નિવૃત્ત થવા માટે હું આપનો શિષ્ય થવા ઇચ્છું છું. જન્મભરણનાં વમળાં ન્યાં ઘેરાય છે, મૃત્યુ બંધન ને વ્યાધિરૂપી સમુદ્ર રાક્ષસ ન્યાં પ્રવર્તે છે. એવા સંસારસાગરથી-તમારૂં શરણરૂપી શઠ લેઈને તરી જઈશ."

૧૫૧૨-૧૫૧૩. "કાનને ને હૃદયને મધુર લાગતે સુરે એ બોલ્યો: 'મરતા સુધી સાધુનો ધર્મ પાળવો ને ભાર વહેવો એ કંઈક કઠણ છે. ખસે દે માંધે જઈ વસ્તુનો ભાર વહેવો એ માણસ માટે બહુ સહેલું છે, પણ ધર્મનો ભાર વહન કરવો ઘણું કઠણ કામ મનાય છે.'

૧૫૧૪-૧૫૧૫. “મેં ઉત્તર આખ્યો: (જીવનના એક કે બીજા હેતુ માટે અર્થોત્) આનંદ, પવિત્રતા કે લાભની ઇચ્છા જેને હોય તે એ નિશ્ચય કરે તો એને કયું વસ્તુ નથી. ગૃહસ્થાશ્રમમાંથી નિકળી સાધુજીવન ગાળવાનો મેં નિશ્ચય કર્યો છે, કારણ કે એથી જ દુઃખ ટળશે.”

૧૫૧૬-૧૫૨૪. “પછી મને એ સાધુએ જીવને તારનાર અને જન્મમરણમાંથી મુક્તિ અપાવી મોક્ષ લેઈ જનાર વીતરાગ દીક્ષા આપી. આ સાધુધર્મ પંચમહાવ્રત સ્વરૂપ છે, તેથી તેનું રહસ્ય, અને વિનય, પ્રત્યાખ્યાન, પ્રતિક્રમણ, સમ્યગ્માયણ વિગેરે આચાર-વિચાર એમણે મને સમજાવ્યા. ત્યાર પછી ક્રમથી મને જૈન આગમોનો અભ્યાસ કરાવ્યો; એમાં સાચી પ્રથમ દુઃ ઉત્તરાધ્યયનરૂપે ગણાતાં ૩૬ અધ્યયનો શીખ્યા. એ અધ્યયનોમાં પ્રહયર્ય, શુષ્કિ, કર્મ વિગેરેનું સ્વરૂપ બતાવેલું છે. એના પછી આચારાંગસૂત્ર ભણ્યો, એમાં મુક્તિમાર્ગ બતાવનાર નવ અધ્યયનો આવેલાં છે. એના પછી સૂત્રકૃત, સ્થાન અને સમવાય નામનાં ચાસો ઉઠે ઉતરીને નિયમ પ્રમાણે શીખ્યા. તે પછી શેષ રહેલા ઇલિકસૂત્રો અને અંગપ્રવિષ્ઠ ગ્રંથો શીખ્યા બાદ પૂર્વગત ગ્રંથોનો પણ ખરાબર અભ્યાસ કર્યો, એણે કરીને જગતના લાનિક અને મૌલિક સ્વરૂપનું મને જ્ઞાન થયું. આવી રીતે બાર વર્ષ ભણવામાં ને સાથે સાથે સંસાર ઉપરનો મોહ છોડવામાં આદ્યાં ગયાં. આમ સમ્યગ્ જ્ઞાન અને આત્મસંયમ વડે દુઃખારા આત્મકલ્યાણને માર્ગે આગળ વધતો જાઉં છું અને લોકોને પણ એ અનુત્તર-સર્વશ્રેષ્ઠ ધર્મનો ઉપદેશ આપ્યા કરું છું.”

(૧૧. ત્યાગ અને સાધના.)

૧૫૨૫-૧૫૨૯. (સાધ્યી આગળ કયા કહે છે) જ્યારે અમે આ જોડજનક અનુભવ સાંભળ્યો, ત્યારે અમે અનુભવેલું દુઃખ નવેસરથી તાણું થયું. આંધુભરી આંખે અમે એકબીજા તરફ જોયું (અને અમને લાગ્યું): ‘આ પુરૂષ આપણને વિષ તેમજ અમૃત સમાન નિવડયા છે. (વળી અમે વિચાર્યું) જ્યારે એકવારના આ મહાપાપીએ પણ પોતાના ઉપર વિજ્ય મેળવ્યો છે, ત્યારે આપણે તો દુઃખનો નાશ કરવાને માટે, જરૂર જ તપસ્યા કરવી જોઈએ. વીતેલાં દુઃખનો વિચાર કરતાં અમને સ્નેહવિલાસ ઉપર ઉપરતિ થઈ અને અમે એ પવિત્ર પુરૂષને પગે પડ્યાં. પછી પાછાં અમે ઉભાં થયાં, મેં એ હાથ જોડી કપાળે ઝાડાડી અમારા એ જીવનતારકને અને પછીથી બની રહેલા અમારા સન્નિવરને કહ્યું:

૧૫૩૦-૧૫૩૩. ‘જે ચક્રવાકનું જોડું માનવદેહમાં તમારે હાથે લૂંટારાની ગૂંચામાંથી ઉગરી ગયું. તે અમે પોતે જ છીએ. તમે અમને જ્યારે જીવન આપ્યું ત્યારે તો હવે દુઃખમાંથી મોક્ષ પણ આપો. મરણ અને દુઃખ ભયાં રોજરોજ આવ્યા જ લાય છે એવા જીવનરૂપની સાંકળોવાળો અંચળ સંસાર અમને સંતાપે છે. અમને નિર્વાણની ઇચ્છા છે. તીર્થંકરોએ બતાવેલે પવિત્ર માર્ગે અમને, કૃપા કરીને દોરી જાઓ! સાધુ-જીવનનાં વિવિધ શાસનો અમારી જાતનાં લાગુ છે!’”

૧૫૩૪-૧૫૪૨. એ મહાસંયમી બોલ્યા: ‘ધર્મને જે આત્મિક બળ સંપાદી પાળે છે, તે જરૂર બધાં દુઃખમાંથી તરત મુક્તિ પામે છે. જો તમે પુનર્જન્મનાં વિવિધ પરિણામોનાં દુઃખ ટાળવા ઇચ્છતાં હો, તો સ્વાર્થવૃત્તિ છોડી દો ને હવે હમેશને માટે તપસ્યા કરો.’ માણસ એ તો જરૂર બાળે છે જ કે મરણ આવશે, પણ ક્યારે આવશે તે માત્ર બાળતો નથી; તેથી એ આવે તે પહેલાં તેણે ધર્મ પાળી એવો ભેદભેદ; ઠાખટી વગાડતું મોત આવે; ત્યાર પછી તો કંઈ તપસ્યા થઈ શકે નહિ. ત્યાં લગી ઈંદ્રિયો સાબુત હોય અને શરીર ચાલતું હોય ત્યાં સુધી માર્ગસૂચક મુક્તિની તૈયારી કરી શકે. જીવન અંતરગ છે અને અનેક વિદ્યોત્પત્તિ લઈને છે, માણસે એના ઉપર વિશ્વાસ ન રાખવો અને પારમાર્થિક કાર્ય કરવા માટે ક્ષણભરનો પણ વિલંબ ન કરવો. જે મરણ ને દુઃખ કંઈ હોય જ નહિ તો માણસ ધર્મ આચરે કે છોડે તે પાલવે; પણ જો મરણ આવવાનું જ છે તો કરેલી આગસ માથે પડશે. તેથી શરીર સાચું હોય ને શક્તિઓ સારી પેઠે હોય ત્યાં સુધી જ જીવન-સુધારણાનું કાર્ય મનુષ્ય સફળતાપૂર્વક કરી શકે છે.’

૧૫૪૩-૧૫૪૬. એ પવિત્ર પુરૂષના શબ્દો સાંભળીને સંસાર ઉપર અમને ક્ષોભ થયો અને પવિત્ર જીવન આરંભવાનો અમે નિશ્ચય કર્યો. તેથી અમે ત્યાં જ અમારો શબ્દગાર ઉતારી દીધો અને દાસીઓને સોંપી દેણ કહ્યું: ‘અમારાં માખાપને આ સોંપીએ અને કહેલે કે ‘એ બંને દુઃખથી અને જન્મમરણનાં પરંપરાથી કંટાળ્યાં છે. અને એટલા માટે એ દુઃખથી પાર કરનાર ધર્મમાર્ગે ચઢ્યાં છે. અવિચાર અને બેદરકારીને કારણે અમે જે સારાનરસા આચારથી તમને દેશન કર્યાં હોય એને માટે તમે અમને ક્ષમા આપજો.’”

૧૫૪૭-૧૫૪૮. આ સમાચાર દાસીઓમાં ફેલાતાં તે તથા નર્તકીઓ પણ દોડતી આવી. એ મારા પ્રિયને પગે પડ્યાં ને કાલાપાલા કરવા લાગ્યાં: ‘અમને અનાથ કરી મારી નાખો ના!’ કેટલીકે એમના પગને અડવા પુત્ર વેર્યાં, જે કુલ એમણે. બાણી એમને હાથમાંથી સેરવી દીધાં હતાં (અને તે બોલી):

૧૫૪૯-૧૫૫૨. ‘અમારા જીવનમાં વગર કંટાળ્યે અમારી (હુમ) કામના પ્રમાણે તમારા આલિંગનની આશામાં અમે અમારા જીવનને આનંદી માનતી આવી છીએ. હવે એ અમારી કામના તમારી પાસેથી જો પરિપૂર્ણ ન થાય તો ભલે જીવન તમને ભેઈને જ અમે સંતોષ ધરીશું. શ્વેત કમળ જેવા યંદ્રને માણસ જો અડકી શકે નહિ, તો યંદ્ર એના શુદ્ધ ગિંબને ભેઈકોને આનંદ ના થાય!’

૧૫૫૩-૧૫૫૬. એમ તે સ્ત્રીઓ અનેક રીતે રોવા લાગી અને મારા સ્વામીને પોતાના વિરક્તભાવમાંથી પાછા વાળવા કાલાપાલા કરવા લાગી. પણ આવાં પ્રલોભનોની પરવા કર્યો વિના અને પોતાને અડવા દીધા વિના મારા પ્રિય એ બધાંથી ફરી જઈને પેલા સત્પુરૂષ તરફ મોં કરીને ઉભા. સંસારથી વિરક્ત થઈને સાધુજીવનમાં પ્રવેશવા માટે એમણે જાતે જ એકેએકે બધા વાળ છુટી નાખ્યા. મેં પણ પોતે મારા બધા વાળ છુટી નાખ્યા ને મારા સ્વામી સાથે એ સાધુને પગે પડી, અમે પ્રાર્થના

કરી: 'અમને હુ:ખમાંથી મોક્ષ આપો.' તે ઉપરથી એમણે આગળ કહ્યા પ્રમાણે (સાધુસાધ્વીઓને માટે નક્કી થયેલું) સામાયિક મત અમારી પાસે લેવાયું. (તેમાં જોવી પ્રતિજ્ઞા લેવાની છે કે: 'હે પૂજ્યપુરુષ, હું સામાયિક મત પાળીશ, એટલે જ્યાં સુધીએ વ્રતમાં હોઈશ ત્યાં સુધી ધર્મથી મના કરેલાં બધાં અસત્કર્મોને ત્યાગ કરીશ, અને મનસા વાચ્યા કાયા, બનતા સુધી હું જાતે એવાં કર્મ નહિ કરું; ખીજા પાસે નહિ કરાવું, તેમ જો કોઈ કરે તો તેમાં સમ્મતિ પણ નહિ આપું; આવાં બધાં કર્મોથી, હે પૂજ્યપુરુષ, હું દૂર રહીશ.') આ વ્રત જો સરળતાથી સારી રીતે પળાય તો મોક્ષ પ્રમાય વળી આ વ્રતને કારણે જીવહિંસાથી, અસત્યથી, અરતેયથી, સ્ત્રીસંસર્ગથી અને પરિગ્રહથી તથા રાત્રિજોજનથી, અમારે દૂર રહેવાનું હતું. વળી જીવનના, મરણના અને રહેના સાંસ્વાથી ત્યાગ કરવા જણાવનારાં જે ઉપમતો તે પણ અતે અમે ગ્રહણ કર્યો.

૧૫૬૦-૧૫૬૬. ચાકરોએ ખબર પહોંચાડ્યાથી અમારાં માળખ ત્યાં આવી પહોંચ્યાં અને અમારી દીક્ષાની વાત સાંભળીને નગરમાંથી બાળકા વૃદ્ધો ને સ્ત્રીઓ પણ ઉત્ક્રાંત થઈને આવી પહોંચ્યાં. એમ એ મોટો બાગ સંબંધીઓથી અને અનેક ગિરામુજનથી ભરાઈ ગયો. લોકનાં શરીર એકગ્રીબથી દબાવા લાગ્યાં અને મ્હોંમાંમાંનો પરચાર થઈ ગયો હોય એટલી લીડ થઈ ગઈ. વ્રતના નિયમને અનુસરીને અમે અમારું એકે એક ઘરેલું ઉતારી દીધું હતું એ જોઈને અમારાં સગાં તો, રાવા મંડ્યાં, અને અમારાં બંનેનાં માળખ તો આવતાંની સાથે જ છુટે મ્હોંઠે રહવા લાગ્યાં. વળી મારાં સાંસુસસરા તો અમને જોતાની સાથે જ મૂરઘોં ખાઈ જમીન ઉપર પડ્યાં. મારાં માળખનો આત્મા ધર્મના બોધથી કંઈક વિશુદ્ધ બનેલો હતો અને જો જન્મમરણના સંસારદુઃખને જાણતાં હતાં જ, તેથી એ પોતાની આંખનાં આંસુ કંઈક ખાળી શક્યાં, ત્યારે મને ઠપકો દેતાં હોય એમ નહિ, પણ વારતાં હોય એમ બોલ્યાં:.

૧૫૬૭-૧૫૬૮. 'દીકરી, તારી આ નાની ઉમરમાં આ તે તે શું સાહસ કર્યું? આવી કુમળી સ્થિતિમાં સાધુજીવનનાં ધર્મકર્મ પાળી નહિ શકાય. તારી નિર્જનતાને કારણે એ જીવનમાં પાપ ના થઈ જવાય એટલા માટે હજી ચેતી જા. ન્યારે જીવનના આનંદને લોગણી રહે ત્યારે તું સાધુજીવન લેજે.'

૧૫૬૯-૧૫૭૦. હું બોલી ઉઠી: 'જીવનના આનંદોનો લોગ તો ક્ષણિક છે અને પછીથી તે કડવા બની જાય છે. કુટુંબજીવનથી ઘણું દુ:ખ ખમવું પડે છે, નિર્વાણનાં જેવું કંઈ સાફ નથી. અને ત્યાંસુધી માણસે ધર્મને માર્ગે આવી જવું જોઈએ એમાં કલ્યાણ છે; મોત આવી થડે તે પહેલાં આપણે પરંવારો લેવું જોઈએ.'

૧૫૭૧. ત્યારે મારા પિતાએ ઉત્તર આપ્યો: 'જાગમાં લૂટારા ભરાઈ રહે એમ ઇંદ્રિયો ભરાઈ રહેલી છે જેમાં, એવી તમીરી જીવાની હોવા છતાં એ આ સંસાર સાગરની ઉપર થઈને નિભેયતાએ તરી જાએ.'

૧૫૭૨. એટલામાં સગાંસંબંધીના ઉપચારથી મારાં સાંસુસસરાને ચેતન આવ્યું, તેમણે મારા સ્વામી તરફ જોઈને કહ્યું:.

૧૫૭૩-૧૫૭૭. “ દીકરા, આ તને કોણે શીખવ્યું? અમારી સાથે રહેવું તને ના ગરુ? ” એવું તે તને શું દુઃખ પડ્યું કે કંટાળીને- તું સાધુ થઈ ગયો? આધ્યાત્મિક જીવનથી જ નહિ પણ ધર્મવિહિત સંસારલોગથી પણ સ્વર્ગ મળે છે. અને લોકમાં કહેવત છે કે જીવનમાં સ્ત્રી એ રતનરૂપ છે. અપ્સરા જેવી સુંદર તારે માટે અહીં સ્ત્રીઓ છે. તું જ્યારે રનેહ લોગવી રહે ત્યારે ધર્મજીવન પાળજે. આપણા વિશાળ ધનને, અમને પોતાને અને (તે છાડવેલી) આ દીકરીને, એ બધાને તું શું છોડી જશે? હજી ચે થોડાં વર્ષ તું જીવનનો આનંદ લોગવી લે; ત્યાર પછી, જ્યારે આંખ કઠણ મત સ્વીકારવાના દંહાડા આવે ત્યારે તું તે ખુશીથી લેજે. ”

૧૫૭૮. શેઠને પુત્રે દૃઢમતે દયાનંતો દેખેને (અને રસીઆ આપીને) પોતાનાં માળાપત્તા કાલાવાલાભયાં શબ્દોનો આમ જવાબ આપ્યો :

૧૫૭૯-૧૫૮૩. “ અજ્ઞાને કરીને રેશમનો કીટો જેમ પોતે ઉપલોગ કરવાને પોતે જ વણેલા કોકડામાં ગુંચાઈ રહે છે, તેવી જ રીતે મોહાન્ધ પુરૂષ ઉપલોગની લાલસાએ સ્ત્રીને કારણે માયામાં પડે છે અને તેથી અનેક દુઃખ લોગવે છે. ખોટા રૂપથી લોગવાઈને અને મોહથી લશ્મઈને વિવિધ પ્રકારની વસ્તુઓરૂપ કાંટાવાળા સંસારમાર્ગના જાળામાં એ ફસાઈ પડે છે. સ્ત્રીના વિલોગથી જેટલું દુઃખ થાય છે એટલું પણ સુખ સ્ત્રીથી એને મળી શકતું નથી. ધનમાલથી પણ દુઃખ છે, તેને પ્રાપ્ત કરતાં પણ દુઃખ અને સાંચવતાં પણ દુઃખ; અને જ્યારે નાશ પામે છે ત્યારે ખેદ થાય છે. અને માળાપ, લાઈ, વહુ, છોકરાં ને સગાંવહાલાં એ તો નિર્વાણનાં માર્ગમાં બંધનની સાંકળો છે. જેમ સંઘમાં એકઠા મળેલા લોક એકબીજાની સાથે રહેવા ઇચ્છે છે અને પ્રવાસનાં દુઃખને લેઈને સાથે ચાલે છે, પણ વનમાં (લય) આવી પડતાં જુદી જુદી દિશામાં પોતપોતાને માર્ગે વેરાઈ જાય છે, તેમ સગાંસંબંધી આ સંસારજાતમાં રનેહસંબંધે સુખદુઃખ લોગવવાને અને એકબીજાને મદદ કરવાને એકઠાં મળ્યાં છે, પણ પછી મરણ યવાંથી કે સંસારમાંથી નિકળી જવાથી એ જુદાં પડે છે, ત્યારપછી પોતપોતાનાં કર્મ પ્રમાણે પોતપોતાને માર્ગે ચાલતાં થાય છે. પોતાનાં સંબંધીઓ વિના કે બીજી કશી પ્રતીતિ વિના માણસે પોતે જ મોહ છોડીને સમજી જવું એમ છે કે એમાંથી સુક્ત થયે જ નિર્વાણને માર્ગે જઈ શકાય; અને તેને સારી રીતે નિશ્ચય થયો હોય તો તો કાળદેવ પોતાની ગુફામાંથી નિકળીને જીવન તોડી નાખે તે પહેલાં જ પોતે ગદ્યા થઈને અને જાતને કંઈક રાખીને કરવા જેવું કરી લેવું એમ છે. તેથી અંતર્દષ્ટિ અને ઈચ્છાબળવાળો પુરૂષ તો, સ્વર્ગનો માર્ગ સહેલો કરવા હોય તો, કથાને (ન તો વસ્તુને કે ન તો માણસને, ન તો માત્રને કે ન તો સગાંને) વળગી ન રહે. ત્યારે, હજી ચે થોડાં વર્ષ તું જીવનનો આનંદ લોગવી લે. એવો જો ઉપદેશ તમે આપતાં હો તો એ પણ ભૂલ છે, કારણ કે સંસાર તો અનિત્ય છે અને જીવનની

કોઈને ખાતરી નથી. મરણની સત્તાને અહીં કોઈથી હકસેલી શકાતી નથી, તેથી એ આવે તે પહેલાં, વખત જોયા વિના માણસે આ મત લેઈ લેવું ઉચિત છે.”

૧૫૯૪-૧૬૦૨. આવાં આવાં વચનોથી શેઠને પુત્ર પોતાનાં માખાપને અને સગાંસંબંધીઓને પાછાં જવા સમજાવ્યું; વળી જે મિત્રો એમની સાથે નાનપણથી ધૂળમાં રમીને મિત્રતાને બંધને બંધાયા હતા તેમને પણ પાછા જવા સમજાવ્યું. પોતાના પુત્ર ઉપરની ખૂબ મમતાને કારણે એમને છોડીને જવું શેઠને ગમતું નહોતું અને એમણે કહેલી વાત એમને ગમતી નહોતી, કારણકે જે સાધુજીવનનું મત એને લીધું હતું તેને પાળવાની જ અમારી ઈચ્છા હતી. (પાસે ઉભેલાં) ઘણા લોકોએ જ્યારે કહ્યું : ‘ પોતાની ઈચ્છા પ્રમાણે એ જે જણ પોતાની આધ્યાત્મિક સાધના ભણે સાથે, કારણકે જન્મમરણની ચિંતાથી એ પીડાય છે; સંસારસુખથી પાછા હટેલા અને તપસ્યા તરફ વળેલા ચિત્તને જે પકડી રાખે છે તે મ્હેં ઉપરથી મિત્ર છે, પણ સાચી રીતે તો શત્રુ છે, ’ ત્યારે અંતે લોકોએ કહેલા સમજાવટના એ શબ્દોથી માની જઈને, માત્ર કમને, (કુટુંબથી) એમને જુદા પડવાની એમણે રજા આપી અને એ હાથ ભરીને બોલ્યા : ‘ ત્યારે તમે આત્મસયમ પાળવામાં અને તપો કરવામાં વિવિધ પ્રકારની કંઠસાધનાઓવાળી તપસ્યા આચરીને પાર ઉતરો. આ ક્ષણસંશુર સમુંદ્રમાંથી, જન્મમરણનાં નાં મોક્ષમાંથી, એક જોળેથી બીજે જોળે જવાનાં વંશગમાંથી, અષ્ટપ્રકારનાં મોંએ ફરીને વહોવાતા જળમાંથી ભેગવિભેગના કલેશનાં તોફાનમાંથી અને તેના મો-કમાંથી પાર ઉતરી જાઓ. ’

૧૬૦૩-૧૬૦૭. વખતે અમારા પગ નગર તરફ વળવાનું મન કરે, પણ આ યથેનાથી શેઠ ભણા યથે તેમને અટકાવ્યા. નગરશેઠ (ગારા પિતાએ) તો કહ્યું : ‘ તમે ધન્ય છો કે (ગૃહસ્થજનને પાળવા જેવું જે સાદું મત એ નહિ પણ) પુરું મત લીધું છે અને તેથી ક્લેશમય ગૃહજીવન તણ દીધું છે અને દેનેહના બંધમાંથી ને બેડીઓમાંથી છુટા થયાં છો. સુખદુઃખમાં સમાન થવાય એવાં મોહસુક્ત ધર્મસ્વરૂપ તમે ધારણ કર્યાં છે. સ્ત્રીજાળ તોડીને, દેનેહસર્પમાંથી છુટીને જે વિનાશભિમાને ને વિનાશોષે તીર્થકરેના ઉપદેશને યત્નસરે છે તેને ધન્ય છે. અમે તો હજી લોભ અને લોભમાં આનંદ માન્યા જઈએ છીએ અને મોહના પાશથી ને સાંકળોથી બંધાયેલા હોવાથી તમારી સાથે આવી શકીએ એમ નથી. ’

૧૬૦૮-૧૬૧૩. આમ નગરશેઠ સાધુમત ઉપર અનેક રીતે બ્યાખ્યાન કર્યું, કારણ કે એ જાણતમાં એમને ઉડું જ્ઞાન હતું. પણ જને કુટુંબની સ્ત્રીઓ, અમારા ઉપરના દેનેહને લીધે રડાયું એટલું રડી; એટલા ચિત્તાપ કર્યાં, એટલાં હસકાં આપ્યાં કે વરસાદથી પલળે એમ આગની જમીન એમનાં આંસુથી પલળી ગઈ. અંતે શેઠ ને નગરશેઠને સ્ત્રીઓ, સંબંધીઓ, અને મિત્રોને લેઈને, હાસ તથા હાસીઓને લેઈને, જોડેને જોડતાં લેઈને પાછા નગરમાં આવ્યા. અને (જતાં જતાં) નગરશેઠ અમારા તરફ

પાછું વાળી જોતા હતા, ત્યારે માણસોના ટોળામાં પેલા ભવ્ય સાધુને જોમણે જોયા.) અમારા સંસારત્યાગથી ચક્રિત થતા અને ધર્મ ઉપરની આસ્થામાં હુમેલા એ સૌ લોક જ્યાંથી આવ્યા હતા ત્યાં આવ્યા ગયા.

૧૬૧૪-૧૬૨૧. હવે એક સાધ્વી એ સાધુનાં દર્શન કરવાને એમની પાસે આવી; એનો દેખાવ સાધ્વીને ઘટે એવો જ હતો. તે નમ્ર હતી, ને ધર્મનું તેમજ સાધ્વીઓનું રક્ષણ કરનારી હતી; તપસ્થામાં તથા જ્ઞાનમાં પ્રખ્યાત થયેલી (મહાવીર દેવના શાસનમાં પ્રખ્યાત થયેલી) સાધ્વી ચંદનાની એ શિષ્યા હતી. એણે ધર્મિષ્ઠ સાધુનાં અને એમના સાથનાં દર્શન કર્યા, ત્યાર પછી સંઘનિયમોના પોતાના જ્ઞાનને લીધે એ બોલ્યા: 'સંસારદુઃખથી વિરક્ત થતી આ સાધ્વીને તમારી શિષ્યા યાનવો.' સાધ્વીએ પોતાની ખુશી બતાવી, તેમાં તેમના આત્માનો નિવેક અને સાધુજીવનમાં પણ પળાંતી સફળતા સાફ તરી આવતી. પછી એ સાધુએ મને કહ્યું: 'આ સાધ્વીની પૂજા કર, એ સાધ્વી પોતાના રક્ષણ નીચે તને લેઈ લાય છે, પંચમહાવ્રતના ધર્મમાં સફળ થએલાં એ પ્રસાધ્વી સુખતા છે.' યોગ્ય રીતે મેં કપાળે હાથ અડાડીને નમસ્કાર કર્યા, અને નિર્વાણને પંથે ચઢવા માટેની આકાંક્ષાએ એ સાધ્વીને પગે પડી. એમણે મારા તરફ જોઈને આશીર્વાદ આપ્યા: 'પાળવે અઘરું એવું જે સાધ્વીજીવન તે તને સફળ થાઓ. અમે તો માત્ર ઉપદેશ આપીને તને ધર્મને માર્ગે અઢાવીશું; જો તું સત્યરીતે પ્રયત્ન કરીશ તો નિર્વાણને માર્ગે ચઢી શકીશ.'

૧૬૨૨-૧૬૨૭. મેં ઉત્તર આપ્યો: 'પૂજ્ય સાધ્વીજી, જન્મમરણથી ભર્યા સંસારપ્રવાહમાં અથડાવાનો ભય મને બહુ લાગ્યો છે, તેથી તમારા ચળદોને અતુ સરીશ.' પછી (છટાં પડંતી વળાંતે) પોતાની વિશાળ ને કઠણ તપસ્થાને બળે બળતા અભિસમાન દીક્ષતા એ સાધુને શ્રદ્ધાપૂર્વક મેં નમસ્કાર કર્યા. તેમજ પ્રેમનો ત્યાગ કયો છે અને સર્વોચ્ચ સાધના ગ્રહણ કરી છે જેમણે જોવા એ વલ્લિકપુત્રને પણ (એમની વિદાય લેતાં) નમસ્કાર કર્યા. ત્યાર પછી સ્ત્રીઓ જ આવી શકે એવા અમારા શાન્ત એકાન્ત મઠમાં આ સાધ્વીઓની સાથે જવા માટે (એ પ્રસાધ્વી તથા એમની સંજિનીઓ સાથે) નગર તરફ આવતી યત્ર. એટલામાં તો આકાશના શબ્દગારરૂપ સૂર્યે પશ્ચિમમાં ઉતરવા માંડ્યું. પ્રસાધ્વીની સાથે જ્ઞાનની અને (આજ સુધીના વ્યવહારના) ત્યાગની વાતો કરતાં કરતાં ધર્મમાં શ્રદ્ધા બેસાડતી હતી ને એમાં શત કેમ પડી ગઈ એ તો જણાયું નહિ.

૧૬૨૮-૧૬૩૦. બીજે દિને તે વલ્લિકપુત્ર તથા તે ઉત્તમ (અમને દીક્ષા આપનાર) સાધુ કંઈ પણ સ્થાન નિર્ણય કર્યા વિના પરિભ્રમણ કરવાને માટે અન્ય દિશામાં નિકળી પડ્યા. મને તો એ પ્રસાધ્વીએ બંને પ્રકારના (સાધુજીવનમાં અને સાધ્વીજીવનમાં પાળવાના) નિયમો શીખ્યા, અને હું તપસ્થામાં તથા સંસારત્યાગમાં દૃઢ થઈ આવું.

જીવન ગાળતાં ગાળતાં (થોડું એક સ્થાનમાં રહીએ અને થોડું સ્થાને સ્થાને પરિભ્રમણ કરીએ એમ કરતે કરતે) અતે અહીં (રાજગ્રહ નગરમાં) અમે આવી પહોંચ્યાં છીએ; અને આજે (મારી સહચરો સાથે) છઠ્ઠા પારણાને માટે ભિક્ષા માગવા નિકળી છું.

૧૬૩૧. (શેઠાણી,) તમારા પુછ્યા પ્રમાણે, ગયા જન્મમાં અને ત્યાર પછી જે સુખદુઃખ લોગવ્યાં છે અને તેનાં જે પરિણામ આવ્યાં તે બધું આ વર્ણવી બતાવ્યું.

(૧૨. પ્રશસ્તિ.)

૧૬૩૨-૧૬૩૬. સાધ્વી તરંગવતીએ પોતાની કથા પુરી કરી ત્યારે શેઠાણીએ વિચાર્યું: ‘કેણું કંઠણ આમણે કર્યું છે ! આવી કુમળી અવસ્થામાં, આવી સારી સ્થિતિમાં, આવું વેધવ્યવસ્થા ગ્રહણ કરીને પણ આવી કંઠણ તપસ્યા !’ અને તેણે નગરશેઠની દીકરીને કહ્યું: ‘હે સાધ્વી, તમારા જીવન સંબંધે પ્રશ્ન પુછીને મેં આપને જે આટલું બધું કષ્ટ આપ્યું તેને માટે કૃપા કરીને ક્ષમા આપો.’ તે જોને પણ પડી અને અત્યંત ભવસાગરના કલેશને કારણે કહેવા લાગી: ‘સંસારલોગના કાલ્પમાં કળી ગયેલાં જોવાં જે અમે તેમનું શું યશે ! મોહાન્ધકારે અમને ઘેરી લીધાં છે અને ત્યારે તમે તો કંઠણ આ સાધુજીવન ગ્રહણ કર્યું છે. છતાં જે અમને બતાવો કે પુનર્જન્મમાં કષ્ટ ટાળવાને માટે અમારે શું કરવું જોઈએ ?’

૧૬૩૭-૧૬૪૧. તરંગવતીએ જવાબ દીધો: ‘તમે સાધુજીવન પાળી શકો એમ ન હો, છતાં જે સંસારમાં જોવી રીતે રહો કે તીર્થંકરના ઉપદેશ પ્રમાણે ચાલી શકો.’ તે સાધ્વીના આ શબ્દો અમૃતની પેઠે શેઠાણી ઉતારી ગઈ અને મહાકૃપાએ મળ્યા હોય એમ માનવા લાગી. અતે નિશ્ચય કરીને શ્રદ્ધાપૂર્વક ગૃહસ્થધર્મ પાળવાનું માથે લીધું અને (સંજીવને ઉગારવા માટે) સંજીવનિર્જીવ વચ્ચેનો ભેદ નાણી લીધો. આમ (ગૃહસ્થજન પાળી શકે જોવાં) સરળ પાંચ વ્રતો અને બીજા અનેક ક્રિયાઓ અને વિધિઓએ જોણે પાળવા માંડી. જે જીવન દારીઓએ પણ આ કથા સાંભળી હતી તેમને પણ અસર થઈ અને તીર્થંકરના ઉપદેશ ઉપર ઉડી શ્રદ્ધા તેમને બેઠી.

૧૬૪૨. સાધ્વીએ અને તેની સહચરીએ (પોતાના ધર્મને બાધ ન આવતો હોય જોવી) ભિક્ષા લીધી અને જોઈજોઈને અને જાળવીજાળવીને પગલાં ભરતી ન્યાંચી આવી હતી ત્યાં એ પાછો ગઈ.

૧૬૪૩. તેમને (સાંભળનારને અને વાંચનારને) મેં આ કથા આધ્યાત્મિક જ્ઞાન થાય એટલા માટે કહી બતાવી છે. આના અવણચી સર્વ દુરિત દૂર થાઓ અને જિનેશ્વરની લક્ષ્તિમાં તમારું મન લીન થાઓ.

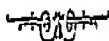
૧૬૪૪. હાઈય પુરીય ગરુડમાં ચએલા આચાર્ય વીરમદ્રના શિષ્ય સાધુ નેત્રિ-ચન્દ્રગણિએ આ કથાનું આલેખન કર્યું.

આવશ્યક સૂચના.

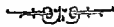
જૈન સાહિત્ય સંશોધકની આંતરિક અને બાહ્ય વ્યવસ્થામાં ઘાસ કેટલાક સુધારા વધારા કરવામાં આવનાર છે અને હવે પછી આ પત્ર વધારે નિયમિત અને વ્યવસ્થિત રૂપે પ્રકટ થાય તેવી સ્થાયી યોજના કરવામાં આવનાર છે. તેથી આ વર્ષી વ્યવસ્થાનો સુપ્રવંધ થઈ રહ્યા પછી જ હવે ત્રીજા ધંડનો પ્રારંભ કરવામાં આવશે અને તેની વિશેષ સૂચના જાહેર પત્રક દ્વારા સંવેને વિદિત કરવામાં આવશે. માટે ત્રીજા ધંડના નવીન ગ્રાહક થવાની અગર ચાલૂ રહેવાની જે સજ્જનોની રજૂઆત હોય તેમણે આ સૂચના મળ્યા પછી જ કાર્યાલય સાથે પત્રવ્યવહાર કરવા નિવેદન છે.

—જિન વિજય ।

આ પછીના પાનાવાળું મજકૂર સૌથી પ્રથમ અને અવશ્ય વાંચશો.



સંપાદકીય નિવેદન



વીજા યંદનો વીજો અંક ચ્યારે ગયા વર્ષના વ્યેષ્ટ માસમાં પ્રકટ થયો હતો ત્યારે ત્રીજા અંકનું પણ કેટલું મુદ્રણ થઈ ચુક્યું હતું અને તે પછી થોડા જ સમયમાં તે પ્રકટ કરી શકાશે એવી આશા રહેતી હતી તેથી તેવું સૂચના પણ એ વીજા અંકના મુદ્રણ ઉપર આપી દેવામાં આવી હતી । પણ ધાર્યા પ્રમાણે તેમાંનું કશું થયું નહિ અનેક આન્તર-ગાહ અગવડોના સવે લગભગ આઠ વર્ષ જેટલો લાંબો સમય વ્યતીત થઈ ગયો-પણ એ અંક ગ્રાહકોને પહોંચાડી શકાયો નહિ । છેવટે આજે ત્રીજો અને ચોથો-એમ બંને અંકો એક સાથે જ રવાના કરવાને પ્રસંગ પ્રાપ્ત થયો છે । નિયતરિતે કામ કરી શકવાની અગવડનો વિચાર કરતાં મારી જાતને તો એથી પણ કાંઈક આશ્વાસન મળે છે અને આમ વિલંબે-પણ આજે વીજા યંદના ગ્રાહકોના ઋણમાંથી મુક્ત થવાનો જે અવસર મને મળે છે તે જાણી મારા દિલનો માર કાંઈક હલકો થાય છે ।

જૈન સાહિત્ય સંશોધકના ગ્રાહકોની સંખ્યા આજે ઘણી ઓછી છે । ઇટલી વધી ઓછી છે કે તેની પાસેથી આવતા ચાર્પિક-મૂલ્યવદે માત્ર એક અંકનો પ્રેસચાર્જ પણ પૂરો થઈ શકતો નથી । ઇટલી ઓછી સંખ્યાના આધારે સામાન્ય પ્રકારનું માસિક પત્ર પણ ચલાવવાનો કોઈ ઉદ્યોગ ન કરે તો પછી આ પ્રકારના પ્રૌઢ, દલદાર, અને સૂચક ચર્ચાલ પત્રના પ્રકાશનનો તો મનોરથ પણ કોણ કરી શકે । ઘણીથિતિ આવી હોવા છતાં પણ આજે આ પત્ર જે વીજા યંદની સમાપ્તિની સીમાએ પહોંચે છે તેનું કારણ ફક્ત એના પોષક, પાલક, કે સંરક્ષક, —જે કહ્યું તે— શ્રીહરગોવિંદદાસ રામજીની નિષ્કામ દાનશીલતા અને વહુજન-દુર્લભ સાત્ત્વિક સજ્જનતા છે । એ સમાનશીલ નિયુત્તી સૌહાર્દ-પૂર્ણ પ્રેરણા અને વિકલ્પ-ચગરની દ્રવ્યસહાયતાના પ્રતાપે જ આ પત્રે જન્મ ધારણ કર્યું છે અને માત્ર એક અનિયમિતતાના રોગને છોડીને ચાકી વધી સુંદર રીતે બે વર્ષનું કાર્તિવન્ત અને આકર્ષક જીવન પસાર કર્યું છે.

સામાન્યરીતે આ પ્રકારના ઉચ્ચકોટિના પત્રોના વાચકો અને ગ્રાહકો સર્વથા ઓછા જ હોય છે । તેમાં વધી આ પત્ર તો એક અલ્પ સંખ્યક સમાજવાળા ધર્મના સાત્ત્વિક વિષયોને અનુલક્ષીને જ ખાસ પોતાનું કાર્યક્ષેત્ર લેકું હોવાથી, એના ગ્રાહકોની સંખ્યા-વહુલતાની આશા રાખવાનું તો કશું જ પ્રલોભન ન હોઈ શકે । છતાં આ પત્રને પોતાના નિર્વોહ-પુરતા પ્રવચનની તો સમાજ પાસે આશા રાખવાને હક હોય જ—અને તે આશા પૂરી કરવી એ સમાજનું પણ કર્તવ્ય હોય જ । પરંતુ અચાપિ એ આશા પૂરી થઈ નથી । એમાં કાંઈક દોષ આ કાર્યાલયનો પણ સાસ છે; એ મારે પ્રથમ જ કબૂલ કરવું જોઈએ । કારણ કે એક તો પત્ર નિયમિત રીતે સમય ઉપર પ્રકટ થતું નથી અને વીજું, ગ્રાહકો તરફથી આવતા પત્રો વિગેરેનો યથા સમય સંતોષ કારક ઉત્તર વિગેરે આપી શકાતો નથી । આવા પ્રવચન શ્રૈષ્ઠ્યના લીધે ઘણા જિજ્ઞાસુ ગ્રાહકોને નિરાશ થાય અને તેથી તેઓ કંટાળી ગ્રાહક-શ્રેણિમાંથી પોતાનું નામ વાતલ કરાવે એમાં તેમનો જરાપ દોષ કાઢી ન શકાય ।

કાર્યાલય ઉપર આવતા પત્રો અને પ્રત્યક્ષ યતી મુલાકાતો ઉપરથી મને એ તો ચોક્કસ લાગી થઈ છે કે અત્યારે જે અલ્પસ્વરૂપ ગ્રાહક વર્ગ આ પત્રનો રહેલો છે તેનો પત્ર ઉપર સૂચક પ્રેમ છે અને પત્રને નિયમિત સમયે મેલવવા અને વાંચવા તે અતિ ઉત્સુક રહે છે । એ ઉત્સુકતાના પરિણામે ઘણા વચ્ચુઓ તો અનેક પ્રકારના ઉપાલંબ ભરેલા પત્રો પણ મારી ઉપર મોકલી પોતાનો પત્ર ઉપરનો વિશિષ્ટ અનુરાગ વ્યક્ત કરે છે । હું આ સ્વલ્પે એ

મધ્ય વન્ધુઓના અસુરાગનો ઉપકાર માનું અને તેની સાથે તેમની જે પ્રદાંતનીય જિજ્ઞાસાને સંતોષી શકતો નથી તે માટે ક્ષમા પણ માંગું; એ જ અત્યારે તો મારા માટે લખિત કર્તવ્ય છે ।

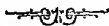
કાર્યાલયના પ્રવન્ધમાં આ જાતની એ શિથિલતા છે તેનું કારણ પણ મારે ગ્રાહકો આગળ પ્રકટ કરી દેવાની ફરજ રહે છે । એ શિથિલતા હોવાનું કારણ કોઈ જાતનો પ્રમાદ નહિ પણ સહાયકનો જે અભાવ છે, તે જ છે । ઘણા સુધારા વન્ધુઓ તો જાણતા જ હશે કે છેલ્લા ૩-૪ વર્ષથી મારું કાર્યક્ષેત્ર પૂના અને અમદાવાદ એમ બે દૂરવર્તી સ્થળોમાં સમાન ભાગે વહેંચાઈ ગયું છે । પૂનાનું મારત-જૈન-વિદ્યાલય જેમ મારી સમગ્ર સેવાની અપેક્ષા રાખે છે તેમ અમદાવાદનું ગૂજરાત-પુરાતત્ત્વ-મંદિર પણ સમગ્ર સેવા માંગે છે । તેમાંથી એ બંને સ્થળે વર્ષનો લગભગ અડધો અડધો ભાગ રહી હું મારી અલ્પશક્તિ પ્રમાણે એ બંને સંસ્થાઓની અડધી સેવા બજાવી રહ્યો છું । આમ આ સંસ્થાઓના પ્રવન્ધમાં જ હાલ મારો સમય મુલ્યરિતે વ્યર્થીત થતો હોવાથી જૈન-સાહિત્ય-સંશોધકના પ્રવન્ધમાટે હું વધારે સમય કાઢી શકતો નથી અને તેથી જ ઉપર જણાવ્યા પ્રમાણે એના કાર્યમાં અનિયમિતતા અને અવ્યવસ્થા થઈ રહી છે ।

પરંતુ દલ ઘણું મોટું-ખાલું જાણે એક પુસ્તક હોય તેટલું મોટું-હોવાથી છપાવતાં જ ઘણો વલત થયો જાય છે । જો કોઈ છાપણાનું નિયમિતરિતે કામ આપે અને તેથી જ રીતે તેને પાછું તપાસીને તરત મોકલવામાં આવે તો જ માંડ માંડ ત્રણ મહિને એક અંક પૂરો છપાય । પણ મારી તો સ્થિતિ પૂના અને અમદાવાદ વચ્ચે ઘડિયાલના હોલકની જેમ મહિને વચ્ચે મહિને ફરતી રહે છે; તેથી મહિનામાં થઈ શકે તેટલું કામ ત્રણ મહિને પણ થઈ શકતું નથી અને તેમાં પ્રેસવાલ્લાઓની અનિયમિતતા જે હેરાન કરે છે તે તો વઢી વાકી જ રહે છે । ઉદાહરણ તરીકે-આ અંકનો કેટલોક ભાગ પૂનામાં છપાયા બાદ વાકીનો ભાગ અમદાવાદ છપાવ્યો શરૂ કર્યો ત્યારે, પ્રેસવાલ્લાના કથન ઉપર આધાર રાખી, ગઈ હોઠ્ઠી પહેલાં જ ગ્રાહકોના હાથમાં આ અંકો પહોંચતા કરી દેવાની ઇચ્છાએ પૂનામાં છપાવ્યો વધો ભાગ રેલ્વે પાર્સલથી અમદાવાદ મંગાવવામાં આવ્યો । પણ તે પ્રેસ, કદાચ પ્રમાણે હોઠ્ઠી સુધી કામ પૂરું કરી શક્યો નહિ અને સમય થયે અમદાવાદ છોડી મારે પૂના આવવું થયું । એટલે ફરી તે વધુ કામ પાછું પૂના આવ્યું અને ફાલ્ગુ પૂના વડલે આમ ટેઠ વૈશાખમાં આ અંક વહાર પાડી શકાયો । આથી એકંદર પરિસ્થિતિ છે ।

સને ૧૯૨૦ ના જાન્યુઆરી માસમાં પહેલાં ચંદનો પ્રથમ અંક છપાવ્યો શરૂ થયો હતો અને તે વર્ષના એપ્રિલ માસમાં એ અંક પ્રકટ થયો હતો । આજે ૧૯૨૫ ના એપ્રિલમાં આ વીજા ચંદનો ૪ થો અંક પ્રકટ થાય છે-એટલે લગભગ પાંચ વર્ષમાં બે ચંદો વહાર પડ્યા એમ કહી શકાય ।

આ જાતના સાહિત્ય વિષયક પત્રો સામાન્યરિતે વધા જ અનિયમિત કે અર્ધ-નિયમિત હોય છે । ઇન્ડિયન એન્ટીકીરી એવા વહુ-સાધન-સંપત્તિ માસિક પત્રો પણ ઘણી વખતે ૬-૮ મહિના જેટલી 'લેટ' થઈ જાય છે તો પછી વીજાઓ થાય તેમાં તો નવાઈ જ ડી । ઘઠી આવા પત્રોના લેખો કેટલાક વધા પરિશ્રમે તૈયાર થાય છે તેની પણ સાધારણ ચોંકવને તો કલ્પના સુધાં આવવી કઠિન । એક એક લેખ વર્ષોના અભ્યાસના પરિણામે તૈયાર થઈ શકે છે । દશ પન્ધર પંક્તિઓના લલાળા માટે ઘણી વખતે આવી ઝાઝીરિયો ચોઠ્ઠી કાઢવી પડે છે । એક એક પંક્તિના ટાંચણ માટે કામ પડે તો સો-પચાસ રૂપિયાનાં પુસ્તકો સુધી પડે છે । કેટલીક વખતે મહિનાઓની મહેનતે તૈયાર કરેલા લેખો એક આધ દુષ્પ્રાપ્ય પુસ્તકના પ્રમાણ માટે વર્ષો સુધી આનના આમ ફાઈલોમાં બાંધી રાખવા પડે છે । એટલે આટલી વધી મહેનતે તૈયાર થતાં પત્રો કે પુસ્તકો સમયની મર્યાદાને તાલે જો ન રહી શકે તો તેમાં કોઈ મોટા

संपादकीय निवेदन



बीजा खंडनो बीजा अंक अगरे गया वर्णना अष्ट मासमां प्रकट धयो हतो तयो बीजा अंकनुं पण केटलुं क मुद्रण धई चुवयुं हतुं अने ते पछी थोडा ज समयमां ते प्रकट करी सकाये एवी आशा रहेती हती तथी तेषी सूचना पण ए बीजा अंकना मुखपृष्ठ उपर आपी देयासं आगी हती । पण धार्या प्रमाण तेमांनुं कसुं थयुं नहि । अनेक आन्तर-बाह्य अगवडोना सबवे लगभग आखा वर्ष जेटलो लांवे समय व्यतीत धई गयो-पण ए अंक ग्राहकोने पहोँचाडी सकाये नहि । छेवटे आजे बीजो अने चौथो-एम वने अंको एक साथे ज खाना करवानो प्रसंग प्राप्त धयो छे । नियतरीति काम करी सकवानो अगवडनो विचार फरतां मारी जातने तो एथी पण कां-ईक आश्वासन मळे छे अने आम बिलंबे-पण आजे बीजा खंडना ग्राहकोना ऋणमांधी मुक्त धवानो जे अवसर मने मळे छे ते जाणी मारा दिलनो भार कांईक हलको थाय छे ।

जैन साहित्य संशोधकना ग्राहकोनी संख्या आजे घणी ओछी छे । एटली बर्धा ओछी छे के तेनी पासेथी आवता वार्षिक-मूल्यवदे मात्र एक अंकनो प्रेसचार्ज पण पूरो धई सकतो नथी । एटली ओछी संख्याना आधारि मान्य प्रकारनुं मासिक पत्र पण चलाववानो-कोई उद्योग न करे तो पछी आ प्रकारना प्रौढ, दलदार, अने खर्चाळ पत्रना प्रकाशननो तो मनोरथ पण कोण करी शके । वस्तुस्थिति आवी होवा छतां पण आजे आ जे बीजा खण्डनी समाप्तिनी सीमाए पहुँचे छे तेनुं कारण फलत एना पोपक, पालक, के संरक्षक, जे कहूँ ते-भाई श्रीहरगोविंददास रामजीनी निष्काम दानशीलता अने बहुजन-दुर्लभ तात्त्विक सज्जनता छे । ए समानशील बन्धुनी सौहार्द-पूर्ण प्रेरणा अने विकल्प-धारणी द्रव्यसहायताना प्रतापे ज आ पत्रे जन्म धारण कर्युं छे अने मात्र एक अनियमितताना रोगने छोडीने वाकी बर्धा सुंदर रीति बे वर्पनुं कीर्तिवन्त अने आकर्षक जीवन पतार कर्युं छे.

सामान्यरीति आ प्रकारना उत्पकोटिना पत्रोना वाचको अने ग्राहको सर्वत्र ओछा ज होय छे; तेमां बळी आ पत्र तो एक अवय संख्यक समाजवाद्या धर्मना तात्त्विक विषयोने अनुलक्षीने ज खास पोतानुं कार्यक्षेत्र खेडुं होवाथी, एना ग्राहकोनी संख्या-बहुलतानी आशा राखवानुं तो कसुं ज प्रलोभन न होई शके । छतां आ पत्रने पोताना निर्बाह-पुरता प्रबन्धनी तो समाज पासे आशा राखवानो हफ होय ज-अने ते आशा पूरी करवी ए समाजनुं पण कर्तव्य होय ज । परंतु अद्यापि ए आशा पूरी धई नथी । एमां कांईक दोष आ कार्यालयनो पण खास छे; ए मारे प्रथम ज कटूल करवुं जोईए । कारण के एक तो पत्र नियमित रीति समय उपर प्रकट थतुं नथी अने बीजुं, ग्राहको तरफथी आवता पत्रो बिगरेनो यथा समय संतोष कारक उत्तर बिगरे आपी सकातो नथी । आवा प्रबन्ध शैथिल्यना लीधे घणा खरा जिज्ञासु ग्राहकोने निराशा थाय अने तथी तेषी कंटाळी ग्राहक-श्रेणिमांथी पोतानुं नाम वातल करावे एमां तेमनो जराए दोष काढी न सकाय ।

कार्यालय उपर आवता पत्रो अने प्रत्यक्ष थती मुलाखातो उपरथी मने ए तो चौकस खात्री धई छे के सत्यारे जे अल्पस्वरूप ग्राहक वर्ग आ पत्रनो रहेछो छे तेनो पत्र उपर खूब प्रेम छे अने पत्रने नियमित समये मेलववा अने वांचवा ते अति उत्सुक रहे छे । ए उत्सुकताना परिणामे घणा बन्धुओ तो अनेक प्रकारना उपालम भरेला पत्रो पण मारी उपर मोकली पोतानो पत्र उपरनो विशिष्ट अनुसारा व्यवस्त करे छे । हुं आ स्थळे ए

વધા વન્ધુઓના અનુરાગનો ઉપકાર માનું અને તેની સાથે તેમની જે પ્રશંસનીય જિજ્ઞાસાને સંતોષી શકતો નથી તે માટે ક્ષમા પણ માંગું; એ જ અત્યારે તો મારા માટે યોગ્ય કર્તવ્ય છે ।

કાર્યાલયના પ્રવન્ધમાં આ જાતની જે શિથિલતા છે તેનું કારણ પણ મારે ગ્રાહકો આગળ પ્રકટ કરી દેવાનો પ્રયત્ન રહે છે । એ શિથિલતા હોવાનું કારણ કોઈ જાતનો પ્રમાદ નહિ પણ સહાયકોને જે અભાવ છે, તે જ છે । ઘણા ધણા વન્ધુઓ તો જાણતા જ હશે કે છેલ્લા ૨-૪ વર્ષથી મારું કાર્યક્ષેત્ર પૂના અને અમદાવાદ એમ બે દૂરવર્તી સ્થળોમાં સમાન ભાગે વહેંચાઈ ગયું છે । પૂનાનું મારત-જૈન-વિદ્યાલય જેમ મારી સમગ્ર સેવાની અપેક્ષા રાખે છે તેમ અમદાવાદનું ગૂજરાત-પુરાતત્ત્વ-મંદિર પણ સમગ્ર સેવા માંગે છે । તેમાંથી એ બંને સ્થળે વર્ષનો લગભગ અઢધો અઢધો મારા રહી હું મારી અત્પશ્ચિક પ્રમાણે એ બંને સંસ્થાઓની ગઢધી સેવા વગાવી રહ્યો છું । આમ આ સંસ્થાઓના પ્રવન્ધમાં જ હાલ મારો સમય મુલ્યરીતે વ્યતીત થતો હોવાથી જૈન-સાહિત્ય-સંરોધકના પ્રવન્ધમાં હું વધારે સમય કાઢી શકતો નથી અને તેથી જ ઉપર જણાવ્યા પ્રમાણે એના કાર્યમાં અનિયમિતતા અને અવ્યવસ્થા થઈ રહી છે ।

પત્રનું દબ્બ ઘણું મોટું-આણું જાણે એક પુસ્તક હોય તેટલું મોટું-હોવાથી છપાવતાં જ ઘણો વલત વલો જાય છે । જો કોઈ છાપખાતું નિયમિતરીતે કામ આપે અને તેથી જ રીતે તેને પાછું તપાસીને તરત મોકલવામાં આવે તો જ માંડ માંડ ત્રણ મહિને એક અંક પૂરો છપાય । પણ મારી તો સ્થિતિ પૂના અને અમદાવાદ વચ્ચે ઘડિયાલના ટોલકની જેમ મહિને બન્ને મહિને ફરતી રહે છે, તેથી મહિનામાં થઈ શકે તેટલું કામ ત્રણ મહિને પણ થઈ શકતું નથી અને તેમાં પ્રેસવાલ્ડાઓની અનિયમિતતા જે હેરાન કરે છે તે તો વળી વાકી જ રહે છે । સદાહરણ તરીકે-આ અંકની કેટલોક ભાગ પૂનામાં છપાયા વાદ વાકીનો ભાગ અમદાવાદ છપાવવો શરૂ કર્યો ત્યારે, પ્રેસવાલ્ડાના કથન ઉપર આધાર રાખી, ગઈ હોઠ્ઠી પહેલાં જ ગ્રાહકોના હાથમાં આ અંકો પહોંચતા કરી દેવાની ઇચ્છાએ પૂનામાં છપાવેલો વધો ભાગ રેલ્વે પાર્સલથી અમદાવાદ મંગાવવામાં આવ્યો । પણ તે પ્રેસ, કલ્પા પ્રમાણે હોઠ્ઠી સુધી કામ પૂરું કરી શક્યો નહિ અને સમય થયે અમદાવાદ છોડી મારે પૂના આવવું થયું । એટલે ફરી તે વધું કામ પાછું પૂના આવ્યું અને કાલુષ્ય જના વડે આમ ટેક બૈસાલમાં આ અંક વહાર પાડી શકાયો । આવી અંકો પરિસ્થિતિ છે ।

સને ૧૯૨૦ ના જાન્યુઆરી માસમાં પહેલાં ચંદનો પ્રથમ અંક છપાવવો શરૂ થયો હતો અને તે વર્ષનો એપ્રિલ માસમાં એ અંક પ્રકટ થયો હતો । આજે ૧૯૨૫ ના એપ્રિલમાં આ વીજા ચંદનો ૪ થો અંક પ્રકટ થાય છે-એટલે લગભગ પાંચ વર્ષમાં બે ચંદનો વહાર પડ્યા એમ કહી શકાય ।

આ જાતના સાહિત્ય વિષયક પત્રો સામાન્યરીતે વધા જ અનિયમિત કે અર્ધ-નિયમિત હોય છે । ઇન્ડિયન ઇન્ફોર્મેટી જેવા વહુ-સાધન-સંપન્ન માસિક પત્રો પણ ઘણી વખતે ૬-૮ મહિના જેટલી 'લેડ' થઈ જાય છે તો પછી વીજાઓ થાય તેમાં તો નવાઈ જ શી । ઘડી આવા પત્રોના લેખો કેટલા વધા પરિશ્રમે તૈયાર થાય છે તેની પણ સાધારણ યોજનાને તો કલ્પના સુધાં આવવી કઠિન । એક એક લેખ વર્ષોના અભ્યાસના પરિણામે તૈયાર થઈ શકે છે । દશ પન્ધર પંક્તિઓના લખાણ માટે ઘણી વખતે આવી લાઈનેરિયો ચોટી કાઢવી પડે છે । એક એક પંક્તિના ટાંચણ માટે કામ પડે તો તો-પચાસ રૂપિયાનાં પુસ્તકો ચોટી પડે છે । કેટલીક વખતે મહિનાઓની મહેનતે તૈયાર કરેલા લેખો એક આશ્ર દુષપ્રાપ્ય પુસ્તકના પ્રમાણ માટે વર્ષો સુધી આમના આમ ફાઈલોમાં બાંધી રાખવા પડે છે । એટલે આટલી વધી મહેનતે તૈયાર થતાં પત્રો કે પુસ્તકો સમયની મર્યાદાને તાલે જો ન રહી શકે તો તેમાં કોઈ મોટો

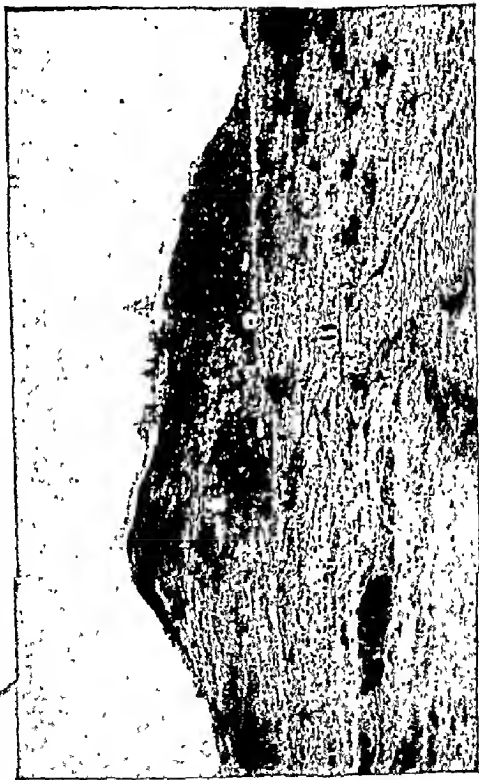
દોષ ન ગણાય । તેમ જ એવા પત્રોનો કોઈ યાસ વર્તમાન સમાચારની સાથે સંબંધ હોતો નથી જેથી મહિના-બે-મહિના આગલ-પાછલ થતાં તેમાંનું લેખાણ ઊતરી ગયું કે વાંચી થઈ ગયું મનાય । મતલબ કે આવા પત્રો ગ્રાહકોની સાથે સમયની દૃષ્ટિ બંધાણ હોતા નથી, એ વાત પણ લક્ષ્ય-બહાર ન રહેવી જોઈએ । તેમ છતાં જૈન-સાહિત્ય સંશોધકની ચાલુ અનિયમિતતાનો હું આથી વચાવ કરશા નથી માંગતો, કારણ કે આની અનિયમિતતા, તે, અનિયમિતતાની બ્યાલ્યા કરતાં ઘણી વધારે પડતી થઈ ગઈ છે, એ મારે સ્પષ્ટ કબૂલ કરવું જ જોઈએ ।

* * * * *

આરુ । આમ અનિયમિતતાના ચીલામાં જેમ તેમ ગવડણું આ પત્રનું રંગસિયું ગાડું આજે વીજા લખડના છેલ્લે નાકે આવી પહોંચ્યું છે અને તેમ થવાથી ગ્રાહકોની સાથે થયેલા કારારમાંથી કાર્યાલય મુક્ત થાય છે । હવે પ્રશ્ન માત્ર મિત્રના વિચારનો છે । જેમ વાચકોને પત્રની અનિયમિતતા સ્વદેશ છે તેમ મને અને મારા સાહિત્યપ્રિય સ્નેહિઓને પણ તે સ્વસ્વદેશ છે । આવી રીતે વર્ષે દોઢ વર્ષે જેમ તેમ એક અંક પ્રકટ થાય તેના કરતાં તો એને સર્વથા વન્ધ કરી દેવું સારું । એવી પણ કેટલાક મિત્રોની સલાહ મળ્યા કરે છે । પણ એ સલાહ મને જરા કડવી લાગ્યાં કરે છે । કારણ કે મારી મનોવૃત્તિનું મુલ્ય વલ્લણ પ્રારંભથી જ જૈન સાહિત્યની સેવા તરફ વળેલું હોવાથી, એ સેવાના એક મુલ્ય સાધન રૂપ આ પત્રને સર્વથા વન્ધ કરી દેવાની કલ્પના મને આઘાત કારક લાગે એ સ્વાભાવિક છે । તેથી પત્રને ચાલુ જ એ તો મારી પ્રવલ ઇચ્છા છે જ । પરંતુ ત્રીજા સ્વદેશનો પ્રારંભ હવે ત્યારે જ કરાશે આરે અત્યાર સુધી અશુભવાર્તાના અને અગવડતાનો કોઈક સંતોષ કારક નિકાલ આવશે । આશા તો રહે છે કે એ સમય પણ અત્યાર જ થશે ।

વૈશાખ—સં. ૧૯૮૧.
ભારત જૈન વિદ્યાલય, પૂના સીટી.

—સંપાદક



सिद्धसेन गुरुजय गिरि

॥ अर्हम् ॥

॥ नमोऽस्तु श्रमणाय भगवते महावीराय ॥

जैन साहित्य संशोधक

‘पुरिस्ता ! सच्चमेय समभिजाणाहि । सच्चसाणाप उवट्ठिए मेहावो मारं तरइ ।’

‘जे एगं जाणइ से सच्चं जाणइ; जे सच्चं जाणइ से एगं जाणइ ।’

‘दिट्ठं, सुयं, मयं, विण्णायं जं एत्थं पारिकहिज्जइ ।’

—निर्ग्रन्थप्रवचन-आचारंगमूल ।

खंड २]

[अंक :

महाकवि पुष्पदन्त के समय पर विचार ।

[लेखक—शारू हिरालालजी जैन एम्. ए., एल्.एल्. बी०।]

अपभ्रंश भाषा के इन जैन महाकवि का परिचय पाठक श्रीयुक्त नाथूरामजी प्रेमी के एक लेख से पाचुके हैं। कवि के बनाये हुए ‘महापुराण’ और ‘यशोधर चरित’ से कर्ता के सम्बन्ध में जो कुछ विदित होसका है वह प्रेमीजी ने उक्त लेख में दे दिया है। कवि कृष्णनाथे हुए ‘नागकुमार चरित’ नामक एक और काव्य का उल्लेख उक्त लेख में आया है, पर लेख लिखते समय तक प्रेमीजी को उसकी कोई प्रति देखने नहीं मिल सकी थी। हाल में ऐसे कारंजा (बरार) के शास्त्रभंडारों का देखने का अवसर मिला। वहाँ के बलात्कार गण मन्दिर में पुष्पदन्त कवि के ‘महापुराण’ और ‘यशोधर चरित’ के अतिरिक्त ‘नागकुमार चरित’ की दो प्रतियाँ विद्यमान हैं। एक संवत् १५५६, चैत्र शुक्ल १, शनिवार की लिखी हुई १३६ पत्रों की है, व दूसरी ८८ पत्रों की है, जिसमें लिखने का संवत् नहीं पाया गया, पर देखने से यह प्रथम प्रति से कुछ पीछे की ज.न पड़ती है। ग्रंथ ९ संधि अर्थात् पारिच्छेदों में समाप्त हुआ है। इसके भी आदि और अंत में कविने अपना कुछ परिचय दिया है। अपने पिता ‘केशवभट्ट’ व माता ‘सुधादेवी’

अपने आश्रयदाता भरत के पुत्र 'नम्र' व उनके 'कौण्डिन्य' गोत्र और अपने 'ब्राह्मणकुल' व 'काश्यप गोत्र'; का कविने यहां भी उल्लेख किया है। एक पद्य से कुछ ऐसा भाव निकलता है कि कवि पहले शिवभक्त थे, पर पीछे 'गुरु' के वचनामृत-पान से जिनमत्त हो गये थे। उक्त दोनों प्रतियों में 'गुरु' पर 'दिगम्बर' ऐसा टिप्पण दिया हुआ है, जिससे विदित होता है कि किसी दिगम्बर मुनि के उपदेश से वे शैव धर्म को छोड़ जिन धर्मावलम्बी हुए थे। अपने आश्रयदाता 'नम्र' की माता भरतमंथ्री की भार्या का नाम कविने 'कुंदव्या' दिया है। जिस प्रकार भरत के अनुरोध से उन्होंने महापुराण की रचना की थी, उसी प्रकार 'नागकुमार चरित' उन्होंने 'नम्र' की प्रार्थना से रचा। उनके दो शिष्य 'गुणधर(य)म' और 'शोभन' व अन्य दो सज्जन 'नाश्ल' और 'शीलमट' ने भी इस रचना के लिये कवि की प्रेरणा की। ग्रंथ के आदि और अंत में कविने नम्र की स्तूष प्रशंसा की है।

साहित्य-क्षेत्र में पुष्पदन्त की स्तूष ख्याति रही है। उनका उल्लेख बहुतसे कवियों ने किया है। 'कनकामर' कविने अपने करकण्डू चरित में उन्हें 'वापसरि घरु' (वागेश्वरी गृह) कहा है, यथा:-

'जयगद्य सयंभु विमाल चित्तु : वापसरिघरु सिरि पुष्पयंतु ॥'

सोमकीर्ति अपने 'यशोधर चरित' (संपूर्ण हुआ वि० सं० १५३६) में कहते हैं:-

यत्प्रोक्तं हरियेणाद्यैः पुष्पदन्त पुरःसरैः।

श्रीमद्वासवसेनाद्यैः शास्त्रभ्याणघषारणैः ॥

तद्यारिषं मया नूनं बालेन शक्यते कथम्।

बाह्भ्यां सागरं घोरं केनापि तरितुं यथा ॥

सोलहवीं शताब्दि के एक और अपभ्रंज भाषा के कवि 'सिंहसेन' अपने आदिपुराण में पुष्पदन्त की स्मरण करते हैं:-

पुणु वि सयंभु महाकइ जायउ । चउमुह पुष्पयंतु विप्रस्त्रायउ ॥

यहां हम पुष्पदन्त कवि के समय पर विचार करेंगे। महापुराण में पुष्पदन्त ने जिन आचार्यों व कवियों का उल्लेख किया है उन में 'अकलंक', 'वीरसेन' और 'जिनसेन' सबसे पीछे के विदित होते हैं। 'राज वासिक' आदि ग्रंथों के कर्त्ता प्रसिद्ध तार्किक अकलंक राष्ट्रकूट नरेश कृष्णराज के समय में हुए हैं जिन्होंने शक संवत् ६७५ से ६९७ तक राज्य किया। जयधवल सिद्धान्त की वीरसेनीया टीका के पूर्व भाग की वीरसेन स्वामी ने जयतुंग देव के समय में रचा था और उसी के उत्तर भाग की उन के शिष्य जिनसेन ने शक सं० ७५९ में अमोघवर्ष नृप के

२ 'प्रिवभत्ताइमि जिण सण्णासि । वेविमयाइ हरियणिणासि ।

वंमणाइ कामवग्गि गोत्तइ । 'गुरु' वयणामय पूरिय सोत्तइ । (अवतरण देखिये)

३ शक सं. १००० में 'होयसाहा नरेश' 'विष्णुवर्धन' के एक सेनो का नाम भी 'भरत' था। वह जैन धर्मावलम्बी व माधवन्दि आचार्य का शिष्य था। (Repertoire D'Epigraphie Jaina by Guerinot p. 13, Ins. No. 307-308).

४ 'कुंदव्यागधमसुधमवस्स' । राष्ट्रकूटवंशी प्रसिद्ध नरेश महाराज अमोघवर्ष की रानी का नाम 'कन्दक देवी' था। ये 'कन्दक देवी' चेदि नृप 'शुवराज' की राज कन्या थी।

(Studies in South Indian Jainism)

५ सम्भवतः ये दोनों भरत के मात पुत्रों में से थे। (देखी प्रेमजी का लेख)

६ देखी 'जैनहितैषी' भाग ११, अंक ७-८ पृ. ४२७-४२९

समय में समाप्त किया था। जयधवल सिद्धान्त का भी उल्लेख पुष्पदन्त ने अपने काव्य में किया है। अतः अकलंक, वीरसेन, जिनसेन व जयधवल सिद्धान्त का उल्लेख करनेवाले कवि को शक सं० ७५९ से पीछे होना चाहिये।

अब हमें देखना चाहिये कि क्या कोई अन्य बातें भी पुष्पदन्त के काव्यों में ऐसी हैं जो उन के समय-निर्णय में सहायक हो सकती हों। आदिपुराण की उथानिका से विदित होता है कि कवि ने उस की रचना मान्यखेटपुर में आकर की थी और उस समय वहां 'तुह्यि' नाम के राजा राज्य करते थे जिन्होंने चौड़ राजा का मस्तक काटा था। 'मान्यखेट' निजाम हैदराबाद के राज्यान्तर्गत आधुनिक 'मलखेट' का ही प्राचीन नाम है। अनुमान होता है कि कवि के समय में वह चौड़ मंडल की जीतनेवाले किसी प्रतापी नरेश की राजधानी थी। पर जब हम इतिहास के सफे उलटते हैं तो शक सं० ७३७ से पूर्व मान्यखेट का कोई पता नहीं चलता। जान पड़ता है कि उक्त समय तक वह कोई प्रसिद्ध नगर नहीं था। उस के आसपास का प्रदेश चालुक्य राज्य के अंतर्गत था, जिस की राजधानी नासिक के निकट 'वातापि' या 'वाद्रामि' नगरी थी। चालुक्य वंश की इतिथी शक सं० ६७५ में राष्ट्रकूट वंश के राजा 'वर्मिदुर्ग' द्वारा हुई; और उन के वंशज महाराज अमोघवर्म ने शक सं० ७३७ (सन् ८१५) में अपनी राजधानी 'मान्यखेट' में प्रतिष्ठित की। इसी समय से यह नगर इतिहास में प्रसिद्ध हुआ है।

अब हमें यह खोज करना चाहिये कि क्या 'तुह्यि' नाम के यहां कोई राजा हुए हैं? महापुराण में अन्य कई स्थानों पर पुष्पदन्त ने इसी राजा का उल्लेख 'शुभतुंगदेव' और 'भैरव-नरेन्द्र' के नाम से किया है और 'यशोधरचरित' व 'तागकुमारचरित' में राजा का नाम 'वल्लभराय' पाया जाता है। जहां २ इन नामों में से किसी का भी उल्लेख आया है वहां टिप्पणकार ने उस पर 'कृष्णराज' ऐसा टिप्पण दिया है। इस पर से यही अनुमान किया जा सकता है, जैसा कि प्रेमीजी ने कहा है, कि 'तुह्यि' 'शुभतुंगदेव', 'भैरवनरेन्द्र', 'वल्लभराय' और 'कृष्णराज' ये पाँचों किसी एक ही राजा के नाम हैं और इन्हीं के समय में पुष्पदन्त ने अपने काव्यों की रचना की है। 'वल्लभराय' राष्ट्रकूट नरेशों की आम उपाधि थी। अरब के कई लेखकों ने इन नरेशों का उल्लेख 'वल्लभ' शब्द से किया है, जो वल्लभराय का ही अपभ्रंश है। जिनसेनाचार्य ने हरिवंशपुराण की प्रशस्ति में 'इन्द्रायुध' को 'धौवल्लभ' विशेषण दिया है।

'कृष्णराज' नाम के तीन राजा राष्ट्रकूट वंश में हुए हैं। इन में से प्रथम नौ वे हैं जिनके समय में अकलंक स्वामी हुए हैं, व जिनके पुत्र और उत्तराधिकारी 'इन्द्रायुध' के समय (शक

७ देखो 'विद्रुहमाला' भाग १ पृ० २९.

८ 'उज्ज्वलजड भूमेग भीम । तोडिपिणु चोडहो तणउ सीसु ।

भुवनेश्वराम रायाहिराउ । जहि अच्छर बुडिणु महापुनउ ।

ते बीण दिण्ण वन कणयपयन । गहिपरि भमन मेवा(त्या)डिनयह ॥

९ V. Smith: Early History of India, Ed. III, p. 424-430.

10. "They (Arabs) called the 'Rāshtrakuta' kings 'Balhāra' because those princes were in the habit of assuming the title 'Vallabha' (Beloved Hier, aime) which, in combination with the word 'Rai' (prince) was easily corrupted in to the form 'Balhāra'.

[V. Smith, F. H. I. p. 424-430.]

११ 'वातीन्द्रायुधि नाम्नि कृष्णवर्जे श्रीवल्लभे दक्षिणाम' ।

सं० ७०१) में जिनसेनने हरिवंश पुराण की रचना समाप्त की थी। इन के समय तक मान्यखेट राजधानी नहीं हुई थी। पर दूसरे और तीसरे कृष्णराज मान्यखेट के सिंहासन पर हुए हैं। कृष्णराज द्वि० अमर ४ वर्ष के उत्तराधिकारी थे, जिन्होंने लगभग शक सं० ८०० से ८३७ तक राज्य किया। इन के समय में मान्यखेट पुरी चालुक्य वंशी राजा विजयादित्य तृतीय द्वारा लूटी और जलाई गई थी। कृष्णराज तृतीय के लिये शिलालेखों से शक सं० ८६२, ८६७, ८७३ और ८७८ के उल्लेख मिले हैं। उन का सब से अन्तिम उल्लेख शक सं० ८८१ का सोमदेव ने अपने 'यशस्तिलकचम्पू' में किया है। इन सबसे पहले की एक तिथि कृष्णराज के लिये मुझे कारंजा मंडार के 'ज्वाला मालिनि कल्प' नामक ग्रंथ में देखने को मिली, इस ग्रंथ के अन्तिम पद्य ये हैं—

अष्टाशत सैकपाट्टिप्रमाण शक वत्सरेष्वतीतेषु ।

श्री-मान्यखेटकटक पर्यण्यक्षयतृतीयायाम् ॥ १ ॥

शतदलसहित-चतुःशत-परिमाण-ग्रंथ-रचनया युक्तम् ।

श्रीकृष्णराज-राज्ये समाप्तमेतन्मतं देव्याः ॥ २ ॥

इससे विदित होता है कि उक्त ग्रंथ की रचना शक संवत् ८६१ की अक्षय तृतीया को समाप्त हुई थी और उस समय मान्यखेट नगर में 'कृष्णराज' राज्य करते थे। ये राजा कृष्णराज तृतीय के आंतरिक और कोई नहीं हो सकते। इस प्रकार कृष्णराज तृतीय का राज्य काल कम से कम शक सं० ८६१ से लगा कर ८८१ तक सिद्ध होता है।

हम ऊपर कह आये हैं कि पुष्पदन्त ने अपने समय के 'तुह्यि' अपर नाम कृष्णराज द्वारा चोड़ नृप के मारे जाने का उल्लेख किया है। राष्ट्रकूट वंशी राजा जैन धर्मानुयायी थे और इस समय के चोड़ नरेश कट्टर 'शैव'। दोनों खूब चलबान् भी थे। अतः दोनों बीच अक्सर हो युद्ध छिड़ा रहता था। कभी राष्ट्रकूटों की जीत हो जाती थी तो कभी चोड़ों की। मैसूर प्रान्त के 'अतकूर' नामक स्थान से एक शिलालेख मिला है जिस में ऐसे ही एक युद्ध का उल्लेख है। उससे विदित होता है कि शक सं० ८७१ (सन् ९४९) में जब राष्ट्रकूट नरेश कृष्णराज और चोड़ नृप 'राजादित्य' के बीच युद्ध चल रहा था तब कृष्णराज के सहायक व उन के बहिर्गोत्र गंगनरेश 'बुनुग' (भूतराय द्वि०) द्वारा राजादित्य की मृत्यु हुई। इसी शिलालेख के आधार पर सर क्रिसेन्ट स्मिथने अपने 'भारत के प्राचीन इतिहास' में लिखा है कि 'कृष्ण तृतीय' के समय की राष्ट्रकूटों और चोड़ों की लड़ाई विदोष उल्लेखनीय है—क्यों कि सन् ९४९ में चोड़ राजा 'राजादित्य' की समरभूमि में ही मृत्यु हुई। क्या आश्चर्य यदि पुष्पदन्त ने अपने पुराण में इसी घटना का उल्लेख किया हो।

प्रेमर्जोने उत्तर पुराण के ५० वें परिच्छेद के प्रारम्भ का एक श्लोक उद्धृत किया है जिससे विदित होता है कि उस पुराण के समाप्त होने से कुछ पूर्व मान्यखेट पर किसी 'धारा नरेश' ने चढ़ाई की थी और उस सुन्दर नगर को नष्ट भ्रष्ट कर डाला था। हम ऊपर कह आये हैं कि

12. 'The Eastern Chalukya Vijayaditya III (A. D. 844-888) boasts that he captured the Rashtrakūta capital and burnt it; and the assertion seems to be borne out by other inscriptions. Imp. Gaz. Vol II, p. 33.

13. Epigraphia Indica Vol. III, p. 50.

14. V. Smith. E. H. I. pp. 424-430.

१५. दीनानाथधनं सदा बहुधनं प्रोक्तुं बहू-वनम् मान्यखेटपुरं पुनरपुरीलीलाहरं सुन्दरम् ।

धरनाथनेन्द्रेन्द्रकोपशिखिना दग्धं विदग्धमियम् । ब्रह्मदानीं वसतिं करिष्यति पुनः श्रीपुष्पदन्तः कविः ।

कृष्णराज द्वितीय के समय में मान्यखेट पुरी लूटी और जलाई गई थी, पर किसी ' धारानाथ ' के द्वारा नहीं, घेंगों के चालुक्यवंशी राजा ने उसे लूटा था । देखना चाहिये कि क्या कभी किसी धारा के राजा द्वारा भी मान्यखेट लूटा गया है । धनपाल कवि अपने ' पादयलच्छी नाम माला ' नामक कोष के अंत में, श्लोक २७६ आदि में लिखता है कि ' विक्रम संवत् १०२९ में जब मालवा वालों के द्वारा मान्यखेट लूटा गया था तब धारा नगरी निवासी धनपाल कविने अपनी बहिन सुन्दरा के लिये यह पुस्तक बनाई ' । इस उल्लेख से हमें मान्यखेट पर आक्रमण करनेवाले राजा का नाम तो विदित नहीं हुआ, पर इतना पता चल गया कि वि० सं० १०२९ (शक सं. ८९४) के लगभग धारा वालों ने मान्यखेट को लूटा था । खोज करना चाहिये । शायद इस विषय पर कहीं से कुछ और प्रकाश पड़े । ग्वालियर के ' उदयपुर ' नामक स्थान से एक शिलालेख मिला है, जिस में मालवा के परमारवंशी राजाओं को प्रशस्ति दी हुई है । इस प्रशस्ति का बारहवाँ पद्य यह है:—

तस्माद् (चैरिसिंहात्) अभूदरिनेश्वर-संघ-सेवा-

गर्जद्गजेन्द्र-रथ-सुन्दर-तुर्य-नादः ।

श्रीहर्षदेव इति खोटिगदेव-लक्ष्मी

जग्राह यो युधि नगाद-सम-प्रतापः ॥

' खोटिगदेव ' कृष्णराज तृतीय के चचेरे भाई थे जो उन के पॉछे मान्यखेट के सिंहासन पर आरूढ़ हुए । उक्त पद्य से हमें दो बातें नई विदित हुईं । एक तो यही कि जिस को हम खोज में थे । अर्थात् मान्यखेट की लूटमार करानेवाले ' धारानाथ ' का नाम । और दूसरी यह कि उस लूटमार के समय मान्यखेट के स्वामी खोटिगदेव थे । चैरिसिंह के पुत्र श्रीहर्षदेव का नाम ' नव साहसांकचरित ' में ' श्रीहर्ष ' या ' सीयक, ' तिलकमंजरी में हर्ष और सीयक च प्रबन्धचिन्ता-मणि में श्रीहर्ष, सिंहमत और ' सिंहदन्त ' पाया जाता है । इस प्रकार ' पादयलच्छी नाममाला ' और उदयपुर प्रशस्ति से यह सिद्ध हुआ कि वि० सं० १०२९ लगभग जब सीयक ' श्रीहर्ष ' द्वारा मान्यखेट लूटा गया था उस समय कृष्णराज तृतीय की मृत्यु हो चुकी थी और उन का उत्तराधिकारी खोटिगदेव वहां के सिंहासन पर था ।

अब इससे आगे बढ़ने से पूर्व हमें यहाँ तक की छानबीन को पुनः दृष्टि गोचर कर लेना चाहिये:—

१. पुष्पदन्तने अकलंक, वीरसेन और जिनसेन का उल्लेख किया है । इससे उनका काव्य-रचना-काल शक सं० ७५९ से पॉछे होना चाहिये ।

२. पुष्पदन्तने अपने समकालीन मान्यखेट नरेश का ' वल्लभराय ' नाम से उल्लेख किया है, जिसपर ' कृष्णराज ' टिप्पण पाया जाता है । मान्यखेट के सभी राष्ट्रकूट वंशी राजाओं की ' वल्लभराय ' उपाधि थी, उनमें कृष्णराज नाम के दो राजा हुए हैं ।

३. पुष्पदन्तने अपने समय के मान्यखेट नरेश द्वारा ' चोड़ ' राजा के मारे जाने का उल्लेख किया है । कृष्णराज तृतीयने शक सं. ५७१ में चोड़ राजा से युद्ध किया था और वहाँ के राजा की समरभूमि में ही मृत्यु हुई थी ।

१६ विक्रमकालरसगण अजगतीगुप्ते सहस्रसम्मि । मालवनेरिन्दे धाडि ए लुडीए मससेउम्मि ॥ इत्यादि

17. Epigraphia Indica Vol 1. p. 226.

18 ' भारत के प्राचीन राजवंश ' भाग १, पृ. ९२

४. पुष्पदन्तने धारा नरेश द्वारा मान्यखेट के लूटे जाने का उल्लेख किया है। शक सं० ८९४ के लगभग धारा के परमार राजा श्रीहर्ष द्वारा मान्यखेट के लूटे जाने का पता चलता है।

इस प्रकार इन ऐतिहासिक तथ्यों के मिलान से इसमें बहुत कम संदेह रह जाता है कि पुष्पदन्तने अपने काव्यों की रचना मान्यखेट के राष्ट्रकूट वंशी राजा कृष्णराज तृतीय के समय में की थी, जिन के अभी तक, जैसा कि हम ऊपर बता आये हैं, शक सं० ८६१ से लगाकर ८८१ तक के उल्लेख मिले हैं। यह राजा जैनियों का बड़ा भक्त था व बड़ा प्रतापी और बलवान् भी था। सोमदेवने उसे पांड्य, सिंहल, चोल, चेरम, आदि प्रदेशों का विजेता कहा है। शिलालेखों से भी सिद्ध है कि उसने चोड़ मण्डल के प्रबल राजा को परास्त कर वहाँ राष्ट्रकूटाधिपत्य स्थापित किया था। उसने गंगराजा 'राचमल' को पराजित कर वहाँ की गद्दीपर 'भूतराय' को बैठाया था। ये ही 'भूतराय' चौहयुद्ध में उनके सहायक हुए थे और इन्हीं द्वारा चोड़ राजा का मस्तक काटा गया था। सम्भव है कि इसी प्रताप के कारण उन्होंने 'भैरव नरेन्द्र' की उपाधि भी प्राप्त कर ली हो, जिसका कि उल्लेख पुष्पदन्तने अपने काव्य में किया है। या स्वयं पुष्पदन्तने ही उनके लिये उक्त 'विरुद्ध' निर्धारित करलिया हो। कविराजों को ऐसी स्वतंत्रता रहती है। 'शुभतुंग' कृष्णराज प्रथम का उपनाम अनुमान किया जाता है। गहलनमिदन्तने इस राजा का इसी पद से उल्लेख किया है। उसी का 'महिषेण प्रशस्ति' में 'साहसतुंग' नाम पाया जाता है। पर सम्भव है कि ये भी बलभराय के समान राष्ट्रकूट नरेशों के सामान्य 'विरुद्ध' थे। देवली के ताम्रपत्रों से यही बात सिद्ध होती है। यह भी हो सकता है कि शुभतुंग व साहसतुंग इस वंश के खास २ प्रतापी नरेशों की उपाधि रही हो। हम देख चुके हैं कि मान्यखेट की लूटमार से कुछ पूर्व ही कृष्णराज की मृत्यु हो चुकी थी क्योंकि उस लूटमार के समय उनके उत्तराधिकारी 'सोद्विगदेव' सिंहासन पर थे। यदि इसी लूटमार का उल्लेख पुष्पदन्तने किया है तो स्पष्टसिद्ध है कि उन्होंने उत्तरपुराण का अन्तिम भाग, 'यशोधर चरित' और 'नागकुमार चरित' कृष्णराज के उत्तराधिकारियों के समय में लिखे थे। ये राजा 'कृष्णराज' के समान प्रतापशाली नहीं हुए। इनके समय में राष्ट्रकूट राज्य की अवनति प्रारम्भ हो गई थी। शायद इसी से हम उत्तरपुराण के अन्तिम भाग, यशोधर चरित और नागकुमार चरित में शुभतुंगराय व भैरवचरित का उल्लेख नहीं पाते। यहां राजा का उल्लेख केवल 'बलभराय' से किया गया है जो राष्ट्रकूट नरेशों की साधारण

१९ Duff's Chronology p. 89.

२० "अत्रैव भारते मान्यखेटाख्य नगरे बरे । राजाभूत् शुभतुंगाख्यस्तन्मन्त्री पुरोत्तमः" ॥

यहां शुभतुंग (कृष्ण प्रथम) की मान्यखेट का राजा कहा है, पर इतिहास कहता है कि इनके समय तक राष्ट्रकूट राजधानी वातापि में थी। मान्यखेट पुरी की अमोघवर्ष प्रथम ने सन् ८१८ ईस्वी में वनाया था।

(Deoli plates).

२१ 'राजन् साहसतुंग सन्ति बहवः श्वेनानपत्रा वृषाः

किंतु त्वत्सदृशा रणे विजयितस्यागोक्षता दुर्लभाः । इत्यादि ।

२२ 'The Rashtra-Kutas are stated in it (Deoli plates) to have sprung from the Satyaki branch of Yadava race and to be known as 'Tunga'

(Ins. in C. P. & Berar, p. 10)

उपाधि थी। 'तुङ्गि' तामिल व कन्नड़ी आदि किसी दक्षिणी भाषा का शब्द है। सम्भवतः यह भी कोई प्रतापसूचक उपाधि होगी।

अब हमें प्रेमीजी के उस पाठ पर विचार करना चाहिये, जिससे महापुराण की समाप्ति सं० ६०६ में पाई जाती है। समयसूचक पद्य 'जैन साहित्य संशोधक' में उद्धृत अंश के अनुसार ये हैं:—

पुष्पयंत कयणा धुयपंके । जइ अहिमाण मेरुणामंके ॥

कयउ कडु भत्तिप परमर्थ । छप्र छउत्तर कथ सामर्थ ।

कोहण संवच्छरे आसादप । दहमप दियहे चंद रुइ रुदप ।

निस्सन्देह इन पदों से संवत् ६०६, क्रोधन, आपाठ शुक्र १० वीं की महापुराण समाप्ति होने का बोध होता है। अब इनके स्थान पर कारंजा की प्रति का पाठ देखिये:—

पुष्पयंत कयणा धुयपंके । जइ अहिमाण मेरुणामंके ।

कयउ कडु भत्तिप परमर्थ । जिणपयपंकय मउलियहत्थं ।

कोहण संवच्छरे आसादप । दहमइ दियहे चंदरुइ रुदप ।

यह पाठ और तो सब बातों में ऊपर के पाठ के ही समान है पर इसमें सं० ६०६ के सूचक पद का पता नहीं है। उसके स्थान पर जो पद हैं उससे संवत् का कोई बोध नहीं होता। इन पाठों में से कौनसा शुद्ध और कौनसा अशुद्ध माना जाय। प्रेमीजी मुझे सूचित करते हैं कि ऊपर वाला पाठा अनेक प्राचीन प्रतियों में पाया जाता है। इससे उसे सहसा अशुद्ध और जाली कहने का भी साहस नहीं होता। न तो सं० ६०६ शक गणना के अनुसार क्रोधन था और न विक्रम गणना के अनुसार। पर सम्भव है कि यह इन से भिन्न कोई और संवत् का वर्ष हो।

अब हमें महापुराण की समाप्ति का समय अन्य प्रकार से शोधना पड़ेगा। इस पुराण के प्रारम्भ के एक पद्य से विदित होता है कि पुष्पदन्तने उस पुराण की रचना किसी सिद्धार्थ संवत्सर में प्रारम्भ की थी। सोमदेवकृत यशस्तिलक चम्पू के उपसंहार वाक्य को देखिये:—

“शक-नृप-कालातीत-संवत्सर-शतेष्वष्टस्यैकाशीत्याधिकेषु गतेषु अंकतः (८८१) सिद्धार्थ-संवत्सरान्तर्गत चैत्रमासमदन-त्रयोदश्यां पाण्ड्य-सिंहल-चोल-चेरम-प्रभृतीन्महीपतीन्प्रसादय मेलपाटी-प्रवर्धमान-राज्य-प्रभावे श्रीकृष्णराजदेवे सति तत्पादपभोपजोत्वेनः समधिगत-पञ्च-महा-शब्द-महासामन्ताधिपतेष्वालुक्यकुल-जन्मनः सामन्तचूडामणेः श्रोमद्वारिकेसरिणः प्रथम पुत्रस्य श्री-महहिगराजस्य लक्ष्मीप्रवर्द्धमान-वसुंधरायां गंगाधारायां विनिर्मापितमेदं काव्यमिति ।”

इससे प्रसंगोपयोगी हमें केवल इतनी बात विदित होती है कि शक सं० ८८१-सिद्धार्थ संवत्सर था और उस समय मान्यछेत्र में चोल आदि नरेशों को जीतने वाले राजा कृष्णराज (तृतीय) का राज्य था। महापुराण का प्रारम्भ भी इसी सिद्धार्थ संवत्सर में होना चाहिये। पुराण की समाप्ति का समय प्रेमीजी के पाठ के समान ही 'कारंजा' की प्रति में भी क्रोधन संवत्सर आपाठ शुक्र १० वीं दिया हुआ है। क्रोधन संवत्सर साठ-साला-संवत्-वक्र में सिद्धार्थ संवत्सर से ६ वर्ष बाद आता है। अतः महापुराण की समाप्ति का ठीक समय शक

१३ यह प्रति संवत् १६०५ मार्गशीर्ष वदि ८, बुधवार की है।

२४ गुप्त और कलचुरि संवत् से भी यह समय ठीक नहीं बैठता। गुप्त संवत् का प्रारम्भ सन् ३१९ ईसवी व कलचुरि संवत् का सन् २४९ ईसवी से माना जाता है।

सं० ८८७ आपाढ शुक्ल १० वीं सिद्ध होता है। श्रीसुत राय बहादुर बाबू होरालालजीने मेरे लिये इस तिथि का मि. स्वामी कन्नूपिल्लाई के 'इंडियन एफमेसिस' नामक सारिणी से मिलान किया तो इसकी अंग्रेजी सम-तिथि ११ जून सन् १६१ ईस्वी (रविवार) आती है। प्रेमीजीने 'चंद्ररुचि-रूढप' का अर्थ 'सोमवार' किया है। पर मेरी समझ में उसका ठीक अर्थ चंद्रवार नहीं शुक्ल-पक्ष है। चंद्ररुचि रूढे—अर्थात् जब चंद्रमा वृद्धिशील होता है। मुझे भी सन्देह था कि सम्भव है उक्त पद में 'सोमवार' का भी भाव हो और शायद आपाढ शुक्ल १० वीं रविवार को प्रारम्भ होकर सोमवार तक गई हो। पर राय बहादुर होरालालजी उसका ठीक मिलान कर लिखते हैं कि उक्त तिथि रविवार को ही सूर्योदय से १३ घंटे १५ मिनट पश्चात् अर्थात् सायंकाल को समाप्त हो चुकी थी।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि जब पुष्पदन्तने अपने पुराण समाप्त होने के माह और तिथि दिये हैं तब क्या उन्होंने संवत् का उल्लेख नहीं किया होगा? यह तो सिद्ध है कि 'छसय छडोत्तर कय सामत्ये' वाला पाठ ठीक नहीं है या कम से कम उपर्युक्त चार संवत्तों के अनुसार वह ठीक नहीं बैठता। पर उसके स्थान पर कारंजा की प्रति का जो पाठ है उसमें संवत् आदि का कोई भाव नहीं है। जब मैंने कारंजा की प्रति का अवलोकन किया था, उस समय तक प्रेमीजी के अवतरण मेरे देखने में नहीं आये थे। तब मुझे ऊपर उद्धृत पद्यों में 'जइ आहिमाण मेरुणामके' में किसी संवत् की सूचना छुपी होने का सन्देह हुआ था, पर प्रेमीजी के संवत्त का स्पष्ट बोध करा देनेवाले पाठ को देखकर मेरा वह सन्देह दूर हो गया था। पर अब पुनः मेरी दृष्टि उसी पद पर जाती है। मैंने अपने इस सन्देह का संकेत बाबू जुगलकिशोरजी मुस्तार से भी किया था। पर उन्होंने लिखा कि 'अभिमानमेरु' कवि का उपनाम है, उसमें अंकों आदि का कोई भाव नहीं। पर मुझे इससे सन्तोष नहीं हुआ 'अभिमानमेरु' कवि का उपनाम अवश्य है; कई स्थानोंपर उन्होंने अपने इस 'विमर्श' का उल्लेख किया है; पर हो सकता है कि यहां पर कवि का वह भाव रहा हो और अंकों का भी। खासकर 'अंके' शब्द से यह सन्देह और भी बढ़ जाता है। अंक का लोछन भी अर्थ होता है और गणना भी। अतः संभव है कि प्रयत्न करने से उसमें संवत् का भाव निकले। उक्त पद के एक २ अक्षर को लोजिये। 'जइ' संस्कृत के 'यति' का अपभ्रंश-रूप विदित होता है। उससे सप्त ऋषियों का भी बोध हो सकता है अतः उसकी अंक संख्या ७ मानी जा सकती है। 'अहिमाण' अभिमान के बराबर है जिससे अष्ट मंद का बोध होता है और उसकी अंक संख्या ८ ली जा सकती है। 'मेरु' से आठ का भाव लेने के लिये मैं कोई प्रमाण नहीं पा सका। पर यदि उसने ८ का भाव लिया जा सकता हो और 'अंकानां वामतो गतिः' के नियमानुसार हम इन अंकों को 'दाये से बाईं ओर को रखें' तो संवत् ८८७ निकल सकता है। बहुत सम्भव है कि इस पद में ऐसा अर्थ हो, पर जब तक अष्ट मेरु के लिये कोई प्रमाण न मिल जावे तब तक इस कल्पना पर अधिक जोर नहीं दिया जा सकता।

जब हम यह सिद्ध करते हैं कि महापुराण शक संवत् ८८७—(वि० सं० १०२२) में समाप्त हुआ था तब हमें मानना पड़ेगा कि मान्यखेट की जिस छटमार का कविने उक्त पुराण के ५० वें

परिच्छेद में उल्लेख किया है वह वि० सं० १०२२ से पश्चात् नहीं हो सकती। पर धनपाल की 'पायलच्छो नाम माला' में उस घटना के उल्लेख से ऐसा मालूम पड़ता है कि वह उस ग्रंथ के समाप्त होने के वर्ष वि० सं० १०२९ में ही हुई थी। इस विरोध का परिहार कैसे हो? उदयपुर प्रशस्ति से सिद्ध है कि उक्त घटना के समय मान्यखेट के सिंहासन पर 'खोट्टिगदेव' आरुढ़ थे। 'खोट्टिग' के उत्तराधिकारी कङ्कराज का एक दानपत्र शक सं० ९९४ (वि० सं० १०२९) आश्विन शुक्ल १५ का मिला है। उस से सिद्ध होता है कि 'खोट्टिग' की मृत्यु आश्विन शुक्ल १५ सं० १०२९ से पूर्व ही हो चुकी थी और उस समय तक हर्षदेव के भीषण आक्रमण के पश्चात् इतना समय बीत चुका था कि राजधानी में फिर से शान्ति और सुप्रबंध स्थापित हो जाय। यदि ऐसा न होता तो उक्त समय में मान्यखेट के राजा को दान पत्र निकालते बैठने का अवकाश न मिलता। इस से अनुमान किया जा सकता है कि वि० सं० १०२९ में उक्त घटना कम से कम पाँच सात वर्ष पुरानी हो चुकी थी। हर्षदेव का आक्रमण मलयखेट पर कब हुआ इस का कुछ अनुमान इस प्रकार लगाया जा सकता है। 'महापुराण', 'सिद्धार्थ' संवत्सर में प्रारम्भ हो कर क्रोधन संवत्सर में समाप्त हुआ था। अतः उस के १०२ परिच्छेदों की रचना में कवि को छह वर्ष लगे, जिस की औसत एक वर्ष में १७ परिच्छेदों की आती है। कविने मान्यखेट की लूटमार का उल्लेख आदिपुराण के ३७ य उत्तर पुराण के ४९ परिच्छेद पूर्ण हो जाने पर किया है। उत्तर पुराण के शेष १६ परिच्छेदों की रचना में कवि को अधिक से अधिक एक वर्ष लगा होगा। अतः वि० सं० १०२२-१ = १०२१ के लगभग मान्यखेट की लूटमार होना सिद्ध होता है। लगभग आठ वर्ष पुरानी घटना का वि० सं० १०२९ में हुई जैसी उल्लेख करने का यह कारण हो सकता है कि हर्षदेव मान्यखेट पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् और कई प्रदेशों को जीतते हुए वि० सं० १०२९ में धारा राजधानी में पहुँचे होंगे। इस विजय यात्रा में मान्यखेट की विजय ही सबसे अधिक कीर्तिकारी हुई होगी। इसी से धनपाल ने उस का उल्लेख विशेषरूप से किया। 'ऐसी यात्रा में सात आठ वर्ष व्यतीत हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है।

महापुराण की उत्पत्तिका से विदित होता है कि पुष्पदन्त किसी राजा द्वारा सताये हुए मान्यखेट पुर को आये थे। आंध्र-कर्नाटकदेश में विक्रम की १० वीं शताब्दि तक तो जैन-धर्म का खूब जोर रहा और वहाँ के राजा जैन आचार्यों की अच्छी भक्ति करते रहे, पर दशवीं शताब्दि के अन्तिम भाग में वहाँ शैवधर्म का प्राबल्य बढ़ा और जैनियों को आपत्ति पहुँचाने जाने लगी। 'धारंगाल कैफियत' से जाना जाता है 'राजराज नरेन्द्र' के समय में वहाँ के एक बड़े जैन आचार्य 'द्युपमनाथ तीर्थ' को राजधानी 'राजमहेन्द्री' छोड़ कर धारंगाल भाग जाना पड़ा था, जिस का कारण उन का राजराजनरेन्द्र द्वारा सताया जाना हो विदित होता है। यह राजा कट्टर शैव था, जो सन् १०२२ (शक ९४४) में राजमहेन्द्री के तख्त पर बैठा। क्या आश्चर्य यदि महाकवि पुष्पदन्त भी यहाँ के किसी ऐसे ही राजा द्वारा सताये हुए मान्यखेट आये हों। यदि मान्यखेट के राष्ट्रकूट नरेश जैनधर्म में श्रद्धा और जैन कवियों को आश्रयदान के लिये खूब विख्यात थे। यही नहीं, उन में से कई स्वयं अच्छे कवि हुए हैं। 'प्रश्नोत्तर रत्नमाला' के कर्त्ता अमोघवर्ष प्रसिद्ध ही है। इन्हीं की छत्र-छाया में जिनसेन, गुणमद्र, सोमदेव, महाधोराचार्य आदि धुरंधर जैन आचार्यों ने वह जैनधर्म की ध्वजा फहराई थी। मान्यखेट में जैन कवियों का

अच्छा जमाव रहता था। कवि ने स्वयं उसे 'दीनानाथ-धनं सदा बहुधनं' कहा है। इसी कीर्ति से आकर्षित हो कर पुण्ड्रन्त मान्यखेट आये होंगे। पर वे 'अभिमान मेरु' थे, इस से सीधे राजदरबार में नहीं गये। नगर के बाहर ही एक उपवन में टिक रहे। पर मान्यखेट में उन के जैसे कवि रत्न देर तक छिपे नहीं रह सकते थे। वे मंत्री भरत से मिला दिये गये। वहाँ उन का खूब आदर सत्कार हुआ, स्वयं भरत के प्रासाद में उन्हें रहने को स्थान दिया गया और वे कविता करने को प्रोत्साहित किये गये।

यह निर्णय किये जाने के अभी कोई साधन उपलब्ध नहीं हैं कि महापुराण से कितने समय पश्चात् 'यशोधर चरित' और 'नागकुमार चरित' की रचना हुई। पर इतना निश्चित है कि वे दोनों महापुराण से पीछे लिखे गये हैं। महापुराण पूर्ण होने तक भरत मान्यखेट के मंत्रित्व पद पर थे। पर अन्य दो काव्यों की रचना के समय उन के पुत्र 'नन्न' उक्त पद को विभूषित कर रहे थे। उन्हीं की प्रेरणा से उन्हीं के शुभहंग प्रासाद में रहते हुए कवि ने उक्त दो काव्यों की रचना की। इन काव्यों में यथावसर 'नन्न' की ही कीर्ति वर्णित है। इस समय या तो भरत की मृत्यु हो चुकी थी या उस समय की प्रथा के अनुसार वे अपने चौथे पुत्र में संसार से विरक्त हो, गृहभार अपने सुयोग्य पुत्र को सौंप, मुनि-धर्म का पालन करने लगे थे। आश्चर्य है कि कवि ने अपने काव्यों में इस विषय का कोई उल्लेख नहीं किया। 'नागकुमार चरित' की रचना के समय कवि के माता पिता भी स्वर्गवासी हो चुके थे।

हम ऊपर सिद्ध कर चुके हैं कि कृष्णराज की मृत्यु महापुराण पूर्ण होने से पूर्व ही हो चुकी थी। पर 'यशोधर चरित' और 'नागकुमार चरित' में जो वह्मभराय का उल्लेख आया है उस पर भी महापुराण के समान 'कृष्णराज' ऐसा टिप्पण पाया जाता है। टिप्पणकर्ता की यह अवश्य भूल है वहाँ 'वह्मभराय' से कृष्णराज के उत्तराधिकारियों का तात्पर्य लेना कई स्थानों पर उन्होंने अपनी चुके हैं कि राष्ट्रकूट वंशी सभी राजा 'वह्मभराय' कहलाते थे। का वह भाव रहा हो और अंकों और नागकुमार चरित के अतिरिक्त भी महाकवि पुण्ड्रन्त ने होता है। अंक का लालन भी अर्थ देने के लिये कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। से उसमें संघत् का भाव निकले। उक्त पद —

'यति' का अपभ्रंश-रूप विदित होता है। उसने का का कुछ भाग] उसकी अंक संख्या ७ मानी जा सकती है। 'अहिमल वज्रिउ गुणभरिउ । का बोध होता है और उसकी अंक संख्या ८ लो जा सक्ता, चारु चरिउ ॥ लिये में कोई प्रमाण नहीं पा सका। पर यदि उसने ८ का भाव ई दिति । वामतो गतिः ' के नियमानुसार हम इन अंकों को 'दाये से बाईं' भ्रम धरति ॥ निकल सकता है। बहुत सम्भव है कि इस पद में ऐसा अर्थ हो, पगयति । कोई प्रमाण न मिल जाये तब तक इस कल्पना पर अधिक जोर नहीं देते ॥ १ ॥

जब हम यह सिद्ध करते हैं कि महापुराण शक संवत् ८८७-८ चित्तु । हुआ था तब हमें मानना पड़ेगा कि मान्यखेट की जिस लूटमार का गण महंतु ॥ तीसरे पण ॥ ११ ॥

२५ जैन शास्त्रों में 'मेरु' पांच माने गये हैं। शक संवत् ५८७ की क्रोधन पण्डन्त के लिये ठीक नहीं माना जा सकता । पय ।

तुहं वाईसरि देवी निकेउ । तुहं अम्हहं पुण्ण निबंघ हेउ ॥
 तुहं भवजीव पंकरुह भाणु । पइं धणु मणे मण्णिउ तिण समाणु ।
 गुणवंत भत्तु तुहं विणय गम्मु । उज्झाय पयासहि परम धम्मु ॥
 घत्ता । ओल्लगिउ भावै दिणि जिदिणे । णिय मण पंकरुण्णि वव्विउ ।
 कइ कव्व पिसल्लउ जस धवल्लु । सिसजुयलेण पविण्णवउ ॥
 भणु भणु सिरि पंचमि फलु गहीरु । आयण्णहि णायकुमारु वीरु ।
 ता वल्लहराय महत्तण्ण । कलिविलसिय-दुरिय-कयंतण्ण ॥
 कोण्डिण्णगोत्त-णह-ससहरेण । दालिहकंद-कंदल-हरेण ।
 वर कव्व रयण रयणायेरेण । लच्छी पोमिणि माणस सुरेण ॥
 पसरंत किस्ति वहु-कुलहरेण । विच्छिण्ण संरसइवंधयेण ।
 वहु दीणलोयपूरिय धणेण । मइ-पसर-परजिय-परवलेण ॥
 णियवइवि दिण्ण चितियफलेण । छण इंद विव सन्निह मुहेण ।
 कुंदव्व-भरह दिय तणुरुहेण ।

णण्णेण पवुत्तु महाणुभाव । भो कुसुमदसण हय वसण ताव ।
 करि कव्व मणोहरु मुयहि तंदु । जिणधम्म कज्ज मा होहि मंदु ॥
 आयण्णमि भणु हउं णिम्मलाइं । सियपंचमि उववासहो फलाइं ।
 णण्णेण पवोह्मिउ पम जाम । णाइल्लइं सीलइं एण ताम॥

घत्ता । कइ भणिउं समंजसु जस विमल्लु, णण्णु जि अण्णु न घरसिरिहे ।
 तहो केरउ णाउ महग्घयरु, देविहिं गायउ सुरगिरिहे ॥
 तं तुहंपि चडावहु निययकव्वे । दिहि होउ णण्णे आसण्ण भव्वे ।
 बुद्धीए णण्णु सुरगुरु णमंति । पर णण्णहो णउ वइरिय जिणोति ॥
 पइभत्तिए हणु व समाणु दिहु । परण्णणु ण वाणरु णरु विसिहु ।
 गांउ सउच्चै जाणिय तुट्ठि । पर णण्णु ण वइरिहुं देर पुट्ठि ॥

धम्मेण जुहिट्ठिलु धम्मरत्तु । पर णण्णु पवासदुहेण चत्तु ।
 चापण कण्णु जण दिण्ण चाउ । पर णण्णु ण वंधुहुं देर घाउ ॥
 कंतीए मणोहरु छण ससंकु । पर णण्णहो णउ दीसइ कलंकु ।
 गरुयत्तं महि सुविसुद्ध चरिउ । पर णण्णु ण किउि दादइ धारेउ ॥
 सुथिरत्तं मेरु भणंति जोइ । पर णण्णु पुरिसु पसरु ण होइ ।
 सायरु व गहीरु कयायेरेहिं । पर णण्णु ण मंथिउ सुरवरेहिं ॥

घत्ता । जो एहुउ वण्णिउ वर कइहि । भावै णियमणे भावहि ।
 तहो णण्णहो केरउ णाउ तुहं । सुललिय कव्वे चडावहि ॥
 णाइल्ल सील भट्टारु वयणु । तं आयण्णेवि नयकमल वयणु ।
 पडिजंपइ वियसिरि पुष्फयंतु । पडिक्कामि णण्णु जि गुणमहंतु ॥
 धणु पुणु महुं तणु व तणाउ कहु । धम्मेण णिवहु मुपवि सहु । (शालं)
 हउं कहउं कव्वु णिंदहु पिसणु । वण्णंतु सुयण विष्फुरिय वयणु ॥
 दुज्जण सज्जणहो सहाउ पहु । सिहि, उण्हउ सोयलु होइ मेहु ।

भो णिसुणि णण्ण कुलकमल सूर । सुरसिहरि धीर पडिक्खण सूर ॥
जिण भणितं अणंताणं गयणु । तहो मज्जे परिठित तिविहु भुअणु ।
पहिलउ मल्लय संकासु दिट्ठु । वीयउ कुलिसोचमु रिसिहि सिट्ठु ॥
तइयउ मुइंद साण्हि कहंति । अरहंत अरह भणु किं रहंति ।

बस्ता । तइ लोकु कमलरुह हरि हरिहि ण धरिउ ण किउ ण णिट्ठियउ ।
तहिं वहु दीवोवहि मंडियउ । मज्झिउ भुअणु परिट्ठियउ ॥
इय णाय कुमार चासु चरिए नग्ननामंकिप महाकइ पुण्फयंत विरइए महाकल्ले
जयंधर-विवाहकल्याण दण्णणो नाम पढमो परिच्छेओ सम्म तो ॥ छ ॥

(नागकुमार चरित का अंतिम भाग ।)

गोत्तम गणहर एवं सिट्ठउ । सूरिपरंपराए उचइट्ठउ ।
णायकुमारचरितु पयासिउ । इयसिरिपंचमि फल मइ भासिउ ॥ १ ॥
सो णंदउ जो पढइ पढावइ । सो णंदउ जो लिहइ लिहावइ ।
सो णंदउ जो विवरि विदावइ । सो णंदउ जो भावै भावइ ॥ २ ॥
णंदउ सम्मइ सासणु सम्मइ । णंदउ पयसुह णंदउ नरवइ ।
चिंतिउ चिंतिउ वरिसउ पाउसु । णंदउ णण्ण होउ दीहाउसु ॥ ३ ॥
णण्ण हो संमयंतु सुपविस्तरं । णिम्मल दंसण णाण चरित्तं ।
णण्णहो होउ पंच कल्लाणइ । रोय-सोय-सयकरण विहाणइ ॥ ४ ॥
णण्णहो जसु भुअणत्तए धिलसउ । णण्णहो घरे वसुहार पवारिसउ ।
सिवमत्ताइमि जिणसण्णासैं । वे धि मयाइ दुरिय णिण्णासैं ॥ ५ ॥
बंभणइ कासवरिसि गोत्तइ । गुरुवयणामय पूरिय सोत्तइ ॥
मुद्धापवी केसव णामइ । महुं पियराइ होंतु सुहधामइ ॥ ६ ॥
संप्पज्जउ जिण भावै लइयहो । श्यणत्तए विसुद्धि दंगइयहो ।
मज्झु समाहि बोहि संपउजउ । मज्झु धिमलु केवलु उप्पज्जउ ॥ ७ ॥

बस्ता । णण्णहो मज्झु धि दय करउ । पुण्फयंत जिणणाहपियारी ।
खमउ असेसु वि दुव्वयणु । वसउ वयणे सुयदेवि भडारी ॥ ८ ॥
सुहत्तंग भवण वावार भार णिव्वहण वीर धवलस्स ।
कौंडल गोत्त नहससहरस्स पयइए सोमस्स ॥ ९ ॥
कुंदव्वागम्भसमुव्वस्स सिरि भरहमइ तणयस्स ।
जस पसर भरिय भुअणोयरस्स जिणचरण कमल भसलस्स ॥ १० ॥
अणवरय रइय वरजिणहरस्स जिण भवण पूयणिरयस्स ॥
जिण सासणायमुद्धारणस्स सुाणदिण्णदाणस्स ॥ ११ ॥
कलिमलकलंक परिवज्जियस्स जियदुविहवइरिणियरस्स ।
कारुणकंद णव जलहरस्स दीणयण सरणस्स ॥ १२ ॥
णिवल्लळो कीला सरवरस्स बायसरि णिवासस्स ।
णिस्सेस धिउस विज्जाधिणोय णियरस्स सुद्ध हिययस्स ॥ १३ ॥
णण्णस्स पत्थणाए कव्व पिसल्लेण पहासिय सुहेण ।
णाय कुमार चरित्तं रइयं सिरिपुण्फयंतेण ॥ १४ ॥

કવિવર સમયસુન્દર

—૧૯૧૬—

(ભાવનગર મુકામે ભરાએલી ૭ મી ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદ
માટે લખાએલો નિબંધ.)

—૧૯૧૬—

[લેખક: શ્રીયુત મોહનલાલ દલીચંદ દેશાઈ, વી.એ. એલ.એલ. વી.; મુંબઈ.]

જૈન સાધુઓ ભારતની એક ધાર્મિક સંસ્થા છે અને પોતાના આચાર-નિયમ પ્રમાણે બ્રમણશીલ-પરિત્રાનક છે. એક વર્ષમાં એકી સાથે આતુર્ભાસ એક સ્થળે ગાળવું તેમને અપરિહાર્ય છે, ત્યારે બાકીના આઠ માસમાં એક ગામથી બીજા ગામ અપ્રતિહત વિહાર કરી દરેક સ્થલે ઉપદેશ આપતા રહી વિહાર કર્યે બંધ છે. લગભગ પચીસસો વર્ષ પહેલાં થયેલા ધર્મ સંસ્થાપક શ્રી મહાવીરના અનુયાયી જૈન બ્રમણોની સંસ્કૃતિ સમય ધર્મ પ્રમાણે અનેક ઉદય અને અસ્તના હિંદોલે હીંચીને હજુ સુધી પણ અખંડ ધણે ચાલી આવી છે. તે બ્રમણ-પંથે સ્થાયેલા દયા ધર્મની અસરથી ભારતમાં હિંસક યજ્ઞયાગ પંથ પડ્યા એટલું જ નહિ પણ જાતિભેદના જુલમને ઘણા સૈકાઓ સુધી વિશેષ અવકાશ મળ્યો નહિ. વિશેષમાં કાવ્ય, નાટક, કથા-ભાષા વગેરે સાહિત્ય પ્રદેશમાં પણ તે બ્રમણોએ દરેક શતકમાં-દરેક યુગમાં અન્ય પંથોની સાથે સાથે પ્રબળ કાવ્યો આપ્યા છે, અને એ સત્યની પ્રતીતિ તેના સાહિત્યનો ઇતિહાસ લખાશે ત્યારે અતિ સ્પષ્ટ રીતે અને જરૂર થશે.

સંસારની ઉપાધિઓના બંધનથી મુક્ત એવા નિર્બંધ પંખીઓ પેઠે વિચરતા માત્ર ધર્મ પરાયણ જીવન ગાળવા નિર્માયેલા સાધુઓના સર વિશ્વખંધુ ભાવનાં, પ્રભુ ભક્તિનાં, અને નીતિના ઉપદેશનાં ગીતો ગાવામાં જ નીકળી શકે. પોતપોતાના જમાનાની ભાવનાઓને વ્યક્ત કરવી; પોતાના સમયના જૂદા જૂદા આદર્શોને અને નોખા નોખા વહેતા લાગણી-પ્રવાહોને એકત્ર કરી પથગમ્યરી વાણીમાં તેનું ઉદ્દ્યોધન કરવું એ કવિઓનું કર્તવ્ય છે. સામાન્ય લોકોના દિલમાં જે સુન્દર ભાવો બળે-પણ જે સમજવાની કે સમજાવવાની તેમનામાં તાકાત નથી-તેમને ભાષા આપવી, તેમને અમર વાણીમાં વ્યક્ત કરવા એ કવિઓનું કાર્ય છે. નિર્બંધ પંખીઓમાં કોકિલા જેવું બ્રમણશાલી

શિષ્ય સુન્દરદાસે (જન્મ સં ૧૬૫૩, દાદુજી પાસે દીક્ષા સં ૧૬૫૮, મરણ ૧૭૪૬) વેદાન્ત જ્ઞાનને સુમધુર સરલ અને ઉચ્ચ હિન્દી શબ્દોમાં વિવિધ પ્રકારની રચના કરી. તેમણે અદ્વૈત બ્રહ્મવિદ્યાનો પ્રચાર કરવાથી અને તેઓ અતિ કુશલ વિદ્વાન હોવાથી તેમને દાદુ પંથીઓ 'ગીબ શંકરચાર્ય' કહે છે. ૧

ગોસ્વામી તુલસીદાસ:—(જન્મ સં ૧૬૦૦; મરણ સં ૧૬૮૦) આ હિન્દી સાહિત્યના અપ્રતિમ મહાકવિ છે. તેમણે રામાયણ રચી તે એટલી બધી આજ્ઞાસુધી પ્રસિદ્ધ છે કે, તેનું વાંચન દરેક હિન્દી કુટુંબમાં થાય છે. તેમજ અનેક હિન્દી શબ્દો રચ્યાં. અકબરના પ્રસિદ્ધ કવિ ગંગતા તથા અન્ય હિન્દી પ્રસિદ્ધ કવિ વિહારી તથા કેશવદાસના સમકાલીન છે.

મહારાષ્ટ્રમાં અદ્વાર પર્વના મહાભારતને મરાઠીમાં પહેલવહેલાં અવતારનાર કવિ વિષ્ણુદાસ, અને મુકેતેશ્વર (જન્મ ૧૬૫૬, સ્વર્ગ ૧૭૦૬) તેમજ પ્રસિદ્ધ સંતકવિઓ એકનાથ (જન્મ સં ૧૬૦૫, સ્વ ૧૬૫૬); તુકારામ (જન્મ સં ૧૬૩૪ થા ૧૬૬૪-સ્વ ૧૭૦૮), સમર્થ રામદાસ (જન્મ સં ૧૬૬૫ સ્વ ૧૭૩૮) આદિ થયા.

ગૂર્જર ભાષાના આ યુગ માટે જોમ કહેવામાં આવે છે કે 'જે ભાષાના પ્રથમ યુગમાં-સાહિત્યના પ્રભાવમાં-નરસિંહ મહેતા જેવા ભક્ત કવિનાં પ્રભાવિયાં ગાળી રહ્યાં હતાં તેના મધ્ય યુગમાં-સોળમ અને સત્તરમા શતકમાં-કવિતાનાં સ્વર્ગીય જ્ઞાનનો પવનિ છેક મન્દ પડી ગયો.'-આ વાત સત્ય નથી. જૈનેતર ગૂર્જર કવિઓ આ યુગમાં વધુ સંખ્યામાં મળી નથી આવ્યા તેથી તેવી વાત મૂકવામાં આવે તે સ્વાભાવિક છે, પણ અને ખાતરી છે કે આ ઉત્પત્તિના અને જાગૃતિના યુગમાં અનેક જૈનેતર ગૂર્જર કવિઓ થયા હોવા બેઠકો અને તે શોધખોળ કરતાં સાંપડી શકશે. ન્યારે મધ્ય યુગમાં જૈન કવિઓ માટે તો નિર્વિવાદ રીતે સ્પષ્ટ કહી શકાય તેમ છે કે તેમણે સાહિત્યની ધારા અખંડ નિરાવરણ અને નિર્મલ રાખી, તેનામાં ઓજસવાળું પયઃ સિંચી તેને બલવતી, વેગવતી અને ઉજવલ બનાવી હતી.

આ સત્તરમા શતકમાં જોમ અગ્રેજીમાં, રાણી એલિઝાબેથનો સમય (સં ૧૬૧૫-

૧ રાધવીય ભક્તમાત્રમાં જણાવ્યું છે કે 'શંકરાચાર્ય દ્વસરો, દાદુ કે સુન્દર ભયો.' આ સુન્દરદાસજી સં ૧૬૬૩-૧૬૮૨ કાલીમાં રહી વિદ્યા લઘુ લેખને આપી, યજ્ઞી બહુ પંથન કર્યું. સુન્દરદાસમાં પણ તે બુદ્ધી કાળ રહ્યા હતા અને સુન્દરદાસી ભાષા પોતે રોષ્ટ્રી ભાષી હતી. તેના અપ્રસિદ્ધ 'દશો દિશાકે સવેયે'માં સુન્દરદાસ સંખ્યા બધી લખ્યું છે કે:—

‘આભડછેત અતીત સૌ કાળિયે, બિલાઈ રૂ કૂકર ચાટત હાંડી’

આ પરથી જણાય છે કે વૈષ્ણવ સંપ્રદાયની અસરથી સુન્દરદાસમાં આભડછેત પર લેકોનું શબ્દ બિદ્યનું રહેતું ફરે.

૧૬૬૦) ઉક્ત ભાષા માટે એક મહાન ઉત્પત્તિનો છે, તેવો જ અકબરનો રાજત્વકાલ (સં ૧૬૧૩-૧૬૬૨) સર્વ દેશી ભાષાઓ માટે વૃદ્ધિ અને ગૌરવનો યુગ થયો છે. બંને દેશોમાં આ સમૃદ્ધિશાલી સમયમાં અતિશય સંતોષજનક ઉન્નતિ થઈ છે અને સારા સારા કવિ અને લેખક પાડ્યા છે. ઉદ્ધૃ ભાષાની સ્થાપના-પ્રતિષ્ઠા મુખ્યપણે આ સમયમાં થઈ. હિંદી ભાષાના સમયવીર-મુખ્ય નાયક ગોસ્વામી તુલસીદાસ આ યુગમાં થયા કે, જેમનો કવિતાકાલ (સં ૧૬૩૧-સં ૧૬૮૦) છે. તે મહાનુભાવ-મહાત્માએ રામાયણ આદિ રચી હિન્દી પર જેટલો ઉપકાર કર્યો છે તેવો કોઈએ કર્યો નથી; કવિપ્રિયાં અને રસિકપ્રિયાના કર્તો હિન્દી કવિ કેશવદાસ (કવિતાકાલ સં ૧૬૪૮-૧૬૬૮) એક પ્રતિષ્ઠિત નામી કવિ થયા; આ ઉપરાંત અકબરના દરબારમાંના ગંગકવિ, બીરબલ (‘બ્રહ્મ’ ઉપનામથી) આદિ, તેમજ સેનાપતિ, દાદા દયાલ, સુન્દરદાસ, બનારસીદાસ પ્રભૃતિ કવિઓ ઉદ્ભવ્યા. આ યુગકાલમાં આની પહેલાં સૂરદાસ આદિએ વ્રજભાષાદ્વારા કૃષ્ણ કવિતા પર અધિક ધ્યાન આપ્યું હતું, જ્યારે તુલસીદાસના કાલથી રામભક્તિની ધારા વહી અને પછી રામભક્તોએ કૃષ્ણની પેઠે રામનું પણ શૃંગારપૂર્ણ વર્ણન કર્યું. (આની અસર જૈનસાહિત્યમાં નેમિનાથ-રાણુલ અને સ્થુલિભદ્ર ને કોશ્યાના પ્રસંગો લઈ શૃંગાર પર મર્યાદિત સ્વરૂપે ઉત્તરી વૈરાગ્ય પરિણામ પર લાવવા પ્રત્યે જૈન કવિઓ પ્રેરાયા હોય એવું સંભવે છે) મહારાષ્ટ્રમાં મહાભારત મરાઠીમાં અવગત થયું અને તત્ત્વજ્ઞાનમય અભંગો-દાસબોધ જેવા તાત્ત્વિક ઉપદેશો ભાષામાં ઉતરવા લાગ્યા. આવા પ્રતાપી-ઉત્સાહભર્યા શતકમાં ગૂજરાતી સાહિત્યમાં ગાનનો ધ્વનિ મંદ પડે એ માનવાને આંચકો આવે.

મધ્યયુગ ભાષા

ગૂર્જર પ્રાચીન સાહિત્યના ત્રણ યુગ નામે અપભ્રંશ યા પ્રાચીન ગુજરાતી યુગ, મધ્યકાલીન યુગ અને અર્ધાચીન યુગ એમ પાડીએ, તો અપભ્રંશ યુગમાં ‘અપભ્રંશ કિંવા પ્રાચીન ગૂજરાતીનાં વ્યાકરણ આદિપ્રવર્તક અને પ્રાકૃત બોલીઓના પાણિની-હેમાચાર્ય (વિં સં ૧૧૪૫ થી ૧૨૨૬), પ્રબંધચિંતામણિના કર્તો મેઘુતુંગ (વિં સં ૧૩૬૧), કવિ ધનપાલ (લવિષ્યદત્ત કથાના કર્તા) આદિ અનેક જૈન ગ્રંથકારોએ પ્રણેત્ર સાહિત્ય-સેવા કરી છે. જૈન લંકાદેશમાં અપભ્રંશનાં અનેક પુસ્તકો મળી શકે તેમ છે. એ સિદ્ધ વાત છે કે સંવત પંદરમા સૈકા સુધી સૌરાષ્ટ્ર, ગુજરાત અને રાજસ્થાન એ સર્વ પ્રદેશોમાં અપભ્રંશ ભાષા જ વ્યાપક ભાષા તરીકે પ્રવર્તતી હતી. સંવત ૧૩ માં સૈકાથી સં ૧૫૫૦ સુધીની ભાષાને અન્તિમ અપભ્રંશ ભાષા ગણી શકીએ. આને ડાઠ ટેસ્ટીટરી જૂની પશ્ચિમ રાજસ્થાની ભાષા કહે છે.

મધ્યકાલીન યુગ વિક્રમ પંદરમા શતકથી સત્તરમા શતકનો ગણીએ તો તેમાં પંદરમા શતકમાં થોડા, પણ સોળમા શતકમાં ઘણા વધુ, અને સત્તરમામાં તો અતિ વિપુલ પ્રમાણમાં જૈનકવિઓ અને ગ્રંથકારો મળી આવે તેમ છે. મધ્યકાલીન કે અર્ધાચીન યુગમાં

એક પણ શતક જૈનોની ગૂર્જર સાહિત્યસેવા વગરનું રહ્યું નથી. જૈન સાધુઓએ ભંડારદાસ આ સર્વ સાચવી રાખ્યું છે, તે માટે તેમને ધન્યવાદ ઘટે છે, અને તેથી તે સર્વ સાહિત્યનો ઇતિહાસ અખંડ લખી શકાશે. તેમ થયે વિશેષ પ્રભાનાં દર્શન થશે.

રા. નરસિંહરાવે આંકેલ ગૂર્જરાતી ભાષાના વિકાસક્રમની સમયરેખામાં સં' ૧૬૫૦ થી ૧૭૫૦ સુધીની ભાષાને 'મધ્ય ગૂર્જરાતી' કહી છે. આ મધ્ય ગૂર્જરાતી કે ઉપર નિર્દેશેલ મધ્યકાલીન યુગમાં પ્રસ્તુત કવિ (વિક્રમ સત્તરમા સૈકા) થયેલ છે. તે સૈકામાં અનેક સુંદર કૃતિઓ રચી પોતાને સિદ્ધહસ્ત આખ્યાન-કથા કવિ તરીકે સિદ્ધ કરનાર જૈનકવિઓ નામે કુશલ લાલ (કૃતિઓ સં' ૧૬૧૭ થી ૧૬૨૪), સોમવિમલ સૂરિ (કૃતિ સં' ૧૬૧૫ થી ૧૬૩૩), નયસુંદર (કવિતાકાલ સં' ૧૬૩૨ થી ૧૬૬૯), પ્રસ્તુત કવિ સમયસુંદર (સં' ૧૬૫૮ થી ૧૭૦૦), અને શ્રાવક કવિ ઋષભદાસ (કવિતાકાલ સં' ૧૬૬૨ થી ૧૬૮૭) એ પાંચ અગ્રણ્ય લે છે. આ પૈકી ઋષભદાસ સંખંધી લેખ પાંચમી ગૂર્જર સાહિત્ય પરિપક્વમાં મેં જરા વિસ્તારથી લખી મોકલ્યો હતો તે છપાઇ ગયો છે, અને નયસુંદર સંખંધી મારો નિખંધ આનંદ કાવ્ય મહોદધિના છૂટા મૌકિતકની પ્રસ્તાવનામાં પ્રકટ થયો છે. આ લેખદ્વારા કવિવર સમયસુંદર સંખંધી-કંઇક હકીકત જણાવવાં મેં પ્રયત્ન કર્યો છે.

૧. મધ્યયુગનું કથાસાહિત્ય.

સં' સપ્તમા સૈકાના પ્રારંભથી લોકકથાઓને કાવ્યમાં મૂકવાના સુંદર પ્રયાસો જૈન સાધુઓના હાથથી થઇ રહ્યા હતા. માત્ર પોતાના ધાર્મિક કથા સાહિત્યમાંથી જ વસ્તુ લઈ જૈન સાધુઓએ પોતાનું-જૈન કાવ્ય સાહિત્ય અખંડપણે ઉત્પન્ન કર્યું છે (જેમ પ્રેમાનંદાદિએ કર્યું છે તેમ), એટલું જ નહિ, પણ તે ઉપરાંત લોકકથાઓને પણ કાવ્યમાં (શામળહાસાદિની માફક) ઉતારી છે; વિશેષમાં તેઓએ, એ ખંને કવિઓ-પ્રેમાનંદ અને શામળહાસ-ની અગાઉના સૈકામાં એટલે સંવત સત્તરમા સૈકામાં-તેના : પ્રારંભથી ભાષામાં અવતાર્યું છે.

જોના સમર્થનમાં કહીશું કે સં' ૧૫૬૦ માં સિંહકુશલે નંદળગ્રીથી રચી, ઉદયલાલએ વિં' સં' ૧૫૬૫ માં વિક્રમસેન ચોપાઇ રચી કે જેના માટે રા. મણિભાઈ બકોરભાઈએ મોંઘ કરી છે કે 'પાંચસે' છાંસક ટુંકનો આ પ્રખંધ છે. દરેક રીતે તે શામળહાસની વાતો સાથે હરીફાઇ કરે તેવો છે. આ પ્રખંધની રચના કોઇપણ રીતે શામળહાસની વાતોથી ઉતરતા પ્રકારની નથી; ત્યારપછી કુશલલાલે સં' ૧૬૧૬ માં માધવ-કામકુંડલા

૨ કુશળલાલ-પરતર ગજલના અભયધર્મ ઉપાધ્યાયના સિધ્ધ. તેમણે ઉક્ત બે કથાઓ ઉપરાંત તેજસાર રક્ષ, વીરમગામમાં સં' ૧૬૨૪ માં, અગડતગ્રાસ, નંવકાર છંદ, ગોડી પાશનાથ છંદાદિ રચેલ છે.

પર રાસ, અને સં' ૧૬૧૭ માં માણેલા પર ચોપઈ; ઉદ્દેશીલે સં' ૧૬૧૯ માં 'વેતાલ પચવીશી અને હેમાનંદે તેજ નામનો અંથ સં' ૧૬૪૬ માં; શુભમેરૂસરિ શિષ્ય રત્નસુંદર ઉપાધ્યાયે પંચોપાખ્યાન (પંચતંત્ર) ચતુષ્પદી સં' ૧૬૨૨ માં સાણંદમાં અને શુકબહોતરી ઉર્ફે રસમંજરી સં' ૧૬૩૮ માં ખાંભતમાં, શ્વચ્છરાજે નીતિશાસ્ત્ર પંચાખ્યાન (પંચતંત્ર) ચોપઈ સં' ૧૬૪૮ માં; પહીરકલશે સિંહાસનખત્રીશી સં' ૧૬૩૬ માં; મંગલમાણેકે વિક્રમાદિત્ય અને ખાપરા ચારનો રાસ સં' ૧૬૩૮ માં; નરપતિ કવિએ વિક્રમાદિત્ય ચોપઈ સં' ૧૬૪૯ માં અને નંદખત્રીશી; હેમરતને ગોરાવાદલ પદ્મિણી કથા ચોપઈ સં' ૧૬૬૦ માં; સારંગે લોજપ્રબંધ ચોપઈ સં' ૧૬૫૧ માં; અને બિલ્હિણ પંચાશિકા; અને કનકસુંદરે સં' ૧૬૬૭ માં સગાલ શા રાસ; એમ અનેક કવિઓએ અનેક કૃતિઓ રચી છે. જૈનેતરમાં માત્ર એકાદ જેમકે સં' ૧૫૭૪ માં આચપદ્ર (આમોદ)ના કાયસ્થ કવિ નરસા સુત, ગણપતિએ માધવાનળની કથા ગૂજરાતીમાં ખનાવેલી લોકકથા મળી આવી છે અને શોધ કરતાં બીજા પ્રણેયો ઘણી મળી આવે. જે કે સત્તરમા શતકના ઘણાખરા મળેલા અંથો ધાર્મિક છે, પ્રણેયો તેમાં આ લોકકથાના અંથ મળવાથી તેમાંથી લૌકિક બાબતો ઘણી પ્રાપ્ત થઈ શકે તેમ છે.

કેટલાકો એમ માનતા હતા અને માને છે કે ગૂજરાતીમાં વાર્તાઓ લંબનાર મૂળ કવિ શામળભટ્ટ આદિ છે; પરંતુ તેમની પહેલાંના જૈન રાસાઓમાંથી અનેક રાસાઓ વાર્તાઓ રૂપે બનાવેલા મળી આવે છે: એ વાત ઉપર કાર્ત્તીઓ અને તેમની કૃતિઓનો

૧. ઉદ્દેશીલ-તપાગચ્છના સૌભાગ્યસુરિ શિં સોમવિમલસુરિ શિં લક્ષ્મીભદ્ર શિં ઉદ્દેશીલ શિં ચારિત્રદીપ શિં પ્રમોદશીલના શિષ્ય. તેની આ કૃતિ રા. જગજીવનદાસ દયાલજી મોદીએ વડોદરામાં પ્રસિદ્ધ કરી છે.

૨. શ્વચ્છરાજ-પ્રાચીનસુરિ-સમરસુંદર-રત્નચારિત્ર શિં તેની અન્ય કૃતિઓ સં' ૧૬૪૨ માં ખાંભતમાં શાંતિનાથ ચરિત્ર.

૩. પહીરકલશ-ખરતર દેવતિલક શિં હર્ષપ્રભ શિં અન્યકૃતિઓ સમ્યક્ત્વ કૌસુદી સં' ૧૬૨૪, કુમતિ વિષ્ણુ ચોપઈ સં' ૧૬૦૭.

૪. મંગલમાણેક-આંચલિક ગચ્છના બિડાલંબ ગચ્છ, સુનિરત્ન-સુરિ આનંદરત્ન-સુરિ જ્ઞાનરત્ન ઉદયસાગર-ભાનુભટ્ટ શિં તેણે વિશેષમાં અખંડ કયાનક ચોપાઈ સં' ૧૬૩૮ જેક શુદ્ધ ૧૫ ચુરે ચર કરી સં' ૧૬૩૯માં કાર્તિક શુદ્ધ ૧૩ ઉજ્જણીમાં નિજામના રાજ્યમાં પૂરી કરી છે.

૫. હેમરત-પૌર્ણમિક ગચ્છ દેવતિલક સુરિ-જ્ઞાન તિલક સુરિ-પદ્મરાજ ગણિ શિષ્ય. અન્યકૃતિ શીલવતી કથા સં' ૧૬૭૩ પાલીમાં બનવી.

આ બધા જૈન શ્વેતામ્બર સાધુઓ છે. ગૂજરાતના શ્વેતામ્બર સાધુઓએ કથા સાહિત્ય માટે કેવી સેવા બજાવી છે તે માટે જર્મન વિદ્વાન ડૉક્ટર હર્ટલફ્રીટ "ઓન ધી સિટરેયર આર્થ ધી શ્વેતાંબરામ્ આફ ગુજરાત." એ નામનું ચોપાનીયું અવલોક્યું.

નામ નિર્દેશ કરી જણાવી છે; તે પરથી શામળભટ્ટને વાર્તાઓના આદિ રચયિતા નહિ કહી શકાય. વિશેષમાં એ પણ સંભવ છે કે ૧૮ માં શતકમાં થયેલા શામળભટ્ટ પોતાની વાર્તાઓનાં મૂળ-વસ્તુ પણ પ્રાચીન જૈન કવિઓના વાર્તારૂપે લખાયેલાં રાસાઓ પરથી પ્રાયઃ લીધેલાં હોય. સં. ૧૫૭૨ માં સિંહકુશલે નંદળત્રીશી રચી છે કે જે દુઃકી. છે, તેની સાથે સરખાવો. શામળભટ્ટની નંદળત્રીશી કે જે વિસ્તારવાળી થયેલી છે. ઉપરોક્ત કુશલલાલની માધવાનળ અને કામકુડલાની કથા સાથે સરખાવો શામળભટ્ટ રચેલી બત્રીશ પુતળીની વાર્તામાંની ૨૬ મી માધવાનળની વાર્તા, કે જે કેટલીક થોડી બાબતમાં જૂદી પડે છે; પણ તે શામળભટ્ટની કથા ગાહુ સંક્ષેપમાં છે અને ઝાઝા માલ વગરની છે. તેમ વૈતાળ પચીસી, સિંહાસન બત્રીશી, સુડાળહોતેરી વગેરે જેવી કૃતિઓ સાથે શામળભટ્ટની તે નામની કૃતિઓ સરખાવી શકાય. વખતે જૈન કવિઓએ જેમ લોકમાં પ્રચલિત કથાઓને એકત્રિત આકારમાં ગોઠવી સંગ્રહ કરી યા કોઈ અન્ય ભાષાનાં ગ્રંથોમાંથી સ્વ ભાષામાં ઉતારી હોય, તેવી રીતે શામળભટ્ટે પણ કર્યું હોય. લોક કથાના સાગર રૂપ કથાસરિત્સાગર, ક્ષેમંકર કૃત સિંહાસન દાત્રિશિકા અને સંસ્કૃત વેતાલ પંચવિંશતિ જૂની-પ્રાચીન કૃતિઓ છે.

કેટલાક એમ કહેતા હોય કે જૈન સાધુઓ શૃંગારસથી યુક્ત કાવ્યને તે રચે યા રચવાનો દાવો કરે તો તે જૈન ધર્મનો દીક્ષિત યતિ જ ન કહેવાય. તો આના ઉત્તરમાં જણાવવાનું કે ઉપરોક્ત કુશલલાલની માધવાનળની કથા શૃંગારસથી ભરેલી ઉત્તમ પ્રતિની વાર્તા છે, એ રા. હરગોવિન્દદાસ કાંટાવાળાએ સ્વીકાર્યું છે. જૈન કવિઓ અલબત્ત ઉઘાડો અમર્યાદિત શૃંગાર નહિ મૂકે, કે જેથી જેમ શામળભટ્ટને માટે નર્મદ કવિને કહેવું પડ્યું કે ‘શામળભટ્ટે કેટલીક વાર્તાઓ ન લખી હોત તો સાહે’ તેમ જૈન કવિઓ માટે કહેવું નહિ જ પડે. “વિશેષમાં જૈન સાધુઓ જેમ અમુક સદ્ગુણનું પ્રતિપાદન કરે છે, તેમ આ (માધવાનળની કથાના) ગ્રંથમાં શીળનો મહિમા બતાવ્યો છે, એટલે તે બાબતમાં તે (જૈન કવિ) શામળભટ્ટ કરતાં ચઢે છે.....આ કૃતિ શામળભટ્ટની પૂર્વેના શતકમાં રચાઈ હતી.” (રા. હરગોવિન્દદાસ કાંટાવાળા).

આ કથા તેમજ માડૂ દોલાની ચોપાઈ બંને જેસલમેરમાં ત્યાંના મહારાજ રાવળ માલદેવજીના પાંદવીકુમાર શ્રી હરરાજજી (કે જેમણે વિ. સં. ૧૬૧૮ થી ૧૬૩૪ સુધી જેસલમેરનું રાજ્ય કર્યું) ના કુતુહલ અને વિનોદ અર્થે બનાવેલ છે. માડૂદોલાની ચોપાઈ સંબંધી એવી વાત છે કે હરરાજજીએ સં. ૧૬૧૭ માં અકબરનું સ્વામીત્વ સ્વીકારી

૮ સ્વ. ચિમનલાલ દાલાભાઈ દલાલનો માધવાનળ કામકુડલાની લોક કથાપર ‘સાહિત્ય’ મ આવેલ લેખ.

૯ લખપતિ શૃંગાર એ મથાળાનો લેખ. સ્વ. કવિ હવરામ અબરામર ગોર. શુભરાતી દીવાળી અ. સં. ૧૯૧૭.

દિલ્હી દરબારમાં જવા આવવા માંડયું હતું. એમણે પૃથ્વીરાજની કહેલ 'વેલિ' (કૃષ્ણ રૂકિમણીનીવેલી) ૧૦નાં વખાણ સાંભળી પોતેયુવરાજ હતા ત્યારે અને પટ્ટાભિષેક થયા પછી જેસલમેરના સર્વે કવિ અને વિદ્વાનોને એકઠા કરી 'મારૂંદોલાની' વાર્તાના પ્રાચીન દોહા એકઠા કરી તેને વાર્તાના આકારમાં ચથાક્રમે ગોઠવી જે ઉત્તમ ગ્રંથ બનાવશે તેને હું 'ઇનામ આપીશ' એમ કહી કેટલાક ગ્રંથો રચાવેલા પોતા પામે તૈયાર હતા તેમાંથી સર્વોત્તમ જે ગ્રંથ બન્યો હતો તે બાદશાહને ભેટ થયો. આ વાતને 'મારૂંદોલાની' વાર્તા પર ભેટલા ગ્રંથો બન્યા છે તે હરરાજાજીની આજ્ઞાથી બન્યા છે એવું છ સાત ગ્રંથોની પ્રશસ્તિ પરથી જણાતાં ટેકા મળે છે. (વાક્ય સૌંદર્ય સં. ૧૯૭૩ માર્ગશીર્ષને અંક).

આ રીતે આપણે આ મધ્યયુગના-સત્તરમા સૈકાના ખાસ વિશિષ્ટ ગુણો જોયા. જૈન કૃતિઓ અપ્રકટ હોવાના કારણે યા તે પર અલક્ષ હોવાના કારણે માત્ર જૈનેતર કૃતિઓ લઈ યુગોનાં લક્ષણો જૈનેતરે ખાધે અને તે માટે તેમજ અમુકના અમુક જૈનેતર ઉત્પાદક એમ સિદ્ધાન્તો (theories) ઘડે એ સ્વાભાવિક છે. પણ જે અત્ર ભારપૂર્વક નમ્ર વક્તવ્ય છે તે એ છે કે જૈનકૃતિઓ પર લક્ષ રાખવાથી તે સિદ્ધાંતો ખંડિત બની ચેતન્યશૂન્ય થાય તેમ છે. ગૂર્જર વાગ્દેવીનાં બંને સંતાનો-જૈનેતર તેમજ જૈનો-સમાન-દષ્ટિએ નિરખાવાં ઘટે. જંનેનો ફાળો સંયુક્ત અવિલકત પુણ છે. કોઈ આછો, કોઈ વધુ ફાળો આપે, પણ એકેયનો અનાદર ન ઘટે. જૈનેતરોમાં સંસ્કૃત ભાષાપ્રત્યેના મોહને લીધે, યા મુસલમાનોના આક્રમણથી થયેલી હિન્દુ રાજ્યની પાયમાલીને કારણે ભાષાસાહિત્ય મુખ્યપણે ન ખીલ્યું હોય તો તે સંભવિત છે, તેમજ જૈનોમાં મુખ્યપણે ત્યાગી અને પરિશ્રમભુક્તીલ સાધુઓ પ્રદાયર્થ સેવી વિદ્યાભ્યાસંગી રહી ભાષાસાહિત્યપ્રત્યેના મોહને લીધે તે વિશેષ ખીલવી શક્યા હોય તે તદ્દન સંભવિત છે; સ્વં રણજીતરામ વાવાભાઈ મહેતાએ સત્યરીતે અને આગળ વધીને જણાવ્યું છે કે:-

“અલાઉદ્દીન ખીલજીના સરદારોએ ગુજરાતના હિન્દુ રાજ્યને પાયમાલ કીધું ત્યાર પછી ચાલેલી અધાધૂધીમાં નાસભાગ કરતા પ્રાદ્યેશોએ શારદાસેવન ત્યજી દીધું, પણ મંદિરો-પ્રતિમા આદિની આશાતના થવા છતાં જૈનસાધુઓ પોતાના અભ્યાસમાં આસક્ત રહ્યા અને શારદા દેવીને અપૂજ ન થવા દીધી. આવા ધર્મપરાયણ અને વિક્રાન્ સાધુઓને

૧૦ જુઓ ગુજરાતીને દીવાળી અંક સં. ૧૯૭૭ પૃ. ૧૬૬. 'સરોડ પૃથ્વીરાજ અને વેલી કિસન રૂકમણી' એ નામનો લેખ. તેમાં તેનો રમ્યા સં. ૧૬૩૪ આપેલ છે તે ભાટ ચારણો આગળપરીક્ષા માટે સં. ૧૬૪૪ માં મૂકેલ હોય એમ તેની છેલ્લી બે કડીઓ પરથી જણાય છે. જે આ કડીઓ પાછળથી ઉમેરી ન હોય તે પૃથ્વીરાજની સ્વરચિત હોય, તો પછી હરરાજાજી તે કૃતિની સામે મૂકવા ખીલ કૃતિ સં. ૧૬૧૭ માં ઉત્પન્ન કરાવવા માંગે એ બંધબેસતું નથી. બાકી હરરાજાજીના આનંદ માટે તે કૃતિ થઇ અને બનાવરાવી એ કથન સિદ્ધ છે.

પાટે, અમદાવાદની સલતનત તૂટી ત્યારે, શ્રી હીરવિજયસૂરિ નામે સાધુ હતા. આગ્રે જઈ ઈબાદતખાનામાં અકબર ખાદશાહ અને અન્ય ધર્મીઓને તેમણે જૈનધર્મનો મહિમા ખનાવ્યો.

“ આ ઇતિહાસ શું કહે છે ? ગુજરાતના અગ્રગણ્ય નાગરિક જેનોનો સૂર્ય ગુજરાતના હિન્દુ સામ્રાજ્ય દરમ્યાન મધ્યાન્હમાં હતો અને હેમચંદ્રની માફક અમાસનોદિવસે પ્રકાશોન્મત્તલ પૂર્ણિમા આણુવા સમર્થ હતો. તેઓ મહિનાઓના મહિના સૂધી દરિયો ખેડી લાંબી સફરો કરી દેશદેશાવરની લક્ષ્મી લાવી ગુજરાતમાં ઢાળતા; પોતાનાં વીરત્વ અને વફાદારીથી રાજા પ્રજા ઉભયને સંકટ અને સૌભાગ્યના સમયમાં મદદ કરતા, અણહિલપુરની ગાદીનું ગૌરવ બળવતા-વધારતા; બીજા દેવોનાં મંદિરો ખંડિયર થઈ જતાં હતાં, છતાં સરસ્વતી દેવીનાં મંદિરો જૈન સાધુઓના લીધે પરિશ્રમને લીધે ઘંટનાદથી ગાજી રહ્યાં હતાં. દેલવાડાપરનાં વિમળશાહનાં દેહરાં જેવાં અનેક સૌંદર્યથી ગૂજરાત વિભૂષિત થતું હતું; રાજ્યની ઉચલ પાથલો, અંધાધૂંધી, અને બીન સલામતી વારંવાર નડતી છતાં પોતાના ઉત્કૃષ્ટ વૈશ્ય ગુણોને લીધે ગૂજરાતનો વેપાર પડી ભાંગવા ન દીધો અને આજ પર્યંત વેપાર ખેડવાની લાયકાત અને શક્તિ તેજ રાખ્યાં.”

(જૈનધર્મ પ્રકાશનો ન્યુબિલી અંક).

આટલું કહી હવે આપણે પ્રસ્તુત કવિનો પરિચય કરવા પ્રત્યે વળીશું.

કવિનો પરિચય.

કવિ પોતાના જૂદા જૂદા ગ્રંથમાં નાની મોટી પ્રશસ્તિ આપી પોતાનો કંઈક પરિચય કરાવતો ગયો છે. તે પરથી સમજાય છે કે પોતાનો ગમ્મ જૈનશ્વેતાગ્ગર મૂર્તિપૂજક સંપ્રદાયના પેઢી ખરતર ગમ્મ હતો. તે ગમ્મના ઉત્પાદક સંબંધી એવો ઉલ્લેખ કરે છે કે:—

“ત્યાર પછી તેમના શિષ્ય જિનવલ્લભસૂરિ થયા, તેમના પછી ૬૪ જોગણીને વશ કરનાર જિનદંતસૂરિ થયા. તેના જિનચંદ્રસૂરિ, તેના પછી અનુક્રમે જિનપતિસૂરિ, જિનેશ્વરસૂરિ, જિનપ્રબોધસૂરિ અને જિનચંદ્રસૂરિ થયા. જિનચંદ્રસૂરિના આદેશથી તેજપાલે શાંતિનાથજી બિંબ બનાવ્યું, તેના પછી જિનકુશલસૂરિ (ખરતરગચ્છની પદ્માવલિમાં ૪૩ મા.) ત્યાર પછી જિનપદ્મ, જિનલબ્ધિ, જિનચંદ્ર, જિનોદય, જિનરાજ, જિનભદ્ર અનુક્રમે થયા. આ પદ્મ મા જિનભદ્રસૂરિએ જેસલમેર, બળાલિપુર (બલોર), દેવગિરિ, અહિપુર (નાગપુર-નાગોર), અને પાટણમાં પુસ્તક લંડારો કરાવ્યા. (પદ્મધર પદ્મ સં ૧૪૭૫ અને મરણ સં ૧૫૧૪). ત્યાર પછી ક્રમે જિનચંદ્ર, જિનસમુદ્ર, જિનમાણિક્ય થયા. જિનમાણિક્યના જિનચંદ્રસૂરિ થયા કે જે હાલ વિદ્યમાન છે. તે જિનચંદ્રસૂરિને અકબર બાદશાહે આનંદથી ‘યુગ પ્રધાન’ પદ આપ્યું.”

ઉક્ત (૬૧ મા) જિનચંદ્રસૂરિના ૧૨ હસ્તદીક્ષિત મુખ્ય શિષ્ય સકલચંદ્ર ઉપાધ્યાય ૧૩ થયા અને તેના શિષ્ય તરીકે હું, સમય સુંદર વાચક-ઉપાધ્યાય થયો. (જુઓ સં ૧૬૭૬ માં રચેલી અર્ચરનાવલી અથવા અષ્ટલક્ષ્મીની પ્રશસ્તિ. પીટર્સન અંતુર્થ રીપોર્ટ. નં. ૧૧૭૪-૫૦ ૬૮.)

જમ્બેરે જમ્બેરે થયો હતો. ધર્મસાગરે એવું પ્રતિપાદન કરવા માંગ્યું હતું કે ખરતર ગચ્છની ઉત્પત્તિ જિનેશ્વરસૂરિથી નહિ, પણ જિનદંતસૂરિથી થઈ છે. અબયદેવસૂરિ ખરતર ગચ્છમાં થઈ શક્તા નથી. જિનવલ્લભસૂરિએ રાષ્ટ્ર વિરૂદ્ધ પ્રવૃત્તિ કરી છે. વગેરે ચર્ચાના વિષયો પોતાના ઔદ્ભૂત મતોત્પત્તિદીપિકા નામના ગ્રંથમાં ચૂક્યા (૨મ્મા સં ૧૬૧૭.) આ ગ્રંથનું બીજું નામ પ્રવચનપરીક્ષા છે વા અને જૂદા હોય-બંનેમાં વિષયો સરખા છે. તેમાંનાં એકનું બીજું નામ કુમતિકંદકુદાલ છે. આથી ખુદ હોદ્દાકાર થયો. બે ગચ્છ વચ્ચે અચકામણી અને અંતે પ્રમળ વિખલાદ ઉત્પન્ન થતાં તે ક્યાં અટકશે એ વિચારવાનું રહ્યું. જોખમદાર આચાર્યોને વચ્ચે પડ્યા વગર ચાલે નહિ, તેથી તપાગચ્છના વિજયદાનસૂરિએ ઉક્ત કુમતિકંદકુદાલ ગ્રંથ સભાસમક્ષ પાણીમાં ભોળાવી દીધો હતો અને તે ગ્રંથની નકલ કોઇની પાસે હોય તો, તે અપ્રમાણ્ય ગ્રંથ છે માટે તેમાંનું કથન કોઇએ પ્રમાણ્યુત્ત માનવું નહિ, એવું જાહેર થયું હતું. ખરતરગચ્છ વાળાએ પોતાના મનનું પ્રતિપાદન કરાવવા ભગિરથ પ્રયત્ન સેઓ' હતો એ વાતના પ્રમાણમાં જળપ્રવાનું કે આપણા નાયક સમક્ષ સુંદર ઉપાધ્યાયજીના સં ૧૬૭૨ માં રચેલી સામાચારી શતકમાં સં ૧૬૧૭ માં પાટણમાં થયેલા એક પ્રમાણ્ય પત્રની નકલ આપેલી છે કે જેમાં એની હકીકત છે કે અબયદેવસૂરિ ખરતર ગચ્છમાં થયેલા છે એ વાત પાટણના ૮૪ ગચ્છોવાળા માને છે, અને એ પ્રમાણ્ય પત્ર સાચું જણાય છે, અને તેનો હેતુ ઉપરનો ક્લક-વાદ શમાવવા અર્થે હતો.

૧૨. જિનચંદ્રસૂરિ-ગોત્ર રીહડ, પિતા શ્રીવંત, માતા ત્રિપાદેવી. જ્ઞાતિ વણિક, તિમરી (તીવરી) -જેઠપુર રાજ્ય) ની પાસે આવેલા વડલી ગામમાં સં ૧૫૬૫ માં જન્મ. માત્ર નવ વર્ષની ઉંમરે સં ૧૬૦૪ માં જૈન સાધુની દીક્ષા. ૧૭ વર્ષની વયે સં ૧૬૧૨ બાદપદ શુદ્ધિ નવમી ગુરવારે જેસલમેરમાં સ્થિપદ. તેમણે અકબર બાદશાહને જૈન ધર્મના બોધ આપ્યા હતા અને બાદશાહે યુગમાં પ્રધાન

આ રીતે પોતાની શુર પરંપરા પોતે આપી છે તે અત્રં જણાવી. પોતે પોતાના ગચ્છનું નામ બૃહત્ ખરતર ગચ્છ આપેલું છે કારણ કે ખરતર ગચ્છમાં પોતાના સમય સુધીમાં અનેક શાખાઓ મૂળ વૃક્ષમાંથી નીકળી હતી અને પોતાનું મૂળ વૃક્ષમાંથી ચાલી આવેલ થઇ બતાવવા 'બૃહત્' શબ્દ ચોજેલ છે.

સં ૧૬૪૯ ના કાળથી શુદ્ધિ ૨ ને દિને યુગપ્રધાન જિનચંદ્ર સૂરિએ અકબ્બર બાદ-શાહના કહેવાથી લાહોરમાં (લાલપુરમાં) માનસિંહને આચાર્યપદ આપી તેમનું નામ જિનસિંહ સૂરિ ૧૪ રાખ્યું, તે સમયે તેજ જિનચંદ્ર સૂરિએ સ્વહસ્તે કવિ સમયસુંદર

પુરૂષ સૂચક 'યુગપ્રધાન' પદ આપ્યું હતું. એમ કહેવાય છે કે બાદશાહને જૈનધર્મ-જૈનધર્મ પ્રશંસક બનાવ્યો હતો (પ્રવોધિતો જેને દયા પેરણ હાકલ્લરાચ્ય: પતિસાહિ મુલ્ય:-જિનલાભ સૂરિના સં ૧૮૩૩ ના આત્મપ્રબોધની પ્રશસ્તિ). તેમને સદ્વચંદ્ર ઉપાધ્યાય ઉપરાંત ૯૫ શિષ્યો હતા-તેમાં મુખ્ય સમય-રાજ, મહિમારાજ, ધર્મ, નિધાન, રત્નનિધાન, જ્ઞાનવિમલ વિગેરે હતા. તેમનો સ્વર્ગવાસ વેનાતટે (ગિલાડા-મારવાડે) સં ૧૬૭૦ ના આશ્વિનવદિ બીજના દિને થયો. (જુઓ ઇન્ડિયન એન્ટિક્વરીમાં આપેલ ખરતર ગચ્છની પટ્ટાવલિ-માંડ બાયાન્તર, સનાતન જૈનના ૧૯૦૭ ના જુલાઈના અંકમાં વધુ માટે જુઓ રત્નસાગર ભાગ ૨ જે પૃ ૧૦ ૧૨૫) તેમણે પોતાની પાસે જેલી નામની શ્રાવિકાએ સં ૧૬૩૩ કાં વહ ૫ ને દિને બાર વ્રત સ્વેચ્છા પ્રમાણે મહત્ત્વ કર્યો તે સંજોગે 'હચ્છા પરિણામ ટિપ્પનક' યા બાર વ્રતનો રાસ બાપમાં સં ૧૬૩૩ માં બનાવ્યો છે. વળી મેકતામાં જેને હાલ 'હોદારો મંદિર' કહેવામાં આવે છે તેમાં ચિંતામણિ પાર્શ્વનાથની પ્રતિમાની તેમણે સં ૧૬૬૯ ના માધ શુદ્ધિ ૫ શુક્રવારે મહોત્સવ સૂરિસિંહના રાજ્યમાં પ્રતિષ્ઠા કરી છે (પ્રાચીન લેખ સંગ્રહ ભા. ૨ પૃ ૩૦૭). તેમના જ સમયમાં તેમના અનુયાયી ભક્ત, પ્રખ્યાત કર્મચંદ્ર મંત્રીએ સં ૧૬૩૫ ના ભાદર દેકાળના વખતમાં સત્રાકશેડ રૂપીઆ ખર્ચી સત્રાકશેડ બંધાવી બહુ જનોને બચાવ્યા હતા અને તે કર્મચંદ્રે તેમનો યુગ પ્રધાન મહોત્સવ-તેમના શિષ્ય જિનસિંહ સૂરિનો આચાર્ય પદ મહોત્સવ અતિ દ્રવ્ય ખર્ચી સં ૧૬૪૯ માં ઉજવ્યો હતો. વળી તેમના સમયમાં સોમશ અને શિવશ એ બે પ્રસિદ્ધ શ્રાવકોએ રાણકપુર, ગિરનાર, આણુ, ગોડીપાર્શ્વનાથ અને શંકુજય એ પાંચ જૈનતીર્થોએ સંધ કાઢી લક્ષ ગયા હતા. (જુઓ સમય-સુંદરની કલ્પસૂત્ર દીકાની પ્રશસ્તિ). આ કર્મચંદ્ર મંત્રીએ સધર નગરમાં જિનકુશલ સૂરિનો મોટો સ્મૃભ સં ૧૬૫૫ મઠા શુદ્ધિ ૧૦ મે કરાવ્યો. તે સિવાય બીજાં સ્થલોએ તેમના અનેક સ્મૃભ કરાવ્યા હતા.

૧૩ સ્વકલચંદ્ર ગણી-તેઓ વિદ્વાન પंडિત અને શિલ્પશાસ્ત્રમાં કુશલ હતા. પ્રતિષ્ઠાકલ્પ શ્લોક ૧૧૦૦૦, જિનવલ્લભ સૂરિકૃત ધર્મશિક્ષા પર વૃત્તિ (પત્ર ૧૨૮), અને પ્રાકૃતમાં હિતાચરણ નામના ઔપદેશિક ગ્રંથ પર વૃત્તિ ૧૨૪૩૯ શ્લોકમાં સં ૧૬૩૦ માં રચેલ છે.

૧૪. જિનસિંહ સૂરિ-પિતા ચાંપસી, માતા ચતુરંગા દેવી, ગોત્ર ગણધર ચોપડા, વણિક વાતિ. જન્મ ખેસર (ખેતાસર) ગામમાં સં ૧૬૧૫ ના માગશર શુદ્ધિ પૂર્ણિમાને દિને; તેમનું મૂલ નામ માન-સિંહ. દીક્ષા ખીકાનેરમાં સં ૧૬૨૩ ના માગશર વદિ ૫ ને દિને; વાચક-ઉપાધ્યાય મહ જ્ઞેસલમેરમાં સં ૧૬૪૦ ના માધ શુદ્ધિ ૫ ને દિને; સૂરિપદ લાહોરમાં સં ૧૬૪૯ ના રાહુન શુદ્ધિ ૨ ને દિને. અકબ્બર બાદશાહને મળવા માટે કારમીરમાં કદિન વિહાર (યુસાફરી) કર્યો હતો. વાર, સિંદૂર-અને અજીણા (ગિજની) આદિ દેશોમાં પણ તેમણે અમારિ એટલે જીવદયા-અદિસા પ્રવર્તવરાવી હતી. અકબર

તથા ગુણવિનય એ બે સાધુઓને ઉપાધ્યાય પદ આપ્યું. આ વાત ઉક્ત ગુણવિનય ૧૫ ઉપાધ્યાયે જ સં ૧૬૫૫ માં રચેલા કર્મચંદ્ર મંત્રિવંશ પ્રબંધ-કર્મચંદ્રવંશાવલિ પ્રબંધમાં આપેલી છે. કે જે કર્મચંદ્ર મંત્રીએ આ આચાર્ય મહોત્સવ કરેલો. આ સમયે જ જિનચંદ્ર સૂરિને યુગ પ્રધાનપદ મળેલું જણાય છે.

વાચક પદ ગુણ વિનયનંધ, સમયસુંદરનંધ દીધઉ રે
યુગ પ્રધાનજનંધ કરઈ, નણિ રસાપણ સીધઉ રે.

—શ્રી જિન શાસન ચિર જયઉ.

આ ઉત્સવના શુભ કાર્યના ઉપલક્ષમાં બાદશાહ અકબર ખંભાતના બંદર ઉપર એક વર્ષ સુધી કોઈ મગર કે માછલીઓ ન મારે એવો હુકમ બહાર પાડ્યો હતો. તેમ લાહોરમાં પણ એક દિવસ કોઈપણ જીવની હિંસા નહિ કરવાની આજ્ઞા ફેરવી દીધી હતી. (જુઓ ઉક્ત પ્રબંધ ઐતિહાસિક રાસમાળા ભા ૩; જૈન ઐતિહાસિક ગૂર્જર કાવ્ય સંચય.) જુઓ પં ૦ જયસોમ કૃત સંસ્કૃતમાં કર્મચંદ્ર મંત્રી પ્રબંધ. ઉક્ત જિનસિંહ સૂરિએ બાદશાહ પર પોતાનો પ્રભાવ પાડી તેની પાસેથી આપાદ શુદ્ધિ ૯ થી આપાદ શુદ્ધિ ૧૫ સુધીના સાત દિવસોમાં બીલકુલ જીવવધ ન થાય એવું ફરમાન મેળવ્યું હતું. આ અસલી ફરમાન પત્ર હાથ આવ્યું છે ને તે હિન્દી ‘સરસ્વતી’ માસિકના જૂત, સને ૧૯૧૨ ના અંકમાં છપાયું છે. આમાં હીરવિનય સૂરિના ઉપદેશથી પચ્ચીસણના આઠ અને બીજા ચાર એમ બાર દિવસો સુધીમાં જીવવધના નિર્બંધ માટે ફરમાન આપ્યું છે તેનો પણ ઉલ્લેખ કર્યો છે.

જિનચંદ્રસૂરિ એક પ્રભાવક મહાપુરૂષ હતા. તેમનાં જ્ઞાન અને આચારની ખ્યાતિઅકબર બાદશાહે ઉક્ત કર્મચંદ્ર બહાવત પાસેથી સાંભળી પોતાની નિજકલમવડે પુરમાન (વિનતિ) પંબળના લાહોર નગરથી લખી અને પોતાના ખાસ મરજી દાન ઉમરાવો તે શુરને બોલાવવા માટે મોકલ્યા. તે વખતે તે શુરના ૮૪ શિષ્યમાં મુખ્ય સકલચંદ્ર ઉપાધ્યાયના શિષ્ય પડિત સમયસુંદરજી પણ વિહારમાં સાથે હતા. તે વિહાર કયાંથી કયાં થયો અને લાહોરમાં આવ્યા પછી ઉપરોક્ત મહોત્સવ કેમ થયો એ સંબંધી સમયસુંદરજી ‘શુર ગુણ છંદ અષ્ટક’ હિન્દીમાં ગનાવેલ છે તે અત્ર જણાવીશું.

બાદશાહે પોતાના રાજવહિવટના છેલ્લા વર્ષમાં (સં ૧૬૬૦ માં) દસ્તાવેજ કરી ફરમાન કરી આપ્યું હતું કે બાદશાહ શુદ્ધ ૯ થી બાદશાહ શુદ્ધ ૧૫ સુધી પોતાના સંપૂર્ણ રાજ્યમાં જીવહિંસા બંધ રાખવી. ત્યાર પછી જહાંગીર બાદશાહે તેમને ‘યુગપ્રધાન’ પદ આપ્યું હતું. પદધર જિનચંદ્ર સૂરિ રવર્ગરથ ચતાં વેનાતટમાં (ખિલાસા મારવાડમાં) ગચ્છનાયક ૫૬ સં ૧૬૭૦ ના પૌષ વદિ ૧૩ ને દિને મેડતામાં થયો. (જુઓ ઉપરોક્ત ખરતર ગચ્છ પદ્માવલિ; સનાતન જૈન, જુલાઈ ૧૯૦૭, રત્નસાગર ભા ૨ પૃ ૧૨૭; જ્ઞાનવિમલ કૃત સં ૧૬૫૪ ની રાષ્ટ્ર પ્રબોધવૃત્તિમાંની શુર પદ્માવલિ; પીટર્સન રીપોર્ટ બીજો પૃ ૬૫.) તેમની પાટે જિનરાજ સૂરિ (બીજા) આવ્યા.

૧૫. ગુણવિનય વાચક-તેમણે બાપામાં આ પ્રબંધ ઉપરાંત અંજનાસુંદરી પ્રબંધ સં ૧૬૬૨

૧૬ સંતનકી મુખ વાણિ સુણી જિનચંદ મુણિંદ મહંત જતી,
તપજળ કરે ગુર ગુજગરમેં પ્રતિબોધત હૈ ભવિકું સુમતી,
તળહી ચિતયાદન ચૂંપ ભઇ સમયસુંદરકે ગુર ગચ્છપતી,
બેજૈ પતસાહ અકબ્બરી છાપ બોલામે ગુર ગજરાજ ગતી.

૧

એજ ગુજગરમેં ગુરરાજ ચલે વિચમેં ચોમાસ જાલોર રહે,
મેદનીતદમેં મંડાણ કિયો ગુર નાચોર આદરમાન લહે,
મારવાડરિણી ગુરવંદનકોં તરસે સારસે વિચ વેગ વહે,
હરખો સંધ લાહોર આપે ગુર પતસાહ અકબ્બર પાંવ ગદે.

૨

એજ સાહ અકબ્બરી વબ્બરકે ગુર સરતદેખત હી હરખે,
હમ જોગી જતી સિદ્ધ સાધ મતી સખા હી ખટ દરસન કે નિખે,
ટોપી બસડમાવાસ ચંદ ઉદય અજ તીન બતાય કલા પરખે,
તપ જળ દયા દર્મ ધારણકોં જમ કોઈ નહીં ધનકે સરખે.

૩

ગુર અમૃતવાણિ સુણી સુલતાન એસા પતસાહ હુકમ દિયા,
સખ આલમ માંદિ અમાર પત્રાપ બોલાય ગુર દુરમાણ દિયા,
જગજીવ દયા ધર્મ દાક્ષણમેં જિન સાસનમેં જુદોતબોગ લિયા,
સમયસુંદર લહે ગુણવંત ગુર દગ દેખત દરખત ભવ્ય દિયા.

૪

એજ શ્રીજી ગુર ધર્મ આન મિલે સુલતાન સલેમ અરજજ કરી,
ગુર જીવ દયા નિત રમ ધરે ચિત અંતર પ્રીતિ પ્રતાતિ ધરી,
કર્મચંદ બુલાય દિયે દુરમાણ છોડાય ખંભાયતકી મછરી,
સમયસુંદરકે સખ સાંકનમેં નિત અરતર ગચ્છકી ખ્યાતિ ખરી.

૫

ના જૈન ગુર ૧૩ પુષ્ક; ગુણસુંદર, ચોષધ; અંચલમત સ્વરૂપ વર્ણન રાસ સં ૧૬૭૪ માંધ ગુર ૬
રવિવારે માલપુરમાં રચેલ છે. ખરતે ગચ્છની સેમ શાખામાં સેમરાજ ઉપાધ્યાયના પ્રબોધમાણિક્ય શિષ્ય,
તેના જન્મસેમ, અને તેના તેઓ શિષ્ય થાય. આ કવિએ સંસ્કૃતમાં પણ અનેક ગ્રંથો રચ્યા છે
તે પૈકી ખંડ પ્રશસ્તિ કાવ્ય ટીકા સં ૧૬૪૧, દમયંતી ચંપૂ ટીકા સં ૧૬૪૬, રધુવંશ ટીકા સં
૧૬૪૬, વૈરવિયશતક ટીકા સં ૧૬૪૭, ઉદ્દિય પરભવ્યશતક વૃત્તિ સં ૧૬૬૪, ઉત્તરોદ્દયક કુલક
ખંડન સં ૧૬૬૫ કે જેમાં ઉપરોક્ત ધર્મસાગર ઉપાધ્યાયના મતનું ખંડન કરેલું જણાય છે, સંબોધ-
સત્તરી ટીકા, લઘુઅગ્નિશાંતિ સ્તોત્ર ટીકા છે. આ પરથી તેઓ એક સંતરમા સૈકામાં વિદ્વાન ટીકાકાર
અને સાક્ષર હતા એ નિર્વિવાદ છે. (રધુ મારે જુઓ એ સમસ્યક ભાગ ૩ ને)

૧૬. ૨. મેદનીતદ-મેડતા; મારવાડરિણી-મારવાડની ઓઝો. ૩. ટોપી.....હરખે=આનો અર્થ
બરાબર સમજાતો નથી, પણ એમાં એમ હોવાનો સંભવ છે કે ટોપી ઉડાડી અથવા રાખી હોય,
અમાવાસને દિને ચંદ્રનો ઉદય બતાવ્યો હોય અને ત્રણ બકરા બતાવીએમકાર બતાવ્યા હતા.
૪. ભવ્ય-પાહાંતર હોત. મછરી-માછલી પકડવાનું ખંભાતમાં ચણું હતું તે દુરમાનથી દૂર કરાવ્યું.
૬-આમર જન.....નિર્ધર-પાહોતર-જુગલધાનકાએ ગુરફ ગિગડડું ગિગડડું પુણું બાળથેરે સમયસુંદરકે
ગુર માન ગુર, પતિસાહ અકબ્બર માળથેરે. (જૈન સંપ્રદાય શિક્ષા પ. ૬૪૯)

એજ શ્રી જિનદત્ત ચરિત્ર સુણી પતસાદ બધે ગુર રાગિયે રે,
 ઉમરાવ સખે કર નેડ ખડે પખણે અખણે મુખ દાગિયે રે,
 આમર છત્ર મુર તખ નેટ ગિગદ્દં ધૂધં બાગિયે રે,
 સમયસુંદર તુંહી જગત્ર ગુર પતસાદ અકબ્બર ગાગિયે રે.

૬

હેજ ગાન વિગાન કલા ગુણ દેખ મેરા મન સદગુર રીઝિયેજ,
 હુમાયુકો નંદન એમ અખે, અખ સિંધ (માનસિંધ) પટોધર કીજયેજ,
 પતસાદ હબૂર ચખોં સંધ સુરિ મંડાણ મંત્રીશ્વર વીઝિયેજ,
 ગિણુસંદ પટે ગિણુસિંધ સુરિ: ચંદ સુરજ ભૂં પ્રતીજયેજ.

૭

હેજ વીરકવંસ વિભૂષણ હંસ ખરતર ગવજ સમુદ્ર રાણી,
 પ્રતપો જિન માણિક્ય સુરિ કે પાટ પ્રભાકર નયં પ્રજ્ઞમું ઉલસી,
 મન શુદ્ધ અકબ્બર માંતલ દે જગ બાણત દે પરતીત એસી,
 જિનચંદ મુર્ષીદ ચિરં પ્રતપો સમયસુંદર દેત આશીશ એસી.

૮

આ પરથી એમ અનુમાન થાય છે કે જિનચંદ્રસૂરિ, અકબર બાદશાહે બોલાવવાથી ગૂજરાતમાં હતા ત્યાંથી અનેક શિષ્યો સાથે લઇ ગયા તેમાં સમયસુંદર હતા. ગૂજરાતમાંથી વિહાર કરતાં પહેલાં બલોર, ત્યાંથી મેદિનીતટ-મેહતા, તાગોર એમ મારવાડમાંથી પસાર થઇને લાહોર આવ્યા.

સં ૧૬૪૬ પહેલાં તે સમયસુંદર ગૂજરાતમાં જ રહ્યા હતા અને સં ૧૬૪૬ માં લાહોર આવી ઉપાધ્યાય પદ મેળવી પછી તે બાબુ ને વિશેષમાં મેવાડ-મારવાડમાં પ્રવાસ કર્યો છે, અને તેથી તેમની મુખ્ય ગૂજરાતી લાપામાં અનેક દેશોના પ્રાન્તીય શબ્દો, મારવાડી શબ્દો, ફારસી શબ્દો જોવામાં આવે છે. આ વાત તેમણે જે ગ્રંથો રચ્યા તેના નિર્દિષ્ટ સ્થલપરથી-તે ગ્રંથોપરથી જણાઈ આવે છે.

અથા અષ્ટક 'મહાનન વંશ મુકતાવલિ' -૬૦ રામલાલ ગણી. ગંધરી વિદ્યારાણી બીકાનેરમાંથી તેની પ્રસ્તાવના ૫૦ પ-૬ પરથી ઉતારેલું છે. તેમાં વિશેષ જણાવ્યું છે કે "આ વખતે નકોસ (ચિતારા) એ તમકીર બાદશાહ અને ગુરમહારાજની ઉતારી તે બીકાનેરના ખરતર ખટારક શ્રી પૂનપજ પાસે મોઝૂદ છે. ચિતારાએ બાદશાહ અકબ્બરની સભામાંથી બાદશાહની પાછળ મુખ્ય ૩ તસખીર લખી છે. બિરખલ, કરમચંદ બહાવત, તથા કાજી ખાનખા; અને શ્રી ગુર મહારાજના 'સર્વ' સાધુ સમુદાયમાંથી ૩ તથા સાધુ નામ લખ્યાં છે:- વેપકર્ષ (ખડે નામ વિવેક દર્ષ) પરમાનંદ, તથા સમયસુંદર." આ છમી પ્રકટ થાય તો હજી પ્રકાશ પડે અને કવિ સમયસુંદરની તસખીર મળી આવે. આવીજ છમી તપાગ-ચીવહીરવિન્ય સૂરિની તે વખતની પ્રકટ થઇ છે (જુઓ સાક્ષર શ્રી જિનવિનયજીએ કુપારસકાશની લખેલી ભૂમિકા સાથે પ્રકટ કરેલ છમી. તેમાં પણ અકબ્બર સાથે તથા અમીરાદિ, અને હીરવિન્ય સાથે તથા જૈન સાધુઓ છે. આ અને ઉપરની છમી બંને એકતો નથી એમ શંકા રહે છે. વળી આ અષ્ટક જૈન સંપ્રદાય સિદ્ધા (યતિ શ્રી પાલચંદ્રની) માં ૫૦ ૬૪૬ ની ટિપ્પણીમાં પ્રકટ થયું છે.

સં ૧૬૫૮ અમદાવાદ, સં ૧૬૫૯ ખંભાત, સં ૧૬૬૨ સાંગાનેર, સં ૧૬૬૫ આગ્રા,
 સં ૧૬૬૭ મરોટ સં ૧૬૬૮ મુલતાન, સં ૧૬૭૨ અને ૧૬૭૩ મેડતા. સં ૧૬૭૪ માં
 જિનચંદ્રસૂરિ મેડતામાં સ્વર્ગસ્થ થયા ને જિનરાજસૂરિને^{૧૬} તેમની ગાદી ત્યાં મળી.
 સં ૧૬૭૬ માગશર માસમાં રાણકપુર (સાદણી પાસે) ની જાત્રા કરી. [તે રાણકપુરની જાત્રા
 વખતે કરેલા સ્તવનમાં તેના મંદિરનું વર્ણન આપ્યું છે કે ' આરે દિશાના ૨૪ મંડપ,
 આર ચતુર્ભુજ (ચોમુજ) પ્રતિમા, તે દેહરાનું નામ ત્રિભુવન દીપક. ૮૪ દેરી, લોંચરાં.
 મેવાડ દેશમાં. ૬૬ લાખ ખર્ચી પોરવાડ ધરણુકે બંધાવ્યું. ત્યાં ખરતર વસતિ છે ને તે
 ઉપરાંત બીજા પ્રાસાદ છે.] અને તે વર્ષમાં લાહોર ગયા, સં ૧૬૮૧ જેસલમેરમાં હતા.
 આની પછી સં ૧૬૮૨ માં જેસલમેર પાસેના પાંચ ગાઉ પરના-અસલ રાજ્યધાની
 લોદ્રવપુરમાં રહેતા^{૧૭} એક લણુશાહીએ જેસલમેરથી શત્રુજયપર જવાનો સંઘ કાઢ્યો.

આમાં શ્રી જિનરાજસૂરિ પ્રમુખ અનેક આચાર્ય સાથે હતા અને સમયસુંદર ઉપાધ્યાય પણ આ સંઘમાં ગયા હતા. આ સંઘ શત્રુંજયની યાત્રા કરી આવ્યો-સં ૧૬૮૨. પછી સમયસુંદર ૧૬૮૨ માં નાગોર આવ્યા, કે ત્યાં શત્રુંજય રાસ રચ્યો. ત્યાંથી સં ૧૬૮૩ મેડતામાં, સં ૧૬૮૫ લૂણકર્ણસર, સં ૧૬૮૭ પાટણ. આ વર્ષમાં ભારે દુકાળ પડ્યો હતો કે જેનું વર્ણન તેમણે અંક ૪૦માં કર્યું છે. સં ૧૬૯૧ ખંભાત, સં ૧૬૯૪ અને ૧૬૯૫ બલોર, સં ૧૬૯૬ અમદાવાદ, સં ૧૬૯૮ અહમદપુર (અમદાવાદ); એ રીતે એ સ્થલોએ આપણા કવિએ અચૂક નિવાસ કર્યો હતો.

આ ઉપરાંત સમેતશિખર (પાર્શ્વનાથહિલ જેને હાલ કેટલાક કહે છે), અંપા, પાવાપુરી, ક્ષેત્રધી (મારવાડ), નાદોલ, વીકાનેર, આણ, શંખેશ્વર, છરાવલા, ગોડી, વરકાણા, અંતરીક્ષ પાર્શ્વનાથ, તેમજ જિરનાર વગેરે અનેક જૈન તીર્થોની જાત્રા કરી હતી. ૧૭૬ જેસલમેરમાં પોતે ઘણાં વર્ષો ગાળ્યાં લાગે છે.

‘રાયમદા’ નો ખિતાબ બહો. આથી આની જોસાદ ‘રાયમણશાસ્ત્રી’ કહેવાય છે. આગ્રામાં મોટું જિનમંદિર યિશાહ કંચુ કે જે હાલ મોઝૂ છે. ભણશાલી એ મૂળનામ એ રીતે પડ્યું કે લોધપુરના યદુવંશી ધીરાજ ભાટી રાજના યુવરાજ પુત્ર સગરની માતાને બ્રહ્મરાક્ષસ લાગ્યો હતો તેને સં ૧૧૯૬ માં ખરતર ગચ્છના રામકાદી આચાર્ય જિનદત્ત સૂરિએ કાઢ્યો તેથી રાજ કુટુંબ સહિત જૈન થયો અને તેના પર આચાર્ય જૈનતત્ત્વી દિયારપે બંડસાલમાં વાસલેપ કર્યો તેથી તેનું ગાત્ર બંડશાસ્ત્રી (ભણશાસ્ત્રી) સ્થાપિત થયું, અને તેના આ વંશ જ યેશાહ થયા. આ રીતે મૂલ ભણશાસ્ત્રી જૈન હતા. જુઓ મહાજન વંશ મુક્તાવલિ પૃ. ૨૯-૩૦.

૧૭૬. જેસલમેર—આનો કિલ્લો રાજસ્થાનમાં પ્રસિદ્ધ છે. યદુવંશી બટ્ટી મદારાહિએ લોધપુરથી આવી સં ૧૨૧૨ માં આંધ્રો. જૈનના ખરતર ગચ્છના મ્હેતાબરી સાધુએનો આ પ્રથમ નિવાસ-સ્થ હતો. જિનરાજ, જિનવર્ધન, જિનમદ્ર આદિ સૂરિઓએ અનેક જૈન દેવાળયોની પ્રતિષ્ઠા કરી છે. કિલ્લાપર આઠ જૈન મંદિર છે; તે પૈકી મુખ્ય ચિંતામણી પાર્શ્વનાથનું છે—સં ૧૪૫૮ માં જિન રાજસૂરિના આદેશથી તેના ગર્ભગૃહમાં સાગરચંદ્રસૂરિએ પ્રતિષ્ઠા સ્થાપિત કરી, અને સં ૧૪૭૩ માં મદારાહિ લદમણ સિંહના સમયે સંપૂર્ણ થયું. તે રાજના નામ પરથી તેનું નામ લદમણવિદાર રાખ્યું તે તેમાં જિનવર્ધન સૂરિએ પ્રતિષ્ઠા કરી. તેમાંની ચિંતામણી પાર્શ્વનાથની મૂર્તિ બટ્ટીઓની પ્રાચીન રાજધાની લોધપુરથી આણેલી વેલુની હોષ પ્રાચીન છે. બીજું મંદિર સંભવનાથનું સં ૧૪૬૪ માં જિનમદ્ર સૂરિના ઉપદેશથી આરંભાયેલું તે ૧૪૮૭ માં પૂરું થયું ને તેમાં તે સૂરિએ પ્રતિષ્ઠા કરી. તે વખતે ૩૦૦ મૂર્તિની પ્રતિષ્ઠા થઈ. આ મંદિરની નીચે જ્ઞાનબંડાર વારંતે ભોંયડું બધાયું. તેમાં બંડાર રાખ્યો, જે હજુ વિદ્ય-માન છે. તેમાં ૧૦ મીથી ૧૫ મી ચિત્રમ સદીમાં લખાએલાં તાડપત્રના પ્રાચીન દુર્લભ પુસ્તકો મોજુદ છે. બીજા મંદિરો—આદીશ્વર, શાંતિ, શીતલ, ચંદ્રબ્રહ્મ, મહારીર વગેરેનાં ચિત્રમના સોલમના ચતુરના પૂર્વીર્ધમાં નજીક નજીક ત્યાં બંધાવેલાં છે. આ તથા સર્વ બીજાં મંદિરોમાં કુલ મળી આશરે ૭૦૦૦ જિનગિઓ હતામાહ હવાલે મદારાજ લઈ દરેલી તે ગાયકવાડ સરકારે લખણ બંદાર પાડી છે. બેઘપુર બિઝનેર રેલ્વેમાં

જેનોનાં ભારતવર્ષમાં તેમના તીર્થંકરોની જન્મભૂમિ, દીક્ષાભૂમિ, દેવલજ્ઞાનભૂમિ, નિર્વાણભૂમિ તરીકેનાં તીર્થો અનેક છે. તેમાં મુખ્ય શત્રુંજય, ગિરનાર, સમ્મેત-શિખરાર્દિ છે. તે સર્વની યાત્રા દરેક ચુસ્ત જનને માટે આવશ્યક ગણાય. આ કવિએ રચેલ 'તીર્થ-માલા સ્તવન' પરથી જણાય છે કે તેમાં લખેલ અષ્ટાપદ અને નંદીશ્વર એ શાસ્ત્રોક્ત તીર્થ-સિવાય બધાંય તીર્થની યાત્રા તેમણે કરી હતી. તે સ્તવન નીચે પ્રમાણે છે:—

- ૧૮ શત્રુંજે 'ઋષભ સમેસર્પા બલા ગુણ બધીરે, સિદ્ધા સાધુ અનંત, તીરથ તે નમુંરે,
ત્રીન પ્રયાણકે તિહાં ચયાં, મુગતે ગમારે, નેમીશ્વર ગિરનાર, તીરથ તે નમુંરે. ૧
- અષ્ટાપદ એક દેહરો, ગિરિસેહરોરે, ભરતે ભરાવ્યાં બિંબ—તીં
આશુ ચૌમુખ અતિ બહો, ત્રિપુવનતિથોરે, વિમલ વસંત વરતુપાલ. ૨
- સમેતશિખર સોહામણો, રલિયામણોરે, સિદ્ધા તીર્થકર વીરા.
નયરી અંપા નિરંખાથે, હૈયે હરખાથેરે, સિદ્ધા શ્રી વાસુપુત્ર. ૩
- પૂર્વ દિશે પાવાપુરી, ઋદ્ધિ ભરીરે, સુકિત ગયા મહાવીર.
જેસલમેર જુહારીથે, દુઃખ વારીથેરે, અરિહંત બિંબ અનેક. ૪
- વિકામેર જ વંદાયે, ચિર નંદીથેરે, અરિહંત દેહરાં આહ.
સેરિસરો સંખેશરો, પંચાસરોરે, ફલોધી ધંબળ પાસ. ૫
- અંતરિક્ષ અંજવરો, અમીઝરોરે, છરાવલો જગનાથ.
'ત્રૈલોક્ય દીપક' દેહરો, જાત્રા કરોરે, રાણપુરે રિસહેશ. ૬
- શ્રી નાહુલાઈ બાદવો, ગોડી સ્તવોરે, શ્રી વરકાણો પાસ.
નંદીશ્વરનાં દેહરાં, ખાવન બહારે, ચક્રકુંડે ચાર ચાર. ૭
- શાશ્વતી આશાશ્વતી, પ્રતિમા ધૃતીરે, સ્વર્ગ મૃત્યુ પાતાલ.
તીરથ યાત્રા ફલ તિહાં, હોજી મુઝ ધંદારે, સમખસુંદર કહે એમ. ૮

આક્રમેર રોશનથી જેસલમેર હર માઇલ છે. તપાગળે ૧૯ મી સદીમાં પ્રવેશ કર્યો તે મહાકોટ ૧૮૬૯ માં કોટની નીચે તેમના તરફથી શિખરબંધ દહેરું બંધાયું. ત્યાંના દહેરાં સંબંધી વિગત જિનસુખ સૂરિએ જેસલમેર ચૈત્ય પરિપાટી બનાવેલ છે તેમા મળે છે. (જુઓ પ્રાચીન તીર્થમાલા સંગ્રહ પૃ ૧૪૬.)

૧૮. શત્રુંજય—પાલીતાણા કાઠીયાવાડમાં—આવેલો પવિત્રગિરિ. ગિરનાર-જુનાગઢમાં. આણ ૩ જુઓ વિમલ મંત્રીએ અને વરતુપાલ મંત્રીએ મહાન કારીગરીનાં અદ્ભુત જૈન દેવાલયો બંધાવેલાં છે. સમેત-શિખર કે જ્યાં ૨૪ તીર્થકરો પૈકી ૨૦ સુકિત પામ્યા છે—કલકત્તાથી જવાય છે.

અંપાએ વાસુ પૂજ્યની નિર્વાણ ભૂમિ. પાવાપુરી—મહાવીરની નિર્વાણ ભૂમિ. જેસલમેર—વીકામેર પ્રસિદ્ધ છે.

સેરિસરો, સેરિસા—કલ્હોલ પાસે. આ તીર્થનો હમણાં જ હિદાર કરવામાં આવ્યો છે.

શંખેશ્વર પાર્શ્વનાથ—પાટણથી ૨૦ ગાઉ દૂર. પંચાસરો પાર્શ્વનાથ પાટણમાં વનરાજ આવડાએ સ્થાપેલ.

પ્રલોધી—મેડતારાડ રોશનથી ૫ ગાઉ. સં ૧૧૮૧ માં પાર્શ્વનાથની પ્રતિમા સ્થાપાયેલી છે.

શિષ્ય પરંપરા.

હર્ષનંદન નામના એક વિદ્વાન શિષ્ય તેમને હતા. તે શિષ્યે સં. ૧૬૭૩ માં 'મધ્યાન્હે વ્યાખ્યાન પદ્ધતિ' તથા બીજે ગ્રંથ નામે 'ઋષિમંડલ સ્તવ' (મહર્ષિ સ્તવ) ગાથા ૨૭૧ નું, - તેના પર ૪૨૦૦ શ્લોકની ટીકા રચેલ હતી. ખરતર ગરુડમાં લઘ્વાચાર્યના નામનો આઠમો ગરુડલેહ ખં બિનસાગરસૂરિએ સં. ૧૬૮૬ માં કર્યો હતો તે ગરુડને હર્ષનંદને ઘણો વધાર્યો. વિશેષમાં હર્ષનંદને, તથા ખં સુમતિકલ્લોલ એ બંને એ મળીને તૃતીય જૈન આગમ નામે સ્થાનાંગ પરની વૃત્તિમાંની ગાથાઓ પર શ્લોક ૧૩૬૦૪ ની વૃત્તિ રચી હતી.

સમયસુંદરના શિષ્યના શિષ્ય નામે હર્ષકુશલ ગણી (ઉપાધ્યાય) હતા કે જેણે સમયસુંદરની લાપાકૃતિ નામે ધનદત્તની ચોપદ પોતે સંશોધિત કરી હતી.

સમયસુંદરની શિષ્ય પરંપરા અખંડ પછે સં. ૧૮૨૨ સુધી તે આલી આવેલી હતી એ વાત સિદ્ધ છે. સં. ૧૮૨૨ ના માગશર શુદ્ધ ૪ ના દિવસે તેમની શિષ્ય પરંપરામાંના આલમચંદે 'સચ્ચકત્વ કૌમુદી ચતુષ્પદી' એ નામની પદ્યકૃતિ મહુદાખાદમાં ખનાવેલ છે તેમાં પોતાની પ્રશસ્તિ આપતાં જણાવે છે કે.

યુગવર શ્રી જિનચંદ મૂર્તિદા, ખરતર ગરુડ દિલ્લિંદાજી
રીઠડ ગોત્ર પ્રસિદ્ધ કંઠક મહાશ્વર મુગસ લકંદાજી.
પ્રથમ શિષ્ય તમ મહા વેરાળી જિજ્ઞ મમતા સદુત્પાળીજી
સકલચંદજી સદ્ગ સોભાળી સમતા ચિત્તમું નાળીજી.
તામ સીસ પરગટ જગમાંલી મહ કોષ ચિત્ત ચાલેજી
પાઠક પદ્મીધર ઉજ્જાદૈ સમય સુંદરજી દલાલેજી.
તામ પરંપરમે સુવિચારી ભયે વાયક પદ ધારીજી
કુશલચંદજી બહ હિતકારી તામ શિષ્ય સુખકારી જી.
મહાશ્વર આસકરણજી રુદાયા જગમે મુગસ ઉપાયાજી
તામ શિષ્ય આલમચંદ દલાયા એ અધિકાર ખણાયાજી.

આ રીતે સમયસુંદરની શિષ્ય પરંપરામાં કુશલચંદ ઉપાધ્યાય થયા, તેના શિષ્ય આસકરણજી અને તેના શિષ્ય આલમચંદ.

ધંબજી—સ્વંભનક પાર્શ્વનાથ. હાલ ખંભાતમાં. તેની પ્રતિમા અમલપરસૂરિના સમયમાં પ્રકટેલી.

અંતરિક્ષ પાર્શ્વનાથ—આકાશાધી લગભગ ૨૦ ગાઉ દૂર.

અન્નવરો (અન્નહરો) પાર્શ્વનાથ—દાદિવાવાડના હિના ગ્રામ પાસે.

અમીજો પાર્શ્વનાથ—દુઆમાં (પાલજીપુર તાલુકો.)

જરાવલા પાર્શ્વનાથ (મારવાડ). નાડુલાઈ—મારવાડમાં. ગોડી પાર્શ્વનાથ—પારકરમાં. વરદાણા

પાર્શ્વનાથ—મારવાડમાં.

સંસ્કૃત ભાષામાં કૃતિઓ.

કવિ એક સમર્થ વિદ્વાન, ટીકાકાર, સંગ્રહકાર, શબ્દશાસ્ત્રી; છંદશાસ્ત્રી અને અનેક ગ્રંથોના અવલોકનકાર અને અવગાહનાર હતા એ તેમના નીચેના ગ્રંથો પરથી જણાય આવે છે. આ ગ્રંથો ગૂર્જર ભાષા સિવાયના છે:-

ભાવશતક શ્લોક ૧૦૧ સં ૧૬૪૧.

રૂપકમાલા પર વૃત્તિ શ્લોક ૪૦૦, સં ૧૬૬૩ આ વૃત્તિ કવિના પ્રચુર ઉક્ત જિનચંદ્ર સૂરિના શિષ્ય રત્નનિધાન ગણીએ શોધી હતી.

કાલિકાવ્યાર્થ કથા (સંસ્કૃત) સં ૧૬૬૬.

સામાચારી શતક સં ૧૬૭૨ મેડતામાં.

વિશેષ શતક (પત્ર ૬૭) સં ૧૬૭૨ મેડતામાં, આનો ઉલ્લેખ કર્તાએ પોતાની આ સહસ્ત્રીમાં કર્યો છે. સ્વચ્છ દિન પાર્શ્વજન્મ દિને.

વિચાર શતક (પત્ર ૪૫) સં ૧૬૭૪.

૧૮ અષ્ટલક્ષી સં ૧૬૭૬ (૨૨ જલધિરાગ ગોસમેતે) લાહોર. આ રાજાનો દવતે લખ્યું-એ રીતના વાક્યના આઠ લાખ અર્થોવાળો ગ્રંથ છે. આનું ખીજું નામ અર્થરત્નાલિ છે. તે લાલપુર (લાહોર) માં પૂર્ણ કર્યો. (પી. રી. ૪ થા. પૃ. ૬૮-૭૩)-

આ અષ્ટલક્ષી ગ્રંથ કવિએ સં ૧૬૪૬ પહેલાં શરૂ કરી તે વર્ષમાં એક પુસ્તકના પ્રમાણનો કરી નાંખ્યો હોવો જોઈએ એમ જણાય છે. એટલું જ નહિ પણ તે વર્ષમાં શ્રી અકબર બાદશાહે ખુદ રાજસભામાં વાચી સાંભળી આ પુસ્તક સ્વહસ્તે લઈ કવિના હાથમાં આપી તે રીતે પ્રમાણ-ભૂત કર્યો એવું પોતે આ ગ્રંથમાં જ જણાવે છે:-

૧૯ આમાં પહેલા એક શ્લોકમાં સૂર્યદેવની સ્તુતિ કરી છે તે ખાસ ધ્યાન ખેંચે છે. ત્યારપછી બીજા શ્લોકમાં કાલી-સરસ્વતીની સ્તુતિ કરી જણાવે છે કે 'રાજા નો દ્વંદ્વે સૌખ્ય' એ શ્લોકના એક પાદના ને નિજબુદ્દિની વૃદ્ધિ નિમિત્તે અર્થો કર્યા છે તેમાં તે પાદમાંના 'રાજા' નો અર્થ સૂર્ય પણ થાય છે એમ જણાવી સૂર્યદેવના નામો આપે છે:-

સાવિત્રી મવિતા રાજા વિસૃજો વિષ્ણો વિરટ્ ।

સત્તાર્ચિઃ સત્તુરગઃ સત્તાલોકનમસ્કૃતઃ ॥

એમ સ્કંદપુરાણમાં શ્રી સૂર્યસહસ્ર નામમાં જણાવ્યું છે તેથી રાજા એટલે શ્રી સૂર્ય, નઃ એટલે અમને સૌખ્ય આપે છે.

આમ જૂઠા જૂઠા અર્થો દરેક શબ્દોના મૂળી આખા વાક્યનો અર્થ કરી, સર્વે મળી આઠ લાખ અર્થ કર્યા છે તે જણાવી છેવટે પોતાની પ્રશક્તિ આપે છે,

સંવતિ ૧૬૪૯ પ્રમિતે શ્રાવણ શુક્લ ૧૨ દિને સમ્બ્યાયાં કર્મીરદેશ વિજયમુદિશ્ય શ્રી રાજશ્રી રામદાસ વાટિકાયાં કૃતપ્રથમપ્રયાણેન શ્રી અકબર પાતશાહિના જલ્લાલીનેન અતિજાત સાહિજાને શ્રી સિલેમ મુરઘાણ સામંતમંડલિકરાજરાજિવિરાજિતરાજસભાયાં અનેકવૈયાકરણતા-
ર્કિકવિદ્વત્તમમટ્ટસમસં અસ્મદ્ ગુરુવરાન્ યુગપ્રધાનભરતર-મદ્યારકશ્રી જિનચન્દ્ર સૂરીશ્વરાન્ આચાર્ય શ્રીજિનસિંહસૂરિપ્રમુલકૃતમુલસુમુલશિષ્યવ્રાતપરિકરાન્ અસમાનસન્માનવહુદાનપૂર્વ સમાહૂયાયમપ્લસાર્યાં પ્રન્યો મત્પાર્શ્વાદ્ વાચયાંચકેડવક્રેણ ચેતસા । તતસ્તદર્થશ્રવણ સમુત્પન્નપ્રભૂતનૂતનપ્રમોદાતિરેકેણ સંજાત-
ચિત્તચમત્કારેણ વહુપ્રકારેણ શ્રીસાહિના વહુ પ્રશંસાપૂર્વ ' પદચતાં સર્વત્ર વિસ્તાર્યતાં સિદ્ધિસ્તુ ।' ઇત્યુક્ત્વા ચ સ્વહસ્તેન ગૃહીત્વા પતત્ પુસ્તકં મમ હસ્તે દત્ત્વા પ્રમાણી કૃતોડયં ગ્રન્યઃ । અતઃ સોપયો-
ગિત્વાત્ શ્રીસાહિનાપિ સમુદિદ્યાર્યમાહ-રાજા શ્રી અકબરઃ નોડસ્મમ્યં સૌખ્યં સુલં દદતે પ્રજાનામિતિ ।

એટલે—સંવત્ ૧૬૪૯ ના શ્રાવણ સુદ ૧૩ દિને સાંજે કાશ્મીર દેશપર વિજય કર્યો તે નિમિત્તે શ્રીરાજ શ્રી રામદાસ (આ રામદાસ તે જણાય છે કે જેણે સં ૧૬૫૨ માં સેતુબંધ (રાવણબંધ) ની ટીકા રચી છે અને જેને માટે પ્રાચ્ય લઢ્દની રાજ્યતરંગિ-
ણિમાં વિશેષ ઉલ્લેખ મળી આવે છે) ની વાડીમાં શ્રી અકબર ખાદશાહ-જલ્લાલીને પ્રથમ પ્રયાણ કરી અતિ ખાનદાન શાહજહા શ્રી સલીમ (પાછળથી જહાંગીર ખાદશાહ) સુલતાન સામંત મંડલિક રાજઓથી વિરાજિત રાજસભામાં અનેક વ્યાકરણીઓ તાર્કિક વિદ્વત્તમ લઢ્દ-પંડિત સમક્ષ અમારા ગુરૂવર યુગપ્રધાન ભરતર લદ્દારક શ્રી જિનચન્દ્ર સૂરીશ્વરને આચાર્ય શ્રી જિનસિંહસૂરિ વગેરે આણેલા શિષ્ય સમુદાય સહિતને અતિશય સન્માન આપીને બોલાવી આ અપલસાર્યાં ગ્રંથ મારી પાસે શુદ્ધ ચિત્તથી વંચાવ્યો, ત્યારપછી તેના શ્રવણથી તેને અતિ નવીન પ્રમોદનો અતિરેક થતાં ચિત્તમાં ચમત્કૃતિ થતાં બહુ પ્રકારે શ્રી ખાદશાહે બહુ પ્રશંસા કરી અને 'સર્વત્ર વાંચી આનો વિસ્તાર કરો' એમ કહી સ્વહસ્તે તેને લઈને આ પુસ્તક મારા હાથમાં આપી આ ગ્રંથ પ્રમાણ ભૂત કર્યો. પછી પોતે જેના અર્થ કરવા ગયા છે તે પદ લઈ રાજ એટલે ખાદશાહ અકબર તે નઃ એટલે આપણને પ્રબળે સૌખ્ય આપે છે. આ ગ્રંથની અંતે કવિએ 'અકબર'શબ્દ વર્ણન અષ્ટક ' મૂકેલ છે તે ખાસ અવગાહવા યોગ્ય છે.

વિસંવાદ શતક સં ૧૬૮૫ આમાં સૂત્રોઆદિમાં પરસ્પર જે વિરોધ ભાસે છે તે ખતાવ્યો છે.

સૂત્ર પ્રકરણ ટીકા પ્રવંચ સંવંચ ચારુ ચરિતેષુ ।

યે કેડપિ વિસંવાદા દૃષ્ટા ઈકોક્તતા ઇહ તે ॥ પી. રી. ૩ પૃ. ૨૯૦.

વિશેષ સંગ્રહ સં ૧૬૮૫ લણકર્ણસરમાં.

આ રચનામાં શ્રી જિનસિંહ સૂરિના શિષ્ય ઉપાધ્યાય સમયરાજ ગણિએ (મદ્વિવેદ ગુરૂ-કે જે મારા વિદ્યાગુરૂનાજ શિષ્ય થાય) મારા પર અનુગ્રહ કરેલો છે એમ પોતે સ્વીકારે છે.

ગાથાસહસ્રી સં ૧૬૮૬ (પી. રી. ૩ પૃ. ૨૮૮).

આમાં જમાલિ આદિ નિન્હયોની આવશ્યક સૃષ્ટિમાંથી ૧૬ ગાથા ટાંકી કહેલ છે કે આની વ્યાખ્યા સંબંધ સહિત મારા રચેલ વિશેષ સંગ્રહમાંથી વિદિત થશે. આમાંની અનેક ગાથાઓ જૈન ઇતિહાસ અને સાહિત્ય માટે ઉપયોગી થાય તેવી છે.

ગાથાઃ કિયત્વઃ પ્રકૃતાઃ કિયત્વઃ શ્લોકાશ્ચ કાવ્યાનિ કિયંતિ સંતિ ।

નાનાવિધ ગ્રંથ વિલોકન શ્રમાદેવીકૃતા અત્ર મયા પ્રયત્નાત્ ॥

જયતિહુયણુ નામના સ્તોત્રપર વૃત્તિ સં ૧૬૮૭ પાટણમાં.

૨૦ દશવૈકાલિક સૂત્રપર શબ્દાર્થ વૃત્તિ. ટીકા શ્લો. ૩૩૫૦ સં ૧૬૯૧ ખંભાતમાં.

વૃત્તરતનાકર વૃત્તિ સં ૧૬૯૪ બલોદમાં.

૨૧ કલ્પસૂત્રપર કલ્પકલ્પલતા નામની વૃત્તિ શ્લો ૭૭૦૦.

નવત.વપર વૃત્તિ.

વીર ચરિત્ર સ્તવ એ નામના જિનવલ્લભસૂરિ કૃત સ્તવન પર ૮૦૦ શ્લોકની ટીકા વીરસ્તવ વૃત્તિ (હુરિયસ્વ સમીર વૃત્તિ)

સંવાદસુદર ૩૩૩ શ્લો

ચાતુર્માસિક વ્યાખ્યાન.

રઘુવંશ વૃત્તિ (પત્ર ૧૪૫)

કવિ કાલિદાસ કૃત રઘુવંશ નામનો ગ્રંથ જૈનોમાં સાહિત્ય અર્થે પઠાવવામાં આવતો અને તેથી તેના પર વૃત્તિઓ પણ જૈન સાધુઓએ અનેક કરેલી બોવામાં આવે છે.

આ રીતે સંસ્કૃત ભાષામાં કૃતિઓ તેમણે કરી છે. વૃત્તિ-ટીકા ઉપરાંત અનેક ગ્રંથો સૂત્રો વાંચી તે સર્વેનું દિગ્દર્શન કરાવી તેમાં રહેલા વિસંવાદ શોધી પોતાનું બહુશ્રુતપણું દાખવ્યું છે.

૨૦. દશવૈકાલિક—સૂત્ર એ પ્રાચીન સમ્બંધ સ્મરિત જૈનાગમ છે તે પર પ્રસિદ્ધ હરિભદ્ર સૂરિએ ટીકા કરી છે. કર્તા કહે છે કે તે ટીકા વિષય છે તેથી શિષ્યોને અર્થે. શીઘ્રબોધ થાય તે હેતુથી સુગમ કરી છે. (સુદિત સં ૧૯૭૫)

૨૧. કલ્પસૂત્ર—એ પણ પ્રાચીન, ભદ્રબાહુકૃત જૈનાગમ છે. આ પરની કર્તાની ટીકા ડૉ. બેકાળી (કે જેણે અગ્રેજીમાં આ સૂત્રનો અનુવાદ કરેલ છે. જુઓ સેક્રેડ યુક્સ ઓફ ધ ઇસ્ટ) ના કહેવા પ્રમાણે જિનપ્રબં મુનિએ કલ્પસૂત્ર પર રચેલી સંદેશવિષયક નામની ટીકાનો માત્ર સંક્ષિપ્ત સાર-abstract-છે. આ જિનરાજસૂરિ (કે જેનું શરિપદ સં ૧૬૭૪થી મરણ સં ૧૬૮૬ સુધી રહ્યું) ના રાજ્યમાં તે જિનસાગર સૂરિના યૌવરાજ્યમાં લણકણેશ્વર ગામમાં આરંભ કરીને તેજ વર્ષે પારિણી પુરમાં પૂર્ણ કરેલ છે. તેથી આ રચના સં ૧૬૭૪ થી ૧૬૮૬ ની વચમાં કરી છે.

ગૂર્જર ભાષાની પદ્યકૃતિઓ.

૧ ચોવીશી (૨૪ તીર્થકરનાં સ્તવનો) સં ૧૬૫૮ વિજ્યાદશમી અમદાવાદમાં આને કવિએ 'ચતુર્વિંશતિ તીર્થકરણીતાનિ' એ નામ આપ્યું છે. આની શુદ્ધ પ્રત અ.ભુ.દ.૭ કલ્યાણુજી હસ્તકના પાલીતાણાના ભંડારમાં છે.

૨ શાંખપ્રદુમ્ન પ્રખંધ રચ્યા સં ૧૬૫૯ વિજ્યાદશમી. ખંભાતમાં સ્તંભન પાર્શ્વનાથના પસાયથી.

૩ ભાષામાં મોટો અંથ રચવાનો આ તેમનો પહેલો પ્રયાસ છે એમ તે જણાવે છે.

શક્તિ નહીં મુઝ તેહવી બુદ્ધિ નહીં સુપ્રકાશ .

વચનવિલાસ નહીં તિરયઈ એ પશ્ચિ પ્રથમ અભ્યાસ.

કૃષ્ણના કુંવર શાંખ અને પ્રદુમ્ને આખરે નેમીશ્વર પાસે દીક્ષા લીધી અને વિમલગિરિ પર સંલેખના કરી મોક્ષે ગયા. આ જાનેનો અધિકાર આઠમા અંગમાંથી (અંતકૃત દશાંગ-અંતકૃત એટલે તદ્દલવ મુક્ત થનાર-ચરમભવી મહાત્માઓ સંબંધીનું સૂત્ર) લઈ આ પ્રખંધ એ ખંડમાં રચ્યો છે. ગાથા ૫૩૫, દાલ ૨૧, શ્લોક ૮૦૦ છે અને તે જેસલમેરના વતની નાનાવિધશાસ્ત્ર વિચાર રસિક હોદા સાં સિવરાજની અભ્યર્થનાથી રચેલો છે એવું એક જૂની પ્રતમાં લખેલું છે. સં ૧૬૭૦ ની લખેલી સારી અને જૂની પ્રત લોંબડીના ભંડારમાં મોબ્દ છે.

૪ દાન શીલ તપ ભાવના સંવાદ.P (અથવા સંવાદ શતક) ૨૨ સં ૧૬૬૨ સોગાનેરમાં ' પદ્યપ્રભુ સુપસાહલે ' -

જૈનમાં ધર્મના ચાર પ્રકાર નામે દાન, શીલ, તપ અને ભાવના જણાવ્યા છે-તે દરેક પોતપોતાને વંડો માને છે અને એ રીતે ચારે પોતપોતાના શુભ ગાઈ પોતપોતાથી કેટલા સુખી અને સિદ્ધ થયા તે જણાવી તકરાર કરી આપ વડાઈ, વીરની પરિવ્રજામાં, વીર પ્રભુ પાસે કહે છે ત્યારે છેવટે વીર સમાધાન કરી જણાવે છે કે:-

લણ્ણકર્ણસેરમાંજ સં ૧૬૮૫ માં પોતે દત્તા તે વિશેષપ્રદના રચનાકાલ અને રચક પરથી જણાય છે. તેથી આ રચના સં ૧૬૮૫ માં જ પૂર્ણ થયેલી છે.

આ P ચિન્દ મુદ્રિત થયેલ અંથ સૂચવે છે.

૨૨. કોઈક પ્રતમાં પાકાંતર બાસક ને બદલે ' જાસક ' છે. પણ ધણી પ્રતોમાં બાસક છે તેથી તે જ પાક ગોચ લાગે છે. આ સંવાદને 'સંવાદશતક' કર્તાએ પોતે એક ઠેકાણે કહેલ છે. પોતાની સીતા-રામ ચોપાઇમાં એક દાલનો રાગ મૂકતાં જણાવ્યું છે કે " રાગ ધન્યાસિરી-સીલ કહે જંગિ હું વડું, મુઝ વોત સુજો એક મીઠીરે- (કે જે આ સંવાદમાં બીજી દાલમાં સીલ કહે છે) એ મંવાદ શતકની બીજી દાલ. " કુલ ૫ દાલ છે અને ૫૦ કડી છે. આ સંવાદ સજાયમાળા અને રત્નાં સ્મૃત્યયમાં મુદ્રિત થયેલ છે.

કો કેહની મ કરો તુમ્હે નિંદા ને અહંકાર
 આપ આપણે કામે રહો સદુકો બહો સંસાર
 તોપણ અધકો ભાવ છે, એકાદી સમસ્ત
 જ્ઞાન શીલ તપ ત્રિણે બધા, પણ ભાવ વિના અકપત્ય.
 અંજન આંખે આંજતા, અધિકો આણી રેખ
 રજમાહે તજ કાકતાં, અધિકો ભાવ વિશેષ.

૪ ચાર પ્રત્યેક બુદ્ધનો રાસ. P માફ સં ૧૬૬૫ જેઠ શુ. ૧૫ આશામાં.

પ્રત્યેક બુદ્ધ થઈ સિદ્ધ થયેલા જૈન કહેલા કરકંડુ, હુમ્બખ, નેમિરાજ અને નિર્ગતિ (નિગ્ધ) એ ચાર સંખાધી ચાર ખંડમાં આ રાસ વિલક્ષ્ણ છે. પ્રત્યેક ખંડ સં ૧૬૬૪ માં પૂર્ણ કર્યો છે પણ દરેકની તીથિ જુદી જુદી છે. ૧ કરકંડુ પરનો સં ૧૬૬૪ ફાગણ સિદ્ધિયોગ બુધવારે. ઢાલ ૧૦, ગાથા ૧૮૭, શ્લોક ૨૫. ૨ હુમ્બખ પર ચૈત્ર વદ ૧૩ શુક. ઢાલ ૮. ૩ નેમિરાજ પર-તીથિ નથી જણાવી ઢાલ ૧૭.૪ નિગ્ધ પરનો માફ સંવત ૧૬૬૫ જેઠ શુદ્ધ ૧૫ આશામાં 'વિમલનાથ પસાઉલે' સાન્નિધ્ય 'કુશલસૂરીઈ'; ઢાળ ૯. આચારે ખંડ નાગડ-ગોત્રના સંઘનાયક સૂરશાહના આગ્રહથી રચ્યા છે. આખો રાસ અતિ સુંદર અને રસમય છે. મહનરેખા (મધુરેહો) સંખાધી આખ્યાન ત્રીજા ખંડમાં અંતર્ગત થાય છે. મુંબઈના શ્રાવક ભીમસી માણેકે આ સુદ્રિત કરેલો છે. ચાર પ્રત્યેક બુદ્ધ પર તિલકાચાર્યકૃત ૨૧૫ પદ્યમાં, ૧૧૩૮ શ્લોકમાં, ૬૦૦ શ્લોકો અને ૩૫૦ શ્લોકમાં રચાયેલી એમ ચાર પુસ્તક રૂપે કથાઓ જૈન ગ્રંથાલંકારીમાં નોંધાય છે.

૫ પોપધવિધિ સ્તવન: (એક નાની કવિતા) સં ૧૬૬૭ માગશર શુદ્ધ ૧૦ ગુરૂ. મચોટમાં.

૬ મૃગાવતી ચરિત્ર રાસ-ચોપદ. સં ૧૬૬૮ મુલતાનમાં.

વત્સદેશની રાજધાની કોશામ્બીના રાજા શતાનીકની રાણી અને ઉદાયનની માતા મૃગાવતી પતિ પોતાના પુત્રને સગીર મૂકી સ્વર્ગસ્થ થતાં પોતે રાજ્ય ચલાવે છે તે વખતે તેના પર આસક્ત બની અવંતીનો રાજા ચંદ્રપ્રોત આક્રમણ કરે છે, પણ તેને સમજાવી રાજ્યને હુર્ગઆદિથી પ્રબલ કરી આખરે મહાવીર લગવાનું પાસે પોતે દીક્ષા લે છે. આ પ્રમાણે શીલ સાચવી પુત્રહિતાર્થે રાજ્યવ્યવહાર કરી ધર્મ વૈરાગ્ય પામી સુક્તિ મેળવે છે; તે જૈન સતી પર આ સુંદર આખ્યાન છે. જુદી જુદી ગુજરાતી, મરઘરની, સિંધી, પૂર્વની નવી નવી ઢાળોમાં ત્રણ ખંડોમાં આ 'મોહનવેલી' ચોપદ રચેલી છે. પ્રથમ ખંડમાં ૧૩ ઢાળ, ગાથા ૨૬૬ અને બીજામાં પણ ઢાળ ૧૩, ગાથા ૨૬૬, ત્રીજામાં ઢાલ ૧૨, ગાથા ૨૧૧ છે. મૂળ જ્વેસભર નિવાસીને મુલતાનવસતા રીહડ ગોત્રના કરમચંદ શ્રવક વગેરે માટે મુલતાનમાં કે જ્યાં 'સિંધુ શ્રાવક સદા સોલાળી ગુરૂગચ્છ કેરા બહુ રાણી' —સિંધી શ્રાવકો વસતા હતા ત્યાં રચેલ છે.

આ રચનાની પહેલાં પોતે સાંખ્યમુખની ચોપાઈ રચી હતી એવું આના મંગલાચરણમાં જ જણાવ્યું છે.

૭ કર્મ છત્રીશી-P સં. ૧૬૬૮ માહ શુદ્ધ ૬ સુલતાનમાં ૩૬ કડીનું કર્મવશ સર્વ જીવ છે એમ જણાવી તે માટેનાં દૃષ્ટાંત આપ્યાં છે. (પ્રત્યક્ષવંદન સ્તુતિ સતવનાદિ સંગ્રહ પુના.)

૮-૧૦ પુણ્ય છત્રીશી (સં. ૧૬૬૮ સિદ્ધપુર) શીલ છત્રીશી. } સં. ૧૬૬૯
અને સંતોષ છત્રીશી } દરેકમાં ૩૬ કડી

૧૧ ક્ષમા છત્રીશી. નાગોરમાં.

(આદરજીવ ક્ષમા ગુણ આદર એથી શરૂ થતું ૩૬ કડીનું પ્રસિદ્ધ કાવ્ય.)

૧૨ સિદ્ધલ સુત પ્રિયમલેક રાસ. ૨૩સં. ૧૬૭૨ મહેતામાં.

દાન વિષય ઉપર આ આખ્યાન છે. સાધુને દાન દેવાથી સિદ્ધલસુત સિદ્ધલસિંહ કેવાં સુખ પામે છે તે અને તેમાં પ્રિયમલેક નામના તીર્થનું મહાદમ્ય જણાવી તે ઉત્તમ શ્રાવક તરીકે ધર્મના રૂઝાં કામ કરે છે અને સમાધી મૃત્યુ પામી સુરુદ્ધવી લહે છે એ બતાવ્યું છે. ઢાલ ૧૦ છે. આ પોતાની સ્વકલ્પિત કથા લાગે છે.

૧૩ નલદમયંતી રાસ. સં. ૧૬૭૩ વસંત માસમાં મહેતામાં.

કવિ પ્રેમાનંદે નલાખ્યાન રચ્યું છે, તેની પહેલાના સ્લોકમાં કવિ સમયસુંદરે જૈન કથામાં નિરૂપેલું નલદમયંતી અસ્તિ પરી લાખામાં આ રસમય રાસ રચ્યો છે. સ્તિકાચાર્ય કૃત દંશવૈકાલિક વૃત્તિ અને પાંડવ નેમિ અસ્તિમાંથી અધિકાર ઉદ્ધરી 'કવિયણુ કેરી કિહાં કણિ આતુરી' કેળવી છ ખંડમાં, સર્વ ગાથા ૯૧૩, શ્લોક સંખ્યા ૧૩૫૦, અને

૨૩ આમાં પ્રાચીન સુખાપિત મુદ્રેલ છે કે:-

યતઃ-ધરિ ઘોડો નંછ પાશે જાય, ધરિ ઘેણુ ને લૂપડિ પાય,

ધરિ પશ્યંતે ને ધરતી સહ, તિજુરી બદ્ધરિ જીવતાને રહ.

આની પ્રત મારી પાસે છે. પત્ર ૧૬. પંક્તિ ૧૩. બીજી પ્રતો ધોરાજના સર્વજ મહાવીર લંકાર, તેમજ ગારીયાધરના, પાલણપુરના લંકારોમાં છે.

૨૪. તિલકાચાર્ય-શ્રી ચંદ્રપ્રભ-ધર્મધોષ-ચક્રેશ્વરસુરિ-શિવપ્રભસુરિ અને તેના શિષ્ય. તેમણે આવ-રપક સૂત્ર લઘુવૃત્તિ ૧૦૬૫૦ શ્લોકમાં સં. ૧૨૯૬ માં. ચૈત્યવંદના પંદનક પ્રત્યાખ્યાનવૃત્તિ શ્લો. ૫૫૦, આવકપ્રતિકમંથુ સૂત્રવૃત્તિ શ્લો. ૨૦૦, સાધુપ્રતિકમંથુવૃત્તિ શ્લો. ૨૯૬, ઉક્ત દશ વૈકાલિક સૂત્રવૃત્તિ શ્લોક ૭૦૦૦, સં. ૧૩૪૬ માં, જીતકંઠપવૃત્તિ શ્લો. ૧૭૦૦, સં. ૧૨૭૪ માં, આદ્યજીતકંઠ મૂળગાથા ૩૬ અને તેના પર રસોપસંગ્રહ શ્લો. ૧૧૫, પૌર્ણમિક સામાચારી શ્લો. ૨૫૦૦, નેમિનાથ અસ્તિ શ્લો. ૩૫૦૦ અને પ્રત્યેક બુદ્ધ ચતુષ્ટય કથા રચેલ છે. આ પૈકી છેલ્લો ગ્રંથ પણ કવિએ ચાર પ્રત્યેક બુદ્ધના રાસ રચતાં કદાચ જોયો હોય.

ઢાલ ૩૮ માં રચના કરી છે. આની પ્રત મુંબઈની મોહનલાલજી સેટલ લાયબ્રેરીમાં, આણંદજી ઠક્વાણજીના પાલીતાણાના ભંડારમાં, લીંબડીના ભંડાર વગેરે સ્થળે વિદ્યમાન છે.

૧૪. પુણ્યસાર ચરિત્ર. સં. ૧૬૭૩ આની પ્રત મને પ્રાપ્ત થયેલ નથી.

૧૫. રાણકપુર સ્તવન સં. ૧૬૭૬ માગશર. રાણકપુરમાં.

મારવાડમાં સાદડી પાસે રાણકપુરમાં સોમમુંદરસૂરિથી પ્રતિષ્ઠિત થયેલું ૯૯ લાખ ખર્ચા ધનાશા પોરવાડે સં. ૧૪૬૧ માં બંધાવેલું અતિ ઉત્તમ અને શિલ્પકારીગરીથી ભરપૂર અનેક સ્તંભોવાળું ' ત્રિભુવન દીપક ' નામનું મંદિર વિરાજે છે. તેની કવિએ જાત્રા કરી તેના દુકં વર્ણન રૂપે આ સ્તવન રચ્યું છે. આરે દિશાના ૨૪ મંડપ, આર ચતુર્મુખ (ચામુખ) પ્રતિમા, ૮૪ દેરી, ભોંયરાં. ત્યાં ખરતર વસતિ-દેહકં છે.

૧૬. વહકલચીટ્ટી રાસ. સં. ૧૬૮૧ જેસલમેરમાં.

ઉપરોક્ત જેસલમેરી કર્મચંદ મુલતાનમાં વસતો હતો તેના આગ્રહથી આ પણ રાસ રચ્યો છે. આની પ્રત પ્રવર્તક શ્રી કાન્તિવિજયજીના વડોદરાના ભંડારમાં છે. અને લીંબડીના ભંડારમાં છે.

૧૬અ. એકાદશી (મૌન એકાદશી) નું વૃદ્ધ (મોદુ) સ્તવન. P સં. ૧૬૮૧ જેસલમેર પ્ર. રત્નસમુચ્ચય પૃ. ૧૭૨-૩.

૧૭. વસ્તુપાલ તેજપાલનો રાસ. સં. ૧૬૮૨ (પાકાં ૧૬૮૬) તિયરી પુરમાં.

આ એક બહુ ટૂંકી કૃતિ છે. આમાં વસ્તુપાલ અને તેજપાલ જે ગુર્જરાજ વીરધવલના પ્રખ્યાત શૂરવીર જૈન મંત્રીઓ થયા તેમણે જે દેવલ કર્યો તેનો તથા બીજાં ધર્મ કાર્યોનો દુકં અહેવાલ છે. આની પ્રત મેં લખી લીધેલી છે. એક પ્રત કાર્ણસ સભા પાસે છે.

૧૮. શત્રુંજય રાસ. P. સં. ૧૬૮૨ (પાકાં. ૧૬૮૬)^{૨૫} નાગોરમાં શ્રાવણ વદમાં. આ રાસ ટૂંકો છે. તેમાં લખ્યું છે કે સં. ૪૭૭ માં ધનેશ્વરસૂરિએ શત્રુંજય માહાત્મ્ય નામાનો ગ્રંથ શિલાદિત્ય હજૂર કર્યો (આ એક હંત કથા છે) તેનો કંઈક આધાર આમાં લીધો છે. આમાં પહેલી ઢાલમાં શત્રુંજયનાં ૨૧ નામ, પછી તેનું પ્રમાણ, બીજી ઢાલમાં ત્યાં સિદ્ધ થયેલાનાં નામ, ત્રીજી તથા ચોથી ઢાલમાં તેના સોલ ઉધાર વણુપેલાં છે, પછી માહા-

૨૫. બાસી અને છાસી: એમ તેમ બાસક અને છાસક એમ પાકાંતર બા અને છા એક બીજાને બદલે લખાઈ જવાના હસ્તલેખથી સંભવે છે. આ બંને રાસો માટે જુઓ કાર્ણસ શુભશાતી સંભાર્ના હસ્તલિખિત પુસ્તકોની સવિસ્તાર નામાવલી પૃ. ૪૭ અને પૃ. ૬૭.

ત્ય જતાવી પાંચમી ઢાલમાં ત્યાં પાપનું આલોચણુ (આલોચના) કરતાં છુટકો થાય છે એ જતાવી છઠી ઢાલમાં ત્યાંના દેવળોનું ઢુંક વર્ણન કરી-એત્ય પ્રવાહિ વર્ણવી જણાવે છે કે-

• એત્ય પ્રવાહિ દ્રણુ પર કરીએ, સીધાં વંછિત કામ.
જાત્રા કરી શત્રું જ તણીએ, સફલ ક્રિયો અવતાર
કુશલ ક્ષેમશું આપિયોએ, સંઘ સદ્ પરિવાર-

આ રીતે સંઘ સાથે પોતે જાત્રા કરી કુશલક્ષેમ આગ્યા ને ત્યાર પછી સં. ૧૬૮૨ માં નાગોરમાં આ રાસની રચના કરી. તો આ સંઘ કયો તે અંદર જણાવેલ સોમજીશાહ વંશ પોરવાડે પરમડો એ સોમશી સાદ મન્નાર
રૂપજ સંધવી કરાવીએ એ, ચૌમુખ મૂલ ઉધ્ધાર

નો સંઘ કદાચ હોય એવી કલ્પના થવા સંભવ છે. કારણ કે તે અમદાવાદના શેઠ સોમજી સવાઇએ સં. ૧૬૭૫ માં આ ચૌમુખની ટાંક બંધાવી. તેમાંના બહારના ભાગને ખરતરવસહિ અને અંદરના ભાગને ચૌમુખ-વસહી કહે છે. મીરાતે-અહમદી કહે છે કે આ મંદિર બંધાવવામાં ૫૮ લાખ રૂપીઆ લાગ્યા હતા.

(રત્નસમુચ્ચયમાં પૃ. ૨૭૦ થી ૨૮૦ ને પાને પ્રસિધ્ધ થયેલ છે. છેલ્લી પ્રશસ્તિ આમાં છે તેથી વધારે ૧૯ મી કડી પછી ત્રણ કડી બીજી પ્રતમાં વિશેષ છે તેમાં જણાવેલ છે કે આ રાસ શત્રુંજય માહાત્મ્ય સાંભળી તે અનુસાર રચ્યો છે અને તે નેસલ-મેરથી લણુશાહી થિરે શત્રુંજયનો સંઘ કાઢ્યો હતો, તો આ થિરનો સંઘ જ ઉપર જણાવેલ કુશલક્ષેમથી આવેલ સંઘ હોવાનું સ્પષ્ટ પ્રતીત થાય છે.)

૧૬. સીતારામ પ્રબંધ ચોપદ. સં. ૧૬૮૩ મેડતામાં.

આ રાસ ઘણો મોટો છે અને જૈન રામાયણ આખી તેમાં મૂકી છે. આમાં પ્રથમ જ પોતે આની અગાઉ ચાર રાસ રચ્યા છે તેમાં ' હે સરસ્વતિ તે ' મદદ કરી હતી તેમ આમાં પણ મદદ કરને ' એવું જણાવે છે:-

સમકે સરસતિ સામિણી, એક કું અરદાસ
માતા દે જે મુજને કું વચન વિલાસ.

સંખ પ્રજૂન કયા સરસ (૧), પ્રત્યેક જુદ પ્રબંધ (૨)
નલ દ્વદંતી (૩) મૃગાવતી (૪), ચક્રપદ ચાર સંખંધ.

આઠ તું આવી તિહાં સંખ્યા દીધો સાદ,
સીતારામ સંખંધ પણિ સરસતિ કરે પ્રસાદ.

આ પદ અરિત્ર (પદમ અરિયમ)-સીતાચરિતના આધારે રચેલ છે. હિન્દુ રામાયણમાંથી અનેક આખ્યાનો જૂદા જૂદા હિન્દુ કવિએ લખેલાં છે. કવિ કહે છે કે-

જિનશાસન શિવશાસને સિતારામ ચરિત્ર મુણીજે
જિનજિન શાસન ભણી કે કે વાર્તા જિન કહિજે.

આ નવ ખંડમાં લગલગ ૩૭૦૦ ગાથાનો આ રાસ, ગોલછા ગોત્રીય પ્રસિધ્ધ રાય-
મલના પુત્રરત્ન અમીપાલ અને નેતસી, તથા લત્રીજ રાજસીના આગ્રહે રચેલો છે. તેમાં
કવિએ ગૂજરાતી, સિંધી, મારવાડી, મેવાડી, હુંદારી, દિલ્હી વગેરે અનેક સ્થાળોનાં ગીતો
તથા દેશીઓ લઈ તેની લયમાં પોતાની દેશીઓ બનાવી કાવ્યચાતુરી એવી કુશલતાથી
રચેને ખીલવી બતાવી છે કે ન પૂછો વાત. આ કૃતિ તો કવિની અદ્ભૂત યશ છે અને
તે ગૂર્જર કવિ શિરોમણી પ્રેમાનંદથી અનેકધા ટક્કર મારી કેટલીક બાબતમાં ચડી બંધ છે.
કવિ પોતે આ કૃતિને માટે મગડૂર છે એમ તે છેલ્લે બે જણાવે છે તે પરથી સ્પષ્ટ થશે:—

સીતારામની ગોપધ જે ચણર હુંધ તે વાંચો રે,
રાગ રતન જવહર તણો, કુણ બેઠ લહે નર કાયો રે-
નવરત પોખ્યા મેં ઇલાં, તે મુકડો સમજ લેજ્યો રે,
જે જે રસ પોખ્યા ઇલાં, તે કામ દેખાડિ દેજ્યો રે-
કે કે દાલ વિપમ કહિ તે, દુપણ મત ઘો કોઇ રે,
સ્વાદ સાળણી જે હુવે તે લિંગ હદે દે ન હોઇ રે-
જે દરબારે ગયો હુસે હુંદાડિ મેવાડિ ને દિલ્હી રે,
ગુજરાત માર્યાડિમેં તે કહિસે દાલ એ બલ્હી રે-
મત કહો મોટિ કાં જોડી, વાંચનાં સ્વાદ લહેસો રે,
નવનવા રસ નવનવી કથા, સાબલતાં સાખાશ દેશો રે-

આ રાસ ખાસ પ્રકટ કરવા યોગ્ય છે. દેવચંદ દાલભાઈ પુસ્તકોદાર કુંડવાળા પાસેથી
આની પ્રત મને જોવા મળી હતી. તેઓ પ્રકટ કરવા ઈચ્છતા હોય એમ જણાતું હતું,
પંજુ આને ત્રણ ચાર વર્ષ થયા છતાં કંઈપણ તે માટે પ્રયાસ થયો નથી જણાતો તે
શોચનીય છે. આ રાસની કવિ સ્વહસ્તલિખિત પ્રત આશાલંકારમાં છે.

૨૦ ખારત્રતરાસ	સં. ૧૬૮૫
૨૧ ગોતમપૂચ્છા	સં. ૧૬૮૬
૨૨ થાવચ્યા ચોપાઈ	સં. ૧૬૯૧

[થાવાચ્યા પુત્ર કથા શ્લોકબદ્ધ પત્ર ૧૧ ની જૈનઅંધાવલિમાં નોંધાયેલી છે.]

૨૩ ચંપકે ઐર્હની ચોપાઈ સં. ૧૬૯૫ જલોદમાં.

આ અતુકંપાદાન ઉપર કથાનક છે. પોતાના અધિક સ્નેહી શિષ્યના આગ્રહથી. બે ખંડ.
કુલ ગાથા ૫૦૬. અંધાચંચ શ્લોક ૭૦૦. પ્રત આણંદજી કલ્યાણજીના તથા ધોરાજીના
ભંડારમાં છે.

આમાં એ પણ ખતાવ્યું છે કે સરજત ઉપર આધાર રાખનાર હોય છે પણ ઉદ્ભવ અને ભાવી ખતેને ભાવી કરતાં ઉદ્ભવ અધિકું છે.

‘સદુ કે લોક લક્ષ્ય છમ સરજ્યું, તે બોલ કેતા વાંચું,
ઉદ્ભવ છમ છમ પણ ભાવી અધિકું, સમયસુંદર કલ્પ સાચું.’

[અંધકાંઠે કથા એ નામથી (૧) ૩૫૫ શ્લોકમાં, (૨) વચસોમ (કવિ સમયસુંદર સાથે જેણે ઉપાધ્યાય પદ લીધું તે શુણ્વિનયના શર) કૃત, (૩) વિમલગણિ કૃત, એમ ત્રણ જૈન ગ્રંથાવલિમાં નોંધાયેલ છે.]

૨૪ ધનદત્ત ચોપાદ્ય સં ૧૬૬૬ આસો માસ. અમદાવાદમાં.

આ વ્યવહારશુદ્ધિ પર કથાનક છે. શ્રાવકે વ્યવહારમાં કેવી રીતે વર્તવું એ આનો ઉદ્દેશ છે. શુદ્ધ વ્યવહાર-ચોખવટભર્યો વ્યવહાર કયો તે કવિ ખતાવે છે. શ્રાવકના ૨૧ ગુણ ગણાવે છે.

વિષુજ કરનકિ વાણીયકિ, સાદજી, ઓહું નાપજ ટાંક,
અધિકું પિણુ તોલજી નહી, સાદજી, મનમાંદિ આણુજી સંક-
મુણકિ રે ભવિકજન, શ્રાવક ગુણ ધક્કીસદણિ પરજ.

સખર વચન ન કલ્પ નિખર, સાં નિખર સખર ન કલ્પ
નિણુ વેલા રેવું કહું, સાં તિણિ વેલા તે દેષ-સું

જુહું કદિ બોલજી નહિ, સાં સાચું કલ્પ નિતમેવ,
પહિલકિ વ્યવહાર શુદ્ધિ ગુણ, સાં છમ કહું અરિદત્તદેવ. સું

લગભગ દોઢસો ટુંકનો આ રાસ છે. આની પ્રત અમદાવાદમાં, ધોરાજી અને પાટણના ભંડારમાં છે. પાટણના હાલાભાદના ભંડારના ઠાળરા ૮૨ માં પત્ર ૯ ની આ રાસની એક પ્રત છે તેની અંતે લખ્યું છે કે ‘સર્વ ગાથા ૧૬૧ શ્રી સમયસુંદર મહોપાધ્યાયનાં પૌત્રેણ પં. હર્ષકુશલ ગણિના સંશોધિતા. સા. હરજી ધનજી સુશ્રાવિકાવ્રહ્મણ.’ પત્ર ૯. આ પરથી જણાય છે કે કવિની શિષ્ય પરંપરા હતી અને તે પૈકી તેના શિષ્યના શિષ્યનું નામ પંડિત હર્ષકુશલ હતું.

[ધનદત્ત કથા (૧) શ્લોકબદ્ધ પત્ર ૨૪, (૨) ગદ્યમાં પત્ર ૧૦, (૩) પત્ર ૧૭ માણિક્યસુંદર કૃત, (૪) ૩૩૦ શ્લોકની, એમ ચાર અને સૌથી પ્રાચીન તાલ પત્રમાં લખેલી અમરચંદ્ર કૃત એમ પાંચ જૈન ગ્રંથાવલિમાં નોંધાયેલ છે.]

૨૫ સાધુવંદના સં ૧૬૯૭ (લીં ભંડાર)

૨૬ પાપ છત્રીશી સં ૧૬૯૮ અહિમદ્ધુરમાં. (પૂર્ણચંદ્રજી નંદાર પાસે પ્રત છે)

૨૭ સુસહ રાસ આ પ્રાપ્ત થયેલ નથી. [મૂળ આ ઠથા પ્રાકૃતમાં દેવેન્દ્રસૂરિ કૃત પ૩૭ ગાથામાં અને બીજી પ્રાકૃતમાં ૩૫૦ ગાથા, જૈન અધ્યાવલિમાં નોંધાયેલ છે.]

૨૮ પુણ્યાદય રાસ (હહેલાનો અપાસરો તથા રત્નવિન્યયનો ભંડાર. અમદાવાદ)

૨૯ પુલ્લ ઋષિનો રાસ.

નાગપુરીય તપાગચ્છની પદાવલિમાં થયેલા એક મુનિના તપનું વર્ણન કરવા સમયમુંદર ઉપાધ્યાયે આ રાસ કરેલો જણાવ્યો છે. પાર્શ્વચંદ્રસૂરિ સંતાનીય વિમલચંદ્રસૂરિ થયા તેની પાસે પુલ્લ મુનિએ રાજનગરમાં વિ. સં ૧૬૯૦ માં અષાઠ શુદ્ધિ ૯ ને દિને દીક્ષા લીધી, અને ત્યાર પછી ઉચ્ચ તપ ક્રિયા કરી ૧૨૩૨૨ (?) ઉપવાસ કર્યો અને બીજાં અનેક તપ કર્યો. આ સર્વ તપની સંખ્યા વગેરે ઉક્ત રાસમાં આપી છે.

આ સિવાય કવિએ અનેક રવાધ્યાયો (સંજાયો), રતવનો, પદ વગેરે દુકી કવિ-તાઓ રચેલી છે:-

સંજાયો—મહાસતી યા મહાપુરુષો પર લખેલી, અને બીજી વૈરાગ્યોપદેશક સંજાયો એમ બે પ્રકારે છે.

- (૧) રાજુલ પર સંજાય. (પ્રથમ ચરણ-રાજુલ ચાલી રંગ શું રે)
 ગજસુકુમાલ સં (નયરી દ્વારામતિ બાણિયેજી)
 અનાથી મુનિ સં (શ્રેણિક રચવાડી ચડયો)
 બાહુણલિ સં (રાજતણા અતિ લોલિયા...વીરા મહારા ગજથકી ઉતરો)
 ચેલણા સં (વીર વાંદી વલતાં થકાંજી.....વીરે વખાણી રાણી ચેલણાજી)
 અરણિક મુનિ સં—(અરણિક મુનિવર આદ્યો ગોચરી)
 કરકંડું સં—(ચંપા નગરી અતિ લલી, હું વારી લાલ)
 નમિરાજપિ સં. પ્રસન્નચંદ રાજપિ સં. સ્થૂલભદ્ર સં
 મેઘરથ રાય સં—દશમે ભવે શ્રી સાંતિજી, મેઘરથ જીવડો રાય-રૂડારાજ....ધન્ય
 ધન્ય મેઘરથ રાયજી, જીવદયા ગુણખાણ....)
 શાલિભદ્ર સં (પ્રથમ ગોવાળિયા તણે ભવેજી, દીધું મુનિવર દાન....)
 ભૂદેવ-નાગિલાની સં (અર્ધ મંડિત ગોરી નાગલા રે—આ દેશી વિનય વિનય
 અને યશોવિનય કૃત શ્રી પાળરાસમાં લેવાઈ છે) અપ્રગટ.
 ધનાની સંજાય—(જગિ જીવન વીરજી, કવણુ તમારો શીષ)—અપ્રકટ.
- (૨) નિંદા પર—(નિંદા મ કરજો કેાઇની પારકી રે)
 માયા પર—(માયા કારમીરે માયા મકરો ચતુર સુભણુ.)
 દાનશીલ તપ ભાવ પર—(રે જીવ જિન ધર્મ કીજીએ.)

ધોળીડા પર-(ધોળીડા તું ધોળે મનનું ધોતિયું રે.)

પંચમઆરા.

(શ્રાવકના) એકવીસ શુભ સં (પુરુષચંદ્રેશ નહાર-કલકતા પાસે પ્રેત છે)-
આ કદાચ વ્યવહાર સુદ્ધિ રાસનો ભાગ હોય.

સ્તવનો

(૧) સુનિસુન્નત સ્વામી સ્તવ (પપ્પવાસાનું સ્તવ)-૧૫ દિવસના ઉપવાસ કરવાના તપ ઉપર-(જંબૂદ્વીપ સોહામણે દક્ષિણ ભરત ઉદાર.)

ઋષભદેવ સ્તવન.

તીર્થભાલા સ્તવન (શત્રુન્યે ઋષભ સમોસર્થા)

રાણકપુર સ્તવ સં ૧૬૭૬ (રાણકપુર રણિયમણું રે...શ્રી આદીશ્વર દેવ મન મોહું રે)
અષ્ટાપદ ગિરિ સ્તવ (મનડો અષ્ટાપદ મોહો માહરોશ, નામ જપુ નિશિદીસ લ)
સીમંધર સ્તવ (ધન ધન હોત્ર મહાવિદ્વેહલ.)

શત્રુન્ય મંડલુ શ્રી આદિનાથ સ્તવન-સં ૧૬૬૬ માં કવિના હાથનું લખા-
યેલું પંડિત લાલચંદ પાસે છે. 'સંવત સોલ ૯૯૫૧ ભાદવા સુદિ ૧૩ દિને
લિપિતં ॥ સ્વયમેવ ॥' એમ છેલ્લે ઉલ્લેખ છે. તેમાંની ૨૨ મી કડી

‘ચંચલ જીવ રહે નહીંજી રાયઈ રમણી રુપ,
કામ વિટંબજી સી કહુંજી તું જાણઈ તે સરુપ.’

તે જિન હર્ષે પોતાના ‘આદિજિન વિનતિ’ સવનમાં થોડા ફેરફાર સાથે લીધી
જણાય છે.

(૨) પંચમી તપ પર નાનું સ્તવ-(ચંચમી તપ તમે કરે રે પ્રાણી.)

પંચમી તપ પર વૃદ્ધ (મોહું) સ્તવ-કાલ ૩૦ (પ્રણમી શ્રી શુદ્ધપાપ નિર્મલ જ્ઞાન ઉપાય)
જ્ઞાન પંચમી એ જૈનોમાં જ્ઞાન વૃદ્ધિ અર્થે એક ધાર્મિક પર્વ છે. આમાં
જણાવ્યું છે કે.

જ્ઞાન વડો સંસાર, જ્ઞાન મુક્તિ દાનાર
જ્ઞાન દીવો કલો એ સાચો મહદેવો એ,
જ્ઞાન સોચન સુવિધાર, લોકા લોક પ્રકાશ,
જ્ઞાન વિના પશુ એ, નર જાણે કિશું એ.

એકાદશી વૃદ્ધ સ્તવ ૧૩ કડીનું. (સમવસરણ એકા લગવંત, ધરમ પ્રકાશે શ્રી
અરિહંત). મૌન એકાદશી નામના ધાર્મિક પર્વ પર જોસલમેરમાં સં ૧૬૮૧

ઉપધાન તપ સ્તવ—(શ્રી મહાવીર ધરમ પરગાસે, બેઠી પરવદ બારણ.)

પોપધવિધિ સ્તવ—

(૩) વિનતિ એટલે સંજોધન રૂપે આપવીતિ-સ્વદોષ જણાવી પ્રભુની કૃષ્ણા અને દયા માંગવા માટે જેમાં આર્જવ પૂર્વક વિનતિ કરવામાં આવી છે તેવાં વિનતિ સ્તવનો.

મહાવીર વિનતિ સ્તવ (વીર સુણે મોરી વિનતિ, કરજોડી હો કહું મનની વાત)
આ જેસલમેરમાં નાચનાઆચ પોતે હતા ત્યારે બનાવ્યું છે.

અમર સરપુર મંડન શીતલનાથ વિનતિ સ્તવ (મોરા સાહેબ હો, શ્રી શીતલનાથ કિ, વીનતી સુણે એક મોરડી).

આલોચણ (આલોચના) રૂપે વિનતિ સ્તવ

(૪) છંદ—પાર્શ્વનાથ છંદ (આપણુ ઘર બેઠાં લીલ કરે.)

(૫) દાદાલ સ્તવ (ખસ્તર ગરુદમાં પોતાની શુર પરંપરામાં થયેલ જિન કુશલ સ્મરણ 'દાદાલ' તરીકે જોળણાય છે. ઘણા અમરકારી હોઈ તેમણે સમરતાં ઘણાને પૂરવા આપ્યા છે એમ મનાય છે. એવો પરચો કવિને મળ્યો હતો તેવું આ સ્તવનમાં જણાવેલ છે, તેમજ પોતાની કૃતિમાં પણ સ્તુતિ રૂપે તેમનું સંનિધ્ય લઈને આજ્ઞાહન કરેલું છે. આદિ ચરણ-આયો આયોલ સમરતા દાદાલ આયો.)

સ્તુતિઓ. પ્રભુ સ્તુતિ.

વિમલાચલ કપલ સ્તુતિ.

૨૬ કેટલાંક પદો 'વેરાગ્ય-ઉપદેશ' બોધક ટૂંકાં કાવ્યોને 'પદ' એ નામ અપાય છે. જે મળેલા તે આ નિબંધમાં ઉદ્ધૃત કર્યા છે. આ બધાં હિન્દી ભાષામાં છે.
અન્ય કૃતિઓ—ઉપરોક્ત સિવાય અન્ય કૃતિઓ કવિની હોવાનો સંભવ છે. એ પૈકી પિત્રમંડાપ પદ પોતાની ટીકા કે સ્તવન-કંઈ પણ હોવી જોઈએ. ૨૭

૨૬ ઉપરની સમગ્રો, સ્તવનો, પદ વગેરે સર્વ સુદ્રિત થયાં છે. જુઓ જૈનપ્રબોધ સત્રાયમાળા, નસાગર, રતનસમુચ્ચ, જૈન કાવ્યસંગ્રહ, ચૈત્યવંદનસ્તુતિ સ્તવનાદિ સંગ્રહ.

૨૭ કારણ કે ખૃ. શિવચંદ પાઠકે ૨૪ જિન પૂજન સં. ૧૭૭૯ (નંદ સુનિ નાગધરણી) વર્ષમાં માસો શુદ્ધ ૨ ને શનિને દિને જયપુરમાં રચેલ છે તેમાં સમયસુંદરની આ કૃતિનો પોતે આધાર લીધેલો જણાયો છે:—

સમયસુંદર અનુચવી કપિમંડલ, જિનકી શોભ સવાયા,

પૂજા. ૨મી પાઠક શિવચંદે આનંદ સંધ. વધાયા—

સ્તનસાગર ભાગ ૧ ભો ૫, ૨૮૮.

કવિની અન્ધે કરેલી પ્રશંસા.

આ સર્વ કૃતિઓ પરથી જણાય છે કે સમયસુંદર એ એક પ્રતીષ્ઠિત, નામી કવિ, ગ્રંથકાર અને લેખક હતા. તેમના સમકાલીન, શ્રાવક-કવિ પ્રસિધ્ધ ઋષભદાસે પણ માત્ર નામથી ઉલ્લેખેલા પ્રસિદ્ધ કવિઓમાં સમયસુંદરને પણ ગણાવ્યા છે:—

સુસાધુ હંસ સમયો સુરચંદ, શીતલ વચન જિમ શારદચંદ
એ કવિ મોટા બુદ્ધિ વિશાલ, તે આગલિં હું સુરખ ખાલ.

—કુમારપાલ રાસ, રચ્યા સં ૧૬૭૦.

આ પરથી સં ૧૬૭૦ પહેલાં જ સમયસુંદરે શરચંદ્ર સમાન શીતલ વચન જેનાં છે એવા મોટા બુદ્ધિ વિશાલ કવિ તરીકેની ખ્યાતિ ઋષભદાસ જેવા ઉત્તમ અને તે યુગના એક આધારભૂત કવિ પાસે મેળવી હતી એ સ્પષ્ટ જણાય છે.

સં ૧૬૭૦ પછી તો તેમણે અનેક સુંદર અને મોટી કૃતિઓ રચી છે અને તેથી તેમની ખ્યાતિ દિન પ્રતિદિન વધતી ગઈ છે. તેમની કવિતાઓના પ્રથમ ચરણો લખીને તેની દેશીઓ મૂકીને તે દેશીઓ પર અનેક જૈનકવિવરો—સારા સારા કવિઓએ (સમકાલીનમાં ઋષભદાસ, અને પછીના આનંદધન વિગેરે) પોતાનાં કાવ્યો રચ્યાં છે એ વાત વિસ્તારથી હવે પછી સમજાવેલ છે.

વિશેષમાં તે પછીના જ અઢારમ સૌકામાં થયેલા એક કવિ નામે પંડિત જ્ઞાનતિલકના શિષ્ય વિનયચંદ્રે પોતાના સં ૧૭૫૨ ના કાગળ શુદિ ૫ ના દિને પાટણમાં ૪૨ હાલ અને ૮૪૮ ગાથાના ઉત્તમકુમાર ચરિત્ર રાસમાં પોતાની માહિતી આપતી છેવટની પ્રશસ્તિમાં સમયસુંદર માટે યથાર્થ જણાવ્યું છે કે:—

જ્ઞાન પયોધિ પ્રબોધિવા રે, અભિનવ રશિહર પ્રાપ્ત, સુ. . .
કુસુમચંદ્ર ઉપમા વહે રે, સમયસુંદર કવિરાય સુ. ૮ . . .
તતપર શાસ્ત્ર સમરચિન્તા રે, સાર અનેક વિચાર સુ. . .
વસિ કલિંદિકા કમલિની રે, ઉલ્લાસ દિનકાર. સુ. ૯ . . .

આ રીતે કવિરાજ સમયસુંદર જ્ઞાન સમુદ્ર માટે ભરતી આણનાર અભિનવ ચંદ્રમા સમાન, કુસુમ માટે ચંદ્ર સમ, અને શાસ્ત્ર સમર્થન કરવા તતપર-શાસ્ત્રના ગર્ભમાંથી અનેક વિચારથી સાર-અર્ક કાઢનાર અને કમલના ઉલ્લાસ માટે જેમ સૂર્ય તેમ શાસ્ત્રનું ઉલ્લાસન કરનાર હતા.

કવિની લલ્લતા.

કવિએ પોતાનાં આખાનો ઘણી સુંદર, મનોહર અને સાદી લાખામાં આજેખ્યાં છે,
જે. ૫

અને કવિત્વ બતાવ્યું છે; છતાં પોતે પોતાના નામ પાછળ 'કવિ' એ પદ કયાંય ધારણ કરેલું દેખાતું નથી; ઉલટું પોતાની લઘુતા તેમણે બતાવી છે.

૧ મંણિમૌં ગુર માતા પિતા, માનદષ્ટિ દાતાર,
કાઠીયા કુંજર કરે, એ મેટા ઉપગાર.
ગારક દ્રણીની મણિ ગહે, તે જિમ મંત્રપ્રભાવ,
તિમ મહિમા મુઝ ગુર તણો, હં મતિ મૂઢ સ્વાભાવ.
—પ્રત્યેકશુદ્ધરાસ.

૨ હું મૂઢ મતિ દિસું જાણું મુઝ વાણિ પણિ ન સવદો રે,
પણિ જે જોડિ મેં રસ પડ્યો તે દેવગુરનો પરસાદોરે;
હું શીલવંત નહિ તિસો, મુઝ પોતે બહુ સંસારોરે,
પણિ શીલવંતનો જરા કહતાં મુઝ થાશે સદિ નિસ્તારો રે.

—સીતારામ ચોપાઇ.

પણ કવિ પોતે 'કવિ' નાં લક્ષણ એક રથલે જણાવે છે કે;

અપલ કવીસરનાં કલાં એક મન ને વચન એ બેધરે,
કવિ કલ્પોલ બણિ કહે, રસના વાલા પથુ કેધરે,

—સીતા રામ.

કાવ્યનો હેતુ

સાધુઓનાં ગુણ ગાવાથી અનંત લાભ છે, તેથી લવનો અંત આવે. પ્રહસમે ઉઠી શીલવંતનાં નામ સહુ જાણે છે તેથી હું પણ લક્ષિતથી આ મૃગાવતી શીલવતીનું ચરિત્ર લખું છું. દાન ઉત્તમપાત્રને દેવાથી અઢળક લક્ષ્મી થાય છે તેથી આ સિંહલસુતની દાન કથા કહું છું. જીભ પવિત્ર કરવા આ દમયંતી સતિનું ચરિત્ર કહું છું. કેાઇને કલંક ન દેવું—પાપ વચન પરિહરનું એ સીતાનું દુખ જોઇ યોધ લેવાનો છે તેમ જ શીલ પાળી સીતાની પેઠે મુખ અને લીલવિલાસ પામો તે માટે સીતા રામનો સંબંધ કહું છું. અતઃ કંપાપર અંપક શ્રેષ્ઠી, અને વ્યવહાર શુદ્ધ આવક ધર્મપર ધનદત્તની કથા કહું છું—એમ કવિ જણાવે છે.

પોતાની કૃતિમાં મંગલાચરણમાં મહાવીર આદિ તીર્થંકર, ગૌતમસ્વામી, સરસ્વતી, સુમતિ, માતાપિતા, ગુરુ-દીક્ષાગુરુને વિદ્યાગુરુની, સ્તુતિ-સ્મરણ કરે છે તે પૈકી સરસ્વતી આદિની સ્તુતિ ખાસ ધ્યાન જેણે છે.

સરસ્વતી સ્તુતિ

વીણા પુસ્તક ધારિણી સમરૂં સરસતિ માય,
મૂરખને પંડિત કરે કાલિદાસ. કલિવાય.

—ચાર પ્રત્યેક શુદ્ધ રાસ.

સમરૂં સરસતિ સામિતી, પ્રણયું સદ્યુર પાય;
 બે કરજોડી વીનવું, માણું એક પ્રસાય.
 સરસ વચન દીક સરસતિ, સુણતાં અમીય સમાણ;
 સદ્યુર પશિ સાનિદ કરો, નિરમલ દિક મુઝ માન.

—મૃગાવતી રાસ.

સમરૂં સરસતિ સામિતી, એક કરૂં અરદાસ;
 માતા દેજે મુજગને કરૂં વચન વિલાસ.
 સંબંધનૂન કયા સરસ (૧), પ્રત્યેકશુદ્ધ પ્રબંધ (૨)
 નલ દવદતિ (૩) મૃગાવતી (૪), ચક્રપદ ચાર સંબંધ.
 આપ તું આવી તિહાં, સમયો દીધો સાદ
 સીતારામ સંબંધ પશિ, સરસતિ કરે પ્રસાદ

—સીતારામ ચોપાદ.

સુમતિ

મુજને સુમતિ જગાધયો, હઠ હઠ રે હઠ,
 શુષ્ક વરણને ગરવા તથા, ફૂં તુઝ પૂરસો પૂઠ.
 તિથુ મુઝ ઉદય ભપતો, પંખીને જિમ પંખ,
 એક લાભ વલિ કહે સુમતિ, દૂધ ભર્યો વલિ ચંખ.

—ચારપ્રત્યેક શુદ્ધ રાસ.

માતપિતા-શુરસ્તુતિ

માતપિતા પ્રણયું સદા જનમ દીધો મુઝ જેણું,
 વાંકું દીક્ષા શુર વધી, ધરમ રતન દિયો તેણું.
 વિદ્યાશુર વાંકું વધી, માન દહિ દાતાર,
 જગમાંહિ મોટો નાણિયો, એ ત્રિહૂનો ઉપકાર.
 એ ત્રિહૂને પ્રણમી કરી, છઠો ખંડ કહેસિ,
 પડ રસ મેલી એકલા સગલા સ્વાદ લહેસિ.

—સીતારામ ચોપાદ.

આ સિવાય અમલકારી શુરુઓ પોતાના ગચ્છમાં પૂર્વે થયેલા તે જિનદત્તસૂરિ, અને
 જિનકુશલસૂરિ વગેરેનું આજ્ઞાલેન કરે છે અને સાનિદ માગે છે.—

શ્રી જિનદત્ત સૂરિ જગતો, દવધ પ્રણયું તસ પાય
 અખંડ ૧૨ અક્ષર ચક્રી, યુગ પ્રધાન કહિવાય.
 જીતી ચોસડિ જોગિણી, ક્ષેત્રપાલ આવન;
 નામધ ન પડધ વીજલી, લોક કદમ્બ ધનધન,

ખંડ બીજા સાનિધિ કરી જિનશ્રી કુશલ સૂરીદ,
તિમ ત્રીજા કરજ્યો હુઠે, હું પણિ હું મતિમંદ,

—શુભાવલી ત્રીજા ખંડની આદિમાં.

આનાંજ બીજા ખંડમાં જિનકુશલ સૂરિની સહાય માગી હતી.

શ્રી જિનકુશલ સૂરીસર, સુણિ મોરી અરદાસ,
સુઝનઈ આળસ ભીખજા, મતિ પણિ નહીં પ્રકાસ,
ઉદાસીન મને માહરૂં, કહેા કીમ કીજા જોડિ,
તું સદશુર જગિ જાગતાં, પૂરધ વંછિત કોડિ.
પરતો એક મધ પેલીકો, નગર મરોટ મઝાર,
મેહ માગ્યો પૂરા ટુરત; ધમ અનેક પ્રકાર,
તેણુઈ ટુજનઈ મધ પ્રારથ્યો, સમરથ સાહિય જાણિ,
મધ બીજો ખંડ માંડીકો, તું શિધ આડિ પ્રમાણિ,

આ રીતે ‘પરતો’—અમરકાર—પરિચય પોતાને મરોટનગરમાં જિનકુશલ સૂરિના નામ સ્મરણથી વાંછિત મેઘવૃષ્ટિ થયાનો પોતાને મળેલો કવિ સ્વીકારે છે. એ ઉપરાંત બીજો ‘પરતો’ પણ દેરાવરમાં પોતાને મળેલ તે હકીકત પણ પોતે તેમના સ્તાવનમાં નોંધી છે.

આયો આયો જી સમરંત દદોજી આયો,
સંકટ દેખ સેવકકું સદશુર, દેરાવર તેં ધ્યાયો જી—સમરંતાં
દાદા વરસે મેહ ને રાત અધિરી, વાપણિ સખડો વાયો,
પંચ નદી હમ ખેડે ખેડી, દરીયે હો દાદા દરિયે ચિત ડરાયો જી—સમરંતાં
દાદા ઉચ્ચ ભણી પોદ્યાવણ આયો, ખરતર સંધ સવાયો,
સમયસુંદર કહે કુશલ કુશલ શુર, પરમાનન્દ સુખ પાયો જી—સમરંતાં

—[પ્ર૦ રત્નસાગર ભા. ૧ પૃ. ૬૪૮]

ચાર પ્રત્યેક શુદ્ધના રાસની અંતે પણ જિનકુશલ સૂરિના સાનિધ્યથી એ પૂર્ણ થયેા એમ જણાવે છે.

વિમલનાથ સુપસાહસે એ, સાનિધ્ય કુશલ સૂરીદ,
ચારે ખંડ પૂરા થયા એ, પામ્યો પરમાણુદ—

વાર્તાનો ઉપયોગ.

કવિ પ્રેમાનન્દ, અને શામળના પુરોગામી આ કવિએ પણ વાર્તાઓને કૌતુકવતી બનાવી વિમલવાણીમાં મૂકી. વાર્તાઓનું મૂલ કથામાંનું વસ્તુ લઈ તેને મનમાં ખડી રાખી તેનામાં પોતાનો અનુલવ પૂરતા જઈ લોકોત્તર જિરામાં મૂકતા જઈ રસની સાથે વાર્તાના પ્રવાહનું અનુસંધાન કવિ રાખતો ગયો છે;

વાર્તા ચ કૌતુકવતી વિમલા ચ વાણી છોકોત્તરઃ પરિમલ શ્ચ કુરંગનાભેઃ
તૈલસ્ય વિન્દુરિવ વારીણિ દુર્નિવારમેતત્ત્વયં પ્રસરતિ સ્વમેવ ભૂમૌ ॥

કૌતુકવતી વાર્તા, વિમલ વાણી અને કસ્તૂરીમૃગની નાભિની લોકોત્તર સુગંધઃ આ નજી પાણીમાં તેલનું દીપ અનિવાર્યપણે પ્રસરે તેમ પૃથ્વી પર સ્વયમેવ પ્રસરે છે.

આ કવિ જૂની વસ્તુને નવા આકારમાં—નવી ભાષામાં—પોતાની માતૃભાષામાં મૂકતા જઈ તેને ખીલાવ્યે ગયો છે અને તેવી ખીલાવટમાં આવશ્યક એવી પ્રેરણા અને તર્ક શક્તિનો ઉપયોગ કવિ પોતે કવિ અને વાર્તાકાર તરીકે કર્યો ગયો છે. વાર્તાઓમાં લોકોત્તર અને સંસાર વ્યવહારોનું ચિત્ર-પ્રતિબિંબ કવિએ આપેજ્યું છે. તેનામાં પ્રેરણા છે, અને કિલકટતા નથી.

કૃતિઓ ભાષાન્તર નથી.

કવિ પ્રેમાનન્દે પૌરાણિક સાહિત્યનું અનુકરણ અને ભાષાન્તર કર્યું તે પહેલાં જૈન સાહ્યોએ પોતાની પૌરાણિક કથાઓનું અનુકરણ અને ભાષાન્તર કરવાનો માર્ગ ઘણાં વર્ષોથી લઈ લીધો હતો. પ્રેમાનન્દને પુરાણમાંની કથાનું વસ્તુ લઈ તે પર પોતાના કવિત્વનો ઓપ આપ્યો અને તેના સમયને ‘કવિત્વ’ જો કાળની ઉપમા અપાઈ તો તેની પહેલાંના જૈન કવિ, નય સુંદર, આ કવિ, ઋષભદાસ વગેરેને ‘ભાષાન્તર કાળ’ માં ઉદ્ભવેલા નહિ કહી શકાશે. કારણકે તેઓએ માત્ર ભાષાન્તર નથી કર્યું પણ મૂળ વસ્તુ પર પોતાના ‘કવિ કેળવણી’થી ચણેલા સુંદર રાગોના-રંગોવાળાં ચણતર કરી તેમાં ‘કવિત્વ’ દાખવ્યું છે—એ બધા છુટથી અને છટાથી ભાષાદ્વારા મનોભાવ દાખવવામાં સફલ અને વિજયી થયા છે.

દેશી દેશીઓ

સામાન્ય જન સમૂહમાં વાર્તા સાંભળવાનો અત્યંત રસ હોય છે અને તેવા વાર્તાના રસીયાઓને—ભાવનાહી લોકલોગ્ય ભાષામાં એક ધારે વહેતી જૂદી જૂદી ઢાળો-દેશી રાગ-ણીઓમાં પોતાની સ્વોત્પન્ન શક્તિથી કાર્યમાં મૂકી આ કવિએ કથાનકો પૂરાં પાડ્યાં છે.

એવું કહેવામાં આવે છે કે ગૂર્જર સાહિત્યમાં કવિ પ્રેમાનન્દે ગૂર્જર ભૂમિનાં જ ‘વૃત્તસંતાનો’—ગૂર્જરાતી રાગો જેવા કે માડ, રામેરી, રામગ્રી આદિ દેશી રાગોનો બહુ છુટથી ઉપયોગ કર્યો છે; પરંતુ અત્રે મને કહેવા દો કે તેમના પૂરાગામી આ સમયસુંદરે તેમની પહેલાં જ દેશી રાગોને અતિ વિસ્તૃત પ્રમાણમાં પોતાની સર્વ કૃતિઓમાં વાપર્યાં છે, એટલું જ નહિ, પણ સમયસુંદરના સમકાલીન, અને તેમના સત્તરમા સદ્કામાં જ થયેલ સર્વ જૈન કવિઓએ દેશી ઢાળો-રાગોનો જ ઉપયોગ કર્યો છે,

સમયસુન્દર તો દેશી રાગો-ઢાળો-દેશીઓના માર્મિક જાણકાર અને વાપરનાર હતા અને તે વાપરી જે સુન્દર કાવ્યો રચતા તે એટલે દરજ્જે સુધી પ્રસિદ્ધ થઇ ગયા હતા કે તેમના પછીના જ નહિ, પણ નયસુન્દર અને ઋષભદાસ જેવા તેમના સમકાલીન સમર્થ જૈન કવિઓએ પણ સમયસુન્દરનાં કાવ્યોની દેશીઓ ટાંકી તે દેશી ઢાળોમાં પોતાની કવિતાઓ રચી છે.

દેશી રાગો યથાસ્થાને વ્યાપરવામાં સમયસુન્દરે વિવેચક બુદ્ધિથી કૌશલ દાખવ્યું છે.

- (૧) સિંધુ રાગે રે, સુષિ ચરિઆ જાગે રે;
અતિ મીઠી પણ લાગે દાલ એ સાતમી રે.
(૨) ગાંડી રાગે પહેલી ઢાળ, સમયસુન્દર કહે વચન રસાલ.

x x x x

ગોડી રાગ રસાલ જીજી દાલ કહી,
સમયસુન્દર કહે એમ સુણતાં મરસ મઢી.

- (૩) ટોડીને ધન્યાસરીજી, નવમી ઢાલે રાગ,
સમયસુન્દર કહે સાંભલોજી, જિમ ઉપજે વૈરાગ.

x x x x

દાલ ભણી એ સાતમી, ધન્યાસિરિ રાગ સોહરે,
સમયસુન્દર કહે જાવતાં, નરનારી મન મોહરે.

- (૪) ભલો રાગ ખંભાયતીરે, સોહેલાની દાલ છઠી રે,
સમયસુન્દર કહે શ્રાવકો રે, સાંભલતાં અતિ મીઠીરે.

યુદ્ધમાં વીર રસ ઉત્પન્ન કરાવવા યુદ્ધગીત 'કડખા' માં મૂકાય છે. હાલ જૂલણા છંદ યા પ્રભાતિયું જે રીતે ગવાય છે તેજ રીતે ખારોટ ચારણાદિ ગાઈ તેને 'કડખુ' નામ આપે છે. જૈન કવિઓ જનતાં સુધી યુદ્ધ સંગ્રામનાં ગીત આ કડખાની દેશીમાં જ મૂકે છે. સમયસુન્દરે યુદ્ધ સંગ્રામનું ગીત-યુદ્ધ વર્ણન આ દેશીમાં મૂક્યું છે અને છેવટે કહ્યું છે કે "રામચી રાગની ઢાલ એ પાંચમી, સમયસુન્દર કહે જાતિ કડખો.—

ચડયો રણ જૂઝના ચંડપ્રલોત નૃપ, ચડતનાં તુરત વાજાં વળયાં,

સુભટ ભટ કટક ચટ મટકિ બેલા ચયાં, વડવડા વાગીયા વેગે ધાયા.—૧ ચડયો

(ગજવર્ણન) શીશ સિંહરીયા પ્રખલ મદ પૂરીયા, ભમર ચુંબર બીપણ કપોલા,

મુંદ ઉલાલતા શતુદલ ગાલતા, હાથીયા કરત હાલા કસોલા.—૨ ચડયો

ધંટ બાજે ગલે રહે એકડા મલે, મેદ-કાલી ધરા જાણે દીસે,

દલકતી દાલ ને શીશ ચામર દલે, મત માતંગ રહે ભયાં રીસે.—૩ ચડયો

હાલતા ચાલતા જાણે કરી પર્વતા, ચુહર ચુંબર ગંબીર કરતા,

ચંડપ્રલોત રાગ તણા કટકમે, હરતી લાખ દોખ મદવારિ-જરતા.—૪ ચડયો

(અધવર્ણન) દેશ કારમીર કંબોજ કાણલ તણા, એવ ખુસાણુ સુધા બુખારા,
 અવલ ઉત્તર પવન પાણી પંચ વડી, બલ લલા કચ્છી તેજ તુખારા—૫ ચડ્યો
 નીલકા પીલકા સખલ કંબોજકા, રાતકા રંગ કવિલા કિહાડા,
 કિરડીયા કાલ્યા પૂંસરા દૂસરા, હાંસિલા વાંસલા ભાગ ભડા—૬ ચડ્યો
 પવન વેગ પાખ્યા ફોજ આગલ ધર્મો, ચાલતા ભણે ચિત્રામ લેખ્યા,
 એહવા અધ ઉગ્રેણી રાજ તણે, કટકમે' લાખ પંચાસ સંખ્યા—૭ ચડ્યો

(પાયક વર્ણન) શિર ધરે આંકડા બાંહે પેહેરી કડાં, બાળની પરતના બોલવાલા,
 એકથી એકડા કટક આગલ ખડા, ચર વીર વાંકડા સુભટ પાલા—૮ ચડ્યો
 સખલ કાંધાલ મૂઝાલ જિન સાજિયા, લોહ મય ટોપ આટોપ ધારા,
 પંચ હથિયાર હાથે ને બાથે બહિ, બીમ સમ વડ જલા પાસિ હારા—૯ ચડ્યો
 તીર તર કસ ધરા અભંગ બટ આકરા, સહસ એધાર સંગ્રામ થરા,
 ચંડપ્રહોત રાજતણે એહવા, સાત કોટિ સાથ પાયક પૂરા—૧૦ ચડ્યો

(રથવર્ણન) નિજ નિજ નામ નેજ ધન દરહરે ધર હરે ધોર નીશાણુ વાળ,
 જરહ જોશાણુ કાયા લાખ એ રથ શીયા, સાથમે' ચંડપ્રહોત રાજ—૧૧ ચડ્યો
 ચાલીયા કટક ભણે ચકવર્તિકા, ધસરી ધૂલ ઉડે ગગન લાગી,
 સમુદ્ર જલ જીહ્યાં સેપ પશુ સહસસ્યા, મુહર જોપીતાથકર નિંદ ભાગી—૧૨ ચડ્યો
 ઈંદ્રને ચંદ્ર નાગેન્દ્ર પશુ ખલમસ્યા લંક ગદ પોસિ તાલાં જડાયાં;
 સખલ સીમાલ મૂપાલ ભાગી ગયા, ચંડપ્રહોત રાજ ન આયા—૧૩ ચડ્યો
 આવીયો ચંડપ્રહોત ઉતાવલો, દેશ પંચાવની સીમમહિ,
 દુમુહ રાજ પશુ દેહદમાર્મા ચડ્યો, આવી સાહમે' અડ્યો ખન ઉગ્રહોં—૧૪ ચડ્યો
 ફોજ ફોજે' મલી બાટ ભટ જીહી, સખલ સંગ્રામ લારયમંદાણો,
 ભડે' ભડ મસ્યા મૂપ મુપે' ભડયા, સુભટ મુભટે' અડયા દેખી રાણો—૧૫ ચડ્યો
 મુકટ પરભાવે' રાજન જીયો દુમુહ, કટકમાં પ્રગટ નલ પડલ વાગો,
 કાજ લંપટ સદા ફડ કપટી તલા, ચંડપ્રહોત રાજન ભાગ્યો—૧૬ ચડ્યો
 નાસતો ભાજતો ચંડપ્રહોત વૃષ, નલિ કરી બેડીયામહિ દીધો,
 કટક ભાજ દશોદિશિ ગયું તેહનું, 'ધર્મજય પાપ ક્ષય' વચન સીધો—૧૭ ચડ્યો
 દુમુહ રાજ ન આયો ધેર આપણે, કહે છલાં રાજ પંચ રાત પડ્યો,
 રામક્રી રાજની દાલ એ પાંચમી, સમયસુંદર કહે ભતિ પડ્યો—૧૮ ચડ્યો

આમ ઉજ્જયિનીના વિષયલક્ષર રાજા ચંડપ્રહોતને અને પંચાલના કવિલપુરના રાજા દુર્મુખ સામેના યુદ્ધ વર્ણન કવિએ કંઠમાંની દેશીમાં આપ્યું; તેમ 'સિંધુડો' એ યુદ્ધના રાગમાં કવિએ કંચનપુરનાં કરકંડુ રાજા ચંપાના દક્ષિવાહન રાજા પર ચડે છે તેવું વર્ણન કરે છે.

કરકંઠુ રાજા રે, સુણિ કરત દીવાજા રે, તતકાલ વજાયાં, વાજાં ચઢતરાં રે.
 કટકી કરી ધાયો રે, ચંપા પુરી આયો રે, તપ તેજ સવાયો રે, પુર વીંટી રહ્યો રે.
 ગદ્દો હોં મંડ્યો રે, અભિમાન ન છંડ્યો રે, નિજ બોલ ન ખંડ્યો, તપ સાહાયો અડ્યો રે.
 રણુ ભૂમિકા સૂરે રે, નાલગોલા છોરે રે, ગડડંત ગયયુરે, શેખનાગ સલસલે રે,
 સરણાધ વાળે રે, સિંધુડો સાળે રે શસ્ત્રીર વિરાળે ઉચા ઉચ્છલે રે.
 પહેયો નિથુ સાલા રે, ઉમટયા મેદ દાલા રે, શિર ટોપ તેજલા અખઅખ અખકતા રે,
 બાલાં અણીખાલાં રે, ઉછાલે પાલા રે એક સુખટ મુછાલા, ચાલે ચમકતા રે.
 વાળે રણુતૂચં રે, એક દલ પૂરાં રે, એક એકથી ચરા સુખટ તે સાચમે' રે.
 જમકી છબ લખે રે, જાણે વિજલી ચમકે રે, તરવાર ઉપાડી અખકે હાથમે' રે.
 પહે તીર વચાલે' રે, આવતાં ટાલે રે વયર પોતાનું વાલે તે સાસે નહી રે.
 નવા નેજા ફરકે રે, વડવાને ચરકે રે પગ એક ન મરકે પાછા તે મહી રે.
 મૂછે વલ ધાલે રે, આગલથી ચાલે રે ફોજ આવતી પાળે તે વહી વારકી રે.
 એક પાગડા છોરે રે, તપ હોડાહોરે રે, અણીએ' અણી જોરે ફોજા' મારકી રે.
 છોડી આતસ બાહરે, બેઠે રાજા-રાણ રે ન રહે ગજ વાણ જાડયા કેમ કિયે રે.
 ઠાકુરખ પુકારે રે, બાપ બિરદ સંજારે રે આજ નય તે તુઠહારે ભુજે' પામીયે' રે.
 બાજણુરા સુસ લીધા રે, ગંગોદક પીધાં રે, બલાં ભોજન કીધાં તાજાં ચૂરમાં રે.
 રાણીરા જાયા રે, આમદા સામદા ધાયા રે ધણા અમલ ખવરાયા ચડિયા શરમાં રે.
 એક કાયર કંપેરે, ચિહ્ન દિશિ દલ ચંપે રે, મુખ જંપે દાદા હવે ઠિણ દિશિ ભાગથું રે.
 શસ્ત્રીર નાકુકે રે, હોશિ રણુ ઢુકે રે, મુખ કૂકે' આવો આજ લટાપટ લાગથું રે.
 સંગ્રામ મંડાણો રે, નહીડા તિસેા શાણો રે, રાય રાણો સમજાવે જે બિહુ' રાયને રે.
 હુંતી વાત ચોડી રે, ચઢ કલેશની કોડી રે, ન શકે કોઇ છોડી સમજાવને રે.
 સિંધુડે રાગે' રે, સુણિ શરિમા જાગે રે, અતિ મોડી પશિ લાગે દાલ એ સાતમી રે
 સમયસુંદર ભાંખેરે, હવે વડતાં રાખે રે, પદમાવતી પાખે' એ કુણ મતિ સમીરે.

કવિએ અનેક દેશદેશાંતર ભ્રમણ કરેલ છે અને ત્યાં ત્યાંથી ગવાતાં ગીતોને-દેશીઓને લઈ તેમાં પોતાનાં કાવ્યો ગાયાં છે-સંગીત કાવ્યો રચ્યાં છે. પોતાના 'મૃગાવતી રાસ' માં જણાવે છે કે:-

સંધી પૂરવ મરૂધર ગુજરાતી, દાલ નવી નવ ભાતી,
 ચતુર વિચક્ષણુ તુમહે હોઇ, દાલ મ ભાંગજ્યો કોઇ.

એટલે સિંધની સિંધી, પૂર્વ હિંદની, મારવાડની મરૂધર અને ગુજરાતની ગુજરાતી ઢાળો નવી નવી પોતે કરી છે, તે ઢાળને હે શ્રોતા ! તમો ચતુર વિચક્ષણુ હોઇને કોઈ ભાંગતા નહિ-અખંડ રાખજો એટલે રાગથી અજાણી નહિ કરતા-ગાયે જ જાણે, કાવળ કે

ભાંગી ચૂડિએ' નહી મકારા, તૂટિ લટિએ' ન્યું હારા,
 ભાંગે મને ન સોહે વૈરાગી, ભિન્ન ન સોહે દાલ ભાંગી.
 કનક મુદ્રકી નંગ વિહુણી, રસવતી જેમ અલૂણી,
 કંત વિના જિમ નારિ વિરખી, રાગ વિણ દાલ ન ચંગી.

મીઠી ઢાલ રાગસિંઘ મેલી, નિમ્ન મિત્રી દૂધ લેલી;
તેહ મણી ઢાલ રાગસિંઘ કહયો, ચતુર વૃન્દે જસ લેયો.

આ ઉપરાંત હુંઢાડી (મારવાડ પાસેનો પ્રદેશ), મેવાડી, દિલ્લી-વગેરેની દેશીઓ લીધી છે. (જુઓ ઉપર સીતારામ ચોપાઈ પર લખતાં જણાવ્યું છે તે)

હવે ઉપરના પ્રાંતની ઢાલો જોઈએ. સિંધી, એટલે સિંધ પ્રદેશની. પોતે મુલતાનમાં વસ્યા હતા અને ત્યાં અનેક સિંધીઓ વસતા હતા એમ તેમણે જણાવ્યું છે. તે લોકોમાંથી—

(૧) સિંધી ઢાળ. ૧. “રાગ-મારણી-જાંબર દીવ ન બઝે રે, દાલરિ કમલ ન હેષ,
છારિ મૂરખ મોરી ખાંદરી, મીમા જોરે પ્રીતિ ન એષ,
કન્દમ્બા બે, હયારલ આસિયા, જોવન જાસિયા બે, ખહર ન આસિયા.

એની ઢાલ-એ ગીત “સંધિ માહે પ્રસિદ્ધ છે.” આ પ્રમાણે કવિએ સ્વહસ્તલિખિત પોતાની-સીતારામ પ્રખંધ ચોપાઈમાં આઠમા ખંડની ખીજ ઢાલમાં લખ્યું છે.

૨. સંધિની રાગ આસાઉરી. મન રાજી તો મું કરઈ કાજી; એ ઢાલ.

૩. રાગ આસાઉરી સિંધુડો. ઢાલ સિંધની.

—આ બંને મૃગાવતી રાસમાં વાપરી છે.

(૨) પૂરવની ઢાળ.—રાગ હુસેની. ધન્યાસિરી મિત્ર.

દિલ્લી કે દરબારમે લખ આવે લખ નાઇ, એક ન આવે નવરંગ ખાન નાકિ પધરિ ઢલિર નાઇ.
—નવરંગ વેરાગીલાલ એ દેશી.

(૩) મરઘર ઢાલ—(હુંઢાડી તથા મેવાડી)તો મુશ્કાળ લીધી છે કારણ કે ત્યાં પોતે બહુ વાસ કર્યો છે.—કવિએ પોતે જણાવેલ તે પ્રમાણે નીચે મૂકવામાં આવેલ છે.

૧. વરસાંરી હોલી આવઇ, પ્રાહુણા—એ ગીત

૨. જોગરામરી ગીતરી. હાથીયાં રઇ હલકઇ આવઇ માદરઇ પ્રાહુણીરે—એહની ઢાલ.

૩. ધરિયા ધરિયો ઝોલગણે આખુ ઉલગેમાં આણુ ઉલગેરે લાલ.

૪. તોમ્મ દોલ્લે મ્હારા લાલ, દાર પીએ છ, પડવે પધારો મ્હારા લાલ, લસરક લેજોછ.—
તેરી અજબ સૂરતિ મ્હાંકો મનડો રંજ્યો રે લોખી લંબાણ—એ ગીતની ઢાલ.

૫. રે રંગ રતા કરહલા, મો પ્રીક રતો આંણુ, હુંતો લંબરીકો દિને પ્રાણુ કરે ખુરખાણુ
મુરંગા કરહલા રે, મો પ્રીક પાછો લાલ. મનિહા કરહલા રે—એ દેશી રાગ મારણી.

૬. અઘાં માંછી ચિત્તામાં કાઈ જોઇ, અઘાં મારડે મેવાડીકો સાદ સોહામણો રે લો.

૭. રીરે રીરે બારણે સમલા પદમિનીરે. એ દેશી રાગ મારણી. —આ બધી મૃગાવતીમાં.

૮. રાગ આસાઉરી. સિંધુડો મિત્ર. અરણાંકી ચામુંડા રણે ચો, ચખ કરી રાતા એથોરે
વિરતિ દાનવ દલ વિચિ, ઘાઝે દીયો ધમરોલો રે—રાસનાલી.

૯. વેસર સોનાડી, ધરિંદે ચતુર સોનાર વેઠ, વેસર મહેરી સોનાડી રંઝે નંદકુમાર વેઠ

—એક ગીતની. રાગ અસાહરી.

૧૦. નોખારા ગીતરી-નોખારા ગીત માણ્યાં હું ઢાઢિ માંહે પ્રસિદ્ધ છે.

૧૧. રાગ ખંભાયતી. સોદલાની ગતિ. અમાં મોરી મોહિ પરણાવિ હે અમાં મોરી.

જેસલમેરા મેરા જાદવાં હે—જાદવ મોટા રાય, જાદવ મોટા રાય હે.

અમાં મોરી કહિ મોહીને ઘેટે ચરોહો—એ ગીતની ઢાલ.

૧૨. રાગ ખંભાયતી-સુંબરા તું સુલતાણ, બીજાહો ધારા સુંબરાં જોલગૂ હો—એ ગીતની ઢાલ.

—એ સુંબરાના ગીતની ઢાલ—જોધપુર મેહતા નાગેર નગરે પ્રસિદ્ધ છે.

૧૩. તિલ્લીરા ગીતરી ઢાલ-મેહતાદિક દેસે પ્રસિદ્ધ છે. (આ સીતારામ પ્રબંધમાંથી છે.)

(૪) ગૂજરાતની

૧. પોપટ આપ્લુદ રે પરણવા—એ સંસારી ગીતની ઢાલ ખંભાતમાં પ્રસિદ્ધ છે. (અંકશોક રાસ)

૨. ઢાલ ગામી ગૂજરાતી કુલધંની.

૩. રાગ વયરાડી-જાનરે જાંધવ તું વડો—એ ગૂજરાતી ગીતની ઢાલ.

૪. કપૂર હુમે અતિ ઉજાહું રે, વલિ અનોપમ ગંધ—એ ગીતની ઢાલ.

આવી અનેક દેશીઓ ગીતો વગેરેની લીધી છે તે પરથી એમ સમજાય છે કે સી ગીતો-લોકગીતોનું સાહિત્ય તે વખતે-કવિના જમાનામાં ઘણું હતું. એક સ્થળે એક એવી દેશી ઉતારી છે; જેમકે રાગ પરણ્યો. ઢાલ:—

સિદ્ધરાં સિદ્ધર મધુ સુરારે, ગદાં વડો ગીરનારી રે

રાંધ્યા સિદ્ધર શકમણીરે, કુંયરાંનંદ કુંભાર રે

કંસાસુર મારણ આપિને રે પલાદ ઉચારણ રાસ રમણ ધરિ આજ્યો

ધરિ આજ્યો ધરિ આજ્યો, હો રાંમ રાંમજી ધરિ આજ્યો.—એ દેશી.

આ પરથી કવિની અગાઉનાં કાવ્યોં હતાં તે પૂરવાર થાય છે. 'સોરઠ દેસ સોહામણો સાહેલડી રે દેવાં તણો નિવાસ—એ ગજસુકુમાલની ચોદાલીયાની' દેશી એક સ્થળે કહી છે અને બીજે સ્થળે સુખાહું સંધીની ઢાલ કહી છે તે પરથી ગજસુકુમાલ પરથી ચાર ઢાલવાળું કાવ્ય તથા સુખાહું સંધિ એ કવિના અગાઉનાં અન્ય કવિએ રચેલાં સુપ્રસિદ્ધ કાવ્યોં હતાં તે સ્પષ્ટ થાય છે.

કવિ પોતે જોડેલાં પૂર્વ દેશી તરીકે પેંજી આપી પોતાનાં કાવ્યમાં મૂકી છે તે પરથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે પોતાની દેશીઓ પર પણ પોતાને મોહ હતો. હાખલા તરીકે સીતારામ પ્રબંધમાં—

(૧) પ્રયેક યુદ્ધની બીજા ખંડની આદમી ઢાલ.

(૨) સુણારે બવિક ઉપધાન લલાં વિણ કિમ સજે નવકાર. એ સ્તવનની ઢાલ.

(આ ઉપધાન સ્તવ પોતાનું છે)

- (૩) રાગ બંગાસૌ-ધ્રુમ સ્ત્રી હત વચ્ચન, કોપીઓ રાગ મન-એ મૃગાવતીની ચોપધની
ખીબ ખંડની દશમી દાલ.
- (૪) રાગ ધન્યાસિરી-સીલ કહે જગિ હું વડું, મુઝ વાત મુણે એક મીઠીર-એ સંવાદ શતકની
ખીજ દાલ (આ સંવાદ શતક તે દાનશીલ તપ ભાવના સંવાદ પર ચોઢાળીયું સ્વરચિત છે તે).
- (૫) શ્રેણિકરાય હુરે અનાથી નિયંય (અનાથી પર સઝાય)
- (૬) આદરજીવ કામા ગુણ આદર (કામાખનીશી)
- (૭) હવે રાણી પદમાવતી જીવરાશિ ખમાવે. (પ્રત્યેક પુદ્ધ રાસ) વગેરે વગેરે અનેક ઉદાહરણ છે.

રસાલંકાર જ કાવ્યનું લક્ષણ છે ?

રસાલંકારવાળું કાવ્ય લખનારને જ કવિ કહેવાય એવો નિયમ સર્વાશે ગ્રહણ કરી ન શકાય. રસાલંકારવાળું કાવ્ય કરવું શ્રમસાધ્ય છે અને તે પડિતોને માટે-વિદ્વદ્ભોગ્ય થાય છે. જે સહજ સરલતાથી અખંડપણે બહેતા જરાની માફક સ્વાભાવિક, સરલતાથી રસિકભાવ અર્પતી કવિતા છે તે કાવ્ય નથી એમ કેમ કહી શકાય ? આવી કવિતામાં ચરિત્ર વિષયક અંશમાં ચરિત્રનાયકનું રસાળ અને ચિત્તવેધક કથાનક સુરસરીતિથી કવિએ વર્ણવેલું હોય છે ત્યારે માનવી વૃત્તિના સિન્નભિન્ન દૃશ્યો વાચકની હૃત્પટ્ટિકા પર આબેહૂબ આલોખવાનું અમોઘ સામર્થ્ય કવિનું સ્થળે સ્થળે જણાઈ આવે છે. ભયપ્રદ સુદસંચામ, રમ્ય સુરમ્ય સ્થાનો, રાજ્યાભિવેકના પ્રસંગો, અને નગરશોભાના અપ્રતિમ દેખાવો-એ સર્વનાં મનોહર રીતિથી વર્ણન કરેલાં હોય છે. આમાંના કેટલાંક વર્ણનો આ કવિનાં આપણે અગાઉ જોધ ગયા. વિશેષ હવે પછી જોઈશું.

પ્રકૃતિ પર કાવ્યો.

પ્રકૃતિનું સૌંદર્ય કવિ જે આંખથી જોઈ શકે છે તે પ્રકૃત-સામાન્ય જનો જોઈ શકતા નથી. પ્રકૃતિના વિવિધ દેખાવ જોઈને સુંદર શબ્દ રચનાથી તેનું વર્ણન કરવામાં કવિનો ભાવ વહે છે અને તે ભાવથી સૌંદર્યબોધ કરતો કવિ વિશેષ આકર્ષક બને છે. આપણા જૂના સાહિત્યમાં બહુ સુંદર કાવ્યો આ સંબંધી મળતાં નથી, છતાં સામાન્ય એવા કેઈ નમુનાઓ મળી આવે છે:—

વસંતવિહાર

તેણે અવસરે સોહામણો, આયો માસ વસંત, સુરંગા ખેલણાં.
રસિયા ખેલે બાગમેં, ગાયે રાગ વસંત, સુરંગા ખેલણાં.
બોલસિરી જાઈ જૂઠું, કુંદ અને સુચ કુંદ,—
ચંપક પાડલ માલતી, ફૂલી રણાં અરવિન્દ—
દમણો મરઝો મોપરો, સળ ફૂલી વનરાય,—
એક ન ફૂલી કેતકી, પીયુ વિજય હર્ષ ન થાય—

આંખા મોચાં અતિ ઘણા, માંજર (મંજરી) લાગી સાર,-
 કોયલ કરે ટહુકડા, ચિહ્ન દિશિ ભમર ચુંતર-
 બુગબાહુ રમવા ચથો, મયણુરેલા લૈ સાથ,-
 બાગમાંદિ રમે રંગશું, કંદ ધણું નિજ હાથ-
 નિર્મલ નીર ખડો. ખલી, ઝીવે રાજ મરાલ,-
 પ્રેમદા શું પ્રેમે રમે, નાખે લાલ ગુલાલ-
 ભોજન ભક્તિ સુક્તિ ભક્તી, કરતાં યથા અવેર,-
 રાત પડી રવિ આશ્રમે, પ્રસર્યો પ્રબલ અંધેર-
 નિર્ભય દામ જાણી રહો, રાતે બાગ મઝાર,-
 કેલીધર સુતો તપ, થોડો શો ખસ્વાર-
 ચોથી દાલ પૂરી યથા, ઝુંબણાની જાતિ,-
 સમયસુંદર કહે દવે સુણો, રાતે હોશે જે વાત-

—નમિરાગ પ્રત્યેક બુદ્ધ રાસ સં. ૧૬૬૨

વસંતવર્ણન

એકલે માસ વસંત આવીલ, બોગી પુરવાં મન બાવીલ,
 ફીડી પરઈ ફૂલી વનરાઈ, મહકે પરિમલ પુદવી ન માઈ.
 સખર ઘણું મહોચાં સહકાર, માંજરી લાગી મહિકે સાર,
 કોયલ બદલી ટીકકા કરે, શાખા ઉપરિ મધુરે સ્વરે.
 હયલ છખીલા નર છોગાલ, ગાઈ વાઈ બાલ ગોપાલ,
 ચતુર માણુસને હાયે ચંગ, મેધનાદ વાજઈ મિસ્તંગ.
 ફૂરેરાં ગીત ગાઈ ફાગનાં, રસિક બેદ કહઈ રાગનાં,
 જોડે લાલ ગુલાલ અખીર, ચિહ્ન દિશિ બીજાનંદ ચરણા ચીર.
 નગરમાંદિ સહુકો નરનારિ, આણુંદ કીડા કરમ અપાર,
 ઢલતી રામગિરિ એ દાલ, સમયસુંદર કહે વચન રસાલ.

—પ્રિયમેલક રાસ, સં. ૧૬૭૨.

કવિ પોતાના સમયનું પ્રતિબિંબ છે.

કવિ એ પોતાના સમયનું ચિત્ર નજર આગળથી દૂર કરી શકતો નથી. કદમ્બનાના અંતર્પટ પર જે ચેલાં ચિત્રો કે આદર્શભાવનામાંથી ઉતારેલાં પાત્રોનાં આલેખનો વાણીમાં ચિતરતી વખતે કવિ આસપાસની પરિસ્થિતિ થોડો વખત ભૂલી જાય, છતાં એ સંપૂર્ણ રીતે પોતાના સમયની સ્થિતિમાંથી સંપૂર્ણ રીતે કવિ સુકત થઇ શકતો નથી. પ્રચલિત કથાઓ કે શાસ્ત્ર—પુરાણની દંતકથાઓને સ્વભાષામાં, કવિતામાં, અવતારત્રીવેળા આખ્યાનક કવિઓથી સ્વસમયની સ્થિતિ કદિ વીસરાતી નથી. આખ્યાનોનો હેતુ રસ અને યોધ આપવાનો છે અને તેથી મનુષ્યઆત્માની સ્વભાવિક પ્રેરણા—(ideal) ને આપકરીતે અંત સુધી અખંડપણે આપવામાં ભાવનામય-આદર્શમય કવિઓ ચીવટથી વળગી રહે તેવું

આખ્યાનોમાં સ્વાભાવિક રીતે હોતું નથી. આટલું છતાં આખ્યાનમાં માત્ર હકીકતો કહી જવી એટલું જ કાર્ય કવિનું નથી, તેમાં તેને ગ્રેરણામય લાવના સાથે વસ્તુ-સ્થિતિના ચિત્રકાર (realist) થવું પડે છે. સસાઓ એ મુખ્યપણે આખ્યાનો છે-કથા વર્ણનો છે. તેના રચનાસમયનાં આચાર, વ્યવહાર અને રહેણી-કહેણીની વાતો તેમાં પ્રવેશ પામે છે તેથી તે સમયનું થોડું ઘણું સામાજિક જ્ઞાન પણ થાય છે.

આ કવિએ હુમુખરાજ (પછીથી પ્રત્યેક જુદા) ની પટરાણી ગુણમાલાને સાત પુત્ર થયા છતાં પુત્રીની ઈચ્છા થઇ તે હકીકત પર કેટલીક સ્ત્રીઓ સામાન્ય રીતે અતૃપ્ત હોય છે તેના પર એક ઢાળ તેના પ્રબંધમાં રચી અને ખાસ કરી છેવટે ગૂજરાતી સ્ત્રીઓને માટે તે હકીકત લાગુ પડે છે એવું જણાવી કવિ ટોણો મારે છે કે પોતાનું કહેવું સાચું છે કે નહિ તે જાણવું હોય તો ‘ગૂજરાતી લોક પૂછજોયો, તે કહેશે તતકાલ !’ તે ઢાલ નીચે પ્રમાણે છે:—

અતૃપ્ત સ્ત્રી

આ કામિની તૃપ્તિ ન પામે કેમ,
રહ સીધી મૂકે નહીં રે, પગ પગે નવનવા પ્રેમ રે—આ કામિની.
જનમથી માયા કેલવી રે. શીખે ધરતું સત્ર,
ધૂલડી થેં રમતી કહે રે, એ મુજ પતિ એ પુત્ર રે—
દેહ સમારે ક્ષિત્ર પ્રત્યે રે, શીખી નાણુ વિનાણુ,
અણુખ અદેખાધ કરે રે, ગાયે ગીત તે (ત્રિધનાં) ગાન રે—
આરાધે કુલ દેવતા રે, વિનિતિ કરે વારંવાર,
ગૌરી ગણુ ગોરી રમે રે, ભલો હોજો ભરતાર રે—
પરણી પણ રહે પૂછતી રે, વશીકરણુ એકાંત,
કિમહિ પિયુડો વથ કંઈ રે, પૂર્ક મનની ખાંત રે—
મુખ પામે ભરતારતું રે, તો પુત્ર વાંછે નાર,
પુત્ર પાંખે કહે કામિની રે, કાંઈ સરજી કિરતાર રે—
પુત્ર પરણાતું પ્રેમશું રે, વહ દેખું એક વાર,
ગાદ ખેલાઈ પોતરા રે, સમળ કંઈ અવતાર રે—
બાલક પીડા ઉપજે રે, પ્રાયે ઉગમતે સૂર,
ખેતપાત્રે ભમતી રહે રે, ઢાલે તેલ સિંદૂર રે—
પુત્ર પ્રમુખ મુખ ઉપનાં રે, તો પણ જીવ ઉદ્દેગ,
ગુણમાલા રહે જૂરતી રે, પુત્રી ન પામી એક રે—
ગોરી ન બાંધી આંગણે રે, તોરણું નાવી જન,
પેસતો જમાઈ ન પોંખાયોં રે, તે જીવું અપ્રમાણુ (કુલ જ્ઞાન) રે—
દાય મુકવણુ દાયોયો રે, કે ઘોડા કે ગામ,
જમાઈ ન દીધો દાયજો રે, તો ધન કેહું (કેહે) કામ રે—
ધનન (ધણતણ) સદાલી નારીનો રે, સદજ સદાશે એક,

પુત્ર થકી પણ વાલહો રે, નવલ જમાઈ નેહરે —
 માંન્યા ધ્રુવજીમાં માનણું રે, દોડિ દેવાલે જાપ,
 દોષધાવ કરતા થઈ રે, કિણ મેલે પુત્રી થાય રે—
 સમયસુંદર દહે મેં બણી રે, એણીપરે ત્રીજા દાલ,
 ગુજરાતી લોક પૂજાયા રે, તે કહેશે તતકાલ.

—(કુમ્હ નામના ધીજા પ્રત્યેક બુદ્ધનો રાસ.)

નમિરાજ ઋષિ નામના ત્રીજા પ્રત્યેક બુદ્ધના ચરિત્ર પરના રાસમાં કવિ પહેલાં સુદર્શન નામના નગરનું વર્ણન કરે છે તેનો મુખ્ય ભાગ જે આગ્રા નગરમાં કવિ તે રાસ રચી રહ્યા છે તેનું જ વર્ણન કરતો હોય તેમ જણાય છે. આગ્રામાં રચના સમયે (સં ૧૬૬૨) મહાન અકબ્બાર સ્વર્ગસ્થ થયા પછી જહાંગીર બાદશાહ થયો હતો. મોગલ સલ્તનતના દરબારો અને તેની રાજધાની કેવી હોઈ શકે તેનું કંઈક વર્ણન સુદર્શન નગરના વર્ણનમાં કવિએ મૂકેલું છે:—

નગર વર્ણન

જંખડીપ સોહામણો, ક્ષેત્ર ભરત રસાલ, દેશ અવંતી દીપતો, કદી ન પડે કુખાલ.
 નગર સુદર્શન અતિ ભાનું, બહુ ઋદ્ધિ સમૃદ્ધિ, વાર વસે વ્યવહારીયા, દેશ દેશ પરસિદ્ધ-નગર
 ઉંચાં મંદિર માલીયાં, ઉંચા રાજ પ્રાસાદ, દંડ ઉપર પગ લલહલે, દરે સ્વર્ગયું વાંદ.
 અતેકર નળે અપહરા, છંદે મૂકી આણી, દેત થકી ડરતે થકે, નિર્ભય દામ જાણી.
 કિહાં કિણે રાજસભા જડી, મહેતા પરધાન, શેઠ સેનાપતિ સૂત્રી, ખોજા ને આન.
 કિહાં કણે છત્ર ધરાવતો, બેડો ભૂપાલ, હુકમ ચલાવે આપણો, માને બાલ ગોપાલ.
 કિહાં કણે ભૂપ આગળ ભલા, વડે જેઠીમલ, હુશીયાર રહે રવે રામલા, વાહે વલી ગાલ.
 કિહાં કણે શુંદ ઊલાલતા, અરતાં મદવારિ, સુંદર શયિ સિંદૂરીયા, ધૂમે દરબારિ.
 કિહાં કણે થોડા જુલમતી, સોવન નડિત પલાણુ, તાજા તેજ હીસત, દીસે દીવાણુ.
 કિહાં કણે વલી પાલક લડે, સામે હથિયાર, એક વાહે ધા એકને, એક ટાલણુદાર.
 કિહાં કણે ધડીયાલાં પડી, વાજે વારવાર, કાલ જણાવે લોકને, રહેજો હુશિયાર.
 કિહાં કણે વલી નોખત તણા, વાજે નીચાણુ, નગોરે મગો ધર્મ કરો, લોકને કરે જાણુ.
 કિહાં કણે કનક રૂપા તણી, પડે તિહાં ટંકશાલ, મંજ ખજાના ઉપર રહે, બહુત રૂપવાલ.
 કિહાં કણે બેઠા ચઢતરે, કાણુ કોટવાલ, અગરોં બાજે લોકનો, ન લીધે લાંચ વિચાલ.
 કિહાં કણે દોશી કાપડા, વેચે પટફલ, જેમ તેમ સાદું મેલવે, દલાલ વાણુલ.
 કિહાં કણે બેઠા જવહરી, જવાહીર લેછ જોય, મોતી માણુક લાલડે, લાલ પામે સોય.
 કિહાં કણે માંડયાં કદાપએ, સુખડી જણુ હાટ, ચુંદવણં પેડા બલા, દીટે ગલે દાઢ.
 કિહાં કણે સખરા સુરહીએ, ચૂઆ ચપેલ, મહમહતા માંડયાં ધણાં, મોધરેલ ફૂલેલ.
 કિહાં ધંટા રણકે દેહરે, જિનજિંબ વિચિત્ર, શ્રાવક સ્નાત્ર પૂજા કરે, કરે જન્મ પવિત્ર.
 કિહાં વલી સાધુને સાધવી, બેઠાં પોસાલ, લે બવિપણુને દેશના, વાંચે સ્ત્રં રસાલ.
 કિહાં બસે આંકે બણે વણા, નીચાલે બાલ, જડુ બાર મુખેં કહી, ધરો દે તતકાલ.

કિહાં કાણ મુઠ્ઠાં પડે, કિલાખ કુરાણુ, કિહાં વધી બ્રાહ્મણ વેદીયા, ભણે વેદ પુરાણ.
 કિહાં બજાર બાણ પડે, કિહાં ગીતને ગાન, કિહાં પવાલા ગાળ્યે, કિહાં દીને દાન
 કિહાં વધી નગરની નાપકા, ખેડી આવસ, દાવ ભાવ વિગ્રમ કરી, પાડે નર પાસ.
 કિહાં વધી મોતી પ્રાપ્ત્યે, કિહાં કુટિની માલ, કિહાં પરવાલાં કાઢીયે, હાંમેલો હરિયાલ.
 કિહાં ધાનના દગ માંડીયા, કિહાં ખડના ગંજ, કિહાં ધી તેલ કૂંડાં ભરી, કિહાં દાહના પુંગ.
 ચઢરાશી ચઢતા ભલા, ભલી પોલ પ્રાકાર, ભલી બાજરં ત્રિપોલિયા, ભલા સકલ પ્રકાર.
 નગર સુદર્શન વર્ણના, એ પહેલી દાલ, સમયસુંદર કહે દલે કહું, તિહાં કાણ ભૂપાલ.

આમાં ખોળ, ખાન, કાણ, કોટવાલ, જવેરી, ટંકશાલ, ઘડિયાલ, સરેથા (અત્તર-વાળા), સુઠા-કુરાન, નાથિકા વગેરેને સ્થાન આપ્યું છે, તેમ જ ભૂપાલ પણ જહાંગીરી હુકમ વાળો (હુકમ ચલાવે આપણો, માને બાલ ગોપાલ) વર્ણવ્યો છે એટલું જ નહિ પણ જેને મહાબાહુ, પટ્ટાબાહુ, હાથીને ઘોડાના ખેલો પસંદ છે એવું જણાવ્યું છે તે જહાંગીર બાદશાહને લાગુ પડે છે. મોટી ઘડિયાલ અકબર બાદશાહના વખતમાં દાખલ થઈ હતી તેનો પણ ઉલ્લેખ કર્યો છે.

અંક ૩ શ્રેષ્ઠીની ચોપડ સંં ૧૬૯૫ માં કવિએ રચી તેમાં ઠધા પ્રસંગમાં દુકાળનું વર્ણન કરતાં કવિ પોતાના સમયમાં સંં ૧૬૮૭ માં પડેલા દુકાળનું વર્ણન ટાંકે છે:—

૩ દુકાળનું વર્ણન

તિથિ દેસક દિવ એકલ, પાપી પડયક દુકાલ, બાલ વરસ સીમ બાપડા, ધીધા લોક કરાલ.
 વલિ'મત પડજ્યો એકવક્ર, કાલ મહા વિકરાલ, નિશિ વિજોડયા માયાપ સુન, ભાગ્યા સગય ભૂપાલ.
 ખાતાં અન્ન ખૂટી ગયા, કોનક કુંજ પ્રકાર, ભુખ સગી નહી કેદની, પેટ કરમ પોકાર.
 સગપણ કોઈ ગિણક નહી, મિત્રાઈ ગઈ ભૂલ, કે કદાચિ માંગઈ દે, તક માયક ચઠઈ સૂલ.
 ત્રાણ મૂકિ વડ માણસે, માંગવા માંડી ભીખ, તે પશિ કે આપક નહી, ફાપોએ લીધી દીખ.
 કે બધ્યર મૂકી ગયા, કે મૂકી ગયા બાલ, કે માયાપ મૂકી ગયા, કુંજ પડઈ જંનલ.
 બાપે એટા વેચીયા, માંડી વેચી બપર, બપરે માંડી મૂકીયા, અન્ન ન ઘઈ એ બપર. "
 પરશેશે ગયા પાધરા, સાંગકયક જેયે સુગાલ, માણસ સંબવ વિણ મૂયા, મારગમાંદિ વિચાલ.
 મડખે બંધકે ગોરડી, ધીજ્યુ દોલતિ વાંપ, પેટનક કાન્નિ પદમિની, માયક પરધરિ નક.
 ભોજન અમૃત જીમતા, ખાતા દ્રાખ અખોડ, દંડી આપક કેસરી, કે ખેજડનો છોડ.
 જતીયાં દેખી જીમતા, ઉભા રહતા આકિ, તે તક ભાવ તિહાં દલા, નિમનાં જડક કમાડ.
 દેવ ન પૂજક દેહરક, પડિકમક નહી પેસાલ, સિધિલ ચલા આવક સહ, જતી પડયા જંનલ.
 રડવકતા ગણિ એ મુઝા, મડા પડયા હામિ હામિ, ગથીમાંદિ ચક ગંદગી, ઘઈ કુણ નાંખણ દામ.
 સંવત સોલ સાત્યાસિયક, તે દીક એ દીક, દિવ પરમેસર એકનક, અલગઈ કરે અદીક.
 હાહાકાર સમલક હાઅક, દીસક ન કે દાતાર, તિણ વેલા ગ્રીચક તિહાં, ટરિવા વધી ઉદાર.

હવે આપણે જોશીતું વણું નોંધ્યો:—

- દાહ દસમી-દપૂર હ્યમ્મ અતિ ઊજલું રે, એહની રાગ કેદારો ગોડી
 રૂપ કીધું બ્રાહ્મણ તણું રે, ચાલ્યક નગર મજારિ
 હારે લીધું રીપણું રે, વાંચક તિથિ નહ વાર. ૧
- જોસીયક જલણું જોતિય સાર,
 એતક નિમિત્ત પ્રકાશ્ય અપાર—જોસીયક ૦
- રતન કરી તટની જલણું રે, દલતા મુક્યા કેમ,
 માયણ બાંધ્યું કાલીયું રે, વાર જણાયક વેસ—જોસી ૦. ૨
- તિલક કીધું કેસર તણું રે, વિચિત્રાંહિ નખમું ચારિ,
 અદ્યુત આદિ જિલ્લ મમાં રે, સુંદર ચક્ર સરીરિ—જો ૦ ૩
- પ્રોહું ખીરાદક ઘોતીયું રે, ન-નોઈ સુવિસાવ,
 હરિ વિધ્યુ દરિ વિધ્યુ મુખિ જપહરે, દુસરીની જપમાલ—જો ૦ ૪
- હેમ કમંડલુ લાકમણ રે, તોર બરિક નિત જલિ,
 વેદ જણઈ મુખિ વેદીયકરે, દહધ મુનઈ દત્તાણુ—જો ૦ ૫
- ભમતક ભામા ધરિ ગયકરે, દીઠી કુળજ દાસિ,
 સુંદર રૂપ સરલ તનરે, તતપિણ કીધું તાસિ—જો ૦ ૬
- અચરિજ દાસી ઊપનું રે, કીધું ચરણ પ્રણામ,
 પૂછ્યું કેયિ પદાસ્ત્રક રે, જમરું બોજન કામ?—જો ૦ ૭
- સત્યભામા મુજ સાચિની રે, આવક તણુ આવાસિ,
 મોહક મીઠા આપરયું રે, દેસક મુજ સાચાસિ—જો ૦ ૮
- વિપ્ર બાહરિ મુકિ આંહિ ગઈ રે, દાસી ભામા પાસિ,
 દીવ્ય રૂપ નવિ ઉલપીરે, રહિય વિભાસિ વિભાસિ—જો ૦ ૯
- કુળજ દાસી હું તુમ્હ તણી રે, કહી બ્રાહ્મણની વાત,
 દહરિ તેહી આયિ તેહનઈ રે, સિદ્ધ પુરૂષ સુવિધ્યાત—જો ૦ ૧૦
- વેદ જણુંતક આવીયક રે, દીધક આસિરવાહ,
 ભામા ઊઠિ ઊઠી ચક્ર રે, પ્રજ્ઞમા ચરણ પ્રસાદ—જો ૦ ૧૧
- ભામા ભગતિ ધમ જણુ રે, એક કરૂં આરદાસ,
 રૂકમણિનું રૂપ રૂપકું રે, મૂળથી અધિક પ્રસાદ—જો ૦ ૧૨
- તિણિ તેહનઈ માનઈ જણું રે, કૃષ્ણજી કંત મુરારિ,
 અધિક રૂપ કરિ માહરૂં રે, મનિયું તુમ્હ ઉપચાર—જો ૦ ૧૩
- ચિત્ત ઉત્તરઈ કંતનુરે, રૂકમણિથી એક વાર,
 તક હું જાણું માહરૂં રે, જીવિત સદ્ગત સંસાર—જો ૦ ૧૪
- વિપ્ર કહિં વિધિ ઇષ્ટ જણી રે, તે જઈ સર્વ કરેસિ,
 તક રૂપ ચારણઈ તેહનું રે, દેખી વિમ્બમ ઘરેસિ—જો ૦ ૧૫
- જે કહેલો તે સ્વામી હું કરૂં રે, વેગિ મ લાયક વાર,
 મસ્તક મુંડિ હું આપણું રે, આજણુ સવિ જીતારિ—જો ૦ ૧૬

ખડિત દડિત અતિ નયી રે, પદરી પુરાણી ચીર,	
મસતક મુખ આંખિ મસિ ઘસીરે, સધલું લેપિ શરીર—જો.	૧૭
નિમ કહું તિમ ભાભા કપડું રે, અરથી ન દેખઇ દોષ,	
દોસઈ રૂપ ખીલામણું રે, બહુઇ ભુત પ્રદોષ—જો.	૧૮
ફેડ મુંડ સ્વાદા ફેડ યુડ સ્વાદારે, અડોતરસલ વાર,	
મંત્ર ગુણે અણખોલતી રે, હોસયલ રૂપ અપાર—જો.	૧૯
ભાભા હું જુઓ થપલરે, ભોજન ઘણે ભરપૂર,	
બધસાઈલ વિપ્ર જમાડવારે, પ્રીત્યા બહુ ધૃત પ્રરે—જો.	૨૦
પ્રીત્યા લાડૂ પાનસારે, વીવાદના પકવાન,	
નિરપતા સવિ નીકુંઝારે, અચરિત એ અસમાન—જો.	૨૧
રે રે વિપ્ર તું કૃષ્ણ છઈ રે, ત્રિપતિ ન પામઇ કિમ,	
ઊઠિ ઊઠિ તું ધહાં ચક્રારે, પબલુપ દક્ષી એમ—જો.	૨૨

—સં ૧૬૫૯ મા રચેલ સાંખ્યવૃત્ત રાસ, લખ્યા સં ૧૬૫૬.

આમાં શ્રાવણ જોશીતું કેલું તદ્રૂપ ચિત્ર આપ્યું છે તે હાલના જોશી સાથે સરખાવવા જેવું છે. તેવી રીતે ચીતારાતું આજેકુળ સ્વરૂપ કવિએ પોતાના એક અન્ય રાસ—એ હજાર વર્ષ પર થયેલ મૃગાવતી પરની ચોપાઈમાં આજેખું છે તે અત્ર નીચે આપવામાં આવે છે. તેમાં કવિ પોતાના સમયની સ્થિતિ ભૂલી શકતો નથી. જે ચિત્ર ચિતારાએ દોર્યો છે તેમાં રાતાં મોં અને ચુંચી આંખવાળાને માથે મોટા પાથડા વાળા તિરંદાજ મુગલ અને કાળલી, કાળા હજારી, પાંડુવર્ણ પઠાણ, કુરાન કિતાબ વાંચતા યુદ્ધ કાળનાં ચિત્રો મૂક્યાં છે, એટલું જ નહિ પણ માથે મોટા ટોપા ધાલનારા ને કાચળા જેવા દીલા મુંથણા (પાટલુન) પહેરનારા છેડતી કરતાં કોપાયમાન થનારા ફિરંગીઓને પણ બાકી રાખ્યા નથી. આ અકબર-જહાંગીરના સમયમાં વેપાર અર્થે જૂદે જૂદે સ્થલે કોઠીઓ નાંખનાર અંગ્રેજો-પોર્ટુગીઝો છે. આમ કરી કવિએ સમય વિશેષનો દોષ ગોઠારી લીધો છે, અને એવો કાલ વિશેષ ઘણે સ્થળે દેખા દે છે, તેનાં દર્શાવે ત્રણેક અગાઉ અપાઈ ગઈ છે.

ચતુર ચિતારો

ખંડ ૨ જો પ ગી ઢાળ. રાતડીયાં રંગીનઈ કિહાંથી આવીયારે—એ દેશી

રાગ પરજઓ.

સકલ ચીતારામાંહિ મુંદર રે, નિપુણ છઈ જોહનું નામ રે,
રાગમહલ દીધો તેહનઈ રે, વાર કરવા ચિત્રામરે

—ચતુર ચીતારો રૂપ ચીતરઈ રે.

ચતુર ચીતારો રૂપ ચીતરમ્ રે, રાજમહલ તણી ભીંતિરે, આન વિન્યાન નવાં કેલવધ રે, રંજવા રાજનું ચીતરે-	ચતુર૦
ચઉદ સુપન પદિકાં ચીતર્યાં રે, ચીતર્યાં આઠ મંગલીક રે, રામ ચીતા રૂપ ચીતર્યાં રે, લયમણ રામ નજીક રે-	ચતુર૦
વળીરે વાનર હુતુમંત ચીતર્યાં રે, જોહનું લાંબું પુછરે, રૂપ વિસિદ્ધ તણું ચીતર્યું રે, મોટી ડાઠી મોટી મુંછ રે-	ચતુર૦
રૂપ લખ્યું રાવણ તણું રે, દસ માથાં બુજ વીસરે, પડગ ચંદ્રદાસ તે હાયમઘે રે, શ્રવણ નયણ જસ વીસરે-	ચતુર૦
ધૃત્વરનું રૂપ ચીતર્યું રે, અદિ આબરણ રંડમાલરે, ચંદ્રકલા ગંગા સિરઘે રે, કૃપબ વાહન કંઠ કાલ રે-	ચતુર૦
રૂપ બ્રહ્માતણું ચીતર્યું રે, ચતુર્યુખ છુટો જટાલરે, હાય કમંડલ જલ ભર્યું રે, જનોઇ જપમાલ રે-	ચતુર૦
રૂપ લિપ્યું ધી કૃષ્ણનું રે, સુરસી મનોહર રામ રે, શંખ ગદા ચક્ર હાયમઘે રે, ચતુર્યુજ અતિ અભિરામ રે-	ચતુર૦
ચંદ સુરજ નવગ્રહ ચીતર્યાં રે, ચીતરિઈ ગણેસનું રૂપ રે, પેટ મોડું મુંડિ ગજ તણી રે, ઉદિર વાહન અનૂપ રે-	ચતુર૦
ભલા નઈ ભારંડ પંધી ચીતર્યાં રે, એક ઉદર ગાખડિ દોષ રે, બુગતિં ભયમ ક્ષલ બુબુચાં રે, જીવ જુદા બેગી હોમ રે-	ચતુર૦
ગરૂડ મયૂર સુક સારિકા રે, પંખી રૂપ અનેક રે, નિપુણ ચીતારમ સઘલાં ચીતર્યાં રે, વાર જાણે વિવેક રે-	ચતુર૦
સૂગલ કાબલી ચીતર્યાં રે, મુખ રાતા ચુંચી આંધિરે, માયમ મોટા પાધ દમણ રે, તે જાણુમ તીર નાંધિ રે-	ચતુર૦
રૂપ ફરંગી ચીતર્યાં રે, માયમ મોટા ટોપ રે, દીલા પહિરઈ સયણ કોચલા રે, છેડવા દરમ જહુ કોપ રે-	ચતુર૦
પંચવરણ આભાં ચીતર્યાં રે, ચીતર્યાં પોલિ પાગાર રે, ચતુર ચીતારો જાણુ પણુમ ધણું રે, ચીતર્યાં સકલ પ્રકાર રે-	ચતુર૦
હંબસી કાલા, અતિ ધણું રે, પાંડુર વરણ પદાણ રે, ગરદા બૂદી કાજી ચીતર્યાં રે, વાંચતા કેતેજ કુરાણ રે-	ચતુર૦
નિપુણ ચીતારમ દોડા એકદા રે, મૃગાવતી તણો અંગૂઠ રે, વસ્ત્ર અંતરિ પશુ પ્રગટ્યા રે, કાંતિકરી અતિ સુદ રે-	ચતુર૦
તેહ નઈ અનુસારઈ સઘલી ચીતરી રે, મૃગાવતી રાણીનું રૂપ રે, સકલ કલા આપણી કેલવી રે, કોષાં તેહનું સરખ રે-	ચતુર૦

૩૫ ચીતરતાં રાણી તણો રે, સાચલિપડ્યો મસિ બિંદ રે,
ચતુર ચીતારો વિલખો ઘયો રે, એહ જણાવઇ કુપદંદ રે- ચતુર૦
બીજી વાર બિંદુ ખૂંસીવ રે, વલિ પડ્યો તેણિ જ દામ રે,
વધી રે ચીતારઇ દરઇ કીલ રે, એહનો ધંધાં નહી દામ રે- ચતુર૦
ધમ વાર વાર તિહાં પડઇ રે, મસિનો બિંદ તે એક રે,
ચતુર ચીતારઇ દરઇ કીલ રે, મન ધરી ખરમ વિવેક રે- ચતુર૦
—શ્રીગાવતી ચોપઇ.

વીણાધારી ગાયક.

હાલ પનરગી-અંભાયતી રાગ-જેસલમેરે છરાઉલઈ રે-એ દેશી

સંખ મેજૂન કુમર ચંદ્યા રે, વિદ્યાબલિ આવાસો રે,
૩૫ કીધું ચંડાલનું રે, કાંતિ કલા સુપ્રકાશો રે-૧
તોરે કોડે વેદરબી, પરણિ કુયરી, મોરી માતજી, મન આસા પૂઠ તાહરી રે- તોરે ૧
બોજક કટક નગરમહિં ભમઇ રે, ગાયઇ ગીત રસાધોરે,
વિચિ વિચિ વાયઇ વાસલી રે, એક વીણા એક તાલો રે- તોરે ૨
હા હા હા અવતર્યા રે, દેવ ગાયક દિવ્ય રૂપો રે,
સંગીત બેદ સમુચ્ચરઇ રે, સુંદર સકલ સરૂપો રે- તોરે ૩
સમ સ્વર ત્રિણુ આમસુ રે, મૂર્છના એકવીસ માનો રે,
સર મંડલ પૂરઇ જઈ રે, ચાલીસ ને નવ તાંતો રે- તોરે ૪
ટાલઇ ટાલઇ મિલઇ તિહાં રે, નરનારીના જંદ રે,
દેવ વિમાન ચંબી રહઇ રે, પામઇ પરમાણુદો રે- તોરે ૫
પામઇ સુખ સંયોગિની રે, વિરહણી રાહ આરાધઇ રે,
ચંદ્ર વાહન મુગ નવિ ચલઇ રે, નાદિ અધ્યો નિસિ વાધઇ રે- તોરે ૬
કાચિત દાર પરાવતી રે, અધનિય નાંખી આવઇ રે,
કાચિત પ્રીયુ અણુપ્રીસતી રે, ધી અણુ પ્રીત્યાં ધાયઇ રે- તોરે ૭
કાચિત ગીત વિનોદિની રે, પ્રીયુ હટખી વિલખાણી રે,
કાચિત પગને માંડણે રે, અણુ સુખી જિજ્ઞાણી રે- તોરે ૮
કાચિત ધરિ ધીનઉ ધડક રે, નીસરિ મૂખી દલતોરે,
કાચિત ધાન ચૂલ્હઇ ચડયઉ રે, મુગધા મૂંઠઇ બલતો રે- તોરે ૯
કાચિત ન ગણુઈ નાહલઉ રે, ગાલિ દેતઉ ઊછલતો રે,
કાચિત છાયલ છેહલઉ રે, હંચઉ દ્યમ્બ નહી રસતઉ રે- તોરે ૧૦
કાચિત વીણુ ગુંચાવતી રે, નીસરી છૂટઇ ડેસો રે,
કાચિત બોલી ભામિની રે, અરવઉ પરિરંદે વેસો રે- તોરે ૧૧

દેવ ગુરુ ધર્મ રાગિણી રે લાલ, અતિ દાતાર ઉદાર રે, મૃં
ભગતિ ધણી બરતારની રે લાલ, સ્ત્રીના એ આચાર રે, મૃં ૩૫૦
એ બીજી દાલ નાણુયો-રે લાલ, નાપકા કેરી એહ રે, મૃં
સમય સુંદર કદર્ધ સાંભરો રે લાલ, રાગ કેદારમ્ તેહ રે, મૃં ૩૫૦

—સં ૧૧૬૮ માં રચિત મૃગાવતી ચોપદ, લખ્યા સં ૧૭૧૫.

દમયંતીના ચંદ્રદ્વારા નલને સંદેશ.

દાલ ૫ મી ભાવનરી.

હો સાયરસુન સોહામણો, સોહામણો રે, હો સાંભલિ સુગુણ સંદેસ
હો ગગનમંડલ ગતિ તાહરી, તાહરી રે, હો દેવધ તું સમજા દેસ,

—દેવધ સમજા દેસ.

ચંદલિયા સંદેશો રે કહે માહરા કંતનધ રે—
ચાહરી અખલા કરધ રે અદેસ, અખલા કરધ રે અદેસ,
નાહલીધ વિદુણી રે નારી હું કથું રહું રે—

હો વાલમ મધ તોનધ વારીક, વારીક રે, હો જૂવટધ રમવા તું મ નય,
હો રાજ હારી નલ નીસર્યો, નલ નીસર્યો રે, હો વનમાંહિ ગયો વિસયાય

વારીયો રહો વનમાંહિ—

ચંદલિયા સંદેશો હો કહે માહરા કંતનધ રે—
હો નલ દુઝડું હું નીસરી, નીસરી રે હો આગમ લીધો દુષ આધ.
હો મુઝનધ તું છોડી ગયો, એવડો દિસ્યો અપરાધ,
ચંદલિયા સંદેશો હો કહે માહરા કંતનધ રે—

હો સુતી મૂઝી તઈ કાં સતી, કાં સતી રે, હો પ્રમદા ન નાણી તઈ પીડ,
હો હાથિ નિને પરણી હુતી, પરણી હુતી રે, હો ચતુર કષણો કિમ ચીર— ચંદલિયાં
હો જામદિ જાગી જૂરવા, જૂરવા રે, હો પ્રિય તું ન દોડો પાસ,
હો વનિ વનિ જોડું તુનધ વાલહા, હો વાલહા, હો સાદ પણિ કીધા સો પચાસ— ચંદલિયાં
હો નિરતિ ન પામી ચાહરી નાહલા, નાહલા રે, હો પગિ પગિ મૃગશી પણિ પૂછી,
હો રોધ રોધ મુધ રાંનમાં, રાંનમાં રે, હો મહીઅલ પરી હું સુચિ— ચંદલિયાં
હો કીધું તઈ ન તે કો કરધ, કો કરધ રે, કો પુર્યાં ગમાડી પરતીતિ,
હો વિરવાસ ભાગો હવિ વાલહા, હો વાલહા રે, હો પુર્યાં કેમ પ્રીતિ— ચંદલિયાં
હો દુષ્ટાંત ચાહરો નલ ! દાપસ્યધ, દાપસ્યધ રે, હો કવિવણ કેરી રે કોડિ,
હો પુરુષ કુડા મહા કપટીવા, કપટીવા રે, હો પરી લગાડી ધોરિ— ચંદલિયાં

હો એકરા ચંદસું હલંભડા, હલંભડા રે, હો દીધાં દવદંતી નારી,
હો ચડેથી દાલ પુરી કરી, પુરી કરી રે, હો સમયસુંદર સુ વિચાર—

હો સમયસુંદર સુ વિચાર

—ચંદલીયા સદેશો રે હો કહે માહગ કંતનધ રે,

—સં ૧૬૭૩ માં રચિત નલ દવદંતી રાસ, લખ્યા પ્રત. સં ૧૭૬૬

કવિએ પોતાના સં ૧૬૭૨ માં રચેલા પ્રિયમેલક રાસમાં રાજકુમારને સાહસિક બનાવી સમુદ્ર યાત્રા કરાવી તેનાં સાહસો વર્ણવ્યાં છે તેની વાનગી રૂપે એક કાવ્ય લખ્યું. જે પ્રતમાંથી આ ઉતારવામાં આવ્યું છે તે સં ૧૬૮૦ માં લખાયેલી પ્રત છે એટલે કે રચ્યા સાલ પછી આઠ વર્ષે જ અને તે વળી કવિના જીવનમાં જ લખાયેલી પ્રત છે, તેથી તે વખતની ભાષાનો નમુનો પણ આ કાવ્ય પૂરો પાડશે.

સામ્ય પરીક્ષા

(દાલ ત્રીજી, વાહુરે સવાયો વચર હું માહરેંજી—મૃગાવતી ચક્રપાંતી એ દાલ)

અમર્ષ કુમરનધ આવીયોજી, કીયો મુગસું પિતા દૂરી,
અવહીશ્યા જે આપા પડેજી, ધિમ તે જનમનઈ ધલિ. ૧
કરમ પરીક્ષા કરણ કુમર ચચોજી, ધનવતી ચલી ધણી સાયિ,
કંત વિહુણી કિસિ કામિનીજી, અઓ નઈ પ્રીયુ આપિ. ૨

—*કર્મ પરીક્ષા કરણ કુમર ચચોજી.

દેસ પ્રદેસે અચરિજ દેખસુંજી, ભાગ્યનંદ લલરસું ભેદ,
સાજણુ દૂજણુ સમજસુંજી, ઇમ મનિ ધરીરે ઉમેદ. ૩ કરમ

યત: " દીસઈ વિવિહચરિયં જાણિજી સજણુ દુજણુ વિષસો,
અપ્પાણુ ચ કલિજનઈ હિરિજી તેણુ પુકરીએ. "
આધિ રાતિ ઉઠિજી, સુંદરિ લીધી સાયિ,
સિંહલ સુત મહા સાહસીજી, હથિવાર તરવારિ હાયિ. ૪ કરમ

તુરત ગયો દરિયાનઈ તટજી, સમુદ્ર ચચો સાહસીક,
પ્રવહણુ બહુઈષ પરહવીષ લણીજી, નારિનધ લેછરે નજક. ૫ કરમ

આગણિ જતાં દરિયઈ લીજ્યોજી, નિમ વસી લાગડ તોફાન,
પ્રવહણુ ભાગો કોલાહલ પડયડિજી, અતિ દુખ પડયક અસમાન. ૬ કરમ

પુન્ય સંયોગ્યઈ પામ્યઈ પાટીયોજી, ધનવતી લીધઈ આધાર,

* આ 'કર્મ પરીક્ષા કરણ કુમર ચચોજી,' એ દેશી કવિના પછોના અનેક કવિઓએ પોતાની કૃતિઓ માટે લીધી છે. સમયસુંદરની કૃતિની દેશીઓ ધણી પ્રસિદ્ધ થયેલી દેખાય છે.

નારિ સેંતી દુખ નીસરીછ, પામ્યમ સમુદ્રનક પાર.	૭ કરમ૦
અથવા ચાલી તિલાંથી એકલીછ, વસતી જાઉં કિણ વેગિ, કેત વિહુણી રૂપવંત દામિનીછ, ઉપજઈ કોડિ ઉદ્દેગ.	૮ કરમ૦
નગરિ નજીકિ નારી ગઈછ, પેખ્યો એક પ્રસાદ, દંડ દસમ ધ્વજ દીપતાછ, નવલા સંખનમ નાદ.	૯ કરમ૦
ધનવતી પુછે દાંધ ધરમિણીછ, દદિ બાધ કુણુ ધ ગામ, કુણુ તીરથ એક કેહનકીછ, એ મદિમા અભિરામ.	૧૦ કરમ૦
ગામ કુસુમપુર ગુણુતિલકીછ, ઈંદ્રપુરી અવતાર, પ્રિયમેલક તીરથ પરગકીછ, સદુ બાણુઈ સંસાર.	૧૧ કરમ૦
વેગા મિલમ પ્રિય વિજયકીછ, નિત તપ કરમ જે નારિ, ધાંધ બધી અણુમેલતીછ, પરતા પ્રેમ અપાર.	૧૨ કરમ૦
ધનવતી મૌન વરત ધરીછ, જામ બધી જોગ ધ્યાન, નાહ મિત્થા વિણુ બોલું નહીછ, એક બલીયો અસમાન.	૧૩ કરમ૦
મન ગમતી દાલ મારણીછ, દુષ્ણિયાં જમાવઈ દુખ, સમપસુંદર દહમ સુણતાં થકાંછ, સુષ્ણિયાં સંપન્ન સુખ.	૧૪ કરમ૦

દહા સોરઠી

કુમરઈ પણ એક કોપ, લાધઈ લાંબક લાંબક, તરતક તરતકિ તોપ, પારિઈ પહુતક પાધરક. ૧
જેહવઈ આગઈ જાય, નગર રત્નપુર નિરખીયો, રત્નપ્રભ તિહાં રાય, રાણી રતનાસુંદરી. ૨
ગનનવતી બાહરૂપ રાજા નમ્ર બેગી રતન, સુંદર સદલ સરૂપ, ભરજોવન આવી બલી. ૩

કુમર આંસુથી કુમરી કન્હક રે, નિરમલ આંસુથી નીર,	
ઉઠ્ઠી મુંદડી આપણી રે, સહુ છાંયો કુમરી શરીર-	૬ રાગ
પાણી પાવઈ પ્રેમસુ રે, ઉઠિ જાણી યમ આપ,	
કુમર ઉપગાર એ કામઈ, બહુ હરખ્યા માધ નમ આપ રે-	૭ રાગ
રૂપિઈ દીકર રૂપક રે, ગુણ દીકર ઉપગાર,	
ઉત્તમ કુલ તિથિ અટકલઈ રે, પ્રગટિઈ પુરુષ પ્રકાર-	૮ રાગ
રતનપ્રભ ગુણ રજીવઈ રે, કામઈ કુમરી વીવાહ,	
દીધઈ કુમરનમ દાયજઈ, અધિકઈ કુમરી ઉચ્છાહ રે-	૯ રાગ
રાતિ પડી રવિ આયમઈ રે, જગમઈ મદન જીવાન,	
રંગમહલ પહુતા રહી - વાર જાણે ઇંદ્ર વિમાન રે-	૧૦ રાગ
વર પલ્લવ બિહારઈ રે, પાંચથો બહુ પટકલ,	
અગર ઉણેવ્યા અતિ ધણા રે, મહકમ પરિમલ અતુલ રે-	૧૧ રાગ
દીવા કાષા ચિહ્ન દિસેઈ રે, રતનવતી બહુ રંગ,	
કુમર પલિંગ છોડી ધરતી સુપમ, સુતઈ ધરતી તજિ સંગ રે-	૧૨ રાગ
ચાવર નારી મનિ ચિંતવઈ રે, કમર કુટઈ સુખ કાપ,	
સેજ છોડી ધરતી સુપેઈ, રમણી જીવતઈ નઈ રાય રે-	૧૩ રાગ
ચતઃ " ધરિ ઘોડઈ નઈ પાલો જાઈ, ધરિ ઘેણઈ નઈ લૂખઈ આઈ,	
ધરિ પલંગ નમ ધરતી સોયેઈ, તિથરી બધરિ જીવતા નમ રાયઈ "	
પૂજ્યો કુમરી પ્રેમસુ રે, ભેદ કહિઈ ભરતાર,	
એવઈ રાગ દુમ્હે આદરિઈ, કિમ રાગ તણઈ અધિકાર રે-	૧૪ રાગ
કુમરઈ મનમાંહિ અટકલઈ રે, સ્ત્રી નમ ન કહિયઈ સાચ,	
વલી વિસેપ વાત સઉકિની, વદઈ પાડિત એહવી વાચા રે-	૧૫ રાગ
કુમરે કહિઈ વાત કેલની રે, સુણિ સુંદરી સુખ સંચ,	
માઆપથી મઈ વીજોઈ, રાખ્યઈ અભિમદ રચ રે-	૧૬ રાગ
સોસ્યું ધરતી સર્વદા રે, પાલિસિ સીલ પ્રતાપ,	
સુંસ લીયઈ મઈ સુંદરી, મિલસેઈ નહિ જાં માધ આપ રે-	૧૭ રાગ
કહઈ કુમરી સુણ કંતજ રે, ધન્ય દુમ્હે ધર્મો નેહ,	
જગતિ માઆપ તણી ભલી, ઉત્તમ પુત્ર લક્ષણ એહ રે-	૧૮ રાગ
ભેદ જાણઈ સહુ જૂપતી રે, ચિંતાવર યથા ચિત,	
કુમરનમ પૂજ્યું કિહાં વસઈ, કુલવંસ દહઈ સવિત રે-	૧૯ રાગ
કુમર કહો કુલ આપણઈ રે, વંસ અનમ વલી વાસ,	
સમયસુંદર સહુ સુખી રે, રહી રતનવતી નિરાસ-	૨૦ રાગ

—પ્રિય મેલક તીર્થ રાસ રચ્યા સં ૧૬૭૨-લખ્યા સં ૧૬૮૦.

ઉપદેશમય રાસ કવિએ રચ્યા છે. વ્યવહાર શુદ્ધિ-રાખવા માટે કવિએ ધનદત્તનો રાસ રચી તે ધનદત્ત વાણિયો સાધુ પાસે વ્યવહાર શુદ્ધિ પાળવાનો નિયમ લઈ વેપાર કરતાં નુકશાન સહી આખર સ્વદેશ તણ પરદેશ નાચ છે એને જીવન-પર્યંત વ્યવહાર શુદ્ધિ રાખે છે તે તેના ચરિત્રથી બતાવી-પાત્રદ્વારા લોકને ઉપદેશ કવિએ આપ્યો છે. તે કાવ્યમાંથી નીચેનો એક ખંડ લઈ મૂકવામાં આવે છે:—

તું ધન તું કૃતપુણ્ય તું સાધુ કહે' ધનદત્ત,	
પણિ રૂડી પરિ પાલજે, નિશ્ચલ દરિ નિજ ચિત્ત-	૧
વ્યવહાર શુદ્ધપણું પ્રહી, આખો આપણુ ગેહ,	
ભલો દિયો કહઈ બારિન, પથુ દુર છઈ એહ-	૨
વ્યાપાર માંડિઉં વાણિઈ, સગલો બોલો સાચ,	
પાડ કહઈ તંત પાડિનઈ, ન વઈ બીજી વાચ-	૩
સાચાં તોલાં તાકડી, સાચા ગજ શ્રીકાર,	
ઉછો ઘઈ નહીં આપણો, અધિકે ન લિઈ લિગાર-	૪
સાચ ઉપરિ રાચઈ નહી, દોષ દહી કહે' એહ,	
વિશુજ વ્યાપાર માંડી) પડ્યો, દ્રવ્ય સો આવ્યો સેહ-	૫
મુહલતિ પૂગી વાણિયા, આવી મામઈ દામ,	
ધરમાઈ દેવા નહીં, ચિંતાતુર થયો જામ-	૬
તેહવઈ બોલી બારન, સાંભલી સામી! વાત,	
ધન તૂં લાગઈ ખરચ, કિમ ગમચ્યાં દિનરાતિ-	૭
ધર ધંધા દુખ . પાલણુ, સાયર દુખ સમાન,	
એકાણિ રાતિ' વીસર્ગો, ગાહા પંચ સયાણુ-	૮
રહું કરતાં પાહુડે, આઈ કલિજુગ તેહ;	
પણિ ધરમિ' જય નેહિ છઈ, દિયે રપઈ નર નેહ-	૯
સાચ કલો તઈ સુંદરી, પણિ દિવ કરચ્યાં કેમ,	
સોંસજ બાળું સર્વથા, માંગણુરો મુઝ નેમ-	૧૦
પરદેસ ચલિ સહું પાધરા, દગિયાં ચલિ સહું દેખિ,	
લખતી તિહાં લહિઈ ઘણી, વાડ બાગ્ય વિશેષ-	૧૧
ખાધયર બોલી ચાલતાં, સાંભલયો ભરતાર;	
હું બઈદી વત પાલેચું, તું પાલે વ્યવહાર-	૧૨

આમાં વાણિયાણી કેવી બહાદુર રહી ચોતાના પતિને શિખામણુ આપે છે તે જોઈ શકાયો. 'ગામચ્યાં' 'કરચ્યાં' 'માંગણુરો' જે મારવાડી રૂપો આમાં જણાય છે. કવિ મેવાડ મારવાડમાં જ બહુ રહ્યા છે-રહ્યા છે.

હવે કવિના સર્વ કાવ્યના કલશ રૂપ મહાકાવ્ય નાંમે સીતારામ પ્રબંધમાંથી ચોતાની હસ્ત લિખિત પ્રતમાંથી કાવ્યનો એક નમુનો લઈએ તે પરથી કવિનાં સમયની તેમ જ ચોતે વાપરેલી ભાષાનું સ્વરૂપ સમજાશે.

સીતાધર લોકાપવાદ.

આઠમો ખંડ. કાલ ૧ લી. રાગ ભારૂણી.

[અમાં મ્હાંની ચિલા સિંગી જોઇ, અમાં અમામ્હાંની, મારડે મેવાસી કે સાદ સોદામણે રે ભો.

એ ગીતની કાલ]

સહિયાં મોરી સુણિ સીતાની વાત, સહિયાં, સહિયાં મોરી આપણે ધરિ રાખી, રાવણ રાજ્યે રે ભોં	સહિયાં ૦
તે કામી કહિવાઈ સહિયાં, સહિયાં મોરી, તે પાસે બેઠાં પણિ લોકમેં લાજ્યે રે ભોં	સહિયાં ૧
સીતા, સતીય કહાઈ, સં સં પણિ રાવણ બોગવ્યાં પિણ સહી સુંકે નહી રે ભોં	સહિયાં ૦
ભૂખ્યેર બોજન ખીર સં સં વિણ જીભ્યાં છોડે નહી, ધમ જાણે સહી રે ભોં	સહિયાં ૨
રતરસ્યે ન છોડે નીર, સં સં પડિત તો સુખાપિત તરસિયો કિમ તજે રે ભોં	સહિયાં ૦
વલિદ્રી લાઈ નિધાન, સં સં કિમ છોડે જાણે ધમ, વલિ નહિ સંપન્ને રે ભોં	સહિયાં ૩
તિથુ તું નિશ્રમ જાણિ, સં સં બોગવિતે મુકી પરી, સીતા રાવણે રે ભોં	સહિયાં ૦
રામે કીધો અન્યાય સં સં સીતાને અપણે ધરમાહે આજણે રે ભોં	સહિયાં ૪
લોકોં મેં અપવાદ સં સં સગ્યે હી સીતા શ્રી રામતો વિસ્તર્યો રે ભોં	સહિયાં ૦
અંતર પરિવાર સં સં બીરત્યે લોકે ક્યો તે મનમે ક્યો રે ભોં	સહિયાં ૫
એક દિવસ એક કામિ સં સં નગરીમેં મહિલાના રોલ મિત્યા ધણ રે ભોં	સહિયાં ૦
તિહાં એક બોલી નારિ સં સં અજીમે સળવા પ્રુષ્ઠ આજ સીતા તણ રે ભોં	સહિયાં ૬
દેવીને ફરજન સં સં તે રાવણ રાજ્યે સીતા સુખ લલો રે ભોં	સહિયાં ૦
સીતા સતીય કહાઈ સં સં એ નં ધટે એવડી વાત ધમ બીજ કહો રે ભોં	સહિયાં ૭
એક કહે ચાલીએ સં સં અજીનું સીલ તાં લગિ કહિયે સાખતો રે ભોં	સહિયાં ૦
જાં લગિ કામી કોઈ સં સં પ્રાણના ન કરે જાહુ પરિ સમજાવતો રે ભોં	સહિયાં ૮
એકને રાવણરાય સં સં વીનતિતે વચને કરિ વસિ લીધી ધણ રે ભોં	સહિયાં ૦
રાખી અજી રંગે સં સં તત મન ધન સગણું હી આપે આપણું રે ભોં	સહિયાં ૯
એક કહે વલિ એમ સં સં સીતાને જાણે તુઠે જગિ સોભાગિણી રે ભોં	સહિયાં ૦
નારી સહસ અઢાર સં સં મંદોદરિ સપરિખી સહુને અવગણી રે ભોં	સહિયાં ૧૦

* સરખાવો આ કવિના સમય પછી ચયેલા સામબદ્ધની નંદનગીરીમાં

૧ અમૃત પીરસ્યું ચાળમાં, આપે કરવા આહાર,
દીડું પણ ચાખ્યું નહીં, ૫૬ પાસા પોખાર.૨ હંસ ગયો સરોવર વિષે, દીડું અમૃતવાર,
પિધા વિના પાછો વળ્યો, ૫૬ પાસા પોખાર.૩ રત્ન અમૃદ્ય સુદામણું, લોભે ગયો તે કાર,
દીડું પણ લીધું નહીં, ૫૬ પાસા પોખાર.

કવિના અખંડ કાવ્યો-મહાકાવ્યમાંથી નમુના લઈ તેમની કાવ્ય શક્તિ પર વિચાર કરવાનાં સાધન જોયાં, હવે તેનાં ખંડ કાવ્યો-ટૂંકા કાવ્યો પર જઈએ.

આલોચણ (આલોચના) સ્તવન.

આમાં શાસ્ત્રોચ્ચ ગિરિની યાત્રા કરતાં ત્યાં ઋષભદેવ પાસે પોતાના હૃદયની વાત કરી જે કંઈ પોતે પાપો કર્યા હોય તે ગણાવી તેની આલોચના કરી માફી આપે છે:-

જે કરજોડી વીનવું છ, સુષિ સ્વામી સુવિદીત,
કહ કપટ મૂંઝી કરી છ, વાત કહ આપ વીત.

કૃપાનાથ ! મુઝ વીનતી અવધાર-

તું સમરથ ત્રિલુવન ધણીછ, મુઝને દુતાર તાર- કૃપા
ભવસાપર ભમતાં ચકાંછ, દીર્ઘાં દુખ અનંત,
ભાગ સંયોગે ભેટિયોછ, ભય ભંજણ ભગવંત- કૃપા
જે દુઃખ ભાંજે આપણીછ, તેડને કહિયે દુઃખ,
પરદુખભંજન તું સુધયોછ, સેવકને દો સુખ- કૃપા

હવે પોતાના સમયની સ્થિતિ જણાવે છે:-

દ્વપમ કાસે દોહિલોછ, સંધ્યા ગુર સંયોગ,
પરમારથ પીછે નહીંછ, ગડર પ્રવાહી લોક- કૃપા
[તિથુ લુઝ આગલ આપણા છ, પાપ આલોઉ આજ,
માય બાપ આગલ બોલતાં છ, બાલક કેહી લાજ- કૃપા]
જિન ધર્મ જિન ધર્મ સહ કહેછ, ચાપે અપણી છ વાત,
સામાચારી જુદ જુદ છ, સંસય પડ્યાં નિમ્બાત- કૃપા
જાણ અજાણપણે કરી છ, બોલ્યા ઉત્સત બોલ,
રતને કાગ ઉડાવતાછ, હાર્યો જનમ નિરોલ- કૃપા

આ પછી પોતાની આપવીતી-નિર્ભળતા ઉત્કટ હૃદય નિર્ભળતાથી જણાવે છે.

ભગવંત-બાપજો તે કિહાંછ, કિહાં મુઝ કરણી એહ.
ગજ પાપર ખર દિમ સહેછ, સખલ વિભાસણુ તેહ- કૃપા ૧૦
આપ પ્રથુ આકંછ, જાણે લોક મહાંત,
પિણુ ન કંઈ પરમાદિયોછ, માસાહસ દર્શાંત- કૃપા ૧૧
કાલ અનંત મેં લલાંછ, તીન રતન શ્રીકાર,
પિણુ પરમાદે પારિયાંછ, કિહાં જઈ પુકાર- કૃપા ૧૨
જાણું ઉત્કટી કંઈછ, ઉલ્લત કંઈ અવિહાર,
ધીરજ જવ ધરે નહીંછ, પોતે બહુ સંસાર- કૃપા ૧૩

મહાવીર સ્તવન.

વીર સુણો મોરી વીનતી, કર્જોદી હો કહું મનની વાત,
ખાલકની પરે વીનવું, મોરા સ્વામી હો ! તું ત્રિભુવન તાત—

વીર સુણો મોરી વીનતી.

૧

દુમ દરશણ વિણ હું ભંગ્યો, ભવ માંહે હો સ્વામી ! સમુદ્ર મંઝાર,
દુખ અનંતા મેં સઘાં, તે કહિતાં હો કિમ આવે પાર.

વીર. ૨

પર ઉપગારી તું પ્રભુ, દુખ ભંગ્યે હો જગ દીન દયાલ,
તિણ તોરે ચરણે હું આપિયો, સામી ! મુજને હો નિજ નયણ નિહાલ.

વીર. ૩

અપરાધી પિણુ બિધર્મો, તેં કીધી હો કરૂણા મોરા સ્વામ,
હું તો પરમ ભક્ત તાહરો, તિણ તારો હો નહીં લીલનો કામ.

વીર. ૪

x x x x

[આ પછી શૂલ પાણિ, ચંડકૌશિક નાગ, ગોરાશાલો, ગૌતમ, જમાલિ, અધમન્તા
મંથિ, મેઘકુમાર, નંદિયેણ, આર્દ્રકુમાર, ચેલણા, શ્રેણિક એ સર્વને ઉદ્ધર્યાં જણાવી]

દુમ અનેક તેં બિધર્મો, કહું તોરા હો કેતા અવદાત,
સાર કરો હિવ માહરી, મનમાંહે હો આણો મોરડી વાત.

વીર. ૧૫

સુણો સંજમ નહિ પલે, નહિ તેહવો હો મુઠ દરશણ રાન,
પિણુ આધાર છે એતલો, છક તોરો હો ધર્મ નિશાલ મ્યાન.

વીર. ૧૬

મેહ મહિતલ વરસતો, નવિ જોવે હો સમ વિષમાં કામ,
ગિરવા સહજે શુણુ કરે, સ્વામી ! સારો હો મોરા વંછિત કામ.

વીર. ૧૭

દુમ નામે સુખ સંપદા, દુમ નામે હો દુખ જાણે દર,
દુમ નામે વંછિત શ્વે, દુમ નામે હો મુઠ આનંદ પૂર.

વીર. ૧૮

કલશ (હરિગીતના લયમાં કલશ મુકાય છે)

દુમ નગર જેસલમેર મંડન, તીર્થંકર ચોતીસમે,
શાસનાધીશ સિંહ લંબન સેવતાં સુરતરસમે,
જિનચંદ ત્રિશલા માત નંદન સકલચંદ કલા નિશે,
વાયના ચાર જ સમયસુંદર મંથુણો ત્રિભુવનતિશે.

ચાર ચરણમાં છેલ્લું ચરણ સાધારણ—સામાન્ય એક ભત્તનું આવે એવું—લુન્ગી, કે
એવી ભત્તના છંદ વાળું કાવ્ય તેને સામાન્ય રીતે ‘છંદ’ એ નામ જોનામાં અપાયું છે.
આવો ‘છંદ’ પાશ્વનાથનો ૭ કહીનો કવિએ કરેલો નોંધવામાં આવ્યો છે, તેનાં પ્રથમની
બે કહીઓ આ છે—

આપણુ પર. બેઠાં, લીલ કરો, નિજ પુત્ર કલવ સું પ્રેમ ધરો,
તમે દેશ દેશાંતર કાંઈ દોડો, નિત્ય પાસ જ્યો થી જિન રડો.

૧

મનો વંછિત સધલાં કાજ સરે, શિર ઉપર ચામર છત્ર ધરે,
કલમલ ચાલે આગમ ઘોડો, નિત પાસે જ્યો શ્રી જિન રૂડો.

૨

સીમંધર જિન સ્તવન

* ચાંદલિયા સંદેશડોળ, કહેજો સીમંધર સ્વામ,
ભરતક્ષેત્રનાં માનવીજી, નિત હડી કરે રે પ્રણામ.

x x x

રાયને વહાલાં ઘોડલાંજી, વેષારીને વહાલા છે દામ,
અમને વહાલા સીમંધર સ્વામી, જિન સીતાને રામ.
નહિ માયું પ્રભુ ! રાજ નહિજી, નહિ માયું ગરથ બંડાર,
હું માયું પ્રભુ ! એટલું જી, તુમ પાસે અવતાર.
દૈવ ન દીધી પાંખડીજી, કેમ કરી આવું રે હજાર,
મુજરો માદારો માનજોજી, પ્રદ ઉગમતે સુર.

એક રૂપક allegory રૂપે મનની શુદ્ધિ અર્થે કવિએ સુંદર કવિતા કરી છે અને તે અતિ રસયી જૈનોમાં ગવાય છે:—

ઘોળીડા તું ઘોળે મનનું ઘોલીયું રે, રખે રાખતો મેલ લગાર રે,	ધો.
એણે રે મેલે જગ મેલો કર્યો રે, વિણ ઘોળું ન રાખે લગાર રે.	ધો.
જિનશાસન સરોવર સોઢામણું રે, સમકિત તણી રૂડી પાલી રે,	ધો.
દાનાદિક ચાર ખારણું રે, માંહી નવ તત્ત્વ કમલ વિશાળ રે.	ધો.
તિહાં ગ્રીસે મુનિવર હંસલા રે, પીયે છે તપ જપ નીર રે,	ધો.
શમ દમ આદે ને શીલ રે, તિહાં પખાલે આતમ ચીર રે.	ધો.
તપવળે તપ તડકે કરીરે, જાળવળે નવ બ્રહ્મ વાડરે,	ધો.
છાંટા ઉડાડે પાપ અદારના રે, એમ ઉજળું હોશે તતકાલ રે.	ધો.
આલોચણ સાખડો સૂણે કરે રે, રખે આવે માયા શેવાળ રે,	ધો.
નિશ્ચે પવિત્રપણું રાખજે રે, પછે આપણા નિયમ સંભાળ રે.	ધો.
રખે મૂકતો મન મોકળું રે, પડ મેલીને સંકેલ રે,	ધો.
સમયસુંદરી શીખડી રે, સુખડી અમૃત વેલ રે.	ધો.

પ્રથમ તીર્થંકર ઋષભદેવના પુત્રો—ભરત ચક્રવર્તિ અને તેના ભાઈ બાહુબલી અને શત્રુજી માટે લડયા, પછી બાહુબલીએ પિતા પાસે દીક્ષા લઈ વનમાં ઉભા રહી કાપોત્સર્ગ કરી ધ્યાનસ્થ રહ્યા થકાં પણ મનમાંથી અહંકાર ઉતરતો નથી તેથી ઋષભદેવે તેની મોટી બહેનો સાંધવી બ્રાહ્મી અને સુંદરીને મોકલી. પોતાના લઘુ ગાંધુ ગર્વ-માન-અહંકારના ગળ પર આરૂઢ બની આત્માનું હિત બગાડે છે એ બતાવવા તે બહેનો કહે છે કે:

* કવિ પદ્યવિન્યે આ સીમંધર સ્વામી પાસે અર્દ્ધવ્રતની કલ્પના પોતાના એક ખંડ કાવ્યમાં મૂકી છે (સુણા ચંદાજી ! સીમંધર પરમાતમ પાસે જા જો.)

વીરા મારા ગજ યદી ઉતરો, ગજ ચડે કેવળ ન હોય રે—

વીરા મારા ગજ યદી ઉતરો.

ઋષભદેવ તિહાં મોકલે, બાહુબળજની પાસે રે,

બંધવ ગજ યદી ઉતરો, બાહુ સુંદરી એમ લાગે રે—

વીરાવ

લોચ કરીને ચારિત્ર લિયો, વળી આચું અભિમાન રે,

લધુ બંધવ ! વાંડ નહીં, કાઠિસ્તગ્ગ રહ્યા શુભ ધ્યાન રે—

વીરાવ

વરસ દિવસ કાઠિસ્તગ્ગ રહ્યા, શીત તાપથી સુકાણા રે,

પંખાડે માળા ધાલીઆ, વેલડીએ વીંટાણા રે—

વીરાવ

સાધ્વીનાં વચન મુણી કરી, ચમક્યોં ચિત મોઝાર રે,

હય ગય રય સહુ પરિહર્ષ, વળી આચો અહંકાર રે—

વીરાવ

વૈરાગ્યે મન વાળીયું, મુક્યું નિજ અભિમાનરે,

પગ રે બિપાડયો વાંદવા, બિપજ્યું તે કેવળ જ્ઞાન રે—

વીરાવ

પોહોતા તે કેવળા પરવદા, બાહુબળ મુનિરાય રે,

અજરામર પદવી લઈ, સમયસુંદર વંદે પાથ રે—

વીરા મારા ગજ યદી ઉતરો.

નિંદા પર 'સ્વાધ્યાય' લખી છે તે કેવી ઉપદેશકારક છે તે આખી વાંચ્યા પછી સમજાશે. નિંદા કરવી તો આત્મનિંદા કરવી કે જેથી 'છુટકખારો'—સંસારથી મુક્તિ થાય.

નિંદા મ કરજો કેહતી પારકી રે, નિંદાનાં બોલ્યાં મહાં પાપરે,

વૈર વિરોધ વધે ધણે રે, નિંદા કરતાં ન ગણે માય બાપ રે—

નિંદાવ

દૂર ભલતી કાં કેળો છુટકે રે, પગમાં બધતી દેખો સહુ કોય રે,

પરના મલમાં ઘોયાં લગાડાં રે, કહો કેમ બિજલાં હોય રે—

નિંદાવ

આપ સંભાલો સહુ કે આપણે રે, નિંદાતી મુકો પડી દેવ રે,

શોરે ધણે અવગુણે સહુ ભર્ષા રે, કેહનાં નહીંઆં મુએ કેહનાં નેવરે—

નિંદાવ

નિંદા કરે તે બધે નારકી રે, તપ જપ કાંઈ સહુ બધ રે,

નિંદા કરો તો કરજો આપણી રે, જેમ છુટકખારો ચાલ રે—

નિંદાવ

શુંઈ મહાને સહુ કે તણો રે, જોઈઆં દેખો એક વિચાર રે,

કૃષ્ણ પરે સુખ પામશે રે, સમયસુંદર સુખકાર રે—

નિંદાવ

શાલિભદ્રની પ્રાર્થા ઉદ કહીની રચી છે; શ્રી મહાવીર સમયમાં રાજગૃહે શાલિ-ભદ્ર મહા સમુદ્ધિવાનુ શ્રેષ્ઠી હતો—તેને બીજીશ સ્ત્રીઓ હતી. તેની બહેન ધન્ય (ધના) નામના શ્રેષ્ઠીની સાથે તેજ શહેરમાં પચણાવી હતી કે જેને તે મળીને આઠ પત્નિઓ

ભક્તિ ગુણ સવસેશ ભાખ્યો, સુવિધિ જિન સુખકાર, સમયસુંદર દલત દમક, સ્વામી તુમારે આધાર-પ્રભુ

પ્રભુ સેવાના ઉદ્ધાસ-રાગ મહાર.

કયું ન બયે દમ મોર, વિમલગિરિ કયું ન બયે દમ મોર.

મધુમજા દેખત આનંદ ઉપજત, જેસે ચંદ ચકોર-

વિમલ૦ કયું

કયું ન બયે દમ શીતલ પાની, સિંચિત તરુચર છોડ,

અદનિશ જિનજીકે અંગ પખાલત, તોરત કમ કોર-

વિમલ૦

કયું ન બયે દમ બાવના ચંદન, ઉર કેશર કોરી છોર;

કયું ન બયે દમ મોગર માલતી, રહેત જિનજીકે ઉર-

વિમલ૦

કયું ન બયે દમ મુદંગ ઝલરીયાં, દરત મધુર ખની ઘોર,

જિનજીકે આગે વૃત્ય સોદાવન, પાવત શિવપુર ઠોર-

વિલાસ૦

જગમંડલ સાચો એ જિનજી, એર દેખા ન રાયત મોર,

સમયસુંદર કહે એ પ્રભુ સેવા, જનમ જરા નહીં ઓર.

વિમલ૦

મનને ઉપદેશ

મેરા જીવ આરતિ દાહા ધરે,

જેસા વે ખાતમે લખિત વિધાતા, તિનમે ઘટે ન બદે-

મેરા૦ ૧

ચકવર્તિ શિર છત ધરાવત, કે દ ન મંગલ કરે,

એક સુખીયા એક દુખી દીસે, એ સખ કરમ કરે-

મેરા૦ ૨

આરતિ અબ છોર દે જીડડા, રોતે ન રાજ ચરે,

સમયસુંદર કહે જો સુખ વાંછે, કર ધરમ ચિત્ત ચરે-

મેરા૦ ૩

સમયના પલટા પર વૈરાગ્ય સૂચક પદ-રાગ આશાવરી.

કિસિકું સખ દિન સરખે ન હોય. પ્રહ ઉગત અસ્તંગત દિનકર, દિનમે અવસ્યા દોય-કિસિકું.

દરિ બલભદ્ર પાંડવ નળ રાજ, રહે પદ્મપંડ સિદ્ધિ જોય; ચંડાળ કે ધર પાણી આપ્યું, રાજ હરિચંદ જોય.

ગર્વ મકર તું મૂઠ ગભારા, ચડત પડત સંમ કોય; સમય સુંદર કહે છતર પૈરત સુખ, સાચો જિનધર્મ સોય.

રાગ પદ.

સ્વારયછી સખ હેરે સગાઇ કુણ માતા કુણ જોનડ બાઈ-સ્વારયછી૦

સ્વારય ભોજન ભુક્ત સગાઇ, સ્વારય જિનજીકે પાણી ન પાઇ-

સ્વારય માખાપ શેડ બડાઇ, સ્વારય જિન નહીં હોત મોહાઇ-

સ્વારય નારી દાસી કહાઇ, સ્વારય જિન લાહી લે ધાઇ-

સ્વારય ચેલા ગુર ગુરુભાઇ, સ્વારય જિન નિત હોત લરાઇ-

સમય સુંદર કહે સુણોરે દોઢાઇ, સ્વારય હે ભલિ પરમ સગાઇ-

(પાઠાંતર) સ્વારય હે ભલિ પરમ સમયસુંદર.

વેરણુ નિદ્રા-રાગ પદ.

સોઇ સોઇ સારી રેન ગુમાઇ, બેરન નિદ્રા કહાંસેં રે આઇ—સોઇ
નિદ્રા કહે મેં તો બાલી રે ભેલી, બેડે બેડે મુનિબનકું નાખું રે ઢોલી—
નિદ્રા કહે મેં તો જમજી દાસી, એક હાથે મૂકી બીજે હાથેં કાંસી—
સમયસુંદર કહે સુને ભાઇ બનીયા, આપ મૂએ સારી હુબમઇ દુનીયાં—

[આમાં પોતાના શ્રોતાઓ 'વાણીઆ' ને ઉદ્દેશ છે ને કપીરનું ચરણુ: 'કહેત કપીરા સુને મેરે મૈયા, આપ મુએ પિછે દૂબ ગઇ દુનિયાં' એનું અનુકરણ કર્યું જણાય છે.]

સમયસુંદરજી એક વખત હોલના અજમેર પાસેના કિસનગઢ શહેરમાં પધાર્યા હતા, ત્યાં શ્રાવકોને આપસ આપસમાં કલેશ અને એક બીજાની નિંદા કરતા ભેઠ તેઓશ્રીએ નીચે પ્રમાણે હૃદયની ઉર્મિઓ પ્રકટ કરી છે તે આત્માર્થી જનોએ મનન કરવા જેવી છે.

ક્યારે મુવશે શ્રાવક એહવા, મુજુસ્યે આવી વખાણેજ,
ધર્મગોષ્ઠી ચર્ચા કરીયું અને, લીનરાગ વચન પ્રમાણેજ. ક્યારે
ધુરથી સમકિત જે મુધો ધરે, અને નહિ મિથ્યાતોજ,
સ્વામીયું ધરણે ખેસે નહિ, નહિ રાગદોષની વાતોજ. ક્યારે

[વખાણુ-વ્યાખ્યાન, ધુરથી-મૂળથી, સમકિત-સમગ્રદર્શન-અર્થ; મુધો-મુદ્, મિથ્યાત્વ-અશ્રદ્ધા-મિથ્યા શ્રદ્ધા; સ્વામી-સહધર્મી-સ્વધર્મી; ધરણો-મહણુ-આહુ.]

છેલ્લે સ્થૂલભદ્ર અને કોશાને પ્રસંગ લઇ એક ગીત કવિએ રચ્યું છે તે અપ્રકટ હોવાથી અત્ર આપું છું:—

રાગ સારંગ.

પ્રીતડિયા ન કીજઇ હો નારિ! પરદેસીયા રે, ક્ષણે ક્ષણે ક્ષણે દાએ દેહ,
વીજડિયા વહાલેસર મલવો દોહિલોજ. સાહે સાહે અધિક સનેહ-પ્રીતડિયા
કાલ આવ્યા તેં આજ ઉઠિ ચાલસોરે, ભમર ભમતા ભેઠ,
સાજણિઆ વળાવીને પાછા વળતાજ, ધરતિ બાર ન હોઇ-પ્રીતડિયા
મનના મનોરથ સવિ મનમ્મા રલાજ, કહીએ કેહનિ સાથિ.
કાગળીઓ લખતા બીનો આસુએજ, ચડિયો હો દુર્ન ન હાય. પ્રીતડિઆ
શૂલભૂર કોસા બુઝવીજ, પાટ્યો હો પૂરત પ્રેમ,
સીલ સુરગિ પેહરો મુનડિજ સમય કહે એમ—પ્રીતડિયા

[સીલસુરગી મુનડી ઉપર પછીના કેટલાક કવિઓએ નવાં કાવ્ય કર્યા છે.]

અત્ર કવિની કૃતિઓમાં, કવિ રજપુતાના-મારવાડ એવાડમાં બહુ રહેલા તેથી તે ભાષાનાં છાંટણું જોવામાં આવે છે એટલું જ નહિ, પણ ઉર્દુ-શરસી શબ્દો પણ ઘણા વપરાયા જણાય છે કારણ કે કવિને દિલ્લી અને મુગલ દરબારમાં-શહેનશાહ અને તેના રાજદારીઓના પ્રસંગમાં બહુ આવડું પડ્યું હતું તેથી અને તેમ જ મૂજરાતમાં પણ મુસલમાની રાજ્યનો



मुद्रसूत्रान्तः आदित्यमुद्रसूत्रस्य, रायभट्ट रीति, —अभिलषाद.

मुद्रकः प्रायुष्टवन विद्यनाथ पाठक.

॥ अर्हम् ॥

॥ नमोऽस्तु श्रमणाय भगवते महावीराय ॥

જૈન સાહિત્ય સંશોધક

‘ પુરિતા ! સત્તમેવ સમભિજાનાહિ । સત્તસાળાણે હવદ્ધિય મેહાવી મારં તરહ । ’

‘ જે એગં જાણહ સે સવ્વં જાણહ; જે સવ્વં જાણહ સે એગં જાણહ ! ’

‘ દિદ્ધં, સુયં, મયં, વિળ્ળાયં જંણં એત્થ પરિકહિજ્જહં । ’

—નિર્ગ્રન્થપ્રવચન-આચારાંગસૂત્ર ।

खंड २]

ગુજરાતી લેખ વિભાગ

[અંક ૪]

પુરાતત્ત્વ સંશોધનનો પૂર્વ ઇતિહાસ

(સંવત્ ૧૯૭૭ ની શ્રાવણી પૂર્ણિમાના દિવસે, ગુજરાત મહાવિદ્યાલય, અમદાવાદમાં
અપાએલું વ્યાખ્યાન.)

પુરાતત્ત્વ એ એક સંસ્કૃત શબ્દ છે. સામાન્ય રીતે ઇંગ્લેન્ડમાં જેને “ એન્ટીકવીટીઝ ”
(Antiquities) કહે છે તે અર્થમાં આ શબ્દ યોગ્યતામાં આવ્યો છે. પુરાતત્ત્વ એટલે
પુરાતન-જુનું પુરાણું; અને સંશોધન એટલે શોધખોળ કરવી. જૂની વસ્તુઓની શોધખોળ
કરવી તે પુરાતત્ત્વ સંશોધન કહેવાય. હિંદુસ્તાનની જૂની પુરાણી વસ્તુઓની શોધખોળ
કરવાની શરૂઆત કયારથી થઈ અને કઈ કઈ સંસ્થાઓએ તથા કઈ કઈ વ્યક્તિઓએ આ
કાર્યમાં વિશેષ લાગ લીધો તેનું કાંઈક દિગ્દર્શન કરાવવાનો આજના આ મારા વ્યાખ્યાનનો
મુખ્ય હેતુ છે.

મનુષ્ય એક વિશિષ્ટ બુદ્ધિશાલી પ્રાણી છે. તેથી દરેક વસ્તુના સ્વરૂપને જાણવાનો
અથવા જાણવાની છતાસા હોવાનો તેનો મુખ્ય સ્વભાવ છે. આત્માનું અમરત્વ માનનારા
દરેક આસ્તિક મનુષ્યના મતે પ્રત્યેક પ્રાણીમાં તેના પૂર્વસચિત સંસ્કારો પ્રમાણે ન્યૂના-
ધિક પ્રમાણમાં જ્ઞાનનો વિકાસ થયેલો હોય છે. મનુષ્ય પ્રાણી જે સર્વ પ્રાણીઓમાં શ્રેષ્ઠ
મનાય છે તેનું કારણ એ છે કે જીવ જીવ-જાતિઓ કરતાં મનુષ્ય જાતિમાં જ્ઞાનનો

વિકાસ સર્વાધિક થયેલો છે. જ્ઞાનના વિકાસ અથવા પ્રસારનું મુખ્ય સાધન વાણી એટલે ભાષા છે; અને એ વાણીનું વ્યક્ત સ્વરૂપ સંપૂર્ણ રીતે મનુષ્યજાતિમાં જ ખીલેલું છે. તેથી ખીલત બધા દેહધારી જીવાત્માઓ કરતાં મનુષ્યાત્મામાં જ્ઞાનનો વિશેષ વિકાસ થાય તે સ્વાભાવિક છે. મનુષ્ય જાતિમાં પણ વ્યક્તિગત પૂર્વસચિતાનુસાર જ્ઞાનના વિકાસનું અપ્રમિત તારતમ્ય રહેલું છે. સંસારમાં એવા પણ મનુષ્યો દિગ્ગોચર થાય છે કે જેમનામાં જ્ઞાનશક્તિનો લગભગ છેક અભાવ જ હોય છે અને જેઓ મનુષ્યરૂપમાં પણ સાક્ષાત અબુદ્ધ પણ જેવા હોય છે. ખીલ જાણુએ એવા પણ મનુષ્યો ઉત્પન્ન થાય છે કે જેમનામાં જ્ઞાનશક્તિ અપ્રમેયરૂપે ખીલેલી હોઈ જેઓ પૂર્ણ પ્રબુદ્ધ ગણાય છે. પ્રાચીન ભારતવાસીઓના મોટા ભાગનો તો એવો પણ પૂર્ણ વિશ્વાસ હતો, કે એ જ્ઞાનશક્તિ કોઈ કોઈ વ્યક્તિમાં એટલે સુધી સંપૂર્ણ ખીલેલી હોય છે અથવા ખીલી શકે છે કે જેથી તે જગતના સમસ્ત પદાર્થોનું સંપૂર્ણ જ્ઞાન મેળવી શકે છે; વિશ્વની દૃશ્ય કે અદૃશ્ય એવી એક પણ વસ્તુ કે આણત તેનાથી અજ્ઞાત હોતી નથી. આવી વ્યક્તિને આર્યો “સર્વજ્ઞ”ના નામે ઓળખે છે. આર્યોની આ મોટા ભાગની શ્રદ્ધા પ્રમાણે આવી કોઈ યથાર્થ સર્વજ્ઞ વ્યક્તિનું અસ્તિત્વ હોઈ શકે કે નહિ એ એક પ્રાચીનકાળથી જ મોટો વિવાદાસ્પદ વિષય થઈ પડ્યો છે; અને સર્વજ્ઞતા અસ્તિત્વ-નાસ્તિત્વના વિષયમાં આજ સુધીમાં અસંખ્ય વિદ્વાનોએ અનંત શંકા-સમાધાનો કર્યા છે. પરંતુ મારે કહેવું જોઈએ કે નરી આંખે જોઈ શકાય એવા સર્વજ્ઞનું અસ્તિત્વ સાબીત કરનાર તો કોઈ પણ પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ આજ સુધીમાં ચિકિત્સક સંસાર આગળ રળુ કરવામાં આવ્યું નથી. અસ્તુ. એ “સર્વજ્ઞ” ના વિષયમાં ગમે તેમ હો, પણ એટલી જાણત તો ચોક્કસ છે કે કોઈ કોઈ મનુષ્ય વ્યક્તિમાં જ્ઞાનશક્તિનો એટલો બધો વિકાસ અને પ્રદર્શ થયેલો પ્રત્યક્ષ જોવાયો છે અને જોવાય છે કે જેનું માર્ગ કાઢવું બીજાઓના માટે અશક્ય છે. શબ્દશાસ્ત્રની ખીકને લીધે આપણે એવી પ્રબુદ્ધ વ્યક્તિને જો સર્વજ્ઞ ન કહી શકીએ તો પણ બહુસંખ્યનદ્વય તો અવશ્ય કહી શકીએ છીએ. એવી એક બહુસંખ્ય વ્યક્તિની જ્ઞાનશક્તિની તુલનામાં ખીલ સાધારણ એવા લાખો કરોડો મનુષ્યોની એકત્રિત જ્ઞાનશક્તિ પણ પૂરી થઈ રહે તેમ નથી.

ઇતિહાસ-અતીત કાલથી સંસારમાં આવી અસંખ્ય અનદ્વય વ્યક્તિઓ ઉત્પન્ન થતી આવી છે, અને જગતને તેઓ પોતાની એ અગાધ જ્ઞાનશક્તિનો અમૂલ્ય વારસો સોંપતી રહી છે. છતાં મનુષ્ય જાતિએ જગતના વિષયમાં હજી બહુ જ અદ્ય બાક્યું છે. જગત અદ્યાપિ એવું ને એવું જ અગમ્ય અને અજ્ઞેય છે. જગતની ખીલ અનંત વસ્તુઓને તો જાણુએ મૂકીએ પણ મનુષ્ય જાતિએ પોતાના વિષયમાં જ હજી કેટલું બાક્યું છે? જેવી રીતે માનવી સંસ્કૃતના પ્રથમ નિદર્શક અને સંસારના સાહિત્યના આદિમ ગ્રંથ ઋગ્વેદમાંના ઋષિઓ મનુષ્ય જાતિના ઇતિહાસને અનુલક્ષીને પૂછતા હતા કે-

કો દદર્શ પ્રથમં જાયમાનમ્ ?

‘‘ કોથી પ્રથમ ઉત્પન્ન થનારને કોણે જોયો છે ? ’’ તેવી જ રીતે આજે વીસમી

શતાબ્દીના તત્ત્વજ્ઞાનીઓ પણ હજી એ જ પ્રશ્ન પૂછી રહ્યા છે. જેવી રીતે જગતના પ્રાદુર્ભાવના વિષયમાં સત્ યુગીન નાસદીય સૂક્તનો સ્થિતિ બદલવા ઇચ્છતો હતો કે

કૌ અદ્વા વેદ ક દ્વ પ્રવોચત

કુત આ જાતાઃ કુત દ્યં વિસૃષ્ટિઃ ।

‘આ જગતનો પસાર ક્યાંથી આવ્યો છે-અને ક્યાંથી નીકળ્યો છે, એ કોઈ જાણે છે ? અને કોઈ ખતાવે છે ?’ તેવી જ રીતે આજના આ કલિયુગનો તત્ત્વજ્ઞાસુ પણ હજી તે જ પ્રશ્નનો ઉત્તર બાબવા તલાશી રહે છે. જો કે આવી રીતે જગત-તત્ત્વ બહુ ગૂઢ અને અગમ્ય છે; ગૂંચરાતી ભરત કવિ અખો કહે છે તેમ એ અરેખર “અંધારે કુઓ” છે અને એનો ભેદ પાઈ કોઈ મુઓ નથી. છતાં માનવી જ્ઞાપ્તિ અને જ્ઞાન-શક્તિએ એ “અંધારા કુઆ” નાચે કેટલાક ખરડો ખોળી કાઢવાનો ભંગીરથ પ્રયત્ન કર્યો છે. એ કુઆના ઉંડા પાણી ઉપર ફરી વળેલી નીળી શેવાળને જ્યાં ત્યાંથી ખસેડી એના જળકણોનો આસ્વાદ મેળવવા મોટી આપત્તિઓ ઉઠાવી છે. ગૂંઢતર અને ગૂંઢતમ જણાતા એ જગતનાંયે કંઈ કંઈ રૂપોને મનુષ્યે ઓળખ્યાં છે.

સૃષ્ટિના સ્વાભાવિક નિયમ પ્રમાણે ચોમાસાની મોસમમાં આકાશ ઉપર ચડી આવતાં વાદળો અને તેમાં થતી ગર્જના તથા વિજળીઓને જોઈને જેમ આપણા વેદકાલીન પૂર્વજો મહા ભયભીત થતા હતા અને કુદરતના એ ઉપયોગી કાર્યને પણ મોટી આફત રૂપે માનતા હતા તેમ આજે આપણે માનતા નથી. પોતાની અસાવધાનતાને લીધે જેમતેમ પ્રજ્વાળેલા અગ્નિમાં ભસ્મ થઈ જતી પોતાની પછીકુટિઓને જોઈને, કોઈ રક્ષક કે દેવ પોતાના ઉપર ક્રુપિત થઈ આ અગ્નિના રૂપે આવેલો છે એમ સમજી તેની આગળ દ્વંશી ઉભા ઉભા હાથ જોડી જેમ તેઓ તેની પ્રાર્થના કરતા તેમ આજે આપણે કરતા નથી. વાયુના વેગથી ઉડી જતાં ઝુંપડાં અને ઘાસના ઢગલાઓને જોઈને જેમ તેઓ તેને કોઈ મોટા અદ્ભુત ચોર સમજી ઇંદ્ર પાસે તેને શિક્ષા કરાવવા માટે ઈન્દ્રની વિવિધ પ્રાર્થનાઓ કરતા તેમ આજે આપણે કરતા નથી. આપણા પૂર્વજો અને આપણામાં થયેલા આ ફેરફારનું કારણ શું છે ? વેદકાલીન આર્યો પછી તેમની સંતતિએ કરેલી કુદરતનાં એ ગૂંઢતત્ત્વોની કેટલીક શોધઓળો તે જ તેનું કારણ છે. વિશ્વના રહસ્યને સમજવા માટે જેમ જેમ પાછળના મનુષ્યો વધારે બુદ્ધિપૂર્વક વિચાર કરતા ગયા તેમ તેમ તેમને સૃષ્ટિના એ સાધારણ નિયમો સમજાતા ગયા. તેઓએ મેઘના સ્વરૂપને જાણ્યું, અગ્નિના સ્વભાવને ઓળખ્યો, વાયુની પ્રકૃતિને પહેચાણી, અને તેથી, પછી નિર્ભય અને નિશ્ચિંત થવાના ઉપાયો શોધ્યા. તેનાથી પણ આગળ વધી આધુનિક યુગના મનુષ્ય પ્રાણીએ કુદરતની એ સ્વચ્છન્દ શક્તિઓના આંતર મર્મને સમજી, તેમને કાળુમાં આણી, તેમની પ્રાસેથી કેવાં કેવાં કામો લેવા માંડ્યાં છે તે આપણે પ્રત્યક્ષ જોઈ અને અનુભવી રહ્યા છીએ.

મનુષ્ય પોતાના ઇન્દ્રિય બહારી માત્ર પોતાના સમય દરમિયાન સત્તા પ્રસાવતી અને

પોતાના સંસાર કે અનુભવમાં આવતી બાબતોનું જ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી શકે છે. સંસારો-
તીત કે અનુભવાતીત બાબતોનું જ્ઞાન મનુષ્યોને પોતાની ઇન્દ્રિયો દ્વારા થઈ શકતું નથી.
તેમ છતાં આપણે જેટલા વિશ્વાસથી આજના બનાવોની ચર્ચા કરીએ છીએ, તેટલા જ
વિશ્વાસથી હજારો લાખો વર્ષો પહેલાં બની ગયેલા બનાવોની પણ ચર્ચા કરીએ છીએ.
શિવાજી કે પ્રતાપ, અકબર કે અશોકને આપણા યુગના કોઈ પણ મનુષ્યે પ્રત્યક્ષ જોયા
નથી, છતાં જેમ આપણને આપણા પોતાના અસ્તિત્વની ખાતરી છે તેટલી જ તેમના
અસ્તિત્વની પણ ખાતરી છે. જેમ આજે આપણે આપણી વચ્ચે વિચારતા સંસારના એક
મહાદેવના આદર્શમાં પૂર્ણ શ્રદ્ધા ધરાવીએ છીએ તેમ જ આજથી અઢીહજાર વર્ષો પહેલાં
થઈ ગયેલા તીર્થંકર મહાવીર કે તથાગત બુદ્ધના આદર્શમાં પણ તેટલી જ પૂર્ણ શ્રદ્ધા ધરાવીએ
છીએ. જેવી રીતે આપણે ભગવદ્ગીતાના અંતિમ રહસ્યકાર લોકમાન્ય તિલકની પ્રથમ શ્રાદ્ધ
તેચિ ગયા પરમ દિવસે ઉજવી છે, તેવી જ રીતે ચાંચ હજાર વર્ષ પહેલાં જન્મ લેનાર
બને ભગવદ્ગીતાના મૂળ ઉપદેશ ભગવાન શ્રી કૃષ્ણની જન્મતિથિ આવતા પરમ દિવસે
ઉજવવાના છીએ. આ અનુભવાતીત અને સમચાતીત બાબતોનું જ્ઞાન કરાવનાર કોણ છે ?
ક્યા સાધનદ્વારા આપણે એ ભૂતકાલની વાતોને બહુઈએ છીએ ? કહેવાની આવશ્યકતા
નથી કે એ બાબતોનું જ્ઞાન કરાવનાર ઇતિહાસ શાસ્ત્ર છે. ઐતિહાસિક સાહિત્ય
દ્વારા જ આપણે ભૂતકાલની વાતોને બહુઈ શકીએ છીએ. ઇતિહાસ જેટલો
યથાર્થ અને વિસ્તૃત હોય તેટલું જ આપણું ભૂતકાલીન જ્ઞાન પણ યથાર્થ અને વિસ્તૃત
હોઈ શકે, એ સ્વતઃ સિદ્ધ છે. આપણા કમનસીબે આપણા પૂર્વજોએ રચેલો આપણા
દેશનો યથાર્થ કે વિસ્તૃત ઇતિહાસ ઉપલબ્ધ નથી. જગતની ખીણ પ્રાચીન પ્રજાઓને
તેમના દેશોના વિષયમાં જેટલો પ્રાચીન તથા વિસ્તૃત ઇતિહાસ મળી આવે છે તેટલો
આપણા આ વિશ્વવૃદ્ધ આર્યાવર્તનો ઇતિહાસ મળી આવતો નથી. પ્રાચીન અને વિસ્તૃત
ઇતિહાસ તો આજુએ રહ્યો પરંતુ આપણા માટે તો આપણી પહેલાંની ત્રીણ પેઢીના ય
ઇતિહાસ બહુ હલકો છે. વર્તમાન શતાબ્દીનો પણ પૂરો વૃત્તાન્ત આપણે બાબતા નથી.
જે રાષ્ટ્રીય શકે અને સંવર્તનો આપણા પૂર્વજો અનેક સૈકાઓથી ઉપયોગ કરતા આવ્યા છે
અને જેના આધાર ઉપર આપણી આખી મધ્યકાલિન કાલગણના અવલમ્બિત છે,
તેના પ્રવર્તક કોણ છે એ હજી પણ અજ્ઞાત કે અનિશ્ચિત છે. આવી સ્થિતિમાં પુરાતત્ત્વ-
સંશોધન એ જ આપણા ઇતિહાસના નિર્માણનો પાયો છે. આપણે ઇતિહાસ જૂનીપુરાણી
વસ્તુઓની શોધખોળ કરીને તેના ઉપરથી નીકળતાં પરિણામો ઉપર રચાએલો છે અને
રચાવેલો છે. એમ તો સાધારણ રીતે હુનીઆના દરેક પ્રાચીન પ્રદેશની પુરાતન પરિ-
સ્થિતિ કે જેનું દર્શન ઇતિહાસરૂપી દૂરદર્શક ચંદ્રથી પણ થઈ શકતું નથી, તેને બાબવા
માટે જૂનીપુરાણી વસ્તુઓ જ આધારભૂત હોય છે; પરંતુ ભારતવર્ષને માટે તો આપણા
જન્મદિવસથી જ લઈને ઠેક યુગની આદિ સુધીની પરિસ્થિતિ બાબવા માટે બધો આધાર
જૂની પુરાણી વસ્તુઓ ઉપર જ રાખવો પડે છે. કારણ કે શાસ્ત્રીય પદ્ધતિથી જેને આપણે

ઈતિહાસ કહીએ તેવો ઇતિહાસ તો ભારતવાસીઓએ નાનો મોટો એક પણ લખ્યો નથી, અથવા તો છેવટે તે મળતો નથી. ઇતિહાસ નિર્માણના કામમાં આવે તેવી જૂની-પુરાણી વસ્તુઓમાં જૂના ગ્રંથો, શિલાલેખો, તામ્રપત્રો, શિક્ષાઓ તથા ધાતુપાત્રો, મંદિરો, મસ્જિદો, જલાશયો, કીર્તિસ્તંભો અને તેવાં બીજાં મકાનો અથવા ખાંડેરા વિગેરે ગણાય છે. આપણા પૂર્વજોએ ઇતિહાસના સ્વતંત્ર ગ્રંથો તો નિર્માણ નથી કર્યા પરંતુ ઇતિહાસનાં સાધનો તો ઘણાં જ નિર્માણ કર્યાં છે એમાં શંકા નથી. પણ આપણે તો એ પણ બાજુતા ન હતા-કે પછી બાજુવાની દરકાર રાખતા ન હતા કે આ સાધનોની શી રીતે છાણવીણુ કરી તેમાંથી આપણે ઇતિહાસ ઉપભવી કાઢીએ. એ પાઠ આપણને પશ્ચિમ-વાસીઓએ શીખવ્યો છે. કેવળ પાઠ જ શીખવ્યો છે એમ નથી પરંતુ અનેક પ્રકારનાં કળેટા પેડી અને પરિશ્રમે લઈ તેમણે આપણા માટે ઇતિહાસના અનેક અધ્યાયો પણ તૈયાર કર્યાં છે. અને એ માટે આપણે હંમેશાં તેમના કૃતજ્ઞ જ રહેવું જોઈએ. આટલું આનુષંગિક કહી હવે હું મારા વ્યાખ્યાનના મુખ્ય-પ્રતિપાદ વિષય ઉપર આવું છું.

જેમ મેં પ્રારંભમાં જણાવ્યું છે, તેમ મનુષ્ય એ વિશિષ્ટ બુદ્ધિશાલી, જ્ઞાનવાન પ્રાણી છે તેથી ફરેક વસ્તુના સ્વરૂપને વિશેષપણે બાજુવાની જુજાસા તેનામાં સ્વાભાવિક જ રહેલી છે. તેમાં વળી જે મનુષ્યો સાધારણ મનુષ્યો કરતાં વધારે જ્ઞાનવાન હોય છે તેમનામાં એ જુજાસા ઘણા ઉત્કટ પ્રમાણમાં હોય છે. એવા મનુષ્યોને બ્યારે કોઈ અપરિચિત પ્રદેશનો અથવા માનવ સમાજનો નવીન સમાગમ થાય છે ત્યારે તેમને તેમના ધર્મ, સમાજ, ઇતિહાસ આદિના વિષયમાં જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવાની તીવ્ર ઇચ્છા ઉત્પન્ન થાય છે. આ જ્ઞાન-પિપાસાથી પ્રેરિત થઈ તે મનુષ્યો તે તે જાળતની શોધખોળમાં પડે છે. એ અપરિચિત પ્રદેશની ભાષા શીખે છે. તેના જ્ઞાનલંકારને તપાસવાનો પ્રયત્ન કરે છે, અને તેમ કરી પોતાના દેશખંડુઓને પોતે મેળવેલા નવીન જ્ઞાનનો લાભ આપવા માટે પોતાની ભાષામાં તે નવા લંકારને ઉતારવાનો ઉપક્રમ કરે છે. ભારત વર્ષમાં વ્યાપારદ્વારા ચેસા કમાઈ પેટપૂજ કરવા અર્થે આવેલા ઈંગ્રેજો આ જ પ્રમાણે આપણા ઇતિહાસની શોધખોળમાં ઉતર્યો હતા.

ઈ. સ. ૧૭૫૭ માં ઇસ્ટ ઇન્ડિયા કંપનીએ, પ્લાસીના પ્રસિદ્ધ યુદ્ધ પછી ધીરે ધીરે ખગાલ ઉપર અધિકાર પ્રાપ્ત થવાનો પ્રારંભ કરી લીધો હતો. ૧૭૬૫ માં તેણે ખગાલ, બીહાર અને ઉડીસાની દીવાની હસ્તગત કરી લીધી. ૧૭૭૨ માં ખગાલના નવાબ પાસેથી અધિકાર પડાવી લીધા; અને પછી તરત, એટલે ૧૭૭૪ માં નવાબને સમૂળંગો પદચ્યુત કરી પોતાનો ગવર્નર-જનરલ નિયુક્ત કરી લીધો. અંગ્રેજોના માટે એ સ્વાભાવિક જ હતું કે તેઓ હવે આ દેશના ધર્મ, સમાજ આદિનું ચોટું ઘણું જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરે. જે દેશની સાથે વ્યાપાર કરીને તેમણે કેરોડો નહિ પણ અબજો રૂપિયા મેળવ્યા હતા, અને હંભરો નહિ પણ લાખો વર્ષ માર્કલ જમીન તેઓ પચાવી પડયા હતા, તે જ દેશની અમૂલ્ય જ્ઞાનસંપત્તિ મેળવવાનો પણ અશસ્ત્ર લોભ કેટલાક વિદ્વાન અંગ્રેજોને થઈ

આવ્યો. જે કેટલાક વિદ્યાપ્રેમી અંગ્રેજો કંપની તરફથી ભારતનું શાસનકાર્ય ચલાવવા માટે નિયુક્ત થતા, ઘણું કરીને, તેઓ જ આ કાર્યમાં અગ્રેસર બનતા હતા. જો કે પાછળથી તો, ક્રોસ અને જર્મનીના વિદ્વાનોએ જ ભારતીય પુરાતત્ત્વમાં મહત્ત્વનાં કામો કર્યાં હતાં અને ભારતીય સાહિત્યની તેમણે જ વધારે સેવા કરી હતી, તો પણ આ કાર્યનો પ્રારંભ કરવાનો પહેલો યશ તો અંગ્રેજોને જ છે. ઐથી પહેલાં સર વીલીયમ જેન્સે આ કાર્યની મંગલમય શરૂઆત કરી હતી. આર્ય સાહિત્યના સંશોધન કાર્ય સાથે સર જેન્સનું નામ સદાને માટે જોડાયેલું રહેશે. સર જેન્સ ભારતીયોના મત પ્રમાણે મ્લેચ્છ હતા; અને તેથી તેમને સંસ્કૃત શીખવવામાં ઘણી અડચણો નડી હતી. ગ્રાહ્યોનાં કટ્ટરપણાને લીધે તેમને પોતાનું અધ્યયન ચાલુ કરવામાં કેવી મુશ્કેલીઓ પડી હતી તેનું સ્મુલ વર્ણન તેમના જીવનવૃત્તાંતમાં આપેલું છે. આખરે તેઓ આ મુશ્કેલીઓમાંથી પાર થયા અને અપેક્ષિત જ્ઞાન મેળવ્યા બાદ તુરંત શકુન્તલા નાટક અને મનુસ્મૃતિનો ઇંગ્રેજ અનુવાદ પ્રકટ કર્યો. તેમના આ અનુવાદો જેઈ ભારતીય સભ્યતાનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવા માટે યૂરોપના વિદ્વાનોમાં ઘણી જાણસા ઉત્પન્ન થઈ. જે પ્રબ્ધ આવી બાતનું ઉત્કૃષ્ટ સાહિત્ય નિર્માણ કરી શકે છે તે પ્રબ્ધને ભૂતકાળ કેટલો લવ્ય હશે તે બલ્લવાની આકાંક્ષા લાંબા લોકોમાં ખૂબ જાગી. સને ૧૭૭૪ ના બન્યુઆરીની ૧૫ મી તારીખે તત્કાલિન ગવર્નર જનરલ બૉરન હેઇસ્ટીંગની સહાયતાથી, એશિયાખંડના ઇતિહાસ, સાહિત્ય, સ્થાપત્ય, ધર્મ, સમાજ, વિજ્ઞાન આદિ બધા વિષયોની શોધખોળ કરવા માટે સર જેન્સે “એશિયાટિક સોસાયટી” નામની સંસ્થાની શુભ સ્થાપના કરી. એ સંસ્થાની સ્થાપના સાથે જ હિંદુસ્તાનના ઇતિહાસના અન્વેષણનો અમર આરંભ થયો એમ આપણે ઉપકાર સાથે સ્પષ્ટપણે કબુલ કરવું જોઈએ. તે પહેલાં આપણું ઐતિહાસિક જ્ઞાન કેટલું અદ્ય અને નિર્મૂલ હતું તે એક લોજ-પ્રબંધ જેવા લોકપ્રિય નિબંધના વાંચનથી જ જણાઈ આવે છે. એ પ્રબંધમાં, કાલિદાસ, બાણ, માઘ આદિ લોજથી અનેક શતાબ્દીઓ પહેલાં અને જુદા જુદા વખતે થઈ ગયેલા કવિઓને પણ લોજના દરબારી કવિઓ તરીકે વર્ણવી બધાને એક જ દરબારમાં લાવી બેસાડ્યા છે; તેમ જ સિંધુરાજ કે જે વાકપતિરાજના મૃત્યુ પછી તેના રાજ્યનો સ્વામી બન્યો હતો, તેને બદલે એ પ્રબંધ લેખકે વાકપતિરાજને સિંધુરાજની ગાદીએ બેસાડી બાપને દીકરો બનાવી મૂક્યો છે. જ્યારે લોજ જેવા પ્રસિદ્ધ રાજાના ઇતિહાસ-લેખકને પણ તેના વંશ અને સમયના વિષયમાં આટલી બધી અજ્ઞાનતા હતી તો પછી સર્વ સાધારણની અજ્ઞાનતાના વિષયમાં તો કહેવું જ શું ? અશોક જેવા પ્રતાપી સમ્રાટની તો લોકોને સામાન્ય કલ્પના પણ ન હતી. જો કે હિંદુસ્તાનના ઇતિહાસનાં ઘણાંક પુસ્તકો અને બીબાં સાધનો સુસલ-માનોના જમાનામાં નબટ થઈ ગયાં હતાં; તો પણ બૌદ્ધકાલીન અનેક સ્તૂપ, સ્તંભ, મંદિર, શુક્ર, જલાશય આદિ સ્થાનો; ધાતુ અને પાવાણુની દેવી-દેવતાઓની મૂર્તિઓ; ખડકો, શિલાઓ અને તામ્રપત્રો ઇત્યાદિ ઉપર કોતરેલા અસંખ્ય લેખો કે જે ઇતિહાસનાં ખરાં અને મુખ્ય શાધનો મનાય છે, હજીએ અસંખ્ય વિદ્યમાન હતાં; તેથી તેમના ઉપરથી જો

ઇતિહાસ તારવી કાઢવાનો પ્રયત્ન કરવામાં આવ્યો હોત તો આજની માફક તે સમયમાં પણ આપણા ઇતિહાસના ઘણાક અંધો રચી શકાયા હોત, પરંતુ તેમના તરફ કોઈની દૃષ્ટિ જ ગઈ ન હતી; અને પાછળથી તો જેમ જેમ દેશમાં અસાજકતા અને અજ્ઞાનતા વધતી ગઈ તેમ તેમ લોકો પ્રાચીન કાળની લિપિ અને તેની સાથે સ્મૃતિને પણ ભૂલતા ગયા અને એ રીતે સાધનોની હયાતી હોવા છતાં પણ તેનો કાંઈ ઉપયોગ થયો નહિ.

ઈ. સ. ૧૩૫૬ માં દિલ્હીના સુલતાન શીરોજશા તુગલકે ટોપરા અને મેરઠથી અશેહના લેખવાળા એ મોટા સ્તંભો ઘણા ઉત્સાહ અને યશસ્વિત સાથે દિલ્હીમાં અણુવ્યા હતા; (જેમાંનો એક શીરોજશાહના કેટરામાં અને બીજો 'કુશ્ક શિકાર' પાસે ઉભો કરેલો છે.) એ સ્તંભો ઉપર ખોદેલા લેખોમાં શું લખેલું છે તે જાણવા માટે એ બાદશાહે ઘણી મહેનત કરી અને ઘણા ઘણા પંડિતોને બોલાવી તે વાંચવા માટે કીધું, પણ કોઈનાથી તે વાંચી શકાયા નહિ, અને તેથી અંતે તે બાદશાહેને બહુ જ નિરાશા થઈ હતી. સાંભળવા પ્રમાણે અકબર બાદશાહેને પણ એ લેખોના મર્મ જાણવાની બહુ જાણસા હતી પરંતુ કોઈપણ મનુષ્ય તે પૂરી કરી શક્યો ન હતો. પ્રાચીન લિપિઓને ઓળખવાનું ભૂતી જવાને લીધે જ્યારે કયાંએ કોઈ આવા જૂનાં શિલાલેખો અથવા તામ્રપત્રો મળી આવતાં ત્યારે લોકો તેમના વિષયમાં વિવિધ કલ્પનાઓ કરતા. કોઈ તેને સિદ્ધિદાયક ચંત્ર કહેતા, કોઈ તેને દેવતાનો લખેલો મંત્ર માનતા, અને કોઈ તેને કયાંએ જમીનમાં દાટેલા ધનની નોંધ સમજતા. આવી અજ્ઞાનતાને લીધે લોકોને એવા શિલાલેખો કે તામ્રપત્રોની કાંઈ પણ કિંમત જણાતી ન હતી. ભાંગેલાં તૂટેલાં જૂના મંદિરો આદિના શિલાલેખોને તોડી ફાડી કયાંક તેમને પગથીઆંઓમાં ચણી દેવામાં આવતા અને કયાંક ભાંગ અને ચટણી વાટવાના કામમાં લેવાતા. અનેક જૂના તામ્રપત્રો તાંબાના ભાવે કંસારાને ત્યાં વેચવામાં આવતાં. કંસારાઓ તેમને ગાળી-ઉકાળી તેમાંથી નવાં વાસણો તૈયાર કરતા. લોકોની એ અજ્ઞાનતા હજી પણ ચાલુ છે. મેં મારા ભ્રમણ દરમ્યાન અનેક શિલાલેખોની આવી આવી દુર્દશાઓ ચંચેલી જોઈ છે. અનેક જૈનમંદિરોમાંના શિલાલેખો ઉપર ચોટાટોલા ચૂનો મેં મારા હાથે ઉખાડેલા છે. ચાર વર્ષ ઉપર મુંબઈમાં એક બ્રાહ્મણ, જે ખંભાતની પાસેના એક ગામડામાં રહેતો હતો તે ત્રણ ચાર તામ્રપત્રો લઈને મારી પાસે આવ્યો હતો. તેની જમીન સંબંધે સરકારમાં કોઈ કેસ ચાલતો હતો, તેથી ચોતાના ઘરમાં પડી રહેલા એ તાંબાપત્રમાં ચોતાની જમીન માટે કંઈ લખેલું હશે એમ ધારી તે વંચાવવા મારી પાસે લાવ્યો હતો. તેમાંના એક પત્રાની વચ્ચેવચ્ચથી એ ઇંચ વ્યાસ જેટલો જોળ દુકડો કાપી લીધેલો હતો. તેથી એ લેખનો કેટલોક મહત્વનો ભાગ જતો રહ્યો હતો. આ સંબંધમાં મેં તેને પૂછ્યું ત્યારે તેણે જવાબ આપ્યો કે થોડાક મહિના ઉપર એક લોટાનું તળીયું બનાવવા માટે એમાંથી એટલો દુકડો કાપી લેવામાં આવ્યો હતો ! આવા તો અનેક દાખલાઓ હજીએ બને છે. આવી જ દુર્દશા આપણા જુના ગ્રંથોની થઈ છે. સુગોના સુગો સુધી સારસંભાળ લીધા વગર અંધારી કોટડીઓમાં પડી રહેલા હર્ન્ડે હસ્તલેખો ઉદ્દરડાઓના ઉદ્દરમાં ગરક થયા છે, અને છાપરામાંથી

પડતા પાણીના લેજથી સડી-ગળી માટીમાં મળ્યા છે. અનેક ગુરૂઓના નાલાયક ચેલા-ઓના હાથે પણ આપણા સાહિત્યની ઓછી વિટંબણા નથી થઈ. એક દાખલો આપું. ઇંદોરમાં એક વિદ્વાન ગોરજી હતો તેણે કોઈના બે છોકરાઓને ચેલા બનાવવા માટે પાળ્યાયોધ્યા હતા. એ ગોરજી મરી ગયા પછી પાછળથી એ છોકરાઓ તેનો જે વિશાળ પુસ્તકલંકાર હતો તેમાંથી રોજ ક્ષેત્રે તેમ હળવર બે હળવર પાનાંઓ ફાડી હલવાઈને ત્યાં પડીકાં બાંધવા માટે આપી આવતા અને બદલામાં પાશેર ગરમાગરમ જલેથી લઈ આવી સવારમાં નાસ્તો પાણી કરી મળ માણતા. મને જ્યારે એની ખબર પડી ત્યારે તે હલવાઈ પાસે જઈ બધાં પાનાં તપાસ્યાં તેમાંથી પાંચસો વર્ષ જેટલાં જૂનાં લખેલાં બે ત્રણ જૈનસૂત્રો મને અખંડ મળી આવ્યાં હતાં. પાટણના જૈનલંકારોમાં સિદ્ધરાજ, કુમારપાળ અને તેનાથી થે પહેલાંનાં લખેલાં તાઠપત્રોનો તંબાખૂના પાનના ભૂકાની માફક થયેલો ભૂકો મેં મારી આ નરી આંખે જોયો છે. આવી રીતે આપણે આપણી અજ્ઞાનતાને લીધે આપણા ઇતિહાસનાં સાધનો નષ્ટ કર્યાં છે એટલું જ નહિ પણ પરસ્પરની મતાન્યતા અને સાંપ્રદાયિક અસહિષ્ણુતાના વિકારને વશ થઈને પણ આપણે આપણા સાહિત્યને ઘણી રીતે ખંડિત અને દૂષિત કર્યું છે; શૈવોએ વૈષ્ણવોના સાહિત્યનું નિકંદન કર્યું છે, વૈષ્ણવોએ જૈનોના સ્થાપત્યને દૂષિત કર્યું છે; દિગંબરોએ શ્વેતામ્બરોના લેખોને ખંડિત કર્યાં છે તથા બુદ્ધોએ તપાઓની નોંધો ખગાડી છે. એમ પરસ્પર એક બીજાનું એકબીજાએ ઘણું જ ખોદ્યું છે. શાધખોજના વૃત્તાન્તોમાં આવાં અનેક ઉદાહરણો નોંધાયલાં મળી આવે છે. છેવટે મુસલમાન લાઈ-ઓએ હિન્દુઓનાં સ્વર્ગીય ભુવનોને તોડી ફાડી ખેદાન મેદાન કર્યો છે, અને તેમનાંય પવિત્ર ધામોને આખરે કાળે જમીનદોસ્ત કર્યો છે. આવી બાતની સંકટની પરંપરાઓમાંથી જે બચી રહેલા હતા તેમને સુરક્ષિત રાખવા માટે, જે અર્ધશ્રુત દશામાં હોય તેની પાસેથી કાંઈક છેવટનું જાણી લેવા માટે અને તેમ કરી ભારતનો ભૂતકાળ કે જે વિસ્મૃતિ અને અજ્ઞાનના પડ નીચે સજ્જડ દળાઈ રહ્યો હતો તેનો ઉદ્ધાર કરવા માટે ઉપર જણાવેલી એશિયાટિક સોસાયટીની સ્થાપના થઈ હતી. એ સોસાયટીની સ્થાપનાના દિવસથી હિન્દુસ્તાનના ઐતિહાસિક અજ્ઞાનાન્ધકારનો ધીરે ધીરે લોપ થવા લાગ્યો. અનેક અંગ્રેજોએ સંસ્થાના ઉદ્દેશને પૂર્ણ કરવા માટે જુદા જુદા વિષયોનું અધ્યયન કરવા લાગ્યા અને તે તે વિષયોના લેખો લખવા લાગ્યા. એ લેખોને પ્રગટ કરવા માટે ‘એશિયાટિક રિસર્ચિંગ’ નામની એક ગ્રંથમાળા ચાલુ કરવામાં આવી. સને ૧૭૮૮ માં એ માળાનો પ્રથમ ભાગ પ્રકટ થયો. ૧૭૯૭ સુધીમાં એના પાંચ ભાગો પ્રકાશિત થયા. ૧૭૯૮ માં તેનું એક નવીન સંસ્કરણ ઇંગ્લેંડમાં ચોરીથી જ છપાવી દેવામાં આવ્યું. ત્યાં એ ભાગોની એટલી બધી માગણી થઈ કે ૫-૬ વર્ષમાં જ તેની બે આવૃત્તિઓ પ્રકટ થઈ ગઈ, અને એમ. એ. લૅબામ નામના એક કેન્દ્ર વિદ્વાને, ‘રિસર્ચિંગ એશિયાટિક્સ’ ના નામે તેનો કેન્દ્ર અનુવાદ પણ પ્રકટ કરી દીધો. સોસાયટીની એ ગ્રંથમાળામાં બીજા વિદ્વાનોની સાથે સર વીલીયમ જેન્સે પણ હિન્દુસ્તાનના ઇતિહાસના વિષયમાં અનેક ઉપયોગી લેખો લખ્યા.

સૌથી પહેલાં તેમણે જ પોતાના એક લેખમાં એ વાત બહાર કરી હતી કે મેગાસ્થનીસે પણ વેલો સાંડોડોટસ અને ચંદ્રગુપ્ત મૌર્ય એ બંને એક જ વ્યક્તિ છે. પાટલિપુત્રનું જ અપભ્રંષ રૂપ પાલીબોથ્રા છે અને તે આધુનિક પટના જ છે. કારણ કે પટનાની પાસે વહેતા શોણનદને હિરણ્યબાહુ કહેવામાં આવે છે અને મેગાસ્થનીસનું “ચેરાનોવાચે” એ જ હિરણ્યબાહુનું અપભ્રંષ નામ છે. આ રીતે ચંદ્રગુપ્ત મૌર્યનો સમય સૌથી પહેલાં જોન્સ સાહેબે જ નિશ્ચિત કીધો હતો.

જે અંગ્રેજ સૌથી પહેલાં સંસ્કૃત ભાષા શીખ્યો હતો તેનું નામ ચાર્લ્સ વિલ્કીન્સ હતું. તેણે જ પ્રથમ દેવનાગરી અને બંગાળી ટાઈપો બનાવ્યા. બદલાં પાસેના સ્તંભ ઉપરનો લેખ સૌથી પ્રથમ તેણે જ ખોળી કાઢ્યો હતો. એ સિવાય બીજાં પણ કેટલાંક તામ્રપત્રો અને શિલાલેખો ઉપર એણે એશિયાટીક રીસર્ચસોના પ્રારંભના ભાગોમાં કેટલીક નોંધો લખી હતી. ભગવદ્ગીતાનું ‘પહેલ વહેલું’ ઇંગ્રેજી ભાષાન્તર પણ એ જ અંગ્રેજે કર્યું હતું.

સને ૧૭૯૪ માં સર જોન્સનું મરણ થયું. તેમના પછી તેમના સ્થાન ઉપર હેનરી કોલબ્રુકની સ્થાપના થઈ. કોલબ્રુક અનેક વિષયોમાં પ્રવીણ હતા. તેમણે સંસ્કૃત સાહિત્યનું ઘણું પરિશીલન કર્યું. મૃત્યુના સમયે સર જોન્સ પ્રસિદ્ધ પંડિત જગન્નાથ દ્વારા સંપાદિત “હિન્દુ અને મુસલમાનોના કાયદાઓનો સાર” એ નામક સંસ્કૃત ગ્રંથનો અનુવાદ કરતા હતા. એ અધુરો અનુવાદને પૂર્ણ કરવાનું કામ કોલબ્રુક સાહેબને સોંપવામાં આવ્યું. તેમણે કેટલાક સંસ્કૃત પંડિતોની સહાયતાથી સને ૧૭૯૭ માં એ કામ પૂર્ણ કર્યું. આ પછી તેમણે ‘હિન્દુઓના ધાર્મિક રીતરીવાજો’, ‘ભારતીય માપનું પરિમાણ’, ‘ભારતીય વર્ણવ્યવસ્થાની ઉત્પત્તિ’, ‘ભારતવાસીઓની બંતો’, આદિ વિષયો ઉપર ખંભીર નિબંધો લખ્યા. એ પછી ૧૮૦૧ માં ‘સંસ્કૃત અને પ્રાકૃત ભાષા’, ‘સંસ્કૃત અને પ્રાકૃત છન્દઃશાસ્ત્ર’ વિગેરે લેખો લખ્યા. એ જ વર્ષમાં દિલ્હીના લોહસ્તંભ ઉપર કોતરેલી વિશળદેવની સંસ્કૃત પ્રશસ્તિનું અંગ્રેજી ભાષાન્તર પ્રકાશિત કર્યું. સને ૧૮૦૭ માં તેઓ એશિયાટિક સોસાયટીના સભાપતિ બન્યા. એ જ વર્ષમાં તેમણે હિન્દુ જ્યોતિષ એટલે ખગોળ વિદ્યા ઉપર એક ગ્રંથ લખ્યો; જૈનધર્મ ઉપર એક વિસ્તૃત નિબંધ પ્રકટ કર્યો. કોલબ્રુકે વેદ, સાંખ્ય, ન્યાય, વૈશેષિક, વેદાન્ત, બૌદ્ધ આદિ ભારતનાં યથાં દર્શનો ઉપર મોટા મોટા નિબંધો લખ્યા હતા. તે સિવાય કૃષિ, વાણિજ્ય, સમાજવ્યવસ્થા, સાધારણ સાહિત્ય, કાનૂન, ધર્મ, ગણિત, જ્યોતિષ, વ્યાકરણ આદિ યથા વિષયો ઉપર તેમણે ખૂબ વિસ્તૃત પ્રબંધો લખ્યા હતા. તેમના એ લેખો-નિબંધો-પ્રબંધો આજે પણ તેટલા જ માનનીય વંચાય છે. વેબર, મુલ્હર અને મેક્સ મૂલર આદિ વિદ્વાનોએ નિશ્ચિત કરેલા કેટલાક સિદ્ધાન્તો ભ્રમપૂર્ણ સિદ્ધ થઈ ગયા છે પરંતુ કોલબ્રુકે બહાર કરેલા વિચારો ઘણા જ યોગ્ય તેમ થવા પામ્યા છે. એ એક સૌભાગ્યની જ વાત હતી કે આપણા સાહિત્યને શરૂઆતમાં જ એક એવો ઉપાસક મળી આવ્યો કે જેણે યુરોપની આગળ આપણા પ્રાચીન

તત્ત્વજ્ઞાન અને સાહિત્યને નિષ્પક્ષપાતપૂર્વક મૂળ સ્વરૂપમાં ઉપસ્થિત કર્યું અને જેલે હુનીયાતું ધ્યાન આપણી પ્રાચીન સંસ્કૃતિ તરફ સહાનુભૂતિપૂર્વક આકર્ષ્યું. જે તેલે આવે અપૂર્વ પરિશ્રમ ન કર્યો હોત તો આજે યુરોપમાં સંસ્કૃતનો આટલો પ્રચાર ન થયો હોત. કોલચુક ભારત છોડી જ્યારે ઇંગ્લાંડમાં ગયા ત્યારે ત્યાં પણ તેમણે રાંચલ એશિયાટિક સોસાયટીની સ્થાપના કરી અનેક વિદ્વાનોને સંસ્કૃતનું અધ્યયન કરવા માટે ઉત્સાહિત કર્યાં, અને આંખે અપંગ થતા સુધી બીજા અનેક ઉપાયો દ્વારા સંસ્કૃત સાહિત્યની સતત સેવા કરતા હતા.

જ્યારે એક તરફ કોલચુક સાહેબ સંસ્કૃત સાહિત્યના અધ્યયનમાં ગરક થયા હતા ત્યારે બીજી તરફ બીજા કેટલાક તેમના જાતલાભાઈઓ હિંદુસ્તાનના જુદા જુદા પ્રાંતોના પુરાતત્ત્વની ગવેષણા કરવામાં મગ્ની રહ્યા હતા. સને ૧૮૦૦ માં માર્કિવસ વેલસ્લિ સાહેબે માઇસોર પ્રાંતના કૃષિ આદિ વિભાગોની તપાસ કરવા માટે ડૉ. બુકનનની નેમણુંક કરી હતી. તેમણે પોતાના કૃષિવિષયક કાર્યની સાથે સાથે તે પ્રાંતની જુની પુરાણી બાબતોનું કેટલુંક જ્ઞાન મેળવ્યું. તેમના કાર્યથી સંતુષ્ટ થઈને કંપનીએ તેમને ૧૮૦૭ માં બંગાળ પ્રાંતના એક વિશિષ્ટ પદ પર યોજ્યા. સાત વર્ષ પર્થેત તેમણે બિહાર, શાહાબાદ, ભાગલપુર, ગોરખપુર, દિનાજપુર, પુરનિયા, રંગપુર અને આસામમાં કામ કર્યું. ડૉ. કે તેમને પ્રાચીન સ્થાનો વિગેરેની શોધખોળનું કામ સોંપવામાં આવ્યું ન હતું તો પણ તેમણે ઇતિહાસ અને પુરાતત્ત્વની ખૂબ ગવેષણા કરી. તેમની આ ગવેષણાથી ઘણો લાભ થયો. અનેક અસાત ઐતિહાસિક બાબતોની માહિતી મળી. આમ પૂર્વીય ભારતની પ્રાચીન વસ્તુઓની શોધખોળ સૌથી પ્રથમ એમણે જ કરી.

પાશ્ચિમ ભારતની પ્રસિદ્ધ કેનેરી શુક્રાઓનું વર્ણન સૌથી પ્રથમ સાલ્ટ સાહેબે અને હાથીશુક્રાઓનું વર્ણન રસ્કિન સાહેબે લખ્યું. આ બંને વર્ણનો બોમ્બે ઇન્ડિકેશન નામના પુસ્તકના પહેલા ભાગમાં પ્રકાશિત થયાં. એ જ પુસ્તકના ત્રીજા ભાગમાં સાઈકસ સાહેબે બીજાપુર (દક્ષિણ) નું વર્ણન લોકોની આગળ મૂક્યું.

છેલ્લું દક્ષિણ હિંદુસ્તાનનું વર્ણન ટોમસ ડેનિયલ નામના સાહેબે મેળવવું શરૂ કર્યું. તે જ વખતે દક્ષિણમાં કર્નેલ મેકેન્ઝીએ પણ પુરાતત્ત્વ-વિદ્યાના અભ્યાસનો પ્રારંભ કરીધો હતો. તે સર્વે રિપાર્ટમેન્ટમાં નોકર હતા. તેમણે અનેક પ્રાચીન ગ્રંથો અને શિલાલેખોનો સંગ્રહ કર્યો હતો. મેકેન્ઝી સાહેબ કેવળ સંગ્રહકાર હતા. તેઓ ગ્રંથો અને લેખોને વાંચી શક્યા ન હતા. પરંતુ તેમના પછીના શોધકોને તેમના આ સંગ્રહથી ઘણો લાભ થયો હતો. દક્ષિણના કેટલાક અનતિ-પ્રાચીન શિલાલેખોનાં ભાષાન્તરો ડૉ. મિલે કરીધાં હતાં. આવી જ રીતે રાજપુતાના અને મધ્ય ભારતના કેટલાક ભાગોનું જ્ઞાન કર્નેલ ટૉડે મેળવ્યું અને એ પ્રદેશોમાંની અનેક જુની પુરાણી વસ્તુઓની શોધખોળ તેમણે કરી.

આ પ્રમાણે જુદા જુદા વિદ્વાનો દ્વારા ભારતના લિન્ન લિન્ન પ્રાંતોના વિષયમાં ઘણુંક જ્ઞાન મેળવવામાં આવ્યું ને ઘણીક વસ્તુઓ બાહ્યમાં આવી; પરંતુ પ્રાચીન લિપિ-

નું સ્પષ્ટ જ્ઞાન હજી કોઈને મળેલું ન હોવાથી ભારતનાં પ્રાચીન ઐતિહાસિક સાધનોના ભંડાર ઉપર હજી તેવો ને તેવો જ અધકારનો પડદો પડેલો હતો. જુદા જુદા વિદ્વાનોએ અનેક પુરાતત્ત્વ સિક્કાઓ અને શિલાલેખોનો ઘણો સારો સંગ્રહ મેળવી લીધો હતો ખરો, પણ લિપિજ્ઞાનના અભાવે તેમનો ત્યાં સુધી કાંઈ ઉપયોગ થયો ન હતો.

ભારતવર્ષના પ્રાચીન ઇતિહાસના પ્રથમ અધ્યાયનો ખરો પ્રારંભ ઈ. સ. ૧૮૩૭ થી થાય છે. એ વર્ષમાં એક નવીન નક્ષત્રનો ઉદય થાય છે કે જે ભારતીય પુરાતત્ત્વ વિદ્યા ઉપર પડેલા પડદાને ફર ખસેડે છે. એશિયાટિક સોસાયટીની સ્થાપનાના દિવસથી તે ૧૮૩૪ સુધીમાં પુરાતત્ત્વ સંબંધી ખરે કામ બહુ જ ઓછું થયું હતું. ત્યાં સુધી વિશેષ કરીને જુના ગ્રંથોના અનુવાદો જ થતા રહ્યા હતા. શિલાલેખો કે જે ભારતના ઇતિહાસના એક માત્ર ખરો સાધન તરીકે ગણાય છે તેમના સંબંધમાં ઘણું જ ઓછું કાર્ય થયું હતું. કારણ એ હતું કે પ્રાચીન લિપિનું સંપૂર્ણ જ્ઞાન મેળવવું અઘણું બાકી હતું.

મેં ઉપર એક ઠેકાણે જણાવ્યું છે તેમ પહેલ વહેલાં સંસ્કૃત ભાષા શીખનાર અંગ્રેજ ચાર્લ્સ વિલ્કીન્સ હતો, અને સૌથી પ્રથમ શિલાલેખ તરફ ધ્યાન આપનાર પણ તે જ હતો. તેણે ઈ. સ. ૧૭૮૫ માં દીનાજપુર જિલ્લાના બદલ નામક સ્થાન પાસે મળેલા એક સ્તંભ ઉપરનો લેખ વાંચ્યો હતો જે બંગાળના રાજા નારાયણ પાલના સમયનો લખેલો હતો. તે જ વર્ષમાં એક હિંદુસ્થાની પંડિત નામે રાધાકાન્ત શર્માએ ટોમરા-વાળા દિલ્હીના અશોક સ્તંભ ઉપર ખોદેલા અજમેરના ચૌહાણ રાજા અનલકેવના પુત્ર વીસલકેવના ત્રણ લેખો વાંચ્યા જેમાંના એકની મિતિ 'સવત ૧૨૨૦ વૈશાખ સુદી ૫' છે. આ લેખોની લિપિ બહુ જુની ન હોવાથી સરલતાની સાથે તે વાંચી શકાયા હતા. પરંતુ તે જ વર્ષમાં જે. એચ. હેરિંગ્ટને જુલગયા પાસે આવેલી નાગાર્જુની અને બારાબાર શુક્રાઓમાં, ઉપરના લેખો કરતાં વધારે જુના એવા મોખરી વંશના રાજા અનંતવર્માના ત્રણ લેખો ખોળી કાઢ્યા હતાં કે જેમની લિપિ ગુપ્તકાલીન લિપિથી ઘણે અંશે મળતી હોવાથી તેમનું વાચન કઠિણ થઈ પડ્યું હતું. પણ ચાર્લ્સ વિલ્કીન્સે ચાર વર્ષ સુધી સતત પરિશ્રમ લઈ તે ત્રણ લેખોને વાંચી લીધા અને તેમ કરી તેણે ગુપ્તલિપિની લગભગ અડધી વર્ણમાળાનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી લીધું.

ગુપ્તલિપિ એટલે શું એની તમને ખબર નહિ હોય તેથી તેનો સર્જન જુલાસો અહિં કરી દઉં. હાલમાં જે લિપિને આપણે દેવનાગરી (અથવા બાળબોધ)ના નામે ઓળખીએ છીએ, તે સાધારણ રીતે ત્રણ અવસ્થાઓમાંથી પસાર થયેલી છે. આ ચાલુ આકૃતિ પૂર્વે તેની જે આકૃતિ હતી તેને કુટિલ લિપિના નામે ઓળખવામાં આવે છે. એ આકૃતિનો સમય સાધારણ સમજવાની ખાતર ઈ. સ. ના ૬ હા સેકાથી તે ૧૦ મા સેકા સુધીનો માની લેવો જોઈએ. તેની પહેલાંની આકૃતિને ગુપ્તલિપિના નામે ઓળખવામાં આવે છે, જેનો સામાન્ય સમય ગુપ્તવંશનો રાજવંશકાળ ગણાય છે. તે પહેલાંની આકૃતિવાળી લિપિ બ્રાહ્મીલિપિ કહેવાય છે. અશોકના લેખો આ જ લિપિમાં લખાયેલા છે. એનો સમય ઈ. સ. પૂ. ૫૦૦ થી ઈ. સ. ૩૫૦ સુધીનો મનાય છે.

સન ૧૮૧૮ થી ૧૮૨૩ લગી કર્નલ જેમ્સ ટાંડે રાજપુતાનાના ઇતિહાસની શોધખોળ કરતાં રાજપુતાના અને કાઠિયાવાડમાંથી કેટલાક પ્રાચીન લેખોનો પત્તો મેળવ્યો હતો. જેમાંના ૭ મી શતાબ્દીથી લઈ ૧૫ મી શતાબ્દી સુધીના અનેક લેખો તે કર્નલના ગુરૂ યતિ જ્ઞાનચંદ્રજીએ વાંચ્યા હતા, અને જેનો સારાંશ યા અનુવાદ ઉક્ત સાહેબે પોતાના “ રાજસ્થાન ” નામક પ્રસિદ્ધ ઇતિહાસમાં આપ્યો છે,

ઈ. સ. ૧૮૨૮ માં બી. જી. બેળીંગ્ટને મામલ્લપુરના કેટલાક સંસ્કૃત અને તામીલ લેખો વાંચી તેમની વર્ણમાલાઓ તૈયાર કરી. તેવી જ રીતે વાલ્ટર હલિયટે પ્રાચીન કાનડી અક્ષરોત્તર જ્ઞાન મેળવી તેમની વિસ્તૃત વર્ણમાળાઓ પ્રકાશિત કરી.

ઈ. સ. ૧૮૩૪ માં કેપ્ટન ટ્રાયરે અચાગના અરોહસ્તંભ ઉપર ઓઢેલા શુભવંશી રાજા સમુદ્રશુભતા લેખનો કેટલોક ભાગ વાંચ્યો, અને પાછળથી તે જ વર્ષમાં ડૉ. મિલે તે લેખને સંપૂર્ણ વાંચી ૧૮૩૭ માં લિટારીના સ્તંભ ઉપરનો સ્કંદશુભતનો લેખ પણ ઉઢેલી લીધો.

૧૮૩૫ માં ડબલ્યુ. એચ. વૉથને વલ્લભીનાં કેટલાંક દાનપત્રો ઉઢેલ્યાં:

૧૮૩૭-૩૮ માં જેમ્સ પ્રિન્સેપે દીક્ષી, કમાઉ અને એરજુના સ્તંભો ઉપરના, સાંચી અને અમરાવતીના સ્તૂપો ઉપરના, તેમ જ ગિરનારના ખડક ઉપરના શુભલિપિના બધા લેખો વાંચી કાઢ્યા.

સાંચી સ્તૂપના ચંદ્રશુભતાના મહર્વના લેખ સંબંધે જે પ્રિન્સેપે ૧૮૩૪ માં લખ્યું હતું કે ‘ પુરાતત્ત્વના અભ્યાસીઓ હજી સુધી સાંચીના શિલાલેખોમાં શું લખ્યું છે એ કંઈ પણ બાળી શક્યા નથી. ’ તે જ પ્રિન્સેપે ૧૮૩૭ માં એ બધા લેખોને યથાર્થ અનુવાદ સાથે પ્રકટ કરવાની સંપૂર્ણ સક્ષમતા મેળવી શક્યા હતા.

આ રીતે કેપ્ટન ટ્રાયર, ડૉ. મિલ અને જેમ્સ પ્રિન્સેપના સતત પરિશ્રમથી ચાર્લ્સ વિલ્કીન્સેન્સે શુભલિપિની અપૂર્ણ વર્ણમાળા તૈયાર કરી હતી તે સંપૂર્ણ થઈ અને તેથી શુભવંશી રાજાઓના સમય સુધીના શિલાલેખો, તામ્રપત્રો, શિક્ષાઓ વિગેરે વાંચવામાં પૂરેપૂરી સક્ષમતા અને સરળતા મળી.

હવે બાંધી લિપિઓની જે આદિજનની ગ્રાહી લિપિ તેનો વારો આવ્યો. તે લિપિ શુભ લિપિથી પ્રાચીન હોવાના સબબે તેનું એકદમ ઉકેલવું કઠિણ હતું. એ લિપિનાં દર્શન તો ઈ. સ. ૧૭૬૫ માં જ શોધકોને થઈ ગયાં હતાં. એ સાક્ષમાં સર ચાર્લ્સ મેલેટે ઇલોરાની શુક્રાઓમાંના કેટલાક નાના નાના ગ્રાહી લેખોની નકલો સર વિલિયમ જેન્સ પર મોકલી હતી. તેમણે એ નકલોને મેજર વિલ્ફ્રાઈડ કે જે તે વખતે કાશીમાં હતો તેના તરફ, ત્યાંના કોઈ પંડિત મારફત, ઉકેલવા માટે રવાના કરી. પ્રથમ તો ત્યાં તે ઉકેલનાર કોઈ મળ્યો નહિ પણ પાછળથી એક ચાલાક ગ્રાહ્યણે કેટલીક પ્રાચીન વર્ણમાળાઓનું એક કૃત્રિમ પુસ્તક તે બિચારા જ્ઞાસુ મેજરને બતાવી તે લેખોને પોતાની ઇચ્છા પ્રમાણે ખોટી રીતે વાંચી બતાવ્યા અને બદલામાં ખૂબ દક્ષિણા મેળવી. વિલ્ફ્રાઈડ સાહેબે આવી

અને શિલાઓ ઉપર ટુંકા ટુંકા અને સહેલાઈથી ન સમજાય તેવાં વાક્યો, પહેલેથી જ સંકેત કરી રાખેલી લિપિમાં લખી, પોતાનો હેતુ પાર પાડતા રહેતા હતા. અંગ્રેજો પોતાને બહુ જ બુદ્ધિમાન અને ચાલાક માને છે અને હસતે મુખે તેઓ દુનીયાના બીજા લોખાં લોકોને ઠગવાની પૂરી કળા બતાવે છે, પરંતુ તેઓ પણ ભારતવર્ષની સ્વર્ગપુરી ગણાતી કાશીના “વૃદ્ધ શુર” ની ઝાળીમાં એક વખત આવી રીતે મૂકાઈ જતા હતા. અસ્તુ.

એશિયાટિક સોસાયટીની પાસે દિલ્લી અને અલાહાબાદના સ્તંભો તથા ખંડગિરિના ખડકો ઉપરના લેખોની નકલો એકઠી થયેલી હતી, પરંતુ વિદ્વાંડ સહેજની ‘શોધ’ નિષ્ફળ જવાથી કેટલાંએ વર્ષો સુધી તે લેખોને ઉકેલવાનો પ્રયત્ન થયો નહિ. એ લેખોના મર્મને બાજુવાની ઉત્કટ જિજ્ઞાસા રહેવાને લીધે મી. જેમ્સ પ્રિંસેપે ઇ. સ. ૧૮૩૪-૩૫ માં અલાહાબાદ, રધિઆ અને મથિઆના સ્તંભો ઉપરના લેખોની છાપો મંગાવી, અને તેમને દિલ્લીના લેખની સાથે મુદ્રી-એ બાજુવાની કોશીશ કીધી કે તેમાં કોઈ શબ્દ એક સરખો છે કે નહિ. આ પ્રમાણે ચારે લેખોને પાસે પાસે મુકવાથી તુરત તેમને જણાયું કે એ ચારે લેખો એક જ ભાતના છે. આથી પ્રિંસેપનો ઉત્સાહ વધ્યો અને પોતાની જિજ્ઞાસા પૂર્ણ થવાની તેમને આશા બંધાઈ. પછી તેમણે અલાહાબાદ-સ્તંભ ઉપરના લેખના ભિન્ન ભિન્ન આકૃતિવાળા અક્ષરો જુદા તારવ્યા, જેથી તેમને સમજાયું કે શુભ લિપિના અક્ષરોની માફક તેના પણ કેટલાક અક્ષરો સાથે સ્વરોની માત્રાઓનાં જુદાં જુદાં પાંચ ચિન્હો લાગેલાં છે. પછી તેમણે એ પાંચ ચિન્હોને એકત્ર કરી પ્રકટ કર્યાં. આથી કેટલાક વિદ્વાનોને એ અક્ષરોની બાળતમાં સુનાની હોવાનો જે ભ્રમ હતો તે દૂર થઈ ગયો.

અશોકના લેખોની લિપિ સાધારણ રીતે જ્ઞેનારને ઇંગ્રેજ અથવા ગ્રીક લિપિની જાંતિ ઉત્પન્ન કરી શકે છે. ટામ કોરિએટ નામના સુસાદરે અશોકના દિલ્લીવાળા સ્તંભના લેખને જોઈ એલ્. વ્હીટરને એક પત્રમાં લખ્યું હતું કે “હું આ દેશના દિલ્લી નામના શહેરમાં આવ્યો છું” કે જ્યાં આગળ મહાન્ અલેક્ઝાંડરે હિન્દુસ્થાનના રાજા પોરસને હરાવ્યો હતો, અને પોતાના વિજયની સ્મૃતિમાં તેણે એક મોટો સ્તંભ ઉભો કરાવ્યો હતો જે અદ્યપિ અહિં મૌજુદ છે.” પાદરી એડવર્ડ ટેરીએ લખ્યું છે કે— “ટામ કોરિએટ મને કીધું હતું કે તેણે દિલ્લીમાં ગ્રીક લેખવાળો એક સ્તંભ જોયો છે જે મહાન્ અલેક્ઝાંડરની સ્મૃતિ માટે લાંબા સ્થાપિત કરવામાં આવ્યો હતો.” આવી રીતે બીજા પણ લેખકોએ એ લેખને ગ્રીક લેખ માન્યો હતો.

ઉક્ત રીતે સ્વરોનાં ચિન્હોને ઓળખી લીધા પછી મી. પ્રિંસેપે અક્ષરોને ઓળખવાનો ઉદ્યોગ શરૂ કર્યો. તેમણે પ્રથમ પ્રત્યેક અક્ષરને શુદ્ધ લિપિના અક્ષર સાથે મેળવવાનો અને જે તેની સાથે બરાબર મળતો થાય તેને ક્રમથી વર્ણમાળામાં દાખલ કરવાનો ક્રમ લીધો. આ રીતે ઘણાક અક્ષરો તેમની બાજુમાં આવી ગયા.

લેખો તથા બાક્ટ્રિઅન, ગ્રીક, શક, ક્ષત્રપ વિગેરે રાજવંશોના કેટલાક શિક્ષાઓ ઉપરના લેખો આ લિપિમાં કેતરેલા મળી આવે છે. તેથી ભરતીય પુરાતત્ત્વજ્ઞોને આ લિપિના જ્ઞાનની પણ ખાસ આવશ્યકતા હતી.

કર્નલ જેમ્સ ટોડે બાક્ટ્રિઅન, ગ્રીક, શક, પાર્થિઅન અને કુશાનવંશી રાજ્યોના શિક્ષાઓનો મોટો સંગ્રહ કર્યો હતો, જેની એક બાબુએ ગ્રીક અને બીજી બાબુએ ખરાઈ અક્ષરોના લેખો કેતરેલા હતા. જનરલ વેંટુરાએ સને ૧૮૩૦ માં માનિકિઆલ સ્તૂપ ખોદાવ્યો તો તેમાંથી ખરાઈ લિપિના કેટલાએક શિક્ષાઓ અને બે લેખો મળી આવ્યા. આ શિવાય સર અલેક્ઝેંડર બર્નેસ આદિ પ્રાચીન શોધકોએ પણ એવા અનેક શિક્ષાઓ એકત્ર કર્યા હતા જેની એક બાબુના ગ્રીક અક્ષરો તો વાંચી શકાતા હતા પરંતુ બીજી બાબુના ખરાઈ અક્ષરોને ઉકેલવાનું કાંઈ પણ સાધન ન હતું. એ અક્ષરો માટે લિન્ન લિન્ન કલ્પનાઓ થવા લાગી હતી. સને ૧૮૨૪ માં કર્નલ ટોડે ઇન્ડિસેસના શિક્ષા ઉપરના આ અક્ષરોને ‘સસેનીઅન્’ અક્ષરો બદલે કર્યા. ૧૮૩૩ માં અપોલોડોટ-સૂના શિક્ષા ઉપરના આ જ અક્ષરોને પ્રિંસેપે “પહલવી” અક્ષરો માન્યા. એક બીજી શિક્ષા ઉપરની આજ લિપિને તથા માનિકિઆલ સ્તૂપના લેખની લિપિને પણ પાલી એટલે બ્રાહ્મી લિપિ માની, અને એની આકૃતિ જરા વાંદ્રી હોવાથી એ અનુમાન કર્યું કે છાપેલી અને ચોપડામાં લખેલી ગુજરાતી લિપિમાં જેમ અંતર હોય છે તેમ જ અરોહની દિશી આદિ સ્તંભોવાળી અને આ લિપિમાં અંતર છે. પરંતુ પાછળથી સ્વયં પ્રિન્સેપને જ આ અનુમાન અનુચિત લાગવા માંડ્યું. ૧૮૩૪ માં કેપ્ટન કોર્ટને એક સ્તૂપમાંથી આ જ લિપિનો લેખ મળ્યો જેને જોઈને પ્રિંસેપે ફરી આ અક્ષરોને “પહલવી” અક્ષરો કહ્યા. પરંતુ એ જ વર્ષમાં શોધક મી. મેસનને કાબૂલની ઘાટીમાં શોધખોળ કરતાં અનેક એવા શિક્ષાઓ મળી આવ્યા જેના ઉપર ખરાઈ અને ગ્રીક બંને લિપિમાં રાજ્યોનાં નામો લખેલાં હતાં. મેસન સાહેબે જ સૌથી પ્રથમ મિનેડો, અપોલોડોટો, અરમાઈઓ, બાસિ-લિઓ અને સેટિરો વગેરે નામો વાંચ્યાં. પરંતુ આ તેમની માત્ર કલ્પના હતી. તેમણે આ નામો પ્રિંસેપ સાહેબને લખી મોકલ્યાં. આ કલ્પનાને સત્ય કરવાનો યશ પ્રિન્સેપ સાહેબના ભાગ્યમાં જ હતો. તેમણે મેસન સાહેબના સંકેતો અનુસાર શિક્ષાઓ વાંચવા માંડ્યા તો તેમાંથી ખાર રાજ્યોનાં તથા છ પહ્લવીઓનાં નામો તેમને મળી આવ્યાં.

આવી રીતે ખરાઈ લિપિના ઘણાક અક્ષરોનો યોગ થયો, અને સાથે એ પણ જ્ઞાન થયું કે આ લિપિ ડાબી બાબુથી જમણી બાબુએ વંચાય છે. તેથી એ પણ નિશ્ચય થયો કે આ લિપિ સેમેટિક વર્ગની છે, પણ તે સાથે તેની ભાષા કે જે વાસ્તવમાં બ્રાહ્મી લેખોની ભાષા માફક પ્રાકૃત જ હતી, તેને પહલવી માની લેવાની ભૂલ કરવામાં આવી. આ પ્રકારે ગ્રીક લેખોની સહાયતાથી ખરાઈ લિપિના ઘણાક અક્ષરો તો જણાઈ ગયા પણ ભાષાના વિષયમાં બ્રાન્તિ થવાથી, પહલવીના નિયમો તરફ ધ્યાન રાખી લેખોને વાંચવાનો ઉદ્દેશ કરવાથી અક્ષરોને યોગબધની અશુદ્ધતા આવવા લાગી, જેથી થોડાક સમય પર્થત તેવું

કાર્ય અટકી પડ્યું. પરંતુ ૧૮૩૮ માં બે બ્રાહ્મીઅન ગ્રીક શિક્ષકો ઉપર પાલી લેખો બેતાં જ બીજા શિક્ષકોની ભાષા પણ તે જ હશે એમ માની તેના નિયમાનુસાર તે લેખો વાંચવાથી પ્રિંસેપનું કામ આગળ ચાલ્યું; અને એકંદર ૧૭ અક્ષરો તેમણે તેના ઓળી કાઢ્યા. પ્રિંસેપની માફક મી. નૉર્સે પણ આ વિષયમાં કેટલીક શોધ કરી એ લિપિના બીજા છ અક્ષરો નવા શોધી કાઢ્યા. બાકી રહેલા થોડાક અક્ષરો જનરલ કનિંગહામે ઓળખી લીધા, અને તેમ કરી ખરેંછીની સંપૂર્ણ વર્ણમાળા તૈયાર કરી લેવામાં આવી.

ભારતવર્ષની જૂનામાં જૂની લિપિઓનું જ્ઞાન મેળવવાનો સામાન્ય ઇતિહાસ આ પ્રમાણે છે. ઉપરોક્ત વર્ણનેથી આપણને જણાય છે કે લિપિ વિષયક શોધખોળમાં મી. પ્રિંસેપની કામગિરી ઘણી મોટી છે. એશિયાટિક સોસાયટી તરફથી બહાર પડેલા “સેન્ટેનરી રિવ્યુ” નામના પુસ્તકમાં “એન્ટ્રેન્ટ ઇન્ડીઅન અલ્ફાબેટ” વાળા આર્ટિકલના પ્રારંભમાં જ આ ખાખત વિષે ડૉ. હૉર્નલ લખે છે કે:—

‘જૂના શિલાલેખોને ઉકેલવાનું અને તેનું ભાષાંતર કરવાનું સોસાયટિનું અત્યુપયોગી કાર્ય સને ૧૮૩૪ થી ૧૮૩૬ સુધીમાં ચાલ્યું હતું. એ કાર્યની સાથે મી. જેમ્સ પ્રિંસેપ, કે જે તે વખતે સોસાયટિના સેક્રેટરી હતા તેમનું નામ સદાને માટે જોડાઈ રહેશે. કારણ કે હિન્દુસ્તાન વિષયક જૂની લેખનકલા, ભાષા અને ઇતિહાસ સાથે સંબંધ ધરાવનારી અને આપણા આધુનિક જ્ઞાનના આધારભૂત એવી મોટી શોધો તે એક જ મનુષ્યના પુરં પાર્થને લાઇને અને તે પણ વળી આટલા અલ્પ સમયમાં થઈ હતી.’

પ્રિંસેપના પછી લગભગ ત્રીસ વર્ષ સુધી પુરાતત્વ સંશોધનનાં સૂત્રો જેમ્સ ફ્રેન્ચિસન, મેજર કિટ્ટો, જોડવર્ડ ટૉમસ, અલેક્ઝાંડર કનિંગહામ, વાલ્ટર ઇલિયટ, મેડોઝ ટેલર, સ્ટીવન્સન, ડૉ. લાઈ દાજી વિગેરેના હાથમાં રહ્યાં. આમાંના પહેલા ચાર વિદ્વાનોએ ઉત્તર-હિન્દુસ્તાનમાં, ઇલિયટ સાહેબે દક્ષિણ હિન્દુસ્તાનમાં, અને પાછળના ત્રણે પશ્ચિમ હિન્દુસ્તાનમાં કામ કર્યું હતું. ફ્રેન્ચિસન સાહેબે પુરાતન વાસ્તુવિદ્યા (Architecture) નું જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવામાં ઘણી મહેનત લીધી હતી; અને તેમણે આ વિષય ઉપર અનેક ગ્રંથો લખ્યા હતા. આ વિષયનો તેમનો અભ્યાસ એટલો બધો આગળ વધી ગયો હતો કે તેઓ કોઇપણ ઇમારતને આંખેથી જોઈને જ સાધારણ રીતે તેનો સમય નિશ્ચિત કરી લેતા હતા. મેજર કિટ્ટો બહુ વિદ્વાન તો ન હતો પણ તેની શોધક શુદ્ધિ બહુ તીવ્ર હતી. જ્યાં બીજા અનેક વિદ્વાનોને કાંઈ પણ જરૂર ન હતું, ત્યાં જ તેણે પોતાની ગીધ જેવી કીણી દંધિના બળે કેટલીયે ચીજો ઓળી કાઢી હતી. તે ચિત્રકલામાં પણ નિપુણ હતો. તેણે પોતાના હાથથી કેટલાંયે રથાનોનાં ચિત્ર કાઢ્યાં હતાં અને તે પ્રકાશિત કર્યાં હતાં. તેની આવી શિલ્પકળા વિષયક ઉંડી કુશળતા જોઈ સરકારે તેને જનારસ ‘સંસ્કૃત કૉલેજનું’ મકાન તૈયાર કરાવવાનું કામ સોંપ્યું હતું. તેણે આ કામમાં ઘણા પારથમ ઉઠાવ્યા હતા. આ પરિશ્રમને કારણે તેની તબીયત બગડી ગઈ અને આખરે ઇંગ્લાંડમાં જઈ તે સ્વર્ગસ્થ

યથો. ટામસ સાહેબે ખાસ કરીને પોતાનું લક્ષ્ય શિક્ષકો તથા શિલાલેખો તરફ ખેંચ્યું. તેણે ઘણા પરિશ્રમ સાથે ઇ. સ. પૂર્વે ૨૪૬ થી લઈ ૧૫૫૪ સુધીના ૧૮૦૦ વર્ષોના ગ્રાન્થીન ઇતિહાસ તારવી કાઢ્યો હતો. જનરલ કનિંગહામે પ્રિન્સેપનું જ ખાદી રહેલું કામ હાથમાં લીધું. તેમણે બ્રાહ્મી તથા અરોધી લિપિના સઘળા પ્રકારોનું સંપૂર્ણ જ્ઞાન આપ્યું હતું. દક્ષિણના આલુક્ય વંશનું વિસ્તૃત જ્ઞાન લેડોની આગળ તેમણે જ પ્રથમ મૂક્યું. ટેલર સાહેબે ભારતની ભૂમિનિર્માણવિદ્યાનું જ્ઞાન મેળવ્યું અને સિટવન્સને શિક્ષકોની શોધખોળ કરી. પુરાતત્ત્વ સંશોધનના કામમાં પહેલવહેલી પ્રવીણતા જે ભારતવાસી વિદ્વાને મેળવી હતી તેમનું નામ ડૉ. લાઉ દાલ હતું. તેમણે અનેક શિલાલેખો ઉદ્ઘટ્યા અને ગ્રાન્થીન ભારતના ઇતિહાસના જ્ઞાનમાં ખૂબ વૃદ્ધિ કરી. એ વિષયમાં બીજા નામાંકિત ભારતના વિદ્વાન તરીકે કાઠિયાવાડના વતની પરિત ભગવાનલાલ ઇન્દ્રિયનું નામ લેવું જોઈએ. તેમણે પશ્ચિમ ભારતના ઇતિહાસમાં ઘણી અમૂલ્ય વૃદ્ધિ કરી છે. અનેક શિલાલેખો અને તામ્રપત્રો ઉદ્ઘટ્યાં હતાં. તેમની વિદ્વાતાનું ખરું સ્મારક તો તેમણે ઉડીસાના ખંડગિરિ-ઉદયગિરિ વાળી હાથીશુક્રામાંના સમ્રાટ ખારવેલના લેખને શુદ્ધ રીતે ઉદ્ઘટ્યો તે છે. ખંગાલના વિદ્વાન ડૉ. રાજેન્દ્રલાલ મિત્રનું નામ પણ આ વિષયમાં ખાસ ઉલ્લેખ કરવા યોગ્ય છે. તેમણે નેપાલના સાહિત્ય અને ઇતિહાસ વિષયમાં આપણને ઘણું જ્ઞાન આપ્યું છે.

આ બધું કામ વિદ્વાનોએ ખાસ પોતાના શોખથી જ કર્યું હતું. ત્યાં સુધી સરકાર તરફથી એ વિષય માટે કોઈ ખાસ પ્રયત્ન કરવામાં આવ્યો ન હતો. પરંતુ એ કામ એટલું બધું મહાભારત છે કે સરકારની ખાસ મદદ વગર સંપૂર્ણ થવું અશક્ય છે. સને ૧૮૪૪ માં લંડનની ફાયલ એશીઆટિક સોસાયટીએ ઇસ્ટ ઇન્ડીઆ કંપનીને વિનંતિ કરી કે આ કામમાં સરકારે ખાસ મદદ કરવી જોઈએ અને સરકાર મારફત જ આ કામ થવું જોઈએ. તેથી ૧૮૪૭ માં લોર્ડ હારિંગ્ટન પ્રસ્તાવથી બોર્ડ ઓફ ડાયરેક્ટર્સે આ કામમાં ખર્ચ કરવાની મંજૂરી આપી. પણ સન ૧૮૫૦ સુધીમાં તેનું વારતવિક પરિણામ કંઈ પણ ન આવ્યું. ૧૮૫૧ માં સંયુક્ત પ્રાંતના ચીફ એન્જીનીયર કેર્નલ કનિંગહામે એક યોજના ઘડીને સરકાર ઉપર મોકલી અને સાથે એ પણ સૂચવ્યું કે જો ગવર્નમેંટ આ કામ તરફ લક્ષ્ય નહિ આપશે તો ક્લેચિત્ ફ્રેંચ અને જર્મન લોકો આ કામ ઉપાડી લેશે; અને તેમ થશે તો તેમાં અંગ્રેજોના યશની હાનિ થશે. કે. કનિંગહામની આ સૂચનાનુસાર અને ગવર્નર જનરલની ભલામણથી ૧૮૫૨ માં આર્કિયોલોજીકલ સર્વે નામનું એક ડિપાર્ટમેન્ટ કાયમ કરવામાં આવ્યું અને ૨૫૦ રૂપીઆ માસિક પગારે કનિંગહામ સાહેબની જ આ ડિપાર્ટમેન્ટના ડાયરેક્ટર તરીકે નેમણું કરવામાં આવી; આ યોજના સ્થાયી રૂપે ન હતી. સરકારની ધારણા એમ હતી કે મોટાં મોટાં મહત્ત્વપૂર્ણ સ્થાનોનું યથાતથ વર્ણન, તત્સંબંધી ઇતિહાસ અને કિંવદન્તીઓનો સંગ્રહ કરવામાં આવે. નવ વર્ષ સુધી સરકારની આ જ નીતિ ચાલુ રહી હતી. તે દરમિયાન કનિંગહામ સાહેબે પણ પોતાનો નવ રિપોર્ટ બહાર પાડ્યો.

ભારતનાં મધ્ય ભાગો માટે જ નિયત થયા. મુંબઈ અને મદ્રાસ પ્રાંતોનું કામ ડૉ. બર્નેસના હાથમાં જ રહ્યું.

આ સમય સુધી પણ સરકારની ઇચ્છા એ ખાતાને સ્થાયી કરવાની ન હતી. સરકારની સમજ એવી હતી કે પાંચ વરસમાં આ કામ પુરું થઈ જશે. એટલા માટે પ્રાચીન લેખોને ઉકેલવા સારૂ એક યુરોપીઅન પંડિતની નેમણુંક કરી અને સાથે દેશી વિદ્વાનોની પણ મદદ લેવાનો નિશ્ચય કર્યો.

૧૮૮૯ માં ડૉ. બર્નેસ પણ પોતાના હોદ્દાથી કારેગ થયા. આથી એ ખાતાની હાલત ઉતરતી થવા લાગી. આ ખાતાના હિસાબની તપાસ કરવા માટે સરકારે કમિશન નીમ્યું. તેણે પોતાના રિપોર્ટમાં ખર્ચની બાબતમાં કેટલીક કાપઝૂપ કરવાની સીફારસ કરી. હિન્દુસ્તાનના લાભ માટે થતા ખર્ચમાં કાપઝૂપ કરવાની સીફારસને સ્વીકારવા સરકાર હંમેશાં તૈયાર જ હોય છે એ કહેવાની ખાસ આવશ્યકતા નથી. ડૉ. બર્નેસ પછી ડાયરેક્ટર જનરલનું સ્થાન ખાલી રાખવામાં આવ્યું. બંગાલ અને પંજાબના સર્વેયરોને પણ રજા આપી. આટલું ઓછું કરીને પણ સરકારે ચાલુ ચોખ્ખાને ફક્ત પાંચ જ વર્ષ સુધી જારી રાખવાનું જાહેર કર્યું. પણ સરકારી હુકમ માત્રથી જ કામ એકદમ કેમ થઈ શકે ? ૧૮૯૦ થી ૧૮૯૫ સુધીનાં પાંચ વરસ આ ખાતા માટે ઘણી જ દીનદશામાં વીત્યાં, અને કામ પણ પૂરું ન થયું. ૧૮૯૫ થી ૧૮૯૮ સુધી સરકાર વિચાર જ કરતી રહી કે આ વિષયમાં શું કરવું જોઈએ. ૧૮૯૮ માં તેનો એવો વિચાર થયો કે શોધખોળનું કામ બંધ કરીને હવે તો આ ખાતા પાસેથી ફક્ત સંરક્ષણનું જ કામ લેવું જોઈએ. આ નવા વિચાર પ્રમાણે નીચે સુલખે પાંચ હોત્રો નક્કી કરવામાં આવ્યાં.

(૧) મદ્રાસ અને કુર્ગ

(૨) મુંબઈ, સિંધ અને બારાર

(૩) સંયુક્ત પ્રાંત અને મધ્યપ્રદેશ (૪) પંજાબ, બ્રિટિશ બલુચિસ્તાન અને અજમેર

(૫) બંગાલ અને આસામ

૧૮૯૯ ના ફેબ્રુઆરી માસની ૧ લી તારીખે એશિઆટિક સોસાયટીના સમારંભમાં લૉર્ડ કર્ઝને આ ખાતાને ખૂબ ઉન્નત કરવા માટેના પોતાનો વિચાર જાહેર કર્યો. ત્યારબાદ ૧૯૦૧ માં વાર્ષિક એક લાખ રૂપિયા ખર્ચ કરવાની આ ખાતાને મંજૂરી આપવામાં આવી, અને ડાયરેક્ટર-જનરલની ફરીથી નેમણુંક કરવામાં આવી. સન ૧૯૦૨ માં નવા ડાયરેક્ટર-જનરલ માર્શલ સાહેબ હિન્દુસ્તાનમાં આવ્યા, ત્યારથી આ ખાતાનો નવો ઇતિહાસ શરૂ થાય છે. તે આજે કહેવાતું કામ માફ નથી. ન્યારે એ ખાતા ઉપર આપણી સત્તા થશે ત્યારે એના ઇતિહાસનું આપણે અવલોકન કરીશું.

ઇંગ્રેજ સરકારના આ કામનું ઉદ્દારણ લઈ કેટલાંક દેશી રાજ્યોએ પણ પોતાનાં રાજ્યોમાં આ વિષયના ડિપાર્ટમેંટો ખોલ્યાં છે. ભાવનગર સંસ્થાને કેટલાક પંડિતોદ્વારા કાઠિયાવાડ, ગુજરાત અને રજપુતાનના અનેક શિલાલેખો અને દાન પત્રોની નકલો મેળવી “ભાવનગર પ્રાચીન શોધ સંગ્રહ” ના નામે એક પુસ્તક દ્વારા તેમને પ્રકાશિત કરી છે.

ચૌધેય, ઝેસ, લિચ્છવી, પરિવાજક, વાકાટક, મૌખરી, મેત્રક, ગુહિલ, ચાવડા, ચાલુક્ય, પ્રતિહાર, પરમાર, ચાહમાન, રાષ્ટ્રકૂટ, કચ્છવાહા, તોમર, કલચૂરી, ત્રૈલોક્ય, ચંદેલા, ચાદવ, ગુર્જર, મિહિર, પાલ, સેન, પલ્લવ, ચૌલ, કદંબ, શિલાર, સેંદ્રક, કાકતીય, નાગ, નિહુંલ, બાણ, મત્સ્ય, શાલંકયન, શૈલ, મૂષક આદિ અનેક પ્રાચીન રાજવંશો કે જેમના વિષયમાં એક અક્ષર જેટલું પણ આપણે જાણતા ન હતા તેમના વિસ્તૃત ઇતિહાસો જાણવામાં આવ્યા છે. અનેક જાતિ, ધર્મ, સંપ્રદાય, ધર્મોચાર્ય, વિદ્વાન, ધનવાન, દાની અને વીર પુરુષોના વૃત્તાન્તોનો પરિચય થયો છે; અને અસંખ્ય પ્રાચીન નગર, મંદિર, સ્તૂપ, અને જળાશયોની હકીકતો મળી છે. સો વર્ષ પહેલાં આપણે આમાંનું કંઈ પણ જાણતા ન હતા.

આ ઉપરથી સ્પષ્ટ સમજ શકાય એમ છે કે પુરાતત્ત્વના સંશોધનનું કેટલું બધું મહત્ત્વ છે. તે દેશના ઇતિહાસને શુદ્ધ અને સંપૂર્ણ બનાવે છે. તેનાથી પ્રજાના ભૂતકાળનું યથાર્થ જ્ઞાન થાય છે; અને લવિષ્યકાળમાં કરે માર્ગે જતું ખરું સૂચન મળે છે.

વિદ્વાનોનો અભિપ્રાય છે કે પુરાતત્ત્વ સંબંધી જે કામ અત્યારે થયું છે તે ભારતવર્ષની વિશાલતા અને વિવિધતા તરફ લક્ષ્ય કરતાં હજી બાળપોથીનું પહેલું જ પાતું ઉઘાડવામાં આવ્યું છે એમ કહેવામાં કોઈ પણ જાતની અત્યુક્તિ થતી નથી. આ દેશમાં એટલી બધી વસ્તુઓ છુપાયેલી, દટાયેલી, બોવાયેલી પડી છે કે જ્યારે સેંકડો વિદ્વાનો સેંકડાઓ સુધી પરિશ્રમ કર્યા કરશે ત્યારે જ તેમને પ્રકાશમાં લાવી શકશે.

ભારતના રાષ્ટ્રીય જીવનના નવીન ઇતિહાસ માટે બંધાયેલા કોરા પુસ્તકમાં “ જ્ઞ નમઃ ” લખવાનું મોટું માન ગુજરાતને મળે એવો ઇચ્છીય સંકેત દેખાય છે. તેથી રાષ્ટ્રીય ઇતિહાસના દરેક અધ્યાયમાં ગુજરાતનો આદિ ઉલ્લેખ આવે એમ જો આપણે ઇચ્છીએ તો દરેક વિષયમાં આપણે પ્રગતિ કરવી જોઈએ; અને એવા જ કોઈ અજ્ઞાત સંકેતથી આપણે રાષ્ટ્રીય શિક્ષણ મંદિરની સાથે પુરાતત્ત્વ મંદિરની પણ સ્થાપના કરી છે. એને સંકેત બનાવવાનું લક્ષ્ય આપણે દરેક વિદ્યાર્થીમાં પ્રભુ ઉત્પન્ન કરે એમ ઇચ્છી હું માંડે વ્યાખ્યાન સમાપ્ત કરે છું.*

* પુરાતત્ત્વ મંદિર યંત્રાવલીમાં પ્રકટ થએલ “ આપણા વ્યાખ્યાનમાળા ” નામના પુસ્તકમાંથી આ વ્યાખ્યાન અત્ર ઉદ્કૃત કરવામાં આવ્યું છે.

વૈશાલીના ગણસત્તાક રાજ્યનો નાયક

રાજ ચેટક.

જૈન સાહિત્યમાં વૈશાલીનો રાજ ચેટક ઘણી રીતે પ્રસિદ્ધ છે. શ્રમણ લગવાનું મહા-વીરે પ્રચારેલા ધર્મના એક મહાન ઉપાસક તરીકે તો તેની ખ્યાતિ છે જ, પરંતુ બીજી રીતે વ્યાવહારિક પ્રસંગોથી પણ તેની તેટલી જ પ્રસિદ્ધિ છે. એ પ્રસિદ્ધિનું પહેલું કારણ તો એ છે કે જૈન ધર્મના છેલ્લા તીર્થંકર નિર્ગુણ સ્વામી શ્રી મહાવીરના ઘરાણા સાથે તેનો ખેતરો સંબંધ હતો. શ્રી મહાવીરની માતા ત્રિશલા કનિયાણી એ ચેટકની સગી બહેન થતી હતી અને એ ત્રિશલાના મોટા પુત્ર અને મહાવીરના મોટા ભાઈ નન્દિવર્ધન સાથે એની વચલી પુત્રી નામે જોડાએ લગ્ન કર્યા હતાં. બીજું કારણ, જેવી રીતે મહાવીરના ઘરાણા સાથે એનો કૌટુંબિક સંબંધ હતો તેવી જ રીતે તત્કાલીન ભારતના બીજા કેટલાક પ્રધાન રાજવંશો સાથે પણ એનો સગપણનો સંબંધ બંધાયેલો હતો. સિંધુસા-વીરનો રાજ ઉદ્રાવણ, અવંતીનો રાજ પ્રવોત, કોશાંબીનો રાજ શતાનિક, ચંપાનેા રાજ દધિવાહન અને મગધનો રાજ બિંબિસાર એ બધા એના જન્મતા થતા હતા. જૈન સાહિત્યમાં કુણિક અથવા કોણિકના અને બૌદ્ધસાહિત્યમાં અજતશત્રુના નામે પ્રસિદ્ધ પામેલો મગધનો સમર્થ સમાધ; તથા સામાન્ય રીતે જૈન, બૌદ્ધ અને બ્રાહ્મણ-પ્રણે સંપ્રદાયના કથાસાહિત્યમાં વ્યાપક યોગેલો ઉદયન વત્સરાજ; એ ચેટકના સગા દૌહિત્ર થતા હતા. ત્રીજું તે વખતે હયાતી ધરાવતા ભારતના ગણસત્તાક રાજ્યોમાંના એક પ્રધાન રાજ્યતંત્રનો તે વિશિષ્ટ નાયક કહેવાતો હતો. અને છેલ્લું, જૈન પરંપરા પ્રમાણે આખા આર્યવર્તમાં ક્યારેય નહીં થયેલી એવી એક લયંકર જનનાશક લડાઈ એને લડવી પડી હતી, જેમાં એનો પ્રતિપક્ષી, એના પોતાનો જ સગો દૌહિત્ર મગધરાજ અજતશત્રુ હતો !

જૈન પરંપરામાં આટલી બધી પ્રસિદ્ધિ જેળવનાર અને ઉગ્ર રીતે તત્કાલીન ભારતમાં એક મહત્ત્વનું સ્થાન પ્રાપ્ત કરનાર એ રાજના વિષયમાં જૈન સાહિત્ય સિવાય અન્યત્ર ક્યાંયે ઉલ્લેખ મળી આવતો ન હોવાથી ઐતિહાસિકોની દૃષ્ટિમાં અદ્યપિ એનું અસ્તિત્વ ધ્યાન ખેંચવા લાયક રીતે અંકિત થયું નથી. બ્રાહ્મણ સંપ્રદાયના સાહિત્ય તરફ નજર ફરિએ છીએ ત્યારે તેમાં, એ સમયના ભારતના મગધ, કોસલ, કોશાંબી અને અવંતી જેવા રાજસત્તાક રાજ્યોની તો નાની જોટી નોંધો લેવાએલી મળી આવે છે ખરી, અવંતી જેવા રાજસત્તાક રાજ્યોની તો નાની જોટી નોંધો લેવાએલી મળી આવે છે ખરી, પણ વૈશાલી જેવું સ્થાન કે જેમાં ગણસત્તાક રાજ્યપદ્ધતિ ચાલતી હતી તેનો નામનિર્દેશ પણ તેમાં ભાગ્યે જ જડી આવે છે.

બૌદ્ધ સાહિત્યમાં વૈશાલી અને ત્યાં આધિપત્ય લોગવતી લિચ્છવી નામની ધનિય જાતિના સંબંધમાં ઘણી ઘણી વારો લખેલી મળી આવે છે, પરંતુ એ સ્થાન અને એ

સમાજ ઉપર સર્વોપરિ અધિકાર ચલાવનાર કોણ હતો તેનો ઉદ્દેશ જોધ લેખકે પણ કંઈ કરતા નથી.

હિન્દુસ્થાનના ઐતિહાસિક યુગના ઉદ્ભવકાલ તરીકે ગણાતા એ સમયના ઇતિહાસના અભ્યાસિઓનું ધ્યાન ખેંચવા માટે, આ લેખમાં હું જૈન મતે વૈશાલીના ગણસત્તાકે રાજ્યના રાજા મનાતા એ ચેટક અને તેની સાથે સંબંધ ધરાવનારા રાજાઓના સંબંધમાં જેટલી પરંપરા જૈન ગ્રંથકારોએ નોંધી રાખી છે તેનાં સાર અને સંકલન કરવા પ્રયત્ન કરું છું.

૧. તીર્થંકર શ્રી મહાવીરના ઘરાણા સાથે ચેટકનો સંબંધ.

ઉપર મેં સૂચવ્યું છે કે તીર્થંકર શ્રી મહાવીરની માતા ત્રિશલા ક્ષત્રિયાણી ચેટક રાજાની સગી બહેન થતી હતી. તેનો પુરાવો જૈન આગમોમાં જૂનામાં જૂના આગમ તરીકે મનાતા આવશ્યક સૂત્રની શ્રુષ્ટિમાં મળે છે. એ શ્રુષ્ટિ ક્યારે રચાઈ તેનો નિશ્ચય અદાપિ જોઈએ તેવો થઈ શક્યો નથી, પરંતુ વિક્રમના આઠમા સૈંકા કરતાં અર્વાચીન નથી તેટલું તો ચોક્કસ જણાય છે. આવશ્યક સૂત્રની સંસ્કૃત ટીકા કરનાર આચાર્ય હરિભદ્રનો સમય મેં વિક્રમ સંવત્ ૮૦૦ ની આસપાસ નિર્ણયિત કર્યો છે. (જુઓ જૈન સાહિત્ય સંશોધક, ખંડ ૧, પૃષ્ઠ ૫૩). આચાર્ય હરિભદ્રે પોતાની એ સંસ્કૃત ટીકામાં ઉક્ત પ્રાચીન શ્રુષ્ટિમાંથી કોંકડો અવતરણો લીધાં છે, તેથી હરિભદ્ર પહેલાં શ્રુષ્ટિકારનો સમય સ્વતઃ સિધ્ધ છે. એ શ્રુષ્ટિમાં શ્રી મહાવીરની માતા ત્રિશલાને સ્પષ્ટ રૂપે ચેટકની ભગિની લખી છે અને તે જ ઠેકાણે ત્રિશલાના મોટા પુત્ર નંદિવર્ધનની ભાયા-શ્રી મહાવીરની લોભઈ-ને ચેટકની પુત્રી જણાવી છે. પાંડ આ પ્રમાણે છે:-

મગવતો માયા ચેદગસ્ત ભગિણી; મો (જા) યી ચેદગસ્ત ધ્યા।

‘ભગવાન મહાવીરની માતા, ચેટકની ભગિણી; લોભઈ ચેટકની પુત્રી’ આ ઉદ્દેશને ધ્યાનમાં રાખી પાછળના બીજા ગ્રંથકારોએ પણ કેટલાંક ઠેકાણે ચેટકને મહાવીરના માતુલ (માસા) તરીકે ઉદ્દેશ્યો છે. મહાવીરના જીવનવૃત્તાંતની નોંધ જૈન આગમોમાં સાથી પ્રાચીન અને પ્રથમ ગણાતા આગમ આચાર્ય સૂત્રમાં લેવાયેલી છે. તેમાં મહાવીરની માતાનું એક વિદેહદિન્ના નામ પણ લખેલું છે. જેમકે—

સમણસ્ત જં મગવઝો મહાવીરસ્ત અમ્મા વાસિટ્ઠસ્સગુત્તા તોસેણ તિનિ નામધિ-
જ્જા પચ્ચમાદિજ્જંતિ, તે જહા તિસલા હવા વિદેહદિન્ના હવા પિયકારિણો હવા।

(આચાર્યસંગ, આગમોદય સમિતિ દ્વારા પ્રકાશિત, પૃ. ૪૨૨)

૧. જુઓ કશ્પસૂત્રની ધર્મસાગર ગણિકૃત કિરણવતી નામે ટીકા પૃષ્ઠ ૧૨૪ ‘ચેટકમહારા-
જસ્ય મગવન્નાતુલસ્ય-ભાવનગરી આત્માનંદ જૈન સમાએ પ્રકટ કરેલ, ધર્મસાગર ગણિકૃત ટીકા
કિરણવતી પૃ. ૯૩; તથા વિનયવિનયોપાધ્યાય કૃત ટીકા સુબોધિકા, પૃ. ૧૪૪.

‘અમણુ લગવાનું મહાવીરની માતા-જેનું વાસિષ્ઠ ગોત્ર હતું, તેનાં ત્રણ નામ હતાં એમ કહેવાય છે; જેમ કે ૧ ત્રિશલા, ૨ વિદેહદિન્ના, અને ૩ પ્રિયકારિણી.’ ‘વિદેહદિન્ના’ ના વ્યુત્પત્ત્યર્થ ઉપરથી જણાય છે કે તેનો જન્મ વિદેહના રાજકુળમાં થયો હતો. માતાના આ કુળ સૂત્રક નામ ઉપરથી મહાવીરનું પણ એક નામ વિદેહદિન્ન હતું જેનો ઉલ્લેખ આચારાંગ સૂત્રમાં ઉપર્યુકત સૂત્ર પછી તરત જ કરવામાં આવેલો છે. જેમકે—

સમણે ભગવં મહાવીરે નામ નાયપુત્તે નાયકુલનિવસત્તે ચિદેહે વિદેહદિન્ને ચિદેહ-
જત્તે. વિદેહસમાલે. (પ. ૪૨૨)

આ બંને અવતરણો કલ્પસૂત્રમાં પણ અવિકલરૂપે ઉદ્ઘૃત થયેલાં છે. ત્યાં ટીકાકારો વિદેહદિન્નની વ્યાખ્યા આ પ્રમાણે કરે છે: વિદેહદિન્ના ત્રિશલા ત્સ્યા લપત્ત્વં વિદેહદિન્નઃ। આગળ ઉપર આપણે જોયું કે વૈશાલી એ એક વિદેહનો જ ભાગ હતો. અને તેથી ચેટકનું ઘરાણું વિદેહ રાજકુળ તરીકે લેખાય એ સ્પષ્ટ જ છે. આ રીતે મહાવીરની માતા ત્રિશલા વિદેહ રાજકુળના ચેટકની જાહેન થતી હતી તે હકત આવશ્યકચૂર્ણ અને આચારાંગના ઉલ્લેખ ઉપરથી સ્પષ્ટ થઈ જાય છે.

ત્રિશલાના મોટા પુત્ર અને મહાવીરના મોટા ભાઈ નન્દિવર્ધનની સ્ત્રી ચેટકની પુત્રી થતી હતી તેનો એક ઉલ્લેખ તો ઉપર આવી ગયો છે. બીજો ઉલ્લેખ પણ એ જ આવ-
શ્યકચૂર્ણમાં આગળ ઉપર થયેલો છે જેમાં ચેટકની કંઈ પુત્રીએ ઠોની સાથે લગ્ન કર્યાં તેની નોંધ લેવામાં આવી છે. એ નોંધ પ્રમાણે ચેટકને એકંદર સાત પુત્રીઓ હતી જેમાંથી છનાં લગ્ન થયાં હતાં અને એક કુમારિકા જ રહી હતી. એ સાત પુત્રીઓમાંથી પાંચમી પુત્રી જેનું નામ જ્યેષ્ઠા હતું તેનું લગ્ન નન્દિવર્ધન સાથે થયું હતું. ઉલ્લેખ આ પ્રમાણે છે:

‘જેઠ્ઠા કુંડગામે વદ્ધમાણસામિણો જેઠ્ઠસ્ત નન્દિવદ્ધણસ્ત દિત્તા’

જ્યેષ્ઠા [નામે કન્યા] કુંડગામમાં વદ્ધમાન (મહાવીરનું મૂળ નામ) સ્વામિના જ્યેષ્ઠ [બંધુ] નન્દિવર્ધનને આપી હતી.’ આ ઉલ્લેખ આચાર્ય હેમચન્દ્ર ચોતાના મહા-
વીરચરિત્રમાં પણ કરેલો છે:—

કુળદ્રામાધિનાયસ્ય નન્દિવર્ધનમૂખજઃ।

શ્રીવીરનાયજ્યેષ્ઠસ્ય, જ્યેષ્ઠા દત્તા યથારુચિ ॥^૧

શ્રી મહાવીરના મોટા ભાઈનું નામ નન્દિવર્ધન હતું તેનો સ્પષ્ટ ઉલ્લેખ તો આચા-
રાંગ અને કલ્પસૂત્ર-એમ બંને મૂળ સૂત્રોમાં આવેલો છે.—યથા

સમણસ્ત જં મગવઓ મહાવીરસ્ત જિટ્ટે માયા નન્દિવદ્ધણે કામવગુત્તેણ । (આચારાંગ
પૃ. ૪૨૨, કલ્પસૂત્રમાં પણ આ જ પાઠ છે.)

૧. ભાવનગરની જેન મર્મ પ્રસારક સભાએ છપાવેલ ‘ત્રિપદીશલાકાપુરપચરિત્ર’ના ૧૦ પર્વનું

[કેટલાક દેશો અને કેટલીક જાતોમાં મામાની કન્યા ઉપર ભાણેજનો પ્રથમ હાથ હોય એમ પ્રચલિત રીવાજ અને જૂનાં પ્રમાણો ઉપરથી સ્પષ્ટ જણાઈ આવે છે. મહારાષ્ટ્રમાંની મરાઠા જાતિમાં ખાસ કરીને આજે પણ એ રીવાજ ચાલુ છે. આવશ્યક સૂત્રની ટીકામાં હરિભદ્રસૂરિએ એક ઠેકાણે ‘દેશકથા’ નું વર્ણન કરતાં જૂની ગાથા ઉતારી છે જેમાં જણાવ્યું છે કે દેશ દેશના રીત રીવાજો જુદા જુદા હોઈ, કેઈ દેશમાં ત્યારે એક વસ્તુ ગમ્ય કે સ્વીકાર્ય હોય છે ત્યારે બીજા દેશમાં તે જ બાળત અગમ્ય કે અસ્વીકાર્ય હોય છે. ઉદાહરણાર્થ—જેમ અંગ અને લાટ દેશના લોકોને માતુલદુહિતા એટલે મામાની છોકરી ગમ્ય હોય છે ત્યારે ગોહ દેશના લોકો માટે તે ભગિની હોઈ અગમ્ય છે. ગાથા આ પ્રમાણે—

છંદો ગમ્માગમ્મં જહ માડલદુહિયમંગ-લાઢાળં ।

અળેસિ સા મગિણી ગોલાઈળં અગમ્મા ડ ॥

જેમ મહાવીરની મામાની પુત્રીએ પોતાની ક્ષીર્ણા પુત્ર નન્દિવર્ધન સાથે લગ્ન કર્યો હતો તેમ જુદ મહાવીરની પુત્રી પ્રિયદર્શનાનાં લગ્ન પણ તેની સગી ક્ષીર્ણાદર્શનાના પુત્ર જમાલિ નામના ક્ષત્રિય કુમાર સાથે થયાં હતાં જેનો ઉલ્લેખ ઘણા પ્રાચીન અર્વાચીન ગ્રંથોમાં થયેલો છે. આવશ્યક સૂત્રના ભાષ્ય, ચૂર્ણિ, ટીકા આદિમાં પણ એ બાળતની સ્પષ્ટ નોંધ છે. યથા—

કુળ્લપુરનગરં તત્થ જમાલી સામિસ્સ માઈણ્ણી...તસ્સ મજ્ઞા સામિસ્સ દુહિતા ।
(હરિભદ્ર કૃત આવશ્યક સૂત્ર ટીકા, પૃષ્ઠ, ૩૧૨)]

૨. ભારતનાં બીજાં કેટલાંક પ્રધાન રાજ્યો સાથે એટકનો કૌટુંબિક સંબંધ.

ઉપરના ભાગમાં જણાવ્યા પ્રમાણે એટકને એકંદર સાત પુત્રીઓ હતી જેમાં એક તો કુમારિકા જ રહી હતી અને બાકીની છનાં, ભારતના તે વખતના જુદા જુદા નામાંકિત રાજાઓ સાથે લગ્ન થયાં હતાં. એ પુત્રીઓ અને જેમની સાથે તેમનાં લગ્ન થયાં તે રાજાઓ વિગેરેને ટુંકે ઉલ્લેખ આવશ્યક ચૂર્ણિમાં નીચે પ્રમાણે કરેલો છે.

एतो य वेसालीय नगरीय चेडओ राया हेहयकुलसभंतो । तस्स देवीणं अणम-
ण्णणं सत्त धूहाओ । पमावती, पडमावती, मिगावती, सिवा, जेट्टा, सुजेट्टा, चेलण त्ति ।
सो चेडओ साअओ परवीवाहकरणस्स पच्चवखातं । घृताओ ण देति कस्स त्ति । ताओ
माति मिस्सगाओ रायं आपुच्छित्ता अण्णेसि अच्छित्तकाणं सरिसमाणं देन्ति । पमावती
वीत्तिमए उहायणस्स दिण्णा, पडमावती चंपाप दहियाहणस्स, मिगावती कोसंबीए
सताणियस्स, सिवा उज्जेणीए पज्जोवस्स, जेट्टा कुंडगगामे बद्धमाणसामिणो जेट्टस्स नन्दि-
वद्धणस्स दिण्णा । सुजेट्टा चेल्लणा य देवकारिओ अछंति ।^१

અર્થાત્—‘વૈશાલી નગરીમાં હૈહયવંશમાં જન્મેલો ચેડગ (એટક) નામે રાજા તેને

૧ યોડા અક્ષરોના ફેરફાર સાથે આનો આ જ ઉલ્લેખ હરિભદ્રવાળી આવશ્યક ટીકામાં પણ આ વેલો છે. જુઓ આખેમેલ્લ સમિતિકારા પ્રકાશિત એ ટીકા, પૃષ્ઠ ૬૭૬-૭.

લુદ્ધી લુદ્ધી શણીઓથી સાત પુત્રીઓ થઈ:-૧ પ્રભાવતી, ૨ પદ્માવતી, ૩ મૃગાવતી, ૪ શિવા, ૫ જ્યેષ્ઠા, ૬ સુજ્યેષ્ઠા, અને ૭ ચેલ્લણા. તે ચેટક શ્રાવક હોવાથી તેણે કોઈનાં પણ લગ્ન ન કરવાની પ્રતિજ્ઞા લીધેલી હતી, તેથી તે પોતાની પુત્રીઓનાં લગ્ન નથી કરતો, આથી તે પુત્રીઓની માતાઓએ રાજાની સંમતિ મેળવી પોતાને ઇચ્છિત અને પુત્રીઓને સદૃશ એવા રાજાઓને તે કન્યાઓ આપી. તેમાં ૧ પ્રભાવતી વીતિલયના ઉદાયનને, ૨ પદ્માવતી ચંપાના દધિવાહનને, ૩ મૃગાવતી કૌશાંભીના શતાનીકને, ૪ શિવા ઉજ્જયિનીના પ્રદ્યોતને, અને ૫ જ્યેષ્ઠા કુંડંગામમાં વર્દમાન સ્વામિના મોટા ભાઈ નંદિવર્દનને પરણાવી હતા. સુજ્યેષ્ઠા અને ચેલ્લણા [ત્યાં સુધી] કુમારિકા જ હતી. આની આ જ હકીકત આચાર્ય હેમચંદ્રે પણ મહાવીર ચરિત્રમાં, પોતાના શબ્દોમાં આ પ્રમાણે નોંધી છે-

इतच्च वसुधाघध्वा मौलिमाणिक्यसन्निभा ।
 वैशालीति श्रीविशालाः नग्यस्त्यगरीयसी ॥
 आखंडल इवाखण्डशासनः पृथिवीपतिः ।
 चेदोक्तारिभूपालस्तत्र चेदक इत्यभूत् ॥
 पृथगराज्ञोभवास्तस्य बभूवुः सप्त कन्यकाः ।
 सप्तानामपि तद्राज्यांगानां सप्तैव देवताः ॥
 प्रभावती पद्मावती मृगावती शिवापि च ।
 ज्येष्ठा तथैव सुज्येष्ठा चिल्लणा चेति ताः क्रमात् ॥
 चेदकस्तु श्रावकोऽन्यविवादनियमं घटन् ।
 वदो कन्या न कस्मैचिदुदासीन इव स्थितः ॥
 तन्मातरं उदासीनमपि ह्यापृच्छ्य चेदकम् ।
 वराणामनुरूपानां प्रददुः पञ्च कन्यकाः ॥
 प्रभावती वीतभयेऽश्वरोदायनमूपतैः ।
 पद्मावती तु चंपेशदधियाहनभूभुजः ॥
 कौशाम्ब्योशशतानीकनृपस्य तु मृगावती ।
 शिवा तृज्जयिनीशस्य प्रद्योतपृथिवीपतेः ॥
 कुण्डग्रामाधिनाथस्य नन्दियर्चनभूभुजः ।
 श्रीवीरनाथज्येष्ठस्य ज्येष्ठा दत्ता ययारुचि ॥
 सुज्येष्ठा चिल्लणा चापि कुमायविव तस्यतुः ॥
 रूपधियोपमामूते ते द्वे पव परस्परम् ॥^१

આ છેલ્લી બંને પુત્રીઓ જે કુમારિકા રહેલી છે તેમાંથી ચેલ્લણા મગધના રાજા શ્રેણિક સાથે કેમ પરણે છે અને સુજ્યેષ્ઠા કુમારિકાવસ્થામાં જ જૈન ભિક્ષુણી કેમ થઈ બચે છે તેની હકીકત આગળ ઉપર જોઈશું. એ પહેલાં પાંચે પરિણીત પુત્રીઓના વિધવામાં જરા વધારે વિસ્તારથી તપાસ કરીએ. આ પાંચમાંથીયે વયથી કનિકા પણ નામથી જ્યે-

ધાના વિષયમાં તો ઉપર જે નોંધ લીધી છે તે કરતાં વધારે કાંઈ હકીકત જૈનગ્રંથકારો આપતા નથી. તેથી હવે આજ પુત્રીઓની હકીકત આપણે જાણવાની રહી.

પ્રભાવતી.

ઉપર આપેલા ઉતારા પ્રમાણે ચેટકની પ્રથમ પુત્રીનું નામ પ્રભાવતી હતું અને તે વીતિભયના ઉદાયન વેરે પરણી હતી. આ ઉદાયનનો ઉલ્લેખ ઘણા જૈન ગ્રંથોમાં થયેલો છે. સૌથી જૂનો ઉલ્લેખ ખાસ ભગવતી નામના સુપ્રસિદ્ધ સૂત્રમાંથી મળી આવે છે. એ સૂત્રના ૧૩ માં શતકના, ૬ ઠા ઉદેશકમાં, એના દેશસ્થાનાદિની નોંધ આ પ્રમાણે લેવાયેલી છે:

તેણં કાલેણં તેણં સમયેણં સિંધુસેવીરેસુ જળવપ્સુ ઘીતીમપ નામં નગરે હત્યા ।
તસ્સ ણં ઘીતીમયસ્સ નગરસ્સ વદિયા ઉત્તરપુરચ્છિમે દિસીમાપ પત્ય ણં મિયવણં નામં
ઉજ્જાણે હત્યા । તત્ય ણં ઘીતીમપ નગરે ઉદાયણે નામં રાયા હત્યા...તસ્સ...રત્તો
પમાવતી નામં દેવી હત્યા...તસ્સ ણં ઉદાયણસ્સ રત્તો પુત્તે પમાવતીપ દેવીપ અત્તપ
અમીતિનામં કુમારે હત્યા ।...તસ્સ ણં ઉદાયણસ્સ રત્તો નિયપ્પ ભાયણેજ્જે કેસી નામં
કુમારે હત્યા ।...સે ણં ઉદાયણે રાયા સિંધુસેવીરપ્પામોકલાણં સેલસણ્ઠં જળવયાણં
ઘીતીમયપ્પામોકલાણં તિણ્ઠં તેતટ્ટીણં નગરાગરસયાણં મહાસેણપ્પામોકલાણં દસણ્ઠં રાફ્ઠં
વદ્દમઉદાણં વિદિગ્ગહસ્ત્તચામરચાલવોયણાણં અન્નેસિં ચ વહૂણં રાફિસરત્તલવર જાવ
સત્યવાહપ્પમિર્ઠિણં આદેવચ્છં જાવ કારેમાણે પાલેમાણે સમણોવાસપ્પ અભિગય જીવાજીવે
જાવ ચિદરહ ।^૧

તાત્પર્યાર્થ—તે કાલ અને તે સમયમાં, સિંધુસેવાર નામના દેશમાં વીતિભય નામે
એક શહેર હતું. તે શહેરની ઉત્તર-પૂર્વ બાજુએ મૃગવન નામે નગરોદ્યાન હતું. તે વીતિ-
ભય શહેરમાં ઉદાયન નામે રાજા હતો, તે રાજાની પ્રભાવતી નામે પટરાણી હતી. તેને
અભીતિ નામે પુત્ર હતો. તે ઉદાયન રાજાને કેસી નામે એક કુમાર ભાણેજ હતો. એ
ઉદાયન રાજા સિંધુસેવીર, આદિ મોક્ષ જનપદ, વીતિભય આદિ ત્રણેયો ત્રેસક નગર અને
આકર (ખાણ) તથા મહાસેન પ્રમુખ દશ મોટા મુકુટબદ્ધ રાજાઓનો, તેમ જ બીજા
અનેક નગરરક્ષક, દરબનાયક, શેઠ, સાર્થવાહ આદિ જનસમૂહનો સ્વામી હતો. એ શ્રમણો-
પાસકે અર્થાત્ જૈનશ્રમણોનો ઉપાસક હતો અને જૈનશાસ્ત્ર પ્રતિપાદિત જીવ અજીવ આદિ
તત્ત્વ-પદાર્થનો જાણકાર હતો. ઇત્યાદિ.

આ સૂત્રપાઠ ઉપરથી સ્પષ્ટ જણાય છે કે ચેટકની મોટી પુત્રી પ્રભાવતીનાં લગ્ન
વીતિભયના ઉદાયન સાથે થયેલાંને જે ઉલ્લેખ આપશ્ચક જૂણિમાં કરેલો છે તે 'પર'પરાને
બરાબર અનુસરતો છે. આ સૂત્ર પાઠમાં ઉદાયનને જે મહાસેન પ્રમુખ દશ મુકુટબદ્ધ
રાજાઓનો સ્વામી જણાયો છે તે હકીકત ખાસ વિચારવા જેવી છે. મહાસેન સિવાયના
બીજા કયા નવ રાજા એના આસાંકિત હતા તેની નોંધ તો કોઈ પણ જૈન ગ્રંથમાં મારા
જ્ઞાનમાં આવી નથી. પણ મહાસેન શી રીતે એના આસાંકિત થયો તેની કયા ઘણા

અંતોમાં આપેલી છે. આ મહાસેન, તે ઇતિહાસપ્રસિદ્ધ અવન્તીના રાજા તે જ મહાસેન છે જેનું વધારે પ્રખ્યાતિ પામેલું નામ પ્રદ્યોત અથવા અંધપ્રદ્યોત છે. અવન્તીના એ મહાસેન ઉપર ઉદાયને જે નિમિત્તથી ચર્ચા કરી એને પરાજિત કર્યો તેનું વર્ણન, આવશ્યક ચૂંટી અને ટીકા બંનેમાં દશપુરનગરની ઉત્પત્તિ બતાવતાં કરેલું હોઈ તેનો સારાઈ આ પ્રમાણે છે:—

એક વખતે કેટલાક મુસાફરો સમુદ્રની યાત્રા કરતા હતા. સમુદ્રમાં ખૂબ તોફાન થવાથી તેમનું વહાણ ખરાબે ચઢ્યું અને કોઈ પણ રીતે તે આગળ વધતું ન હતું. તેથી લોકો બહુ ગભરાયા. તેમની આ દશા એક દેવના જોવામાં આવી અને તેથી પોતાની શક્તિ વડે તે વહાણને ખરાબામાંથી બહાર કાઢી રસ્તે પાઠ્યું અને વળી તે લોકોને મહાવીર તીર્થંકરની અંદનકાષ્ઠની બનાવેલી એક મૂર્તિ—જે તે દેવે જાતે જ બનાવી હતી—લાકડાની પેટીમાં બંધ કરીને આપી અને કહ્યું કે આમાં દેવાધિદેવની મૂર્તિ સુકેલી છે. એના પ્રભાવથી તમે સહિસલામત રીતે સમુદ્રપાર જઈ શકશો. થોડા જ દિવસોમાં એ વહાણ શિંધુસૌવીરના કાંઠે આવી લાગ્યું. પછી તે લોકોએ દેવે આપેલી તે મૂર્તિને વીતભયમાં ઉતારી દીધી. તેને ત્યાંના રાજા ઉદાયનની રાણી પ્રભાવતીએ પોતાના મહેલમાં એક ચેત્યગૃહ બનાવી તેમાં સ્થાપી અને હંમેશાં તેની પૂજા કરવા લાગી. રાજા જો કે પહેલાં તો તાપસધર્મિઓના ભક્ત હોતા પણ પાછળથી ધીમે ધીમે તે એ મૂર્તિ ઉપર શ્રદ્ધાવાળો થવા લાગ્યો. એક દિવસે રાણી પ્રભાવતી નાચ કરતી હતી અને રાજા વીણા વગાડતો હતો. તે વખતે રાજાની દૃષ્ટિમાં રાણીનું માથું નહીં જેઠાવાથી તે અધીરો થયો અને તેથી તેના હાથમાંથી વીણા વગાડવાનો ગજ સરી પડ્યો. રાણી આ જોઈ ગુસ્સે થઈ અને યોદ્ધી કે “સ્વામિન! શું મહેં ખરાબ નાચ કર્યો છે, જેથી તમે વીણા વગાડવી બંધ કરી દીધી?” વધુ આગ્રહ કરતાં રાજાએ ખરી હકીકત કીધી અને તેથી રાણી સમજી ગઈ કે હવે મારું આયુષ્ય થોડું જ બાકી રહ્યું છે. તેથી જીવનનું શ્રેયઃ સાધવા સંસારનો ત્યાગ કરી લિલુણી થતું જોઈએ. લિલુણી થવા માટે રાજાની અનુમતિ માંગતાં, ઘણા વિદેશ પછી, રાજાએ એવી સરતે તેને અનુમતિ આપી કે “જો તું મરીને સ્વર્ગમાં દેવતા થાય તો પછી અહીં આવીને મને તારે સફળોધ આપવો.” રાણીએ તે સરત કબૂલી કરી અને લિલુણી થઈ. થોડા જ દિવસમાં કાલ કરી તે સ્વર્ગમાં દેવતા રૂપે ઉત્પન્ન થઈ. પૂર્વે આપેલા વચન પ્રમાણે તેણે સ્વર્ગમાંથી આવીને રાજાને સફળોધ કર્યો અને તેથી રાજા પણ દિવસે દિવસે વધારે ધર્મિષ્ઠ થયો.

રાણીના મરી ગયા પછી તે મહાવીરની મૂર્તિની, રાણીની એક વિશ્વાસુ પણ શરીરે ફૂંખડી એવી એક દાસી હતી તે હંમેશાં ભક્તિપૂર્વક પૂજા કર્યા કરતી હતી. એક વખતે ગાંધાર દેશનો એક શ્રાવક એ પ્રભાવશાલી મૂર્તિનાં દર્શન કરવા માટે ત્યાં આવ્યો. દાસીએ તે શ્રાવકની ખૂબ પરિચર્યા કરી તેથી તે ખુશી થઈને જતી વખતે પોતાની પાસે એક પ્રકારની દેવી પ્રભાવવાળી ગોળિઓ હતી તે તેને આપતો ગયો. એ ગોળીઓના ભક્ષણથી

દાસીનું કૂખડાપણું મટી જઈ તેને ગદલે અપસરા જેવું રૂપસૌંદર્ય પ્રાપ્ત થયું. એની એ સુવર્ણ જેવી શરીરકાંતિને લીધે લોકો તેને હવે સુવર્ણચુલિકાના નામે ઓળખવા લાગ્યા. તેના એવા દેવી સૌંદર્યની ખગર જ્યારે ઉજ્જયિનીના ચંડપ્રવોતના સાંભળવામાં આવી ત્યારે તે એના ઉપર મોહિત થયો અને એને મેળવવાનો પ્રયત્ન કરવા લાગ્યો. ગુપ્તચરો દ્વારા પ્રવોતનો મનોભાવ દાસીના બાણવામાં અવતાં તે પણ એના ઉપર અનુરક્ત થઈ. આખરે એક રાત્રિએ પોતાના નલગિરિ નામે દેશપ્રસિદ્ધ હાથી ઉપર બેસીને ચંડપ્રવોત બતે ત્યાં આવ્યો અને દાસીને ઉપાડી ગયો. જતી વખતે દાસી પોતાની સાથે તે મહાવીરની ચમત્કારિક મૂર્તિ પણ લેતી ગઈ અને તેને ઠેકાણે, ઉદાયન રાજ્યને તરત ખગર ન પડે તેટલા માટે પહેલાંથી જ પ્રવોત પાસે તૈયાર કરાવી મંગાવેલી તેના જેવી ખીજી મૂર્તિ સ્થાપિત કરતી ગઈ. ખીજે દિવસે સવાર થતાં ઉદાયનને એ બધી હકીકતની ખગર પડી. ચંડપ્રવોત તરફ તેણે તરત એક દૂત મોકલી તેના એ કૃત્ય પ્રત્યે પોતાનો ખૂબ તિરસ્કાર અને ક્રોધ બતાવ્યો અને છેવટે જણાવ્યું કે જો દાસી તેને રાખવી હોય તો ભલે રાખે, પણ તેની સાથે લઈ જવામાં આવેલી મહાવીરની મૂર્તિને પાછી મોકલી આપવી. ચંડપ્રવોતે આનો કાંઈ જવાબ ન આપ્યો અને તેથી ઉદાયન પોતાના મોટા દળબળ સાથે અવંતી ઉપર ચઢાઈ કરવા ચાલી નીકળ્યો. એ વખતે જે મહિનો ચાલતો હોવાથી મરુભૂમિ પસાર કરતાં તેના સૈન્યને પાણી વિના ઘણી પીડા ભોગવવી પડી હતી અને છેક જ્યારે પુષ્કરના પ્રદેશમાં આવ્યો ત્યારે કાંઈક શાંતિ મળી. ત્યાં થોડોક સમય થોભી તે ઉજ્જયિની પહોંચ્યો. ત્યાં આગળ પ્રવોત પણ એના ભેટો કરવા સામે તૈયાર થઈ ઉભો હતો. યુદ્ધની વાટાઘાટ ચાલી ત્યારે ઉદાયને જણાવ્યું કે ‘જે તારી મરજી હોય તો આપણે બંને બતે જ યુદ્ધ કરી એક ખીજાના ભાગ્યને નિર્ણય કરી લઈએ. વિના કારણ આ ખીજા માણસોનો સંહાર કરવા કરાવવામાં શો લાભ છે ?’ પ્રવોત ઉદાયનના આ વિચાર સાથે સમ્મત થયો અને બંનેએ સ્થવરે યુદ્ધ કરવાનું નિશ્ચિત કર્યું. પરંતુ પ્રવોત કપટથી પાછળથી પોતાના જગપ્રસિદ્ધ નલગિરિ હાથી ઉપર ચઢી બેસી ઉદાયન ઉપર ધસી ચાલ્યો. ઉદાયન પ્રવોતની આ ધૂર્તતા જોઈ રહેજ આશ્ચર્ય પામ્યો અને છેવટે પોતાની બાણ ચલાવવાની કુશળ કળાથી પ્રવોતના હાથીના પગોને વીંધી નાંખી તેને ભોંય ભેગો કર્યો અને પછી પ્રવોતને પકડી પોતાના શિબિરમાં કેદ કર્યો. આ રીતે પ્રવોતનો પરાજય કરી તેને પોતાનો બંદી બનાવ્યો અને ઉદાયન ત્યાંથી તુરત પોતાના રાજ્ય તરફ રવાના થયો. ઉજ્જયિનીથી કેટલેક છેટે જતાં ચોમાસાનું ભેર વધ્યું તેથી વચ્ચે એક ઠેકાણે સાડું મેદાન જોઈ ઉદાયનના સૈન્યે ચોમાસું વિતાડવા વ્યવસ્થિત રીતે પડાવ નાખ્યો. એ આખું સૈન્ય ૧૦ વિલાગોમાં ગોઠવાયું અને દરેક વિલાગની આસપાસ કામચલાઉ માટીની દ્વીવાલો બાંધી લેવામાં આવી. ભર ચોમાસામાં જ્યારે પર્યુષણ (પવનસણ) નું પર્વ આવ્યું ત્યારે ઉદાયને પોતાની સાથેનાં બધાં માણસો સાથે વૈરવિરોધની ક્ષમા માંગી. પ્રવોત પણ તેની સાથે જ હતો તેથી તેની પણ ક્ષમા માંગવાની તેને ધર્મદષ્ટિએ ફરજ જણાઈ. એટલે

તેણે પ્રવોત્તને બાંધનમુક્ત કરીશો અને સ્વસ્થાનમાં જવા માટે વિસર્જિત કર્યો. ચોમાસું ઉતર્યા બાદ ઉદાયન પોતાના નગરમાં આવ્યો.

જે ઠેકાણે ઉદ્યાનનું સૈન્ય દસ વિભાગમાં કિલ્લેબંધી કરી ચોમાસું વિતાડવા રહ્યું હતું. ત્યાં સૈન્યના આશ્રયને લઈને ખીલત પણ કેટલાક વ્યાપારી વગેરે લોકો આવી વસ્યા હતા કે જેઓ સૈન્યના આલ્યા ગયા પછી પણ ત્યાં જ સ્થિર થઈ ગયા હતા. તેથી તે સ્થાનને લોકો દશપુરના નામે ઓળખવા લાગ્યા.

*आपस्यकसूत्र टीका, पृ. २६१-३००.

માળવામાં આવેલા મન્દસોર શહેરને દશપુર કહેવામાં આવે છે. જૂના લેખોમાં એનું નામ દશપુર એવું જ લખેલું મળી આવે છે. 'દશપુર' નું નામ 'મન્દસોર' કેમ થયું તે બાબતમાં ડૉ. ફરીદ Corpus Inscriptionum Indicarum ના ૩ જા ભાગમાં પાન ૭૯ ઉપર એક નોટ લખી છે તેમાં જણાવે છે કે—

"એ ગામને, ત્યાંના તથા ઇતર સુધીના આજુબાજુના ગામડીયા અને ખેડૂતો, મન્દસોરને બદલે દસોરના નામથી વ્યવહાર છે. લગભગ દોઢે સેકા પહેલાંની દૈનિક સનદોમાં અત્રય ભાષામાં લખેલા ક્ષેત્રોમાં દસોર, તથા ફારસી ભાષામાં લખેલા ક્ષેત્રમાં મન્દસોર એમ લખેલું જોવામાં આવે છે. વળી, જેમ બેલગામ, જિલ્લામાં સપગામ અને ઉગરગોળને રથાને પંડિત હોકો અનુક્રમે અહિપુર અને નખ-પુરનો પ્રયોગ કરે છે, તેમ અહીં પણ પંડિતો પોતાના વ્યવહારમાં એને માટે સામાન્ય રીતે ‘દશપુર’ નામ વાપરે છે, પરંતુ, આ સંસ્કૃત નામો મૂળ અસ્તિત્વમાં હતો, અગર તે મૂળ મામીય શબ્દોનાં પંડિતોએ કરેલાં સંસ્કૃત ભાષાંતરિત નામો છે એ વિશે ચર્ચાને પૂરતું રથાન રહે છે. પૂર્વે, એ સ્થળે પૌરાણિક રાજા દશરથનું નગર હતું એમ રથાનિક હોકો સમજાવે છે, એ સમજાય ખરી માનવામાં આવે, તો એ ગામનું નામ ‘દશરથો?’ થવું જોઈએ. હવે એનો ખરો અર્થ આ પ્રમાણે હોય એમ લાગે છે:-જેમ હાલમાં આજુબાજુ આવેલાં ખજંગીપુર, જંકુપુરા, રામપુરિયા, ચંદ્રપુરા, બાલાગંજ વગેરે બાર-પંદર ગામડાંના સમાવેશ એ નગરમાં થાય છે. તેમ પૂર્વે પણ તેમાં ‘દશ’ ગામડાં (‘પુર’) નો સમાવેશ થતો હશે. પરંતુ, મન્દસોર એવું જે આખું નામ સર્વત્ર પ્રસિદ્ધ છે તથા નક્કશમાં લખવામાં આવે છે તેના મૂળ વિષે હાલમાં કાંઇપણ સમજીતી આપી શકાય તેમ નથી.” તેનું નામ ‘મન્દ-દશપુર’ પડ્યું હશે એમ ડા. લગવલલાલ છટ્ટોએ મને એક વખત સૂચવ્યું હતું. મન્દ એટલે દુઃખી થયેલું કારણ કે મુસલમાનોના હાથે તેની તથા હિંદુ દેવાલયોની અત્યંત ખરાબી કરવામાં આવી હતી, અને જેને લીધે હાલમાં પણ નાગર બ્રાહ્મણો ત્યાંનું પાણી पीતા નથી. આ સૂચનાના સમર્થનમાં મારે જણાવવાનું કે જ્યારે હું એ સ્થળે ઉભો હતો, ત્યારે મેં એક પંડિતને એ વિષે પ્રશ્ન કર્યો અને તેના ઉત્તરમાં તેણે એ ગામનું ‘મનસોર’ એવું એક ત્રીજું નામ પણ જણાવ્યું. એ વિષે બીજી એક સૂચના ઉત્તરમાં તેણે એ ગામનું ‘અનસોર’ એવું એક ત્રીજું નામ પણ જણાવે છે કે એ નામમાં ‘મદ’ અને ‘દશપુર’ એમ બે નામો મળેલાં છે, આમાંનું પહેલું મદ (-ભુઓ. ઇ. એ. પુ. ૧૫, પા. ૧૯૫) એક ગામનું નામ છે, જેને બોલેલાં છે, આમાંનું પહેલું મદ (-ભુઓ. ઇ. એ. પુ. ૧૫, પા. ૧૯૫) એક ગામનું નામ છે, જેને બોલેલાં છે, આમાંનું પહેલું મદ (-ભુઓ. ઇ. એ. પુ. ૧૫, પા. ૧૯૫) એક ગામનું નામ છે, જેને બોલેલાં છે, આમાંનું પહેલું મદ (-ભુઓ. ઇ. એ. પુ. ૧૫, પા. ૧૯૫)

આ ‘મદ’ નાં બાળેલાં હિંદુ દેવાલયો પત્થરો વડે મન્દસોરનો મુસલમાની કબ્રો બાંધવામાં આવ્યો હતો. હું ધારું છું કે ગમે તેવી સત્ય દલીલો ‘દશપુર-મહારાષ્ટ્ર’ માંથી મળી શકશે. પરંતુ તે પુસ્તક

આ રીતે, જૈનપરંપરામાં મહાસેન પ્રદ્યોત વીતિભયના ઉદાયનનો આશાંકિત થએલો માનવામાં આવે છે.

ઉદાયનનું પાછલું જીવન.

ઉદાયનના રાજકીય જીવન સંબંધમાં આટલી હંકીકત પાછળના જૈન ગ્રંથોમાં મળે છે, મૂળ ભગવતી સૂત્ર કે જ્ઞેનો ઉલ્લેખ ઉપર કરવામાં આવ્યો છે તેમાં ફક્ત એટલી જ બાબત વર્ણવી છે, કે જ્યારે શ્રી મહાવીર વીતિભયમાં આવ્યા ત્યારે ઉદાયન તેમનો ધર્મોપદેશ સાંભળી તેમની પાસે દીક્ષા લઈ તેમનો શિષ્ય બન્યો. આ દીક્ષા લેતી વખતે તેણે પોતાનું રાજ્ય કેને સોંપવું એ માટે એક નિલક્ષણ વિચાર કર્યો. રાજ્યનો ખરો હકકદાર એનો પુત્ર અભીતિકુમાર થતો હતો. પણ, રાજ્યાધિકાર ચંલાવનાર મનુષ્યો ઘણા ભાગે દુર્વ્યસની અને દુરાચારી થઈ જાય છે અને એવા વ્યસની અને આચારહીન મનુષ્યો મરીને દુર્ગતિમાં જાય છે, તેથી પોતાનો પુત્ર રખેને રાજ્યસત્તાના ચોગે દુર્વ્યસની બની દુર્ગતિમાં જઈ પડે એવી જાણથી પુત્રને રાજ્ય ઉપર ન બેસાડતાં પોતાનો ભણેજ ને કેશીકુમાર કરીને હતો તેને બેસાડ્યો. પિતાના આ કૃત્યથી અભીતિકુમાર બહુ નારાજ થયો અને તેથી પોતાની બધી માલમત્તા લઈ તે ત્યાંથી ચાલ્યો ગયો અને ચંપાના રાજા કુશ્વિક પાસે (કે જે તેનો માસિયાઈ ભાઈ થતો હતો) જઈ રહ્યો. આ પ્રમાણે આખી જીંદગી તે પિતા ઉપર વૈરભાવ રાખતો થકે ત્યાંનો ત્યાં જ મરી ગયો. નમુના ખાતર સૂત્રકારનાં કેટલાંકે વચનો અહિં આપું છું—

તપ ણં સે ઉદાયણે રાયા સમણસ્ય ભગવણો મહાધોરસ્સ અંતિયં ધમ્મં સોચ્ચા નિસમ્મ દ્વદ્વુટ્ટે ઉટ્ઠાપ. ઉટ્ટેહત્તા સમણં ભગવં મહાવીરં તિક્ખુત્તો જાવ નમંસિત્તા પવં વયાસી ' પવમેયં મંતે ! તહમેયં ! જહેયં તુબ્બે ઘદ્દહ ' તિ.....અહં દેવાણુપિયાણે અંતિય મુંહે ભવિત્તા જાવ પવ્વયામિ. '...તપ ણં તસ્સ ઉદાયણસ્સ રજ્જો અયમેયા રૂવે અવ્ભત્થિપ...સમુપ્પજિત્થા—' પવં જહુ અમીયીકુમારે મમં પગે પુત્તે દ્વદ્વે કંતે' જાવ કિમંગે પુણ પાસણયાપ, તં જહિ ણં અહં અમીયીકુમારં રજ્જે ટાવેત્તા સમણસ્સ ભગવણો મહાધોરસ્સ અંતિયં મુંહે ભવિત્તા જાવ પવ્વયામિ; તા ણં અમીયીકુમારે રજ્જે ય : રદ્ધે ય જાવ જણવપ માણુસ્સપ્પુ ય કામભોગેસુ મુચ્છિપ ગિદ્ધે.

મને જોવા મળી શક્યું નથી. આ લેખ ઉપરાંત, ઉપવદ્ધાતના નાસિકના એક ગ્રામીન લેખમાં બીજી લીટીમાં દશપુર એ સંસ્કૃત નામ વાપરવામાં આવેલું છે. (જુઓ આર્કાઈ. સર્વે. વેસ્ટ. ઇ. પુ. ૪ પા. ૯૯, ૧૬૦, પર નં. ૫); તથા મન્દસોરના જ એક બીજા લેખમાં એ નામ વપરાયેલું જોવામાં આવે છે. મિતિ (વિક્રમ) સંવત ૧૩૨૧ (ઇ. સ. ૧૨૬૪-૬૫) સુરવાર ભાદ્રપદ શુકલ પંચમી છે; તથા એ લેખ દિલ્હાના પૂર્વ તરફના પ્રવેશદ્વારના અંદરના દરવાજાની કાળી બાજુએ બીંત પર ચણી લીધેલા એક શ્વેત પથ્થર પર લખેલો છે. વળી, પૃથ્વીસંહિતા ૧૪, ૧૧-૧૬ (જુઓ કર્નટી અહેવાલ જર્ન. રો. એ. સો. નો. સ. પુ. ૫. પા. ૮૪) માં પણ અવંતિ સાથે આ સ્થળનો પણ એ જ નામથી ઉલ્લેખ કરેલો છે.

ગદિપ અજ્ઞોવચન્ને અણાદીયં અણવદ્ ગં દીદમદ્ ચાઉરન્તસંતાર કન્તારં અણપરિયદિસ્ત-
દ્ । તં નો ચલુ મે સેયં અમીયીકુમારં રજ્જે ઠાવેત્તા...પવ્વહ્મત્તપ્પ । સે યં ચલુ મે ણિયગં
માહ્ણેજ્જં કેસિં કુમારં રજ્જે ઠાવેત્તા...પવ્વહ્મત્તપ્પ ।...તપ્પ ણં સે કેસી કુમારે રાયા જાણ
...।...તપ્પ ણં સે ઉદાયણે રાયા સયમેવ પંચમુદ્વિયં લોયં કરેદ્...જાવ સવ્વદુક્કસપ્પહોણે ।

તપ્પ ણં તસ્સ અમીયિસ્સ કુમારસ્સ અગ્ગદા કયાદ્ પુવ્વરત્તાયરત્તકાલસમયંસિ કુદુંઘ-
જાગરિયં જાગરમાણસ્સ અયમેયારૂવે અબ્ભત્તિય જાવ સમુપ્પજિત્થા-‘ પવં ચલુ અદં
ઉદાયણસ્સ પુત્તે પમાવતીપ દેવીપ અત્તપ્પ, તપ્પ ણં સે ઉદાયણે રાયા મમં અવહાય
નિયગં માહ્ણેજ્જં કેસિકુમારં રજ્જે ઠાવેત્તા સમણસ્સ મહાવીરસ્સ અન્તિપ્પ પવ્વહ્મ ।’
इमेणं पयारूवेणं महया अप्पत्तिपणं मणो माणसिपणं दुक्खेणं अभिभूय समाणे अंतेपुर-
परियालसंयखिबुडे समंडमसौवगरणमायाप वीतीभयाओ नयराओ पडिनिग्गच्छंति ।
पडिनि० २ पुव्वाणुपुर्व्वि चरमाणे गामाणुगामं दुइज्जमाणे जेणेव वंपानयरी जेणेव
कूणिप राया तेणेव उवागच्छद्...कूणिप रायं उवसंपज्जिताणं विहरद् । तत्थ वि णं से
विउलभोगसमिद्विसमन्नागए यावि हेट्था । तप णं से अभीयीकुमारे समणोवासए यावि
हेत्था । अभिगयजीवाजीवे...उदायणांमि रायरित्तिमि समणुवज्जवेरे कालमासे कालं
किच्चा...। (भगवती, पृष्ठ ६१८-२०)

ઉદાયનના મરણની હકીકત.

આવશ્યકશૂણિ, ટીકા આદિ ગ્રન્થોમાં ઉદાયનના મૃત્યુની નોંધ આ પ્રમાણે લીધેલી
મળી આવે છે:-ઉદાયન રાજ્યએ દીક્ષા લીધા પછી લૂખા-સૂકા મળેલા ભિક્ષાહારને લીધે
તેના શરીરમાં વ્યાધિ ઉત્પન્ન થયો. વૈદ્યએ તેને દહીં ખાવાનું જણાવ્યું. તેના માટે તે
પ્રજામાં રહેતો. એક વખતે વીતલયમાં ગયો. ત્યાં તેનો ભાણેજ કેશી રાજા રાજ્ય કરતો
હતો કે જેને તેણે જ રાજ્ય ઉપર બેસાડ્યો હતો. કેશીકુમારને તેના દુષ્ટ મંત્રિઓએ ભર-
માવ્યો કે ‘ આ ઉદાયન ભિક્ષુજીવનના કપટી કંટાળ્યો છે અને રાજ્ય મેળવવા આવે છે. ’
તેણે કહ્યું-‘ આપી દહિશ. ’ મંત્રિઓએ કહ્યું કે ‘ એ રાજ્યધર્મ નથી. મળેલું રાજ્ય તે
કોઈ આપી દેતું હશે ? ’ લાંબાકાળે મંત્રિઓએ તેને સમજાવી પટાવી રાજ્ય ન આપવા
માટે પાકો કર્યો. ત્યારે તેણે પૂછ્યું કે-‘ તો પછી શું કરવું જોઈએ ? ’ મંત્રી કહે-‘ વિષ
અપાવવું જોઈએ. ’ પછી તેની વ્યવસ્થા કરવામાં આવી. એક ગોવાળણના હાથે દહીંમાં
જેર નખાવી તે સુનિને અપાવ્યું અને એ રીતે તેના જીવનનો અંત આણ્યો. આ વૃત્તાંત
જાણી નગરની દેવતાને ભારે ક્રોધ થયો અને તેથી તેણે આખા નગર ઉપર ધૂળની વૃષ્ટિ
કરવી શરૂ કરી. ઉદાયન સુનિ ત્યાં એક કુંભારના ઘરમાં ઉતર્યો હતા અને તે કુંભાર
એમની પરિચર્યા કરતો હતો તેથી તેને અનપરાધ જાણી દેવતાએ ત્યાંથી ઉપાડી સિનવહી
નામના પ્રેદેશમાં સુક્યો. કે ત્યાં તેના નામથી બીજું નગર વશ્યું. વીતલય પત્તન દેવ-

તાએ વર્ષોવેલા ધૂળના વર્ષોદથી આખું તેની અંદર દટાઈ ગયું. આજે પણ ત્યાં ધૂળનો ઢગલો ભોળુદ છે.^૧

^૧ આવશ્યકસૂત્રટીકા, પૃષ્ઠ ૫૮૭-૩૮. ઉદાયન સંબંધી આ બંધી હકીકતવાળી કથા, પુરાતત્ત્વ મંદિર તરફથી પ્રકટ થયેલ પ્રાકૃત કથાસંગ્રહમાં પણ અવિલી છે.

આચાર્ય હેમચંદ્રની બીજી નવી હકીકત.

આચાર્ય હેમચંદ્રે પોતાના મહાવીરચરિત્રમાં, મહાવીરના સમયને લગતી જેટલી હકીકતો-કથાઓ વિગેરે પ્રાચીન જૈન ગ્રંથોમાં મળી આવી છે તે બધીના તેમજે ઉપયોગ કર્યો છે. અને જ્યાં ત્યાં પ્રસંગ લાઇ એ હકીકતોને બંધ બેસતી બનાવી છે. ઉદાયનની ઉપર આપેલી બંધી કથા પણ તેમજે પોતાના એ ચરિત્રમાં સંપૂર્ણ રીતે ગોઠવી છે અને તેમાં બીજી પણ કેટલીક વધારે વાતો મુકી છે જે જૂના ગ્રંથોમાં નોવામાં આવતી નથી. પણ વધારે ધ્યાન ખેંચવા લાયક નોંધ તો તેમજે એક એ કરી છે કે-વીતભય પત્તન જ્યારે ઉક્ત રીતે, ઉદાયનના મૃત્યુને લીધે, દેવતાના કેવળથી નષ્ટ થઇ ગયું ત્યારે તેમાં મહાવીરની તે ચંદનની મૂર્તિ પણ દટાઇ ગઇ હતી. એ મૂર્તિને ગુજરાતના ચાલુક્યરાજા કુમારપાળે, પોતાના કહેવાથી, જમીનમાંથી ખોદી કાઢી હતી અને એક રથમાં બેસાડી તેને પાટણમાં લાવવામાં આવી હતી. પછી તેના માટે કુમારપાળે એક ભવ્ય મંદિર બંધાવ્યું અને હેમચંદ્રના હાથે તે મૂર્તિની એ મંદિરમાં ઘણા મહેલસવ પૂર્વક પ્રતિષ્ઠા કરાવી. હેમચંદ્રે આ બાબતનું બધું વૃતાંત, ભવિષ્ય પુરાણની માફક, મહાવીરના મુખથી કહેવડાવ્યું છે. રાજા શ્રેણિકેનો પુત્ર અભયકુમાર મહાવીરને પૂછે છે : અને મહાવીર તેનો ઉત્તર આપે છે. ભવિષ્યની બાબતે છોડી દઇને આપજે જે હેમચંદ્રના કથન ઉપર વિશ્વાસ કરી શકે એ તો તેમાંથી આટલું ઐતિહાસિક તથ્ય આપજે જરૂર કાઢી : શકે એ કે-વીતભયનું ઉદ્ધવત થયેલું પ્રાચીન સ્થાન આચાર્ય હેમચંદ્રને મળીતું હતું અને ત્યાંથી એક પ્રાચીન તીર્થંકરની મૂર્તિ પણ તેમને મળી આવી હતી જે રાજા કુમારપાળ પાસેથી તેમજે પાટણમાં અણુવી હતી અને તેના માટે એક નવીન મંદિર તૈયાર કરાવી તેમાં તેને સ્થાપન કરવામાં આવી હતી. આ મૂર્તિનો પ્રસંગ લઇ હેમચંદ્ર સૂરિએ ગુજરાતની ગૌરવશાલી રામધાની પાટણ અને તેના રાજા કુમારપાળનું, કાંઈક આલંકારિક પણ ધણે ભાગે સત્ય એવું જે વર્ણન એમજે પોતાની કલમથી કરેલું છે તે લાંબુ હોવા છતાં પણ ભાષાંતર રૂપમાં બધું અહીં આપી દેવાનો મને લોભ થાય છે. પુરાતત્ત્વના વાંચકોને એ અવરખ ઉપયોગી થઈ પડશે. વર્ણન આ પ્રમાણે શરૂ થાય છે:- “અભયકુમારે પુનઃ પૂછ્યું, ‘હે પ્રભુ ! તમે કહ્યું કે એ પ્રતિમા પૃથ્વીમાં દટાઇ જશે, તે પછી ક્યારે પ્રકટ થશે ?’ પ્રભુ બોલ્યા કે-સૌરાષ્ટ્ર, લાટ, અને ગુર્જર દેશના સીમા-ડામાં અણુહિલપુર પાટણ નામે એક નગર વસશે, તે નગર આર્યભગિનું શિરોમણિ, કથાણેલું સ્થાન અને અહત ધર્મનું એક છત્રરૂપ તીર્થ થશે. ત્યાં ચૈત્યોને વિષે રહેલી રત્નમયી નિર્ભજ અહત પ્રતિમાઓ નંદીશ્વર વિગેરે સ્થાનેની પ્રતિમાની સત્વતા બતાવી આપશે. પ્રકાશમાન, સુવર્ણ ફળશોભી શ્રેણિથી જેમનાં શિખરો અદ્ભૂત છે એવાં તે ચૈત્યોથી જાણે સર્વ ત્યાં આવીને વિશ્રાંત થશે હોય તેવી શોભાને ધારણ કરશે. ત્યાં પ્રાયઃ સર્વજનોને શ્રાવક થશે, અને તેઓ અતિચિસંવિભાગ કરીને જ ભોજન કરશે. બીજાની સંપત્તિમાં દબારાહિત, સ્વસંપત્તિથી સંગૃહ્ય અને પાત્રમાં દાન આપનાર એવી ત્યાંની પ્રજા થશે. અલંકારપુરીમાં યક્ષની જેમ ત્યાં ઘણા ધનાઢ્ય આવકેા થશે. તેઓ અરિહંતભક્ત બની સતે હૈત્રેમાં દ્રવ્યનો વ્યય કરશે. સુખમાં કાળની જેમ ત્યાંના સર્વ લોકો પરધન અને પરભીથી વિમુખ થશે. હે અભયકુમાર ! અમારા નિર્વાણ પછી સોળસો ને ઓગણતર વર્ષ જશે, ત્યારે એ નગરમાં ચૌલુક્ય

ઉઠે છે. આ મૂર્તિને ઉપાડી જવા માટે જુદા જુદા દેશના અનેક રાજાઓએ પોતાની શક્તિ વાપરી છે અને ઘણા માણસોએ ભેગા થઈને એને ખસેડવાનો પ્રયત્ન કર્યો છે પણ તેઓ એને જરા પણ હલાવી શક્યા નથી. તેઓ એ મૂર્તિની પ્રતિકૃતિ બનાવીને તેની પૂજા કરે છે* અને તેમ કરી, મૂળ મૂર્તિની જ તેઓ પૂજા કરે છે એમ શ્રદ્ધા રાખે છે. (જુઓ:-Beal's Buddhist Records of the Western Countries, Book I. p. 234) આવી જ એક મૂર્તિની બીજી નોંધ, એ મુસાફરે ખોતાન પ્રદેશના પિમા શહેરના વૃત્તાતમાં લીધી છે. તે લખે છે કે-“અહીં (પિમા શહેરમાં) ચંદનના લાકડામાંથી બનાવેલી બુદ્ધની એક ઉભી આકૃતિની મૂર્તિ છે. આ મૂર્તિ લગભગ ૨૦ ફીટ ઉંચી છે. આ મૂર્તિ ઘણી ચમત્કારિક છે અને એમાંથી તેજ સ્ક્રુઓ કાઢે છે. જેમને કોઈ પણ પ્રકારનો રોગ થાય છે તેઓ આ મૂર્તિની સોનાના વરખથી પૂજા કરે છે અને તેમ કરવાથી તેઓ સાજા થઈ જાય છે-એવી અહીંના લોકોની માન્યતા છે. જેઓ અતઃકરણપૂર્વક આ મૂર્તિની પ્રાર્થના કરે છે તેમણે ‘ધર્મચક્ર’ સંરક્ષણ થઈ જાય છે. અહીંના લોકો કહે છે કે, આ મૂર્તિ, એ જૂના જમાનામાં કે જ્યારે બુદ્ધ જીવતા હતા ત્યારે, કૌશાંબીના ઉદ્યાન રાજાએ બનાવી હતી; બુદ્ધ જ્યારે નિર્વાણ પામ્યા ત્યારે એ મૂર્તિ પોતાની મેળે ત્યાંથી આકાશમાં ઉડીને આ રાજ્યના ઉત્તરે આવેલા હો-હો-હો-કિ-અ નામના શહેરમાં આવીને રહી. આ નગરના લોકો શ્રીમાન અને વૈભવશાલી હતા, તેમ જ મિથ્યામતના અનુયાયી હતા. તેમને કોઈપણ બીજા પ્રકારના ધર્મને માટે માન ન હતું. જે દિવસથી એ મૂર્તિ ત્યાં આવી હતી ત્યારથી તેની દેવી અમત્કૃતિ પ્રકટ થવા લાગી. પણ લોકોએ તેના તરફ જરાએ આદર કેખાડયો નહીં.

ત્યાર પછી એક અર્હતે ત્યાં આવીને તેને નમસ્કાર કરી તેની પૂજા કરી. તે દેશના લોકો એ અર્હતને આકાર અને વેશ જોઈને લયલીત થયા અને રાજાને જઈને તરત તેની ખબર આપી. રાજાએ એણે કર્મોન કાઢવું કે એ આગતુક મનુષ્યને રેતી અને ધૂળથી ઢાંકી દેવો. તેથી લોકોએ તેને તેવી રીતે હેરાન કર્યો અને કોઈએ અન્નપાણી આપ્યાં નહિ. તેની આ સ્થિતિ જોઈને એક માણસ કે જે હંમેશાં એ મૂર્તિની પૂજા કરતો હતો તેને કોઈ થયો અને તેથી છાની રીતે આવી તેણે એ અર્હતને ખોરાક આપ્યો. જતી વખતે તે અર્હતે એ માણસને બોલાવીને કહ્યું કે આજથી સાત દિવસ પછી અહીં રેતી અને ધૂળની ભયંકર વૃદ્ધિ થશે જેથી આ આખું નગર દટાઈ જશે અને કોઈપણ જીવવા પામશે નહીં; એટલા માટે તારે પોતાનો જીવ બચાવવો હોય તો અહીંથી તરત ચાલ્યા જવું જોઈએ. ગામના લોકોએ મને જે રેતી અને ધૂળથી ઢાંકી દઈ હેરાન કર્યો છે. તેણે આ ક્ષણ મળનાર છે. આવી રીતે કહીને તે અર્હત બીજા ક્ષણે અદશ્ય થઈ ગયો. પછી તે માણસે શહેરમાં આવીને પોતાના સગા સંબંધીઓને આ વાત જણાવી પણ

*આવી જાતની એ મૂર્તિની એક પ્રતિકૃતિ વવનચંગ પોતાની સાથે ચીનમાં લઈ ગયો હતો તેની નોંધ પણ એ જ પુસ્તકમાં, પ્રતાપના, પાન ૨૦ ઉપર કરેલી છે.

તેઓ સાંભળીને માત્ર તેની સામે હસી રહ્યા. બીજે દિવસે એકાએક એક ભયંકર વટો-
ળીયો થયો જેના લીધે જમીનપરની બધી ગંદી ધૂળ આકાશમાં ઉડી ગઈ અને બદલામાં
આકાશમાંથી અનેક પ્રકારના મૂલ્યવાન પદાર્થો નીચે પડ્યા. આથી લોકો, તે માણસની
ઉલટી ખૂબ નિંદા કરવા લાગ્યા.

પરંતુ તે માણસને તો ભવિષ્યના બનાવની ચોક્કસ ખાત્રી હોવાથી તેણે શહેર બહાર
નિકળી જવા માટે જમીનમાં એક માર્ગ બનાવ્યો અને તેમાં જઈ તે છુપાઈ રહ્યો. સાતમે
દિવસે સંધ્યા કાળ થતાં ત્યાં રેતી અને ધૂળની ભયંકર વૃદ્ધિ થઈ જેથી તે આખું નગર
દટાઈ ગયું. પછી તે માણસ જમીનમાં જોડેલી સુરંગમાંથી બહાર નીકળી પૂર્વ દિશા
તરફ ચાલવા લાગ્યો અને આ પિંચા શહેરમાં આવીને મુકામ કર્યો. એ માણસ અહીં
આવ્યો કે તરત જ તે મૂર્તિ પણ અહીં આવીને પ્રકટ થઈ. માણસે તેની અહીં પણ
પૂજા કરી અને ત્યારબાદ તે અહીં જ રહી ગયો. જૂના ગ્રંથોમાં એમ કહેલું કે “જ્યારે
શાકયંધર્મનો અંત આવશે ત્યારે આ પ્રતિમા પાછી નાગલોકમાં ચાલી જશે. હો-હો-હો-
કિમ્મ શહેરની જગ્યાએ આવે એક મોટો રેતીનો ટેકરો થઈ રહેલો છે.” (ખીલતું ઉપ-
રોક્ત પુસ્તક, ભાગ ૨, પાન ૩૨૪.)

યવનચંગ અને દિવ્યાવદાન.

યવનચંગે આવેલી ઉપરોક્ત હકીકતનું મૂળ શું હશે તે કાંઈ હજી જાણવામાં આવ્યું
નથી, પણ એને મળતી કેટલીક હકીકત દિવ્યાવદાનમાં મારા જોવામાં આવી છે. દિવ્યા-
વદાનમાંની હકીકતનો કેટલોક ભાગ યવનચંગની હકીકત સાથે મળતો જોઈને તો મને
આશ્ચર્ય થયું જ, પણ એ કરતાંયે વધારે આશ્ચર્ય એ જાણીને થયું કે યવનચંગ અને
દિવ્યાવદાનમાંની-બંને હકીકતો ભેગી મળીને ઉપરોક્ત ઉદાયનવાળી જૈન હકીકત સાથે
પણ કેટલોક અંશે, એક થઈ જાય છે. દિવ્યાવદાનમાં રત્નાચલુપદાન નામનું એક પ્રકરણ
છે જેનો ટુંક સાર આ પ્રમાણે છે:-

જે વખતે ભગવાન બુદ્ધ રાજગૃહમાં રાજા બિંબિસારના વખતમાં રહેતા હતા તે
વખતે, એ મહા નગરે કહેવાતાં હતાં એક પાટલીપુત્ર અને ખીલ્લું રોડકું. રોડકું નગરમાં
રત્નાચલુ નામે રાજા રાજ્ય કરતો હતો. તેને ચંદ્રપલા નામે દેવી (રાણી), શિખંડી નામે
કુમાર, તથા હિકે અને ભિરુ નામના બે સુખ્ય મંત્રિઓ હતા. રાજગૃહમાં રાજા બિંબિ-
સાર રાજ્ય કરતો હતો અને તેને વેદેહી મહાદેવી, અળશતુ કુમાર અને વર્ધાકાર નામે
બ્રાહ્મણ સુખ્ય મંત્રી હતો. એક વખતે રાજગૃહના કેટલાક વ્યાપારિઓ રોડકું નગરમાં
ગયા અને તેઓ ત્યાંના રાજા રત્નાચલુને મળ્યા. રત્નાચલુે રાજગૃહના બિંબિસારની હકીકત
સાંભળી તેની સાથે મિત્રતા બાંધવાના ઇરાદાથી પોતાના રાજ્યમાં જે રત્ન વિગેરે બહુમૂ-
લ્ય પદાર્થો થતા હતા તે કેટલાક ભેટ રૂપે ત્યાં મોકલી આપ્યા. બિંબિસારે પણ તે
ભેટના જવાબમાં પોતાના દેશમાં જે મૂલ્યવાન વસ્તુ તૈયાર થતાં હતાં તે કેટલાક મોકલી

આખ્યાં. આ રીતે દિવસે દિવસે એ જાને રાજ્યોની મિત્રાચારી વધારે દૃઢ થતી ગઈ. એક વખતે રાજા બિંબિસારે રાજકના એ રાજ્યને ધર્મમાર્ગનો પરિચય કરાવવા માટે ભગવાન બુદ્ધની એક લગ્ન છળી તૈયાર કરાવી, તેના તરફ ઘણા માન પૂર્વક મોકલી આપી. તે છળી જોઈ રુદ્રાયણ રાજા બહુ આશ્ચર્ય પામ્યો અને છળી લાવનાર મનુષ્યોને, તે છળી કોની છે એ વિગેરે પ્રશ્નો પૂછી ભગવાન બુદ્ધના કલ્યાણકર જીવન અને ધર્મમાર્ગથી પરિચિત થયો. પછી તેની ઈચ્છા પણ એ ધર્મના અનુયાયી થઈ જવાની થઈ. ત્યાર પછી રાજા બિંબિસારે એ રાજ્યને વિશેષ ધર્મબોધ આપવા માટે ભગવાન બુદ્ધને વિરૂપિ કરીને મહા-કાત્યાયન નામના એક ભિક્ષુ અને શૈલા નામની એક ભિક્ષુણીને એ દેશમાં મોકલાવ્યાં. ભિક્ષુએ રાજ્યને અને ભિક્ષુણીએ રાજાના અંતઃપુરમાં રહીને રાણીને ભગવાન બુદ્ધના ધર્મનો બોધ આપવા માંડ્યો. એ જાનેના ઉપદેશથી રાજા અને રાણીની ધર્મ પ્રતિ ઘણી પ્રીતિ થઈ.

એ રાજા વીણા વગાડવામાં બહુ પ્રવીણ હતો અને રાણી નૃત્ય કરવામાં કુશલ હતી. એક દિવસે જ્યારે રાજા વીણા વગાડતો હતો અને રાણી નૃત્ય કરતી હતી, ત્યારે રાજાએ રાણીના મરણકાલ નજીક આવ્યાનાં લક્ષણો જોયાં, તેથી તેના હૃદયમાં ધ્રાસદો પડ્યો અને તેના હાથમાંથી વીણા જમીન પર પડી ગઈ. આ જોઈ રાણી અમકી અને રાજાને કહેવા લાગી કે 'દેવ ! શું મહેં ખરાબ નાચ કર્યો ?' રાજા કહે 'ના, એમ નથી.' પછી તેણે એ જોએલી બધી વાત કહી અને આજથી સાતમે દિવસે તારે મૃત્યુ થશે એમ કહ્યું. તે સાંભળીને રાણીએ કહ્યું 'દેવ ! જ્યારે એમ છે તો પછી, જે તમે મને અનુમતિ આપો તો મારે કલ્યાણ કરવા માટે હું પ્રમત્ત્યા લઈ ભિક્ષુણી થઈ જાઉં. રાજાએ એવી શરતે અનુમતિ આપી કે-જો તું મરીને દેવ થાય તો અહીં આવીને પછી મને તારે દર્શન આપવું. રાણીએ તે વાત કબૂલ કરી અને શૈલા નામા ભિક્ષુણીની પાસે પ્રમત્ત્યા લીધી. સાતમે દિવસે તે રાણી મરણસંજાની ભાવના કરતી ઘડી મરીને આતુર્ભંહારાજિક દેવ-લોકમાં દેવતાપણે ઉત્પન્ન થઈ. કરેલી પ્રતિજ્ઞા પ્રમાણે તે પછી રાત્રે આવીને રાજાને પ્રત્યક્ષ થઈ ત્યારે રાજાએ શય્યામાં સૂતા સૂતા જાને હાથો લાંબાં કરી તેને આલિંગન કરવા માટે પાસે બોલાવી. દેવી કહે 'મહારાજ ! હું તો અહીંથી મરીને સ્વર્ગમાં દેવ-કન્યા થઈ છું. જો તમારે મારો સમાગમ જોઈતો હોય તો તમે પણ ભગવાન બુદ્ધ પાસે પ્રમત્ત્યા લો જેથી કાળ કર્યા પછી તમે સ્વર્ગમાં ઉત્પન્ન થઈ શકશો અને મારી સાથે સમાગમ કરી શકશો.' એમ કહી દેવી અંતર્ધાન થઈ. રાજાએ આખી રાત સંકલ્પ વિકલ્પમાં વીતાડી, આખરે પ્રમત્ત્યા લેવાનો નિશ્ચય કરીધો, અને તે પ્રમાણે પોતાના પુત્રને શિષ્યીને રાજ્ય ઉપર બેસાડી પોતે ત્યાંથી રાજગૃહ નગરમાં જ્યાં ભગવાન બુદ્ધ રહેતા હતા ત્યાં ગયો. જતી વખતે પુત્રને ધર્મનીતિપૂર્વક રાજ્યનું રક્ષણ અને પ્રજાનું પાલન કરવા માટે એ શબ્દો કહેતો ગયો અને પોતાના જે એ મુખ્ય મંત્રિઓ હતા તેમને બધી વ્યવસ્થા સંભાળવાનું સૂચન કરતો ગયો. તેણે પછી ભગવાન બુદ્ધ પાસે પ્રમત્ત્યા લીધી અને તે તેમનો શિષ્ય બન્યો.

આ તરફ તેનો પુત્ર શિખંડી બીજા બે દુષ્ટ મંત્રીઓની સંગતિથી અનીતિના માર્ગે ચઢ્યો અને પ્રજાને પીડા આપવા લાગ્યો. જૂના જે બે સારા મંત્રી હતા તેમને રાજ્યકારભારથી દૂર કર્યા. આ હકીકતની ખબર જ્યારે કેટલાક વ્યાપારિઓ મારફત પ્રવૃત્તિ થયેલા એ વૃદ્ધ રાજાની બાજુમાં આવી ત્યારે તે વ્યાપારિઓ સાથે પ્રજાજનને બોલો આશ્વાસનનો સંદેશો મોકલ્યો અને જણાવ્યું કે શિખંડીને એ અન્યાયચરણમાંથી દૂર રાખવા માટે હું જાતે જ ત્યાં આવીશ. વ્યાપારિઓ સાથે આવેલા એ સંદેશો એક બીજાની કણુંપરંપરાએ એ દુષ્ટ મંત્રીઓની બાજુમાં આવતાં તેઓ મનમાં ગલરાયા અને એ વૃદ્ધ રાજા શેરૂક નગરમાં ન આવી શકે તેના ઉપાય વિચારવા લાગ્યા. પછી તે બંને શિખંડી રાજા પાસે જઈને તેને કહેવા લાગ્યા કે—‘દેવ, સંભળાય છે કે વૃદ્ધ રાજા અહીં આવે છે.’ રાજા કહે—‘તે તો પ્રવ્રજિત થયેલો છે, તેને હવે અહીં આવવાનું શું પ્રયોજન હોય?’ મંત્રીઓ કહે—‘દેવ, જેણે એક દિવસ પણ રાજ્ય કર્યું હોય છે તેનું મન પછી રાજ્ય વિના ક્યાંએ રમી શકતું નથી. એટલે ફરી એ રાજ્ય મેળવવા પાછો અહીં આવે છે.’ રાજા કહે—‘જો રાજા થશે તો હું પાછો કુમાર થઈ જઈશ એમાં શો વિરોધ છે!’ મંત્રીઓ કહે—‘દેવ, એ અચુક છે. જેણે કુમારે, મંત્રીઓ અને પ્રજાજનોના નમસ્કારો ઝીલ્યા હોય તે કેમ પાછો યુવરાજ પદમાં દાખલ થઈ શકે?’ ઈત્યાદિ ઘણી રીતે તે રાજાને તેમણે ખોટી રીતે ભરમાવ્યો અને આખરે તેની અનુમતિ મેળવી કેટલાંક ધાતક મનુષ્યોને એ આવતા વૃદ્ધ રાજાની સામે મોકલ્યા જેમણે તેના શિરઃછેદ કરી તેના જીવનનો અંત આણ્યો. પછી ક્રમે ક્રમે તે શિખંડી રાજા વધારે દુષ્ટ થતો ગયો. એક દિવસે તે શહેર બહાર સઘળા લવાજમા સાથે ફરવા નિકળ્યો તે વખતે રસ્તામાં એક ઠેકાણે એકાંતમાં ઉભા રહેલા આગળના તે મહાકાલ્યાયન લિહુને જોયો. રાજા તેને જોઈને ક્રોધિત થયો અને પોતાનાં માણસોને તેના ઉપર મૂરી ધૂળ, નાંખવાનો હુકમ કર્યો. લોકોએ તેના ઉપર એટલી બધી ધૂળ નાંખી કે જેથી તેનું આખું શરીર તેમાં દટાઈ ગયું.

આ બાબતની ખબર જ્યારે પેલા બે જૂના મંત્રીઓને થઈ ત્યારે તેઓ ત્યાં આવ્યા અને તે લિહુને ધૂળના ઢગલામાંથી બહાર કાઢ્યો. લિહુએ કહ્યું આ નગરનો વિનાશકાળ આવી ગયો છે અને આજથી સાતમે દિવસે ધૂળની વૃષ્ટિના લીધે આ આખું નગર જમીનદોસ્ત થઈ જશે. તેથી તમારે અહીંથી બચી જવું હોય તો ઘરથી માંડી નદી સુધી જમીનમાં એક સુરંગ ખોદાવી રાખો અને એક નાવ તૈયાર કરી સુકો. પહેલે દિવસે એક જમીનમાં એક સુરંગ ખોદાવી રાખો અને એક નાવ તૈયાર કરી સુકો. પહેલે દિવસે એક મોટો વટોંખિયો થશે જેના લીધે શહેરની બધી ખરાબ ધૂળ આકાશમાં ઉડી જશે. પછી બીજે દિવસે કુલોની વૃષ્ટિ થશે. ત્રીજે દિવસે વસોની વર્ષા થશે. એમ અનુક્રમે રત્નોની વર્ષા થશે અને પછી છેવટે ધૂળની વર્ષા થઈ ગણું શહેર તેમાં દટાઈ જશે. તમે પુણ્ય કાર્ય કરનાર હોવાથી એ આફતમાંથી ઉગરી શકશો. એટલે તૈયાર કરી રાખેલી નાવ રત્નોથી ભરીને નદી માર્ગે તમે અન્ય દેશમાં ચાલ્યા જાવો. છેવટે બધું તેમ થયું અને તે મંત્રીઓ જે ભરીને નદી માર્ગે તમે અન્ય દેશમાં ચાલ્યા જાવો. છેવટે બધું તેમ થયું અને તે મંત્રીઓ જે પ્રદેશમાં જઈને રહ્યા ત્યાં તેમના નામથી કમથી હિરક અને સિરુકચ્ચ નામનાં નગરો વશ્યાં.

મહાકાવ્યાંયન લિખુ પણ ત્યાંથી નીકળા લખાક, સ્થામાકરાંત્ય, વોક્કાણુ વગેરેના મુલકમાં થતો સિંધુ નદી ઉતરી મધ્યદેશમાં આવેલી શ્રાવસ્તી નગરીમાં જ્યાં આગળ ભગવાન યુદ્ધ રહેતા હતા ત્યાં સંઘ ભોગો જઈ મળ્યો.

રુદ્રાયણ રાજની આ હકીકત, જ્યાં સુધી હું જાણું છું, દક્ષિણના હીનયાન સંપ્રદાયના પાંદો સાહિત્યમાં ક્યાંએ આવેલી નથી. ઉત્તરના મહાયાન સંપ્રદાયના સંસ્કૃત અને દીપ્તેરીયન સાહિત્યમાં જ આ હકીકત મળી આવે છે. દિવ્યાવદાન સિવાય, ક્ષેત્રેન્દ્રના અવદાન કલ્પલતા^૧ નામક ગ્રંથમાં પણ રુદ્રાયણાવદાન આવેલું છે. અવદાનશતક હાલમાં મારી પાસે નહિ હોવાથી તેમાં એ વૃત્તાંત છે કે નહીં તે હું કહી શકતો નથી. એરં. એ બીજા ગ્રંથોમાં હોય કે ન હોય તેની ચર્ચા કાંઈ અહીં પ્રસ્તુત નથી. આપણે એ જોવાનું છે કે, યવનચંગ અને રુદ્રાયણાવદાનની હકીકતમાં કેટલી બધી સમાનતા મળી આવે છે. યવનચંગ અને હો-લો-લો-કિય નગરના નાશની અને આ અવદાનમાં જણાવેલી રો-ર-ક નગરના નાશની હકીકતમાં જરાએ તફાવત નથી. તેથી હું ધારું છું કે આ બંને હકીકતોનું મૂળ એક જ હોવું જોઈએ, એટલું જ નહિ પણ મને તો યવનચંગનું હો-લો-લો-કિય એ અવદાનમાંના રો-ર-ક નામનું જ ચીની ઉચ્ચારણ હોય એમ સ્પષ્ટ જણાય છે. થોમસ વૉટર્સ, એ નામની જોડણી. 0-100-10-ka (Rallaka ?) આ પ્રમાણે કરે છે,^૨ અને મિ. બીલ Ho-10-10-kin આ પ્રમાણે કરે છે. બીલ આનું બીજું ઉચ્ચારણ (કુટનોટમાં) Ragha or Raghan, or perhaps Ourgaha આ પ્રમાણે આપે છે^૩ અને વૉટર્સ સંસ્કૃત ઉચ્ચારણ રહુક આપે છે. પણ આ બંને ઉચ્ચારણો કરતાં મને અવદાનમાંનું રો-ર-ક એ ઉચ્ચારણ વધારે સંગત અને લાપાશાએ મળતું લાગે છે. તેથી આ બંને સ્થાનો એક જ હોવાનું મારું અનુમાન મને સપ્રમાણ જણાય છે.

પણ, અહીં એક બીજો ભૌગોલિક પ્રશ્ન ઉપસ્થિત થઈ શકે તેમ છે. દીપ્તનિકાય નામના પ્રાચીન પાંદો આગમના મહાભોવિંદ નામના સુત્રાંતમાં^૪ તથા ભતકર્ણકથામાં^૫

૧. ગિપ્લીઓલયકા ઇન્ડિકામાં પ્રકાશિત યએલ અવદાનકલ્પલતા ભાગ ૧, પાન ૯૭૦ થી ૧૦૨૭.

૨. જુઓ, થોમસ વૉટર્સનું On Yavan Chwang's "Travels in India," પુસ્તક ૨ જુ, પાન ૨૯૮.

૩. બીલનું, Buddhist Records of the western World, પુસ્તક ૨ જુ, પાન ૩૨૨.

૪. દંતપુરં કર્લિંગાનં અસ્સકાનં ચ પોતનં ।

માહીસ્સતી અવંતીનં લોલીરાનં ચ રોરુકં ॥

મિથિલા ચ વિદેહાનં ચંપા અંગેસુ માપિતા ।

વારાણસી ચ કાસીનં, एते गोविंदमापिता ति ॥

પાંદો ૨૬૨૨ સોસાયટીએ છપાવેલ, દીપ્તનિકાય, ભાગ ૨, પૃ ૨૩૫, મહાવસ્તુ ભાગ ૩, પાન ૨૦૮-૨૦૯, માં પણ આ એ ગોથાઓ સંસ્કૃતમાં આપેલી છે.

૫. ભતકર્ણકથા ભાગ ૩, પા. ૪૭૦- અતીતે સોંવીરરદ્ધે રોરુવનગરે ।

રોડકને સૌવીર દેશનું એક પાટનગર જણાવ્યું છે; અને 'સૌવીરદેશનું' સ્થાન, હિન્દુસ્થાનના નકશામાં, પ્રસિદ્ધ યૌદ્ધ વિદ્વાન્ દ્રીસ ડેવિડ્સ ઘણા ભાગે કચ્છના અખાતના નાકા ઉપર સૂકે છે.^૧ ત્યારે બીજી બાજુ ચવનચ'એ વર્ણવેલું HO-10-10-kia અગર 0-100-10-kia એ ખોતાનના પ્રદેશમાં (મધ્ય એશિયામાં) આવેલું હતું. તેથી એ બંને સ્થાનોના ઐક્યના અનુમાનમાં આ પ્રમાણ બાધક રૂપે ઉભું રહે છે. એના સમાધાનમાં ઘણું સાધક-બાધક પ્રમાણો ઉપસ્થિત થાય છે. પ્રથમ તો એ કે દીધનિકાય આદિમાં જણાવેલો સૌવીર દેશ ક્યાં આવેલો હતો તેનો હજી કંઈ ચોક્કસ પત્તો લાગ્યો નથી. વૈદિક પુરાણો અને જૈન સાહિત્યમાં પણ 'સૌવીર દેશનું' નામ આવે છે અને ઘણી વખતે સિન્ધુ-સૌવીરના લેગા સામાસિક નામ વડે પણ તેનો ઉલ્લેખ થયેલો મળી આવે છે. એ સૌવીર દેશ એ જ યૌદ્ધોનો સૌવીર હોય તો તે સિન્ધુ નદીની આસપાસ આવેલો હોવો જોઈએ. પણ જૈન અને યૌદ્ધ બંનેના સૌવીર એક હોય તેમ જણાતું નથી. કારણ કે યૌદ્ધ જેટલા જ જૂના જૈન ગ્રંથોમાં સૌવીરના પાટનગર તરીકે, જેમ આપણે ઉપર જોયું, તથા વળી આગળ જોઈશું તેમ, વીતિભય કે વીતભય નામે ધત્તન જણાવ્યું છે, ત્યારે યૌદ્ધો તેના ઠેકાણે રોહવ અગર રોહક નામ લખે છે. વળી એ નામના પાઠમાં પણ જૂદા જૂદા દેશના યૌદ્ધ હસ્તલેખો જૂદા જૂદા પાઠ લેદો આવે છે. ઉદારણ્યથં જતકકટ્ટકયામાં રોહવનગર અને રોહવમનગર એવા બે પાઠો મળે છે, ત્યારે દીધનિકાયમાં સિંહલીવાચનામાં રોહવ, અને ગરમી-વાચનામાં રોહણ પાઠ છે. એટલું જ નહીં પણ દેશના નામમાં પણ પાઠફેર છે. દીધનિકાયલાં સોવીર ના બદલે એક પાઠાન્તર સોચિર છે અને જતકકટ્ટકયામાં તો તેના બદલે સ્પષ્ટરૂપે 'શિચિરકે' પાઠાન્તર છે જે ખાસ વિચારણીય છે. લેખકોના પ્રમાદ અને અજ્ઞાનથી આવા પાઠલેદો થવા સુલભ છે.^૨ પણ એ પાઠલેદોથી ઐતિહાસિકોને પરંપરા ગોઠવવી કેટલી દુર્લભ થઈ પડે છે એ કચો પુરાતત્ત્વજ્ઞ નથી જાણતો? ટીમેટિયન સાધનો ઉપરથી વળી રોહક એ, પાલીસાહિત્યપ્રસિદ્ધ કોલિય ક્ષત્રિયોનું રામગ્રામ હોય એવી શંકા

૧. જુઓ 'Buddhist India' પાન ૩૮; તથા છેવટે આપેલો નકશો.

૨. આવી જાતના પાઠલેદો અને પાઠફેરો જૈન ગ્રંથોમાં પણ ઘણા થાય છે અને તેથી કેટલીક વખતે તે જુદું ગુચવાડો ઉત્પન્ન કરે છે. એક ઉદાહરણ આપું. ઉપરની તોટમાં જેમ દીધનિકાયની ગાયામાં અમુક દેશની અમુક રાજધાની જણાવેલી છે, એવી જ કેટલીક ગાયાઓ જૈનસ્ત્રોમાં પણ મળે છે. હાલમાં જે આગમે આગમેદ્યસંમિતિ નામે સંસ્થા તરફથી છપાયા છે તેમાંથી પ્રજ્ઞાપનાંસૂત્ર (પાન ૫૫) માં કૌશાંબી જેની રાજધાની છે એ દેશ માટે પણ 'વચ્છ' (વત્સ) એ શબ્દ લખ્યો છે અને વૈરાટ જેની રાજધાની છે એ દેશ માટે પણ 'વચ્છ' એ જ શબ્દ આપ્યો છે. એની એ જ ગાયાઓ સૂત્રકૃતાંગસૂત્ર ની ટીકામાં (પાન ૧૨૩) આપેલી છે જ્યાં 'વચ્છ કોસંબી' અને 'વૈરાટ મચ્છ' એવા શબ્દો છે જેનો તાત્પર્ય કમથી 'વત્સદેશમાં કૌશાંબી' અને 'મત્સ્યદેશમાં વૈરાટ' નગર મુખ્ય શહેર છે, એવો થાય છે. ખરે પાઠ આ પાછળના મંથનો છે જ્યારે પહેલાનો ખોટો છે. લેખક અને શોધકના પ્રમાદ અથવા અજ્ઞાનથી આવા ઘણા પાઠોમાં ગરબડ થઈ જાય છે અને પછી શોધકોને યથારહિત પાઠો જોઈ તેના ઉપરથી અનેક તર્ક-વિર્કો કરવા પડે છે.

રોકહીલને થાય છે.^૧ આ ઉપરથી એમ કહિત થાય છે કે પ્રથમ તો રોરુક અને સોલીરનો સંબંધ અને સ્થાનાંદિ નિશ્ચિત નથી અને જો તેમ નિશ્ચિત થાય તો પણ, દિવ્યાવદાનવાણું રોરુક અને દીધનિકાયાદિવાણું રોરુક-બંને જૂદાં જૂદાં માની લેવામાં પણ કાંઈ વધારે આધાર હોતો નથી. એક નામનાં અનેક સ્થાનો હતાં અને હોય છે. ખીજું દિવ્યાવદાનવાણું રોરુક એ હિંદુસ્થાનની હદની બહાર હતું એ બાબતના તેમાં કેટલાક ચોક્કસ પુરાવાઓ પણ મળે છે. રોરુક નગરનો નાશ થયા પછી કાત્યાયન ભિક્ષુ ન્યારે પાછો મધ્ય દેશમાં આવવા નિકળ્યો ત્યારે તે લંપાક, સ્યામાક અને વોક્ષાણાદિ દેશોમાં થઈ સિંધુ નદીના કાંઠે આવ્યો હતો અને પછી એ નદીને પાર કરી ફરતો ફરતો કેટલાક દિવસે શ્રાવસ્તિએ પહોંચ્યો હતો. ખીજાં ખીજાં પ્રમાણે ઉપરથી આપણને જણાય છે કે લંપાક, સ્યામાક અને વોક્ષાણુ વિગેરે દેશો હિંદુસ્થાનની બહાર હોઈ તે અનાર્થ મુદ્દો ગણાતા હતા. સિંધુનદીની પેલીપાર હોવાની બાબત પણ એ વિચારને વધારે સખળ બનાવે છે. તેમ જ અવદાનના વર્ણન ઉપરથી આપણે એ પણ જોઈએ છીએ કે રોરુકમાં ન્યારે રત્ન વિગેરેની ખૂબ પેદાશ થતી ત્યારે વસ્ત્રાદિ ચીજો ત્યાં નહોતી થતી.^૨ હવે, હિંદુસ્થાનના બંધા ભાગો તરફ ન્યારે આપણે નજર કરીએ છીએ ત્યારે એમાં એકે ભાગ એવો નથી જણાતો કે જ્યાં આગળ રત્નો વિગેરે તો ખૂબ નિપજતાં હોય અને વસ્ત્રાદિ ચીજો ન થતી હોય. એનાંથી ઉલટું મધ્યએશિયાના પ્રાંતોમાં આવી સ્થિતિ પ્રાચીનકાળથી ચાલી આવતી હતી એ હકીકત પ્રસિદ્ધ જ છે. આ બધાં કારણો અને પ્રમાણોથી આપણે માનવું જોઈએ કે અવદાનવાણું રોરુક નગર હિંદુસ્થાનની બહાર હતું; અને, તેમાં આપેલી હકીકત સાથે યવનચંગે આપેલી હો-લો-લો-કની હકીકત મળતી આવતી હોવાથી તે બંને સ્થાનો એક જ હતાં.

બૌદ્ધ અને જૈનકથામાં સમાનતા.

યવનચંગની અને અવદાનમાંની હકીકતનું સામ્ય તો આપણે ઉપર જોયું છે પણ એ કરતાંયે વધારે સામ્ય બૌદ્ધ અને જૈનકથામાં જણાઈ આવે છે જે એક બંનેબંને વિસ્મય ઉપજાવે તેવી બાબત છે. યવનચંગ અને અવદાનમાંની હકીકતમાં તો ફક્ત રોરુક નગરના નાશવાળી હકીકત સાથે જ સામ્ય રહેલું છે પણ જૈનકથામાં વળી અવદાનમાંની ખીજી પાંખ કેટલીક બાબતો સાથે સામ્ય રહેલું છે; જેનો વિચાર કમથી કરવાની આવશ્યકતા છે.

રોરુક નગરના નાશની અને જૈનકથાવાળા વીતિલય નગરના નાશની હકીકત યવનચંગ, અવદાન અને જૈનકથામાં સમાન છે. ત્રણેમાં ધૂળની વૃદ્ધિ થવાને લીધે નગ-

૧ જુઓ- 'Rockhill's Life of the Buddha', પાન ૧૪૫.

૨ રાજગૃહના વ્યાપારિઓ રોરુકના રાજ રાઘવેને કહે છે કે દેવો રત્નાધિપતિ; સ રાજા વસ્ત્રાધિપતિ; તસ્ય રત્નાનિ તુલ્લમાનિ । રાજગૃહના રાજ બિંબિસાર આગળ વ્યાપારિઓ કહે છે કે-દેવો વસ્ત્રાધિપતિ; સ રાજા રત્નાધિપતિ; તસ્ય વસ્ત્રાનિ તુલ્લમાનિ । (દિવ્યાવદાન પાન ૫૪૫.)

રનો નાશ થએલો જણાવ્યો છે. જેનકથામાં ઉદાયન અને અવદાનમાં રુદ્રાયણ રાજા સિદ્ધ થાય છે. તેનું મૃત્યુ તેના ઉત્તરાધિકારીની અનુમતિથી, હુદ અમાત્યો કરાવે છે. એકમાં વિષપ્રયોગથી તે કરવામાં આવે છે. અને બીજામાં શસ્ત્રાધાતથી. ઉત્તરાધિકારીના સંબંધમાં ફરક છે. જેનો તેને વૃદ્ધ રાજાનો લાણેજ કહે છે, ત્યારે યૌવ્વ પુત્ર કહે છે. એક એરસ પુત્ર દ્વારા પોતાના જન્મદાતા પિતાનું આત્મ જઘન્ય કૃત્ય કરાય તેના કરતાં લાણેજ દ્વારા તે કૃત્ય થાય તેમાં મનુષ્ય જાતિના રોજના વ્યવહારને વધારે અધ્યેસતું લાગે ખરું. (આ માત્ર એક સામાન્ય કથન છે, બાકી આવા દાખલાઓ જગતના ઇતિહાસમાં ઘણાએ મળી આવે છે તેથી એ કથન ઉપર ભાર મુકવાની આવશ્યકતા નથી.) આ હકીકતને લગતો જે ઉલ્લેખ ખરું પંચવાળાઓ કરે છે તેનું લાવસામ્ય ખાસ જોવા જેવું છે. રુદ્રાયણ રાજાને આવતો સાંભળીને શિખંડીના હુદ અમાત્યો તેને કહે છે કે—

દેવ ધ્રુવતે વૃદ્ધરાજા આગચ્છતીતિ । સ કથયતિ પ્રવ્રજિતોડસૌં કિમર્યં તત્સ્યાગમન-
પ્રયોજનમિતિ । તૌં કથયતઃ-દેવ યેનેદ્વિવસમપિ રાજ્યં કારિતં સ વિના રાજ્યેનાભિ-
રંસ્યત્ત્વમિતિ કુત પતત્ । પુનરપ્યસૌં રાજ્યં કારયિતુકામમિતિ ।

શિખંડી કથયતિ—યવસૌં રાજા અભિવ્યત્યહં સ પવ કુમારઃ કો નુ ચિરોધમિતિ ।
તૌં કથયતઃ-દેવ અપતિરૂપમેતત્, કથં નામ કુમારામાત્યપૌરજનપદૈરજ્જલિસદૈર્ઘ્યમસ્યમાનેત
રાજ્યં કારયિત્વા પુનરપિ કુમારવાસેન ઘસ્ટવ્યમ્ । ...સ તામ્યાં વિમલ્લઘ્નઃ કથયતિ-
કિમર્યં યુક્તં કથં પ્રતિપત્તવ્યમિતિ । તૌં કથયતઃ-દેવ પ્રઘાતયિતવ્યોડસૌં, યદિ ન પ્રઘા-
તયતે નિયતં દુષ્ટમાત્યવિપ્રાહિતો દેવં પ્રઘાતયતીતિ । ...ન દેવેન ધૃત—

પિતા યા યદિ યા ભ્રાતા પુત્રો યા સ્વાંગનિષ્ઠતઃ ।

પ્રત્યનીકેસુ ઘટેત કર્તવ્યા મૂમિવર્ધના ॥^૧

એ જ લાવને આશ્ચર્ય હેમચંદ્ર પોતાના મહાવીરચરિત્રમાં આ પ્રકારના શબ્દોમાં પ્રકટ કરે છે—

હાત્વોદાયનમાયાતં કેશ્યમાત્યૈર્મણિવ્યતે ।

નિર્વિણ્ણસ્તપસામેષ નિયતં તવ માતુલઃ ॥

ઋદ્ધ રાજ્યં હિન્દ્રપદં તત્યજવાનુશયં દધત્ ।

નૂનં રાજ્યાર્થમેવાગાદિશ્વસીર્મા સ્મ સર્વયા ॥^૨

૧ દિવ્યાવદાન, પાન ૫૬૪.

૨ આ એ શ્લોકો સાથે શિખેન્દ્રની અવદાનકલ્પલતામાંના આ નીચેના શ્લોકો સરખાવા જોવા છે:-

પ્રવાદે પ્રસૂતે તસ્મિન્નમાત્યૌં દણ્ડમુદ્ગરૌં ।

અતીતમૂળાગમનપ્રસ્તૌં મૂળપતિમૂલનુઃ ॥ ૮૩ ॥

સર્વં પ્રયતે દેવ પ્રવાદઃ સાધુનિન્દિતઃ ।

વૃદ્ધપ્રવ્રજિતો રાજા રાજ્યાર્થં યત્નવાનિતિ ॥ ૮૪ ॥

(અવદાનકલ્પલતા, ભાગ ૧, પાન ૬૬૫.)

કેશી વક્ષ્યત્યસૌ રાજ્યં ગૃહ્ણાત્યપિ કોઽસ્મ્યદમ્ ।

। નોપાલસ્ય દિ કઃ કોપો ધને ગૃહ્ણાતિ ચેદ્ધની ॥

વક્ષ્યન્તિ મન્થિણઃ પુણ્યેસ્તય રાજ્યમુપસ્થિતમ્ ।

પ્રદત્તં ન હિ કેનાપિ રાજધર્મોઽપિ નેદશઃ ॥

પિતૃપ્રાંતુર્માનુલાક્ષા મુદ્ધવો વાપરાદપિ ।

પ્રસન્નાપ્યાહરેદ્રાજ્યં તદત્તં કો દિ મુદ્ધતિ ॥^૧

રુદ્રાયણની સ્ત્રીનું નામ ચંદ્રપ્રભા છે ત્યારે ઉદાયનની સ્ત્રીનું નામ પ્રભાવતી છે. ‘પ્રભા’ શબ્દ બંનેમાં જે અનુગત છે તે ધ્યાન ખેંચે તેવો છે, પણ તે કરતાંયે વિશેષ ધ્યાન ખેંચવા લાયક બાબત તો એ છે કે-બંને કથાઓમાં રાણીના નામની અને રાજાની વીણા વગાડવાની હકીકત તથા રાજાને હુશિયાર બોઈ રાણીના આસન્ન મરણની વાત બાણી લેવાની, રાણીએ પછી પ્રમત્યા લઈ લેવાની અને મરી ગયા પછી સ્વર્ગમાંથી આવીને, કરેલી પ્રતિજ્ઞા પ્રમાણે, રાજાને દર્શન દેવાની એ વિગેરે હકીકત અક્ષરેઅક્ષર મળતી આવે છે. સરખાવવા માટે બંનેનાં સંસ્કૃત અવતરણે આપું છું—

રુદ્રાયણો રાજા ધોળાયાં કૃતાવી ચન્દ્રપ્રભા દેવી નૃત્યે । યાવદપરેણ સમયેનં રુદ્રાયણો રાજા ધોળાં વાદયતિ ચન્દ્રપ્રભા દેવો નૃત્યતિ । તેન તસ્યા નૃત્યન્ત્યા ધિનાશલક્ષણં દૃષ્ટં, સ તામિતધ્યામુતથ નિરોધ્ય સંલક્ષયતિ । સત્તાદસ્યાત્યયાત્ કાલં કરિષ્યતિ । તસ્ય દસ્તાદ્ ધોળા અસ્તા મૂર્મો નિપતિતા । ચન્દ્રપ્રભા દેવી કથયતિ—દેવ મા મયા દુર્નૃત્યમ્ । દેવિ ન ત્વયા દુર્નૃત્યં, અપિ તુ મયા તય નૃત્યન્ત્યા ધિનાશલક્ષણં દૃષ્ટં સતમે દિવસે તય કાલક્રિયા મયતીતિ । ચન્દ્રપ્રભા દેવો વાદયોનિપત્ય કથયતિ—દેવ યથેવં કૃતોપસ્યાનાઽહં દેવસ્ય, યદિ દેવોઽનુજાનીયાદ્ અહં પ્રવ્રજ્યેયમિતિ । સ કથયતિ—ચન્દ્રપ્રભે સમયતોઽનુજાનામિ યદિ તાવત્ પ્રવ્રજ્ય સર્વક્લેશપ્રહાણાદ્ અર્હત્યં સાક્ષાત્કરોપિ પથ યથ તે દુઃખાન્તઃ । અથ સાવશેષસંયોજના કાલં કૃત્વા દેવેસૂપપચસે દેવમૂતયા તે મમોપદર્શયિતવ્યમિતિ ।^૨

આ જ હકીકત ઉદાયન અને પ્રભાવતીના સંબંધમાં થએલી જેનું વર્ણન હેમચંદ્રના શબ્દોમાં બોઈએ.

તામન્યદાર્વાર્મચિત્વા પ્રમોદેન પ્રભાવતી । પત્યા સમેતા સંગીતમવિગીતં પ્રવ્રક્રમે ॥ તાનોઽધાનગતશ્ચર્યં વ્યક્તવ્યજનધાતુકમ્ । વ્યક્તસ્વરં વ્યક્તરાગં રાજા ધોળામવાદયત્ ॥ તોવ્રતપરિક્રિષ્ટઃ સંભોગામિમુખાદરઃ । લજ્ઞાં પ્રવ્રજ્યયા સાર્દ્ધં ત્યક્ત્વા સ પુનરેણ્યતિ ॥ વ્યક્તંગહારકરણં સર્વાંગામિનયોજ્જ્વલમ્ । નનર્તં દેવ્યપિ પ્રોત્તા, લાસ્યં તાંડવપૂર્વકમ્ ॥ રાજાઽન્યદા પ્રભાવત્યા ન દદર્શ શિરઃ ક્ષણાત્ । નૃત્યન્તં તત્કવન્ધં તુ દદર્શાજિકવન્ધવત્ ॥ અરિષ્ઠદર્શનેન દ્રાક્ શ્રુમિતસ્ય મહીપતેઃ । તદોપસર્પન્નિદ્રસ્થેવાગલત્ કંથિકા કરાત્ ॥ અકાંઠતાંડવચ્છેદકુપિતા રાણ્યયાવદત્ । તાલચુતાસ્મિ કિમહં વાદનાદિરતોઽસિ યત્ ॥ હૃથં પુનઃ પુનઃ પૃષઃ કંથિકાપાતકારણમ્ । સત્તયાહ્યત્ મહીપાલો વલીયાન્ સ્ત્રીગ્રહઃ સહુ ॥

રાહ્યુચે દુર્નિમિત્તેનાલ્પાયુરદ્ધં પ્રિય ।

*

*

* .

તજ્ઞાપનાય ભવતિ યત્સર્વવિરતૌ મમ ॥

પવમુક્તઃ સનિર્વન્ધમભ્યધાદ્રસુધાધવઃ । અનુતિષ્ઠ મહાદેવિ યતુભ્યમભિરોવતે ॥

દેવત્યમાત્રયા દેવિ વૌધનીયસ્ત્વયાન્વહમ્ १

આ બંને અવતરણો ઉપરથી જોઈ અને જૈન બંને લેખોમાં કેટલી બધી અભિ-
નતા છે તે સ્પષ્ટ જણાય આવે છે. અને હું તો આથી પણ આગળ વધી એમ કહી શકું
છું કે દિવ્યાવદાનમાંતું ઉદ્રાયણુ નામ એ જૈન નામ ઉદાયનના બદલે, અગર જૈનનામ ઉદાયન
એ જૌદનામ ઉદ્રાયણુના બદલે પ્રાંતિથી કે લિપિલેદથી જ ઉત્પન્ન થયું છે. કારણ કે બંનેના
અર્થોમાં બંને પ્રકારના પાઠલેદો ચોખ્ખા મળી આવે છે. દિવ્યાવદાનમાં જે કે સર્વત્ર
રુદ્રાયણુ પાઠ આપેલો છે તો પણ જે ચાર ઠેકાણે ઉદ્રાયણુ એવું પાઠાંતર પણ મળી આવે
છે.² અને એમાં વળી એક ઠેકાણે તો ખાસ સ્લોકમાં જ એ પાઠ આપેલો છે,
જેમકે:-

મુક્તો ગ્રન્થૈશ્ચ યોગૈશ્ચ શલ્યૈર્નિર્વરણૈસ્તથા ।

અપાપ્યુદ્રાયણો ભિક્ષુ રાજધર્મેન મુચ્યતે ॥ (પાન ૪૬૭).

જોમેન્દ્રે તો અવદાનકલ્પલતામાં સર્વત્ર ઉદ્રાયણુ એ જ પાઠ આપેલો છે અને તે
પદ્યમાં હોવાથી બીજા પાઠાંતરને તેમાં અવકાશ પણ નથી. ઉદાહરણ્ય-

—વમૂલ સમયે તસ્મિન્ રૌરુકાઠ્યે પુરે નૃપઃ ।

શ્રીમાનુદ્રાયણો નામ યશશ્ચન્દ્રમહોદ્ધયિઃ ॥૫૥॥

—કદાચિદ્દિવ્યરત્નાકં કવચં કાશ્ચનોઞ્જ્વલમ્ ।

પ્રાહિનોદ્ વિમ્બિસારાય સારમુદ્રાયણો નૃપઃ ॥૧૧॥

—વિમ્બિસારસ્ય હસ્તાફલેશ્ચામુદ્રાયણો નૃપઃ ॥

—ઉદ્રાયણસ્ય નૃપતેરાચ્યઃ કાન્વાયનોઽય સ્ત ॥

આ અવતરણો ઉપરથી સ્પષ્ટ જણાય છે કે જૌદઅર્થોમાં અસલ નામ રુદ્રાયણુ
નહિ પણ ઉદ્રાયણુ હોવું જોઈએ અને એ જ નામ જૈન અર્થકારોને પણ સંમત હોય તેમ
લાગે છે. હેમચંદ્ર વગેરેના અર્થોમાં તેમ જ આવશ્યકસૂત્રની સંસ્કૃત ટીકા, આદિમાં પ્રાયઃ
સર્વત્ર ઉદાયન એવો પાઠ ઉપલબ્ધ થાય છે પણ ભગવતીસૂત્ર તથા આવશ્યકચૂલ્લિના
જૂના હસ્તલેખોમાં ઘણી જગાએ ‘ઉદાયણ’ એવો પાઠ સ્પષ્ટ મળી આવે છે.³ આ
ઉપરથી હું માનું છું કે જૈનોને પણ જૌદોની માફક અસલ નામ ઉદ્રાયણ જ સંમત
હોવું જેવું પ્રાકૃતરૂપ ઉદાયણ થાય છે. ખરી રીતે ‘ઉદ્રાયણ’ શબ્દ પણ ખાસ સંસ્કૃત

૧. મહાવીરચરિત્ર પાન ૧૫૦.

૨. દિવ્યાવદાન પાન ૫૬૬. ઉપર જે ચાર આ નામ આપેલું છે.

૩. આ લેખની સંસ્ક્રાતમાં, ઉપર જે મેં, ચૈત્રની ૭ પુત્રીઓ સેમથી કથનવાળું ‘આવશ્યકચૂલ્લિ’
અવતરણ આપ્યું છે તેમાં ‘ઉદાયણ પાઠ જ આપેલો જોવાશે. હાથમાં મારી પાસે જે આવશ્યકચૂ-

હોય એમ લાગતું નથી. મૂળ એ શબ્દ પ્રાકૃત હોઈ ઉદાયણ નં હશે જેનું સંસ્કૃત રૂપ યૌદ્ધોએ ઉદ્દાયણ કલ્પ્યું અને જેનોએ તેને વધારે સંસ્કૃત કરી તેની જગ્યાએ ઉદાયન મુક્યું.

આ રીતે આપણે યૌદ્ધ અને જૈન કથામાં કેટલું બધું સામ્ય છે તે જોયું છે. આ વિલક્ષણ સામ્યનું મૂળ યોળી કાલપું કહિયું છે. જેનોની હકીકત ઉપરથી યૌદ્ધોએ પોતાના કથા ઘડી કહાડી છે કે યૌદ્ધોની હકીકત ને જેનોએ બંધબેસતી કરી લીધી છે કે વળી આ બંને સંપ્રદાયોએ કોઈ ત્રીજી જ હકીકતના મૂળ ઉપરથી પોતાની કથા-કલ્પના ઉપજાવી કાઢી છે, એનો નિર્ણય થઈ શકે તેમ નથી. (પુરાતત્ત્વ, પુસ્તક ૧ હું અંક ૩ માંથી ઉદ્ધૃત.)

ચિંતી હસ્તલિખિત પ્રતિ છે તેમાં એ જ પાઠ છે. એ પ્રતિ અમદાવાદના કહેલાના ઉપાધ્યયના મંડાર-માંની છે અને સંવત્ ૧૫૧૮ ની સાલમાં લખાએલી છે. એ પ્રતિ લખાવનારની પ્રશસ્તિ પણ છેવટે આપેલી છે જેમાં કેટલીક ઐતિહાસિક હકીકત નોંધેલી હોવાથી હું તેને અહીં પુરી ઉતારી લઉં.

॥ સોં માણિક । સોં માંડવ । સોં યોજા લેખિતગ્રંથ (ય) પ્રશસ્તિ-લિખ્યતે । યયા ।

શ્રીઓસર્વશાંવરપૂર્ણચન્દ્રઃ સદ્વૃત્તશોભાગુણદોષ્યમાનઃ ।

શ્રીસાંગણો મંત્રિચરો ચમૂવ હીલીપતેર્ગ્યાસધરાધિપસ્ય ॥

સોં સાંગણસુતઃ સોં પદમઃ (?) શ્રીશત્રુંજયાદિતીર્થે સંચપતિકાર્યકર્તા । સોં પદમ (?) સુત સોં ધર્મ (?) મહાનુભાવો ચમૂવ તદન્વયે સોં ધર્મસુત સોં મોજા સોં મોજા-માર્યા વાઈ રાજલદેહ તસ સ (સુ)ત સોં શ્રોમાણિક સુતૈઃ સોં માંડણ સોં મોમા-મિથૈઃ । સોં માણિકમાર્યા શ્રાં.....સોં માંડવમાર્યા શ્રાવ(વિ)કા સહજ । સોં મોમા માર્યા શ્રાં અહવદે સોં મોમાસુત સોં.....પ્રમુખ કુટુંબપરિવારયુક્તૈઃ સરસ્વતીકોશે લેષિ(સિ)ત સંગૃહીતાનેકગ્રંથૈઃ સંચપત્તીમૂય શ્રીશત્રુંજયગિરિનારશ્રીસોપારકશ્રીજીરપહો-શપાર્શ્વનાથશ્રીઅર્જુનાચલઘડવાળીશ્રીઅમિનંદનપ્રમુખતીર્થયાત્રાદિદાનપુણ્યકારકૈઃ સંવત્ ૧૫૧૮ વર્ષે વડાતપાગચ્છનાયક મટ્ટાં શ્રી રત્નસિંહસૂરિ । મટ્ટાં શ્રી ઉદયચલમસૂરિ । મટ્ટાં શ્રી જ્ઞાનસાગરસૂરિ । મટ્ટાં શ્રી ચારિત્રસુંદરસૂરિ । મટ્ટાં ઉદયસાગર ઉપાધ્યાય ઉદયમંડનગણોનામુપદેશન સ્વશ્રેયસે શ્રીઆવશ્યકચૂર્ણ સમાપ્તમિતિ ॥ છ ॥ છ ॥ બ્રાહ્મ-જાજીયાલિખિતં કરકૃતમપરાધં ક્ષતિમદ્દતઃ સન્તુ ॥ (આમાં જેટલા ગૃહસ્થોનાં નામો આવેલા છે તે બધા ઉપર કોણે ગણે કોઈએ શાહો ફેરવી તેમને લુંસી નાંખવાનો પ્રયત્ન શા હેતુથી કર્યો હશે?) પ્રશસ્તિ પછી બીજા અક્ષરોમાં એક શેરો મારેલો છે જેમાં જણાવ્યું છે-પદ્મ પ્રતિ સંવત્ ૧૭૪૩ વર્ષે ચૈત્રશુદ્ધિ ૭ દિને શ્રી ૬ આચાર્યજી ક્રપિ શ્રી ૬ તેજસિંચજીયે વૃદ્ધિમંડારી મુકી છે ॥

॥ अहम् ॥

नमोऽस्तु श्रमणाय भगवते महावोराय ।

श्रीमेरुतुङ्गाचार्यविरचिता

विचारश्रेणिः-अपरनाम-स्थविरावलिः

‘ जं रयणिं कालगओ ’ इति गाथाकदम्बके ।

श्रीमेरुतुङ्गासूरान्द्वैर्व्याख्यालेशो विधीयते ॥

इहागमे

चंदे चंदे अभिवद्भिदयमि चंदेऽभिद्भिदए चव ।

पंचयरिसेहिं^१ जुगमिणं पच्चत्तं वीयरार्गेहिं ॥

इति गाथोक्तयुक्त्या पञ्चवर्षपर्युगमुच्यते । तत्रादौ द्वादशमासैः प्रथम^२चन्द्रसंवत्सरः । पुनर्द्वादश^३ मासैर्द्वितीय^४चन्द्रसंवत्सरः । तृतीयवर्षे पोषमासस्य वृद्धिः, अतस्त्रयोदश^५ मासैस्तृतीयोऽभिवर्द्धितसंवत्सरः । ततो द्वादश^६ मासैः पुनश्चतुर्थचन्द्रसंवत्सरः । पञ्चमे वर्षे आपादमासस्य वृद्धिः, अतस्त्रयोदश^७ मासैः पुनः पञ्चमोऽभिवर्द्धितसंवत्सरः । एवं च व्यवहारनयेन त्रिंशता मासैरधिकमासो लभ्यते । यतः—

सावणवहुलपडिवए वालवकरणे अभीइनक्खत्ते ।

सच्चत्थ पढमसमए जुगस्स आई चियाणाहि ॥ १

इत्यागम^८वचनाज्जने श्रावणादिः संवत्सरः । ततः प्रथमे चन्द्रवर्षे १२ मासाः, द्वितीयेऽपि १२, एवं २४^९ । ततोऽभिवर्द्धितवर्षस्य श्रावणद्वयः पट् । एवं ३० मासैः पोषवृद्धिः । ततोऽभिवर्द्धितस्यैव श्रावणमासा^{१०} माथादयः पट् । ततश्चतुर्थे चन्द्रवर्षे १२, पञ्चमेऽपि वर्षे १२, एवं ३० । अत्रापादवृद्धिः, अतोऽसौ पञ्चमोऽभिवर्द्धित इति । उक्तं च—

१ पंच सहस्रं । २ १चंद्र० । ३ १२ मासैः । ४ २ चंद्र० । ५ १२ मासैः । ६ १२ मासैः । ७ त्रिंशत् मासैः । ८ इत्याद्यगम० । ९ नास्ति ।

जइ जुगमज्जे तो दो पोसा, जइ जुगअंते दो आसाढा ।

एवं रूपस्य च ¹युगस्य द्वितीये चन्द्रसंवत्सरे कार्तिकवादि अमावास्यां² श्रीवीरनिर्वाणम् । उक्तं श्रीकल्पे—‘ चंदे नामं से दुब्बं संवच्छरे³ ।’ अत आह—

जं रयणिं कालगओ अरिहा तित्थंकरो महावीरो ।

तं रयणिमवंतिवई अहिसित्तो पालगो राया ॥

यस्यां रजन्यां श्रीअर्हन् तीर्थकरो महावीरः कालगतः मुक्तिं प्राप्तः, तस्यां रजन्यामुज्जयिन्यां⁴ ण्डप्रद्योते मृते तस्यैव पुत्रः पालको राजा अवन्तिपतिस्तस्य पट्टेऽभिषिक्तः ।

(‘ वीरनिव्वाणरयणीओ चंदपज्जोयरायपट्टम्मि ।

उज्जेणीए जाओ पालयनामा महाराया ॥ ’)⁵

‘ सट्ठी पालगरत्तो पणवन्नसयं तु होइ नन्दाणं ।

अट्टसयं मुरियाणं तीसन्निय पूसमित्तस्स ॥

वलमित्त-भाणुमित्ताण सट्ठि वरिसाणि चत्त नह्वहणे ।

तह गइभिळ्ळरज्जं तेरस वासे सगस्स चऊ ॥⁶

पालकस्य राज्ञः पट्टि (६०) वर्षाणि⁷ राज्यमभूत् । तावता पाटलीपुत्रेऽपुत्रे कृष्णिक⁸पुत्रे उदा-
येनृपे उदायिनृपमारकेण हते पञ्चदिव्यान्तरिताविवा⁹सितगजेन्द्रेण नापितो गणिकाङ्गजो नन्दो¹⁰ राज्ये-
भिषिक्तः । उक्तं च पारिशिष्टवर्षाणि—

अनन्तरं वर्द्धमानस्वामिनिर्वाणवासरात् ।

गतायां पट्टिवत्सर्यामेव नन्दोऽभवन्नृपः ॥

नन्दाश्च नव पाटलीपुत्रे कमादभुवन् । तेषां च राज्यं पञ्चपञ्चाशदधिकं शतं (१५५) वर्षाणि
बभूव । एवं द्वे शते पञ्चदशाधिके (२१५) । यच्च पारिशिष्टवर्षण्युक्तम्—

‘ एवं च श्रीमहावीरमुक्तेर्वर्षशते गते ।

‘पञ्चपञ्चाशदधिके चन्द्रगुप्तोऽभवन्नृपः ॥’

तच्चिन्त्यम् । यतः—एवं ६० वर्षाणि कृत्यन्ति, अन्यग्रन्थैः सह विरोधश्च । तदनु, अष्टोत्तरशतं
(१०८) वर्षाणि¹¹ मौर्याणां राज्यम् । मौर्यास्तु नवमं नन्दमुत्थाप्य चाणाक्येन¹² पाटलीपुत्रे स्थापिता-
चन्द्रगुप्तादयः । एवं ३२३ । ततो मौर्यराज्यादनुपुष्यमित्रराज्ञस्त्रिंशत्¹³ (३०) वर्षाणि । ततो वलमित्र—

1 नास्ति । 2 अमावास्यायां । 3 संवत्सरे । 4 नास्ति । 5 इयं गाथा प्रत्यन्तरे नास्ति । 6 सगद् । 7 ६०
वर्षाणि । 8 कौणिकः । 9 अन्तरधिवारितः । 10 नापितो गणिकाङ्गजो नन्दो राजा राज्ये । 11 १०८ वर्षाणि ।
12 चाणक्येन । 13 ३० वर्षाणि ।

भानुमितौ राजानौ षष्ठि (६०) वर्षाणि^१ राज्यमकाष्टम् । यौ तु कल्पचूर्णौ चतुर्थीपूर्वकर्तृकाल-
का^२चार्यनिर्वासकौ उज्जयिन्यां बलमित्र^३भानुमितौ तावन्यावेव । ततश्चत्वारिंशत्^४ (४०) वर्षाणि
नभोवाहने राज्यं जातम् । एषः कापि नरवाहनो राजेत्युच्यते । एवं वीरनिर्वाणाद् वर्ष ४९३ । अस्मिन्
वर्षे गर्दभिलकोच्छेदकस्य श्रीकालकाचार्यस्य सूरिपद^५ प्रतिष्ठाऽभूत् । तथा नभोवाहनराजानन्तरं गर्दभिल-
राज्यं द्विपञ्चाशदधिकं शतं (१९२) वर्षाणि^६ ज्ञातव्यम् । अयं भावः—गर्दभिलप्रभृतीनां राज्यं
गर्दभिलराज्यम् । इह यदा यो राजा स्यातिमानभूत्, तदा तस्य राज्यं गण्यते, न तु पट्टानुक्रमः । ततो
नभोवाहनादनु गर्दभिलेनोज्जयिन्यां १३ वर्षाणि राज्यं कृतम् । तावता श्रीकालकाचार्येण स्वसुः सरस्वत्याः
प्रवट्टके गर्दभिलमुच्छेद्य उज्जयिन्यां शकराणाः स्थापिताः । तैः ४ वर्षाणि^७ तत्र राज्यं चक्रे । एवं वर्ष
१७ । तदनु गर्दभिलस्यैव सुतेन विक्रमादित्येन राजोऽज्जयिन्या राज्यं प्राप्य सुवर्ण^८पुरुषसिद्धिबलात्
शयिवीमनूणां कुर्वता विक्रमसंवत्सरः प्रवर्तितः । स च वार्षिकदानवर्षाज्जातश्रीवीरसंवत्सराद्
द्वादशाधिकपञ्चशतवर्षेभ्योऽनु ज्ञेयः । विक्रमस्य राज्यं ६० वर्षाणि ततस्तत्पुत्रस्य विक्रमचारित्रापरना-
म्नो धर्मादित्यराजस्य राज्यं ४० वर्षाणि । ततो भाइलराजराज्यं वर्ष ११ । ततः श्रीनाइल^९ राज्यं
वर्ष १४ । ततः श्रीनाहडराज्यं १० वर्षाणि जातम् । यस्य वारके नवनवति-लक्षधनपतिभिरप्राप्तनिवासे
नालडरपुरसमीपस्थे सुवर्णगिरिशृंगे श्रीमहावीरसनाथः श्रीयक्षवत्सत्याख्यो^{१०} महाप्रासादो निष्पन्नः ।
उक्तं च—

नवनवडलक्षधनवद्-अलङ्घ्यासे सुवर्णगिरिसिंहे ।

नाहडनिवकालीणं युधि वीरं जवखवसहीए ॥^{११}

विक्रमादित्यादनुवर्ष १३९; तन्मध्ये १७ वर्षेषु सिंहेषु सर्ववर्ष १९२ । एतदेवाह—

विक्रमरज्जाणंतरसतरसवासेहिं वच्छरपविचो ।

सेसं पुण^{१२} पणतीससयविक्रमकालमि य पविटं ॥

सप्तदशवर्षविक्रमराज्यान्तरं वत्सरप्रवृत्तिः । कोऽर्थः ? । नभोवाहनराज्यात् १७ वर्षविक्रमा-
दित्यस्य राज्यम् । राज्यान्तरं च तदैव वत्सरप्रवृत्तिः । ततो द्विपञ्चाशदधिकशतं (१९२) मय्यान्
१७ वर्षेषु गतेषु शेषं पञ्चविंशदधिकशतं (१३९) ^{१३} विक्रमकाले प्रविष्टम् । विक्रमादित्याङ्कित-
संवत्सरात् शाकसंवत्सरं यावद् यः कालः स विक्रमकालः । स च पूर्वोक्तयुक्त्या १३९ वर्षमान इति ।
तत्र प्रविष्टं तत्र स्थितमिति । एवं च सति किं जातमित्याह—

विक्रमरज्जारंभा परओ सिरिवीरानिवुई भणिया ।

सुच-गुणि-वेय-जुचो विक्रमकालाड जिणकालो ।

१ ६० वर्षाणि । २ ० कालिका । ३ बालमी । ४ ४० वर्षाणि । ५ सूरपद । ६ गर्दभिलराज्यं
१५२ वर्षाणि । ७ शकराजा स्थापितः ततः ४ वर्षाणि । ८ स्वर्णपु । ९ नाइल । १० वत्सत्यारकमहा ।

११ नवनवति लक्षधनवद् अलङ्घ्यासे सुवर्णवेइहरे । नाहडनिवकालीणं वीरं जवखववसहीए ॥

१२ नास्ति । १३ 'शेषं १३९' इत्येव ।

मेरुतुंगाचार्यविरचिता

विक्रमकालाब्जिनस्य वीरस्य कालो जिनकालः—शून्य (०) मुनि (७) वेद् (४) युक्तः ।
चत्वारिंशतानि सप्तत्यधिकवर्षाणि^१ श्रीमहावीरविक्रमादित्ययोरन्तरमित्यर्थः । नन्वयं कालः श्रीवीर-विक्र-
मयोः कथं गण्यते ; इत्याह— विक्रमराज्यारम्भात्परतः पश्चात् श्रीवीरनिर्वाणितिरत्र भणिता । को भावः ;
—श्रीवीरनिर्वाणदिनादनु ४७० वर्षैर्विक्रमादित्यस्य राज्यारम्भमिति । तथा हि—

पालकः	६०	तदनु विक्रमादित्यः	६०
नन्दाः	१९९	धर्मादित्यः	४०
मौर्याः	१०८	भाइलः	११
पुष्यमित्रः	३०	नाइलः	१४
बलमित्र-भानुमित्रौ	६०	नाहडः	१०
नभोवाहनः	४०		
गर्दभिल्लः	१३	एवं	१३९
शकाः	४		
एवं....	४७०	उभयं	६०९

तदनु शाकसंवत्सरप्रवृत्तिः । उक्तं च—

श्रीवीरनिर्वाणितेर्वर्षैः पद्मभिः पञ्चोत्तरैः शतैः ।

शाकसंवत्सरस्यैषा मवृत्तिर्भरतेऽभवत् ॥

अत्राधिकारात् स्थाविराणां पट्टप्रातिष्ठाकालो भण्यते ।

सिरिवीराज सुहृम्भो वीसं, चउ चत्तवास.जंबुस्स ।

पभवेगारस, सिज्जंभवस्स तेवीस वासाणि ॥

पन्नास जसोभदे, संभूइस्सइठ, भइवाहुस्स ।

चउदस, य थूलभदे पणयालेवं दुपन्नरस्स ॥

श्रीवीरनिर्वाणात् सुधर्मस्त्वामिपट्टवर्ष २० । तदनु जम्बुस्वामिनः पट्टवर्ष ४४ । एवं ६४ । उक्तं च
पारिशिष्टपर्वणि—

श्रीवीरमोक्षदिवसादपि हायनानि चत्वारिपष्टिमपि च व्यतिगम्य जम्बूः ।

कात्यायिनं प्रभवमाप्तपदे निवेश्य कर्मज्ञयेण पदमव्ययमाससाद ॥

ततः प्रभवः ११, शक्यंभवस्य २३, यशोभद्रे ९०, सम्भूतिविजयस्य ८, भद्रबाहोः १४; एवं
श्रीवीरनिर्वाणात् १७० । उक्तं च पारिशिष्टपर्वणि—

श्रीवीरमोक्षाद्वर्षशते सप्तत्यग्रे गते सति ।

भद्रबाहुरपि स्वामी ययौ स्वर्गं समाधिना ॥

स्थूलभद्रे ४९; एवं 'दुपन्नरस ति' द्वे शते पञ्चदशाधिके (२१९)। श्रीवीरनिर्वाणात् पाल्क-
नृप-सर्वनन्दराज्यकालोप्येतावानेव ।

अज्जमहागिरी तीसं, अज्जसुहृत्थीण वरिस छायाला ।

गुणसुन्दर चउआला, एवं तिसया पणत्तीसा ॥

आर्यमहागिरिः, ३०, आर्यसुहृत्तीनां ४६, गुणसुन्दरः ४४, एवं श्रीणि शतानि पञ्चविंशदधि-
कानि (३३९) ।

तत्तो इगचालीसं निगोय वक्खाय^१ कालिगायरिओ^२ ।

अट्ठत्तीसं खंदिल, एवं चउसय चउइस य ॥

ततः ३३९ अनुनिगोदव्याख्याता ^३कालकाचार्यः । 'किलास्मद्वत् संप्रति भरते कालकाचार्यो नि-
गोदव्याख्यातेति' श्रीसीमंधरवाचं श्रुत्वा वृद्धविप्ररूपेणेन्द्रः कालकाचार्यपार्थे तथैव निगोदव्याख्याश्रवणादनु-
निजमायुरपृच्छत् । तैश्च श्रुतोपयोगादिन्द्रोऽसाविति ज्ञातः । भिक्षागतयतीनां स्वागमनज्ञप्त्यै वसतिद्वारं
परावृत्त्यै स्वस्थानमगमदिति । अयं च प्रज्ञापनोपाङ्गकृत् सिद्धान्ते श्रीवीरादन्वेकादशगणभृद्भिः सह
अयोविंशतितमः पुरुषः श्यामार्य इति व्याख्यातः ।

[उक्तं चोत्तराव्ययने, परीपहाव्ययननिर्युक्तौ.....परीपहाधिकारे

उज्जेणि कालखमणा सागरखमणा सुवन्नभूमीसु ।

पुच्छा आउ य सेसं इंदो सा दिव्वकरणं च ॥

इति गाथाचूर्णौ—'उज्जेणीए कालगायरिया जाव सक्को निगोयनीवे पुच्छइ सा दिव्वं ति शालामु-
खपरावर्तः । ' ततोऽसौ श्यामार्योऽन्यो वेति चिन्त्यम् [४]]

असौ वर्ष ४१, स्कंदिलसूरिः ३८; एवं चत्वारि शतानि चतुर्दश च (४१४)^५ । अत्र चायं
वृद्धसंप्रदायः—स्थूलभद्रस्य शिष्यद्वयम्—१ आर्यमहागिरिः, २ आर्यसुहृत्ती च । तत्र आर्यमहागिर्यो
शास्ता सा मुल्या । सा चैवं स्याविरावल्यामुक्ता—

सूरिवलिस्सह साई सामज्जो संडिलो य जीयधरो ।

अज्जसमुद्धो मंगू नंदिल्लो नागहत्थी य ॥

रेवइ-सिंहो खंदिल^६ हिमवं नागज्जुणा य गोविंदा ।

सिरिभूइदिन्न-लोहिच-दूसगणिणो य देवइदी ॥

असौ च श्रीवीरादनुसप्तविंशतितमः पुरुषो देवद्विगणिः सिद्धान्तान् अव्यवच्छेदाय पुस्तकाधिरूढा-

नकार्पात् । द्वितीयशाखा तु श्रीकल्पसूत्रोक्ता एवम्—

१ विक्खाय । २ कालिगा० । ३ कालिगा० । ४ कोष्ठकान्तर्गतपाठः प्रति पुस्तके नास्ति । ५ एवं ४१४^७
इत्येव पाठः । ६ रेवइ सिंह खंदिल ।

अञ्जसुहृत्यी य सुदिठय तर्हिदादिन्ने य अज्जदिन्ने य ।
सीहगिरि वइरसापी सोपारग वइरसेणे य ।

एवं चात्र शाखाद्वयेऽप्यार्यसुहस्तिनोऽनु गुणमुन्दरः, श्यामार्यादनु स्कन्दिलाचार्यश्च न दृश्यते, तथा-
प्यत्र संप्रदाये दृष्टावतस्तावेव प्रोक्तौ^१। एवमग्रेऽपि रेवतिमित्रादौ ज्ञेयम् ।

रेवइमिच्चे छत्तीस^२ अज्जमंगू अ बीस एवं तु ।
चउसय सत्तरि चउसय तिपन्ने कालगो जाओ ॥
चउबीस अज्जधम्मो, एगुणचालीस भइगुत्ते य ।
सिरिगुत्ति पनर, वइरे छत्तीस एव पण^३ चुलसी ॥
तेरस वासा सिरिअज्जरक्खिए, बीस पूसमिच्चत्तस^४ ।
इत्थ य पणहिय छसएसु सागसंवच्छरूपत्ती ॥

स्कन्दिलादनुरेवतिमित्रे ३६, आर्यमङ्गुः २०; एवं श्रीवीरमोक्षात् चत्वारि शतानि सप्ततिश्च
(४७०) । अत्र ४९३ वर्षेषु गर्हभिक्षोच्छेत्ता कालकसूरि^५र्जातः । आर्यधर्मे २४ । इह केऽपि मङ्गु-
धर्मयोर्नामैव भेदमाहुः । तन्मते आर्यधर्मस्य वर्ष ४४, भद्रगुप्ते ३९, श्रीगुप्ते १९, श्रीवज्र^६स्वामिनि ३६; एवं
वीरमोक्षात् पञ्च शतानि चतुरशीतिः (५८४) । तदनु श्रीआर्यरक्षिते १३ । पुण्यमितस्य २०, येन सूत्रार्थो
प्रतिबल्यतुल्य आर्यरक्षितो^७ऽकारि । एवं वीरार्द्ध ६१७ । अत्र च ६०९ वर्षेषु शाकसंवत्सरोत्पत्तिः ।
इह चायं संप्रदायः—पूर्वं चन्द्रगुप्तवारके द्वादशवार्षिकदुर्भिक्ष उल्लङ्घ्यधीनां प्रवर्णकसहस्राणां च विच्छेदः ।
बहुलस्य सरिव्ययेति, बलिस्सहेति चैकस्यैव नाम । स्वविरावल्यां तु, आर्यमङ्गुः परोऽनु आर्यधर्म-
भद्रगुप्त-वज्रस्वामि-आर्यरक्षिता भिन्नशाखोद्भवा अपि तस्मिन् समये प्रधानपुराणा इत्युपात्ताः। रेव-
सिंहो-रेवतिसूरिः, ब्रह्मद्वीपकसिंहश्च । तथा वज्रस्वाम्यवसाने १२ वार्षिके दुर्भिक्षे सिद्धान्तानुयोगः
प्रणष्टः । ततः पुनः सुभिक्षे जाते मथुरायां स्कन्दिलाचार्येण श्रमणसंघमेलयित्वा प्रवर्तितः । उक्तं च—

‘ जेसि इमो अणुओगो ’ इत्यादि ।

द्वितीयशाखायां तु—सुद्वियं चि आर्यसुहस्तिनो द्वादशशिष्यान्तरवर्ती, पञ्चमः, कल्पे—‘ सुदिठयः
सुप्पडिबद्धि चि ’ ख्यातः सुस्थितसूरिः । यस्मात् ‘ कोडियण्णो गणो मे ’ इति पठ्यमानः कौटिकगणो
निर्गतः । तथा कल्पसूत्रे इत्युक्तम्—‘ थेरस्स णं अज्जमहागिरिस्स एलावच्चसगुत्तस्स इमे अट्ठ थेरा अतेवासी
अहावच्चा अभिण्णाया होत्था । तंनहा—थेरे उत्तरे, इत्यादि जाव, थेरे छलुए रोहगुत्ते कोसियगुत्तेण ।
थेरेहिंत्तो णं छलुएहिंत्तो णं रोहगुत्तेहिंत्तो तेरासिया साहा निग्गया ’ इत्युक्तम् । आवश्यकं तु

चउदस सोलस वासा चउदस विसुत्तराय दुब्बिसया ।

अट्ठावीसा य हुवे पंच सया चेव चउयाला ॥

पंचसया चुलसीया छ चैव सया नचुत्तरा हुंति ।

१ न दृश्यते तथाऽप्यत्र संप्रदाये दृष्टः, अतस्तथैव प्रोक्तः । २ छत्तीय । ३ पुण । ४ पुण्यमितश्च ।
५ कालिकाचार्यो । ६ श्रीवज्रे । ७ आर्यरक्षितेना०

इत्यत्र—

पंचसया चोयाला तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स ।
पुरिमंतरंजियाए तेरासिया दिट्ठि उप्पत्ता ॥

इत्युक्तम् । ततो यदि पडुलूको रोहगुप्त आर्यमहागिरिशिष्यः, ततः श्रीवीरात् १४४ वर्षाणि कथं स्युः ? । यतः—आर्यमहागिरिः स्थूलभद्रशिष्यः, स चोक्तयुक्त्या वीरमोक्षात् २४९ वर्षान्तर्जातः । तच्छिष्यश्चेत् पडुलूकः ततः १४४ वर्षे कथमिति सन्देहः । ततोऽत बहुश्रुताः प्रमाणम् । तथा १२ वर्षिके दुर्भिक्षे श्रीवज्रेण वज्रसेनशिष्यो ' यदा लक्ष्यमूल्यां रसवतीं लभसे तदनु सुभिक्षं जानीयाः ' इत्युक्त्वा विहारितः । सोपारके जिनदत्तेभ्यभार्यथैश्वरीति नाम्न्या विपक्षेपाददीयमानां^१ तादृशी^२ रसवतीं ज्ञात्वा प्रातः सुभिक्षं भावीति तौ संवोच्य तत्र सुखं तस्यौ । तस्य च क्रमेण इन्द्र-चन्द्र-निर्वृति-विद्याधराख्याः ४ शिष्या जाताः । तेषु चन्द्रकुलं वदवृक्षवच्छतशस्त्रमद्य यावत् प्रसरद्विजयते । तदन्वये तेषां शिष्य^३ उपस्थाप्यः ' कोडीगणो गणो मे, बइरसाहा साहा मे, चंदकुलं कुलं मे ' इति दिग्बन्धं कार्षते इति ।

तथा, भृगुक्षेत्रे आर्यवपुटाचार्यो वृद्धवादी च; आर्यधर्मस्य शिष्यः सिद्धसेनः प्रभावकः । तथा, वज्रस्वामिनोऽनु वज्रसेनो वर्ष ३३, नागहस्तिः ६९, रेवतिमित्रः ५९, ब्रह्मद्वीपकसिंहः ७८; एवं २३९ । तदनु, स्कन्दिल-हिमवत्सूरि-नागार्जुनाः ७८^४ । एषां मध्ये २२ वर्षातिक्रमे बलभीभङ्गः । उक्तं च—

पणसयरी वासाई तित्तिसयसमन्नियाई अकामिं ।
विक्रमकालाओ तओ बलभीभंगो समुप्पन्नो ॥

यतः श्रीविक्रमात् ११४ वर्षैर्वज्रस्वामी, तदनु २३९ वर्षैः स्कन्दिलः, २२५ वर्षैर्बलभीभङ्गः । एवं ३७९ । तथा विक्रमादनु ५१०—श्रीवीरमोक्षादनु ९८० वर्षैर्देवार्द्धिगणिभिर्भ्रन्यानुच्युत्य^५ पुस्तकेषु लिखितः । तदा च तैः श्रीकल्पान्तलिखितम्—' समणस्स भगवओ महावीरस्स कालगयस्स० नववाससयाई वड्ढंताई दसमस्स वाससयस्स अयं असीइमे गच्छइ त्ति । ' ततः १३ वर्षैश्चतुर्थी पर्युपगमा पर्व । तदुक्तम्;

नवसय तेणउएहिं समइक्कंतेहिं चद्धमाणाओ ।
पज्जोसवणचउत्थी कालगसूरिहिं संठविया ॥

श्रीवीरमोक्षात् दशभिः शतैः पञ्चपञ्चाशदधिकैः (१०५५) श्रीहरिभद्रसूरेः स्वर्गः । उक्तं च—

पंचसए पणसीए विक्रमकालाओ झत्ति अत्थमिओ ।
हरिइभसुरिसूरो भवियारणं दिसउ कळ्ळणं ॥

ततो जिनभद्रसमाश्रमणः ६९, पुण्यमित्रः ६० । स्वातिसूरिभिः ७९ वर्षैः पाक्षिकं चतुर्दश्यामा-
नीतम् ७ । उक्तं च—

वारसवाससएसुं पन्नासहिएसु चद्धमाणाओ ।
चउदासि पढमपवैसो पकाप्पिओ साइसरीहिं ॥

१ विपक्षेपात्पूर्वं दीयमानां । २ तादृग् । ३ अतः शिष्य इत्येवं पाठः । ४ २८ । ५ ३५३
६ देवार्द्धिगणिभिः पुस्तकेषु । ७ पाक्षिकं १४ आनीतं ।

पुण्यामतिः क्वापि स्वातिसूरेः पश्चादुक्तेऽस्ति तच्चिन्त्यम्, गाथायासहामेलत्वात् ।¹

तेरसवास सणसु वीराज समन्निणसु सद्वीए ।

सिरिवपभट्टीसूरी वीजसाण सिरोमणी जाओ ॥

मुख्यप्रतो तु श्रीवीरात् १३०० वर्षैरित्यस्ति । एतदपि शोध्यं बहुश्रुतैः, यतस्तत्रैव स्वातेरनु सम्भूतयतिः ५०, मादरसम्भूतिगुप्तं ६०, ततो वपभट्टीसूरिरित्युक्तमस्ति । अतो बहुश्रुताः प्रमाणम् ।

अथ, सुधर्मादीनां² पुण्यमितान्तानां क्रमेण गृहस्थपर्याय-सामान्ययतिपर्याय-युगप्रधानत्वपर्याय-सर्वोपि प्राह---

पंचास सोल तीसा वीसय पणवीस तह य³ वायाळा ।

पणयाल तीस तीसा तीसा चउवीस वीसा य ॥

वावीस चउद चउदासि-गवास पणतीस अह य वावीसा⁴ ।

सतरस गिहि परियाओ, सामन्नजईण अह एवं ॥

तीसा वीसा चउ चत्ति गार चउवीस चत्त सत्तरसा⁵ ।

चउवीस चत्त चउवीस दुतीस पणतीस अहवन्ना ॥

अह चत्ता चउ चत्ता पण चत्ता पन्न तह य चउ चत्ता ।

चालीस तीस, अह जुगपहाणवरिसे भणिस्सामि ॥

वीस चउ चत्तिगारस तेवीस वीस अह चउदस य⁶ ।

पणयाल तीस छत्तालीसा चउ चत्त इगयाळा ॥

अहतीसा छत्तीसा चउ चत्तिगयाल पनर छत्तीसा ।

तेरस वीसं, सन्वाउयं च एगं सयमसीई ॥

पणसीई वासट्ठी छासी नवई छहुचरी चेव ।

नवनवइ तओ तिणहं एगसयं छन्नचइ चेव ॥

अट्ठारसुत्तरं सयमट्ठनवइ दुगहिय सयं च नायव्वं ।

पणाहिय सय सयमट्ठी पणहत्तरि तह य⁷ सगसट्ठी ॥

तिन्नि पुण दुन्नि चउरो पंच य सग पण छ एग तह तिन्नि ।

दो पंच चउ ति सग सत्त सत्त य मासा कमेणुवरिं ॥*

तथा श्रीवीरमोक्षात् १६३९ विक्रमात् १२६९ वर्षैः श्रीविधिपक्षमुख्याभिधानं श्रीमदंचलमच्छं श्रीआर्यरक्षितसूरयः स्थापयामासुः ।

1 पश्चादुक्तः सचेति गाथायाः सह मेलत्वात् । 2 सुधर्मादीनां । 3 तीसट्ठ वीसं वावीस तहय० । 4 पणतीस अट्ठ वावीसा । 5 चउदस य सत्त सत्तरसा । 6 तेवीसा पन्न अट्ठ चउदस य ।

7 अद्धनवइ 8 तय० । * प्रत्यन्तरे एतद्वचः याठः—ति पण दुन्नि चउर पंच य सग पण पण छ इग तिन्नि दो पंच । चउ ति सग सत्त सत्त य सत्त मासा कमेणुवरिं ॥

श्रीवरोपासकश्रेणिकपुत्रः कृष्णिकपुत्रोदायिनोऽनन्तरं³ पाटलीपुत्रे नवनन्दै राज्यं कृतम् । तानुत्थाप्य⁴ चाणिक्यश्चन्द्रगुप्तं भूपमस्थापयत् । तत्पुत्रो विन्दुसारः, तत्पुत्रोऽशोकश्रीः; तत्पुत्रो⁶ कुशालः—अन्यः, तत्पुत्रः संप्रतिराज 7 उज्जयिन्यां जातः । तद्वधो एव गर्दभिलो राजा; तदुच्छेदे शको राजा । तावता गर्दभिलस्यैव पुत्रो विक्रमादित्यः शकमुच्छेद्य तत्रैवोपाविष्टः । तेन श्रीवरीरक्षात् 8 ७० वर्षे⁸ संवत्सरोऽङ्कितः ।

तदनु संवत् ८२१ वर्षे वैशाख सुदि⁹ २ सोमे चाउडावंशोत्पन्नः श्रीवनराजः श्रीअणहिलपुरमस्थापयत्, तत्र वर्षे ६० वर्षाणि राज्यमभ्युक्त । तत्पुत्रेण योगराजेन वर्षे ९ राज्यं कृतम् । ततः संवत् ८९१ वर्षोपाविष्टश्रीरत्नादित्येन वर्षे ३ राज्यं कृतम् । ततो वैरिसिंहस्य¹⁰ राज्यं व० ११ । ततः सं० ९०५ उप० तत्सुतक्षेमराजस्य राज्यं वर्षे ३९ । ततः ९४४ वर्षोपा० सुतचामुडराजराज्यं¹¹ व० २७ । ततः सं० ९७१ वर्षोपा० सुतआघडस्य राज्यं व० २७ । ९९८ वर्षोपा० सुतपूजडराज्यं¹² व० १९ । इत्थमेवं १०१७ । इत्थं चाउडावंशे अष्टभिः १९६ वर्षं राज्यं कृतम् ।

तदनु सं० १०१७ वर्षे चौलुक्यवंशोपाविष्टस्य दौहित्र श्रीमूलराजस्य राज्यं व० ३५ । ततः सं० १०५२ वर्षोपा० सुतवल्लभराजराज्यं व० १४ । ततः सं० १०६६ वर्षोपा० भ्रातृदुर्लभराजराज्यं व० १२ । सं० १०७८ वर्षोपा० भ्रातृनगिलसुतभीमदेवराज्यं ४२ । सं० ११२० वर्षोपा० सुतश्रीकर्णदेवराज्यं व० ३० । सं० ११५० वर्षोपा० सुतश्रीजयसिंहदेवराज्यं व० ४९ । सं० ११९९ वर्षे कार्तिकशुदि ३ निरुद्धं दिन ३ पाटुकाराज्यम् । तत्रैव वर्षे मार्गशुदि ४ उपाविष्ट भीमदेवसुत—खेमराजसुत—देवराजसुत—त्रिभुवनपालसुत—श्रीकुमारपालस्य सं० १२२९ पौष शुदि १२ निरुद्धं राज्यं व० ३, मास १, दिन ७ । ततः तस्यामेव तिथौ उपावि० भ्रातृमहिपालदेवसुत—अजयपालदेवस्य सं० १२३२ वर्षे फा० सु० १२ निरुद्धं राज्यं व० ३, मास २ । ततस्तदैव उपाविष्टलघुमूलराजस्य सं० १२३४ चैत्र शुदि १४ निरुद्धं राज्यं वर्ष २, मास १ दिन २ । ततस्तदैव उपाविष्टश्रीभीमदेवराज्यम् ।

। इति राजावली ।

ततो गज्जनकराज्यम् । उक्तं च—

1 हर्षश्चपिय 2 वणराइ पदम कन्नउजि 3 चेलंतीय । जसि^४ वाहिय जोगडिण रयणि 5 वडर वरकिर्त्तिय । मन्निय 6 दीमडि अंगाडि तह य भूयडि 7 जयवंतीय । मूलराइ चाउंमि (डि) वल्लुहहि णस इत्तिय । 8 भूय भीमि करणि जयसिंह पहु कुंजरि अजइ मूल रमिय । सत्तंगलच्छि इणि भीमदेविगज्जणवइ धरि नीगमिया ।

ततः श्रीवरोवधलवन्धु श्रीवासलदेव सं० १३०० वर्षे । ततः १३१८ श्रीअर्जुनदेवः । १३३१ सारंगदेवः । १३५३ लघुकर्णः । १३६० यवना माधवनागरविप्रेण 10 आनीताः ।

श्रीकुमारपालामात्यबाहडेन १२११ वर्षे २ 11 कोटि ९७ लक्ष कुमारपालप्रियव्ययेन कीरमयः प्रासादः पापाणमयः कारितः । ततः १३११ यवनोपद्रवाज्जावाडिबिम्बे गते सा० समराकेन नव्यबिम्बं स्थापितम् ।

[इति श्रीमेरुताड्गचार्यविरचिता विचारश्रेणिः समाप्ता]

1 कोणिकः । 2 दामनी । 3 नवरं । 4 चाणक्यं चन्द्र० । 5 पुत्रं । 6 तत्पुत्रोऽन्यः कुशालः । 7—राजा । 8 वर्षे । 9 शुदि । 10 वैरिसिंह— । 11 चामुडराज्यम् । 12 पुत्रपूराज्यं । 1 हुं । 2 वणरायकन्नउजि । 3 चेलंतीय । 4 जसि वाय जोगडिण । 5 वडरुडि वर । 6 दीमडि । 7 जयवंती । 8 भूय । 9 नीलमोज । 10 नीताः । 11 वर्षे कोटि ।

- श्रीवीरनि० १७० व० भद्रबाहुस्वामी १० निर्युक्तिकर्ता ।
 वीरनि० २१४ व० अव्यक्तवादी निहवः । ३ ।
 वीरनि० २१५ व० स्थूलभद्रः १० पूर्वधरः श्रुतकेवली ।
 वीरनि० २२० व० शून्यवादी निहवः । ४ ।
 वीरनि० २२८ व० एकस्मिन् समये द्विक्रियावेदकः । ५ ।
 वीरनि० ३३५ व० प्रथमः कालकाचार्यः निगोदविचारकर्ता—अविनीतशिष्यपरिहारकः ।
 वीरनि० ४५३ व० द्वितीयः कालकाचार्यः सरस्वतीबालकः—गर्दभिलोच्छेदी ।
 वीरनि० ४७० व० विक्रमादित्यः संवत्सरप्रवर्तकः ।
 वीरनि० ५४४ व० धर्मेर्नो जीवस्थापकः राहेगुप्तः । ६ ।
 वीरनि० ५८४ व० वज्रस्वामिस्वर्गमनम् ।
 वीरनि० ५८४ व० गोष्ठामाहिलनिहिवः । ७ ।
 वीरनि० ६०९ व० दिगम्बराः ।
 वीरनि० ६२० व० नागेन्द्र—चन्द्र—निर्वृति—विद्याधर—शास्त्राचतुष्कं जातम् ।
 वीरनि० ८८२ व० चैत्यवासी थया ।
 वीरनि० ९८० व० सिद्धांत पुस्तकि चडिओ ।
 वीरनि० ९९३ व० पञ्चमीतश्चतुर्थ्या पर्युपणापर्व आनीतम् ।
 श्रीगुणधरशिष्येण कालकाचार्येण चतुर्दश्यां चतुर्मासकं भावहरायगच्छे ।
 वीरनि० १ सहस्रवर्षैः पूर्वश्रुतविच्छितिः सर्वथा ।
 वीरनि० १००८ व० पौषशालास्थितिः ।
 वीरनि० १४६४ व० वृद्धगच्छात् ८४ गच्छाः ।
 वीरनि० १६१४ वर्षैः खरतराः संजाताः ।
 वीरनि० १६२९ व० पूर्णिमापक्षः ।
 वीरनि० १६८४ आंचलीआ ।
 वीरनि० १७५५ व० तपागच्छः ।
 वीरनि० २०३२ व० लुका जाताः ।
 वीरनि० २०४० व० कटुकमतिनः ।
 वीरनि० २०८० व० पार्श्वचन्द्रायाः ।
 वीरनि० २१२० व० ब्रह्मामतीयाः ।

॥ इति संवत्सराः मतोत्पत्तीनाम् ॥

॥ ॐ अर्हम् ॥

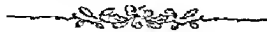
॥ नमोस्तु श्रमणाय भगवते श्रीमहावीराय ॥

यापनीय-यतिग्रामाग्रणिभदन्त-शाकटायनाचार्य-विरचितं

स्त्रीमुक्ति-केवलिभुक्ति-प्रकरणयुग्मम्



॥ स्त्रीमुक्तिप्रकरणं ॥



प्रणिपत्य भुक्तिमुक्तिप्रदममलं धर्ममर्हतो दिशतः ।

वक्ष्ये स्त्रीनिर्वाणं केवलिभुक्तिं च संक्षेपात् ॥ १ ॥

अस्ति स्त्रीनिर्वाणं पुंवत्, यदविकलहेतुकं स्त्रीषु ।

न विरुध्याति हिरत्नत्रयसंपद् निर्वृतेर्हेतुः ॥ २ ॥

रत्नत्रयं विरुद्धं स्त्रीत्वेन यथाऽमरादिभावेन ।

इति वाङ्मात्रं नात्र प्रमाणमाप्ताऽऽगमोऽन्यद् वा ॥ ३ ॥

जानीते जिनवचनं, श्रद्धते, चरति चाऽऽर्यिका शकलम् ।

नाऽस्याऽस्त्यसंभवोऽस्यां नाऽदृष्टविरोधगतिरस्ति ॥ ४ ॥

सप्तमपृथिवीगमनाद्यभावमन्याप्तमेव मन्यन्ते ।

निर्वाणाऽभावेनाऽपश्चिमतनवो न तां यान्ति ॥ ५ ॥

विषमगतयोऽप्यधस्ताद् उपरिष्ठात् तुल्यमासद्वसारम् ।

गच्छन्ति च तिर्यञ्चस्तदधोगत्यूनताऽहेतुः ॥ ६ ॥

वाद-विकुर्वणत्वादिलब्धिविरहे श्रुते कनीयसि च ।

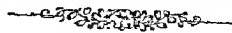
जिनकल्प-मनःपर्यवविरहेऽपि न सिद्धिविरहोऽस्ति ॥ ७ ॥

अष्टशतमेकसमये पुरुषाणामादिरागमः (माहुरागमे) सिद्धिः (सिद्धम्) ।
 स्त्रीणां न मनुष्ययोगे गौणार्थो मुख्यहानिर्वा ॥३५॥
 शब्दनिवेशनमर्थः प्रत्यासत्त्या क्वचित् कयाचिदतः ।
 तदयोगे योगे सति शब्दस्याऽन्यः कथं कल्प्यैः ॥ ३६ ॥
 स्तन-जघनादिव्यैङ्ग्ये 'स्त्री'शब्दोऽर्थे, न तं विहायैषः ।
 दृष्टः क्वचिदन्यत त्वग्निर्माणवकवेद् गौणः ॥ ३७ ॥
 'आ पृष्ट्या स्त्री' त्यादौ रतनादिभिस्त्री स्त्रिया इति च वेदः ।
 स्त्रीवेद स्यनुबन्धास्तुल्यानां (बन्धः पल्यानां) शतपृथक्त्वोक्तिः ॥ ३८ ॥
 न च पुंदेशे स्त्रीवेदोदयभावे प्रमाणमङ्गं च ।
 भावः सिद्धौ पुंवत् पुंमां अपि (पुंसोऽपि) न सिध्यतो वेदः ॥ ३९ ॥
 क्षपकश्रेण्यारोहे वेदेनोच्येत भूतपूर्वेण ।
 'स्त्री'ति नितराममुख्ये मुख्येऽर्थे युज्यते नेतराम् ॥४०॥
 मनुषीषु मनुष्येषु च चतुर्दशगुणोक्तिराजिं (यिं) कासिद्धौ ।
 भावस्तत्रोपरिक्षिप्य नवस्थो नियत उपचारः ॥ ४१ ॥
 पुंसि स्त्रियां, स्त्रियां पुंसि-अर्तश्च तथा भवेद् विवाहादिः ।
 यतिषु न संवासादिः स्यादंगतौ निष्प्रमाणेष्टिः ॥ ४२ ॥
 अनङ्गत्वाऽनङ्गत्वाद्वाही दृष्ट्वाऽनङ्गत्वाद्वाही
 स्त्रीपुंसेतज्ज्ञे स्त्राणामित्यर्हताच्यत, विनाऽपि ।
भात न्यचार्यत (नाऽचार्यत), तत्र स्थयिरादिवद् मुक्तिम् (मुक्तिः) ॥४३॥
 अशो-भगंदरादिषु गृहीतचीरो यतिर्न मुच्येत ।
 उपसर्गं वा चीरे श्वादिः संन्यस्यते चात्ते ॥ ४४ ॥
 उत्सर्गः गमचेलत्वं नोच्येत तदन्यथा नरस्याऽपि ।
 आचेलक्या (कयं) योग्यायोग्याऽसिद्धेरदीक्ष्य इव ॥ ४५ ॥
 इति जिनकल्पादीनां युक्त्यङ्गानामयोग्य इति सिद्धेः ।
 स्याद् अष्टवर्षजातादिरयोग्योऽदीक्षणीय इव ॥ ४६ ॥
 संवर-निर्झररूपो बहुप्रकारस्तपोविधिः शास्त्रे ।
 योगचिकित्साविधिरिव कस्याऽपि कथंचिदुपकारी ॥४७॥

१ उत्सर्ग । २ देसको । ३ ल्यो । ४ श्रेय । मुख्यम् ।

* () एतच्चिह्नान्तर्गताः पाठाः संपादककल्पिताः ।

॥ केवलिभुक्तिप्रकरणम् ॥



अस्ति च केवलिभुक्तिः समग्रहेतुर्यथा पुरा भुक्तेः ।
पर्याप्ति-वेद्य-तैजस-दीर्घागुणोदयो हेतुः ॥ १ ॥
नष्टानि न कर्माणि क्षुधो निमित्तं विरोधिनी न गुणाः ।
ज्ञानादयो जिने किं सा संसारास्थितिर्नास्ति ॥ २ ॥
तम इव भासो वृद्धौ ज्ञानादीनां न तारतम्येन ।
क्षुध् हीयतेऽत्र न च तद् ज्ञानादीनां विरोधगतिः ॥ ३ ॥
आविकलकारणभावे तदन्यभावे भवेद्भावेन ।
इदमस्य विरोधीति ज्ञाने न तदस्ति केवलिनि ॥ ४ ॥
क्षुद् दुःखमनन्तसुखं विरोधे तस्येति चेत् कुतस्त्यं तत् ।
ज्ञानादिवन्न तज्जं विरोधि न परं ततो दृष्टम् ॥ ५ ॥
आहारविषयकाङ्क्षारूपा क्षुद् भवति भगवति विमोहे ।
कथमन्यरूपताऽस्या न लक्ष्यते येन जायेत ॥ ६ ॥
न क्षुद् विमोहपाको यत् प्रतिसंख्यानभावननिवर्त्या ।
न भवति विमोहपाकः सर्वोऽपि हि तेन विनिवर्त्यः ॥ ७ ॥
शीतोष्णवाततुल्या क्षुत् तत् तत्प्रतिविधानकाङ्क्षा तु ।
मूढस्य भवति मोहात् तथा भृशं बाध्यमानस्य ॥ ८ ॥
तैजससमूहकृतस्य द्रव्यस्याऽभ्यवहृतस्य पर्याप्त्या ।
अनुत्तरपरिणामे क्षुत् क्रमेण भगवति च तत् सर्वम् ॥ ९ ॥
ज्ञानावरणीयादेर्ज्ञानावरणादि कर्मणः कार्यम् ।
क्षुत् तद्विलक्षणाऽस्यां न तस्य सहकारिभावोऽपि ॥ १० ॥

धुद्वाधिते 'न जाने, न चेक्ष' इत्यस्ति न तु विपर्ययः ।
 तद् वेद्यं सहकारि तु, तस्य न तद् वेद्यसहकारि ॥ ११ ॥
 ज्ञानावरणादीनामशेषविगमे धुधि प्रजातायाम् ।
 अपि तद् ज्ञानादीनां हानिः स्यादितरवत् तत्र ॥ १२ ॥
 नष्टविपाका धुदिति प्रतिपत्तौ भवति चागमविरोधः ।
 शीतोष्ण-धुद्-उदन्याऽऽदयो हि ननु वेदनीय इति ॥ १३ ॥
 उदये फलं न तस्मिन् उदीरणेत्यफलता न वेद्यस्य ।
 नोदीरणा फलात्मा तथा भवेदायुरस्यफलम् ॥ १४ ॥
 अनुदीर्णवेद्य इति चेद् न धुद् वीर्यं किमत्र नहि वीर्यम् ।
 धुद्भावे धुद्भावेन स्थित्यै धुधि तनोर्विलयः ॥ १५ ॥
 अपवर्तते कृतार्थं नायुर्ज्ञानादयो न हीर्यन्ते ।
 जगदुपकृतावनन्तं वीर्यं किं गततृपो भुक्तिः ॥ १६ ॥
 ज्ञानाद्यलयेऽपि जिने मोहेऽपि स्याद् धुद् उद्भवेद् भुक्तिः ।
 वचन-गमनादिवच्च प्रयोजनं स्व-परौसिद्धिः स्यात् ॥ १७ ॥
 ध्यानस्य समुच्छिन्नक्रियस्य चरमक्षणे गते सिद्धिः ।
 सा नैदानीमस्ति स्वस्य परेषां च कर्तव्या ॥ १८ ॥
 रत्नत्रयेण मुक्तिर्न विना तेनाऽस्ति चरमदेहस्य ।
 भुक्त्या तथा तनोः स्थितिरायुषि न त्वनपवर्त्येऽपि ॥ १९ ॥
 आयुरिवाऽभ्यवहारो जीवनहेतुर्विनाऽभ्यवहृतेः ।
 चेत् तिष्ठत्वन्तर्वीर्यं विनाऽयुषा कालमपि तिष्ठेत् ॥ २० ॥
 न ज्ञानवदुपयोगो वीर्यं कर्मक्षयेण लाब्धिस्तु ।
 तत्राऽऽयुरिवाऽहारोऽपेक्ष्येते न तत्र वार्धौऽस्ति ॥ २१ ॥

मासं वर्षं वाऽपि च तानि शरीराणि तेन भुक्तेन ।
 तिष्ठन्ति न चाऽऽकालं नान्यथा पूर्वमपि भुक्तिः ॥ २२ ॥
 असति क्षुद्धाधेऽङ्गे लये न शक्तिक्षयो न संकेशः ।
 आयुश्चानपर्वत्यं वाध-लयौ प्राग्वदधुनाऽपि ॥ २३ ॥
 देशोऽनपूर्वकोटीविहरणमेवं सतीह केवलिनः ।
 सूत्रोक्तमुपापादि न, भुक्तिश्च न नियतकाला स्यात् ॥ २४ ॥
 अपवर्तहेत्वर्थावन्पवर्तनिमित्तसंपदार्थः ।
 स्याद् अनपवर्त इति तत् केवलिभुक्तिं समर्थयते ॥ २५ ॥
 कायस्तथाविधोऽसौ जिनस्य यद्भोजनस्थितिरितिदिम् ।
 वाङ्मात्रं नाऽत्रार्थे प्रमाणमाज्ञागमोऽन्यद् वा ॥ २६ ॥
 अस्वेदादि प्रागपि सर्वाभिमुखादि तीर्थकरपुण्यात् ।
 स्थितनखतादि तुरेभ्यो न क्षुद् देहान्यता वाऽस्ति ॥ २७ ॥
 भुक्तिर्दोषो यदुपोष्यते, न दोषश्च भवति निर्दोषैः ।
 इति निगदतो निपद्याऽर्हति न स्थान-योगादेः ॥ २८ ॥
 रोगादिवत् क्षुद्धो न व्यभिचारो वेदनीयजन्मायाः ।
 प्राणिनि “एकादश जिन” इति जिनसामान्यविषयं च ॥ २९ ॥
 तद्देतुकर्मभावात् परीपहोक्तिर्न जिन उपस्कार्यः ।
 नश्चाऽभावान्निर्देहिरित्यादेर्न क्षुदादिगतिः ॥ ३० ॥
 तैलक्षये न दीपो न जलागममर्तरेण जलधारा ।
 तिष्ठति तथा तनोः स्थितिरपि न विनोऽऽहारयोगेन ॥ ३१ ॥
 परमावधेयुक्तस्य छद्मस्थस्येव नान्तरायोऽपि ।
 सर्वार्थदर्शनेऽपि स्याद् न चान्यथा पूर्वमपि भुक्तिः ॥ ३२ ॥
 इन्द्रियविषयप्राप्तौ यद्भविनिबोधैर्मसज्जनं भुक्तौ ।
 तच्छब्द-गन्ध-रूप-स्पर्शप्राप्त्या प्रतिव्यूढम् ॥ ३३ ॥

केवलिभुक्तिप्रकरणं;

छद्मस्थे तीर्थकरे विघ्ननानन्तरं च केवलनि ।

चित्तमलप्रवृत्तां व्यासैवाऽत्रापि भुक्तवति ॥ ३४ ॥

विग्रहगतिमापन्नाद्यागमवचनं च सर्वमेतस्मिन् ।

भुक्तिं ब्रवीति तस्माद् द्रष्टव्या केवलनि भुक्तिः ॥ ३५ ॥

नाऽनाभोगाहारः सोऽपि^१ विशेषितो नाऽभूत् ।

युक्त्याऽभेदे नाङ्गास्थिति-शुष्टि-क्षुच्छमास्तेन ॥ ३६ ॥

तस्य विशिष्टस्य स्थितिरभविष्यत् तेन सा विशिष्टेन ।

यद्यभविष्यदिहैषां^२ शाली-तरभोजनेनेव ॥ ३७ ॥

॥ इति केवलीभुक्तिप्रकरणं ॥

॥ इति स्त्रीनिर्वाण-केवलीय-भुक्ति-प्रकरणम् ॥

॥ कृतिरियं भगवदाचार्य-शाकटायनभट्टतैपादानामिति ॥

॥ णमो समणस्स भगवओ महावीरस्स ॥

सिरि-जिणभद्द-खमासमण-विरइओ

जी य क प्पो



कव-पवयण-प्पणामो ओच्छं पच्छित्तदाण-संखेवं ।

जीयव्वद्वार-गयं जीवस्स विसोहणं परमं ॥ १ ॥

संवर-विणिज्जराओ मोक्खस्स पद्दो, तवो पद्दो तासि ।

तवसो य पहाणं पच्छित्तं, जं च नाणस्स ॥ २ ॥

सारो चरणं, तस्स वि नेव्वाणं, चरण-सोहणत्थं च ।

पच्छित्तं, तेण तयं नेयं मोक्खत्थिणा'वस्सं ॥ ३ ॥

तं दसविहः—मालोपण १ पडिकमणोभय २-३ विवेग ४ चोस्तगगे ५ ।

तव ६ छेय ७ मूल ८ अणवद्वया ९ य पाराञ्चिय १० चेव ॥ ४ ॥

१ करणिज्जा जे जोगा तेसु'वउत्तस्स निस्सयारस्स ।

छउमत्थस्स विसोहो जइणो आलोयणा भणिया ॥ ५ ॥

आहारार्इ-गहणे तद्द चइया निग्गमेसु'णेगेसु ।

उच्चार-विहारावणि-चेइय-जइ-चन्दणा'ईसु ॥ ६ ॥

जं च'वं करणिज्जं जइणो हत्थ-सय-चाहिरायरियं ।

अवियडियम्मि असुद्धो, आलोएन्तो तयं सुद्धो ॥ ७ ॥

कारण-विणिग्गयस्स य स-गणाओ पर-गणा'गयस्स वि य ।

उवसंपया-विहारे आलोयणं अणइयारस्स ॥ ८ ॥

२ सुत्ती-समिइ-पमाए सुद्धो आसायणा विणय-भंगे ।

इच्छार्इणमकरणे लहुस सुत्ता'दिन्न-मुच्छासु ॥ ९ ॥

अविहीय फासि-जंभिय-खुय-चायासंकिलिह-कम्मोसु ।

कन्दप्प-हास-विकहा-कसाय-विसयाणुसंगे य ॥ १० ॥

खालेयस्स य सच्चत्थ त्रि हिंसमणावज्जओ जयन्तस्स ।

सहसा'णाभीगेण च मिच्छफारे पडिकमणं ॥ ११ ॥

आभीगेण वि तणुएसु नेह-भय-सोग-वाउसाईसु ।

कन्दप्प-हास-विकहा'इय य नेयं पडिकमणं ॥ १२ ॥

३ संमम-भया'उरा'वइ सहस अणाभोग'णप्प-चसओ वा ।

सच्च-व्वयाइयारे तदुभयमासंकिए चेव ॥ १३ ॥

दुब्बिन्तिय दुब्भासिय दुब्बेद्विय एवमाइयं बहुसो ।

- उवउत्तो वि न जाणइ जं देवसियाइ-अइयारं ॥ १४ ॥
 सव्वेसु वि धीय-पप दंसण-नाण-चरणावराहेसु ।
 आउत्तस्स तदुभयं सहसकारा'इणा चेव ॥ १५ ॥
 ४ पिण्डोवहि-सेज्जाई गहियं कडजोगिणोवउत्तेण ।
 पच्छा नायमसुद्धं, सुद्धो विहिणा विगिञ्चन्तो ॥ १६ ॥
 काल'द्वानाइच्छियं अणुगयत्यमिय-गहियमसदो उ ।
 कारण-गहि'उव्वरियं भत्ताइ विगिञ्चियं सुद्धो ॥ १७ ॥
 ५ गमणागमण-विहारे सुयमि सावज्ज-सुविणयाइसु य ।
 नाया-नइ-सन्तारे पायच्छित्तं विउस्सग्गो ॥ १८ ॥
 भत्ते पाणे सयणासणे अरहन्त-समण-सेज्जासु ।
 उच्चारे पासवणे पणुवीसं होन्ति ऊसासा ॥ १९ ॥
 हत्थ-सय-वाहिराओ गमणा'गमणा'इयसु पणुवीसं ।
 पाणवहाई-सुमिणे सय'मट्टसयं चउत्थमि ॥ २० ॥
 देसिय राइय पक्खिय चाउम्मास घरिसेसु परिमाणं ।
 सयमद्धं तिन्नि सया पंच-सयदुत्तरसइत्तं ॥ २१ ॥
 उहेस-समुहेसे सत्तावीसं अणुन्नवणियाए ।
 अट्टेव य ऊसासा पट्टवण-पडिफमण-भाई ॥ २२ ॥
 ६ १. उहेस'ज्जयण-सुयप्पन्नधंगेसु कमसो पमाइत्तस ।
 कालाइकमणाइसु नाणा'याराइयारेसु ॥ २३ ॥
 निव्विगइय पुरिमट्टे'गमत्तमायंघिलं चणागाडे ।
 पुरिमाई खमणन्तं आगाडे, पवमत्थे वि ॥ २४ ॥
 सामन्नं पुण सुत्ते मय'मायामं चउत्थम'त्थमि ।
 अप्पत्तापत्तावत्त वायणुहे'सणा'इसु य ॥ २५ ॥
 कालाविसज्जणा'इसु मण्डालि-चसुद्धा-पमज्जणा'इसु य ।
 निव्विइयं अ-करणे, अप्प-निसेज्जा य'मत्तट्टो ॥ २६ ॥
 आगाढ-मणागाढे सव्व-भंगे य देस-भंगे य ।
 जोगे छट्ठ-चउत्थं चउत्थ'मायम्विलं कमसो ॥ २७ ॥
 २. संका'इयसु देसे खमणं मिच्छेववूहणाए य ।
 पुरिमाई खमणन्तं भिक्खु-प्पभिइणं व चउण्हं ॥ २८ ॥
 एवं चिय पत्तेयं उववूहाईणमकरण जईण ।
 आयामन्तं निव्वीयगाइ पासत्थ-सट्टेसु ॥ २९ ॥
 परिवाराइ-निमित्तं ममत्त-परिपालणाए चच्छहे ।
 साहम्मिओ चि संजम-हेउं वा सव्वहिं सुद्धो ॥ ३० ॥
 ३. एगिन्दियाण घट्टण'मगाढ-गाढ-परियावणुद्वणे ।
 निव्वीयं पुरिमट्टं आसण'मायामगं कमसो ॥ ३१ ॥
 पुरिमाई खमणन्तं अणन्त-विगलिन्दियाण पत्तेयं ।
 पड्डिन्दियमि एगासणाइ कल्लाणा'महे'मं ॥ ३२ ॥
 भोसाइसु मेहुण-वज्जिपसु दव्वाइ-वत्थु-भिन्नेसु ।

होणे मज्झु'भोसे आसण'मायाम-समणाई ॥ ३३ ॥
लेवाडग-परिवासे'भत्तहो सुक-सन्निहीय य ।

इयरीय छट्ठ-भत्तं, अट्ठमंग सेस निसिभत्ते ॥ ३४ ॥

१ उदेसिय चरिम-तिगे कम्मे पासण्ड स-धर भीसे य ।

घायर-पाहुडियाय सपच्चवायाहडे लोभे ॥ ३५ ॥

अइरं वणन्त निक्खित्त पिहिय साहरिय भीसियाईसु ।

२ संजोग स-ईगाले दुविह-निमित्ते य खमणं तु ॥ ३६ ॥

कम्मुदेसिय-भीसे धायाइ-पगासणाइएसुं च ।

पुर-पच्छकम्म कुच्छिय संसत्तालि-त्त-कर-भत्ते ॥ ३७ ॥

अइरं परित्त निक्खित्त पिहिय साहरिय भीसियाईसु ।

अइमाण-धूम-कारण विवज्जय विहिय'मायामे ॥ ३८ ॥

३ अज्झोयर कड एइय माया'णन्ते परंपराय य ।

मांसाणन्ताणन्तरगया'इय वे'गमासणयं ॥ ३९ ॥

४ ओह-विमामुदेसोवगरण पूइय ठविय पागाडिप ।

लो'उत्तर परियाट्टिय पमेय परभावकीय य ॥ ४० ॥

समगामा'इह दइर जइय मालोइडे शरे पढे ।

सुइम-तिगिच्छा संघय तिग भक्खिय दायगो वइय ॥ ४१ ॥

पत्तेय परंपर ठविय पिहिय मांसे वणन्तराईसु

पुरिमहुं, संकाय जं संकाइ तं समावज्जे ॥ ४२ ॥

५ उत्तर ठवियग सुइम ससणिइ ससरपल भक्खिय घेव ।

भीस परंपर ठवियाइएसु वीएसु निव्विगई ॥ ४३ ॥

सइस्ता'णामेणेणं जेसु पडिफमण'माहियं तेसु ।

आभोगओ'इवहुसो-अइण्णमाणे य निव्विगई ॥ ४४ ॥

धावण डेवण संघरिस-गमण किइा कुहाधणाईसु ।

उकुट्टि गीय छेलिय जीवइयाईसु य चउत्थं ॥ ४५ ॥

तिविहोवहिणो विच्छुय-धिरसंरियापेहियानिचेयणए ।

निव्विइयं पुरिमे'गासणाइ, सव्वम्मि चा'यामं ॥ ४६ ॥

हारिय-धो'उग्गमियानिचेयणादिन्न-भोग-दाणेसु ।

आसण'मायाम-चउत्थगाइ, सव्वम्मि छट्ठं तु ॥ ४७ ॥

मुदणन्तय रयहरणे फिडिप निव्वीइयं चउत्थं च ।

नासिय हारविप चा जयिण चउत्थ-छट्ठाई ॥ ४८ ॥

काल'झणाईय निव्विइयं खमणमेव परिभोगे ।

अविहि-विगिच्चानियाय भत्ताईणं तु पुरिमहुं ॥ ४९ ॥

पाणस्सासंवरणे भूमितिगापेहणे य निव्विगई ।

सव्वस्सासंवरणे अगइण भंगे य पुरिमहुं ॥ ५० ॥

एयं विय सामन्नं नवपडिमा'भिग्गहाइयाणं पि ।

निव्वीयगाइ पक्खिय-पुरिसाइ-विभागओ नेयं ॥ ५१ ॥

फिडिप सयमुस्सारिय भग्गे वे'गाइ चन्दणुस्सग्गे ।

- निर्व्वीहय-पुरिमे'गासणाइ, सव्वेसु चायाम् ॥ ५२ ॥
 अकपसुं पुरिमा'सणमायामं, सव्वसो चउत्थं च ।
 पुव्वमणेहिय यण्हल निसि चोसिरणे दिवा सुवणे ॥ ५३ ॥
 कोदो बह्ददेवसिप आसव-कफोलगाइएसुं च ।
 ल्हसुणाइसु पुरिमहुं, तद्दाई-वंच-भुयणे य ॥ ५४ ॥
 अज्जुसिर-तणेसु निर्व्वीहयं तु, सेस-पणएसु पुरिमहुं ।
 अण्णहिलेहिय-पणप आसणयं तस-वहे जं च ॥ ५५ ॥
 ठयणमणापुच्छाप निव्विसणे विरिय-गूहणाए य ।
 जीएणे'कासणयं, सेसिय-मायासु यमणं तु ॥ ५६ ॥
 वण्णेणं पाञ्चिन्दिय-योरमणे संकिलिह-क्रमे य ।
 दीह'दा'णासेविय गिलाण-कप्पावसाणे य ॥ ५७ ॥
 सव्वोवहि-कप्पम्मि य पुरिमत्ता'पेहणे य चरमाए ।
 चाउम्मासे चरिते य सोहणं पञ्च-फहाणं ॥ ५८ ॥
 छेयाइमसइहओ मिउणो परियाय-गव्वियस्स वि य ।
 छेयाइए वि तवो जीएण गणाहिघरणो य ॥ ५९ ॥
 जं जं न मणियमिहइं तस्सावसीय दाण-संखेवं ।
 भिन्नाइयाय घोच्छं छम्मासन्ताण जीएणं ॥ ६० ॥
 मिघो भविसिहो चिय मासो चउरो य छय लहु-मुदपा ।
 निर्व्वीहगाइ अहमभत्तन्तं दाणमेएसि ॥ ६१ ॥
 इय सव्वावसीओ तघसो नाउं जह-क्रमं समप ।
 जीएण देज्ज निर्व्वीहगाइ-दाणं जहाभिदियं ॥ ६२ ॥
 एयं पुण सव्वं चिय पायं सामन्नओ विणिहिहं ।
 दाणं विभागओ पुण दव्वाइ-वितेसियं जाण ॥ ६३ ॥
 दव्वं १ खेत्तं २ फालं ३ मावं ४ पुरिस ५ एडिसेवणाओ ६ य ।
 नाउमियं चिय देज्जा तम्मत्तं हीणमहियं वा ॥ ६४ ॥
 १ आहाराइ-दव्वं वलियं सुलभं च नाउमहियं पि ।
 देज्जा हि, दुग्गलं दुल्लभं च नाऊण हीणं पि ॥ ६५ ॥
 २ लुक्खं सीयल साहारणं च खेत्त'महियं पि सीयम्मि ।
 लुक्खम्मि हीणतरयं; ३ एयं फाले वि तिविहम्मि ॥ ६६ ॥
 गिम्ह-सिसिर-वासासुं देज्ज'हम-दसम-धारसन्ताई ।
 नाउं विहिणा नवविह-सुयववहारोवप्सेणं ॥ ६७ ॥
 ४ हह-गिलाणा भावम्मि; देज्ज हहस्स, न उ गिलाणस्स ।
 जावइयं वा विसइह तं देज्ज, सहेज्ज वा फालं ॥ ६८ ॥
 ५ पुरिसा गीया'गीया सहा'सहा तह सदा'सदा केइ ।
 परिणामा'परिणामा अइपरिणामा य चत्थूणं ॥ ६९ ॥
 तह बिइ-संघयणोभय-संघजा तदुभएण हीणा य ।
 आय-परोभय-नोभयतरगा तह अन्नतरगा य ॥ ७० ॥
 कप्पडियादओ वि य चउरो जे सेयय समक्काया ।

सावेक्खेयर-मेयादमो वि जे ताण पुरिसाणं ॥ ७१ ॥
जो जह-सत्तो बहुतर-गुणो व्य तस्सादियं पि देज्जा हि ।

हीणस्स हीणतरंगं, शोसेज्ज व सच्च-हीणस्स ॥ ७२ ॥
एत्थ पुण बहुतरा भिक्खुणो च्चि अकयकरणा'णभिगयां य ।

जन्तेण जीय अहमभत्तन्ते निव्वियारियं ॥ ७३ ॥
६ आउट्टियाय दप्प-प्पमाय-कप्पेहि वा नित्सेवेज्जा ।

दव्वं खेत्तं कालं भावं वा सेवओ पुरिसो ॥ ७४ ॥
जं जीय-दाणमुत्तं पर्यं पायं पमायसहियस्स ।

एत्तो चिय ठाणन्तरमेगं घट्टेज्ज दप्पवओ ॥ ७५ ॥
आउट्टियापे ठाणन्तरं च, सट्ठाणमेव चा देज्जा ।

कप्पेण पडिक्कमणं तदुभयमहवा विणिदिहं ॥ ७६ ॥
आलोयण-कालम्मि वि संकेस-वित्थोहि-भावओ नाडं ।

हीणं वा अदियं वा तम्मत्तं वा वि देज्जा हि ॥ ७७ ॥
इति दव्वाइ-बहु-गुणे गुरु-सेवाप य बहुत्तरं देज्जा ।

हीणतरे हीणतरे, हीणतरे जाव शोस च्चि ॥ ७८ ॥
शोसिज्जइ सुवहुं पि हु जीपण'नं तवारिहं वहुओ ।

वेयावच्चकरस्स य दिज्जइ साणुग्गहतरं वा ॥ ७९ ॥
७ तव-गव्विओ तवस्स य असमत्थो तचमसइदन्तो य ।

तवसा य जो न दम्मइ अइपरिणामप्पसंगी य ॥ ८० ॥
सुवहु'त्तर-गुण-भंसी छेयावत्तिसु पसज्जमाणी य ।

पासत्थारि जो वि य जइण पडित्तापिमो वहुसो ॥ ८१ ॥
उक्कोसं तव-भूमि समइओ सावसेस चरणो य ।

छेयं पणगारियं पावइ जा चरइ परियाओ ॥ ८२ ॥
८ आउट्टियापे पञ्चिन्दिय-घाप, मेहुणे य दप्पेण ।

सेसेसु'कोसामिक्ख-सेवणारिसु तीसुं पि ॥ ८३ ॥
तवगव्वियाइपसु य मूलुत्तर-दोस-वइयर-गपसु ।

दंसण-चरित्तवन्ते चियत्त-किच्चे य सेहे य ॥ ८४ ॥
अच्चन्तोसनेसु य परलिंग'दुये य मूलफम्मे य ।

भिक्खुम्मि य विदिय-तवे'णवट्ट-पारजियं पत्ते ॥ ८५ ॥
छेपणं परियाप'णवट्ट-पारजियावसाणेसु ।

मूलं मूलावत्तिसु वहुसो य पसज्जणे भणियं ॥ ८६ ॥
९ उक्कोसं वहुसो वा पड्ड-चित्तो व्य तेणियं कुणइ ।

पहरइ य जो स-एक्खे निरवेक्खो धोर-परिणामो ॥ ८७ ॥
अभित्तेओ सव्वेसु वि वहुसो पारजियावराहेसु ।

अणवट्टप्पावत्तिसु पसज्जमाणी य'गेगासु ॥ ८८ ॥
कीरइ अणवट्टप्पो, सो लिग १. फ्फेत्त २. फालओ ३. तवओ ४. ।

१. लिगेण दव्व भावे भणियो पव्वावणापरिहो ॥ ८९ ॥
अप्पडिविरओ'सन्नो न भावलिगारिहो'णवट्टप्पो ।

१. जो जेण जत्थ दूसइ पडिसिस्सो तत्थ सो केत्ते ॥ ९० ॥

३. जत्तिय मेत्तं फालं; ४. तवसा उ जहन्नपण छम्मासा ।

संवच्छरमुज्जोत्तं आसारं जो जिणाइणं ॥ ९१ ॥

धासं धारंस धासा पडिसेवा, कारणे य सव्वो वि ।

धोवं धोवतरं वा धहेज्ज, मुचेज्ज वा सव्वं ॥ ९२ ॥

चन्दइ न य चन्दिज्जइ, परिहार-तयं सुदुच्चरं धरइ ।

संवासो से कप्पइ, ना'लयणाइणि सेसाण ॥ ९३ ॥

१० तित्थगर पवयण सुयं आयत्तिं गणहरं महिहूयं ।

आसायन्तो बहुसो आभिणिघेसेण पारंची ॥ ९४ ॥

जो य स-ल्लिगे दुडो फसाय-ल्लिगेहि राय बहुओ य ।

राय'ग्गमहिस्सि-पडिसेवओ य बहुसो पगासो य ॥ ९५ ॥

थीणद्धि-महादोसो अओ'धासेवणापसत्तो य ।

धरिमहाणावात्तिमु बहुसो य पसज्जय जो उ ॥ ९६ ॥

सो कीरइ पारञ्ची लिंगओ १. खेत्त २. कालओ ३. तवओ ४. ।

१. संपागड-पडिसेवी लिंगओ थीणगिद्धी य ॥ ९७ ॥

२. वसहि-निवेसणं वाडग साहि निओय पुर देस रत्ताओ ।

खेत्ताओ पारञ्ची फुल-गण-संघा'लयाओ वा ॥ ९८ ॥

जत्थु'प्पओ दोसो उप्पज्जिस्सइ य जत्थ नाऊणं ।

तत्तो तत्तो कीरइ खेत्ताओ खेत्त-पारञ्ची ॥ ९९ ॥

३. जत्तिय मेत्तं फालं; ४. तवसा पारंश्चियस्स उ'स एय ।

फालो दु-विकप्पस्स चि'अणवडुप्पस्स जो'भिहिओ ॥ १०० ॥

पगागी खेत्त-थाहि कुणइ तवं सुं-विउलं महासत्तो ।

अवल्लोयणमावरिओ पइ-दिणमेओ कुणइ तस्स ॥ १०१ ॥

अणवडुप्पो तवसा तव-पारञ्ची य दो चि विच्छिन्ना ।

चोइस्स-पुव्वधरम्मी, धरन्ति सेसा संघा फालं ॥ १०२ ॥

इय एस जीयकप्पो समासओ सुविद्वियाणुकम्पाय ।

फहिओ, देओ सो पुण पत्तेसु परिच्छिय-मुणेसु ॥ १०३ ॥